विज्ञान

विज्ञान परिषद

डा० शिवगोपाल मिश्र

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | पौष-माघ २०२४ विक्र०, १८८९ शक फरवरी-मार्च १९६८ | संख्या २-३

भारत में वैज्ञानिक प्रगति

डा० आत्माराम के अध्यक्षीय भाषण के सारपूर्ण अंश

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का ध्येय ब्रिटिश विज्ञान प्रगति संघ के ही समान वैज्ञानिकों और जनता के बीच सजीव सम्पर्क स्थापित करना है। यदि हमें ऐसा सम्पर्क स्थापित करना है तो यह आम धारणा मिटानी होगी कि वैज्ञानिकों का काम जनता की समझ-बूझ के बाहर है। विज्ञान और टेक्नालाजी का प्रभाव जन-साधारण के जीवन पर पड़ता है इसलिए वैज्ञानिकों के लिये यह जरूरी है कि वे अपने काम को जनता के सामने रखें और जनता के विचारों को मालूम करें। मेरी राय में विज्ञान कांग्रेस का यह एक प्रमुख काम है।

विज्ञान से रचनात्मक विचार धारा का विकास होता है और ज्ञान का भण्डार बढ़ता है। परन्तु इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि विज्ञान और टेक्नालाजी, उद्योग और कृषि के विकास तथा स्वास्थ्य रक्षा में अति उपयोगी ही नहीं बल्कि अनिवार्य हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि विज्ञान की सहायता से जीवन-स्तर ऊँचा करने में सहायता मिलती है। मनुष्य को अपनी भलाई के लिए पहले कभी इतना ज्ञान और तकनीक उपलब्ध नहीं थे जितने आज हैं। इसलिए आज विज्ञान का महत्व है। मानव कल्याण में योगदान देने का पूरा पूरा दायित्व भारतीय वैज्ञानिकों पर है। हमें देखना है कि हम अपने समाज व जनसाधारण के कितने समीप हैं और हमारा काम हमारे समाज की आशाओं व इच्छाओं से कहाँ तक सम्बद्ध है।

हमारी आज की आवश्यकता व स्थिति के अनुसार हमें टेक्नालाजी पर अधिक बल देना होगा। मध्य १९ वीं शताब्दी के पश्चात् विज्ञान और टेक्नालाजी, जो एक प्रकार से स्वतन्त्र रूप है बढ़ाते रहे थे, एक दूसरे के निकट आये और यह देखा गया कि दोनों ही एक दूसरे के विकास में सहायक हैं। आज का विज्ञान कल की टेक्नालाजी का आधार हो सकता है इसलिए हमें विज्ञान के हर पहलू को बढ़ावा देना चाहिए। मूल अनुसन्धान के केन्द्र मुख्यत: विश्वविद्यालय ही हैं, वहाँ उन पर बल दिया जाय और उसका विशेष उद्देश्य "वैज्ञानिक क्षमताओं" का विकास होना चाहिए जिसके बिना हम विज्ञान के उपयोग में निपुण नहीं हो सकते। उपयोग करने के पहले विज्ञान जानना जरूरी है।

मैं यह अनुभव करता हूँ कि विज्ञान की शिक्षा

में प्रयोगात्मक पहलू पर पर्याप्त बल नहीं दिया जाता। इसके लिये यह जरूरी नहीं कि हमारे पास बड़े-बड़े जटिल यंत्र ही हों। हमें अपने आप ही उपकरणों को बनाने की आदत डालनी चाहिए। इसी से कार्य-कुशलता आती है और मशीनों की समझ भी। इससे शिक्षा प्रणाली भी उत्पादन-उन्मुखी होगी।

● स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने विज्ञान के लिये धन और साधनों की व्यवस्था की और नई-नई प्रयोगशालायें बनवाईं। नये नये विश्वविद्यालय स्थापित हुये। १९५८ में "वैज्ञानिक नीति" प्रस्ताव स्वीकार हुआ। लेकिन इस प्रस्ताव के होते हुए भी क्या विज्ञान के प्रति आस्था के लिये कोई राष्ट्रीय संकल्प है? स्वतन्त्रता के पहले धन के अभाव में भी हमारे वैज्ञानिकों ने संसार में नाम कमाया। पश्चिमी देशों की यह धारणा गलत सिद्ध हुई कि विज्ञान पूर्वी देशों के बूते की बात नहीं। आज वह जोश और वह उत्साह कुछ कम हो गया है। क्या हम केवल अपने पुराने यशोगान में ही मग्न हैं? स्वतन्त्रता से पहले हमारा एक लक्ष्य था। अब क्या लक्ष्य है?

इस समय जबकि टेक्नालाजी पर बल है, हमारे सामने टेक्नालाजी नीति पर कोई विशेष वक्तव्य नहीं है जैसे कि विज्ञान और औद्योगिक नीतियों पर है। हमारी विज्ञान व उद्योग नीतियों को जोड़ने वाला एक टेक्नालाजी नीति वक्तव्य बहुत आवश्यक है। अच्छा हो हम अपनी टेक्नालाजी नीति को कुछ स्पष्ट करें।

● हमारे पास साधनों की कमी नहीं लेकिन देश गरीब है। विकास के लिए तीन चीजों की जरूरत है— भौतिक साधनों का विस्तृत सर्वेक्षण एवं उनका उपयोग, पूंजी निर्माण और उद्योगों को प्रोत्साहन तथा मानव साधनों का विकास। इनमें मानव साधनों का विकास सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आर्थिक प्रगति के लिये पूंजी, टेक्नालाजी तथा आर्थिक जानकारी, प्रबन्ध योग्यता, आधुनिक औद्योगिक कुशलता तथा कठिन परिश्रम की निष्ठा चाहिए। पूंजी को छोड़कर शेष का सम्बन्ध मानव साधनों से है। ऐसे देशों के भी उदाहरण हैं जिन्होंने आर्थिक पूंजी न होने पर भी अपने मानव साधनों के बल पर उल्लेखनीय प्रगति की है। इतिहास में ऐसे देशों की भी मिसालें हैं जिन्होंने सब कुछ होते हुए भी अपनी अज्ञानता से देश को उजाड़ बना दिया।

देश का विकास केवल कठिन परिश्रम से ही हो सकता है। विभिन्न रूपों की विदेशी सहायता केवल सहायक हो सकती है। **हमारे परिश्रम का स्थान नहीं ले सकती और न वह हमें आत्म-निर्भर** ही बना सकती है। जब तक वैज्ञानिक व तकनीकी योग्यताओं, औद्योगिक कुशलताओं और आधुनिक सामाजिक मान्यताओं पर आधारित देश के अन्दर शक्तियों का निर्माण नहीं होगा तब तक हम विकास का समुचित आंतरिक ढाँचा नहीं बना सकेंगे।

● मैं तकनीशियनों की निरन्तर उपेक्षा की ओर भी ध्यान दिलाना चाहता हूँ। अब औद्योगिक उत्पादन अधिक यांत्रिक होता जा रहा है। इसलिए इसके लिए काफी अधिक योग्य शिल्पी चाहिए जो साज-सामान चला सकें, देख भाल कर सकें, उनकी मरम्मत कर सकें। कच्ची सामग्री तथा उत्पादित सामग्री का परीक्षण कर सकें, नई मशीनें बना सकें और नई वस्तुओं का निर्माण कर सकें। शिल्पियों की समस्या एक सामाजिक समस्या भी है क्योंकि उन्हें समाज में वह स्थान नहीं दिया जाता जो उन्हें मिलना चाहिए।

● व्यावहारिक विज्ञान में, जिसमें मानव व पदार्थों के काफी साधनों की जरूरत पड़ती है, कुछ **संगठन** जरूरी हैं लेकिन केवल संगठन से ही विज्ञान में सफलता नहीं मिलती। व्यावहारिक शोध संस्थानों में शोधकार्य का संगठन किसी निर्धारित रूप पर नहीं किया जा सकता। यह एक प्रयोगशाला के लिये अलग और दूसरी के लिये अलग हो सकता है। आधुनिक अनुसंधानशालाओं में प्रबन्धकों को एक महत्वपूर्ण स्थान

दिया जाता है......कुछ भी हो मेरा विचार है कि अपने देश में हमें अभी अपना अधिक समय अनुसंधान में लगाना चाहिए न कि संगठन की बारीकियों में।

कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि आज-कल समूह में काम करने के युग में व्यक्ति का क्या स्थान है ? चाहे समूह हो या अकेला व्यक्ति, नये विचार तो व्यक्तिगत ही होते हैं। किसी कमेटी ने पेन्सलीन की खोज या जेट इंजन का आविष्कार नहीं किया।

● विज्ञान के आयोजन की जो मूल समस्यायें हैं उन पर अभी हमने पूरा ध्यान नहीं दिया है।........यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि कोई ऐसी विधि निकाली जाय जिससे देश में वैज्ञानिक अनुसंधान पर होने वाले कुल खर्च से देश को अधिक से अधिक लाभ हो।

● प्रयोगशालाओं में बहुत अधिक विभागीय प्रजातंत्रता से अनुसंधान में बाधा ही पड़ सकती है। जरूरत इस बात की है कि प्रयोगशाला में काम करने वाले वैज्ञानिक के विचारों और जरूरतों की ओर ध्यान दिया जाय।

अक्सर यह मान लिया जाता है कि वैज्ञानिक और प्रशासक एक दूसरे के विचारों के प्रति सहानुभूति नहीं रखते। हमारे देश की शासन प्रणाली एक विदेशी सत्ता ने बनाई थी। उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हुए हैं। तब भी उसकी जड़ें काफी गहरी हैं। उसके बदलने में उथल-पुथल होना और समय लगना स्वाभाविक है। मेरे विचार से शासन प्रणाली इतना अधिक अर्थ नहीं रखती जितना प्रशासक। जिनको कुछ करने की धुन है उनको कोई रोक नहीं सकता। इसलिए मैं शासन में उपयुक्त व्यक्तियों के लिये जाने को अधिक महत्व देता हूँ।

● मैं वैज्ञानिकों को उनके काम में पूर्ण स्वतन्त्रता देने का समर्थक हूँ।

● विज्ञान में बौद्धिक एकाधिपत्य का कोई स्थान नहीं और यदि वह कहीं है तो उसे तुरन्त मिटा देना चाहिए। प्रयोगशाला में स्वतन्त्रता का अर्थ यह भी नहीं कि कोई किसी के प्रति जिम्मेदार नहीं है। ऐसी स्थिति में अनुशासनहीनता और गैर-जिम्मेदारी को बढ़ावा मिलेगा।

● यह जरूरी है कि वैज्ञानिक संस्थायें वैज्ञानिक समाज का नेतृत्व करें और आदर्श प्रस्तुत कर जनमत तैयार करें। उनको समाज के युवा वर्ग में विज्ञान के प्रति लगन उत्पन्न करनी चाहिए। सरकार का भी इस क्षेत्र में बड़ा दायित्व है। उसे वैज्ञानिक संगठनों को प्रोत्साहन देना चाहिए और सम्बन्धित समस्याओं पर उनसे परामर्श करना चाहिए। भारत सरकार बहुत समय से देश के लिए एक राष्ट्रीय अकादमी बनाने का विचार कर रही है।......जरूरत इस बात की है कि वैज्ञानिक संस्थाओं को परामर्श में शामिल करने की परम्परा डाली जाय।

● हम अक्सर अपनी जनशक्ति की समस्या के बारे में सुनते रहते हैं। यह ठीक है कि योग्य व्यक्तियों की कमी है लेकिन यह स्थिति दो कारणों से और भी खराब हो जाती है। योग्य व्यक्तियों की खोज विशेषकर मुश्किल होती है क्योंकि वे ७० विश्वविद्यालयों और २०० वैज्ञानिक व शैक्षिक संस्थाओं में फैले हुए हैं। जो योग्य व्यक्ति सामने आ जाते हैं उनकी बार-बार पूछ होती है और उनका अधिकांश समय इसी तरह व्यतीत हो जाता है। वे समाज में अपना बहुत महत्व समझने लगते हैं और एक तरह से उनमें महाधिपति के से लक्षण आने लगते हैं। अन्य व्यक्ति जिनमें अनेक युवक भी होते हैं सामने नहीं आ पाते और उनको कोई मान्यता नहीं मिलती। वे निराश हो जाते हैं। बहुधा यह वृद्धों और युवकों का विवाद बन जाता है।

मैं नहीं समझता कि देश में प्रतिभा की कमी है। कमी है तो प्रतिभा को खोजने के तरीकों में। प्रतिभा मिलने पर उसका जरूरत से ज्यादा उपयोग होने लगता है। जरूरत इस बात की है कि परामर्श लेने का तरीका ऐसा हो कि वैज्ञानिकों का ज्यादा समय मीटिंग आदि में न लगे और उनके अनुसन्धान कार्य में बाधा न पड़े। परन्तु उनकी उपेक्षा भी न की जाय।

कभी कभी इस बात को बहुत तूल दिया जाता है कि केवल युवावस्था में ही बड़ी बड़ी खोजें की जा सकती हैं। मूलविज्ञान में तो यह बात ठीक हो सकती कि परन्तु जहाँ अनुभव का विशेष स्थान है वहाँ इस बात में सावधानी बरतनी चाहिए। यदि हम भारत के उन विशिष्ट वैज्ञानिकों का जीवन देखें जो आज वृद्धों की श्रेणी में हैं तो पायेंगे कि उनमें से अनेक ने युवावस्था में ही प्रतिभा प्राप्त की थी। आरम्भ में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में अनेक निदेशक अवस्था में तीस से चालीस वर्ष के थे। संसार का नियम है कि वृद्धों का स्थान युवक लेते हैं। कहा जाता है बड़े व्यक्ति अपने से छोटों का शोषण करते हैं। अभी तक मेरे सामने कोई ऐसी मिसाल नहीं आई जिसमें इसके लिए किसी को दण्डित किया गया हो। शोषण के ऐसे मामलों की जाँच करके अपराधी को दण्ड दिया जाना चाहिए। जरूरत इस बात की है कि श्रेष्ठ को प्रोत्साहन दिया जाय परन्तु हम सावधान रहें कि कहीं **केवल युवकों के नाम पर प्रतिभाहीनता को बढ़ावा न मिले।**

अमरीका को छोड़कर प्रतिभा निष्क्रमण (Brain drain) की समस्या सबके लिये है। गत महायुद्ध के बाद से वैज्ञानिकों और अन्य प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों का एक देश से दूसरे देश में आना-जाना बहुत बढ़ गया है। हम विदेशों में बसने वाले वैज्ञानिकों की संख्या कम कर सकते हैं। यदि सरकार ने अपने वैज्ञानिकों को विदेशों से वापिस बुलाने के लिये कदम न उठाये होते तो पता नहीं कितने और अधिक वैज्ञानिक बाहर ही रह जाते।

● जब तक हमारी अर्थ-व्यवस्था की प्रगति ऐसी नहीं होगी कि वह वैज्ञानिकों को साधन व सुविधायें जुटा सके तब तक बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों के लौटने से हमारे बौद्धिक जीवन में निराशा और असन्तोष के वर्तमान वातावरण में और वृद्धि ही हो सकती है। जो हमारी अर्थ व्यवस्था में खप सकते हैं उन्हें ही वापस बुलाया जाय। यह बड़े दुख की बात है कि हम अपने सभी इंजीनियर स्नातकों को काम-काज देने में सफल नहीं हो रहे। मेरी तो ऐसी धारणा है कि जब तक हमारा आर्थिक विकास अच्छी तरह से नहीं होगा तब तक हमारे देश के युवकों का बाहर जाना नहीं रुक सकेगा। **वे सब देशभक्त हैं लेकिन वे केवल देशभक्ति पर ही जिन्दा नहीं रह सकते।**

● देश में ऐसी भावना व्याप्त है कि विदेशी माल देशी से अच्छा है। यह भावना हमारे विज्ञान और टेक्नालाजी के क्षेत्र में भी है।...स्वदेशी की भावना का यह मतलब नहीं जो तकनीकी जानकारी जानी-बूझी हो और बाहर से मिल सकती हो उसका हम पुनः आविष्कार करें और हमारे जो सीमित साधन हैं उनको इसी में लगाये रहें।

● आजकल सरकारी निर्णय में वैज्ञानिक बहुत कुछ भाग लेते हैं। यह बात अच्छी है परन्तु यह अन्देशा है कि कहीं कुछ व्यक्ति अपनी क्षमता या अधिकार क्षेत्र से भी बाहर प्रभाव न डालने लगें। ऐसी स्थिति से बचने के लिये सही व्यक्ति ही सही स्थान में रखने चाहिए।

● संसदीय जनतंत्र में यह भी आवश्यक है कि संसद सदस्य विज्ञान के मामलों में दिलचस्पी लें। यह बड़े हर्ष की बात है कि संसद सदस्यों और वैज्ञानिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक भारतीय संसद वैज्ञानिक समिति है।

● वैज्ञानिकों को संगठन की चमक दमक से सावधान रहना चाहिए। जिस प्रकार विज्ञान जादू नहीं है है उसी प्रकार केवल संगठन भी चमत्कारिक नहीं है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग करें।

●●

कृषि में कार्बनिक यौगिकों का योगदान—१

● धर्मनारायण लड्ढा

१. उर्वरक एवं कीटनाशक

मनुष्य का जीवन पेड़-पौधों पर आश्रित है। पेड़ पौधों से हमें भोजन प्राप्त होता है जिससे हमारे शरीर के सभी कार्य सुचारु रूप से चलते रहते हैं। यदि प्रकृति में पेड़-पौधों का उत्पादन, विशेषतया खाद्यान्नों का स्थिर हो जाए तो बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन प्रदान करना असंभव हो जायगा। परिणामतः संसार में चारों ओर भुखमरी फैल जाय। अतः कृषि की ओर ध्यान देना आवश्यक है ताकि विभिन्न पौधों एवं खाद्यान्नों का अधिकाधिक उत्पादन हो सके। आधुनिक कृषि प्रमुखतया तीन बातों पर निर्भर है :—

१. पौधों का प्रजनन

२. रसायनों का प्रयोग

३. प्राविधिक शिक्षा का ज्ञान एवं आधुनिकतम यंत्रों का कृषि में उपयोग।

पौधों के प्रजनक हमें नये व उत्तम नस्ल के पौधे प्रदान करते हैं। रसायन शास्त्री पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। उनकी वृद्धि, प्रजनन व संरक्षण के साधन जुटाते हैं जबकि यांत्रिक विधि से खेती में अधिकाधिक आधुनिकतम यंत्रों के उपयोग से प्रति एकड़ उत्पादन-क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

सन् १८३८ में ब्रिटेन में सर्वप्रथम कृषि में कुछ रसायनों का प्रयोग किया गया। इनमें सुपरफास्फेट और अमोनियम सल्फेट मुख्य थे। इन रसायनों का कृषि में प्रभाव ज्ञात करने हेतु जगह-जगह प्रायोगिक कृषि-क्षेत्र बनाए गये। आजतक भी वहाँ कुछ कंपनियों ने अपने इस तरह के क्षेत्र कायम रखा है, जिससे नये २ रसायनिक पदार्थों का प्रयोग करके यह ज्ञात किया जाता है कि उनका पौधों के उत्पादन, वृद्धि, पोषण, संरक्षण आदि में क्या हाथ है। तत्पश्चात् यह जानकारी कृषक तक पहुँचाई जाती है ताकि वे इन रसायनों का प्रयोग करें।

उर्वरक—भूमि एवं इसकी उपज किसी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है। भूमि जटिल सिलिकेट यौगिकों के अवक्रमित पदार्थों, चट्टानों, मिट्टी, वनस्पति पदार्थों के अवशेषों से (ह्यूमस से) बनी है।

कृषि उपयोगी भूमि के दो प्रमुख कार्य हैं—

(१) पेड़ पौधों के रहने तथा पनपने का प्रमुख स्थान है।

(२) कार्बन डाई आक्साइड के साथ ही पौधों के लिए सभी प्रकार का भोजन उपलब्ध कराती है।

पौधों की वृद्धि हेतु भूमि में कुछ रसायनों का होना अनिवार्य है। ये रसायन उस रूप में होने चाहिए जो पौधों के लिए उपयोगी हों तथा उन्हें सुगमता से ग्रहण करके अपने में आत्मसात कर सकें। गंधक, मैग्नीशियम कैल्सियम, लोह एवं सिलिकन के यौगिकों का भूमि में होना आवश्यक है। ये पदार्थ भूमि में पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। कोबाल्ट, मैंगनीज, मालिब्डनम, ताँबा एवं जस्ता के यौगिकों की अल्प मात्रा की भी जरूरत पड़ती है। भूमि में होने वाली रासायनिक अभिक्रियाओं में ये उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के यौगिकों का मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है। पौधों की वृद्धि में ये महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। तत्वों की इस त्रिवेणी (N,P,K) से पौधों की आशातीत वृद्धि होती है। अतः जिस मिट्टी में इस त्रिवर्ग का अभाव हो, वहाँ इनके उपयुक्त यौगिकों को डालना चाहिए ताकि उपज में वृद्धि हो। इसी कारण इन रसायनों को **उर्वरक** कहते हैं। इस प्रकार **उर्वरक वे**

पोषक पदार्थ हैं जो भूमि में नहीं पाए जाते हैं किंतु पौधों की वृद्धि हेतु उनका होना अतिआवश्यक है। आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि भूमि में गंधक की अत्यंत आवश्यकता होती है। आवश्यकता की दृष्टि से उपर्युक्त तीन पदार्थों के बाद गंधक का चतुर्थ स्थान है। गंधक की न्यूनता से पौधों का विकास रुक जाता है।

नाइट्रोजन के कई तरह के उर्वरक उपलब्ध हैं। ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अधिकतर उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने वाले नाइट्रोजन के यौगिक अकार्बनिक होते हैं। कार्बनिक रसायनों में **यूरिया** ही एकमात्र नाइट्रोजन का यौगिक है। आजकल इसका उपयोग अधिकाधिक होने लगा है। कारण कि यह आसानी से सस्ते दामों पर मिल सकता है। हमारे देश में भी इस उर्वरक के उत्पादन हेतु जगह-जगह निजी एवं सरकारी क्षेत्रों में संयंत्र लगने लगे हैं।

नाइट्रोजन के अकार्बनिक उर्वरकों की तुलना में यूरिया की यह विशेषता है कि जल अपघटन से प्राप्त पदार्थ में अम्लता नहीं होती है—

$$\overset{HOH\ \ HOH}{NH_2\,CO\,NH_2} \rightarrow 2NH_3 + H_2CO_3 \quad \cdots\cdots(1)$$

$$H_2CO_3 \rightarrow H_2O + CO_2 \quad \cdots\cdots(2)$$
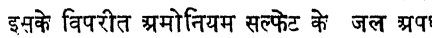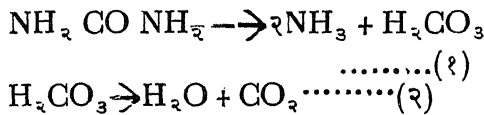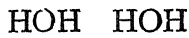
इसके विपरीत अमोनियम सल्फेट के जल अपघटन से भूमि में अम्लता वृद्धि होती है—

$$(NH_4)_2SO_4 + 2H_2O \rightarrow 2\ NH_4OH + H_2SO_4 \quad \cdots\cdots(3)$$

$$2\,NH_4OH = 2NH_3 + 2H_2O \quad \cdots (4)$$
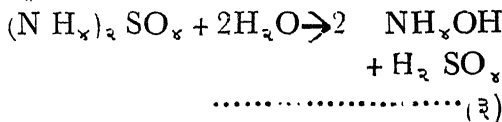
कीटनाशक —केवल उर्वरकों से ही कृषि का विकास नहीं किया जा सकता। कई प्रकार के कीड़े ऐसे होते हैं जो फसलों को काट देते हैं या खराब कर देते हैं पौधों एवं फलों का रस चूस कर उन्हें शुष्क कर देते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के कीट होते हैं—चर्वक कीट, कृन्तक कीट एवं चूषक कीट। उत्तरी अमेरिका में ८२,००० किस्म के कीट और २६०० किस्म के विभिन्न माइट्स (Mites) तथा टिक्स (Ticks) हैं। प्रति एकड़ भूमि में ४०० लाख कीड़ों के रोग हो सकते हैं। पौधों एवं बीजों में कई प्रकार के रोग होते हैं। अमेरिका में पौधों की लगभग २५,००० छूत की बीमारियाँ हैं। फसल काट लेने के पश्चात् भी उपज को सावधानी से रखना पड़ता है अन्यथा कीड़े, जीव आदि (यथा मिल ड्यू, चूहे) इसे खा जाते हैं। इस प्रकार फसल में प्रति वर्ष अरबों रुपये की हानि होने का अनुमान है। एक चूहा प्रति वर्ष एक बुशल अनाज खाता है। अत: कृषक को जितना उर्वरकों से अवगत कराकर उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है उतना ही फसलों को कीड़ों, मकोड़ों, जानवरों से रक्षा करना एवं उनमें होने वाली बीमारियों की रोक थाम करना भी है।

विभिन्न प्रकार के कीटनाशक

कई तरह के कीटनाशक रसायन उपलब्ध हैं। इनका उपयोग कीड़ों के खाने की प्रकृति पर आधारित हैं—

(१) **आंतरिक कीटनाशक**—ये पदार्थ पौधों पर लगाए जाते हैं। जब चर्वक कीट इन पौधों को खाते हैं तो ये पदार्थ उनके पेट में पहुँच जाते हैं। जहरीले होने के कारण कीड़े मर जाते हैं। कुछ प्रमुख चर्वक कीट इस प्रकार हैं—टिड्डी, इल्ली आदि।

(२) **बाह्य कीटनाशक**—ये चूषक कीटों को मारने के लिए उपयोगी होते हैं। इनके सम्पर्क में आते ही कीड़ों की तत्काल मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणी में ऐफिड्स, लीफ हॉपर, थ्रिप्स, मिलिबग्स आदि आते हैं।

(३) **धूमक**—ये भंडारों में रखे हुए अनाज अथवा मिल, कारखाने जहाज आदि स्थानों में रखे कृषि उत्पादों में लगे कीड़ों व जीवों को मारने में प्रयुक्त होते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व अकार्बनिक पदार्थ ही कीटनाशक के रूप में लाये जाते थे। इनमें आर्सेनिक, फ्लोरिन एवं सायनाइड के यौगिक प्रमुख थे। कुछ कार्बनिक पदार्थ यथा पाइरेथ्रम्, रोटिनॉन, निकोटीन आदि ज्ञात थे जो कीटनाशक के रूप में प्रयुक्त होते थे किन्तु ये

सभी प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त होते थे। कई नये पदार्थों के कीटभारक गुणों पर गवेषणात्मक कार्य भी किये गये हैं। कुछ वैज्ञनिकों के अनुसार उत्तम सम्पर्क कीटनाशकों का अणुभार ३००-४०० के लगभग होना चाहिए एवं अणुओं में कार्बन की एक या दो वलय होनी चाहिये।

कीटनाशकों का बिषैला स्वभाव उनमें संलग्न भिन्न-भिन्न मूलकों के कारण होता है। इन पदार्थों में पाये जाने वाले मूलक जो विषैले स्वभाव को प्रदान करते हैं, इस प्रकार —हैलोजन में प्रमुख क्लोराइड (Cl) थायोसायनेट (SCN), नाइट्रो (NO_2) एवं सायनाइड (CN) मूलक। कुछ कीटनाशी में ईथर बंधन (R—O—R) भी उपस्थित है जो संभवतया पदार्थ के विषैले स्वभाव का कारण हो।

डी० डी० टी० (डाइक्लोरोडाइ फिनायल ट्राइ-क्लोरोथेन) बहुत ही प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण कार्बनिक कीटनाशक है। कीटनाशक मक्खी, पतंग, लाइस, मच्छर एवं अन्य कृषि जीवों को मारने में उपयोगी है। **बी० एच० सी०** (बेंजीन हैक्साक्लोराइड ६६६) एक दूसरा कीटनाशक है जो इसके बाद ज्ञात हुआ है। इस यौगिक के कई समावयवी (Geometrical Isomers) होते हैं। इनमें से गामा समावयवी, जो **लिंडेन** कहलाता है, अत्यधिक प्रभावशाली कीटनाशक है। बेंजीन हैक्साक्लोराइड एक सामान्य कीटनाशक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह बाल वीविल, लीफ हॉपर, फूलीवार्म ऐफिड्स आदि कीटों को मारने की 'अचूक औषधि' है। इसीलिए इसका उत्पादन डी० डी० टी० से अधिक है।

मीथोक्सीक्लोर का अणु डी० डी० टी० की भाँति होता है। इसमें पैरा-स्थान में क्लोरीन परमाणु के बजाय मीथोक्सी मूलक होते हैं। यह भी अत्यधिक प्रणावशाली है। टिड्डे के अलावा खेती के सभी शत्रुओं को मारने की यह अद्वितीय दवा है। कुछ नये जटिल यौगिकों का पता लगा है जो सभी प्रकार के कीड़ों को मारने में समर्थ हैं। इनमें से दो मुख्य है—**एलड्रिन** (एच० एच० डी० एन०) एवं डाइलड्रिन (एच० ई० ओ० डी०) $C_{12}H_8Cl_6$ एवं $C_{12}H_8OCl_6$।

एलड्रिन का विषैलापन उतना ही है जितना कि लिंडेन का किंतु डाइलड्रिन सर्वाधिक विषैला पदार्थ है। अन्य कीटनाशकों की तुलना में इसका प्रभाव काफी समय तक रहता है। ये दोनों पदार्थ टिड्डी मारने में समर्थ हैं।

क्लोरडेन ($C_{10}H_6Cl_8$) एवं टोक्साफिन ($C_{10}H_{10}Cl_8$) दोनों क्लोरीन युक्त यौगिक हैं। प्रथम में ६४-६७% क्लोरीन होता है जबकि द्वितीय में ६७-६९% एवं ये इस श्रेणी के सामान्य कीटनाशक हैं। टोक्साफिन कपास में लगने वाले कीड़ों को नष्ट करता है।

कार्बनिक थायोसायनेट फ्लाइस्प्रे को मारते हैं। इस श्रेणी के यौगिकों को **लीथेंस** कहा जाता है। लॉरायल थायोसायनेट ($C_{12}H_{25}SCN$) इस किस्म का बहुत ही उपयोगी पदार्थ है। पैराथायोन सर्वाधिक शक्तिशाली एवं अद्वितीय कीटनाशक है। यह सभी तरह के कीट रोगों को नियंत्रण व नष्ट करने में प्रयुक्त होता है। यह अत्यधिक विषैला है अतः इसके निर्माण, स्थानांतरण एवं अनुप्रयोग में बहुत ही सावधानी रखनी चाहिए। डी० एन० ओ० सी० केवल टिड्डी व ओवर विंटरिंग कीड़ें मारने में उपयोगी है। पौधों पर इसका प्रभाव हानिकारक है। इस कारण इसे अधिक इस्तेमाल नहीं किया जाता है।

डी० एन० ओ० सी० ओविसाइड और मिटिसाइड भी है। डी० एन० सी० एच० पी० (डाइनाइट्रो साइक्लो हैक्साइल फीनोल) और डी० एन० बी० पी० (२-४ डाइनाइट्रो ६ द्विती० ब्युटाइल फीनोल) दोनो मिटिसाइड के रूप में कार्य करते हैं। प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त पायरेथरिन्स जो फ्लाइस्प्रे को मारने में इस्तेमाल होता है, के बजाय वैज्ञानिकों द्वारा बनाये गये नये पदार्थ जिसे **ऐलिथ्रिन** कहते हैं, का उपयोग अब बढ़ता जा रहा है। यह **पायरेथ्रिन** से अधिक प्रभावशाली है। इसका सूत्र है—$C_{19}H_{26}O_3$।

सीसटोक्स कीटनाशक पौधों की जड़ एवं पत्तियों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। पौधे इस पदार्थ के पहुँचते ही इसके विषैलेपन के कारण चर्वक और चूषक कीटों के लिए अनुपयोगी बन जाते हैं। इस प्रकार के पौधे अथवा उनसे प्राप्त फल मनुष्य के लिए हानिकारक नहीं होते हैं, अतः इसका प्रभाव स्थायी व कालांतर तक रहता है। अगर बीज में लगा दिया जाए तो इसका प्रभाव अत्यधिक समय तक रहेगा। पौधे इस प्रकार अपने शत्रुओं से मुक्त रह सकेंगे। सीसटोक्स डीमेटोन का ट्रेड मार्क है जो कि डीमेटोन-ओ एवं डीमेटोन-एस का मिश्रण है।

कभी-कभी एक कीड़ा दूसरे कीड़े का भोजन बन जाता है और एक ही प्रकार का कीटनाशक इन सबका मुकाबला करने में असमर्थ होता है। उदाहरणार्थ सेव के पौधे में तीन प्रकार के कीड़े पाये जाते हैं—कोड़लिग मोथ, ऐफिड्स एवं लेडीबीटल पहले प्रकार के कीड़े सेव को खाते हैं, दूसरे सेव एवं पत्तियों का रस चूषते है जबकि तीसरे ऐफिड्स को खाते हैं। जब पौधों पर डी० डी० टी० का छिड़काव किया जाता है तो कोडलिगमोथ और लेडीबीटल मर जाते हैं। ऐफिड्स को खाने वाले कीड़ों के न होने पर उनकी संख्या बढ़ जाती है। इस प्रकार प्रकृति में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और पौधों पर ऐफिड्स का जमाव हो जाता है, जो सेव के रस को चूष-चूष कर फल को प्रायः नष्ट कर देते हैं। ऐसी स्थिति में कीटनाशकों का मिश्रण प्रयुक्त किया जाए जो सभी कीटों को समाप्त कर दें।

कीटनाशक का कार्य पौधों की सुरक्षा के अतिरिक्त प्राणीमात्र को राहत पहुचाना भी है। जलाशय, स्नानागार अथवा नहाने के अन्य स्थानों पर सेंडफ्लीज़ मक्खियों, मच्छर, आदि को मारने हेतु इन पदार्थों का छिड़काव किया जाना चाहिए। खेत, चरागाह, बन आदि स्थानों पर जहाँ मच्छर अंडे देते हैं, कीटमार का विलयन छिड़कना चाहिए।

(क्रमशः)

हमारा भोजन एवं रसायन

● डॉ० शिव गोपाल मिश्र

देहातों में अभिभावकों का यह दृढ़ विश्वास है कि यदि बच्चा ठीक से खाना खाये तो वह बीमार नहीं पड़ेगा और उसकी वृद्धि होती रहेगी। किन्तु क्या कभी आपने सोचा है कि गरीब घरों के बच्चे पर्याप्त भोजन करने पर भी अस्वस्थ क्यों देखे जाते हैं, उनके पेट उभड़े हुए, टाँगें पतली या विकृत तथा शरीर का आकार कम ऊँचा क्यों होता है? इसे प्रायः **कुपोषण या पोषणहीनता** (malnutrition) कहकर सभ्य लोग पुकारते हैं जिसका अर्थ है उचित मात्रा में आवश्यक भोज्य अवयवों की उपलब्धि न होने से शरीर की वृद्धि पर बुरा प्रभाव।

यह बुरा प्रभाव एक ओर जहाँ खाद्यान्नों की कमी के कारण है वहीं अच्छे-अच्छे घरों में भोजन की कोटि या उसकी उपयुक्तता पर समुचित ध्यान न देने के कारण है। यदि सभी लोग यह जान लें कि किस प्रकार का भोजन करना चाहिए तो शायद यह पोषणहीनता केवल उन लोगों तक ही सीमित रह जाय जिनके पास पर्याप्त भोज्य पदार्थों के खरीदने के लिये साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि डाक्टर रोगियों को पहले भोजन के सम्बन्ध में आगाह करते हैं। यदि उचित प्रकार का भोजन—जिसे सन्तुलित भोजन (balanced diet) कहते हैं—किया जाय तो रोग काहे को हों?

फलतः आवश्यक है कि प्रत्येक प्राणी—यहाँ तक कि बच्चा—यह समझे कि

● उसे कैसा भोजन करना चाहिए

● भोजन में पाये जाने वाले अवयव क्या हैं—उनका रासायनिक संघटन क्या है

● वे शरीर में किस प्रकार परिवर्तित होते हैं

● उनकी कमी से कौन से रोग हो सकते हैं

● भोजन की आदत से स्वास्थ्य बनता है, उसे सस्ते नुस्खों या चुटकुलों से नहीं बनाया जा सकता।

उपर्युक्त जानकारी के लिये उसे भोज्य पदार्थों के संघटन, पाचन, पाचन के पदार्थ, स्वात्मीकरण, भोज्य पदार्थों से प्राप्त ऊर्जा, वाह्य प्रभावों का पाचन आदि पर प्रभाव का ज्ञान अर्जित करना आवश्यक है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य ने भोजन के पोषक-मान पर ध्यान नहीं दिया जिसके कारण तीन प्रकार की आदत वाले मनुष्य पाये जाते हैं:

आमिषाहारी—प्रायः भौगोलिक कारणों से—यथा टुण्ड्रा के एस्किमो—लोगों को पशुओं के मांस पर निर्भर रहना पड़ा। यहाँ पर खेती न हो सकने के कारण ये लोग अनाज की कल्पना भी नहीं कर सकते। कुछ घुमन्तू जातियाँ आज भी एकदम आमिषाहारी हैं।

शाकाहारी या अन्नाहारी—ये लोग अन्नों से बनी चीजें खाते रहे हैं—विशेषतः एशिया और अफ्रीकावासी।

शाक-आमिषाहारी—वे लोग जो मांस तथा अन्न समान रूप से खाते रहे हैं। इस कोटि में पश्चिमी देशों के लोग आते हैं। मिश्रित भोजन करने वाले लोग पशुपालन पर विशेष ध्यान देते रहे हैं।

रसायन विज्ञान के द्वारा भोजन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी सम्भव है। रसायन की एक शाखा जिसे **कार्बनिक रसायन** कहते हैं उसके अन्तर्गत उन विभिन्न अवयवों का अध्ययन किया जाता है जो भोजन में पाये जाते हैं।

उदाहरणार्थ यह ज्ञात है कि वनस्पति एवं पशु जगत से प्राप्त होने वाले पदार्थ मुख्य रूप से कार्बन C, हाइड्रोजन H, आक्सीजन O, नाइट्रोजन N, सल्फर S, फास्फोरस P के संयोग से बने हैं। इनमें प्रथम तीन का प्रतिशतत्व सर्वाधिक होता है। यही नहीं इन तीनों में भी कार्बन का सर्वोपरि महत्व है इसीलिए वनस्पति एवं पशु-जगत से प्राप्त पदार्थों को कार्बनिक यौगिक कहा जाता है और सम्बद्ध रसायन को कार्बनिक रसायन कहते हैं।

भोज्य पदार्थ

भोज्य पदार्थ कई प्रकार के अवयवों के फलस्वरूप बनता है। मुख्य अवयव ६ प्रकार के हैं। ये हैं—

कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन तथा जल।

ये सभी शरीर के लिये उपयोगी हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक द्वारा विशिष्ट कार्य सम्पन्न होता है।

भोजन के मुख्य कार्य

हम भोजन क्यों करते हैं? क्या इसलिए कि भूख लगती है? उत्तर होगा—नहीं। भोजन करने की आवश्यकता तीन कारणों से पड़ती है :—

(१) कार्य करने के लिये ऊर्जा एवं ऊष्मा की प्राप्ति के लिये।

(२) शरीर के ऊतकों को बनाने, स्थायी रखने के लिये– अथवा यों कहें कि शरीर की क्षतियों की पूर्ति के लिये।

(३) शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित रखने के लिये।

इन तीनों कार्यों के लिये हमारे भोजन के सभी अवयव किसी न किसी रूप में हाथ बटाते हैं। उदाहरणार्थ ऊर्जा प्राप्ति में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा विशेष रूप से उपयोगी हैं। क्षतियों की पूर्ति में प्रोटीन सर्वाधिक कारगर हैं। विभिन्न व्यक्तियों के शरीरों के आकार-प्रकार उनके भोजन में सम्मिलित प्रोटीन की मात्रा एवं किस्म पर निर्भर करता है। प्रोटीनों में विशेष रूप से ऐमीनो अम्ल पाये जाते हैं। इनमें से कुछ 'अत्यावश्यक' अम्ल हैं जो पशुओं से प्राप्त पदार्थों—दुग्ध, अंडे, मांस, मछली—से ही उपलब्ध हो सकते हैं। रोगों के प्रति प्रतिरोधकता के लिये शरीर को विटामिनों एवं खनिजों की आवश्यकता होती है।

१. ऊर्जा प्रदान करने वाले अवयव	प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट
२. क्षतिपूर्ति करने वाले अवयव	प्रोटीन, खनिज
३. शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाले अवयव	विटामिन, खनिज, जल

भोजन का क्या होता है ?

उपर्युक्त कार्यों के होने के लिये भोजन को तीन प्रमुख क्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है :

(१) पाचन (Digestion)

(२) अवशोषण (Absorption)

(३) स्वात्मीकरण (Assimilation)

पाचन वह क्रिया है जिसके द्वारा भोजन विलेय होकर शरीर के काम आ सकता है। पाचन की क्रिया दाँतों से कुचले जाकर पाचन तंत्र में भोजन के सूक्ष्मतर कणों में परिवर्तित होने की क्रिया है। साथ ही पाचक रसों के द्वारा भोजन में रासायनिक परिवर्तन होना भी पाचन में सम्मिलित है।

अवशोषण वह क्रिया है जिसके द्वारा पाचित विलेय भोजन आन्त्र की दीवालों द्वारा रक्त तथा लसीका में मिलता है।

स्वात्मीकरण उन अनेक क्रियाओं का सामूहिक रूप है जिससे अवशोषित भोजन जीवित कोशाओं तक पहुँचता है। इसके फलस्वरूप भोजन का आक्सीकरण होता है जिससे ऊर्जा प्राप्त होती है।

पाचनतंत्र में रसों के निस्सृत होने के कारण ही रासायनिक क्रियायें सम्भव हैं। ऐसे रसों को रसायन की भाषा में एंजाइम (प्रकिण्व) कहते हैं। ये कार्बनिक

पदार्थ हैं जो उत्प्रेरक की भाँति कार्य करते हैं। ये प्राणी एवं वनस्पति कोशों में पाये जाते हैं। इनकी उत्पत्ति विशेष ग्रंथियों द्वारा होती है जो मुँह, आमाशय तथा आन्त्रों में रस उत्पन्न करती हैं।

एंजाइमों के कई प्रकार हैं। ये जिन अवयवों के पाचन में विशेष रूप से सहायक होते हैं उसी के अनुसार इनका नामकरण किया जाता है। इनके नाम के अन्त में येस लगा रहता है।

प्रोटियेस—जो प्रोटीन पर क्रिया करते हैं

लिपेस—जो वसा पर क्रिया करते हैं

एमाइलेस—जो स्टार्च या कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया करते हैं।

भोजन के विभिन्न अवयवों की रासायनिक क्रिया

कार्बोहाइड्रेट : ये कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन-इन तीन तत्वों के संयोग से निर्मित कार्बनिक पदार्थ है। इनमें हाइड्रोजन तथा आक्सीजन में वही अनुपात है जो जल में है अर्थात् वे १ : ८ के अनुपात में हैं।

कार्बोहाइड्रेट पौदों द्वारा निर्मित होते हैं। पौदों की हरी पत्तियों में क्लोरोफिल नामक हरा रंजक पदार्थ रहता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डल की कार्बन डाइआक्साइड गैस एवं मिट्टी से शोषित जल के संयोग से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करता है। यह क्रिया **प्रकाश संश्लेषण** (photosynthesis) कहलाती है। वस्तुतः यह एक ऐसी रासायनिक क्रिया है जो प्रकृति में सभी समय अदृश्य रूप से चलती रहती है।

$$६\ CO_२ + ६H_२O + \text{प्रकाश} \xrightarrow{\text{क्लोरोफिल}} \underset{\text{(शर्करा)}}{C_६H_{१२}O_६} + ६\ O_२$$
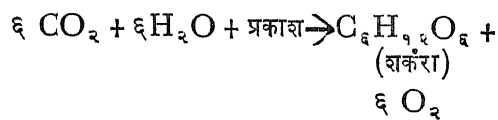
इस क्रिया की विशेषता यह है कि इसमें आक्सीजन उत्पन्न होती रहती है जो जीवित प्राणियों एवं वनस्पतियों की श्वसन क्रिया के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

कई प्रकार के यौगिक कार्बोहाइड्रेट कहलाते हैं—एक शर्करायें, द्वि शर्करायें तथा बहुशर्करायें।

एक शर्कराओं के प्रमुख उदाहरण ग्लुकोस, फ्रक्टोस तथा गैलैक्टोस हैं। इन्हें $C_६H_{१२}O_६$ इस सामान्य सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है। ये जल में अत्यन्त विलेय होते हैं, इनका रंग श्वेत एवं स्वाद चीनी से कम मीठा होता है। ग्लुकोस को डेक्सट्रिन, अंगूर शर्करा या स्टार्च शर्करा के नाम से भी पुकारा जाता है। यह अंगूरों, तरकारियों आदि में पाया जाता है। विचित्र बात तो यह है कि इसकी अल्प मात्रा (०.१%) हमारे रक्त में भी रहती है। आपने सुना होगा कि कभी-कभी रोगियों को ग्लूकोस के इंजेक्शन दिये जाते हैं।

हमारे पाचन तंत्र में मंड (स्टार्च) से ग्लूकोस बनता है। विभिन्न एंजाइम स्टार्च को ग्लूकोस में परिणत करने की क्षमता रखते हैं। ग्लूकोस से ही शरीर में ग्लाइकोजन का संचय होता है। फ्रक्टोस भी ग्लूकोस की भाँति फलों के रसों एवं शहद में पाया जाता है। गैलैक्टोस का प्रमुख साधन दुग्ध है। दुग्ध में लैक्टोस $C_{१२}H_{२२}O_{११}$ होता है जिसके जल अपघटन द्वारा गैलैक्टोस बनता है।

द्वि शर्करायें

इनका सामान्य सूत्र $C_{१२}H_{२२}O_{११}$ है। ये जल में विलेय हैं और इनका स्वाद मीठा होता है। यदि इन्हें गरम किया जाय तो ये झुलस जाती हैं। इनमें तीन प्रमुख शर्करायें **सुक्रोस, लैक्टोस** तथा **माल्टोस** हैं। सुक्रोस नित्यप्रति काम में लाई जाने वाली चीनी है। इसे इक्षु शर्करा या चुकन्दर शर्करा भी कहते हैं। यह पौदों में विशेष रूप से निर्मित होती है। खाने पर चीनी का जल-अपघटन (अम्ल तथा एंजाइम के द्वारा) होता रहता है जिससे ग्लुकोस तथा फ्रक्टोस की समान मात्रायें उत्पन्न होती हैं।

$$\underset{\text{चीनी}}{C_{१२}H_{२२}O_{११}} + H_२O \rightarrow \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_६H_{१२}O_६} + \underset{\text{फ्रक्टोस}}{C_६H_{१२}O_६}$$
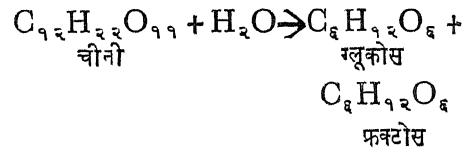
लैक्टोस का प्रधान स्रोत दुग्ध है अतः यह दुग्ध शर्करा भी कहलाती है। गाय के दूध में ४·५% तथा स्त्री के दुग्ध में ६·५% लैक्टोस रहता है। यह न तो अधिक मीठा होता है न चीनी की भाँति अत्यन्त विलेय। यह बच्चों के लिये अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इसका पाचन सरलता से हो सकता है। इसके जलअपघटन से ग्लूकोस तथा गैलैक्टोस बनते हैं। आमाशय में इसका किण्वन होता है जिससे लैक्टिक अम्ल उत्पन्न होता है जो कैसीन बनाने में सहायक होता है।

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O + \text{प्रकिण्व} \rightarrow$$

लैक्टोस जल

$$४\ CH_3CHOHCOOH$$
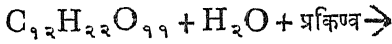
लैक्टिक अम्ल

माल्टोस को अन्नों से प्राप्त स्टार्च के किण्वन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अतः भोजन के पाचन के समय यह स्टार्च पर एंजाइमों की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। यह तुरन्त ही अन्य एंजाइम से प्रभावित होकर ग्लूकोस में परिणत हो जाता है।

बहुशर्करायें—ये अधिक जटिल शर्करायें हैं। इनकी विलेयता एवं मीठेपन में काफी भिन्नता पाई जाती है। कुछ बहुशर्करायें है—स्टार्च, डेक्सट्रिन, सेल्यूलोस, ग्लाइकोजन। इन सबको $(C_6H_{10}O_5)n$ इस सामान्य सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इनकी संरचना अत्यन्त जटिल है फलतः n की संख्या काफी बड़ी हो सकती है।

स्टार्च या मंड पौदों में प्रचुरता से पाया जाता है—विशेषत: बीजों, कंदों आदि में। स्टार्च जल में अविलेय है किन्तु गरम करने पर इसके कण जल शोषित करके लेई बनाते हैं।

जल अपघटन द्वारा स्टार्च से विलेय शर्करायें (ग्लूकोस, फ्रक्टोस) बनती हैं। पाचन तन्त्र में स्टार्च पहले डेक्सट्रिन, फिर माल्टोस तथा अन्त में ग्लूकोस में परिणत होता है।

डेक्सट्रिन स्टार्च को धीरे-धीरे गरम करके तैयार किया जाता है। जब रोटी सेंकी जाती है तो डेक्सट्रिन की पतली पपडी बन जाती है। यह जल में स्टार्च की अपेक्षा अधिक विलेय है और स्वादिष्ट एवं जल्दी पचने वाला है। पचने पर इससे ग्लूकोस बनता है।

मनुष्यों के शरीर में जो एक मात्र बहुशर्करा तैयार होती है वह ग्लाइकोजन है। इसे पशु-स्टार्च भी कहते हैं। इसकी सर्वाधिक मात्रा यकृत (liver) में संग्रहीत पाई जाती है और आवश्यकतानुसार पूरे शरीर को इससे शर्करा की पूर्ति होती है। विशेषत: उपवास के समय या भूखे रहने पर प्राणियों का जीवन ग्लाइकोजन के आक्सीकरण द्वारा ही चलता है।

सेल्यूलोस पौदों के रेशों में पाया जाता है। इसके ही कारण पौदों में दृढ़ता आती है। कपास के रेशे सेल्यूलोस ही हैं। सेल्यूलोस जल में अविलेय है और पाचन तंत्र में अत्यल्प प्रभावित होने वाली बहुशर्करा है। रेशेदार खाद्यों से आवश्यक ऊर्जा की प्राप्ति सम्भव नहीं किन्तु यह निश्चित है कि मल विसर्जन के लिये भोजन में सेल्यूलोस की अधिक मात्रा सहायक होती है।

वसायें (Fats)

वसायें भी कार्बोहाइड्रेट की ही भाँति कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन से युक्त कार्बनिक यौगिक हैं किन्तु इनमें कार्बन तथा हाइड्रोजन की प्रतिशतता अपेक्षातया अधिक होती है। रासायनिक रूप से वसायें वसा अम्ल एवं ग्लीसरीन से बने एस्टर हैं।

वसायें तथा तेल एक-जैसे यौगिक हैं। इनमें जो अन्तर होता है वह भौतिक दशा में है। वसायें सामान्य ताप पर ठोस हैं जबकि तेल द्रव होते हैं। ठोस तथा तेल के दो मुख्य स्रोत हैं—वनस्पति एवं पशु। वनस्पति जगत से प्राप्त होने वाले तेल एवं वसाओं के उदाहरण हैं—अलसी, सरसों, रेंडी, महुआ, बिनौला, जैतून के तेल। पशु जगत से चर्बी प्राप्त होती है—लार्ड तथा टैलो इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

सभी तेलों एवं वसाओं में तीन वसा अम्ल प्रमुख रूप से पाये जाते हैं—स्टियरिक, पामिटिक, ओलीक। पाचन

के समय पहले वसा अम्ल तथा ग्लीसरीन बनते हैं। फिर वसा अम्लों से साबुन बनते हैं।

प्रोटीन

ऐसा ज्ञात हुआ है कि प्रोटीन अत्यन्त जटिल यौगिक हैं जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के साथ-साथ नाइट्रोजन की भी प्रचुर मात्रा रहती है। इनके साथ गंधक, फास्फोरस तथा लोह भी अल्प मात्रा में पाये जा सकते हैं।

ये प्रोटीन नामक पदार्थ वनस्पतियों एवं पशुओं की कोशाओं में पाये जाते हैं किन्तु विशिष्ट एवं उल्लेखनीय बात यह है कि पौदे जहाँ प्रोटीनों का संश्लेषण कर सकते हैं वहीं पशु ऐसा करने में असमर्थ हैं। पशु ऐसा नहीं कर पाते। उन्हें पौदों पर प्रोटीन के लिये निर्भर रहना पड़ता है। मनुष्यों को अपनी प्रोटीन आवश्यकताओं के लिये पौदों तथा पशुओं पर समान रूप से निर्भर रहना पड़ता है, भले ही कुछ प्रोटीन पाचन के समय रूपान्तरण द्वारा संश्लेषित हो जायँ।

जिस प्रकार वसाओं में वसा अम्ल प्रमुख अंग है उसी प्रकार प्रोटीनों में ऐमीनो अम्ल। ये कार्बनिक अम्ल हैं जिनमें ऐमीनो समूह—NH_2 पाया जाता है। अभी तक लगभग २२ ऐमीनो अम्ल ज्ञात हैं। ये पाचन के समय प्रोटीनों के जल-अपघटन द्वारा निर्मित होते हैं। विशेषत: हाइड्रोक्लोरिक अम्ल एवं प्रोटिएस नामक एंजाइम की सहायता से प्रोटीन संगत ऐमीनो अम्ल प्रदान करते हैं। यह क्रिया आमाशय एवं छुद्र आन्त्र दोनों में सम्पन्न होती है।

वानस्पतिक पदार्थों में दालें, सोयाबीन, सेम आदि प्रोटीन के उत्तम स्रोत हैं। पशुओं से प्राप्त दूध, अंडा, मांस तथा मछली में प्रोटीन की प्रचुरता है। गेहूँ में भी प्रोटीन होता है।

शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार प्रोटीनों को ८ वर्गों में विभाजित किया गया है।

(१) ऐल्बुमिन—अंडा, दूध तथा अन्न में उपलब्ध
(२) ग्लोबुलिन—रुधिर, अंडा तथा दूध में उपलब्ध
(३) ग्लूटेलिन—अन्न, दाल आदि में
(४) हिस्टोन—मछली में
(५) प्रोटैमीन—मछली में
(६) फास्फो प्रोटीन—दूध में
(७) हीमोग्लोबिन—रक्त में
(८) लेसिथो प्रोटीन—दूध तथा मस्तिष्क में

शरीर की आवश्यकताओं की दृष्टि से २२ ऐमीनों अम्लों को **अनिवार्य** तथा **सामान्य ऐमीनों** अम्लों में विभाजित किया गया है। अनिवार्य ऐमीनों अम्लों की संख्या १२ है। ये हैं :

आर्जीनीन, हिस्टीडीन, लाइसीन, ट्राइप्टोफेन, मेथायनीन, फेनिल ऐलानीन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, वैलीन, थियोनीन, ग्लाइसीन, ग्लूटैमिक अम्ल।

खनिज

शरीर निर्माण में जिन १३ प्रमुख तत्वों का हाथ है उनके प्रतिशतत्व निम्नांकित हैं :

आक्सीजन	६५	पोटैशियम	०·३५
कार्बन	१८	गंधक	०·२५
हाइड्रोजन	१०	सोडियम	०·१५
नाइट्रोजन	३	क्लोरीन	०·१५
कैल्सियम	१·५	मैग्नीशियम	०·०५
फास्फोरस	१·०	लोह	०·००४
		आयोडीन	०·००००४

इनके अतिरिक्त जिंक, मैंगनीज, ताम्र, कोबाल्ट, ऐल्यूमिनियम आदि की भी अल्प मात्रायें पाई जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि ये सभी तत्व भोजन से प्राप्त होते हैं। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन के अतिरिक्त शेष सभी तत्व **खनिज तत्व** के नाम से विख्यात हैं। इनके दो कार्य हैं—

- ये ऊतकों को बनाते एवं स्थिर रखते हैं।
- शरीर क्रियाओं को नियंत्रित रखते हैं।

विटामिन

ये ऐसे कार्बनिक यौगिक हैं जो हमारे स्वास्थ्य के

लिये अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं। इनके अभाव में भोजन में अन्य समस्त अवयव होते हुये भी शरीर में अनेक रोग होने की सम्भावना रहती है इसीलिये विटामिनों की पूर्ति पर डाक्टर अधिक ध्यान देते हैं। आपने विटामिन बी की गोलियाँ खाई होंगी। ये इस विटामिन की न्यूनता को दूर करने के उद्देश्य से ही ऊपर से दी जाती है।

आजकल कई विटामिन ज्ञात हैं। इनके नाम अंग्रेजी वर्णमाला पर आधारित हैं। प्रमुख ज्ञात विटामिन हैं—ए०, बी०, सी०, डी०, ई०। इनके अतिरिक्त 'के' विटामिन भी है। इनमें से ए० डी० तथा ई० वसा में विलेय हैं किन्तु बी० तथा सी० जल में विलेय हैं। इस विभाजन को ध्यान में रखते हुये तरकारियों के रसे या शोरवे को फेंकना नहीं चाहिए। विटामिनों की आवश्यकता है—

- शरीर को स्वस्थ रखने के लिये
- समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए
- प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन के लिए

विटामिन ए

इसका रासायनिक सूत्र $C_{२०} H_{२९}OH$ है। यह एक ऐल्कोहाल है। यह हरी तथा पीली तरकारियों में विशेष रूप से पाया जाता है। गाजर में कैरोटीन नामक एक पदार्थ होता है जिससे हमारे शरीर में विटामिन ए उत्पन्न होता है। यह विटामिन अधिक मात्रा में होने पर पशुओं के यकृत या चर्बी में एकत्र हो जाता है। कुछ मछलियों के तेलों में इस विटामिन की अत्यधिक मात्रा पाई जाती है।

कलेजी, दूध, अण्डा, मक्खन, पनीर, काडलिवर आयल, पालक, सलाद, मूली, चुकन्दर, गाजर आदि विटामिन ए के स्रोत हैं।

विटामिन ए से वृद्धि होती है, चमड़ी में घाव नहीं हो पाते हैं और रतौंधी नहीं होती। यह आँखों की रोशनी के लिये आवश्यक है।

विटामिन ए की लगातार कमी से सन्दूषण रोग तथा रतौंधी हो जाते हैं।

विटामिन ए गाढ़ा पीले रंग का तेल है जो अत्यधिक गरम करने या आक्सीकरण के कारण नष्ट हो सकता है। किन्तु भोजन पकाते समय या डिब्बाबन्दी के समय सामान्यत: यह नष्ट नहीं हो पाता।

प्रत्येक व्यक्ति को विटामिन ए की १४०० इकाइयों की आवश्यकता होती है। अत: अपने भोजन में उन पदार्थों को अवश्य सम्मिलित करें जिनमें इस विटामिन की अधिकता होती है।

विटामिन बी संकर

पहले विटामिन बी नामक एक ही विटामिन ज्ञात था किन्तु अब एक से अधिक विटामिन ज्ञात हैं जो बी-संकर के नाम से पुकारे जाते हैं—इस प्रकार विटामिन बी-संकर में दस विटामिन सम्मिलित हैं किन्तु इनमें से बी$_{१}$, (थायमीन), बी$_{२}$ (रिबोफ्लैविन), बी$_{६}$, पैंटोथेनिक अम्ल, तथा निकोटिनिक अम्ल प्रमुख हैं। ये सभी जल-विलेय विटामिन हैं।

विटामिन बी$_{१}$ की निरन्तर कमी से बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है। यह स्नायविक रोग है जिससे अन्त में लकवा हो जाता है। ऐसा देखा गया कि कुछ फौजी सिपाही जिन्हें मशीन से कूटा चावल खिलाया गया उन्हें यह रोग हुआ जबकि हाथ से कुटे धान खाने वाले सिपाहियों को यह रोग नहीं हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकला कि चावल के कूटन में ही उपस्थित विटामिन बी$_{१}$ के हटा देने से बेरी-बेरी फैला।

यही नहीं, विटामिन बी$_{१}$ की कमी से पाचन मन्द पड़ जाता है, भूख कम लगती है और कब्जियत हो जाती है। अन्त में इसके कारण स्नायविक दुर्बलता आ जाती है। इसीलिये इस विटामिन को ऐन्टीन्यूरिटिक विटामिन भी कहते हैं।

विटामिन बी$_{१}$ के मुख्य स्रोत हैं—गेहूँ की रोटी, अन्न, हरी तरकारियाँ, यीस्ट आदि।

यह विटामिन पाक सोडा के साथ गरम करने पर नष्ट हो जाता है। जल विलेय होने के कारण तरका-

रियों के रसे में यह विलेय हो जाता है इसलिये रसे को बरबाद नहीं करना चाहिए।

भोजन में प्रतिदिन इसकी २ मिली ग्राम की मात्रा आवश्यक है।

विटामिन बी२ : पहले इसे जी विटामिन के नाम से जाना जाता था। इसकी उपस्थिति से पेलेग्रा नामक रोग नहीं हो पाता था फलतः इसे **एंटी पेलेग्रा विटामिन** भी कहते थे किन्तु बाद में यह देखा गया कि विटामिन जी में दो विटामिन सन्निहित हैं और पेलेग्रा रोग को रोकने की सामर्थ्य निकोटिनिक अम्ल में होती है। फलतः इसका नाम बी२ रख दिया गया। इसे **रिबोफ्लैविन भी कहते हैं**। इसकी न्यूनता होने पर स्वास्थ्य गिरता है, आँखों के रोग हो जाते हैं तथा सर के बाल झड़ जाते हैं।

इस विटामिन के मुख्य स्रोत हैं—यीस्ट, अंडा, कलेजी, मटर, सेम, पनीर, दूध, हरी सब्जियाँ।

विटामिन बी६ : इसके अभाव से त्वचा चरचरा जाती है। यह चावल के टूटन एवं यीस्ट में पाया जाता है।

विटामिन बी१२ : यह रक्ताल्पता की रोकथाम करता है। यह यकृत में पाया जाता है। मनुष्यों की वृद्धि के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

पैंटोथेनिक अम्ल : यह शरीर को चर्म रोगों से बचाता है। यह कलेजी, गुर्दा, शीरा तथा चावल के टूटन में पाया जाता है।

निकोटिनिक अम्ल : इसे ही **नियेसिन भी** कहते हैं। यह पेलेग्रा रोग को रोकता है। इसका प्रमुख स्रोत यकृत, अंडा, दूध, खमीर तथा हरी तरकारियाँ हैं।

आजकल बहुत से डिब्बाबन्दी के सामान तथा तैयार भोजन में विटामिन बी संकर मिलाकर बेचा जाता है।

विटामिन सी

इसका रासायनिक सूत्र $C_6H_8O_6$ है। यह अम्ल है—इसका नाम ऐस्कार्बिक अम्ल भी है। यह जल-विलेय है। यह आक्सीकरण द्वारा तथा अधिक गरम करने पर नष्ट हो जाता है किन्तु अम्लों की उपस्थिति में यह अधिक ताप पर भी नष्ट नहीं होता। विटामिन सी से युक्त पदार्थों को बन्द बर्तन में पकाना ठीक रहता है।

विटामिन सी की लगातार कमी रहने से **स्कर्वी** रोग हो जाता है जिससे चमड़े तथा मसूड़ों में सूजन एवं दाँतों में हिलन आ जाती है।

इस विटामिन के मुख्य स्रोत हैं—नींबू, नारंगी, टमाटर, गोभी, सलाद, तरकारियाँ, आँवला आदि।

स्मरण रहे कि दूध के पास्तुरीकरण से यह विटामिन नष्ट हो जाता है इसलिये डिब्बे का दूध पीने-वाले बच्चों में स्कर्वी रोग का प्रसार अधिक देखा जाता है। ऐसे बच्चों को नींबू, नारंगी देने का प्रबन्ध करना चाहिए।

विटामिन डी

यह ऐर्गोस्टेराल नामक वसीय पदार्थ से जो पौदों एवं पशुओं के ऊतकों में रहता है तैयार होता है। किन्तु ऐर्गोस्टेराल से विटामिन डी बनने के लिये पराबैंगनी किरणों की आवश्यकता होती है। इसीलिये धूप में काम करने वाले श्रमिकों के शरीर में इस विटामिन की प्रचुरता पाई जाती है।

आजकल दूध, रोटी तथा मांस को पराबैंगनी किरणों से प्रभावित करके उन्हें विटामिन डी युक्त करके बेचा जाता है। किन्तु कुछ लोग विटामिन डी से इतने आकृष्ट हैं कि बाजारों में क्रीम, लोशन एवं साबुनों में विटामिन डी की उपस्थिति का विज्ञापन देखकर उन्हें खरीदते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि इस प्रकार शरीर के ऊपर विटामिन डी मलने से कोई लाभ नहीं।

विटामिन डी का प्रमुख कार्य कैल्सियम तथा फास्फोरस के चयापचय को नियन्त्रित रखना है। सामान्यत: आहार में इन दोनों तत्वों का उपयुक्त अनुपात नहीं रहता। ऐसी स्थिति में डी विटामिन की पर्याप्त मात्रा होने पर इन तत्वों का स्वात्मीकरण ठीक से होता है जिससे दाँतों का विकास तथा अस्थियों का बनना ठीक से होता रहता है।

इस विटामिन के अभाव में हड्डियाँ पोली पड़ जाती हैं, दाँत ठीक से नहीं उगते। लगातार न्यूनता से रिकेट नामक बीमारी (सूखा रोग) हो जाती है। यह बीमारी कुछ साल तक के बच्चों को ही विशेष रूप से लगती है।

किन्तु विटामिन डी की अधिक मात्रा भी हानिकर है। यदि आजकल विटामिन डी से युक्त पदार्थों का बहुतायत से व्यवहार किया जाय तो अधिक कैल्सियम एवं फास्फोरस का संग्रह शरीर में हो सकता है, जैसे कि हड्डी का बढ़ना।

विटामिन डी के प्रमुख स्रोत हैं—अंडे, पनीर, मक्खन तथा कलेजी। यदि भोजन में इस विटामिन की कमी हो तो काडलिवर तेल या पराबैंगनी किरणों से प्रभावित दुग्ध या रोटी खानी चाहिए। साथ ही धूप में बैठना लाभप्रद है।

विटामिन ई

यह पुंसकता या प्रजनन के लिये आवश्यक विटामिन है। यह वसा में विलेय है। इस पर गरमी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और शरीर में इसका संग्रह भी हो सकता है। यह हरी, पत्तीदार तरकारियों, मांस, अंडा, गेहूँ के अंकुर में पाया जाता है। प्राय: इसका अभाव नहीं देखा जाता किन्तु इसके अभाव होने पर नपुंसकता आती है।

विटामिन के :

रक्त को जमने के लिये इस विटामिन की आवश्यकता पड़ती है। अत: इसके अभाव होने पर शल्यक्रिया में या रक्तस्राव से अधिक खून बह जाने की सम्भावना है। यह सलाद, अंडे, कलेजी में पाया जाता है।

वैज्ञानिक कर्त्तव्यपरायण हों तो विज्ञान सही दिशा की ओर उन्मुख होगा और राष्ट्र फूले-फलेगा

एक प्ररणाप्रद वक्तव्य

जन-साधारण में वैज्ञानिक विचारधारा का प्रसार

● श्याम मनोहर व्यास

आज का युग विज्ञान का युग है। राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास के लिये जन-साधारण में वैज्ञानिक भावना का प्रसार आवश्यक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का महत्व है। विज्ञान केवल विभिन्न विषयों के अध्ययन का ही नाम नहीं है। यह ऐसा अध्ययन है जो विशेष तरीके से किया जाता है। इस तरीके में निरीक्षण और परीक्षण, तथ्यों पर आधारित तर्क और निष्कर्ष उनके क्रम और तुलनात्मक महत्व पर जोर दिया जाता है।

वैज्ञानिक विधि में यह अनिवार्य है कि जिन तथ्यों के बारे में जाना जाय उनका सही मूल्यांकन भी किया जाय।

आधुनिक युग में देश व समाज की प्रगति विज्ञान की प्रगति पर ही निर्भर है। देश के वैज्ञानिक का उत्तरदायित्व किसी राजनीतिज्ञ से कम नहीं है। हमारे यहाँ अधिकतर वैज्ञानिकों पर दूसरे प्रशासन सम्बन्धी कार्य लाद दिये जाते हैं जिन्हें वे अपने लिये बोझा समझते हैं। यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि वैज्ञानिक साधारण मनुष्यों से कुछ भिन्न प्रवृत्ति वाले होते हैं। प्रशासन को चाहिये कि वह वैज्ञानिकों की रुचि को पहचानने का प्रयत्न करे तथा उन्हें उन क्षेत्रों में अन्वेषण करने की सुविधा दे जिधर उनकी प्रतिभा उन्हें ले जाती हो।

कुछ दिनों पूर्व हारवर्ड के प्रेसीडेन्ट डा० कोनेन्ट ने कहा था—

"वैज्ञानिक अनुसन्धान में प्रगति करने का एक ही तरीका है कि योग्य व्यक्तियों को पूरी सहायता दी जाय और उन्हें इस बात के लिये स्वतन्त्र रखा जाय कि जिस मार्ग से उन्हें अधिकतम फल की आशा हो उस ओर जाएँ।"

● इमारतों और उपकरणों की कमी को विज्ञान की प्रगति में बाधक नहीं समझना चाहिये। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ साधारण प्रयोगशाला में स्थानीय कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से काम चलाकर काफी अच्छे अनुसन्धान किये गये हैं।

● वैज्ञानिक प्रगति सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक समर्थन से ही हो सकती है।

● विज्ञान सम्बन्धी विचारधारा के प्रसार में शिक्षा का महत्वपूर्ण हाथ है।

● सबसे प्रथम आवश्यक है कि इस विचार को दूर किया जाय कि विज्ञान किसी प्रकार की एक ऊँची विद्या है जिसका उपयोग विशेष तौर से प्रशिक्षित व्यक्ति जटिल और सूक्ष्म उपकरणों की सहायता से करते हैं।

विज्ञान एक बहुमानवीय प्रयत्न है और मूलतः यह प्रकृति के नियमों व साधनों को उचित ढंग से समझने का माध्यम है। विज्ञान की सामग्री सारे भौतिक संसार में बिखरी पड़ी है और उसकी बहुत सी ऐसी समस्यायें हैं जिनके बारे में साधारण मनुष्य भी मामूली औजारों और विधियों का उपयोग करके खोज-बीन कर सकता है।

उदाहरण के लिये मौसम सम्बन्धी घटनाओं, परिवर्तनशील चमकने वाले ग्रह-नक्षत्रों, पशु-पक्षियों के जीवन, पेड़-पौधों की किस्में व विकास तथा खनिज-

पदार्थों के अध्ययन आदि के बारे में साधारण व्यक्ति भी काफी सूचनायें एकत्रित कर सकता है।

● विज्ञान के प्रसार में वैज्ञानिकों व शिक्षा शास्त्रियों पर पूरा उत्तरदायित्व है। विद्यालयों में भी विद्यार्थियों को दैनिक जीवन में विज्ञान के महत्व से परिचित कराना आवश्यक है। उदाहरण के लिये भौतिक विज्ञान में उसे फ्यूज के बारे में पढ़ाया गया, यदि वह अपने घर में आवश्यकता पड़ने पर फ्यूज ठीक नहीं कर पाया तो उसका वह अध्ययन व्यर्थ है।

सैद्धान्तिक रूप से वह विज्ञान का विद्यार्थी है पर व्यवहारिक रूप से नहीं। नाप-तोल की दशमलव-प्रणाली से भी जनसाधारण में वैज्ञानिक क्रान्ति उत्पन्न हुई है।

● वैज्ञानिक विचार धारा के प्रसार के कार्य में हम जितनी सच्चाई व उत्साह के साथ लगेंगे उतनी ही अधिक सफलता हमें प्राप्त होगी। हमें यह याद रखना चाहिये कि हम क्रान्ति के युग के द्वार पर खड़े हैं।

विज्ञान को यदि सांस्कृतिक मूल्य के दृष्टिकोण से देखा जाय तो हमें ज्ञात होगा कि इसमें सांस्कृतिक मूल्य भी अधिक है। विज्ञान के अन्वेषणों का इतिहास व्यक्ति के मस्तिष्क में महान व्यक्तियों के कार्यों का चित्रण करता है।

● हमें विज्ञान के नैतिक मूल्यों पर भी ध्यान देना होगा। हमारा कर्तव्य है कि हम वैज्ञानिक आविष्कारों का सही उपयोग करें, उन्हें मानव जाति की समृद्धि में लगायें न कि उसके विनाश में। समाज व राष्ट्र के कल्याण के लिये हमारा विज्ञान के प्रति नैतिक दृष्टिकोण भी होना चाहिये। विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली किसी समस्या पर विचार करने के लिये सबसे पहली आवश्यकता है कि हमारा अन्तःकरण पक्षपात, अन्धविश्वास व संकीर्णता से रहित हो।

● विज्ञान की शिक्षा भी भारतीय भाषाओं में ही दी जानी चाहिये? इससे वैज्ञानिक विचारधारा का प्रकार तीव्र गति से हो सकेगा।

क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान सम्बन्धी मासिक पत्र, पुस्तकें, प्रपत्र आदि प्रकाशित किये जाने चाहिये। विज्ञान जाति भेद व वर्णभेद दूर कर विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार करता है। वैज्ञानिक विचारधारा नागरिकों का जीवन नियमित व सुव्यवस्थित बनाती है, उनमें तर्कशक्ति व विचार शक्ति को विकसित करती है। विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है। रसायन, भौतिकी, जीव, वनस्पति, खगोल व भूगर्भ विज्ञान मानव जाति को सुखी व समृद्ध बनाने के लिये हैं। जनसाधारण में वैज्ञानिक विचारधारा का प्रसार ही राष्ट्र में वैज्ञानिक क्रान्ति उत्पन्न कर सकता है।

●●

प्रकाशनार्थ

नवोदित लेखक विज्ञान में अपने लेख प्रेषित करें

—सम्पादक

---

१. चन्द्रमा के बाद शुक्र

शुक्र ग्रह एक विचित्र विरोधाभास प्रस्तुत करता है।

यह चन्द्रमा को छोड़ कर ब्रह्माण्ड का अधिकतम निकटता से शोधित पिण्ड है। फिर भी सौर-मण्डल के उन सभी ग्रहों में, जो पृथ्वी के निकटतर पड़ोसी हैं, यह एक ऐसा ग्रह है, जिसके विषय में न्यूनतम जानकारी प्राप्त है।

इस ग्रह के विषय में खगोल वैज्ञानिकों को प्राप्त नवीनतम—और सबसे सही—जानकारी यह है कि इसके ऊपर स्थायी रूप से छाये बादलों के आवरण के नीचे वातावरण अत्यन्त उष्ण है और उसके अंतर्गत किसी भी प्रकार के जीवन का अस्तित्व प्रायः असम्भव है। किन्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ बादलों के नीचे थोड़ी मात्रा में जलयुक्त वाष्प, और शायद, कुछ ठण्डे क्षेत्र भी हैं और सम्भवतः कुछ साधारण किस्म के जीव, जैसे सूक्ष्म कीटाणु विद्यमान हैं।

यह जानकारी तीन मानवरहित अंतरिक्ष-यानों द्वारा पृथ्वी पर भेजी गयी सूचनाओं से प्राप्त की गयी है। इनमें से दो अमेरिका द्वारा १९६२ और १९६७ में, और एक सोवियत संघ द्वारा १९६७ में भेजा गया था। सबसे अधिक सूचना अमेरिकी अंतरिक्ष यानों द्वारा भेजी गयी।

इनमें से पहला अंतरिक्ष-यान मैरिनर-२ था, जो अगस्त १९६२ में प्रक्षिप्त हुआ था। वह उसी वर्ष दिसम्बर में शुक्रग्रह के पार्श्व में पहुँच गया। उसे जान-बूझ कर इस प्रकार छोड़ा गया था ताकि वह शुक्रग्रह से टकराने के बजाय उसके पास से होकर निकल जाय। उस पथ पर बढ़ते हुए, जब वह अंतरिक्ष-यान क्रमशः शुक्रग्रह के निकट पहुँचने लगा, उस समय उसके द्वारा पृथ्वी पर उत्प्रेषित रेडियो संकेतों को शुक्रग्रह के वायु-मण्डल से होकर जाना पड़ा।

रेडियो संकेत उस वायुमण्डल के घनत्व के अनुपात में परिवर्तित होते या झुक जाते हैं, जिसमें से होकर वे गुजरते हैं। पृथ्वी पर प्राप्त संकेतों से अमेरिकी वैज्ञानिक शुक्रग्रह के वायुमण्डल के विभिन्न भागों की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ रहे। इस जानकारी तथा यान पर लगे अन्य यंत्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वैज्ञानिक इस ग्रह के वायुमण्डल की अन्य विशेषताओं का निर्धारण करने में समर्थ रहे।

वैज्ञानिक शुक्रग्रह के वायुमण्डल का रासायनिक विश्लेषण करने में समर्थ रहे। उनकी गणना के अनुसार इस ग्रह की सतह का ताप ६०० अंश फारेन-हाइट (३१५ अंश सेण्टीग्रेड) से अधिक है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शुक्रग्रह का वायुमण्डल पृथ्वी के वायुमण्डल की अपेक्षा कई गुना अधिक घना है।

१७ सप्ताह की उस उड़ान के दौरान वह अंतरिक्ष यान न केवल बाह्य अंतरिक्ष के विरोधी वातावरण का सामना करने में, बल्कि वहाँ पहुँचने पर शुक्र ग्रह के कई वैज्ञानिक पर्यवेक्षण करने में भी समर्थ रहा। वह ५ करोड़ मील से भी अधिक दूरी से अपनी सूचनाएँ पृथ्वी पर भेजता रहा है।

रूस के नक्षत्रों सम्बन्धी समस्त १६ कार्यक्रम ९ शुक्र ग्रह सम्बन्धी कार्यक्रम और ७ मंगल ग्रह सम्बन्धी कार्यक्रम विफल हो गये। उनमें से किसी ने उन दोनों के सम्बन्ध में एक भी सूचना पृथ्वी पर नहीं भेजी। किन्तु उनमें से कुछ ने अन्तरिक्ष में अग्रसर होते समय

अन्तरिक्ष की स्थितियों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध की हैं।

अमेरिका के मैरिनर-२ को शुक्र ग्रह को भेजे जाने के ५ वर्ष पश्चात् और अमेरिका के मेरिनर-४ को शुक्र-ग्रह को भेजे जाने के दो वर्ष बाद मनुष्य द्वारा बनाये गये अन्तरिक्ष यान पुन: एक नक्षत्र से संदेश भेजते हैं।

इस बार, दो भिन्न अन्तरिक्ष यानों एक रूसी अन्तरिक्ष यान से और एक अमेरिकी अन्तरिक्ष यान से संकेत आये। वे दोनों एक दूसरे से दो दिनों के अन्तर से भी कम समय में शुक्र ग्रह पर पहुँचे हैं।

१८ अक्तूबर, १९६७ को जब रूसी अन्तरिक्ष यान शुक्र के वायुमण्डल के बाहरी पर पहुँचा, तब उसने एक छोटा सा गोलाकार यंत्र पुंज बाहर फेंका। ऐसा अनुमान है कि जैसे ही शुक्र के वायुमण्डल में वह गोलक प्रज्वलित हुआ, मुख्य अन्तरिक्ष यान से आने वाले संकेत लुप्त हो गये। किन्तु उन गोलक ने अपनी गति धीमी कर दी, एक ऐसा ढक्कन खोला जिसमें से एक स्पर्श सूत्र और एक पैराशूट बाहर निकल आये। किन्तु उस गोलक ने अपनी गति को धीमा कर दिया। तदनन्तर वह घने वायुमण्डल में से होता हुआ शुक्र ग्रह की सतह की ओर उतरा। लगभग ९० मिनट तक उस गोलक ने वायुमण्डल के तापमान और उसकी बनावट के सम्बन्ध में आँकड़े प्रेषित किये। उसके पश्चात् उसके ट्रांसमीटरों ने, सम्भवत: अत्यधिक तापमान के कारण कार्य करना बन्द कर दिया। रूसी अन्तरिक्ष मान से अपेक्षाकृत धीमी गति, केवल एक 'विट' प्रति सैकिण्ड के हिसाब से आंकड़े पृथ्वी पर पहुँचे। (एक 'विट' एक इलैक्ट्रोनिक इकाई है और केवल एक अक्षर अथवा एक अंक बनाने के लिये ऐसी कई इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है)। धीरे-धीरे पहुँचने के अलावा रूसी आँकड़े अस्पष्ट भी प्रतीत होते थे। उदाहरणार्थ, प्रारम्भ में रूसी वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि शुक्र ग्रह के वायुमण्डल में केवल कार्बन डाइआक्साइड है और उपकरणों द्वारा यह पता चला कि वहाँ नाइट्रोजन का सर्वथा अभाव है।

शुक्र ग्रह के सम्बन्ध में इससे पूर्व किये गये अध्ययनों और अमेरिका के मेरिनर-२ द्वारा भेजे गये आंकड़ों को देखते हुए, विश्व के वैज्ञानिकों ने इस खोज को बिल्कुल असम्भव समझा है। कुछ समय के पश्चात्, रूसी वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया कि हो सकता है कि उनके उपकरण पर्याप्त रूप में संवेदनशील न रहे हों और विश्वासपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि शुक्र के वायुमण्डल में नाइट्रोजन मौजूद नहीं है।

इसी बीच अमेरिका का मेरिनर-५ अन्तरिक्ष यान, जो १४ जून, १९६७ को अन्तरिक्ष में भेजा गया था, १९ अक्तूबर, १९६७ को शुक्र ग्रह के समीप पहुँच गया। अपनी दो घंटे की उड़ान के दौरान —एक स्थान पर वह नक्षत्र से २'४८० मील दूर रह गया था—अमेरिकी अन्तरिक्ष यान ने रूसी अन्तरिक्ष यान की तुलना में लगभग १०,००० गुना अधिक आंकड़े प्राप्त किये और अधिक आधुनिक उपकरणों की सहायता से आंकड़े प्राप्त करके उन्हें अधिक आधुनिक ट्रांसमिशन प्रणाली द्वारा पृथ्वी पर भेजा।

अधिकतम जानकारी प्राप्त करने के लिये, अमेरिकी अन्तरिक्ष यान के संवेदनशील उपकरणों ने अत्यन्त तीव्र गति से अन्तरिक्ष यान स्थित एक टेप रिकार्डर में सूचनाएँ भरीं। बाद में उस टेप रेकार्ड को पुन: बजा कर ४९० 'विट' प्रति सैकिण्ड के हिसाब से वे सूचनाएँ पृथ्वी पर प्रेषित की गयीं। वे आँकड़े बहुत अधिक संख्या में थे और उन्हें पृथ्वी पर भेजने में ३४ घंटे लगे। आँकड़ों के सम्बन्ध में पृथ्वी पर लगभग ४०,००० शब्द सुने गये थे।

अन्तरिक्ष यान द्वारा की गयी खोजों में हैं—शुक्र ग्रह का या तो चुम्बकीय क्षेत्र है ही नहीं और यदि है तो वह बहुत हो क्षीण है, शुक्र ग्रह की वान एलन विकिरण पट्टियों जैसी विकिरण पट्टियाँ नहीं हैं, और वायु पृथ्वी की अपेक्षा शुक्र ग्रह के अधिक निकट चलती है, और शुक्र के चारों ओर हाइड्रोजन प्रभामण्डल छाया हुआ है।

रूसी अन्तरिक्षयान द्वारा भेजे गये आँकड़ों से पता चलता है कि शुक्र ग्रह के चारों ओर बहुत ही क्षीण प्रकाश मण्डल है। किन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि रूसी और अमेरिकी खोजों में पाये जाने वाले अन्तर का यह कारण हो सकता है कि इन दोनों देशों के अन्तरिक्ष यानों द्वारा भिन्न क्षेत्रों की जाँच की गयी है। रूसी अन्तरिक्ष यान ने शुक्र के ऐसे भाग के सम्बन्ध में खोजबीन की है जहाँ उस समय रात थी जबकि अमेरिकी अन्तरिक्ष यान ने नक्षत्र के उस भाग की खोज-बीन की है जहाँ उस समय दिन था।

रूसियों के लिये, वेनस-४ अन्तरिक्ष खोज के नक्षत्रों सम्बन्धी क्षेत्रों में प्रथम सफल प्रवेश का प्रतीक था इसी लिये सफलता के लिए बड़ी खुशियाँ मनाई गई हैं और उसके विषय में बड़ा प्रचार किया गया है। अमेरिका के लिये भी मेरिनर-५ एक ऐसे साहसिक कार्य की पुनरावृत्ति थी।

२. कृत्रिम मानव का निर्माण

कृत्रिम मानव की कल्पना नई नहीं है परन्तु अब तक कृत्रिम मानव के निर्माण का कार्य केवल उपन्यास-कारों की कल्पना तक ही सीमित था। अब वैज्ञानिकों ने भी इसके निर्माण में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है अतः हमें यह देखना है कि इस दिशा में कहाँ तक प्रगति हुई है।

यह अनुमान है कि यह मनुष्य निर्मित मानव अनेक यन्त्रों को जोड़कर बनाया जायगा। ये यन्त्र भिन्न-भिन्न स्थानों से एकत्र किये जायेंगे। **स्काटलैंड** स्थित ग्लासगो विश्वविद्यालय के जीव-यन्त्र इंजीनियरिंग विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर कैनेडी इस दिशा में सतत प्रयास कर रहे हैं। वे प्राणिविज्ञान एवं इंजीनियरिंग के संयोग से यान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर मानव अंगों की त्रुटियाँ दूर करने में अग्रणी हैं। **इस विज्ञान के द्वारा मनुष्य के रुग्ण अंगों को निकालकर उनके स्थान पर स्वस्थ अंगों को लगाना संभव हो गया है।**

● कृत्रिम **हाथ तथा पैर** लगाने की प्रणाली बहुत पहले से चल पड़ी है। परन्तु आज जिस प्रकार के हाथ या पैर लगाये जाते हैं, ३० वर्ष पूर्व के चिकित्सकों ने उनकी कल्पना भी नहीं की होगी। आज जिस व्यक्ति के हाथ या पैर काट दिये जाते हैं उनके स्थान पर जो हाथ व पैर लगाये जाते हैं वे न केवल वास्तविक अंगों की तरह प्रतीत होते हैं वरन् उन्हीं की तरह कार्य भी करते हैं। वे शरीर से विद्युत् प्रवाह ग्रहण कर प्राकृतिक अंगों की ही तरह कार्य करने लगते हैं।

● **यान्त्रिक मूत्राशय** भी लगाये जाने लगे हैं जो अस्थायी रूप से रुग्ण मूत्राशय के उपचार तक कार्य करते हैं या स्थायी रूप से उस कार्य को करते हैं। यद्यपि ये अभी महँगे एवं बड़े हैं परन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि शीघ्र ही वे सस्ते तथा ठीक आकार के बन जावेंगे।

● चिकित्सा इंजीनियर **कृत्रिम हृदय** के निर्माण में भी प्रयत्नशील हैं। रुग्ण हृदय को राहत देने के लिये अभी तक एक पम्प का सहारा लिया जाता है। टैक्सास के डाक्टर माइकेल डी बाकी पिछले चार वर्षों से इस पद्धति को अपना रहे हैं। उनका कथन है कि कृत्रिम हृदय के निर्माण में अभी दो बाधायें हैं। प्रथम बाधा एक ऐसे शक्ति प्रदान करने वाले यन्त्र की है जो या तो शरीर में स्थायी रूप से लगाया जा सके या बाहर से पहना जा सके। दूसरी बाधा हृदय के लिये ऐसे तत्व प्राप्त करने की है जो थकावट के कारण फटे नहीं। उन्हें विश्वास है कि सम्मिलित प्रयासों से ये समस्यायें हल हो जायेंगी।

● **कृत्रिम मस्तिष्क** बनाने का कार्य बेलग्रेड में किया जा रहा है। वहाँ पर वैज्ञानिक कम्प्यूटर की सहायता से एक ऐसा मस्तिष्क बनाना चाहते हैं जो उचित संकेत पाने पर कार्य प्रारम्भ कर दे और शरीर के अंगों को गतिशील बना दे। वैज्ञानिक ऐसा कृत्रिम मस्तिष्क बनाने के निकट पहुँच गये हैं जो मानव शरीर का संचालन कर सके।

अगर शरीर विज्ञान को यान्त्रिक ढंग से समझा जा सकता है तो बैज्ञानिक मानव शरीर की तरह यान्त्रिक शरीर भी बनाने में सफल हो जावेंगे। प्रो. कैनेडी का विश्वास है कि मानव शरीर की रचना यन्त्रों द्वारा करना सम्भव है।

उनका कथन है कि यह लक्ष्य अवश्य ही अभी दूर है परन्तु इसका एक दूसरा रूप सम्भव हो गया है। मृत व्यक्ति के अंगों को निकालकर जीवित व्यक्तियों पर लगाया जाता है। ऐसे अंगों की सूची दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। मृत व्यक्ति की आँख की पुतली को निकालकर जीवित व्यक्ति की आंख में लगाकर उसके नेत्रों में पुन: ज्योति आ जाती है। इसी प्रकार मूत्राशय भी लगा दिया जाता है। मृत व्यक्ति का यकृत भी निकालकर शीघ्र ही जीवित व्यक्तियों पर लगाया जाने लगेगा। पशुओं में फेफड़ों को लगाने का कार्य प्रारम्भ हो गया है। मास्को में एक कुत्ते को दूसरे कुत्ते का फेफड़ा लगाया गया जो पिछले आठ सप्ताह से जीवित है और अन्य कुत्तों की ही तरह स्वस्थ है।

दूसरे मनुष्य के अंगों को जोड़ने में सबसे बड़ी कठिनाई यह कि प्रत्येक मनुष्य का भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व होता है। उसके शरीर के कोषाणु बाहरी कोषाणु को पसन्द नहीं करते। प्रतिक्रिया स्वरूप शरीर के कोषाणु उन्हें अस्वीकृत कर देते हैं। इसी कारण किसी अंग के जल जाने पर उसी मनुष्य के शरीर के दूसरे स्थान से काटकर मांस जोड़ा जाता है। अन्य मनुष्य का मांस नहीं जुड़ सकता।

वैज्ञानिक इस कठिनाई को हल करने का प्रयास कर रहे हैं। सर्वप्रथम यह प्रयत्न किया जा रहा है कि अंग दान देने वाले व लेने वाले के शरीर में अधिक से अधिक समानता हो। दूसरा कार्य यह किया जा रहा है कि प्रतिकूल प्रतिक्रिया को समाप्त करने के लिये औषधि दी जाय। टैक्साज के डाक्टर एक ऐसे पदार्थ का निर्माण करने में व्यस्त हैं जिसका लेप करने से बाहर से लाकर जोड़े हुए अंग को शरीर के कोषाणु स्वीकार कर लें। केप्टाउन के डा० बनार्ड में हृदय की कलम लगाकर सर्वथा नवीन प्रयोग किया है।

३. विश्व में प्रोटीन का अभाव एवं उसका समाधान

विश्व में खाद्य का अभाव न केवल मात्रात्मक बल्कि गुणात्मक भी है। उत्तम किस्म का प्रोटीन कैलारियों की अपेक्षा, जिनकी पूर्ति अधिकांशत: अनाजों और जड़ोंवाली फसलों द्वारा की जा सकती है, अधिक दुर्लभ और अधिक मँहगा होता है। किन्तु खाद्यान्नों में इतना प्रोटीन नहीं होता कि उससे शिशुओं या छोटे बच्चों की, जिन्हें सामान्य विकास के लिए प्रौढ़ों की अपेक्षा अनुपातत: अधिक प्रोटीन चाहिए, आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

पर्याप्त कुपोषण के फलस्वरूप, न केवल शारीरिक विकास अवरुद्ध हो जाता है, बल्कि शरीर में छूत के रोगों का निरोध करने विषयक क्षमता कम हो जाती है। छूत के रोगों के कारण शरीर में पोषण-तत्वों से सम्बन्धित संतुलन और भी बिगड़ जाता है। विकासोन्मुख देशों में स्कूल में प्रवेश पाने के लिए निर्धारित आयु से कम आयु वाले बच्चों में मृत्यु-दर के ऊँचे होने का कारण यही है।

प्रोटीन के अभाव सम्बन्धी संकट को दूर करने के लिए तीन उपायों को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये :

१—उर्वरक, कीटनाशक रसायन, सुधरी नस्ल के पशु एवं उत्तम किस्म के बीज, खेती के उपयुक्त उपकरण, प्रशिक्षण और विस्तार-सेवा कार्यक्रम सुलभ करके तथा उन सभी अन्य उपायों को अपना कर, जो उद्योग-प्रधान राष्ट्रों में खाद्योत्पादन की सफलता के लिए उत्तरदायी हैं, प्रोटीन के परम्परागत वानस्पतिक, जैव एवं मत्स्य स्रोतों के उत्पादन में वृद्धि।

२—परिवार के आकार को सीमित करने के लिए साधनों का विकास और प्रभावकारी प्रयोग।

३—खाद्य-पदार्थों की रोकी जा सकने वाली बर्बादी, जिसकी मात्रा कई विकासोन्मुख देशों में उत्पन्न

खाद्य-पदार्थों के २५ प्रतिशत से भी अधिक होती है, उसे कम करने के लिए साधनों और प्रयासों का व्यापक प्रयोग। यह विवेकपूर्ण नहीं होगा कि हम अपना प्रयास केवल अधिक खाद्य-पदार्थ उत्पन्न करने पर केन्द्रित करें, और सड़ांध, कीड़े-मकोड़ों, चूहों, पक्षियों और कहीं-कहीं, बन्दरों द्वारा खाद्य की उस बर्बादी को, जिसे रोका जा सकता है, कम करने की ओर ध्यान न दें।

अनाजों की नस्ल या किस्म में सुधारात्मक परिवर्तन प्रोटीन के गुणात्मक सुधार का अत्यन्त सम्भावनापूर्ण उपाय है। मक्के के विषय में ऐसा किया भी जा चुका है। अब सोरगम, बाजरा, छोटे दानों वाले अन्य अनाजों तथा गेहूँ की नस्लों में भी इस प्रकार के सुधार के उपाय ढूँढ़ने की दिशा में प्रयास होने चाहिये। इसके अतिरिक्त, चावल में, जिसमें उच्चकोटि का प्रोटीन पहले ही से विद्यमान है, निहित प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाने के लिए भी कदम उठाने होंगे। यदि विश्व के पोषक तत्व सम्बन्धी संकट को हल करना है, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रोटीन के परम्परागत स्रोतों की कमी को नवीन या अपराम्परागत स्रोतों द्वारा पूरा किया जाय। उदाहरण के लिए।

तेलहनी आहार : सुदूर-पूर्व में प्रतिवर्ष सोयबीन के लगभग ८० लाख टन खमीरी या पकाये गये पदार्थों का उपभोग किया जाता है। उसके अतिरिक्त, विश्व के विभिन्न भागों में खाने के लिए लगभग ३० लाख टन मूँगफली, नारियल, तथा अन्य तेलहनों का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य के आहार में शेष ६ करोड़ टन तेलहनों का किसी भी प्रकार प्रयोग नहीं होता।

तेल निकालने के लिए सोयबीन, मूँगफली, बिनौला, सूर्यमुखी फूल के बीज तथा अन्य तेलहनों को शोधित करने के बाद, जो खली शेष रह जाती है, उसमें मनुष्य के आहार के लिए सर्वथा उपयुक्त ४० से लेकर ५० प्रतिशत तक अच्छी किस्म का प्रोटीन पाया जाता है। खाने के लिए प्रयुक्त अनाजों के साथ मिला देने पर वह विशेष रूप से उपयुक्त आहार बन जाता है।

साधारण प्रकार के सस्ते, व्यापारिक दृष्टि से सफल, प्रोटीनयुक्त खाद्य मिश्रण—जैसे इन्कापेरिका या प्रो-न्यूट्रो अथवा हांगकांग के विटासोय—के लिए उपयुक्त तेलहनी आहार, वर्तमान प्रौद्योग द्वारा ही आसानी से तैयार हो सकता है। चीन लोकतन्त्र (ताइवान) में बच्चों के लिए उपयुक्त वसायुक्त शोधित सोयबीन का सफल परीक्षण हो चुका है।

उपलब्ध मात्रा और लागत की दृष्टि से, इस समय मानवीय उपयोग के लिए प्रोटीन के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत तेलहनी आहार हैं।

तेलहनों से पृथक्कृत प्रोटीन : कई देशों में प्रोटीन का सत तैयार करने के लिए तेलहनी आहारों से अधिक शुद्ध रूप में प्रोटीन पृथक करने की व्यवहार्यता का प्रदर्शन हो चुका है। भारत में मूँगफली के सत्व का प्रयोग करके व्यापारिक स्तर पर भैंस का टोण्ड दूध सफलतापूर्वक तैयार किया गया है। इस दूध में गाय के साधारण दूध की अपेक्षा दूनी वसा पायी जाती है। यदि उसमें कुछ और प्रोटीन तथा पानी मिला दिया जाय तो वह और भी पौष्टिक हो सकता है।

मत्स्य प्रोटीन : मछली के प्रोटीन का सत्व प्रोटीन का एक स्थायी रूप है जिसे बच्चों को भी खिलाया जा सकता है। उसमें लगभग ८० प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। मछली के प्रोटीन सत्व तैयार करने की अनेक विधियाँ हैं। यह सत्व बहुत ही रुचिकर, मनुष्य के लिए अहानिकारक, पौष्टिक तथा सस्ता होता है। इस प्रकार की दो विधियों को अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन द्वारा स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है।

एक-कोषीय प्रोटीन : खमीर के एकाकी कोष से उत्पन्न प्रोटीन और अन्य पौधों और पशुओं के प्रोटीन में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि एक-कोषीय प्रोटीन मनुष्य और पशुओं के लिए उपयुक्त होता है।

[शेष पृष्ठ २६ पर

डा० आत्मा राम

उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद में १२ अक्टूबर १९०८ को जन्म लेकर, बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि का परिचय देने वाले आत्माराम जी हाई स्कूल तक विज्ञान के विद्यार्थी नहीं थे। अपने गुरु श्री फूलदेव सहाय वर्मा के आदेश पर इन्होंने इण्टर में विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया। २३ वर्ष की आयु में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में एम० एस-सी० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की और फिर ५ वर्षों तक शोध-करके यहीं से डी० एस-सी० की उपाधि भी ग्रहण की। इन्होंने यह शोधकार्य डा० नीलरत्न धर के निर्देशन में 'ऊपरी वायुमण्डल में फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति' नाम विषय पर किया।

डाक्टरेट प्राप्त करते ही आत्माराम जी ने भारतीय औद्योगिक ब्यूरो में प्रवेश किया और पेट्रोल में अग्नि-काण्ड रोकने के लिये वायु झाग विलयनों का विस्मय-कारी अन्वेषण किया। बाद में जब यह ब्यूरो वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद में रूपान्तरित हो गया तो अपनी योग्यता के कारण १९४५ ई० में इन्हें कलकत्ता में काँच तथा सेरैमिक अनुसंधान संस्थान स्थापित करने का कार्य भार सौंपा गया। प्रारम्भ में ये इसके मंत्रीपद पर कार्य करते रहे किन्तु १९५२ में इसके निदेशक बना दिये गये। यहाँ पर इन्होंने १४ वर्षों तक कार्य किया। इनके कार्यकाल में काँच तथा सेरैमिक अनुसन्धान संस्थान में अनेक नवीन अन्वेषण हुये जिसके कारण औद्योगिक अनुसन्धान क्षेत्र में भारत का सिर ऊँचा हो सका है।

डा० आत्माराम की ख्याति एवं प्रबन्ध-कुशलता को देखते हुये उन्हें २२ अगस्त, १९६६ को वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद का महानिदेशक नियुक्त किया गया। इसके साथ ही वे शिक्षा मंत्रालय के विज्ञान-विभाग के सचिव पद को भी सुशोभित कर रहे हैं।

५५वें साइंस काँग्रेस का अध्यक्ष चुनकर वैज्ञानिकों ने आपका यथोचित सम्मान किया है।

डा० आत्माराम अत्यन्त हँसमुख और भारतीयता के प्रतीक हैं। उनकी सादी वेषभूषा के साथ गाँधी टोपी धारण किये हुये प्रथम दृष्टि पर उनके राजनीतिक नेता होने का भ्रम हो सकता है। वे हिन्दी के प्रबल समर्थक एवं भारतीय वैज्ञानिक प्रतिभाओं के प्रशंसक हैं।

डा० आत्माराम ने काँच तथा सेरैमिक उद्योग क्षेत्र में जो प्रशंसनीय कार्य किये हैं उनमें रंगीन काँच, सरैमिक, इनैमेल, पोर्सलीन आदि के उत्पादन में दक्षता एवं भारत में उनके व्यापारिक उत्पादन के प्रयास प्रमुख हैं।

इन्होंने अब तक लगभग ७० शोध निबन्ध प्रकाशित किये हैं और 'रसायन का इतिहास' नामक पुस्तक लिखी है।

डा० आत्माराम अनेकानेक वैज्ञानिक संस्थाओं के सम्मानित सदस्य हैं। नेशनल इंस्टीच्यूट आफ साइंस, (इंडिया), इंस्टीच्यूशन आफ केमिस्ट्स (इंडिया), इंटरनेशनल एकेडमी आफ सैरैमिक्स, सोसायटी आफ ग्लास टेक्नालाजी शेफील्ड (यू० के०) ने आपको सम्मानित सदस्य मनोनीत किया है।

लेनिनग्राद विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर आफ टेक्नालाजी की मानद उपाधि से विभूषित किया है।

उत्तर प्रदेश की साइंटिफिक रिसर्च कमेटी ने आपकी वैज्ञानिक सेवाओं के उपलक्ष में स्वर्णपदक प्रदान किया। इसके ये प्रथम विजेता हैं।

इन्हें १९५९ ई० में शान्ति स्वरूप भटनागर

पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। प्रारतीय वैज्ञानिकों के लिये यह सर्वोत्तम पुरस्कार है।

बड़ौदा विश्वविद्यालय ने भी आपको नायक स्वर्ण-पदक प्रदान किया है। भारत सरकार ने १९५९ ई० में आपको 'पद्म श्री' द्वारा सम्मानित किया है।

आप चार वर्षों, १९६२-६६, तक साइंस कांग्रेस के सचिव रह चुके हैं। १९६५ से आप नेशनल इंस्टीच्यूट आफ साइंसेज (इंडिया) के उपाध्यक्ष हैं।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग के आप आजीवन सभ्य हैं और उसकी गतिविधियों में सदैव रुचि लेते रहें हैं। विज्ञान परिषद अनुसन्धान गोष्ठी के आप अध्यक्ष रह चुके हैं।

उन भारतीय वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में जो विदेशों में कार्य कर रहे हैं डा० आत्माराम का अभिमत है कि भारत देश उनके लिये समुचित साधन न जुटा सकने के कारण उन्हें देश में वापस बुलाने के पक्ष में नहीं है। वे मूलभूत अनुसन्धानों को प्रोत्साहन देने के साथ ही देश में औद्योगिक विज्ञान की प्रगति के लिये सतत् उद्योगशील हैं।

देश के वैज्ञानिकों को आपकी कार्य निष्ठा एवं स्पष्ट नीति से बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

'प्रोफेसर नीलरत्न धर के सोहार्द्रपूर्ण निर्देशन में विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के बाद मैं प्रो० मेघनाद साहा से अभिभूत हुआ। मुझे उनके साथ राष्ट्रीय योजना समिति में कार्य करने का सौभाग्य मिला। विगत वर्षों में डा० शान्ति स्वरूप भटनागर ने विज्ञान संस्थानों का विशेष आयोजन किया और उन्हें कार्यान्वित किया। मैं १५ वर्षों तक उनका सहयोगी रहा। बाद में मैं योजना सम्बन्धी मामलों में प्रो० प्रशान्तचन्द्र महालनोबिस के सम्पर्क में आया। मैं अपने इस अनुभव से विकास के लिये आयोजन की आवश्यकता में बहुत अधिक विश्वास करने लगा हूँ।'

'मैं वैज्ञानिक को उसके काम में पूर्ण स्वतन्त्रता देने का समर्थक हूँ, मैंने एक रिसर्च अस्टिेन्ट के रूप में अपना वैज्ञानिक जीवन आरम्भ किया और तब से वैज्ञानिक समस्याओं को अपनी इच्छानुसार सुलझाने में मेरे सामने कोई बाधा नहीं आई। इसी को मैं बौद्धिक स्वतन्त्रता मानता हूँ।''

'जहाँ तक प्रतिभा निष्क्रमण (ब्रेन ड्रेन) की बात है इस पर सारे संसार में चर्चा होती आई है। मैंने भी अपने विचार रखे हैं और उनका जो अर्थ लगाया गया है उनसे मुझे आश्चर्य होता है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि मैं 'साइंटिस्ट पूल' बन्द कर रहा हूँ। यह कहना सर्वथा गलत है।'

● ५५वें साइंस कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण से उद्धृत

विज्ञान वार्ता

१. धुरी पर चक्कर काटनेवाली पृथ्वी

पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर क्यों काटती है ?

इस पहेली को सुलझाने के लिए अमेरिका, सोवियत संघ, जापान और इटली के खगोलशास्त्री ६७ वर्षों से आँकड़े एकत्र करते आ रहे हैं। अभी तक पृथ्वी के चक्कर काटने के कारण के सम्बन्ध में कोई सामान्य मतैक्य स्थापित नहीं हुआ है किन्तु वैज्ञानिक सूचनाएँ एकत्र करते जा रहे हैं। उन्हें आशा है कि इससे उन्हें उत्तर का संकेत अवश्य प्राप्त हो जायेगा।

पृथ्वी अपनी उत्तर-दक्षिण धुरी पर १४ महीने की अवधि में ७२ फुट, या एक महीने में लगभग ५ फुट अथवा एक दिन में लगभग २ इंच घूमती है। हो सकता है कि देखने में यह बहुत अधिक प्रतीत न हो किन्तु वैज्ञानिक इसके कारणों और प्रभावों का पता लगाने में अभी तक असमर्थ रहे हैं।

पृथ्वी की धुरी भौगोलिक उत्तरी ध्रुव की चारों ओर प्राय: वृत्ताकार गति से टेढ़े-मेढ़े घूमती है। वैज्ञानिक सबसे पहले इस बात का निर्धारण करना चाहते हैं कि चक्कर काटने की इस क्रिया में कोई एकरूपता भी है या नहीं। यदि वे इसका निश्चय कर लें, तो उसके कारणों का पता लगाना भी सम्भव हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में कई मान्यताएँ प्रचलित हैं। कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि चक्कर काटने की क्रिया ध्रुव-प्रदेशों पर आच्छादित हिमावरण के पिघलने के कारण उत्पन्न होती है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों का मत है कि इसका कारण पृथ्वी के स्थलीय पिण्ड का असमान होना अथवा महासागरों की गतिमानता है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि कारणों का सही-सही पता लग जाने से पृथ्वी की संरचना के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है और हिम युगों की व्याख्या की जा सकती है। इतना ही नहीं, इससे सम्भवत: इस बात का भी संकेत मिल सकता है कि सृष्टि किस दिशा में खिसक रही है।

पृथ्वी की असमान दैनिक गति बहुत थोड़ी होती है, किन्तु नक्षत्रों के पर्यवेक्षण द्वारा इसका ठीक-ठीक माप हो सकता है। अत: हर रात उत्तरी गोलार्द्ध में ५ स्थानों पर स्थापित केन्द्रों पर खगोलशास्त्री दूरवीक्षण यन्त्रों द्वारा ब्रह्माण्ड का पर्यवेक्षण करते हैं। ये केन्द्र अमेरिका में गैदर्सबर्ग और ऊकिया में; सोवियत संघ में समरकन्द के निकट किताब में; इटली में कार्लोफोर्टे नामक स्थान पर; तथा जापान के मिजूसावा नगर में स्थापित हैं। यह कार्यक्रम सन् १६०० में प्रारम्भ हुआ और इसका नाम है : 'अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुव प्रदेशीय गति सेवा'।

२. भूकम्पों की भविष्यवाणी

सम्भव है कि किसी दिन वैज्ञानिक भूकम्पों की सही-सही भविष्यवाणी करने में समर्थ हो जायें। इस समय तो वे अधिक से अधिक इस आशा के साथ केवल उनका अध्ययन कर सकते हैं कि अधिक जानकारी द्वारा एक प्रभावकारी चेतावनी-प्रणाली विकसित हो सकती है। इस लक्ष्य को दृष्टिगत रख कर, एक विश्वव्यापी भूकम्प-अंकन संजाल की स्थापना की गयी है, जिसके लिए वित्त की व्यवस्था अधिकांशतः अमेरिका ने की है। इस संजाल द्वारा पहली बार विश्व भर के भूकम्पन सम्बन्धी प्रमाणित रिपोर्टें उपलब्ध होने लगी हैं।

इस संजाल के अन्तर्गत, प्रत्येक महाद्वीप और कई द्वीपों पर स्थापित टोहक केन्द्र सम्मिलित हैं। प्रत्येक केन्द्र पर अमेरिकी समुद्र तट एवं भूमण्डलीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा एक भूकम्प-मापक यन्त्र स्थापित है, जो

भूकम्प के धक्कों और गतियों को अंकित करता है। सभी भूकम्प-मापक यन्त्र एक जैसे हैं, जिसके कारण आंकड़ों में भी एकरूपता पायी जाती है। इनमें से प्रत्येक यन्त्र की लागत २५ हजार डालर है और उसे अमेरिका ने प्रदान किया। इसके बदले सहयोग प्रदान करनेवाले देशों ने उपयुक्त सुविधाएँ और केन्द्रों पर कार्य करने वाले कर्मचारी प्रदान किये।

वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत भूकम्प सम्बन्धी सभी अभिलेख एक केन्द्रीय कार्यालय को भेज दिये जाते हैं। यह केन्द्रीय कार्यालय है : अमेरिकी वाणिज्य विभाग के वायुमण्डलीय विज्ञान सेवा प्रशासन का ऐशविल, नार्थ कैरोलाइना स्थित राष्ट्रीय भू-भौतिकी आँकड़ा केन्द्र। यह केन्द्र विश्व भर के भूकम्प-वैज्ञानिकों को समरूपी आँकड़े सुलभ करता है।

पहले विश्वव्यापी भूकम्प अनुसन्धान में संलग्न वैज्ञानिकों को सैकड़ों असम्बद्ध केन्द्र से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता था। उन्हें कभी भी इस बात का पक्का विश्वास नहीं होता था कि उन्हें सभी वांछनीय आंकड़े उपलब्ध हो जायेंगे। विभिन्न प्रकार के भूकम्प-अंकन-यन्त्रों से प्राप्त होने के कारण कभी-कभी इन आंकड़ों की तुलना नहीं हो सकती थी।

अधिकांश भूकम्प एक विशाल वक्र-रेखा पर आते हैं, जो दक्षिण प्रशान्त से निकल कर इण्डोनेशिया और फिलिपीन से होती हुई एशिया के समुद्र तट और जापान तक फैली हुई है। वहाँ से वह अलास्का के अल्यूशियन-शृंखला से गुजरती हुई, अमेरिका के प्रशान्त महासागरी तट से होकर दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर तक जाती है। भूकम्प के अन्य क्षेत्र हैं एशिया का हिमालय वाला भाग और तुर्की।

३. गैसों में रहस्यमय ऐंठन

गैसों में एक रहस्यपूर्ण ऐंठन वाली शक्ति के अस्तित्व का पता लगा है, जिसने वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित कर दिया है।

यह खोज तीन अमेरिकी भौतिक वैज्ञानिकों द्वारा की गयी है। ऐसा समझा जाता है कि यह एक अपूर्व भौतिक प्रभाव सिद्ध होगी। हो सकता है कि इससे तत्व की प्रकृति के विषय में नई जानकारी प्राप्त हो।

भौतिक वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि गैस के व्यूहाणुओं द्वारा सूत से लटकता हुआ एक अचुम्बकीय धात्विक छड़ एक कमजोर चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति में अंशतः मुड़ सकता है।

सबसे रहस्यपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने देखा कि कुछ गैसें — जैसे नाइट्रोजन और आक्सीजन—छड़ को एक ओर ऐंठती हैं; अन्य गैसें, जैसे प्रोपेन और मीथेन, उस छड़ को विपरीत दिशा में ऐंठती हैं; जबकि हिलियम और अमोनिया जैसी कुछ दूसरी गैसों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

उन्होंने जिस ऐंठन-शक्ति की खोज की, उसकी मात्रा अत्यन्त न्यून है, और अभी तक इस बात की कोई जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकी है कि इसका कोई व्यावहारिक उपयोग है या नहीं, फिर भी, इस खोज की सहायता से वैज्ञानिक नये ढंग पर इस बात का अध्ययन कर सकते हैं कि गैस के व्यूहाणु एक दूसरे के साथ तथा ठोस सतहों के साथ किस प्रकार टकराते हैं।

स्पष्टतः, विभिन्न गैसों के भिन्न-भिन्न प्रभाव चुम्बकीय क्षेत्र तथा छड़ से टकराते समय व्यूहाणुओं के स्वरूप के कारण व्यूहाणुओं के क्रम में उत्पन्न आंशिक परिवर्तन से सम्बद्ध हैं। इस बात की खोज हो रही है कि यह क्रिया क्यों और कैसे सम्पन्न होती है।

४. अमेरिका में चान्द्र-प्रयोगशाला स्थापित

ह्यूस्टन, टैक्सास, में एक अपूर्व प्रयोगशाला की स्थापना हुई है, जहाँ चन्द्रतल की मिट्टी के नमूनों की, जो कुछ ही वर्षों में अमेरिकी अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा पृथ्वी पर लाये जायेंगे, जाँच की जायेगी।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) के समानव अन्तरिक्ष-यान केन्द्र पर इसका निर्माण हुआ है। इसका नाम ल्यूनर रिसीविंग लैबो-

रेटरी है। इसने सीमित पैमाने पर कार्य प्रारम्भ भी कर दिया है।

इस तीन-मंजिला प्रयोगशाला का निर्माण निम्न-लिखित उद्देश्यों के लिए किया गया है :

१—चन्द्रतल से प्राप्त नमूनों, अन्तरिक्ष-यान और चालकों में निहित सम्भाव्य हानिकारक जीवाणुओं को लगभग ३० दिन तक बाहरी प्रभावों से निरुद्ध रखना और उनकी जाँच करना।

२—उन आवश्यक वैज्ञानिक अनुसन्धानों को पूरा करना, जो निरोध की अवधि में अनिवार्य रूप से सम्पन्न हो जाने चाहिये।

३—चन्द्रतल से प्राप्त नमूनों को पुनः बाँध कर उन चुने-चुनाये वैज्ञानिकों के पास भेजना, जो निरोध की अवधि के बाद उनका विश्लेषण करने में रुचि रखते हों।

प्रारम्भिक जाँच-पड़ताल के बाद, अमेरिका तथा ६ अन्य देशों के ११० वैज्ञानिक चार प्रमुख क्षेत्रों में १२२ प्रयोग करेंगे। ये क्षेत्र हैं—खनिज विज्ञान और तैल विज्ञान, रासायनिक और आइसोटोप विश्लेषण, भौतिक विशेषताएँ, तथा जीव-रासायनिक और जैव विश्लेषण।

प्रशान्त महासागर के मुख्य पुनर्ग्रहण जलयान पर से अपोलो अन्तरिक्ष-यान को हटाने के बाद तीनों अन्त-रिक्ष-यात्री एक इमारत जैसी विशेष गाड़ी में जिसकी ऊँचाई ३५ फुट होगी, प्रवेश करेंगे। उन्हें हटाने के लिए प्लास्टिक की बन्द सुरंग का प्रयोग किया जायेगा। जब जहाज रुकेगा, तो सचल वाहन को हटाकर प्रयोग-शाला में पहुँचा दिया जायेगा, जहाँ अन्तरिक्ष-यात्री निरोध की अवधि में रखे जायेंगे।

मुहरबन्द अन्तरिक्ष यान को बन्दरगाह से विमान द्वारा या गाड़ी से हटाकर अलग बने हुए निरोधित क्षेत्र में पहुँचा दिया जायेगा, जो चालकों के स्थान से सटा हुआ होगा। चन्द्रतल के नमूनों, फोटोग्राफी की फिल्मों, टेपों तथा उड़ान सम्बन्धी अन्य वस्तुओं को विमान द्वारा सीधे प्रयोगशाला में पहुँचा दिया जायेगा।

नमूना-विश्लेषण क्षेत्र में चान्द्र सामग्रियों का विश्ले-षण किया जायेगा। इसके अन्तर्गत, वैकूम, चुम्बकीय उपकरण, गैस-विश्लेषण, जीव वैज्ञानिक परीक्षण, विकिरण-जाँच तथा भौतिक रासायनिक परीक्षण संबंधी प्रयोगशालाएँ शामिल हैं।

चालक के निवासस्थान और नमूना-विश्लेषण क्षेत्र को जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से पृथक रखा जायेगा, ताकि पृथ्वी के प्रभावों से उनमें विकार उत्पन्न न होने पाये। साथ ही चान्द्र-सामग्रियों से बाहरी जगत भी विकृत नहीं होने पायेगा।

वैज्ञानिक जाँच का एक प्रमुख उद्देश्य इस बात का निर्धारण करना होगा कि चान्द्र सामग्रियों में कोई ऐसा जीवाणु तो नहीं, जो पुनर्जनन कर सके। इसके लिए चन्द्रतल के नमूनों को छोटे-छोटे जीवाणुरहित पौधों और जीवों पर प्रयुक्त किया जायेगा।

चान्द्र-सामग्रियों के कुछ अन्य जटिल परीक्षण भी किये जायेंगे। और जब यह कार्य पूरा हो जायेगा, तो निश्चय ही चन्द्रमा के उद्भव तथा पृथ्वी और सूर्य से उसके विकास-सम्बन्धों के विषय में हमारी जानकारी बहुत बढ़ जायेगी।

दिल की बात नहीं दिल देने की बात

दक्षिणी अफ्रीका के केपटाउन शहर के ५३ वर्षीय प्रोफेसर क्रिस बर्नार्ड ने हाल ही में जिन दो व्यक्तियों के हृदयों को निकाल कर उनके स्थान पर सद्यः मृत व्यक्तियों के हृदयों को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है उससे यह आशा बँधने लगी है कि भविष्य में "हृदय-गति" के बन्द होने पर विजय प्राप्त की जा सकेगी।

अभी तक "दो दिलों की बातें ही सुनी जाती थीं" अब दो दिलों का वास्तविक आदान-प्रदान होने लगेगा।

प्रथम व्यक्ति जिन्हें "नया हृदय" देकर १८ दिनों तक जीवित रखा गया वे हैं वाशांस्की जो दक्षिणी अफ्रीका के धनी व्यक्ति थे। इन्हें एक युवती का हृदय लगाया गया। दुर्भाग्यवश १८ दिनों बाद इनकी मृत्यु

हो गई और इन्हें हृदयविहीन करके दफनाया गया। दूसरे व्यक्ति हैं दंत-चिकित्सक ब्लैबर्ग। इन्हें एक "काले मानव" का हृदय लगाया गया। ये पूर्ण स्वस्थ हैं और ऐसा विश्वास है कि शायद ये खतरे को पार कर चुके हैं।

इसी बीच अमरीका में वह व्यक्ति जिसे हृदय लगाया था मर गया है। इससे डा० बर्नार्डं की अत्यन्त कार्यकुशलता की ओर विश्व भर के चिकित्सकों की निगाहें खिची हैं।

फ्रांस, इंगलैंड तथा रूस के चिकित्सकों को बर्नार्डं की यह "नवीन उपलब्धि" रुचिकर नहीं लगी। वे इसे धन कमाने वाली, मानव पर अपरिपक्व प्रणाली का प्रयोग, नैतिक दृष्टि से अवांछनीय बताते हैं।

कुछ भी हो अब मनुष्य हृदय के रोगों से मरने से बचाये जा सकेंगे और बिना भेदभाव के हृदयों का आदान-प्रदान हो सकेगा।

चिकित्सा-जगत की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक स्तुत्य विधि है जिनके जनक हैं अफ्रीका के डा० बर्नार्डं।

६. कोयना का भूकम्प

डा० भगवन्तम ने भूगर्भ वैज्ञानिकों को जो चेतावनी दी है उससे यह स्पष्ट हो गया है कि अभी भारत में सम्भावित भूकम्पों को ठीक-ठीक पूर्वानुमान नहीं हो पाया है।

११ दिसम्बर की प्रातः महाराष्ट्र के कोयना नगर में जो भूकम्प आया उससे नागरिकों की सम्पत्ति एवं जानों की जो भी क्षति पहुँची है वह अकथनीय तो है ही किन्तु साथ ही कोयना स्थित बिजलीघर तथा बाँध के बाल-बाल बच जाने की घटना भी कम विस्मयकारी नहीं है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कोयना नगर का यह भूकम्प एक सौ अणुबमों के विस्फोट की ध्वंसशक्ति के तुल्य रहा होगा किन्तु उसके धक्कों को बाँध ने सह लिया, जिससे यह लक्षित होता है कि बाँध के निर्माण में अत्यधिक निपुणता अपनाई गई थी।

वैज्ञानिकों का यह भी अनुमान है कि कोयना का भूकम्प बाँध में संचित अपार जल-राशि के भार के कारण था। नगर के ध्वंस होने तथा बाँध के बच जाने का रहस्य यही प्रतीत होता है कि जलराशि में ऊर्मियों के उठने के कारण भूकम्प का धक्का निरस्त हो गया होगा।

जो भी हो, कोयना के भूकम्प ने भूगर्भ वैज्ञानिकों को सचेत कर दिया है कि वे भूकम्प पेटियों की जाँच करके बाँधों के निर्माण के समय समुचित परामर्श दें अन्यथा राष्ट्रीय सम्पत्ति की अकथनीय क्षति की सम्भावना बनी रहेगी।

[पृष्ठ २३ का शेषांश]

प्रोटीन के स्रोत के रूप में सूक्ष्म जीवों की विशेषता यह है कि वे शीघ्रता से बढ़ते हैं और सस्ती ऊर्जा और नाइट्रोजन को उच्चकोटि के प्रोटीन में आसानी से परिवर्तित कर देते हैं। ये सूक्ष्म जीव पेट्रोलियम के अवशेषों, प्राकृतिक गैस या सब्जियों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

एक-कोषीय जीवों से प्राप्त प्रोटीन का एक गुण यह है कि उसके उत्पादन के लिए खेतीवाली भूमि या कृषि-जन्य पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती।

कृत्रिम खाद्य पदार्थ : सभी अनिवार्य एमिनो-अम्ल रासायनिक दृष्टि से शुद्ध रूप में उपलब्ध हैं यद्यपि उनमें से कुछ के उत्पादन की लागत बहुत अधिक होती है। प्राविधिक दृष्टि से इन एमिनो-अम्लों को सम्मिश्रित करके रुचिकर कृत्रिम खाद्य पदार्थ तैयार करना सम्भव है। इनसे मनुष्य को पर्याप्त प्रोटीन उपलब्ध होगा, भले ही इस समय उनकी लागत अत्यधिक ऊँची होगी।

मनुष्य के लिए आवश्यक विटामिन और खनिज रासायनिक दृष्टि से शुद्ध रूप में और कम लागत पर उपलब्ध हैं। आशा है कि कृत्रिम आहार तैयार करने की विधियों का और अधिक विकास होने पर लागत घटेगी। निस्सन्देह, परम्परागत स्रोतों से विश्व की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त प्रोटीन प्राप्त नहीं हो सकता। अतः जीवन-पोषक प्रोटीन के नये स्रोतों का पता लगाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रभाषा विधेयक का संशोधन

संसद ने राष्ट्रभाषा विधेयक में जिस उद्देश्य को लेकर संशोधन किये वह मूलतः भले ही दक्षिण भारत-वासियों के हित में रहा हो किन्तु दक्षिण भारत में (विशेषतः मैसूर में) जो हिन्दी विरोधी प्रदर्शन हो रहे हैं वे सामान्यजनों को न केवल उद्विग्न बनाने वाले हैं वरन् इतने विप्लवकारी प्रतीत होते हैं कि सहसा 'राष्ट्र-भाषा' का स्वरूप बिगड़ता सा दृष्टिगोचर होने लगता है।

मद्रास सदैव से हिन्दी का विरोधी रहा है। दक्षिण भारत में होने वाले भाषा सम्बन्धी उपद्रवों के मूल में उसी का हाथ भी रहा है। इस बार मद्रास के मुख्य मन्त्री अन्नादुरै ने यह घोषित करके उत्तरी भारत को सचेत किया है कि यदि एन० सी० सी० से हिन्दी नहीं समाप्त की जाती तो वहाँ एन० सी० सी० ही बन्द कर दी जावेगी। वस्तुतः यह चुनौती है केन्द्रीय सरकार को और समस्त भारतवासियों को जिन्होंने वर्षों पूर्व हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था।

राजनैतिक दृष्टि से सरकार क्या करती है इसका महत्व चाहे कुछ भी हो किन्तु शैक्षणिक दृष्टि से इसका महत्व अत्यधिक है। एक बार फिर सारे देश में लहर सी फैल गई है कि अंग्रेजी का परित्याग सोच-विचार कर करना चाहिए। दूसरी ओर राजनीतिक नेता समस्त क्षेत्रों में हिन्दी के प्रवेश की बात करते सुने जाते हैं। अतः यह आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

यदि स्वतन्त्र भारत को आत्म-निर्भर होना है, यदि उसे राष्ट्रीयता की आकांक्षा है, यदि उसे अपने नागरिकों को मुक्त होकर सोचने देना है तो उसे हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में समादृत करना ही होगा। यह कार्य जितनी ही जल्दी होगा उतनी ही जल्दी हमारा राष्ट्र प्रगति की ओर उन्मुख हो सकेगा।

बिना अपनी भाषा के सारा राष्ट्र मूक बना रहेगा।

इंजीनियरों का भविष्य

इस समय देश भर के इंजीनियर-स्नातकों में जो असन्तोष व्याप्त है उसकी अभिव्यक्ति कभी दीक्षान्त समारोहों के अवसरों पर अथवा हड़तालों के रूप में देखी जाती है। इसी गम्भीर समस्या को लेकर रुड़की विश्वविद्यालय अनन्त काल के लिये बन्द कर दिया गया है।

प्रश्न यह है कि क्या देश के कर्णधार नेताओं को इस समस्या के प्रति रुचि ही नहीं है, या इसका कोई इलाज नहीं मिल रहा ? क्या पंचवर्षीय योजनाओं को तैयार करते समय अधिकाधिक डाक्टरों एवं इंजीनियरों के उत्पन्न करने की बात मात्र-अदूरदर्शिता ही थी ?

स्पष्ट है कि प्रोद्योगिक शिक्षण एवं आयोजना शत-प्रतिशत भ्रामक है। आवश्यकता और पूर्ति के मध्य सन्तुलन न बनाये रखना कहाँ की होशियारी है!

अभी तक शिक्षित बेकारों की संख्या ही उग्र समस्या का रूप धारण किये थी। अब तो प्रशिक्षित इंजीनियरों एवं डाक्टरों की बेकारी का युग है।

काश, कि वैज्ञानिक साधनों का ऐसा दुरुपयोग न किया जाता।

फार्म ४

(अधिनियम 8)

१. प्रकाशन का स्थान	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
२. प्रकाशन की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	श्री सरयू प्रसाद पाण्डे
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद
४. प्रकाशक का नाम	डा० हीरा लाल निगम
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	रसायन विभाग, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी, इलाहाबाद
५. सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	२५ अशोकनगर, इलाहाबाद—१
६. पत्रिका का स्वामित्व	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद—२

मैं, डा० हीरा लाल निगम, घोषित करता हूँ कि ऊपरलिखित विबरण मेरे अनुसार सत्य है ।

ह० हीरा लाल निगम

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—डा० हीरा लाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | चैत्र-बैशाख २०२५ विक्र०, १८६० शक अप्रैल-मई १६६८ | संख्या ४-५

पृथ्वी पर जीवन का विकास

● डा० बालगोविन्द जायसवाल

यह पृथ्वी सौर-मंडल का एक ग्रह है। इसकी आयु, वैज्ञानिक अनुमानों के आधार पर लगभग साढ़े तीन अरब वर्ष हो चुकी है। ये अनुमान चट्टानों की अवसादन दरों तथा चट्टानों में रेडियोऐक्टिव यूरेनियम के साथ-साथ पाए गए, उसके अन्तिम विघटन उत्पाद, सीसा, के अनुपात पर आधारित हैं।

पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ किस प्रकार, किस रूप में हुआ तथा वह जीवन, विकसित होकर आज के रूप में—मानव युग में—किन प्रकार आया? ये प्रश्न तथा इनके उत्तर मनोरंजक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी हैं। परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व 'पृथ्वी स्वयं कैसे उत्पन्न हुई?' इस संबंध में दो शब्द कह देना उचित है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि विश्व का प्रारंभ लगभग पाँच अरब वर्ष पूर्व संपीड़ित गैस के अत्यधिक उष्ण द्रव्यमान के रूप में हुआ होगा। तब यह गैसीय द्रव्यमान शीघ्रता से प्रसरित हुआ तथा इस प्रसरण के फलस्वरूप शीतल होने लगा। ऐसा माना जाता है कि गुरुत्वाकर्षण तथा अन्य बलों के कारण इस द्रव्यमान में हुए विक्षोभों के फलस्वरूप, उस प्रारंभिक द्रव्यमान में से अनेक टुकड़े पृथक हो गये। इन्हीं टुकड़ों से धीरे-धीरे नीहारिकाएँ तथा आकाश गंगाएँ उत्पन्न हुईं। इन्हीं आकाश गंगाओं में से 'दूधिया पंथ' कही जाने वाला एक आकाश गंगा है, जिसके अंतर्गत सौर-मंडल, अत: 'पृथ्वी' भी है।

पृथ्वी के शीतलन के समय अत्यधिक ऊष्मा, अति-संतृप्त वायुमंडल तथा अति तप्त भाप और पराबैंगनी प्रकाश-किरणों की संयुक्त क्रिया के फलस्वरूप 'कार्बाइड' नामक सरल रासायनिक यौगिक उत्पन्न हुए जो अन्त में हाइड्रोकार्बनों में परिणत हो गए। ऐसा माना जाता है कि इन कार्बाइडों ने अन्य रासायनिक यौगिक अमोनिया से क्रिया करके 'ऐमीनो अम्लों' को उत्पन्न किया। जीवों में प्रचुरता से पाए जाने वाले 'जीव द्रव्य' के यही मूल यौगिक हैं। ऐमीनो अम्लों तथा हाइड्रोकार्बनों के बीच उस परिस्थिति में हुई रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप ही वे जटिल अणु उत्पन्न हुए, जिन्होंने वे गुण अधिकाधिक दिखाए, जिन्हें हम जीवित पदार्थों के गुण मानते हैं। प्राचीनतम जीवन इसी प्रकार प्रारंभ हुआ। इन अणुओं तथा अणु-समूहों को 'जीवाणु' कहा जाता है। इन्हें ही 'शैवाल-कोशिका' भी कहा गया है। इनसे ही परिवर्तित तथा विकसित होकर जीवन, इन अरबों वर्षों

के पश्चात् आज के रूप में आ पाया है। करोड़ों वर्षों के युग-विशेषों में, विशेष प्रकार के जीव ही पाए जाते थे। परिवर्तन तथा विकास के फलस्वरूप जीवों की अनेक जातियाँ तो अपनी उत्पत्ति, विकास तथा चरम विकास प्राप्त कर अब तक विलुप्त भी हो चुकी हैं। अब इनके विषय में वैज्ञानिकों को सूचना, तलछटन-चट्टानों में पाए जाने वाले उनके जीवाश्मों से ही, प्राप्त होती है। पृथ्वी पर जीवन के प्रारंभ से आज तक के जीवन विकास को 'वनस्पति तथा प्राणियों का ऊर्ध्वाधर वितरण' कहा जाता है।

पृथ्वी पर **'प्राग्जीव-महाकल्प'** लगभग ९० करोड़ वर्ष तक रहा। तब पृथ्वी का अधिकांश थल जलमग्न था। इस समय जीवाणु तथा नीले हरे रंग के शैवाल ही प्रधान रूप से पाए जाते थे। इनके अतिरिक्त कवची आदिजीव, स्पंज तथा चपटे-कृमि भी पाए जाते थे। वैज्ञानिकों का मत है कि इस महाकल्प के अन्त में अपृष्ठवंशी संघों में से अधिकांश अपने व्यापक रूपों में उपस्थित थे।

इसके पश्चात् के ३५ करोड़ वर्ष का समय, **'पुराजीवी महाकल्प'** कहलाता है। इसके प्रारंभ में भी पृष्ठवंशी जीव नहीं उत्पन्न हुए थे। परन्तु इस समय के वनस्पतियों के प्रथम जीवाश्म प्राप्त होते हैं। ये मुख्य रूप से समुद्री शैवालों के हैं। पर्याप्त काल व्यतीत हो जाने पर प्रमुखता तो समुद्री शैवालों की ही रही परन्तु शैल भित्ति बनाने वाले प्रवाल भी यत्र-तत्र दिखाई देने लगे थे। कुछ और काल पश्चात्, अलवण जल की 'कंकाल वाली मछलियाँ' उत्पन्न हुई। इस महाकल्प का मध्यकाल तो **'मत्स्य-युग'** ही कहलाता है। इस समय भी अधिकांश पृथ्वी जल से ढँकी हुई थी तथा जलवायु ध्रुव प्रदेशों में भी उष्ण था। मत्स्य-युग में तारामीन, जबड़े वाली मछलियाँ तथा उनसे उपास्थियुक्त तथा अस्थियुक्त मछलियाँ विकसित हुई तथा उनमें विविधता आकर उनकी और जातियाँ विकसित हुई। इसी युग में शार्क मछलियाँ तथा फेफड़े वाली मछलियाँ उत्पन्न हुई तथा पालिपस मीन भी उत्पन्न हुई। ये मछलियाँ ही कुछ काल पश्चात् उत्पन्न हुए **'जल-स्थल चरों'** की पूर्वज मानी जाती हैं। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिकों का विचार था कि इस प्रकार की मछलियाँ ७ करोड़ वर्ष से विलुप्त हो चुकी हैं, परन्तु गत तीस वर्षों में ग्यारह 'पालिपस मीन', दक्षिणी अफ्रीका के समुद्र में जीवित पकड़ी गई हैं। अब इनका वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है।

पालिपस मीनों से कछुए, घड़ियाल जैसे "जल-स्थलचर" प्राणी विकसित हुए। तब उसके पश्चात् उनमें विविधता आई। उनकी अनेक जातियाँ अस्तित्व में आई तथा इनकी संख्या बढ़ती गई। इन्हीं में से एक प्रकार के जल-स्थल चर प्राणी का सिर कवचवाला था। कुछ काल पश्चात् पृथ्वी पर इन्हीं का आधिक्य तथा प्रभुत्व हो गया। इसके कुछ काल पश्चात् जब स्थल का पर्याप्त भाग जल से ऊपर निकल आया, तब इसी कवचशीर्ष वाले जल-स्थल-चर प्राणी से **"सरीसृप जन्तुओं"** अर्थात् रेंगने वाले जन्तुओं का विकास हुआ। जलवायु इस काल में उष्ण थी परन्तु शनैः-शनैः शीतल हो रही थी। दलदल तथा भीतरी समुद्र सूखते जा रहे थे। कई पर्वत भी इस काल में बने।

इसके पश्चात् के साढ़े बारह करोड़ वर्ष का समय **"मध्य जीवी महाकल्प"** कहलाता है। इसे ही **"सरीसृप जन्तुओं का युग"** भी कहते हैं। इस काल में प्राचीन जल-स्थल-चर प्राणी विलुप्त हो गए। रेंगने वाले जन्तुओं की संख्या तथा जातियाँ बढ़ती गई। प्रारंभ में छिपकली के समान छोटे-छोटे जन्तु उत्पन्न हुए जो मांसाहारी थे। इन्हें "डाइनोसार" कहा जाता है। इस प्रकार का एक उड़नेवाला जन्तु भी उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'टेरोसार" था। और कुछ काल व्यतीत होने पर तो समुद्र थल तथा वायु-सम्पूर्ण पृथ्वी पर सरीसृप-जन्तुओं का ही साम्राज्य हो गया। अब सरीसृप जन्तु दैत्याकार हो गए। उनकी ऊँचाई बीस-तीस फुट तक तथा कुल लम्बाई ७०-८० फुट तक की हो गई थी। कुछ समुद्री सरीसृप जन्तुओं की लम्बाई ३० फुट तक थी। कुछ उड़ने वाले सरीसृप जंतुओं का पंख फैलाव १८ फुट से

भी अधिक होता था। वे शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के थे। इसी महाकल्प के अन्त तक ये दैत्याकार सरीसृप जंतु विलुप्त हो गए। उस काल के शेष रहे प्राणियों में आज केवल "घड़ियाल", "सांप" तथा "छिपकली" हैं। चिड़ियों के पूर्वज भी इसी महाकल्प में उत्पन्न हुए।

सरीसृप जीवों में ही एक "प्राक्स्तनी" प्राणी था। इनसे "स्तनी प्राणी" उत्पन्न हुए। इस प्रकार के प्राणी (उदाहरणार्थ कंगारू) आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। इनके पश्चात् "अपरास्तनी-प्राणियों" का विकास हुआ। पहिले पहिले उत्पन्न अपरास्तनी प्राणी छोटे थे तथा कीट-कृमियों को खा कर जीवित रहते थे।

इस महाकल्प के पश्चात् के ७ करोड़ वर्ष (अब तक) का समय **"नूतन जीव महाकल्प"** कहलाता है। इसे **"स्तनचारी प्राणियों का युग"** भी कहते हैं। इस युग में अपरास्तनी प्राणियों की संख्या बढ़ी तथा उनकी जातियों में विविधता आई। आज के थलचर स्तनधारी प्राणियों के पूर्वज, ऊँट, घोड़ा, चूहा, बंदर आदि इस युग के प्रारंभ में ही उसे उपस्थित थे। जलचर स्तनचारियों में से "ह्वैल" तथा समुद्री गाय उपस्थित थीं। आधुनिक पक्षी भी उत्पन्न हुए। कुछ समय पश्चात् जलवायु शीतल होकर समशीतोष्ण हो गई। पुराने स्तनधारी प्राणी विलुप्त होने लगे तथा नवीन उत्पन्न होने लगे। कुछ काल पश्चात् जलवायु और शीतल हुआ। बन कम होने लगे। "आधुनिक स्तनधारियों" का विकास होता रहा। चरागाह फैलने लगे। दैत्याकार रीछ जैसा चौपाया, "कृपाणदन्त-सिंह" तथा एक प्रकार का बड़ा हाथी उस समय पाया जाता था। ये सब के सब आज विलुप्त हो चुके हैं। इसी समय में "मानव-शरीर" का विकास प्रारंभ हुआ। पृथ्वी की अरबों वर्षों की आयु को देखते हुए "मानव" को उसमें आए बहुत कम समय हुआ है, कदाचित् बारह घंटे की तुलना में केवल पांच मिनिट। फिर भी अपने मस्तिष्क के उपयोग द्वारा उसने पृथ्वी के अन्य जीवों व प्राकृतिक शक्तियों पर अधिकार कर लिया है। इसी कारण आज का युग, **"मानव युग"** कहलाता है।

वेदों में जिन पांच अवतारों का उल्लेख पाया जाता है, उनका क्रम, विद्वानों द्वारा समर्थित उक्त युगों का ही प्रतिनिधित्व करता है। देखिए, प्रथम दो अवतार मत्स्य तथा कूर्म हैं, जो "मत्स्य युग" तथा जलस्थलचर-युग" का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। इसके बाद के दो अवतार बाराह तथा नृसिंह हैं, जो क्रमश: "सरीसृप जंतुओं" तथा **"स्तनधारी-चौपायों"** (सिंह आदि) का प्रतिनिधित्व करते हैं। पांचवाँ अवतार "वामन" वर्णन के अनुसार ही "मानवाकार" है अतः **"मानव-युग"** का प्रतिनिधित्व करता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों की यह ज्ञान-गरिमा इसमें से प्रत्येक के लिए गौरव का विषय है।

●●

● गोरखपुर में कृत्रिम उर्वरक के कारखाने का शुभारम्भ हो जाने से उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में अच्छी उपज की आशा की जाती है। हमारे किसान भाई इस वैज्ञानिक प्रयास का पूरा-पूरा लाभ उठावें, यही वांछनीय होगा।

अतिसंवाहता
[SUPERCONDUCTIVITY]

● श्याम लाल काकानी

"कुछ शुद्ध धातुओं, यौगिकों और मिश्रधातुओं में परम शून्य ताप के ताप सीमान्तर में इलेक्ट्रानों की गति घर्षणरहित हो जाती है। इसे अतिसंवाहता कहते हैं।"

जब किसी चालक के सिरों के मध्य विभवान्तर स्थापित किया जाता है तो उसमें विद्युत धारा प्रवाहित होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जार्ज साइमन ओह्म के अनुसार अगर उस चालक की भौतिक अवस्था (ताप इत्यादि) में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं होता है तो उसमें प्रवाहित होने वाली धारा की सामर्थ्य चालक के सिरों के विभवान्तर की समानुपाती होती है। अगर किसी चालक में प्रवाहित होने वाली धारा I हो तथा उसके सिरों का विभवान्तर V हो तो ओह्म के नियमानुसार

$$\frac{I}{V} = R \text{ (नियतांक)}$$

इस निश्चित निष्पत्ति R को प्रतिरोध कहते हैं।

इलेक्ट्रान सिद्धान्त के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इलेक्ट्रान की गति से ही विद्युत धारा उत्पन्न होती है। अब प्रश्न यह सामने आता है, कि क्या प्रतिरोध को शून्य कर सकते हैं, अर्थात् इलेक्ट्रान की गति में उत्पन्न बाधाओं को दूर कर इनकी गति घर्षणरहित कर सकते हैं? दूसरे शब्दों में क्या चालक को ऐसी अवस्था में लाया जा सकता है, जब एक बार धारा प्रवाहित कराने के पश्चात् बिना किसी स्रोत की आवश्यकता के उसमें बराबर धारा प्रवाहित होती रहे?

उपर्युक्त प्रश्न का हल कमरलिङ्ग आनस (Kammerlingh Onnes) द्वारा शुद्ध पारे की चालकता सम्बन्धी परम शून्य ताप की सीमा में किए गए प्रयोगों के अध्ययन से मिलता है। प्रयोगों से स्पष्ट है कि शुद्ध पारे का ताप 4.15°K तक घटाने पर विद्युत धारा के लिए प्रतिरोध एकाएक शून्य हो जाता है। पारे की तरह शुद्ध सीसा का ताप भी 7·22° K घटाने पर इसका भी प्रतिरोध एकाएक शून्य हो जाता है।

इस क्रिया को जिसमें धातुओं, यौगिकों और मिश्रधातुओं के ताप को परम शून्य ताप की सीमा में घटाने पर प्रतिरोध एकाएक शून्य हो जाता है, वैज्ञानिक आनस के शब्दों में **अतिसंवाहता** कहते हैं। जिस ताप पर यह क्रिया उत्पन्न होती है, उसे क्रांतिक ताप (Critical Temperature) कहते हैं और इसे To द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

अतिसंवाहता अवस्था की विशेष जानकारी और उपयोगिता ज्ञात करने के लिए कई प्रयोग हो चुके हैं और आजकल यह प्रमुख अनुसन्धान का विषय बना हुआ है। प्रायोगिक परिणामों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :—

(१) शून्य प्रतिरोध (Zero-Resistance)

यदि ताप और प्रतिरोध के मध्य वक्र खींचा जाय तो यह दिखेगा कि परम शून्य ताप की सीमा में प्रतिरोध में असतत् परिवर्तन (Discontinous Change) होता है। क्रांतिक ताप पर प्रतिरोध एकाएक शून्य हो जाता है। यहाँ पर यह ध्यान में रखना

आवश्यक है कि प्रतिरोध परम एवं पूर्ण रूप से शून्य तभी होता है जब धातु अतिसंवाहता अवस्था को प्राप्त होती है। कुछ शुद्ध धातुओं के लिए संक्रमण, क्रांतिक ताप निम्नांकित प्रकार से है :—

धातु	क्रांतिक ताप	विशेष विवरण
Ru	०·5° K	(सबसे कम)
Hg	4·15° K	
Al	1·20° K	
Pb	7·22° K	
Nb	9° K	(सबसे अधिक)

(२) चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव [Effect of Magnetic field]

मिसनर (Meissner) ने सन् १९३३ में प्रयोगों के द्वारा यह ज्ञात किया कि अतिसंवाहता अवस्था में धातु पूर्णतः विषम चुम्बक (Diamagnet) एवं पूर्णतः चालक होती है। इसको **मिसनर प्रभाव** भी कहते हैं। तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र की सहायता से इस अवस्था को समाप्त किया जा सकता है। चुम्बकीय क्षेत्र के इस मान को **क्रांतिक मान** कहते हैं और इसे Hc द्वारा प्रदर्शित करते हैं। Hc ताप का फलन होता है। इसे सामान्यतः Hc (T) द्वारा अंकित करते हैं। **अतिसंवाहता अवस्था** में, जब

$$T = T_c$$

तब $H_c = 0$ होता है।

इस गुण के कारण इनको अति तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए विद्युत चुम्बकों के रूप में उपयोग नहीं कर सकते हैं।

(३) निरन्तर या आग्रही धारा (Persistent Current)

यदि किसी अतिसंवाहता तार को वृत्त के आकार में मोड़कर दोनों सिरों को जोड़ दें और अब फिर उसमें विद्युत धारा प्रवाहित करें तो प्रतिरोध न होने के कारण धारा बिना किसी स्रोत के ही निरन्तर बहती रहेगी। इसको **निरन्तर धारा प्रवाह प्रभाव** कहते हैं। प्रतिरोध की अनुपस्थिति केवल **दिष्ट या एकदिश धारा** (Direct Current) तक ही सीमित है। इस प्रभाव का महत्वपूर्ण उपयोग संगणकों (Computers) में अंकों की "स्मृति" (memory) बनाए रखने के लिए होता है।

(४) ऊष्माधारिता [Heat Capacity]

प्रयोगों से निष्कर्ष निकलता है कि धातुओं की साधारण और अतिसंवाहता अवस्थाओं की ऊष्माधारिता में बहुत अन्तर है। क्रांतिक ताप से नीचे अतिसंवाहता अवस्था से साधारण अवस्था में प्राप्त करने पर **एंट्रोपी या अव्यवस्थित स्थिति** (Entropy or state of disorder) में वृद्धि होती है। संक्षेप में **अतिसंवाहता अवस्था** अधिक व्यवस्थित (Ordered) होती है।

(५) आइसोटोप या समस्थानिक प्रभाव [Isotope effect]

सन् १९२२ में **आनस और ट्यून** ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि अतिसंवाहता अवस्था में धातुओं का क्रांतिक ताप समस्थानिक की मात्रा या संहति के साथ परिवर्तन होता है। इसको निम्नांकित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$M^{\frac{1}{2}} T_c$ = स्थिरांक जबकि M समस्थानिक की मात्रा बतलाता है।

जब एक समस्थानिक के स्थान पर दूसरा समस्थानिक प्रतिस्थापित किया जाता है तो इससे नाभिक की संहति में अवश्य परिवर्तन होता है लेकिन इलेक्ट्रानिक गुणों में कोई प्रतीयमान परिवर्तन नहीं होता है।

अति संवाहता अवस्था का धातु के प्रमुख गुणों पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे अगली सारिणी में अंकित किया गया है।

गुण	संक्रमण का प्रभाव	विशेष विवरण
१. क्रिस्टल रचना	नहीं	
२. आकृति और आकार	नहीं	
३. विद्युत तथा प्रकाशीय गुण		
(a) निरोधकता (Resistivity)	हाँ	समाप्त हो जाती है।
(b) ताप विद्युत् (Thermoelectricity)	हाँ	,, ,,
(c) प्रकाश विद्युत (Photo electricity)	नहीं	
(d) परावर्तकता (Reflectivity)	नहीं	
४. ऊष्मीय गुण [Thermal Properties]		
(a) गुप्त ऊष्मा (Latent Heat)		संक्रमण पर गुप्त ऊष्मा नहीं होती है, जब तक चुम्बकीय क्षेत्र उपस्थित नहीं हो।
(b) विशिष्ट ऊष्मा (Sp. Heat)		
(c) ऊष्मीय चालकता (Thermal conductivity)		असतत परिवर्तन
५. प्रत्यास्थता (Elasticity)		असतत परिवर्तन अगर चुम्ब-कीय क्षेत्र में हो।
६. इलेक्ट्रान पुंज का अवशोषण		परिवर्तन का परिचयन करना मुश्किल है।

अतिसंवाहता अवस्था की विशेष श्रेणियाँ

अब तक के प्रयोगों के परिणामों के आधार पर यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि अतिसंवाहता दो प्रकार की होती है। इसके आधार पर धातुओं, यौगिकों और मिश्रधातुओं को तीन श्रेणियों में और प्रमुखतया दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) कोमल अतिसंवाहता चालक (Soft super conductors)

Sn, Pb और Hg इत्यादि इस श्रेणी के प्रमुख उदाहरण है। इस श्रेणी की विशेषता यह है कि मिसनर और समस्थानिक प्रभाव प्रभावपूर्ण रूप से लागू होते हैं।

(२) कठोर अतिसंवाहकता चालक (Hard superconductors)

इस श्रेणी के धातुओं, यौगिकों में संक्रमण ताप, क्रांतिक चुम्बकीय क्षेत्र का मान बहुत अधिक होता है। मिसनर और समस्थानिक प्रभाव लागू नहीं होते हैं, साधारणतया संक्रमण धातुएँ और कुछ मिश्रधातुएँ इस श्रेणी में आती हैं, जैसे Mo, Ir, Lu, Ru इत्यादि।

अतिसंवाहकता चालकों की प्रमुख विशेषताएँ

(१) कोई भी तत्व जिसकी संयोजकता दो इलक्ट्रान प्रति परमाणु से कम और नौ से अधिक है, अति-संवाहता अवस्था में नहीं लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए I A समूह में Li, Na, K, Rb और Cs तथा I B समूह में Au, Ag और Cu इत्यादि अभी तक अतिसंवाहकता अवस्था में प्राप्त नहीं किए जा सके हैं।

(२) संक्रमण ताप से ऊपर अतिसंवाहता चालक सुचालक नहीं रहते।

(३) अतिसंवाहता अवस्था में अब तक ज्ञात सबसे अधिक संक्रमण ताप 0·5°K, Ru के लिए और सबसे कम 9°K Nb के लिए है।

(४) बहुत सी मिश्रधातुओं को अतिसंवाहकता अवस्था तक लाया जा सकता है, जबकि उसके

अवयवों के साथ यह सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए Cus को अतिसंवाहता अवस्था में लाया जा सकता है जबकि Cu और S को नहीं।

(५) लोह चुम्बकीय (Ferromagnetic) और प्रतिलोह चुम्बकीय (Antiferromagnetic) धातुयें साधारणतया अतिसंवाहता अवस्था में नहीं लाई जा सकती हैं। मथास के प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि दोनों समकालिक हो सकते हैं। मथास के अनुसार ऐसा सम्भव हो सकता है कि दोनों के प्रभाव क्षेत्र क्रमिक हों जिससे दोनों एक ही क्षेत्र में नहीं हों। यह अभी तक अनुसन्धान का विषय है।

(६) जब बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का मान क्रांतिक मान (Hc) से अधिक हो जाता है तो अतिसंवाहता अवस्था समाप्त हो जाती है और प्रतिरोध पुन: उपस्थित हो जाता हैं।

(७) मथास के अनुसार प्रत्येक धातु, यौगिक और मिश्रधातु शुद्ध अवस्था में परम शून्य ताप की सीमा में अतिसंवाहता अवस्था में आने चाहिए। लेकिन अब तक लगभग २५ तत्व, कई यौगिक और मिश्रधातुएँ ही इस अवस्था में लाई जा सकी हैं।

(८) साधारणतया जो धातुएँ अतिसंवाहता अवस्था में लाई जा सकी हैं वे मेन्डिलिव की तत्व सारणी के मध्य में स्थान पाती हैं।

उपयोग—

प्रमुखतया अतिसंवाहता चालकों को :—

(१) अतिसंवाहता चालक

(२) उष्मीय स्विचों

(३) घर्षणहीन गियरों

(४) शून्य शक्ति संगणकों, में प्रयुक्त किया जाता है।

अतिसंवाहता अवस्था कैसे उत्पन्न होती है ?

यह क्यों और कैसे उत्पन्न होती है ? इस पर कई सिद्धान्त प्रतिपादित हो चुके हैं। सबसे प्रमुख सिद्धान्त बार्डिन, कूपर और सिफर का है जो उन्होंने सन् १९५७ में प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार जब किसी धातु का ताप परम शून्य ताप की सीमा में होता है तो इलेक्ट्रान और फोनोन अथवा जालक आयन (Phonons or Lattice Vibrations) में परस्पर क्रिया होती है जिससे अतिसंवाहता उत्पन्न होती है। इस सिद्धान्त का समर्थन समस्थानिक और मिसनर प्रभाव की सत्यता से होता है। इस सिद्धान्त का मुख्य दोष यह है कि इस अवस्था के लिए संक्रमण ताप प्रकट करने में असमर्थ है।

मथास के प्रयोगों से एक नवीन मत सामने आता है। कुछ संक्रमण धातुएँ और यौगिक समस्थानिक प्रभाव और मिसनर प्रभाव का पालन नहीं करते हैं। सम्भवत: संग्रहित चुम्बकीय घूर्ण (Localised Magnetic Moment) इसके लिए उत्तरदायी हो। इससे यह भी सम्भावना व्यक्त होती है कि अति-संवाहता के लिए एक नहीं, कई प्रकार की क्रियाएँ उत्तरदायी हो सकती हैं, अर्थात् अतिसंवाहता कई प्रकार की हो सकती है। अभी यह अनुसन्धान का विषय बना हुआ है।

●●

हिन्दी के ही द्वारा वैज्ञानिक जागरण सम्भव है

घातक महामारियों के जनक—विषाणु

● मुकुन्द चन्द पांडेय

भारतीय पौराणिक कथायें विश्व में विख्यात हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों का अध्ययन करके भाँति-भाँति की पौराणिक गाथायें प्रतिदिन घरों, चौपालों में सुनते हैं। सुर तथा असुरों द्वारा समुद्रमंथन की कथा अति प्राचीन है जिसमें चौदह रत्नों के साथ विष भी निकला था; कल्याणकारी शिव ने हलाहल विष को अपने कण्ठ में धारण कर लिया और उसके टपके हुए विन्दुओं से उनका प्रिय विषधर विषावत हुआ। विष सम्बन्धी विभिन्न गाथाओं, विष कन्या विषैले शस्त्र, विषैले फल, विषैले मार्ग आदि से इतिहास भरा पड़ा है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अनेक संक्रामक व्याधियाँ जो अबाध गति से फैलती हैं वे भी इसी विष के नन्हे कण 'विषाणुओं' द्वारा उत्पन्न होती हैं जो विश्व की विस्मयकारी वस्तुओं में से एक है। सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी में इसके ज्ञान का श्रीगणेश हुआ तत्पश्चात् कतिपय देशों में कीट-पतंगों तथा वनस्पतियों पर इसके घातक प्रभाव का बोध आरम्भ हो गया। सन् १८९२ में एक रूसी वैज्ञानिक आइवेनोवस्की ने "तम्बाकू का चित्ती रोग" का अन्वेषण किया तथा उन्होंने इसे "वायरस" नाम दिया जिसका वास्तविक अर्थ विष होता है। शताब्दियों पहले से जबकि वैज्ञानिक खोजें नहीं हो पाई थीं, चेचक, गलसुआ, इन्फ्लूएंजा तथा जुकाम आदि रोग जो विषाणु जनित हैं उनका ज्ञान प्रचुर मात्रा में था। इससे सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियाँ ग्रामीण अंचल के किसान वर्ग में वर्तमान समय तक व्याप्त हैं।

वनस्पति शास्त्री आइवेनोवस्की ने तम्बाकू रोगग्रस्त पत्तियों के रस को शाकाणु निरोधक (बैक्टीरिया प्रूफ) छन्ने से छाना। जो द्रव प्राप्त हुआ वह अत्यन्त निर्मल था। उसमें बैक्टीरिया का नाममात्र भी न था किन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने यह देखा कि यह छनित द्रव यदि पुनः स्वस्थ पत्तियों पर विलेपित किया जाता है तब फिर चित्तीदार पत्ते बन जाते हैं; यह विषाणु जनित रोगों का प्रथम प्रदर्शन था। उनके कार्य के सात वर्ष पश्चात् बिजरिंग नामक वैज्ञानिक ने पुनः इस पर अनुसंधान किया फलतः उन्होंने एक सिद्धान्त **"कान्टेजियम बाइवम फ्लूडम"** प्रतिपादित किया जो अब तक भी गलत सिद्ध नहीं हो पाया है। इस महत्वपूर्ण खोज के पश्चात् बहुत लम्बे अरसे तक इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। किन्तु विगत तीस वर्षों से जब इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार हो चला, उसके बाद इस पर पुनः व्यापक ध्यानाकर्षण प्रारम्भ हो गया।

विषाणुओं के वास्तविक गुणों के बारे में वैज्ञानिकों में पर्याप्त मतभेद है। अनेकानेक खोजों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि विषाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, वे बैक्टीरिया प्रूफ छन्ना कागज में से सुगमता से प्रवेश कर सकते हैं। इसका न्यूनतम आकार १० मिलीमाइक्रान व्यास का होता है जो प्रोटीन के अणु का वृहत्तम रूप के सदृश है। बड़े से बड़ा विषाणु निम्नतम बैक्टीरिया के समान अर्थात् २७५ मिलीमाइक्रान का होता है। ये केवल अपने निर्धारित पोषिता पौधों के जीवित-कोशाओं में ही वृद्धि कर सकते हैं। अस्तु, ये अन्तर्कोशीय हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओं की अपेक्षा विषाणु रासायनिक पदार्थों के ज्यादा प्रतिरोधी हैं तथा इनका अणुभार प्रोटीन के अणुभार के तुल्य है। विषाणु अन्तःपराश्रयी होते हैं, ताप का इन पर संवेदक प्रभाव पड़ता है। कम ताप के प्रति ये सहनशक्ति का भाव प्रदर्शित करते हैं। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से यह ज्ञात हुआ है कि इनकी

आकृति वैक्टीरिया की तरह ही दण्डवत या वृत्ताकार होती है।

जीव एवं जीवन की कहानी अब तक वैज्ञानिकों के लिए एक गुत्थी है। वैज्ञानिक अन्वेषणों के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् भी जीवन के अस्तित्व का संतोषप्रद ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है—जीवन एक पहेली बना है—अतएव यह कहना कठिन हो जाता है कि विषाणु सजीव हैं या निर्जीव? इस सम्बन्ध में अनेक विवादग्रस्त जटिल कल्यानायुक्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन समय-समय पर होता रहा है। अनेक विशेषज्ञों ने अपने मन्तव्यों को सिद्धान्त रूप में जनता के सम्मुख रखा। इन विचारकों के सिद्धान्तों को मौलिक रूप से दो भागों में विभक्त कर लेते हैं :—

(१) सजीव सूक्ष्मजीवाणु सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के प्रतिपादकगण इन्हें जीवधारियों की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि उनमें जीवधारियों सदृश अनेक गुण परिलक्षित होते हैं—यथा प्रजनन, अनुकूलन, पूर्णपरोपजीविता, निर्धारित उष्मीय मृत्युबिन्दु तथा पोषिता पर विशेष-रोग के लक्षण उत्पन्न करना। **ग्रीन** (१६३५) के कथनानुसार विषाणु सूक्ष्मतम इकाइयाँ हैं जिनमें जीवधारियों के समान प्रजनन क्षमता है जबकि **लिन्डला** (१६३८) के मतानुसार ये पूर्ण अन्तर्पराश्रयी हैं जिन्होंने परोपजीविता को उच्चमतम बिन्दु तक प्राप्त कर लिया है। अतएव इन्होंने निर्जीव होकर भी जीवन उधार ले रखा है। ज्ञातव्य है कि जब अनेक परोपजीवी अपने पोषिता पौधों पर निश्चित रूप से काफी समय तक रहने लगते हैं तब उनमें संश्लेषण की शक्ति का ह्रास हो जाता है अर्थात् उन्हें पोषणाहार के लिए दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है। इस कसौटी पर विषाणु खरे उतरते हैं क्योंकि कोई भी विषाणु अब तक प्रयोगशाला के निर्जीव कृत्रिम माध्यम पर नहीं उगाया जा सका है। अत: यह सिद्धान्त इस निष्कर्ष की ओर उन्मुख दिखलाई पड़ता है कि विषाणुओं ने उच्चतम शिखर तक परोपजीविता ग्रहण कर लिया है। अन्ततः इन्हें उन सजीवों की कोटि में रखना श्रेयस्कर होगा जो प्रजनन के अतिरिक्त समग्र गुण खो बैठे हैं। किन्हीं-किन्हीं ने तो इन्हें **"नग्न नाभिक"** की भी संज्ञा दे रखी है और ऐसा बतलाया है कि वे पोषिता के कोशाओं के साइटोप्लाज्म को आत्मसात् करके जीवन-निर्वाह करते हैं।

(२) रसायन पिण्ड सिद्धान्त—इसके अनुसार विषाणुओं को विविध रासायनिक यौगिकों से निर्मित बतलाया गया है। आत्मउत्प्रेरक प्रोटीन, मुक्त जीन, उपायचयन का स्थानापन्न एकान्तर छिन्न-भिन्न कोशा से उद्भूत पदार्थ, नाभिक क्रोमोसोम से निर्मित पदार्थ आदि कहा गया है। वास्तव में विषाणुओं के गुण-द्वय के कारण पर्याप्त भ्रान्ति हो जाती है। प्रोफेसर **स्टेनले** ने विषाणुओं से ग्रस्त एक पौधे से ऊँचे अणुभार वाला प्रोटीन प्राप्त किया। गुण निरूपण से पता चला है कि उसमें विषाणु सदृश समस्त लक्षण विद्यमान हैं। उसने जीवित होने के सिद्धान्त पर यथेष्ठ प्रहार किया। इस सिद्धान्त की भी विपुल टीका की गई है कि विषाणु प्रोटीन अणुओं के अन्दर अन्तर्विष्ट पाये जाते हैं। **स्मिथ** का मत है कि विषाणु और प्रोटीन दो वस्तु नहीं हैं वरन् कार्यों के कारण भिन्न हो चले हैं। इसके पक्ष में उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि जिस अम्लीयता, क्षारीयता अथवा ताप पर प्रोटीन प्रभावित या निष्क्रिय हो जाते हैं ठीक उन्हीं परिस्थितियों में वायरस भी समान व्यवहार प्रदर्शन करते हैं। स्टेनले ने पुनः एक प्रयोग द्वारा जिसमें उन्होंने विषाणुओं के लगातार वृद्धि का सामान्य कोशा और विलयन (घोल) में समानान्तर रूप में प्रदर्शन किया; उन्होंने देखा कि वही कण घोल में द्रुतगति से सभी कणिकाओं को एकत्र कर साधारण-रूप में संग्रहित हो जाते हैं। यह क्रिया उनके आत्म उत्प्रेरण के सिद्धान्त पर बल देती है।

अनेक सिद्धान्तों के ऊहापोह में अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विषाणु सजीवों व निर्जीवों के बीच एक अज्ञात भूले संयोजक हैं। वाडेन (१६४३) के मतानुसार ये रोगोत्पादक पूर्णपराश्रयी पदार्थ हैं जिसका विस्तार २०० मिली माइक्रान से न्यून होता है।

विषाणु जनित रोगों के लक्षण—यद्यपि विषाणु जन्तुओं और वनस्पतियों दोनों पर समान रूप से भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं तथापि पौधों पर इनका प्रभाव विशेष द्रष्टव्य है। व्याधियों के लक्षण आन्तरिक व वाह्य दोनों रूपों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

आमतौर पर रोग के प्रारम्भिक चिह्न पत्तियों पर दिखलाई पड़ते हैं। स्थायी लक्षणों के पूर्व प्राथमिक लक्षण शीघ्र दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें पत्ती की शिराओं का अन्य कोशाओं के विनाश हो जाने पर स्पष्ट हो जाना तथा पत्तियों पर पीले धब्बे या छल्ले साफ दिखलाई पड़ने लगते हैं। पत्तियाँ धारी के रूप में पीली पड़ने लगती हैं। बहुधा भिन्डी, तम्बाकू, गोभी इत्यादि की पत्तियों पर सफेद, पीले और हरे धब्बेदार चित्तियों के रूप में भी देखे जा सकते हैं। पत्ती पर एक या अनेक घेरेदार छल्ले बनने लगते हैं। पौधे के कुछ भागों का सफेद हो जाता अथवा कुछ भागों का नष्ट होना अथवा वामनरूप प्राप्त करना विशेष उल्लेखनीय हैं। कभी-कभी तो पत्तियों का एक अनूठा गुच्छा पौधों के किन्हीं किन्हीं भागों पर उत्पन्न हो जाता है। पौधों में अनेक विचित्र उभारों का स्वतः आविर्भाव हो जाता है; विलक्षण प्रक्रिया स्वरूप गुम्बदाकार, लट्टू के आकृति का या फूले उभार के रूप में आ जाते हैं। ये उभार जड़ों या तनों पर फोड़े या घेघा के रूप में प्रकट होते हैं। तम्बाकू की पत्ती पर तो एक पत्ती पर दूसरी पत्ती निकल आती है। चन्दन की कलिकायें अविकसित अवस्था में ही अनेक शाखायें, उपशाखायें बनाकर एक गुलशन तैयार कर देती हैं। विषाणुओं के प्रभाव से फलों, पत्तियों अथवा पौधे के अन्य भाग क्रमशः मरते और मृत्युचिह्न छोड़ते जाते हैं। कभी-कभी एक ही वृक्ष पर अनेक विषाणु साथ ही साथ रोग उत्पन्न कर आश्चर्य विभोर कर देते हैं।

रोग का प्रसार :–विषाणु संक्रामक रोगों को सुगमता से फैलाते हैं। ये थोड़े ही समय में रुग्ण पौधे से स्वस्थ परन्तु रोग उत्पन्न होने योग्य पौधे पर फैल जाते हैं। यह जानकर महान् आश्चर्य होगा कि एक रोग के टूट जाने पर उससे बने छिद्र द्वारा ये प्रवेश कर रोग उत्पन्न कर देते हैं।

जब कभी गुट्टी (ग्राफ्टिंग) वाले पौधों में से कोई भी विषाणु रोगग्रस्त रहता है तब यह एक से दूसरे नये पौधे में शीघ्र फैल जाता है। पत्तियों के पारस्परिक सम्पर्क व रगड़ से भी यह रोग उत्पन्न करता है। वर्षानुवर्षी पौधों को सर्वदा विषाणुग्रस्त रखा करते हैं, समीपवर्ती पौधों को निन्तर रोगग्रस्त बनाते रहते हैं। रोगी बीज भी सरलता से खेतों या नर्सरी में भयानक रोग फैलाते हैं। वायु व जल तो इसे सदा फैलाते ही रहते हैं। खेतों में काम किये जाने वाले कृषि-यन्त्र इसके लिए विषाणुबाहक बनकर निरन्तर रोग फैलाते हैं।

कीट-पतंगे जहाँ एक ओर परागण व शहद निर्माण में लाभप्रद होते हैं, वहीं दूसरी ओर रोगग्रस्त पौधों से विषाणु युक्त रस चूसकर अन्य स्वस्थ पौधों तक पहुँचाते हैं। अनेक कीट "विषाणुवाहक" माने गये हैं। यह देखा गया कि कुछ विषाणु एक निश्चित पतंग पर ही अपना जीवन निर्वाह करते तथा उसके द्वारा प्रसारित होते हैं। कुछ पतंग अल्पकाल तक रोगोत्पादन क्षमता रखते हैं, कुछ दीर्घ काल तक। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विषाणुओं का कीट-पतंगों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। टिड्डियोंका दल कभी-कभी भयंकर संक्रामक रोग फैलाने में अग्रणी रहता है।

रोग निदान :—पूर्वकथन से यह विदित है कि विषाणुओं पर रासायनिक पदार्थों का अत्यल्प प्रभाव पड़ता है, उच्च ताप पर ही इनका विनाश सम्भव है अतएव कुछ सावधानियाँ व प्राथमिक उपचार ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

कुछ उपाय इस प्रकार हैं:—

(१) रोगी निरोधीकरण :—जब किसी वस्तु पर विषाणु का आक्रमण होता है तब उसमें स्वतः कुछ विषाणु विरोधी पदार्थ बन जाते हैं जो पौधे को स्थायी रोग निरोधक (इम्यून) बना देता है। इस कार्य में इंजेक्शन भी कारगर हुए हैं।

[शेषांश पृ० १३ पर]

विचित्र धातु रेडियम

● श्याम मनोहर व्यास

आधुनिक रसायन-जगत् में रेडियम एक महत्वपूर्ण धातु है। यह एक नया ही तत्व है। इसके गुण बेरियम धातु के समान होते हैं।

इसका संकेत Ra है और इसकी परमाणु संख्या ८८ है। इसका अभिप्राय यह है कि इसमें ८८ प्रोटान विद्यमान हैं और ८८ ही इलेक्ट्रान पृथक पृथक कक्षाओं में नाभिक के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। रेडियम की खोज क्यूरी दम्पति ने की। मैडम क्यूरी विश्व की प्रथम महिला हैं जिन्हें वैज्ञानिक अनुसन्धानों के फलस्वरूप दो बार नोबल पुरस्कार मिला। मैडम क्यूरी का पूरा नाम मेरी स्क्लोडावस्का क्यूरी था। क्यूरी दम्पत्ति ने सन् १९१० में रेडियम का आविष्कार किया। १०० टन यूरेनियम-युक्त पिचब्लैंड (यह यूरेनियम का एक अयस्क है) लिया गया। पौने चार वर्ष के अनवरत श्रम के पश्चात् पिच-ब्लैंड से रेडियम प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम यूरेनियम से युक्त विलयन से एक अज्ञात तत्व के कण प्राप्त हुये। इस अज्ञात तत्व का नाम क्यूरी ने अपनी मातृभूमि पोलेण्ड के नाम पर पोलोनियम रखा। तदनन्तर विलयन से सारा पोलोनियम पृथक कर दिया गया। पर फिर भी विलयन विकिरणशील ही रहा।

इसका अर्थ था उसमें अभी भी कोई विकिरणशील तत्व विद्यमान था।

६ मास के कठिन परिश्रम के बाद एक नये तत्व के क्लोराइड के कुछ कण प्रकट हुये। यह तत्व काफी विकिरणशील था। इस नये तत्व का नाम **रेडियम** रखा गया। अन्त में बेरियम धातु की सहायता से इस तत्व को विलयन से पृथक किया गया। रासायनिक संरचना की दृष्टि से रेडियम व बेरियम में अद्भुत साम्य है।

क्यूरी दम्पत्ति ने प्रयोगशाला के एक कक्ष में देखा कि रेडियम के कारण ज्योति के सूक्ष्म कण चमक रहे थे। उनसे चन्द्रमा के पीलेपन और आकाश की नीलिमा जैसा मिश्रित प्रकाश निकल रहा था मानो नीली झील पर चाँदनी नाच रही हो। यह ज्योति षतिमय थी। अन्धेरे में रेडियम अपने ही मुक्त प्रकाश में ज्योतिमय हो रहा था।

रेडियम का क्लोराइड, यूरेनियम के क्लोराइड से ९०० गुना अधिक सक्रिय है।

रेडियम-धर्मिता (Radio-activity) रेडियम का प्रमुख गुण है। रेडियमधर्मी पदार्थों में फोटोग्राफी प्लेट को प्रभावित करने का गुण होता है।

पियरे क्यूरी तथा फ्रान्सीसी वैज्ञानिक ए० लबोर्द ने रेडियम-लवण से भरी परखनली का ताप नापकर इस तथ्य की भी पुष्टि की कि रेडियमधर्मी वस्तुयें ऊष्मा का उत्सर्जन करती हैं। इसमें एक यह भी महत्वपूर्ण बात है कि ऊष्मा का सतत उत्सर्जन करते रहने पर भी रेडियमधर्मी वस्तुओं के भार में तनिक भी अन्तर नहीं आता है।

एक ग्राम रेडियम १३८ कैलारी ऊर्जा प्रति घण्टा देता है। ऊष्मा-ऊर्जा रेडियम के गर्भ से उद्भूत होती है और स्वयं रेडियम अपरिवर्तनशील रहता है।

रेडियम का लवण यदि कुछ देर के लिये खुला रखा जाय तो वह पीला या गुलाबी रंग का हो जाता है।

रेडियम से तीन प्रकार की रश्मियाँ निकलती हैं—

(१) अल्फा किरणें

(२) बीटा किरणें

(३) गामा किरणें

वैज्ञानिक रदरफोर्ड ने रेडियम के विकिरण को एक-एक फोटो प्लेट पर अंकित किया। विकिरण के

उस भाग को जो धनावेशित कणों की भाँति विक्षेपित होता था, अल्फा किरण का नाम दिया गया। ऋणात्मक कणों को बीटा किरण और अविक्षेपणीय भाग को गामा किरण कहा गया।

कणों के आवेशों की दिशायें चुम्बकीय क्षेत्र में उनके विक्षेप द्वारा निर्धारित की गई थीं। बीटा किरणें वस्तुतः तीव्र गति से चलने वाले इलेक्ट्रानों की धारायें हैं। इनका वेग प्रकाश के वेग के बराबर होता है। बीटा किरणें धातु की चद्दरों के आर-पार चली जाती हैं। गामा किरणें उदासीन हैं। इनमें किसी प्रकार का आवेश नहीं होता। ये किरणें चुम्बकीय क्षेत्र में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करतीं। ये किरणें भी सीसे की बनी कई इंच-मोटी चद्दर के आरपार चली जाती हैं।

थोरियम, यूरेनियम और रेडियम की रेडियम-धर्मिता भी परमाणुओं के टूटने के कारण ही है।

रेडियम अपनी विकिरणशीलता के कारण खंडित होकर अन्य तत्वों में रूपान्तरित होकर रहता है; इसलिये इसे **'बिचित्र धातु'** की संज्ञा दी गई है।

किसी तत्व के परमाणुओं के साथ समय की एक इकाई के भीतर तत्व के नष्ट होने वाले परमाणुओं की संख्या का जो अनुपात होता है उसे 'क्षय-नियतांक' कहते हैं।

साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि क्षय-नियतांक हमें यह बताता है कि निकट भविष्य में किसी रेडियमधर्मी तत्व के परमाणु किस अनुपात में विघटित होंगे। इस समय की इकाई को **अर्धजीवन** (Half life) काल से नापते हैं।

अर्ध जीवन काल का अर्थ है कि कितने समय में किसी रेडियमधर्मी तत्व के आधे परमाणु क्षय होगें। इस प्रकार यदि क्षय-नियतांक कम है तो अर्ध जीवन काल अधिक होगा और यदि क्षय नियतांक अधिक है तो अर्ध जीवन काल कम होगा।

रदरफोर्ड तथा सॉडी ने एक नये रेडियमधर्मी तत्व 'रेंडॉन' गैस की खोज की।

यह गैस केवल अल्फा किरणें ही विकिरित करती है। रेडियम से ही **'रेडॉन'** तैयार की गई थी। रेडियम के रासायनिक विश्लेषण के पश्चात् और भी अन्य तत्व प्राप्त हुये। नाइटन, हीलियम, सीसा इत्यादि। रेडियम का खंडन निम्नांकित प्रकार है—

रेडियम—अल्फा किरण
|
नाइटन ,,
|
रेडियम A ,,
|
रेडियम B — | बीटा किरण, गामा किरण
बीटा किरण, गामा किरण —|—रेडियम C—अल्फा किरण
अल्फा किरण—रेडियम C_1—१, रेडियम C_2—| बीटा किरण, गामा किरण
|
रेडियम D—
|
रेडियम—E—| बीटा किरण, गामा किरण
|
रेडियम—F—अल्फा किरण
|
रेडियम→सीसा
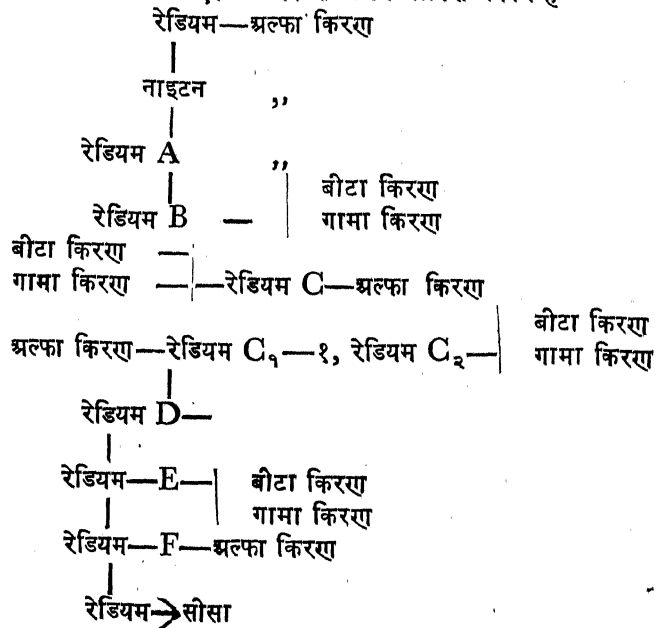
रेडियम का खंडन होते-होते अन्त में सीसा बन जाता है। इसी प्रकार यूरेनियम व थोरियम भी सीसे में परिणत होते हैं। सीसा पृथक तत्व है।

यद्यपि रेडियम से प्राप्त सीसे का परमाणु भार साधारण सीसे के परमाणु भार से पृथक है फिर भी इन दोनों के गुण एक से होते हैं।

ऐसे परमाणु **समस्थानिक** (Isotopes) कहलाते हैं। रेडियमधर्मी वस्तुयें जब विघटित होती हैं तो वे जिन नई वस्तुओं को जन्म देती हैं उनमें भी रेडियमधर्मी गुण होते हैं और यह प्रक्रिया चलती रहती है।

रेडियम का अर्ध जीवन-काल १५६० वर्ष है। 'रेडॉन' गैस का अर्ध जीवन-काल ३.८२ दिन है। वह शीघ्र ही टूट कर रेडियम **A** में परिवर्तित हो जाता है। रेडियम F का अर्ध जीवन-काल १३६ दिन है। एक ग्राम रेडियम से एक सेकण्ड में ७.३×१०^{१०} बीटा कण विसर्जित होते हैं और ६.२×१०^{१०} अल्फा कण विसर्जित होते हैं।

रेडियम आधुनिक वैज्ञानिक युग में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। रेडियम कैन्सर रोग की चिकित्सा में उपयोग में लाया जाता है। रेडियम का चर्म पर विचित्र सा प्रभाव होता है। यदि रेडियम का लवण कुछ मिनट तक चर्म के सम्पर्क में रह जाय तो चमड़ी पर दर्दनाक उभार उठ जाते हैं। रेडियम को चर्म के समीप लाने पर भी तन्तुओं को हानि पहुँचती है।

इसी गुण के कारण यह कैंसर जैसे भयानक रोग की चिकित्सा में काम में लाया जाता है।

रेडियम की किरणों से नील एवं पर्णहरिन् (Chlorophyll) का रंग नष्ट हो जाता है। नये तत्वों के अन्वेषण में भी रेडियम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

रेडियम वास्तव में इस वैज्ञानिक युग में एक महत्वपूर्ण तत्व है।

●●

[पृष्ठ १० का शेषांश]

(२) **स्वस्थ बीजों का बोना :**—रुग्ण पौधों के बीज कदापि नहीं बोने चाहिए अथवा रोगी वर्षानुवर्षी पौधों से वर्धी प्रचारण हेतु पेड़ी आदि नहीं लगाने चाहिये।

(३) रोगी पौधे समूल नष्ट कर देना चाहिये।

(४) रोगग्रस्त रहने वाले पौधों को समाप्त कर देना चाहिए।

(५) फसल-चक्र का आवश्यक उपयोग करना चाहिए।

(६) कीटनाशकों द्वारा "विषाणुवाहकों" को समाप्त करने का यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिये।

विष की भाँति ही विषाणु भी सामाजिक अभिशाप हैं। वनस्पतियों को नष्ट करने के अतिरिक्त ये घातक महामारियों के दाता हैं अतएव ये घृणित तथा हेय हैं। इन्हें नष्ट करने के आवश्यक कदम उठाने आवश्यक हैं। बिहार सरकार ने रोगवाहक कीट पतंगों को पटना के समीप रोकने तथा नष्ट करने का कार्य कृषि रक्षा विभाग को सौंपा था; यदि ऐसा ही प्रत्येक प्रान्त में हो जावे तो इनका विनाश निश्चय ही हो जावेगा। संक्रामक रोगों के निमित्त पर्याप्त स्वच्छता अपेक्षित है। चेचक, इन्फ्लुएंजा आदि के निरोध एवं उन्मूलन के लिए योजना कार्यरत है परन्तु जनसामान्य का भी पर्याप्त ध्यानाकर्षण वांछनीय है।

●●

विज्ञान के नये चरण

डॉ० कृष्णबहादुर

पिछले वर्षों में कुछ वैज्ञानिक ऐसा सोचने लगे थे कि जितनी महत्वपूर्ण खोजें होने को थीं वह प्राय: सभी हो चुकीं और भविष्य के लिये अब कोई महत्वपूर्ण खोज बाकी नहीं। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है उन्हें अपने इस विचार पर संदेह होने लगा है। जो खोजें हो चुकीं और जो किसी न किसी रूप में जनता के सामने आ गईं उनके बारे में तो प्राय: सभी को मालूम है। अब ज़रा सुनिये भविष्य में कौन सी खोजें रूप लेने जा रही हैं। मैं केवल उनका वर्णन करता हूँ जिनका सूत्रपात हो चुका है और जिनमें प्रारम्भिक सफलता भी मिल चुकी है।

(१) गोरे-काले मनुष्य तो हम देखते ही हैं। काला गोरा होना चाहता है। कहते हैं गोरों को काले मनुष्य अधिक अच्छे लगते हैं। यदि काले मनुष्य को गोरा और गोरे को काला किया जा सके तो कम से कम वर्ण-भेद तो समाप्त हो जाय। न तो काले मनुष्य को काला होने का गम रहता न गोरे को अपने रंग का गुमान। वैज्ञानिकों को प्रयोगों द्वारा जो परिणाम मिले हैं उनसे इस समस्या को सुलझाना कठिन नहीं प्रतीत होता।

कई जानवरों में इच्छा अनुसार अपना रंग बदलने का गुण होता है। गिरगिटान का उदाहरण तो आप जानते ही होंगे। वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि मनुष्य की त्वचा का काला रंग उसमें उपस्थित मेलेनिन नामक यौगिक के कारण होता है। यह एक बड़े अणु वाला यौगिक है जो अमीनों अम्लों के मिलने से बनता है। यह अमीनो अम्ल ग्ल्युटाथायोन नामक यौगिक के विच्छेदन द्वारा प्राप्त होता है। इसका विच्छेदन एक एंजाइम द्वारा होता है। इस एंजाइम को ग्ल्युटाथायोनेस कहते हैं। काले मनुष्यों की त्वचा में यह एंजाइम अधिक मात्रा में होता है। इससे उनकी त्वचा में मेलैनिन बनाने वाले अमीनो अम्ल ज्यादा बनते हैं और मेलैनिन भी अधिक मात्रा में बनता है। फलस्वरूप उसकी त्वचा काली दिखाई देती है। गोरे मनुष्य की त्वचा में ग्ल्युटाथायोनेस कम होता है जिससे उसमें मेलैनिन कम बनता है और, वह गोरी दिखाई देती है। अब प्रश्न केवल इतना है कि त्वचा में ग्ल्युटाथायोनेस की मात्रा को घटाया-बढ़ाया किस प्रकार जाय? वह दिन दूर नहीं जब सम्भवत: ऐसी गोलियाँ बन जायेंगी जिन्हें खा कर घण्टों में ही काले से गोरे और गोरे से काला बना जा सकेगा। फिर क्या जब चाहे आप अफ्रीका के हब्शी की भाँति काले रहिये और जब मन करे अंग्रेजों की भाँति गोरे।

जीव रसायन में और विशेष कर न्युक्लिक अम्ल और जिनेटिक्स के क्षेत्र में तो ऐसे महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुये हैं जिनसे कदाचित मनुष्य को अपने सामाजिक, धार्मिक और नैतिक सब स्तरों को मूलत: बदलना पड़ेगा। जीव के शरीर के हर सेल में न्युक्लिक अम्ल नामक यौगिक होता है। यह गुणित हो सकता है और प्रोटीन अणु के संश्लेषण में अमीनो अम्ल की शृंखला-क्रम निर्मित करता है। कब और कितने देर कौन सा प्रोटीन संश्लेषित होगा यह भी न्युक्लिक अम्ल द्वारा ही संचालित होता है। अभी हाल में ही कुछ रोचक प्रयोग सफल हुये। एक जन्तु के आँत की दीवारों से कुछ तंतु निकाले गये। इनके सेलों का न्युक्लिक अम्ल निकाल लिया गया। फिर उस जन्तु के मादा के गर्भ से अण्ड निकाल कर बिना अण्ड को मारे इसके न्युक्लिक अम्ल को नष्ट कर दिया गया। फिर इसमें आँत से निकाले गये न्युक्लिक अम्ल को डाल दिया गया और अण्ड को मादा के गर्भ में पुनः लगा दिया गया। यह अण्ड बढ़ा और ऐसे बच्चे का जन्म हुआ जो उस जीव के बिलकुल समरूप था जिसके आँत से न्युक्लिक अम्ल निकाला गया था अर्थात् जानवरों की भी पेड़-पौधों की भाँति ही कलम लगाई जा सकती है। इस क्रिया को फिनो-जेनिक बायोलाजिकल इंजीनिरिंग कहते हैं। आक्सफोर्ड

के वैज्ञानिक प्रो० गॉर्डन इस पर बहुत से प्रयोग कर रहे हैं।

अब जरा इस पर तो ध्यान दीजिये कि यदि ये प्रयोग मनुष्यों पर किये गये तो क्या होगा ? यदि आप चाहें तो हू-बहू अपने जैसा एक दूसरा व्यक्ति बनवा सकते हैं। वह बड़ा होने पर एक-दम आप जैसा ही होगा और बचपन में ठीक उसी आकार का होगा जैसा आप थे। यदि कोई मनुष्य कुछ-कुछ समय बाद अपना समरूप बनवाता जाय तो वह एक ही समय में अपनी हर अवस्था का रूप देख सकेगा। अर्थात् समय में पीछे जा कर आप अपना बचपना भी देख सकेंगे। सबसे महत्व की बात तो यह है कि एक ही प्रकार के बच्चों को अलग-अलग परिस्थिति में रख कर यह देखा जा सकता है कि मनुष्य के बनाने में परिस्थिति का कितना हाथ है।

(२) ज्योतिष शास्त्र में भी कुछ ऐसी मूलभूत खोजें हुई हैं जिनके परिणामस्वरूप सम्भवत: विश्व से लेकर परमाणु की कल्पना तक में मूलभूत परिवर्तन करना पड़े। 'मेसर' की खोज इसी प्रकार की खोज है। मेसर एक प्रकार के पिंड हैं जिनसे बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा निकलती है। इस ऊर्जा की मात्रा हमारे सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा की मात्रा से कई करोड़ गुना बड़ी है। इतनी बड़ी मात्रा में ऊर्जा का उत्पादन किस प्रकार होता है यह अभी भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। संहति-ऊर्जा परिवर्तन सूत्र के अनुसार भी इतनी बड़ी ऊर्जा प्रगट नहीं हो सकती। इसका मतलब यह है कि संहति से ऊर्जा में परिवर्तन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है उससे भी बड़ी ऊर्जा पैदा करने का कोई स्रोत है जिसका वैज्ञानिकों को अब तक ज्ञान नहीं है।

अब तक कई मेसर ज्ञात हो चुके हैं। सबसे पास का मेसर हमसे लगभग ५ बिलियन प्रकाश-वर्ष दूर है, सब से दूर का लगभग ८० बिलियन प्रकाश-वर्ष दूर। यह मेसर लगभग दो मिलियन वर्ष तक ऊर्जा देते रहे होंगे।

अब जरा ध्यान दीजिये। हमारी पृथ्वी की आयु लगभग ४$\frac{1}{2}$ बिलियन वर्ष है। अर्थात जब सबसे पास का मेसर ऊर्जा उत्पन्न कर रहा होगा उस समय हमारी पृथ्वी बनी भी नहीं रही होगी। यही नहीं, हमारी पृथ्वी के बनने के पूर्व ही उसकी जीवन-लीला भी समाप्त हो गई रही होगी। मगर उन्हें हम आज ऊर्जा उत्पन्न करते देख रहे हैं। अर्थात् हम वह घटना होते हुये देख रहे हैं जो हमारी पृथ्वी के बनने के पहिले ही होकर समाप्त हो गई थी। अर्थात् हम समय के पीछे झाँकते हैं।

मेसर की खोज से एक और बात सिद्ध हुई। प्रो० हॉयल का मत था कि हमारे विश्व का न आदि है न अंत। इसमें केवल कहीं-कहीं कुछ उथल-पुथल ही होती है। इसके विपरीत प्रो० गेमोह की कल्पना थी कि विश्व की उत्पत्ति हुई है और एक समय इसका अंत भी होगा। इस समय विश्व बढ़ रहा है। मेसर की खोज के बाद प्रो० हॉयल ने अपना मत वापस ले लिया। अब यह अनुमान है कि हमारा विश्व लगभग ८० बिलियन वर्ष का है।

(३) टेक्नालाजी में भी संसार ने अद्‌भुद प्रगति की। हमारे दैनिक जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं में मोटर-लारी का महत्व तो आप जानते ही हैं। बड़े-बड़े शहरों में तो इनके धुयें और बदबू से एक समस्या ही खड़ी हो गई है। अब एक ऐसी मोटर बनाने के प्रयोग सफल हो गये हैं जिनमें कोई दूषित गैस नहीं निकलेगी। यह मोटर बिजली से चलती है और यह बिजली उसमें बैटरी लगा कर नहीं प्राप्त की जाती है वरन् उस मोटर में ही यह बिजली पैदा की जाती है। इसके लिये मोटर में चार यंत्र होते हैं। इनमें हाइड्रोजन और आक्सीजन की प्रतिक्रिया कराई जाती है। आक्सीजन तो वायु से प्राप्त कर ली जाती है और हाइड्रोजन, हाइड्राजीन या अमोनिया से ली जाती है जो इन यंत्रों का इंधन है। इनके जलने पर केवल पानी और नाइट्रोजन निकलता है जिससे हवा दूषित नहीं होती। यंत्र में जब हाइड्रोजन

और आक्सीजन की प्रतिक्रिया होती है तो बहुत से इलेक्ट्रान मुक्त होते हैं जिनसे बिजली पैदा होती है। ऐसे प्रति यंत्र में ५ किलोवाट बिजली पैदा होती है। इस तरह के चार यंत्रों में मिला कर कुल २० किलोवाट बिजली प्राप्त होती है जिससे एक भरी ट्रक को ६५ किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से चलाया जा सकता है। जब इंधन समाप्त हो जाय तो और इंधन भर दीजिये और गाड़ी पुनः चलने लगेगी। इसके बिजली पैदा करने वाले यंत्रों में कोई घूमने-फिरने वाले पुर्जे नहीं होते इसलिये यह बिना खराब हुये बहुत दिनों तक काम करते रहेंगे। इस प्रकार की मोटर में पेट्रोल इंजन की भाँति कोई जटिल पुर्जे न होंगे। प्रगट ऊर्जा का अधिकांश भाग जो पेट्रोल-इंजन में उष्मा के रूप में नष्ट हो जाता है वह भी न होगा। अर्थात् इन्हें बनाने के लिये कम दाम लगेगा, सस्ते में चलेंगी, टूटने-फूटने का डर कम होगा और ये चाहे लाखों की संख्या में किसी शहर में घूमें वहाँ की हवा दूषित न होगी। अमरीका में ऐसी मोटर बना कर चलाई जा चुकी है।

●●

भोजन का पाचन

डॉ० शिव गोपाल मिश्र

जैसा कि कहा जा चुका है पाचन के फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेटों से अन्तिम रूप में ग्लूकोस उत्पन्न होता है जो आंत्रों की दीवालों के द्वारा अवशोषित होकर रक्त में प्रवेश करता है—यह रक्त पोर्टल शिरा से होकर यकृत में पहुँचता है। इससे सामान्यतः रक्त में उपस्थित ग्लूकोस की मात्रा ०.१% होती है किन्तु पोर्टल शिरा में यह कई गुनी बढ़ जाती है फलत रक्त में ग्लूकोस की मात्रा स्थायी रखने के लिए यकृत में ग्लूकोस का रूपान्तरण ग्लाइकोजन में होता रहता है। कभी-कभी यह जानकर आश्चर्य होता है कि यकृत में १% ही ग्लूकोस है तो कभी यकृत के भार का $\frac{१}{६}$ या $\frac{१}{७}$ तक। प्रायः ऐसा होता है कि भोजन करने पर जो ग्लूकोस बन कर यकृत में एकत्र होता है वह अगले भोजन तक समाप्तप्राय हो जाता है।

शरीर में ग्लूकोस से ऊर्जा स्वयमेव नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये इन्सुलिन की आवश्यकता होती है। यह एक रस है जो अग्नाशय ग्रंथि से उत्पन्न होता है। यह ग्लूकोस के आक्सीकरण में सहायक होता है।

$$C_६H_{१२}O_२ + ६O_२ \xrightarrow{\text{इन्सुलिन}} ६CO_२ + ६H_२O + \text{ऊर्जा}$$
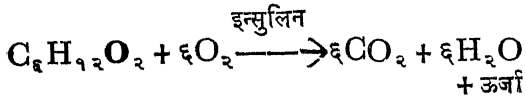
जितना भी ग्लूकोस बिना आक्सीकृत हुये रह जाता है वह ग्लाइकोजन के रूप में एकत्र होता है। शरीर में वसा का उत्पादन ग्लूकोस से ही होता है।

वसा का अवशोषण पाचन के उपरान्त वसा-अम्ल (साबुन) तथा ग्लीसरीन के रूप में छोटी आंत के द्वारा ग्लूकोस की भाँति होता है किन्तु शीघ्र ही इनके संयोग से वसा का पुनः संश्लेषण होता है। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि वसा पाचन के पश्चात् भी वसा रूप में रक्त में पहुँचती है केवल पचनीय बनाने के उद्देश्य से वसा का अपघटन ग्लीसरीन एवं वसा अम्लों में होता है। यह वसा या तो आक्सीकृत होकर ऊर्जा उत्पन्न करती है या संग्रहीत हो जाती है। यदि भोजन में आवश्यक मात्रा में वसा नहीं रहती तो संग्रहीत कोष में से वसा का आक्सीकरण होता है।

पाचन के उपरान्त प्रोटीनों से ऐमीनो अम्ल बनते हैं जो रक्त में पहुँचकर विभिन्न अंगों में जाकर पुनः संगत प्रोटीनों में रूपान्तरित हो जाते हैं। प्रत्येक ऊतक में पृथक-पृथक प्रोटीन रहता है अतः उस ऊतक को इन ऐमीनो अम्लों से वांछित प्रोटीन का संश्लेषण करना पड़ता है। किन्तु समस्त ऐमीनो अम्ल प्रोटीनों के पुनरुत्पादन में काम नहीं आते। जो बच रहते हैं वे ग्लूकोस या कार्बोहाइड्रेट में परिणित होकर ऊर्जा उत्पादन करते हैं। ग्लूकोस बनने में ऐमीनो अम्लों में से नाइट्रोजन अंश पृथक हो जाता है जो यूरिया में परिणत होकर वृक्कों तक पहुँचता है और फिर मूत्र के रूप में शरीर के बाहर निकल जाता है। ऐसा अनुमान है कि ऊतक प्रोटीन बनने तथा ग्लूकोस बनने में शरीर में पाचित प्रोटीन का आधा-आधा भाग काम आता है।

मनुष्यों को आयु, आकार एवं कार्य के अनुसार प्रोटीन की अलग-अलग मात्रायें आवश्यक हैं। उदाहरणार्थ, बचपन में वृद्धि के लिये बच्चों को अधिक प्रोटीन चाहिए। बाद में कम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार गर्भावधि में स्त्रियों को अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। रोग से मुक्ति पाने पर भी शरीर को स्वस्थ बनाने के लिये अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होगी।

केवल कुछ प्रोटीनों से समस्त ऐमीनों अम्ल प्राप्त नहीं हो सकते इसलिये सभी प्रकार के प्रोटीनों से युक्त भोजन करने पर बल देना चाहिए।

शरीर को नैत्यिक कार्यों के लिये (ऊतकों की क्षति पूर्ति के लिये) कुछ न कुछ प्रोटीन चाहिए। इससे अधिक होने पर वह ग्लूकोस तथा यूरिया में परिणत हो जावेगा।

ध्यान रखे कि एक बार में प्रोटीनयुक्त भोजन की अधिक मात्रा खा लेने से कई दिनों तक शरीर की आवश्यकतायें पूरी नहीं होंगी। यदि भोजन में समुचित मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तथा वसा रहे तो प्रोटीन की आवश्यक मात्रा का अनुमान लगाना सम्भव है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति ५.० पौंड शरीर भार पर प्रति दिन १½ औंस प्रोटीन चाहिए। किन्तु प्रत्येक वयस्क प्राणी इससे अधिक ही प्रोटीन खाता है।

यह विचित्र बात है कि इतना आवश्यक अवयव हमारे भोजन में अल्प मात्रा में ही रहता है। यहाँ तक रूखे-सूखे भोजन की अधिक मात्रा खाने पर भी न्यूनतम प्रोटीन मात्रा की पूर्ति सम्भव नहीं। इससे भी विचित्र बात यह है कि भोजन के इस अवयव की पूर्ति अन्य किसी अवयव द्वारा नहीं हो सकती। इसकी कमी घातक है किन्तु अधिकता होने पर यह आक्सीकृत हो जाता है। अर्थात् केवल प्रोटीनयुत भोजन करने से कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की पूर्ति हो सकती है किन्तु इनसे प्रोटीन की पूर्ति सम्भव नहीं।

खनिज लवण

शरीर के प्रत्येक कोशा में खनिज लवण की कुछ न कुछ मात्रा पाई जाती है किन्तु कतिपय ऊतक कोशाओं में इन खनिजो की मात्रा अधिक होती है क्योंकि उनके बनने एवं स्थिर रखने में इन खनिजों की आवश्यकता पड़ती है। फलतः रक्त में लोहा पाया जाता है तो हड्डियों तथा दाँतों में कैल्सियम एवं फास्फोरस की प्रचुर मात्रायें। किन्तु शरीर में खनिजों का संचय सम्भव नहीं फलतः प्रतिदिन मूत्र तथा मल द्वारा २० से ३० ग्राम खनिज उत्सर्जित होते रहते हैं। यही कारण है कि खनिजों की पूर्ति अत्यावश्यक है। यदि किसी अंग में खनिजों की मात्रा बढ़ जाती है तो तुरन्त ही आसपास के अंगों से जल के प्रवाह द्वारा उसकी मात्रा संतुलित कर ली जाती है। फलतः किसी भी ऊतक के सुचारु ढंग से कार्यशील रहने के लिये आवश्यक है कि जल में उचित मात्रा में कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम तथा सोडियम के लवण घुले हुये हों। यदि कैल्सियम लवण की अधिकता होती है तो मांसपेशियों में उत्तेजना आती है किन्तु इसके विपरीत मैग्नीशियम, पोटैशियम तथा सोडियम लवणों की अधिकता से माँसपेशियों एवं स्नायुओं की सक्रियता घटती है फलतः शरीर में खनिज लवणों की सही सान्द्रता अपेक्षित है।

आपने शरीर में अम्लता उत्पन्न होने की घटना सुनी होगी। प्रायः डाक्टर रोगियों को शरीर-अम्लता का शिकार बताते हैं, ऐसा विश्वास है कि अम्ल उत्पादक भोजन अनेक व्याधियों का जनक है किन्तु स्मरण रहे कि लघु काल तक ऐसा भोजन करने से विशेष हानि की सम्भावना नहीं है।

जिन भोज्य-पादर्थों से शरीर में अम्ल उत्पन्न होता है वे हैं अंडे तथा मांस। ये गन्धक, फास्फोरस तथा प्रोटीन में धनी पदार्थ हैं। शरीर में इन तत्वों के आक्सीकरण से गन्धकाम्ल तथा फास्फोरिकाम्ल उत्पन्न होते हैं जो शरीर के क्षारकीय तत्वों को उदासीन करते रहते हैं। इसके विपरीत दूध, तरकारियाँ एवं फल ऐसे भोज्य पदार्थ हैं जो क्षार-उत्पादक हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि नीबू तक (जिसमें सिट्रिक अम्ल रहता है) अन्ततः क्षार उत्पादक है।

चीनी एवं वसायें उदासीन पदार्थ हैं। सन्तुलित आहार में अम्ल तथा क्षार उत्पादक भोज्य पदार्थों के बीच सन्तुलन रखा जाता है।

कैल्सियम तथा फास्फोरस ऐसे भोज्य तत्व हैं जो शरीर की पुष्टता के लिये उत्तरदाई हैं। बचपन में वृद्धि के लिये तथा गर्भावस्था में कैल्सियम की प्रचुर मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। यदि इस तत्व की (फास्फोरस की भी) कमी रहे तो गर्भ के भीतर बच्चे के दाँतों का ठीक से विकास नहीं हो पाता।

दूध, अंडे, चीज, हरी तरकारियाँ तथा सेमों में कैल्सियम तथा फास्फोरस की प्रचुर मात्रायें पाई जाती हैं अतः इनका सेवन करना चाहिए। प्रत्येक वयस्क को प्रतिदिन १ ग्राम कैल्सियम तथा १.१३ ग्राम फास्फोरस की आवश्यकता होती है। गर्भिणी स्त्रियों अथवा माताओं को १·५ ग्राम और बच्चों ०·७-०·६ ग्राम कैल्सियम जरूरी है।

रक्त में ताम्र तथा लोहे की कमी के कारण हीमोग्लोबिन की मात्रा में ह्रास होने लगता है जिसके फलस्वरूप आक्सीजन की कम मात्रा ग्रहीत होती है और रक्ताल्पता (एनीमिया) की बीमारी हो जाती है।

स्वस्थ शरीर में २-३ ग्राम लोहे की मात्रा पाई जाती है। प्रतिदिन ०·०१५ ग्राम से भी कम लोहे की आवश्यकता होती है। पत्तीदार सब्जियों, अंडे की जर्दी सूखी सेम तथा कलेजी में काफी लोह तथा ताँबा पाया जाता है अतः ऐसी चीजों को भोजन का अपरिहार्य अंग बनाना चाहिए। दूँध में लोहे की अल्प मात्रा होने के कारण बच्चों को अन्य साधनों से लोहे की पूर्ति की जानी चाहिए।

आयोडीन की कमी होने से कण्ठमाला नामक रोग हो जाता है। आयोडीन का प्रमुख स्रोत जल है। तरकारियाँ एवं अन्न मिट्टी से आयोडीन प्राप्त करते हैं। समुद्री जल में आयोडीन की प्रचुर मात्रा पाई जाती है यही कारण है कि समुद्रीतट के वासियों को कण्ठमाला रोग नहीं होता। मनुष्य के शरीर में ४० मिलीग्राम आयोडीन होता है जिसमें से आधी मात्रा थायरायड ग्रंथि में रहता है। आयोडीन की कमी दूर करने के लिये आयोडीन से युक्त लवण खाना चाहिए। ऐसा लवण सामान्य लवण के साथ ०·०२% पोटैशियम आयोडाइड मिलाकर तैयार किया जाता है।

क्लोराइड दाँतों की रक्षा के लिये आवश्यक है इसका मुख्य साधन जल है। जल में प्रति १० लाख अंश में क्लोरीन का १ अंश रहता है। चाय में भी यह तत्व पाया जाता हैं।

ऊर्जा की पूर्ति

शरीर में ऊर्जा का उत्पादन भोज्य पदार्थ के आक्सीकरण द्वारा होता है। यह ऊर्जा तीन कार्यों के लिये आवश्यक है—

(१) शरीर के सामान्य ताप को स्थिर रखने

(२) ऊतकों के निर्माण में (विशेषतः बाल्यावस्था एवं गर्भावस्था में) तथा उनके क्षय को पूरा करने में

(३) विभिन्न प्रकार के कार्यों के करने में।

इन तीनों में से सर्वाधिक ऊर्जा का व्यय विभिन्न प्रकार के कार्यों को पूरा करने में होता है। मनुष्य के शरीर का ताप ९८.६° फारेनहाइट या ३७° सेंटीग्रेड है। इस ताप को स्थिर रखने में नहीं के बराबर ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। बच्चों की वृद्धि के समय नये ऊतकों के निर्माण में भोजन की $\frac{1}{7}$ ऊर्जा व्यय होती है। गर्भिणी स्त्रियों के लिये अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी। बीमारी के कारण ऊतकों का क्षय होता है अतः बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ करने के लिये अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

कार्य करने के लिये आवश्यक ऊर्जा दो प्रकार से व्यय होती है—एक तो शरीर के ही भीतर दूसरे शरीर के बाहर।

शरीर के भीतर हृदय के धड़कने, यकृत तथा गुर्दों के कार्य करने तथा विभिन्न ग्रंथियों के कार्यशील रहने की क्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं। इनके लिये ऊर्जा की शतत आवश्यकता होती है। विश्राम करने की अवस्था में भी ऊर्जा आवश्यक होती है क्योंकि इसी का दूसरा नाम जीवन है।

हाथ हिलाने, चलने-फिरने, उठने-बैठने, सवारी करने आदि के लिए अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए। यह ऊर्जा आक्सीकरण से ही प्राप्त होती है। यही कारण है कि मेहनत करने वाले मनुष्यों को बैठे-ठाले लोगों की अपेक्षा अधिक भूख लगती है।

ऊर्जा की इकाई कैलारी है। यह ऊष्मा की वह मात्रा है जो १ ग्राम जल के ताप को १° से० बढ़ाने

के लिये आवश्यक होती है। भोज्य कैलारी १००० कैलारी के तुल्य है फलतः यह ऊष्मा की वह मात्रा है जो १ किलो जल के ताप को १° से० या ४ पौंड जल को १° फारेनहाइट बढ़ाने के लिये आवश्यक होगी।

किन्तु यदि यह मान लिया जाय कि दो व्यक्तियों को एक ही मात्रा में भोजन दिया गया हो तो क्या वे समान रूप से कार्य कर सकेंगे या बढ़ेंगे। उत्तर होगा कभी नहीं। विभिन्न व्यक्तियों के लिये ऊर्जा की आवश्यकता का अनुमान उनकी पाचन शक्तियों, उन्हें दी जाने वाली वसा की मात्राओं, उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य-प्रकारों तथा जलवायुओं के आधार पर लगाया जाता है। तो फिर ऊर्जा की वह कौन-सी मात्रा है जो सामान्य रूप से मनुष्य के लिये आवश्यक होगी ?

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति किलोग्राम (या २·२ पौंड) शरीर भार पर प्रति घंटे १ कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई व्यक्ति कठिन मेहनत करता है जैसे कि खेत पर किसान या लकड़हारा तो उसकी ऊर्जा आवश्यकता में १००-२००% की वृद्धि करनी पड़ेगी। अनुभव के आधार पर यह पता चला है कि—

कुर्सी पर बैठे रहने वाले मनुष्य को २०००-२५०० कैलारी
सामान्य कार्य में रत मनुष्य को २५००-३५०० ,,
तथा कठिन श्रम करने वाले
मनुष्य को ३५००-४५०० ,,
की आवश्यकता पड़ती है।

छोटे बच्चों में वृद्धि के लिये भी ऊर्जा चाहिए। फलतः १ साल के बच्चे को ४·५ कैलारी प्रति किलोग्राम शरीर भार पर चाहिए किन्तु ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है आवश्यक ऊर्जा की मात्रा घटती जाती है। अतः ११-१२ वर्ष के बच्चे को २ कैलारी प्रति किलोग्राम भार से अधिक ऊर्जा की आवश्यकता नहीं रहती।

किन्तु अन्ततः जितनी भी ऊर्जा चाहिए वह भोजन से ही प्राप्त होनी है। एतदर्थ यह जानना आवश्यक है कि भोजन के किन अवयवों से कितनी ऊर्जा मिल सकती है। उसी के अनुसार अपने भोजन में विविध सामग्रियों का चुनाव कीजिये। जो लोग पाचन का ध्यान न रखते हुये जीभ को स्वादिष्ट लगने वाली वस्तुओं को ही अधिक मात्रा में खाते हैं, वे अपने शरीर के साथ उतना न्याय नहीं करते जितना कि जीभ के प्रति। मनुष्य को भोजन की आवश्यकता शरीर की वृद्धि एवं क्षतियों की पूर्ति के लिये पड़ती है। पैदा होने से लेकर मृत्यु पर्यंत उसे भोजन मिलना चाहिए। यदि ठीक से भोजन नहीं मिलता तो अनेक रोग हो जाते हैं। स्त्रियों को गर्भावस्था में विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ता है अन्यथा गर्भ स्थित शिशु पर भोजन की कुव्यवस्था का प्रभाव पड़ता है। शिशुओं के अंगों की विकृति, दाँतों का आना आदि ऐसे प्रभाव हैं।

यही नहीं, कुछ रोग भोजन पर ध्यान न देने से उग्र रूप धारण कर लेते हैं। जैसे बहुमूत्र (diabetes) रोग जो अधिक शर्करा या मंड खाने से बढ़ता जाता है। कण्ठमाला रोग भी आयोडीन रहित भोजन करने से अधिकाधिक घातक बन जाता है। कुछ भोजन ऐसे हैं जिन्हें खाते रहने से त्वचा पर छाले पड़ते रहते हैं।

शरीर के ऊतकों के निर्माण के लिये भोजन का आवश्यक अवयव प्रोटीन है। सर्वाधिक प्रोटीन वाले भोज्य पदार्थ अंडे, मांस, चीज़ हैं। दूध में कुछ कम प्रोटीन रहता है। बच्चों की वृद्धि के लिये आवश्यक है कि उन्हें प्रोटीनयुक्त भोजन दिया जाय। कार्बोहाइड्रेट तथा वसा वाले पदार्थ बहु-ज्ञात हैं और शरीर में शायद ही इनकी कमी होती हो। लवण आवश्यक अंग है किन्तु स्मरण रहे कि भोज्य पदार्थों में ही इसकी पर्याप्त मात्रा रहती है। प्रतिदिन १० ग्राम से अधिक लवण नहीं खाना चाहिए। अधिक लवण से गुर्दों को ज्यादा श्रम करना पड़ता है।

भोज्य ऊर्जा का मूल्य

		मूल्य
अन्न	३५०० कैलरी/किलो०	१०० पैसे
चीनी	३८७२ ,, ,,	१५० ,, (आजकल के ४०० पैसे)
आलू	७०० ,, ,,	५० ,,
मांस	२५०० ,, ,,	४०० ,,
तेल, वसा	८८०० ,, ,,	५०० ,,

स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टि से अन्न के उपयोग द्वारा ही सर्वाधिक ऊर्जा ग्रहण की जा सकती है क्योंकि भार प्रति भार मांस, वसा आदि से प्राप्त उतनी ही उर्जा अधिक महँगी सिद्ध होगी। यही कारण है कि भारत का गरीब किसान अन्न खाकर ही बढ़ता है किन्तु शरीर के सर्वाङ्गीण विकास के लिये यह हितकर नहीं है।

भारतीय भोज्य पदार्थों का पोषकता मान

प्रति १०० ग्राम पर

	कैलारी	प्रोटीन	कैल्सियम	विटामिन ए
अन्न	३५०	८-६ ग्राम	३० मिग्रा०	४५ इकाई
चीनी	३५०	—	—	—
दालें	३१५	२०	११० ,,	१०० इकाई
फल, तरकारी	४०	—	३५० ,,	१२०० ,,
दुग्ध	८५	३७	१३०	१४० ,,
तेल, वसा, मक्खन	८८०	—	—	—

अन्य देशों की तुलना में हमारे देश का भोज्य स्तर

	कैलारी	प्रोटीन	सम्पूर्ण प्रोटीन का % पशु प्रोटीन
भारत	१६७०	५१	११.८
एशिया, अफ्रीका, लतीनी अमरीका	२१६०	६०	१६.७
यूरप, उत्तरी अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका	३०६०	६०	४८.६

संतुलित भोजन

वह भोजन जिसके द्वारा प्रारम्भ में गिनाये गये भोजन के कार्यों की पूर्ति हो सके सन्तुलित भोजन है। कार्यों की दृष्टि से ही भोज्य पदार्थों को निम्नांकित तीन वर्गों में विभाजित किय जाता है :—

(१) ऊर्जादायी : इनमें गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, घी, तेल, गुड़, आलू आदि आते हैं।

(२) शरीर निर्मायक : प्रोटीन तथा खनिज शरीर निर्मायिक अवयव है जिनकी प्रचुर मात्रा दालों, दूध, मांस, मछली, अंडे, मेवे में पाई जाती है।

(३) रक्षक : शरीर को रोगों से बचाने में विटामिन महत्वपूर्ण हैं जिनकी प्रचुर मात्रा मांस, मछली, अंडे, दूध, पनीर, शाक-सब्जी में पाई जाती है।

संतुलित भोजन के सम्बन्ध में यह धारणा बनानी

कि वह महँगा पड़ता है ठीक नहीं। जो लोग धनी हैं वे भी संतुलित भोजन नहीं कर सकते। संतुलित भोजन रुपये-पैसे से उतना प्रभावित नहीं होता जितना कि भोजन के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान तथा उसे व्यवहार में लाने की क्षमता एवं जागरूकता।

इस पृथ्वी पर अनेक ऐसे भोज्य पदार्थ हैं जो सस्ते होकर भी विटामिन के उत्तम स्रोत हैं किन्तु उनके प्रति आम धारणा सम्मानसूचक नहीं है। जो लोग सेव, अँगूर या नारंगी का प्रयोग कर सकते हैं वे वास्तविक रूप में विटामिन उपभोक्ता समझे जाते हैं किन्तु जो अमरूद तथा आँवले जैसे सामान्य कोटिक फलों को विटामिन स्रोत के रूप में उपयोग में लाते हैं वे पिछड़े हुये माने जाते हैं। किन्तु यह भावना सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से ठीक हो सकती है, वैज्ञानिक दृष्टि से यह सर्वथा भ्रामक है। अमरूद तथा आँवले में सेव या संतरे से ३-४ गुना अधिक विटामिन सी रहता है। अतः संतुलित भोजन का चुनाव करते समय कुछ आवश्यक बातों को स्मरण रखना होगा।

(१) सभी अनाज समान रूप से लाभदायक हैं : चाहे गेहूँ खायें या ज्वार बाजरा—इनसे समान रूप से ऊर्जा की प्राप्ति होगी। गेहूँ खाने वाला श्रेष्ठ है—यह धारणा अवैज्ञानिक है।

(२) दालों का अधिकाधिक प्रयोग करें : शाकाहारियों के लिये प्रोटीन का सर्वोत्तम साधन विविध प्रकार की दाले हैं। प्रतिदिन ७०-१० ग्राम दाल खाने से शरीर के लिये आवश्यक प्रोटीन की मात्रा उपलब्ध हो सकती है।

(३) सस्ते फलों में से फलों का चुनाव करें : यह आवश्यक नहीं है कि जो फल महँगे मिलते हैं वे ही विटामिन के उत्तम स्रोत हैं। फसली फलों में से सस्ते फलों से विटामिन की पूर्ति सम्भव है।

(४) तरकारियों की काफी मात्रा खाई जाय : तरकारियाँ सस्ती होती हैं और उनमें विटामिन ए, रिवोफ्लैविन, ऐस्कार्बिक अम्ल, कैल्सियम तथा लोह प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। प्रतिदिन १०० ग्राम तरकारी से आवश्यक खनिज की पूर्ति हो जाती है।

(५) घी और तेल में कोई भेद नहीं है : दोनों ही वसा हैं जिनसे ऊर्जा प्राप्त होती है। अतः पौष्टिकता की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर नहीं।

(६) यथासम्भव दुग्ध का प्रयोग करें : बच्चों के लिए प्रोटीन आवश्यक है। शाकाहारी लोगों के लिये दूध और आमिषहारियों के लिये अंडा, मांस, मछली सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ हैं।

स्मरण रहे कि बचपन से ही दुग्ध की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। इससे प्रोटीन तथा कैल्सियम की पूर्ति होती है। बाद में शरीर को अन्य स्रोतों से कैल्सियम प्राप्त होता रहता है अतः दूध का पीना त्यागा जा सकता है। जो लोग दूध पीने की आदत बना लेते हैं उन्हें दूध से वह लाभ नहीं हो पाता जो बच्चों को मिलता है। इधर के अनुभवों से तो यहाँ तक सिद्ध हुआ है कि अधिक दुग्ध सेवन से कैल्सियम की अधिक मात्रा प्राप्त होते रहने से असामयिक बुढ़ापा आ जाता है। यद्यपि इस कथन में पूर्ण सत्य नहीं दिखता किन्तु प्रयोगशाला में चूहों पर किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि कैल्सियम की अधिकता से हड्डियों में प्रौढ़ता आती है जिससे बुढ़ापा जल्दी टपकने लगता है।

भोजन के सही प्रयोग न होवे के प्रतिफल

जहाँ एक ओर अच्छे एवं संतुलित भोजन से शरीर विकसित होता है और मनुष्यों में कार्य करने एवं सोचने की शक्ति आती है वहीं भोजन के सही-सही प्रयोग न किये जाने से शरीर में विकृतियों एवं रोगों का जन्म होता है। उदाहरणार्थ यदि गर्भावधि में मातायें उचित भोजन नहीं करतीं तो बच्चों की अस्थियाँ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं और बाद में उन्हें अनेक अस्थि-रोग होते रहते हैं। इसी प्रकार अधिक मांड तथा शर्करा का प्रयोग किया जाता है तो बहुमूत्र (डाइबेटीज) हो जाता है। आयोडीन की कमी से कंठमाला रोग तथा विटामिन बी की कमी से कब्जियत का होना सर्व ज्ञात हैं।

दुबले बनने का दुराग्रह—आजकल स्त्रियों एवं लड़कियों में दुबला एवं पतला बनने का फैशन चल गया है। यह अमरीका की देन हैं। वहाँ दुबले पतले शरीर को सुन्दरता की निशानी माना जाता है। ज्योंही शरीर का भार अधिक प्रतीत होने लगता है कि दुबला होने के लिये उपाय होने शुरू हो जाते हैं। इसे "dieting" अथवा "भोजन विग्रह" या "भोजन-निरोध" कहते हैं।

ऐसे भोजन-विग्रह के मूल में अधिक भारी होने (स्थूलता) से बचना है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या अधिक भार सदैव अधिक भोजन की आदत से ही जुड़ा रहता है?

ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि अधिक भारी होना सदैव अधिक भोजन करने से सम्बन्धित नहीं होता तथा स्वस्थ रहने के लिये समुचित मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है अतः यदि बिना कारण के ही केवल अन्धानुकरण पर भोजन विग्रह की विधि अपना कर दुबले बनने का यत्न किया जावेगा तो उससे शरीर को लाभ के बजाय हानि पहुँचने की सम्भावना है।

किसी भी भोजन निग्रह में वैज्ञानिक मंतव्य यही रहता है कि भोजन में से ऐसे अवयवों की कमी की जाय जिनसे स्थूलता आती है। ये अवयव हैं प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट। जब इनकी मात्रा कम कर दी जाती है तो पूर्वसंचित वसा का अपक्षय होने लगता है और स्थूलता घटने लगती है। किन्तु ऐसा करने के लिये भोजन-सम्बन्धी ऊर्जा-ज्ञान अत्यावश्यक है।

जो लोग कुछ ही समय में स्थूलता नष्ट करके "सुन्दर" बन जाना चाहते हैं वे अपने शरीर के प्रति अन्याय करते हैं। इससे शरीर के ऊतकों का ह्रास इतनी तीव्र गति से होता है कि वे पुनः पनप नहीं पाते। इससे अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं और शेष जीवन भर शरीर वैसा ही रहा आता है।

स्थूलता की ही भाँति अल्प-भारता है। अधिकांश लोगों का भार कम होता है। इसके कारण रोगों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। किन्तु अधिकांशतः अल्प-भारता को अधिक भोजन खाकर दूर किया जा सकता है और ऐसा विश्वास है कि विश्व के अधिकांश लोग अपर्याप्त भोजन के कारण ही दुबले हैं।

भावनाओं का प्रभाव

ऐसा ज्ञात हुआ है कि पाचन पर क्रोध, पीड़ा तथा भय का बुरा प्रभाव पड़ता है। इनसे आँतों के भीतर निकलने वाले रसों की मात्रा का स्राव कम पड़ जाता है जिससे पाचन अस्त-व्यस्त हो जाता है। चिन्तित व्यक्तियों के भोजन की मात्रा में कमी का यही कारण है। जहाँ तक सम्भव हो भोजन के पूर्व क्रोध से बचा जाय। भोजन के काल में घर में सर्वाङ्गीण शान्ति स्थापित रखने का प्रयत्न गृहिणी का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

[पृष्ठ २६ का शेषांश]

गर्भस्थ शिशुओं पर विकिरण का कुप्रभाव अधिक पड़ता है। सम्भव है कि तेजी से विभाजित हो रही कोशिकाएं अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होती हों और तेजी से विकासशील भ्रूण को पहुँचने वाली मामूली क्षति से उसकी चयापचय क्रिया विगठित हो जाती हो और फलस्वरूप किरणीयन के समय बनने वाली संरचना को क्षति पहुँचती हो।

किरणीयित मनुष्य की आयु भी कम हो सकती है। यदि किसी अंग विशेष को किरणीयित किया जाय तो आयु कम होना इस बात पर निर्भर है कि शरीर के कौन से अंग को किरणीयित किया गया है, आदि। इस प्रकार मानव शरीर पर विकिरणों का प्रभाव कई प्रकार से पड़ता है। उससे कैंसर या ल्यूकेमिया हो सकता है, जीनों की क्षति हो सकती है और साथ ही साथ प्राणी की आयु भी अपेक्षातया कम हो जाती है।

चिट्ठियाँ

विज्ञान की शिक्षा का माध्यम—हिन्दी

रवीन्द्र नाथ 'भ्रमर' टी०-४८ ए०; पूर्वोत्तर रेलवे
वाराणसी (उ० प्र०)

आज कुछ अंग्रेजीपरस्त हिन्दी के विरुद्ध अपनी वकालत करते समय सबसे पहला तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि विज्ञान की शिक्षा हिन्दी के माध्यम से नहीं हो सकती है। परन्तु ऐसी विचारधारा वाले क्या मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि आज तक किस देश ने अपनी भाषा नहीं अपितु एक विदेशी भाषा के बल पर विज्ञान में उन्नति की है? साथ ही अंग्रेजी के बल पर हमने विज्ञान में आज तक कितनी उन्नति कर ली है, यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है।

अंग्रेजी भारतीयता के विकास में बाधक है। यह ब्रिटिश सरकार की प्रभुता का अवशेष है तथा यह भारत की बौद्धिक गुलामी और दासता को दृढ़ करने वाली है। विज्ञान के क्षेत्र में हम तभी उन्नति कर सकते हैं जबकि उसकी शिक्षा किसी भारतीय भाषा के माध्यम से हो। राष्ट्रीय एकता के लिए यह भी आवश्यक है कि उसकी शिक्षा एक ऐसी भाषा के माध्यम से दी जाए जिसे अधिक से अधिक लोग जानते हैं तथा इस तथ्य से कभी भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारत में आज हिन्दी ही सर्वाधिक प्रचलित भाषा है।

विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० जयन्त विष्णु नारलीकर तथा कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च के अध्यक्ष डा० आत्माराम ने कई जटिल वैज्ञानिक उपलब्धियों पर अत्यन्त सरल एवं सुबोध हिन्दी में भाषण देकर यह बात और भी अधिक स्पष्ट कर दी है कि विज्ञान की भी पढ़ाई हिन्दी में हो सकती है।

"विज्ञान की शिक्षा का माध्यम-हिन्दी" कथन से मेरा यह मतलब बिल्कुल ही नहीं है कि हम उन अंग्रेजी के शब्दों को भी तत्काल निष्कासित कर दें जो हिन्दी में घुल-मिल कर उसका ही एक अंग बन गए हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति तो दृष्टि की संकीर्णता का द्योतक है। आज हमारे देश का बच्चा-बच्चा इंजन, रेडियो, पेन, क्रिकेट और स्टेशन का मतलब जानता है। यदि हम इन शब्दों का भी अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने लगे तो निश्चित ही ये युवकों के मस्तिष्क का भार बन जायेंगे।

कुछ लोग यह भी तर्क देते हैं अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों को हिन्दी की अपेक्षा याद करना सरल होता है। परन्तु उनका यह तर्क भी निराधार है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी अर्धशिक्षित व्यक्ति से निम्नलिखित अंग्रेजी के चार शब्द तथा उनके पर्यायों को याद करने के लिए कहें :—

पर्पेण्डिकुलर	लम्ब
केमेस्ट्री	रसायन
एग्रीकल्चर	कृषि
क्वाड्रीलैटरल	चतुर्भुज

तब अगले दिन हमें इस बात का साक्षात प्रमाण मिल जायेगा कि हिन्दी के ही शब्दों को याद करना अधिक आसान है न कि अंग्रेजी के।

अब अंग्रेजीपरस्त यह कहेंगे कि विद्यार्थी अंग्रेजी के हजारों पारिभाषिक शब्दों को याद कर ही लेते हैं। यदि हम हिन्दी की नई शब्दावली बनाएंगे तो उनको उन्हें फिर से याद करना पड़ेगा और अब तक का परिश्रम व्यर्थ चला जाएगा। परन्तु उपरोक्त विचारधारा वाले यह क्यों भूल जाते हैं कि यह समस्या तो सिर्फ वर्तमान पीढ़ी की है। अगली पीढ़ी के विद्यार्थी तो हिन्दी के शब्द प्रारम्भ से ही याद करेंगे। उन्हें अंग्रेजी शब्दावली तो कभी याद करनी ही नहीं पड़ेगी।

अन्त में एक बात और। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए हमें विज्ञान के समस्त संकेत ज्यों के त्यों रखने पड़ेंगे। उदाहरणार्थ 'सिलवर' के लिए हम रजत लिखेंगे परन्तु उसका संकेत 'ए जी' ही रहेगा। ●●

१. कृत्रिम आहार

विश्व की आहार सम्बन्धी समस्या को सुलझाने और पौष्टिक प्रकार के खाद्य उत्पन्न करने में विश्व के एतद्‌विषयक अभियान में विज्ञान अत्यन्त सहायक सिद्ध हो रहा है। विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य मानव शरीर के लिये उपयोगी प्रोटीन आदि तत्वों को सुलभ करना है।

माँस और मछली प्रोटीन के अच्छे स्रोत माने गये हैं किन्तु वे तुलनात्मक रूप में व्यय साध्य हैं। मांस की एक कैलारी ऊर्जा के समकक्ष प्रोटीन के उत्पादन के लिये ७ कैलारी ऊर्जा के तुल्य खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। इसीलिये अमेरिकी खाद्य वैज्ञानिक एवं संयुक्त राज्य खाद्य उद्योग, पशु को प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत मानने के बजाय, प्रोटीन को अधिकाधिक रूप में दानों से तथा संश्लेषण से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए तीन मुख्य माध्यम अपनाये जा रहे हैं—(१) उच्च प्रोटीन युक्त अनाज की जातियों का विकास करना, (२) एमीनो अम्लों की सहायता से दाल वाली फसलों का संवर्धन करना और (३) नवीन खाद्यों को तैयार करना। उदाहरण के लिये दस वर्ष पहले, परड्यू विश्वविद्यालय ने अनाज उत्पादन की एक प्रायोजना आरम्भ की। आज वहाँ के पौध अनुसंधानकर्त्ताओं ने एक नई जाति का मक्का विकसित किया है, जिसमें कि परम्परागत मक्का की तुलना में दुगुना प्रोटीन होता है। इसके साथ ही इसमें लाइसीन, नामक एमीनो अम्ल जो पशु प्रोटीन तैयार करने के लिये आवश्यक है विशेष रूप से उपस्थित रहता है। प्रयोगशाला में इस मक्के का प्रयोग पशुओं पर किया गया एवं यह देखा गया कि साधारण मक्के पर पले पशुओं के भार की तुलना में उनका भार तिगुना था।

अतिरिक्त एमीनो अम्लों द्वारा संवर्धित अनाज का उत्पादन पहले से ही अमेरिका में किया जा रहा है एवं इसका प्रयोग भारत में बड़े पैमाने पर होना है। इसके प्रयोग से वैज्ञानिकों को सर्वप्रथम यह अवसर मिलेगा कि वे साधारण गेहूँ प्रयोग करने वाले मनुष्यों और संवर्धित अनाज का प्रयोग करने वाले मनुष्यों की भार वृद्धि में अन्तर का पता लगा सकें।

नवीन कृत्रिम खाद्य—नये मानवकृत प्रोटीन मिश्रण पौष्टिक आहार के लिये बहुत ही प्रलोभनकारी हैं। इन्हें "कृत्रिम खाद्य" की संज्ञा दी जाती है। इनकैप (Incap) अर्थात् इन्स्टीट्यूट आफ न्यूट्रिशन फार सेन्ट्रल अमेरिका एवं पनामा ने गाउटेमाला में "इनकैपेरिना" (Incaparina) नामक कृत्रिम खाद्य का विकास करके विश्व के पौष्टिक आहार के विशेषज्ञों के समक्ष एक विशिष्ट आदर्श रखा है। यह सार-युक्त प्रोटीन खाद्य, मक्का, कपास के बीज, सोयाबीन के आटे, यीस्ट और कैल्सियम कार्बोनेट तथा विटामिन "ए" का मिश्रण है।

कृत्रिम खाद्यों में दूसरा महत्वपूर्ण खाद्य 'सैरीडेल" (Saridele) है। यह इन्डोनेशिया में मूँगफली, मक्का, टैपियोका, सूखा दूध एवं सोयाबीन के मिश्रण से तैयार किया गया है। अमेरिकी वैज्ञानिकों का कहना है कि इस प्रकार के उच्च प्रोटीनयुक्त पदार्थ विश्व के किसी भी ऐसे भाग में तैयार किया जा सकता है जहाँ मक्का एवं अन्य कच्चे माल सुलभ हों।

साग-सब्जी के प्रोटीन मिश्रण कुछ नये नहीं हैं

किन्तु भूतकाल में इनका उपयोग अरुचिकर गन्ध एवं स्वाद के कारण बहुत ही सीमित था। किन्तु अब कृत्रिम खादों को रंगा जा सकता है, रुचिकर स्वाद एवं गन्ध प्रदान की जा सकती है और प्राकृतिक खाद्य के अनुरूप बनाया जा सकता है। अब कृत्रिम प्रोटीन युक्त खाद्य सुखाये जा सकते हैं, भाप या पानी में उबाले जा सकते हैं एवं आग पर भूने जा सकते हैं।

अमेरिका से बहुत से ऐसे खाद्य पदार्थ विपणन के लिये भेजे गये हैं जो देखने और स्वाद में मांस, चिकेन, समुद्री खाद्य और कई प्रकार की चटनियों आदि की भाँति हैं। इनकी कम्पनियों ने इन्हें "मांस सजाती" की संज्ञा दी है। इन खाद्यों को यह नाम इसलिये दिया गया है कि इन खाद्यों में मांस जैसा कोई भी तत्व विद्यमान नहीं है किन्तु इनका स्वाद मांस की ही भाँति है और इनका प्रयोग बिना किसी धार्मिक निर्वन्धन के किया जा सकता है। मांस के प्रतिकारक तत्वों को भी एक शताब्दी से अधिक से प्रयोग में लाया जा रहा है। इसके चूसने के वांछित तत्व को अब सोयाबीन के प्रोटीन के उपयोग से पूरा कर लिया गया है।

मानवकृत खाद्यों की दूसरी श्रेणी में ऐसे खाद्य आते हैं जो कि छोटे-छोटे जीवों द्वारा यीस्ट को एक उपयुक्त खाद्य के रूप में परिवर्तित करके प्राप्त किया जाता है। कई वर्षों तक यीस्ट की खेती व्यावसायिक आधार पर की जाती रही है और पशुओं तथा मनुष्यों के कुछ खाद्यों के निमित्त शर्करा (कार्बोहाइड्रेट) और शीरे में पायी जाने वाली शर्करा आदि का प्रयोग किया जाता रहा है। ऐसे यीस्टों से इस प्रकार के विटामिन और प्रोटीन तैयार होते हैं जो पशु प्रोटीन के समकक्ष होते हैं। प्रोटीन प्राप्त होने की यह सबसे कालोचित पद्धति है। इसका पहला कारण यह है कि यीस्ट बहुत तेजी से बढ़ते हैं, इनका भार लगभग ५ घंटे में दूना हो जाता है और पशु जितनी शीघ्रता से खाद्य को प्रोटीन में बदल देते हैं उनसे कई हजार गुना अधिक शीघ्रता से यीस्टों द्वारा खाद्यों को बिना भूमि, रोशनी, वर्षा या मानव श्रम के प्रोटीन में बदला जा सकता है।

नवीन प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रक्रिया में कार्बोहाइड्रेटों के बदले हाइड्रोकार्बनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् यीस्टों को शीरे के स्थान पर पेट्रोलियम से भी खाद्य दिया जा सकता है। पेट्रोलियम से यीस्टों को संवर्धित करने में कुछ प्राविधिक कठिनाइयों के होते हुये भी इनके लाभ को देखते हुये इन कठिनाइयों से छुटकारा पाया जा सकता है। १ किलोग्राम चीनी से केवल आधा कि० ग्रा० यीस्ट तैयार किया जा सकता है किन्तु यदि दशायें अनुकूल रखी जाँय तो १ कि० ग्रा० हाइड्रोकार्बन से १ कि० ग्रा० यीस्ट तैयार किया जा सकता है।

पेट्रोलियम की प्रक्रिया से एक दूसरा भी लाभ है। यीस्ट, गैस आयल पर भी तैयार होता है जिसमें कि पैराफिन होती है। यीस्ट, बढ़ते-बढ़ते गैस आयल के पैराफिन को भी सुधार देते हैं और वह तेल बाद में डीज़ल इन्जिन और जलाने के काम के लिए उपयुक्त हो जाता है। पेट्रोलियम पर उत्पन्न किये हुये यीस्ट में ५०% से अधिक प्रोटीन होता है और उस प्रोटीन तथा प्राकृतिक पद्धति पर तैयार किये गये किसी अन्य प्रोटीन के तत्वों में कोई अन्तर नहीं होता। वे विटामिन "बी" और कई अमीनो अम्लों से युक्त होते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें लायसीन का अधिक प्रतिशततत्व होता है जिनमें अधिकांश अन्न निर्धन होते हैं। इन यीस्टों को सुखाकर, सोयाबीन के प्रोटीन की तरह संरक्षित किया जा सकता है और मांस तथा मछली की तरह भी प्रयोग में लाया जा सकता है। पेट्रोलियम का यदि कुछ अंश इस ओर लगा दिया जाय तो वर्तमान प्रोटीन की मात्रा की दूनी मात्रा उत्पन्न की जा सकती है।

खाद्य वैज्ञानिकों को पूरा विश्वास है कि कृत्रिम खाद्यों द्वारा विश्व की खाद्य-समस्या को सुलझाया जा सकता है। प्रयोग करके देखा गया है कृत्रिम खाद्यों के उत्पादन के कारण विभिन्न राष्ट्रों के विभिन्न

रुचियों की समस्या अब नहीं रह गई है क्योंकि इन खाद्यों को हर राष्ट्र के स्वाद के अनुकूल परिवर्तित एवं संवर्धित किया जा सकता है। अमेरिकी खाद्य वैज्ञानिकों और सहायता अधिकारियों को इस बात की पूरी आशा है कि सभी राष्ट्र उच्च प्रोटीनयुक्त खाद्यों को स्थानीय कच्चे मालों के प्रयोग से तैयार करने में सफल हो सकेंगे। इस प्रकार देश की आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी एवं ऐसे खाद्य पदार्थ मिल सकेंगे जिनका स्वाद उन्हें अपेक्षित है।

२. हिममण्डित बर्ड केन्द्र

अमेरिकी इंजिनियर विश्व के पेंदे में (मानचित्र की दृष्टि से) मनुष्य को रहने और काम करने से रोकने के लिए प्रकृति द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों को विफल बनाने का फिर से प्रयत्न कर रहे हैं। प्रकृति के नवीनतम प्रहार में, बर्फ के अप्रत्याशित भारी बोझ से, दक्षिणी ध्रुव के सबसे आधुनिक और सबसे बड़े सुरंग-नुमा 'नगर'—बर्ड केन्द्र के नाम से विख्यात अमेरिका के वैज्ञानिक केन्द्र—के असल में तहस-नहस हो जाने का खतरा उपस्थित हो गया है। हिम-मण्डित महाद्वीप के प्रतिकूल जलवायु के विरुद्ध संघर्ष जारी है, स्थिति पर काबू पाने के लिए नये और अनूठे विचारों का परीक्षण किया जा रहा है और कई अन्य उपायों का अध्ययन किया जा रहा है। इन उपायों में दक्षिणी ध्रुव में बर्फ के अन्दर बनाई सुरंग में ठण्डी हवा चलाना भी एक है।

वर्षों के परीक्षण के बाद—जिसमें ग्रीनलैण्ड में ध्रुव जैसी परिस्थितियों में इसी प्रकार का एक केन्द्र स्थापित करना भी सम्मिलित है—यह कहना शायद अत्युक्तिपूर्ण सिद्ध हो कि बर्ड केन्द्र २० वर्ष तक बर्फ के दबावों को सहार सकता। छः वर्ष पूर्व बर्ड केन्द्र का निर्माण होने के बाद से उसकी सुरंगों की छतों और दीवारों पर बर्फ का जो बोझ पड़ता रहा है वह आशा से तीन गुना अधिक रहा है। केन्द्र की रक्षा के नये उपायों का अध्ययन किया जा रहा है। इंजिनियरों का यह विश्वास है कि दक्षिणी ध्रुव में बर्फ की सतह पर गिर कर जमी जिस बर्फ का उपयोग सर्दियों के दौरान वैज्ञानिक अध्ययन के लिए किया गया है, उसके उड़ने या सरकने से सुरंग की छतों पर आशा से अधिक बोझ हो गया। बर्फ के नये-नये रूप धारण करने से सुरंग पर ऊपर से दबाव पड़ने के अतिरिक्त इधर-उधर से भी दबाव पड़ा।

केन्द्र की एक दूसरे से जुड़ी सुरंगों में जो इमारतें बनाई गई हैं वे बहुत ऊँची हैं। जब इमारत के अन्दर का ताप बढ़ जाता है, तब सुरंगों की लोहे की गुम्बदाकार छतों पर पड़ी बर्फ पिघलने लगती है और उससे छतों को सहारा देने वाले लोहे के मेहराबों का रूप विकृत हो जाता है।

दक्षिणी ध्रुव में बर्ड केन्द्र का निर्माण १९६१-६२ की गरमियों में मकमर्डो साउण्ड से १,२८० मील की दूरी पर एक सुनसान मैदान में किया गया था। मकमर्डो साउण्ड अमेरिका के दक्षिणी ध्रुव सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयत्नों का प्रधान केन्द्र है। बर्ड केन्द्र का निर्माण १९५७ में बनाये गये मूल बर्ड केन्द्र से ९·३ किलोमीटर की दूरी पर किया गया था। वैज्ञानिक कार्यक्रम का विस्तार हो जाने और बर्फ के जमाव का जोरदार प्रभाव पड़ने से वह मूल केन्द्र प्रयोग करने लायक नहीं रहा था।

मूल और वर्तमान दोनों केन्द्रों का नाम स्वर्गीय रियर एडमिरल रिचर्ड ई० बर्ड के सम्मान में रखा गया है। श्री बर्ड दक्षिणी ध्रुव की खोज करने वाले पहले अमेरिकी थे। साथ ही वह दक्षिणी ध्रुव पर उड़ने वाले पहले व्यक्ति थे।

बर्ड केन्द्र के निर्माण के लिये विकसित किया गया इंजिनियरिंग सम्बन्धी विचार अनूठा था। बर्फ के भीतर खोद कर सुरंगें बनाने के बजाय, जैसा कि अतीत में किया गया था, इंजिनियरों ने विस्तृत खाइयाँ खोदने के लिये बर्फ की खुदाई करने के आधुनिक उपकरणों का प्रयोग करने, इस्पात की छतों से उन्हें ढाँपने, चौरस सतह बनाने के लिये खाइयों में से निकलने वाली बर्फ

को इस्पात की छतों पर रखने और सुरंगों में ऐसी बनी बनाई इमारतें रखने का निश्चय किया जिनमें वैज्ञानिक लोग और उनके सहायक कर्मचारी रहेंगे और कार्य करेंगे। बर्ड केन्द्र का स्थान समुद्र तल से २,६०० मीटर की ऊँचाई पर है। नेवीसीबीज के कर्मचारियों (निर्माण सम्बन्धी वटालियनों) ने दक्षिण ध्रुव क्षेत्र की ग्रीष्म ऋतु में, जब २४ घण्टों प्रकाश रहता है, ५०-५० व्यक्तियों की दो टोलियों में बट कर हर समय कार्य जारी रखा। अगले वर्ष केन्द्र में और सुधार किये गये थे।

बर्ड केन्द्र एक ऐसी बस्ती है जिसका दक्षिणी ध्रुव की ग्रीष्म ऋतु में—अक्तूबर से अप्रैल तक—१०० व्यक्तियों के और सूर्य-रहित शीतकाल के ६ महीनों में २५ व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था करने के लिये निर्माण किया गया है। यह केन्द्र २-४ किलोमीटर की सुरंगों में स्थित है। मार्गों के साथ इमारतें स्थित हैं और उनके बीच के स्थानों में आहार और अन्य वस्तुओं के भण्डार हैं।

बने बनाये हिस्सों को जोड़कर इमारतें तैयार की गयी हैं। इस्पात के स्तम्भ एवं छतें और बर्ड केन्द्र के निर्माण में प्रयोग में लाये गये अन्य उपकरण वायुयानों द्वारा वहाँ लाये गये थे। अनेक प्रकार की सुरंगें बनाने के लिये अमेरिकी नौसेना द्वारा बताये गये नमूनों के अनुसार स्विटजरलैण्ड में बर्फ खोदने की मशीनों का निर्माण किया गया था। सबसे लम्बी प्रमुख सुरंग इन मशीनों से बनायी गयी थी, जिसकी छत की चौड़ाई ४·२ मीटर से लगाकर पेंदों की चौड़ाई ६ मीटर तक की है। वे सुरंगें अधिकांशतः ७·२ मीटर गहरी हैं और प्रारम्भ में १·२ से २·१ मीटर तक बर्फ से ढकी हुई थीं।

ग्रीनलैण्ड स्थित कैम्प सेंचुरी ने बर्ड केन्द्र में प्रयोग में लाये गये इंजिनियरिंग सम्बन्धी विचारों के लिये परीक्षण स्थल के रूप में कार्य किया। ग्रीनलैण्ड केन्द्र अभी भी प्रयोग में आ रहा है। उसे ऐसी कठिन समस्या का सामना नहीं करना पड़ा है जैसी समस्या का अब दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में स्थित केन्द्र को सामना करना पड़ रहा है। प्रथम सुरंग में घुसने के पश्चात् चिकनी दीवारों वाली बहुत सुरंगें आती हैं, जिनमें धुँधला प्रकाश रहता है और जिनमें बिना खिड़की वाली बहुत सी इमारतें स्थित हैं। वहाँ भारी मात्रा में खाद्य सामग्री और उपकरण मौजूद हैं।

इस वर्ष के दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र सम्बन्धी अमेरिकी अनुसन्धान कार्यक्रम के दौरान बर्ड केन्द्र में ऊपरी वायु-मण्डल सम्बन्धी विज्ञान, हिमखण्ड, भूकम्प तथा मौसम सम्बन्धी विविध विषयों के सम्बन्ध में अध्ययन किया जायेगा।

बर्ड स्टेशन को क्षति पहुँचने से रोकने के लिये नौसेना सुरंगों को १७·६ सेण्टिग्रेड शीतल करके बर्फ को पिघलने से रोकने का प्रयत्न कर रही है। यह कार्य करने के लिये, मुख्य सुरंग के एक कोने पर बर्फ को काटकर एक विस्तृत कमरा बनाया गया है। सतह से बर्फ में से शीतल वायु भीतर खींचने के लिये उस कमरे के सानने एक पंखा रखा जायेगा। इमारतों की उष्णता को कम करने के लिये सुरंगों में शीतल वायु बहायी जायेगी। यद्यपि दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में बर्फ के नीचे बनी सुरंग में शीतल वायु पहुँचाना उलटे बाँस बरेली वाली कहावत को चरितार्थ करना है, तो भी हिमाच्छादित महाद्वीप के प्रतिकूल जलवायु के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए बहुधा अद्भुत साधनों का प्रयोग करना पड़ता है।

३. विकिरणों का शरीर पर कुप्रभाव

पृथ्वी पर रेडियोधर्मिता की उपस्थिति मनुष्य के लिये कोई नई नहीं है। इस ग्रह पर जीवन के अन्य रूपों की भाँति मानव जाति का आविर्भाव भी एक ऐसे पर्यावरण में हुआ जिसमें उसकी कोशिकाओं पर लगातार उच्च ऊर्जावान कणों का प्रहार होता रहा है। प्राकृतिक रेडियधर्मिता वायु, चट्टानों और मिट्टी से आती है। यही नहीं, स्वयं हमारे शरीर में भी कुछ रेडियोसमस्थानिक (उदाहरणार्थ पोटैशियम) होते हैं। रेडियधर्मिता के इनकुछ आदि स्रोतों के अतिरिक्त अन्तरिक्ष से आनेवाली

अत्यधिक ऊर्जावान अन्तरिक्ष-किरणें भी वायुमंडल में पहुँचने पर रेडियधर्मिता उत्पन्न करती हैं। उपर्युक्त स्रोतों से आने वाले विकिरणों के अतिरिक्त अब तो स्वयं मनुष्य विकिरणों का उत्पादन प्रयोगशाला में करने लगा है।

विकिरणों से शरीर पर अनेक प्रकार के कुप्रभाव पड़ते हैं—उदाहरणार्थ अधिमांस या मस्से, नासूर हो जाते हैं और हाथों की अंगुलियां नष्ट प्राय हो जाती हैं। विकिरणों का शरीर पर प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि किरणीयन की मात्रा कितनी रही है, कितने बार किरणीयन किया गया है, विभिन्न किरणीयनों के बीच कितना समयान्तर रहा है और सम्पूर्ण शरीर किरणीयित किया गया है अथवा उसका कोई भाग, आदि। इस प्रकार के कुछ प्रयोग वैज्ञानिकों ने चूहों पर किये और यह देखा कि जब चूहों को अल्प समय में ही काफी अधिक मात्रा में किरणीयित किया गया तो चूहे कुछ दिनों में ही उग्र रूप से बीमार हो गए और उनमें से कुछ चूहे लगभग एक मास के भीतर ही मृत्यु के ग्रास हुए। जो जीवित रह गये वे कुछ समय पश्चात् स्वस्थ होने लगे। उस समय तो वे स्वस्थ हो गये लेकिन बाद में उन्हें विविध रोगव्याधियों ने आ घेरा। कुछ को कैंसर हो गया, कुछ की त्वचा पर बदरंगे चकते से पड़ गए, आदि।

विकिरणों की अल्प मात्रा का भी शरीर पर उग्र प्रभाव होता देखा गया है। यदि अल्प मात्रा में विकिरण हाथ, जबड़े या अन्य किसी भी अंग पर डाले जाएँ तो उससे उस अंग विशेष की त्वचा जल सकती है, वहाँ के रोम उड़ सकते हैं, त्वचा बिल्कुल शुष्क हो सकती है अथवा व्यक्ति अस्थायी रूप से बन्ध्या हो सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि शरीर में विकास उत्पन्न करने वाले विकिरणों की क्या कोई अल्पतम मात्रा भी है कि उससे कम विकिरण दिए जाने पर शरीर में किसी भी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न न हो। कुछ विद्वान वैज्ञानिकों का विश्वास है कि विकिरण की कितनी भी कम मात्रा क्यों न ली जाए उससे 'जीनों' की क्षति कुछ न कुछ अवश्य ही होती है। वह कुछ जीनों का संहार तो अवश्य ही कर देगा।

शरीर के जैव-ऊतकों को कुछ विकिरण अपेक्षाकृत अधिक क्षति पहुँचाते हैं। उदाहरणार्थ एक्स-किरणों की अपेक्षा अल्फा कण अधिक क्षतिदायी होते हैं। **क्षतिदायिता की दृष्टि से अल्फा कणों के बाद न्यूट्रान और फिर बीटा-कण आते हैं और** इन सबसे कम क्षति ऊतकों को पहुँचती है—**एक्स-किरणों** से। अल्फा कण, एक्स-किरणों की अपेक्षा पांच गुनी क्षति पहुँचाते हैं।

क्षति के प्रकार

विकिरण द्वारा कोशिकाओं की क्षति दो प्रकार की होती है। एक तो विकिरणों के पड़ने के तुरन्त बाद और दूसरी काफी समये पश्चात्। इनमें से पहले प्रकार का प्रभाव कोशिकाओं की अन्तर्क्रिया और दूसरे प्रकार का प्रभाव अन्तर्क्रियाजन्य कोशिका-क्षति का पूर्ण शरीर पर प्रभाव होता है। अभी तक कोशिकाओं पर विकिरणों के विशिष्ट प्रभावों का ही अध्ययन किया गया है।

विकिरण से कैंसर उत्पन्न हो सकता है। विकिरण जन्य त्वक्-कैंसर का ही सबसे पहले पता लगा। इसके बाद एक्स-किरणों से भी अनेक प्रकार का कैंसर होता पाया गया है। हाल ही में जन्तुओं पर किये गये परीक्षणों ने यह भी दर्शाया है कि एक्स-किरणों से अथवा किसी रेडियधर्मी पदार्थ से भी हड्डी का कैंसर उत्पन्न हो सकता है। हिरोशिमा के नागरिकों पर बम के प्रभाव और प्रयोगशाला में जन्तुओं पर किये गये प्रयोगों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि केवल एक बार ही विकिरण पड़ने से भी ट्यूमर उत्पन्न हो सकता है। हिरोशिमा में बम-विस्फोट के अनन्तर दो वर्ष में अनेक व्यक्तियों को ल्यूकेमिया से पीड़ित पाया गया। किरणीयन से कैंसर होने की सम्भावना बढ़ जाती है और विकिरण की मात्रा जितनी अधिक होगी कैंसर के लक्षण उतने ही जल्दी प्रकट होंगे। विकिरण की मात्रा अत्यधिक होने पर यह भी सम्भव है कि जंतु कैंसर होने से पहले विकिरण जन्य अन्य विकृतियों से मनुष्य मृत्यु का ग्रास बन जाता है। [शेषांश पृष्ठ २३ पर]

विज्ञान वार्ता

१. अपस्मार रोग से पीड़ित व्यक्ति

एक अमेरिकी नाड़ी-विज्ञान विशेषज्ञ का कहना है कि अपस्मार रोग से ग्रस्त व्यक्ति के जीवन का ६वाँ, १४वाँ, ३५वाँ और ६०वाँ वर्ष सबसे अधिक संकटपूर्ण होता है। इवानस्टन स्थित नौर्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी के डा० जोन ह्यूजेज के अनुसार इन उम्रों पर अपस्मार रोग के दौरे पड़ने की सम्भावना अधिक रहती है।

डा० ह्यूजेज इलेक्ट्रोइनसिफलोग्रफिक (ई० ई० जी०) के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने अपस्मार रोग से पीड़ित १,३५५ रोगियों की मस्तिष्क तरंगों का अध्ययन करने के उपरान्त उक्त निष्कर्ष निकाला है।

उनके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से यह संकेत मिलता है कि उक्त चार उम्रों पर इसलिए सबसे अधिक खतरा रहता है क्योंकि इनके बीच अपस्मार रोग से पीड़ित व्यक्तियों पर सबसे अधिक बाहरी अथवा भीतरी दबाव पड़ता है। उनकी मान्यता है कि ६ वर्ष की आयु में बालक को पहली बार प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करना पड़ता है। १४ वर्ष की आयु में वह उन शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों की प्रक्रिया से गुजरना शुरू करता है, जो युवावस्था में प्रवेश करने के समय होते हैं।

३५ वर्ष की आयु के आस-पास का समय उसके जीवन-संघर्ष का लगभग चरम-विन्दु होता। इस समय तक वह अपना पेशा अन्तिम रूप से चुन लेता है क्योंकि बहुधा ऐसा माना जाता है कि जो व्यक्ति इस आयु तक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता, वह शायद कभी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

६० वर्ष की आयु अवकाश प्राप्त करने की आयु होती है। यह वह समय होता है जबकि मनुष्य के हृदय में अनेक भावनाएँ जोर से उभड़ती हैं और वह यह सोचने लगता है कि अब उसकी कोई उपयोगिता नहीं साथ ही उसके शरीर में वृद्धावस्था के परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

२. रात्रि को दिन में बदलना

अमेरिका के इंजिनियरों ने अत्यन्त तेज प्रकाश प्रदान करने वाली कई नवीन प्रणालियों का आविष्कार किया है। इनमें से चार प्रकाश प्रणालियों का निर्माण इलेक्ट्रो-ऑप्टिकल सिस्टम्स, इनकार्पोरेटेड (एक्सरोक्स कार्पोरेशन की उपशाखा) पैसाडीना, कैलिफोर्निया द्वारा किया जा रहा है।

इसके द्वारा निर्मित 'एयरलाइट', जो इन्फ्रा रेड और अल्ट्रा वायोलेट विकिरण से युक्त है, का उपयोग मझोले से लेकर भारी आकार के वायुयानों और हैलिकॉप्टरों में किया जा रहा है। यह ६,००,००० ल्यूमेन—यह घरों में प्रयुक्त ७५ वाट शक्ति के ६०० बल्बों द्वारा प्रदत्त प्रकाश के बराबर होता है—विद्युत प्रकाश का सृजन करता है। ५०० पौण्ड की यूनिट इतनी शक्तिशाली प्रकाश किरण फेंक सकती है। इसका वृत लगभग ४० डिग्री का होता है।

इतनी ही शक्तिशाली 'एयरलाइट' प्रकाश-प्रणाली का विकास भी किया गया है जो लड़ाकू टैंकों और फौजी जीपों में फिट की जा सकती है। यह प्रकाश इतना शक्तिशाली होता है कि रात्रि को रणक्षेत्र और जंगलों में दिन जैसा प्रकाश किया जा सकता है, तथा इसके सहारे रात को हथगोलों और मोर्टरों को अधिक अच्छी तरह ठीक निशानों पर फेंका जा सकता है, सुरक्षा की दृष्टि से किसी विशेष क्षेत्र को हर तरफ आलोकित किया जा सकता है तथा रात्रि को फोटो खींचे जा सकते हैं।

५० पौण्ड की एक किलोवाट वाली प्रणाली 'ज्यूनिस्टार' १५,००० ल्यूमेनों का उत्पादन करने में सक्षम है, जिसको प्रकाश किरणों में ५ करोड़ कैण्डिल पावर जितनी क्षमता है। यह दृष्टिगोचर प्रकाश और इन्फ्रा-रेड प्रकाश प्रसारित करने में सक्षम है तथा हवाई जहाजों और स्थलीय वाहनों में इसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जा सकता है। इसका उपयोग मुख्यतः आसमान और समुद्रों पर किए जाने वाले बचाव कार्यों, रणक्षेत्रों, उपद्रवों, पुलिस कार्यवाही, सुरक्षा तथा कई प्रकार की समुद्री कार्यवाहियों में किया जायेगा।

एक और प्रकाश प्रणाली बनाई गई है जिसे 'मिनीलाइट' कहते हैं। इसको हाथ में पकड़ा जा सकता है। इसका भार केवल ४ पौण्ड होता है। यह अब तक निर्मित सबसे अधिक शक्तिशाली सर्च-लाइट है। इसके प्रकाश किरण १५ लाख कैण्डिल पावर जितनी शक्तिशाली होती है और यह १,००० गज तक मार करती है।

'मिनीलाइट' का प्रयोग स्थल पर अथवा हवाई जहाज पर किया जा सकता है और इसकी बैटरियाँ अपने आप चार्ज होती रहती हैं। इन सर्चलाइटों का उपयोग सैनिक कार्यों, हवाई जहाजों को प्रकाशित करने, बचाव कार्य करने, पुलिस कार्यवाही करने तथा आग पर काबू पाने सम्बन्धी कार्यवाहियों में किया जाता है।

३. दुगनी तेजी से पैदावार बढ़ाने की नई विधि

अमेरिका के वैज्ञानिकों ने हाल में एक ऐसा सरल उपाय खोज निकाला है, जिससे पौधे दुगनी तेजी से उग सकें। इन पौधों में अनाज की सामान्य फसल भी शामिल हैं। उन्होंने यह उपाय पौधों के आस-पास वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी करके खोजा है। यह खोज स्टेनफर्ड (कैलिफोर्निया) के कार्नेगी इन्स्टिट्यूट के वैज्ञानिकों की एक मण्डली ने की है। इस मण्डली के नेता सुप्रसिद्ध स्वीडिश पौध जीवशास्त्री डा० ओल बोकमन थे।

पृथ्वी के पृष्ठ पर वायु में आक्सीजन की सामान्य मात्रा २१ प्रतिशत होती है। डा० बोकमैन ने अपने परीक्षण के लिए पौधों के आसपास आक्सीजन की मात्रा घटा कर पहले उसे ५ प्रतिशत किया और फिर २.५ प्रतिशत। परीक्षणों के दौरान पौधों की जड़ों को सामान्य हवा पहुँचाई गई।

उदाहरण के तौर पर, सेम की पौध सामान्य हवा में जिस तेजी से बढ़ती है उसकी अपेक्षा कम आक्सीजन में २.१ गुनी तेजी से बढ़ी। मक्का के बारे में परीक्षण किये जाने पर स्थिति कुछ भिन्न रही। ५ प्रतिशत आक्सीजन में मक्का की वृद्धि सामान्य वायु में बढ़ने वाले पौधे की तुलना में केवल १६ प्रतिशत रही।

४. भूमिगत सछिद्र नालियों द्वारा सिंचाई करके मक्का की पैदावार में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

यह बात डेलावेयर विश्वविद्यालय के जौर्जटाउन उपकेन्द्र के भू-खण्डों से अच्छी तरह सिद्ध हो गई है। वहाँ १९६७ में भूमिगत सछिद्र नालियों द्वारा केवल ८ घंटे सिंचाई करके मक्का की पैदावार में प्रति एकड़ १६ बुशल (प्रति हेक्टेयर १ टन) की वृद्धि की गई।

भूमि के अन्दर छिद्र वाले पाइप बिछा कर सिंचाई करने की विधि का प्रयोग पिछले ५० वर्षों में डेलावेयर में एक बार एक भारी वर्षाकाल में किया गया था।

१९६५ में, जब वर्षा पर्याप्त हुई थी, भूमिगत सछिद्र नालियों द्वारा सिंचाई करने से प्रति एकड़ ४० बुशल (प्रति हेक्टेयर २·६६ टन) अधिक मक्का हुआ था। १९६६ में सूखा पड़ने पर, भूमिगत सछिद्र नालियों द्वारा मक्का के खेतों में सिंचाई करने से प्रति एकड़ १६५ बुशल (प्रति हेक्टेयर ११ टन) मक्का हुआ, जबकि बिना पानी के प्रति एकड़ केवल ७ बुशल (प्रति हेक्टेयर '४६ टन) मक्का हुआ।

डेलावेयर विश्वविद्यालय के कृषि-शास्त्री डॉ० विलियम मिचेल के कथनानुसार, इससे सिद्ध होता है कि भूमिगत सछिद्र नालियों द्वारा सिंचाई की विधि फसलों को नमी पहुँचाने का एक प्रभावकारी तरीका है।

जून १९६७ में जब मक्का के पौधे मुरझाने लगे तो भूमिगत संछिद्र नालियों द्वारा उन्हें ऐसे समय नमी पहुँचाई गई जब उन्हें उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी।

इस प्रणाली की एक प्रमुख समस्या यह है कि जड़ों से पाइप के छिद्र बन्द हो जाते हैं। इससे सिंचाई की प्रभावोत्पादकता कम हो जाती है। तथापि, पानी के दबाव को कुछ समय बढ़ा कर इन बन्द छिद्रों को खोला जा सकता है।

५. कृषि-ज्ञान का प्रसार करने वाली पत्रिकाएँ

कृषि सम्बन्धी सामान्य पत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में एक लेख द्वारा कृषि-वस्तुओं के बाजार पर प्रभाव डालने वाली राजनीतिक घटनाओं की सूचना दी जाती है। अन्य लेखों में कृषि-अनुसन्धान के क्षेत्र में की गई नई खोजों का वर्णन रहता है।

अमेरिका में कृषि के बारे में लगभग ८१० गैर-सरकारी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। इनमें जो पत्र-पत्रिकाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं उनमें से कुछ के नाम हैं : फिलाडेल्फिया (पेन्सिल्वेनिया) से प्रकाशित **'फार्म जर्नल'** (वितरण-संख्या लगभग ४० लाख), प्लाण्ट सिटी (फ्लोरिडा) से प्रकाशित **'कूरियर'** (वितरण-संख्या ५,६६६), ईस्ट लैनसिंग (मिशिगन) से प्रकाशित **'मिशिगन फार्मर'** (वितरण संख्या १,०४,१८२), अलाबामा से प्रकाशित **'प्रोग्रेसिव फार्मर'** (वितरण-संख्या १२,६२,३६२), आयोवा से प्रकाशित **'नेशन्स एग्रिकल्चर'** (वितरण-संख्या १३,३१,६६०) और **'सक्सेसफुल फार्मिंग'** (वितरण-संख्या १३,३१,६६०)।

भारत-सरकार भी इसी ढंग से किसानों के लिए उपयोगी सूचनाओं का प्रसार कर रही है। सरकार की कृषि पत्रिकाओं का प्रकाशन इंगलिश, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में किया जाता है।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की ओर से इंगलिश में **'इण्डियन फार्मिंग'** और हिन्दी में **'खेती'** नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन किया जाता है। खाद्य और कृषि मन्त्रालय का ज्ञान-विस्तार विभाग भी एक मासिक पत्र प्रकाशित करता है जिसका नाम है **'इन्टैन्सिव एग्रिकल्चर'**।

भारत का फर्टिलाइजर एसोसियेशन इंगलिश में **'फर्टिलाइजर न्यूज'** और हिन्दी में **'खाद पत्रिका'** प्रकाशित करता है। ज्ञान-प्रसार निदेशालय का कृषि-सूचना अनुभाग इंगलिश में **'दि डेयरी एक्सटैन्शन'** प्रकाशित करता है। गैरसरकारी पत्रिकाओं में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला मासिक **'फार्म जर्नल'** और कलकत्ते का ही **'जूट बुलेटिन'** प्रमुख हैं।

इसके अलावा, बहुत सी राज्य सरकारें भी इंगलिश तथा अन्य भाषाओं में कृषि-पत्रिकाएँ तथा सूचना-पत्र प्रकाशित करती हैं। ●

पुस्तक समीक्षा

हिन्दी विश्वकोष भाग ६ : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। पृ० ५०२। मूल्य ३० रु०। प्रथम संस्करण १९६७।

हिन्दी विश्वकोष का यह ९वाँ खंड ६५१ लेखों से युक्त है। इसमें ५ रंगीन चित्रों के साथ अनेकानेक सादे चित्र एवं रेखाचित्र हैं। इस खंड में "भारतीय जमींदारी प्रथा" से लेकर 'योहन' तक के शीर्षकों पर अधिकारी विद्वानों के लेख संग्रहीत हैं। सभी लेख अत्यन्त सारगर्भित हैं। छपाई सुन्दर एवं त्रुटिरहित है। अन्य खण्डों की भाँति यह भी संग्रहणीय है। राष्ट्रभाषा में प्रकाशित यह पहला विश्वकोष है जो अत्यन्त सुनियोजित ढंग से लिखित, सम्पादित एवं प्रकाशित हो रहा है। सभा इस महत् कार्य के लिये देश भर की प्रशंसा-पात्र है।

सादे चित्रों में पृ० १२ के सम्मुख भारतीय पादपों और वृक्षों के चित्र यदि रंगीन छापे गये होते तो आकर्षक तथा सूचनाप्रद होते। आशा है भविष्य में इस कमी को दूर करने का प्रयास होगा। ●●

भारतीय भाषायें : उनका सम्मान

पंजाब सरकार ने बैशाखी के पुण्य पर्व के अवसर पर यह निश्चय किया है कि राज्य में गुरमुखी लिपि का व्यवहार प्रारम्भ हो जावेगा फलतः न केवल राज्य के अन्तर्गत वरन् केन्द्र के साथ पत्राचार के समय इसी लिपि का प्रयोग किया जावेगा। वस्तुतः यह ऐसा अनुष्ठान है जिसकी प्रशंसा सभी भारतीय भाषायें एक स्वर से करेंगी क्योंकि उनके लिए भी उन्नति का मार्ग इसी प्रकार प्रशस्त हो सकेगा।

यदि समस्त भारतीय भाषायें इसी पथ का अनुसरण करें तो देश में वैज्ञानिक वातावरण बनाने में पर्याप्त सुगमता हो। हमारा विश्वास है कि इससे हिन्दी के पद या सम्मान में कोई बाधा नहीं पहुँचेगी। जब सभी प्रान्त भाषा के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर हो लेंगे तो उन्हें राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होगी।

भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्

इस मास संसद में एक विलक्षण उद्घाटन किया गया है कि भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् में कम से कम २४१ कर्मचारी ऐसे नियुक्त हैं जो वैज्ञानिक विषयों में पारंगत नहीं हैं। कुछ संसद सदस्यों के अनुरोध पर माननीय शिक्षा-मन्त्री ने इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिये एक समिति नियुक्त की है और उन्होंने आशा व्यक्त की है कि शीघ्र ही वास्तविक तथ्यों से संसद को अवगत किया जावेगा।

यह विलक्षण उद्घाटन सामान्य जनों को ही नहीं वरन् वैज्ञानिक क्षेत्रों से सम्बन्धित लोगों को भी दहलाने वाला है। वास्तविकता चाहे जो भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि संसद की आँखों के तले यह विलक्षण घटना घटती रही और इतने दिनों तक किसी को पता ही नहीं चला।

हमारा विश्वास है कि डा० आत्माराम जैसे कुशल निदेशक के कार्यकाल में भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् का सम्यक् परिष्कार सम्भव हो सकेगा। भारतीय साइंस कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने "वैज्ञानिक नीति' के ही समान जिस टेक्नालाजिकल नीति का प्रस्ताव रखा था उसे वे स्वीकृत कराके भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में युगान्तर स्थापित कर सकेंगे। स्वाधीन भारत के लिये ऐसी नीतियाँ वरदान सिद्ध होंगी, यदि उन पर शीघ्र ही अमल किया जाय।

●●

अप्रैल-मई १९६८ विज्ञान पंजीकृत संख्या एल—१७५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विषय-सूची

प्रकाशक—डा० हीरा लाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

भाग १०४
संख्या ६-११

जून-नवम्बर, १९६८

वार्षिक ४·००
एक प्रति ४० पैसे

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | चैत्र-अगहन २०२५ विक्र०, १८९० शक जून-नवम्बर १९६८ | संख्या ६-११

वैज्ञानिक शब्दावली और विद्यार्थी

नंदलाल जैन

हमारे देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व जो भी स्थिति रही हो, लेकिन यह आशा की जाती थी कि उसके बाद वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी में या मातृ-भाषाओं में होने लगेगी। एक पीढ़ी से भी अधिक समय हो गया है, लेकिन शिक्षा के माध्यम के विषय में आज भी विवाद बना हुआ है। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी या मातृ-भाषायें अवश्य बन गई हैं, लेकिन उससे विद्यार्थियों की कठिनाई बढ़ी है क्योंकि उनमें प्रयुक्त शब्दावली में पर्याप्त विभिन्नता है। मुझे इस वर्ष के माध्यमिक शिक्षा में बैठे एक परीक्षार्थी ने बताया है कि तीन वर्ष के (९-११ कक्षा) पाठ्यक्रम में उसे तीन बार पुस्तकें खरीदनी पड़ी हैं और जब प्रश्न पत्र आया, तो देखा कि उसमें प्रयुक्त शब्दावली कुछ और ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि **हिन्दी में विज्ञान की शिक्षा को सार्वत्रिक करने में शब्दावली निर्माता, पाठ्यपुस्तक लेखक व प्रकाशक, विभिन्न माध्यमिक परीक्षा मंडल और कुञ्जियाँ-प्रकाशक ये सभी समवेत मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहे हैं।** यही कारण है कि हिन्दी-क्षेत्र के एक ही प्रदेश में (मध्य प्रदेश) भी प्रयुक्त शब्दावली में पर्याप्त विविधता पाई जाती है। हम पृष्ठ ३ की **सारणी में** कुछ ऐसे अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों की सूची दे रहे हैं जिनके लिये इस वर्ष म० प्र० माध्यमिक शिक्षा मंडल के प्रश्न पत्रों व पाठ्यपुस्तकों, कुंजियों व मानक शब्दावली (१९६४) में दिये गये शब्दों की विविधता प्रकट होती है। इस सारणी से यह पता चलता है कि यद्यपि पाठ्यपुस्तकों में मानक शब्दावली का पर्याप्त उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, किन्तु प्रश्न-पत्रों की शब्दावली अब भी पुरानी है। कुंजियों के प्रकाशक तो 'रघुवीर शब्दावली' (सल्फेट के लिये गंधेर आदि) का ही प्रयोग कर रहे हैं। शब्दावली की एकरूपता वैज्ञानिक ज्ञान के लिये अत्यन्त आवश्यक है। यह एकरूपता न केवल हिन्दी-क्षेत्र में ही हो, अपितु भारत की सभी भाषाओं में हो।

कठिनाइयाँ—एक सुझाव

सारणी में प्रदर्शित विविधता के कारण विद्यार्थियों की कठिनाई का अनुमान लगाया जा सकता है, विशेषकर उस स्थिति में जब अंग्रेजी वैकल्पिक और पूर्णतः स्वैच्छिक बना दी गई है। **इस विविधता को समाप्त करने के लिये शिक्षा-मन्त्रालय या हिन्दी निदेशालय को ठोस कदम उठाने चाहिये।** इनमें **पहला चरण** तो

माध्यमिक शिक्षा मंडलों द्वारा पाठ्यपुस्तकों के चुनाव के सम्बन्ध में ही होना चाहिये—केवल **वे ही पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित की जावें**, जिनमें मानक शब्दावली का प्रयोग हो। प्रकाशकों से भी यह आग्रह किया जाय कि वे मानक-शब्दावली के आधार पर ही वैज्ञानिक पुस्तकें या कुंजियाँ प्रकाशित करें। ऐसा भी लगता है कि म० प्र० शिक्षा-मंडल के प्रश्नपत्र बनाने या अनुवाद करने वाले विद्वान शब्दावली या पाठ्यपुस्तक की शब्दावली से अनभिज्ञ रहे हों। अतः यह भी एक प्रक्रिया हो सकती है कि अनुवाद की शब्दावली की जाँच के लिये अस्थायी रूप से कुछ व्यवस्था की जाय। शब्दावली की एकरूपता के लिये उक्त सभी एजेंसियों को सम्मिलित रूप से एवं समवेत रूप से अपना उत्तरदायित्व निभाना चाहिये।

माध्यमिक स्तर पर प्रयुक्त भाषा एवं शब्दावली ही भावी इंजीनियरों तथा विज्ञानवेत्ताओं की शब्दावली होगी। इस दृष्टि से माध्यमिक स्तर पर शब्दावली की मानकता तथा एकरूपता का महत्व और भी बढ़ जाता है। अतः यह प्रयत्न होना चाहिये कि संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र में एक ही शब्दावली का माध्यमिक स्तर पर उपयोग किया जाय। इसके लिये विभिन्न प्रदेशों के शिक्षा-मंडलों को सक्रिय समन्वयन करना होगा। यह कार्य केन्द्रीय एजेंसी के प्रारंभिक प्रयत्नों से ही संभव होगा। फलतः शब्दावली-निर्माताओं का भी यह मूल उत्तरदायित्व है कि अथक परिश्रम तथा व्यय से निर्मित शब्दावली के सार्वत्रिक प्रयोग की ओर पूर्णरूप से ध्यान देने का कष्ट करें।

वर्तमान मानक शब्दावली

यहाँ इस बात का संकेत करना अनुचित न होगा कि वर्तमान मानक शब्दावली के उपयोग से हिन्दी-क्षेत्र में भी पर्याप्त कठिनाई का अनुभव हो सकता है क्योंकि उसमें अन्य अपूर्णताओं (जैसे प्रकाशन में त्रुटियाँ आदि) के साथ-साथ हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित वैज्ञानिक शब्दों को पर्याप्त मात्रा में बदल दिया गया है। इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

शब्द	प्रचलित रूप	प्रयुक्त शब्दावली
Reaction	प्रतिक्रिया	अभिक्रिया
decomposition	विच्छेदन	अपघटन
Dissociation	विघटन	वियोजन
Electrode	विद्युदग्र	इलेक्ट्रोड

इस कारण हिन्दी क्षेत्र की कठिनाई बढ़ी है, **क्योंकि प्रचलित शब्दों को भूलने में भी समय लगेगा**। हाँ, यह ठीक था कि संदिग्ध या समानार्थी शब्दों का परिवर्तन या स्पष्टीकरण हो जाता। गैर हिन्दी प्रदेशों में तो किसी भी शब्दावली के लिये समान स्थिति होती। फिर भी राष्ट्रीय एकरूपता के लिये हमें यह कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनानी ही होगी।

अंकों की समस्या

अभी तक रोमन अंकों (1, 2, 3) का प्रयोग स्वीकृत किया गया था। उसका आधार उनका अन्ताराष्ट्रीय प्रचलन ही है। पर हिन्दी विज्ञान-साहित्य में उसका, शासकीय प्रकाशनों के अतिरिक्त, बहुत कम प्रयोग होता है। अच्छा तो यह होता कि सभी भाषाओं के अंकों की एकरूपता के लिये रोमन अंकों का प्रचलन मान्य होता। अतः विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही रोमन अंकों से परिचित कराना श्रेयस्कर है। शब्दावली एवं अंकों की एकरूपता हमारे देश की न केवल भाषात्मक एकता को बढ़ायेगी, अपितु वह भावात्मक एकरूपता को पुष्ट करने में भी सहायक होगी।

पारिभाषिक शब्दों की विविधता

शब्द	विज्ञान शब्दावली १९६४	माध्यमिक परीक्षा मध्य प्रदेश के प्रश्न-पत्र में प्रयुक्त शब्द	म. प. म. प्र. में निर्धारित पाठ्य-पुस्तक में प्रयुक्त शब्द	प्रश्नपत्र संग्रह में प्रयुक्त शब्द प्रकाशक—म० म० जनरल स्टोर्स १९६८
Acceleration due to gravity	गुरुत्वीय त्वरण	गुरुत्वाकर्षण प्रवेग	गुरुत्वजनित त्वरण	गुरुत्वजनित त्वरण
Stress	प्रतिबल	चाप	प्रतिबल	प्रतिबल
Strain	विकृति	विक्रिया	विकृति	विकृति
Pressure	दाब	दबाव	दाब	दबाब
Specific Heat	विशिष्ट उष्मा	आपेक्षिक ताप	विशिष्ट उष्मा	आपेक्षिक उष्मा
Alcohol	अलकोहल	मद्यसार	ऐल्कोहाल	—
Coeff. of thermal conductivity	उष्मा चालकता का गुणांक	ताप संचालकता गुणांक	उष्मा चालकता गुणांक	उष्मीय संवाहकता
Apparent	आभासी	प्रतीयमान	आभासी	आभासी
Thermometer	तापमापी	तापमापक	तापमापी	—
Young's Modulus	यंग का गुणांक	यंगमापांक	यंग प्रत्यास्थता गुणांक	यंग प्रत्यास्थता गुणांक
Adiabatic	रुद्धोष्म	स्थिरोष्म	रुद्धोष्म	रुद्धोष्म
Thermocouple	ताप वैद्युत युग्म	उष्मोष्म	ताप वैद्युत युग्म	—
Lateral Inversion	पार्श्व परिवर्तन	पार्श्विक उत्क्रमण	पार्श्व परिवर्तन	—
Astronomical telescope	खगोलीय दूरदर्शक	ज्योतिष दूरदर्शी	खगोलीय दूरदर्शक	—
Dip circle	नतिमापी	नमनमापक	नतिमापी	नमनवृत
Electrophorus	इलेक्ट्रोफोरस	विद्युन्धर	इलक्ट्रोफोरस	—
Transformer	परिणामित्र	विभव परिवर्तक	ट्रान्सफार्मर	—
Shunt	शंट, पार्श्वपथ	पार्श्ववाही	शंट	शंट
Manufacture	निर्माण	कल्पन	कल्पन	औद्योगिक निर्माण
Reaction	अभिक्रिया	प्रतिक्रिया	प्रतिक्रिया	प्रतिक्रिया
Process	विधि	प्रक्रम	विधि	विधि
Phosphorus	फास्फोरस	फास्फोरस	फास्फोरस	स्फुर
Amphoteric	उभयधर्मी	उभयओषिद	उभयधर्मी आक्साइड	
Hydrogen	हाइड्रोजन	उद्जन	हाइड्रोजन	उद्जन
Confirmatory	संपोषक	संपोषक	निश्चयात्मक	—

विश्राम

१	२	३	४	५
Filter	फिल्टर	छन्ना	छन्नक	—
Reduction	अपचयन	लध्वीकरण	अवकरण	लध्वीकरण
Electrolysis	विद्युत अपघटन	वि-द्विश्लेषण	विद्युत विच्छेदन	विद्युत विश्लेषण
gareous	गैसीय	वाती	गैसीय	—
Decomposition	अपघटन	विघटन	विच्छेदन	विच्छेदन
Enzyme	एनजाइम	खमीर	एनजाइम विकर	
Polymerisation	बहुलकीकरण	बहुलीकरण	बहुलीकरण	पालीमेराइजेशन
Empirical formula	मूलानुपाती सूत्र	अनुपाती सूत्र	अनुसांगिक सूत्र	मात्रिक सूत्र
Fraction	प्रभाज	प्रभाजन	अंश	
Heat	उष्मा	ताप	उष्मा	
ovary	अंडाशय	डिंबग्रन्थि	अंडाशय	अंडाशय
Anaerobic Respiration	अवायु श्वसन	आक्सीजन इतर श्वसन	आक्सीजन रहित श्वसन	आक्सीजन रहित श्वसन
Evolution	विकास	जीवोविकास	विकासवाद	कार्बनिक विकास
Xerophytes	मरूद्भिद	शुष्कतोद्भिद	मरुद्भिद	जीरोफाइट्स

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

२% होता है। यह वायुयान बनाने के काम में लाया जाता है।

(२) ऐलनिको— इसको स्थायी चुम्बक के काम में लाया जाता है। इसमें अल्यू० २०%, इस्पात ५०%, कोबाल्ट १०% और निकेल २०% होता है।

(३) मैग्नेलियम—इसमें मैगनीशियम ५·३%, अल्यूमिनियम ९४·७% होता है। यह कठोर, शक्तिशाली मिश्र धातु है। यह मिश्रधातु मशीनों के पुर्जे व तुलायें बनाने के काम में आती है।

लोहे की वस्तुओं को जंग लगने से बचाने के लिये उन पर अल्यूमिनियम का पेंट लगा दिया जाता है।

विदेशों में रेल के डिब्बे अल्यूमिनियम के भी बनाये जाते हैं।

हल्केपन के गुण के कारण ही यह पुलों के निर्माण में भी काम में लायी जाती है।

लम्बे पुलों के निर्माण में पुल के कुल भार का ८० प्रतिशत भाग उन वस्तुओं का होता है जो स्वयं पुल के भार को सहन करने के लिये इस्तेमाल की जाती हैं।

यदि पुल का फर्श अल्यूमिनियम का बना हो तो खम्भों पर आने वाले भार को कम किया जा सकता है।

टूथ पेस्ट, शेविंग क्रीम, रंग-रोगन तथा पेट्रोलियम जनित वस्तुओं को रखने के लिये भी अल्यूमिनियम के बनें ट्यूबों का उपयोग किया जाता है।

अल्यूमिनियम के गुणों का जितना वर्णन किया जाय, कम है। वास्तव में यह बहुउपयोगी धातु है। सच कहा जाय तो आज हम लोह युग में से निकल कर अल्यूमिनियम युग में प्रवेश कर रहे हैं।

आज के युग में अल्यूमिनियम बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण धातु है।

उपयोगी धातु—अल्यूमिनियम

श्याम मनोहर व्यास

अल्यूमिनियम एक बहुत उपयोगी धातु है। इसका महत्व आज से नहीं बल्कि सैकड़ों वर्षों से है। फ्रांस के इतिहास के अवलोकन से विदित होता है कि नैपोलियन के समय में दावतों में सम्मानित व्यक्तियों को अल्यूमिनियम के चम्मच और गिलास दिये जाते थे जबकि कम सम्मानित व्यक्ति को सोने तथा चाँदी के। कहने का अभिप्राय यह है कि उस समय में सोने-चाँदी की अपेक्षा अल्यूमिनियम का अधिक महत्व था।

प्रारम्भ में अल्यूमिनियम की गणना एक अत्यधिक दुर्लभ खनिज के रूप में की जाती थी, परन्तु अब अमेरीका में इसका इतना विस्तृत पैमाने पर उपयोग हो रहा है कि वहाँ विविध कार्यों में प्रयुक्त होने वाली धातुओं में इसे दूसरा स्थान प्राप्त है।

अल्यूमिनियम धातु आवर्त्त सारणी के **तीसरे वर्ग** के अन्तर्गत आती है। इसे Al द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसका परमाणु भार २६·९७ है और परमाणु संख्या १३ है। संयोजकता ३ है। इसका अर्थ है इसके परमाणु-नाभिक के चारों ओर प्रथम कक्षा में २, द्वितीय कक्ष में ८ तथा तृतीय कक्ष में ३ इलेक्ट्रोन चक्कर लगाते हैं।

यह श्वेत रंग की हल्की धातु है। साधारण अल्यूमिनियम का आपेक्षिक घनत्व २·७ होता है। इसका गलनांक ६५७° से० तथा क्वथनांक १८८०° से० है। इसकी विद्युत् संचालकता ताँबे की विद्युत् संचालकता के ६० प्रतिशत के बराबर होती है।

उपस्थिति

अल्युमिनियम मुक्त अवस्था में नहीं पाया जाता। इसके **यौगिक** अनेक हैं यथा यह लगभग सभी सिलीकेट पत्थरों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ—फेल्स्पार (Felspar), टोउरमेलीन (Tourmaline)। यह अबरक, चीनी मिट्टी तथा स्लेट पत्थरों में पाई जाती है। अल्यूमिनिय आक्साइड (Al_2O_3) भी इसका प्रमुख यौगिक है। इसका मुख्य आक्साइट बॉक्साइट (Al_2O_3 $2H_2O$) कहलाता है। Na_3AlF_6 (सोडियम अल्यूमिनियम फ्लोराइड) यौगिक में भी Al पाया जाता है। एल्यूमिनियम फास्फेट ($AlPO_4$) भी महत्वपूर्ण यौगिक है।

इस प्रकार मिट्टी और चट्टानों में पाई जाने वाली वस्तुओं का लगभग **बारहवाँ हिस्सा** अल्यूमिनियम है।

बाक्साइट मध्य प्रदेश, कश्मीर, भोपाल, बम्बई, रीवाँ और मद्रास में पाया जाता है।

धातु का निष्कर्षण

प्राचीन समय में यौगिक से शुद्ध अवस्था में बड़ी मात्रा में अल्यूमीनियम प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य था।

अल्यूमिनियम उद्योग की वर्तमान प्रगति का श्रेय **हाल और हेरोल्ट** नामक धातु-विशारदों को है।

सन् १८८६ में हाल ने अमेरीका में तथा हेरोल्ट ने फ्रांस में ऐसे द्रव के घोल का आविष्कार किया जिससे विद्युत् अपघटन द्वारा अल्यूमिनियम प्राप्त किया जा सके। हाल की विधि में बाक्साइट से अल्यूमिनियम प्राप्त किया जाता है।

हाल की विधि इसमें अयस्क ($Al_2O_3 2H_2O$) को सोडियम कार्बोनेट के साथ मिलाकर पिघलाया जाता है। रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप सोडियम अल्यूमिनेट, कार्बन डाइ आक्साइड व जल का निर्माण होता है।

Al_2O_3 २ $H_2O + Na_2CO_3$ = २Na AlO_2 + CO_2 + २HO_2 अघुलित आयरन आक्साइड, सिलिका आदि अशुद्धियाँ अवशेष के रूप में बच रहती हैं। गर्म करने पर निर्जल अल्यूमिनियम आक्साइड प्राप्त होता है। रासायनिक क्रिया इस प्रकार है—

२ $NaAlO_2$ + ३ $H_2O + CO_2 = Al_2O_3$ ३ $H_2O + Na_2 CO_3$.

Al_2O_3 २HO_2 = Al_2O_3 + ३ H_2O
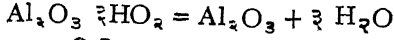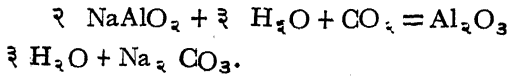
बायर विधि— इस विधि में अयस्क को कास्टिक सोडा के साथ मिलाकर १५०°C पर गर्म किया जाता है। रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप सोडियम अल्यूमिनेट बनता है और शेष अशुद्धियाँ अघुलित रह जाती हैं।

Al_2O_3 २ HO_2 + २NaOH = २ $NaAlO_2$ + ३ H_2O सोडियम अल्यूमिनेट को पानी के साथ गर्म करने पर अल्यूमिनियम हाइड्राक्साइड प्राप्त होता है।

$NaAlO_2$ + २H_2O = NaOH + $Al(OH)_3$ और गर्म करने पर

२ Al $(OH)_3$ = Al_2O_3 + ३ HO_2.
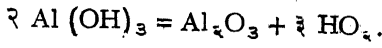
सरपेक विधि—इस विधि में अयस्क को कार्बन के साथ गर्म किया जाता है और फिर नाइट्रोजन गैस प्रवाहित की जाती है। प्रथम अल्यूमिनियम नाइट्राइड बनता है। उसके पश्चात् अल्यूमिनियम हाइड्राक्साइड बनता है।

Al $(OH)_3$ को गर्म करने पर अल्यू० -आक्साइड बनता है।

Al_2O_3 २ H_2O + ३ C + N_2 = २ Al N + ३ CO + २ H_2O .

Al N + ३ H_2O = Al $(OH)_3$ + N H_3

२ Al $(OH)_3$ = Al_2O_3 + ३ H_2O.
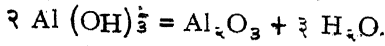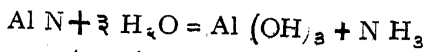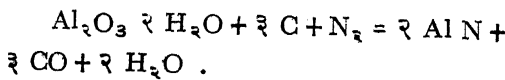
अल्यूमिना का विद्युतअपघटन—अभी तक केवल बाक्साइट शुद्ध अवस्था में प्राप्त हुआ है। इसके पश्चात् हैरोल्ट व हॉल की विधि द्वारा बाक्साइट से अल्यूमिनियम प्राप्त किया जाता है।

विद्युत् अपघटन के लिये लोहे की एक टंकी ली जाती है जिसके अन्दर कार्बन का अस्तर लगा होता है। लोहे की टंकी को ऐनोड (anode) बनाया जाता है। कैथोड के रूप में कई कार्बन की लम्बी छड़ें काम में लाई जाती हैं।

वैद्युतिक रासायनिक क्रिया के लिये विद्युत् अपघट्य द्रवित क्रायोलाइट ($Na_3Al F_6$) में अल्यूमिनिया आक्साइड मिलाया जाता है। क्रायोलाइट अल्यूमिनियम और सोडियम का द्विविध फ्लोराइड है जो ग्रीनलैंड में काफी मात्रा में मिलता है और वहीं से सर्वत्र भेजा जाता है।

अभिक्रिया में ताप ९००° से ९५०° से० के बीच रखा जाता है। टंकी में पड़े द्रव के ऊपरी तल पर कोयले के टुकड़े बिछे रहते हैं जो ऊष्मा के कुचालक होने से भीतरी द्रव के विलयन को ठण्डा नहीं होने देते।

विद्युत् प्रवाह से (Al_2O_3) का विभाजन हो जाता है। और इस प्रकार शुद्ध अल्यूमिनियम प्राप्त होता है।

२ Al_2O_3 = ४ Al_3 + O_2.
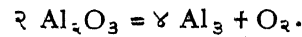
अल्यूमिनियम पिघली हुई अवस्था में प्राप्त होता है और नीचे बैठ जाता है जहाँ निकास द्वार से इसे समय-समय पर निकालते रहते हैं। आक्सीजन गैस कार्बन एनोडों पर एकत्रित होती है और कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) गैस बनती रहती है।

इस विधि से प्राप्त अल्यूमिनियम ४९% शुद्ध होता है।

विद्युत् शोधन— यह विधि हूप ने निकाली थी। एक लोहे के बक्स में कार्बन का अस्तर लगाया जाता है। इसमें पिघले हुये द्रवों के तीन परत होते हैं। सबसे ऊपर शुद्ध अल्यूमिनियम होता है जो कि ऐनोड का काम भी करता है। बीच का परत अल्यूमिनियम, बेरियम

और सोडियम के फ्लोराइडों का मिश्रण होता है। सब से नीचे अशुद्ध अल्यूमिनियम होता है।

विद्युत् प्रवाह से शुद्ध अल्यूमिनियम ऊपर के ऐनोड पर विसर्जित होता है और नीचे अशुद्ध अल्यूमिनियम व अन्य अशुद्ध धातुयें अलग होती रहती हैं।

अल्यूमिनियम की प्राप्ति में विद्युत् दो कार्य करती हैं :—

(१) अल्यूमिना (Al_2O_3) का वैद्युत् अपघटन

(२) तापोत्पादन द्वारा विद्युत अपघट्य (Electrolyte) को द्रव के रूप में रखना।

उपयोग

यद्यपि अल्यूमिनियम धातु-परिवार का सबसे छोटा सदस्य है पर इसने आधुनिक युग में काफी व्यापारिक महत्व प्राप्त कर लिया है। विद्युत् प्रक्रिया द्वारा इसे शुद्ध अवस्था में प्राप्त कर आसानी से ढाला जा सकता है, गढ़ा जा सकता है और अन्य धातुओं के साथ मिलाया जा सकता है।

(१) हल्केपन के कारण यह विद्युत् उद्योग में ताँबे का तथा अन्य उद्योगों में इस्पात का स्थान लेता जा रहा है।

(२) वायुयानों के निर्माण में मजबूत व हल्की धातुयें प्रयुक्त होती हैं इसलिये अल्यूमिनियम वायुयान के पुर्जों के निर्माण में काफी काम में लाया जाता है।

(३) हल्केपन के कारण इससे मोटरों, बसों व रेल-गाड़ियों के विविध-विविध पुर्जे बनाये जाते हैं।

(४) अल्यूमिनियम में एक मुख्य गुण यह है कि इसके ऊपर आक्साइड की एक परत जम जाती है जिससे मौसम का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस परत की मोटाई एक इंच के करोड़वें भाग के बराबर होती है। यह धातु से उसी तरह चिपकी रहती है जिस तरह हमारे शरीर से चमड़ा चिपका रहता है।

(५) दूर-दूर तक बिजली ले जाने वाले तारों में अब ताँबे की जगह अल्यूमिनियम का इस्तेमाल हो रहा है।

(६) बर्तन आदि बनाने के लिये भी यह एक अच्छी धातु है।

(७) वैकुयम क्लीनर, टोस्टर तथा रेफरीजरेटेर के अनेक भाग इसी से बनाये जाते हैं।

(८) खगोलशास्त्री अपने दूरदर्शक यन्त्रों में शुद्ध अल्यूमिनियम का उपयोग करते हैं।

(९) इमारतों, रासायनिक उद्योगों, बर्तन, खाद्य, फर्नीचर, विद्युत् यन्त्र, पेंट, रेडियो, ट्रान्समीटर, रेल, रबर, मुद्रण, आतिशबाजी सम्बन्धी सामान, इस्पात आदि सब में अल्यूमिनियम की आवश्यकता पड़ती है।

कहने का अभिप्राय यह है मिठाइयों के वरक से लेकर इमारती अवयव तक इससे बनते हैं।

(१०) पृथ्वी के गर्भ में ८·१% अल्यूमिनियम विद्यमान है, अल्यूमिनियम में **मिश्र धातुयें** बनाने की काफी क्षमता है। ताँबा, सिलिकन, मैगनीशियम, मैंगनीज, निकेल और टंगस्टन के साथ मिलकर अल्यूमिनियम मिश्र धातुयें बनाता है। वायुयानों में अल्यूमिनियम से बनाई गई मिश्र धातुयें ही काम में लाई जाती हैं क्योंकि ये शुद्ध अल्यूमिनियम से पाँच गुनी दृढ़ होती हैं। इनकी कठोरता अधिक होती है और ये संघात (आकस्मिक धक्के) सरलता से सम्हाल सकती हैं।

(११) अल्यूमिनियम के बारीक पन्ने तम्बाकू, चाय, सिगरेट, मिठाई आदि लपेटने के काम में भी आते हैं।

(१२) अलसी तेल के में मिला कर अल्यूमिनियम पाउडर से रजत (Silver) पेंट बनाया जाता है।

(१३) आयरन आक्साइड से मिलाकर इस पाउडर से थरमिट मिश्रण बनाते हैं जो लोहे के टुकड़ों को जोड़ने के काम में आता है।

(१४) यह पाउडर क्रोमियम व मैंगनीज को उनके आक्साइडों से प्राप्त करने में भी काम में आता है।

मिश्र धातुयें

अल्यूमिनियम की मुख्य तीन मिश्र धातुयें हैं।

(१) ड्युरेल्युमिन—इसमें अल्यू० ९२·५%, मैंगनीशियम १·५% और ताँबा ४% तथा मिकेल

(शेषांश पृष्ठ ४ पर)

अमेरिकन साइंटिस्ट (जून १९६१) के आधार पर लिखित

जीवविज्ञान और जन-सेवा

डा० शिवगोपाल मिश्र

कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में जीवविज्ञान की सम्प्रयोगिता स्वतः सिद्ध है किन्तु ऐसा नहीं है कि जीवविज्ञान इन दोनों क्षेत्रों में सदैव उपयोगी ही होता हो। सम्भवतः ठीक से विचार न किये जाने के ही कारण अनेक प्रयोग ऊपर से उपयोगी प्रतीत होते हैं किन्तु उनके मूल में पैठने पर उनकी न्यूनतायें एवं उनके दुष्प्रयोग प्रकट होने लगते हैं। यही बात जीवविज्ञान के सम्बन्ध में भी लागू होगी।

१०० वर्ष पूर्व तक यह माना जाता था कि यह विश्व कतिपय भौतिक शक्तियों द्वारा संचालित है जिसमें जैव-प्रक्रम अपवाद स्वरूप है। 'जीवन' ऐसी शक्ति है जो भौतिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। फलतः दो प्रकार की मान्यतायें प्रचलित रहीं—प्रत्येक प्राणी प्रारम्भ में उत्पन्न होकर स्वतः वृद्धि करता रहा तथा कुछ प्राणी अक्रिय पदार्थ से स्वतः उत्पन्न हुए।

यह कहा जाता है कि मनुष्य का स्वभाव एवं उसका सामान्य बोध ये दो कभी परिवर्तित नहीं होते। किन्तु अब यह सभी अनुभव करने लगे हैं कि इनमें परिवर्तन हुआ है। पहले यह सभी मानते थे कि पृथ्वी चपटी है और सूर्य उसके आरपार यात्रा करता है। इसी प्रकार मक्खियों की उत्पत्ति सड़े मांस से मानी जाती थी। चूँकि ये बातें आँखों द्वारा दिखाई पड़ती थीं अतः इनके सम्बन्ध में सन्देह नहीं उठता था। किन्तु ये विश्वजनीन तथ्य होने पर झुठला गये क्योंकि अब यह सामान्य बोध की बात बन गई है कि पृथ्वी घूमती है और मक्खियाँ अंडों से प्रसूत हैं। इस प्रकार के सामान्य बोध में परिवर्तन के लिये विज्ञान उत्तरदाई है।

जीवविज्ञान वस्तुतः ऐसी ही विज्ञान की शाखा है जिसने जीवनदायी "शक्ति" को ठुकराया फलतः कुछ लोगों ने इसका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान से जोड़ना उचित समझा। आजकल जीवविज्ञान की दो प्रमुख शाखायें मान्य हैं—आणविक जीवविज्ञान (molecular biology) एवं प्राणि विज्ञान (organismal biology)।

यह सोचना कि जीवित प्रणाली में तथा निर्जीव प्रणाली में कोई भेद न होगा ठीक वैसा ही जैसा कि यह कहना कि जीवित और मृत में कोई अन्तर नहीं है। भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत व्यवहृत प्रणालियाँ अपेक्षतया सरल होती हैं किन्तु जीवित प्रणाली-जीव-पर्याप्त जटिल होती हैं। फलतः ऐसी प्रणाली के अध्ययन के लिए सरल रचकों का अध्ययन उपादेय होगा किन्तु इस प्रकार से किसी भी प्राणी के जीवन की व्याख्या नहीं की जा सकती। जीवन तो अनेक सरल अभिक्रियाओं का समाहार है ठीक वैसे ही जैसे कि कोई टेलीविजन सेट। इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि पहले भौतिक नियम ज्ञात हों बल्कि वास्तविकता यह है कि किसी स्वीकृत सिद्धान्त के आधार पर उसका रासायनिक आधार ढूँढा जाता है। उदाहरणार्थ, मेंडल के आनुवंशिक सिद्धान्त के बाद ही जीवन के क्रियासूत्रों (genes) —डी० एन० ए० आदि की खोज हुई। यह नहीं कि पहले DNA की खोज हुई हो और उसके आधार पर जीवन की व्याख्या की गई हो।

भौतिक रसायन के अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि विभिन्न प्रकारों के अन्तर्गत व्यक्तिगत विभेद नहीं होगा किन्तु जीव रसायन में जीवों को इस प्रकार

प्रकारों में विभाजित नहीं किया जा सकता। जीवों में विभिन्नता उनकी प्रकृति में ही पाई जाती है और इसी के आधार पर आनुवंशिकता की घटना चरितार्थ होती है।

भौतिक विज्ञानों का कोई इतिहास नहीं। गुरुत्वाकर्षण या नाभिकीय बल आज भी उसी रूप में हैं जैसे वे सैकड़ों वर्ष पूर्व थे अर्थात् काल का कोई प्रभाव नहीं देखा जाता। फलतः सिद्धान्तों या परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती है। इन्हीं परिकल्पनाओं पर ही भौतिक विज्ञान निर्भर है किन्तु यह जीवविज्ञान के लिये सत्य नहीं। जीवों का इतिहास है। उनके विकासवाद की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

भौतिक विज्ञान का सबसे बड़ा दोष है उद्देश्य-विहीनता। यदि यह पूछा जाय कि हाइड्रोजन और आक्सीजन जल क्यों बनाते हैं तो वैज्ञानिक हँसने लगेंगे किन्तु क्या ऐसे प्रश्नों का पूछा जाना निष्प्रयोजनीय है। वैज्ञानिक सोचते हैं कि ऐसे प्रश्न तो जीवविज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। यह सच हैं कि जीवविज्ञान प्रयोजनीय विज्ञान है। रसायनज्ञों को DNA के बारे में जानकारी थी किन्तु जब तक जीव वैज्ञानिकों ने जीवों में इसकी सक्रियता एवं महत्व को खोज नहीं निकाला तब तक उसके प्रति वैज्ञानिकों में विशेष चर्चा नहीं थी।

अणु से ऊपर कोशा, अंग, जीव; प्रजाति आदि जिनमें जीवन है वहीं से जीव विज्ञान प्रारम्भ होता है। अणु से नीचे के क्षेत्र भौतिक विज्ञान की सीमा में आते हैं।

औषधि विज्ञान ने ऐसी अनेक आश्चर्यमयी दवायें खोज निकाली हैं जिनके द्वारा रोगोत्पादक जीवाणुओं का अन्त किया जा सकता है। किन्तु यह देखा गया है कि ऐसी दवायें रोग को समूल नष्ट करने के बजाय अन्त में ऐसे रोगोत्पादक जीवाणुओं को विकसित करने में सहायक होती हैं जो उनके प्रति सर्वथा प्रतिरोधी होते हैं। अतः यह आशंका व्यक्त की जाने लगी है कि रोगाणुओं के विनाशकारी रसायन अब सर्वथा बेकार सिद्ध हो जावेंगे और रोगों पर विजय की सारी आशाओं पर पानी फिर जावेगा। प्रारम्भ में कीटाणुनाशी अणु ने एक कीटाणु की एक ऐसी प्रतिक्रिया में हस्तक्षेप किया जो उसके लिये आवश्यक थी फलतः उसकी मृत्यु हो गई किन्तु यदि यह ध्यान दिया जाता कि जीवाणु कोई प्रकार न होकर अत्यन्त विभिन्नतापूर्ण जनसंख्या के सदस्य हैं तो यह समझ में आ जाता कि एक कीटाणुनाशी अन्ततः समस्त जीवों के लिए घातक नहीं होगा।

यही नहीं, इन कीटाणुनाशी दवाओं का प्रभाव अन्य हानिकारक सूक्ष्मजीवों पर पड़ा है क्योंकि अन्ततः कीटनाशियों का प्रभाव पूरे पर्यावरण पर पड़ता है केवल हानिकारक कीटों पर ही नहीं अतः कीटाणुओं के विनाश के साथ ही साथ अन्य जीवों पर उनके प्रभाव का सही-सही मूल्यांकन होना चाहिए।

फलतः यह कहा जा सकता है कि कीटाणुनाशी दवाओं से लाभ के बजाय हानि हुई है किन्तु यह तो अवश्यम्भावी है क्योंकि दवाओं के प्रयोग से पारिस्थितकी परिवर्तन तो होंगे ही किन्तु जन-कल्याण को ध्यान में रखते हुये केवल ऐसे परिवर्तन लाने होंगे तो अहितकर न हों।

यह भलीभाँति ज्ञात है कि पड़ती जमीनों को जोतने से भूमि-क्षरण हुआ है, उर्वरकों, कीटनाशियों एवं रेडियो सक्रिय अवशेषों के कारण नदियों, झीलों का जल दूषित हो गया है जिससे उनमें मछलियाँ नहीं रह सकतीं, न मनुष्य जल ही पी सकते हैं। अधिक जल द्वारा सिंचाई करने से ऊसर बने हैं। यहाँ तक कि वायुमण्डल दूषित हो चुका है। शुद्ध वायु ग्रहण करना दूभर बन गया है। धुँआ के द्वारा मीलों तक वायुमण्डल दूषित हो गया है। रेडियोसक्रिय धूलि से न जाने कितने रोगों की सम्भावना बढ़ी है। वनस्पतिमारकों को छिड़क कर फसलों के विनाश करने का कुकृत्य क्या मनुष्य पर बुरा प्रभाव नहीं डालेगा?

अतः सीमित क्षेत्र में लाभ की दृष्टि से ऐसे प्रयोग

बहुजनहिताय नहीं कहे जा सकते। इसके लिये अधिकतम लाभ और न्यूनतम हानि का दृष्टिकोण अपनाना होगा। अनेक बुराइयों के बावजूद भी भाप का इंजिन उपयोगी ही है।

आजकल विभिन्न क्षेत्रों में जितना भी अनुसन्धान कार्य चल रहा है वह भी सीमित लक्ष्यों को ध्यान में रख कर अथवा जिस संस्थान से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है उसके इंगित पर किया जाता है। उदाहरणार्थ सैन्य, अन्तरिक्ष आदि की दृष्टि से जो अनुसन्धान होंगे वे युद्ध के लिये या अन्तरिक्ष-सम्बन्धी रहस्योद्घाटन के लिये होंगे न कि पृथ्वी पर के मनुष्यों के कल्याण के निमित्त। औद्योगिक क्षेत्र में भी ऐसी ही संकुचित मनोवृत्ति को अनुसन्धान में प्रश्रय मिलता है। यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों में भी यह दोष घर करता जा रहा है। तात्पर्य यह कि जीव विज्ञान की ओर कम से कम प्रवृत्ति है।

जीवविज्ञान का भविष्य क्या होगा इसके सम्बन्ध में कुछ भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं। उदाहरणार्थ दिन प्रति दिन पृथ्वी के ऊपर मनुष्यों की संख्या में वृद्धि होनी है। यह जनसंख्या-विस्फोट प्रयुक्त जीवविज्ञान के द्वारा संचालित होगी—अधिक दवाएँ एवं अधिक अन्नोत्पादन। किन्तु क्या जब तक जनसंख्या बढ़ेगी उसके लिये अन्न तथा दवायें प्राप्त होती रहेंगी। उत्तर होगा—अवश्य। किन्तु इस समस्या का यह समाधान नहीं है।

जनसंख्या पर नियन्त्रण एकमात्र उपाय है अपने विनाश से बचने का। यह सत्य है कि विश्व भर में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ जनसंख्या बढ़ न रही हो अतः उसके रोके जाने की आवश्यकता है।

प्रायः ऐसा सोचा जाता रहा है कि शक्तिमान का जीवित रहना ही प्राकृतिक वरण है किन्तु इस मान्यता से भ्रामक धारणायें भी उत्पन्न हुई हैं। उदाहरणार्थ परोपजीवियों का विकास निरन्तर होता है किन्तु इसके विपरीत ऐसी अनेक प्रजातियों का लोप हो गया जो प्राकृतिक वरण के फलस्वरूप उदय हुई थीं; फिर भी मनुष्य जाति में प्राकृतिक वरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। ज्यों-ज्यों जनसंख्या का घनत्व बढ़ेगा त्यों-त्यों यह वरण घटने के बजाय बढ़ता जावेगा। भविष्य में मनुष्य निश्चित रूप से आज की अपेक्षा कम बुद्धिमान, कम सहयोगप्रिय होंगे। हाँ वे जनसंख्या के घनत्व के बढ़ने से उत्पन्न परिणामों के प्रति अधिक सहनशील होंगे। यदि ऐसा हुआ, तो निस्सन्देह मनुष्य की प्रकृति में परिवर्तन हो जावेगा। उन्हें स्वच्छ वायु, अधिक स्थान, सरलता आदि गुणों की आवश्यकता नहीं होगी। जिसे हम घृणित समझते हैं वही उनके लिये वन्द्य होगा फलतः प्राकृतिक वरण के द्वारा बुद्धि तत्व का ह्रास प्रमुख रूप से होगा। इससे बचने के लिये कृत्रिम वरण को अपनाना होगा।

आजकल जेनिटिक इंजीनियरी को प्रश्रय मिलने लगा है। इससे तीन प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जा रहा है।

पहला है म्यूटेशन का सूत्रपात, जो अत्यन्त सरल है किन्तु उसको रोक पाना अत्यधिक कठिन होगा। आनुवंशीय दूषित ऊतकों को डी० एन० ए० प्रविष्ट करके ठीक करना दूसरी सम्भावना है। तीसरी सम्भावना है ऐसे जीनों की उत्पत्ति जो मनचाहे प्राणी उत्पन्न कर सके। किन्तु इस सम्भावना के द्वारा लाभ की अपेक्षा हानि होने के अवसर अधिक हैं।

●●

हमारा घर-आँगन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

टूटी झोपड़ी, खपरैलों का कच्चा मकान, ईंट की बनी इमारत,— वस्तुत: ये मानवीय सभ्यता की प्रगति के उतने सूचक नहीं जितने कि रासायनिक ज्ञान के उपयोग को निर्देशित करने वाले हैं। रसायन विज्ञान ने रहने के साधनों को सुविधापूर्ण, आकर्षक एवं टिकाऊ बनाने में पूर्ण योग दिया है। काँच के आविष्कार ने घरों को प्रकाश युत बनाने एवं धूल से रहित करने में सहायता पहुँचाई है। घर की नींव को मजबूत बनाने, गन्दे पानी को बाहर ले जाने आदि में भी रसायन विज्ञान कम सहायक नहीं हुआ। आजकल का बना मकान जाड़े तथा गर्मियों में समान रूप से आरामप्रद रहता है जिसका कारण इन्सुलेशन सामग्री की खोज ही है। फिर अब केवल पत्थर और ईंटों से घर बनाने का समय नहीं रहा। इस्पात और कंक्रीट के योग से कहीं अधिक सुदृढ़ मकान बनाये जाने लगे हैं। यह सब रसायन विज्ञान का ही चमत्कार है।

आइये हम घर बनाने की सामग्रियों पर पहले दृष्टिपात करें।

घर बनाने में पत्थर, ईंट, गारा, लकड़ी, लोहा तथा काँच का ही प्रधान रूप से प्रयोग होता है।

पत्थर : सम्भवत: घर बनाने की सामग्रियों में पत्थर सबसे पुरानी सामग्री है जो प्रकृति में बिखरी हुई प्राप्त होती रही है। पत्थरों का स्रोत वे शैल हैं जिनसे पृथ्वी बनी है। वे शैल तीन प्रकार के निर्दिष्ट हुये—आग्नेय, अवसादी तथा कायान्तरित। घर बनाने के लिये ऐसे पत्थरों की आवश्यकता होती है जो सरलता से काटे छाँटे जा सकें और साथ ही प्राकृतिक वाधाओं-- यथा जलवायु के प्रभाव को सहन कर सकें। घर बनाने के पत्थरों को काफी मजबूत होना चाहिए जिससे काफी बोझ सह सकें, साथ ही पार्श्ववर्ती स्थानों में उपलब्ध हों जिससे लाने-ले जाने में कम खर्च हो। इसके साथ ही पत्थरों को आकर्षक होना चाहिए।

किसी भी पत्थर का टिकाऊपना उसकी रासायनिक संरचना, प्राकृतिक गठन, जलशोषण क्षमता, तथा वायुमंडल की दशाओं पर निर्भर करता है। सबसे कम टिकाऊ पत्थर सर्वाधिक जल सोखता है। कुछ पत्थरों की जलशोषण शक्तियाँ निम्नांकित प्रकार की देखी गई हैं :—

ग्रेनाइट तथा संगमरमर	०·०६ – ०·१६%
चूना पत्थर	५% तक
बलुआ पत्थर	५·४% तक

यह जलशोषकता जाड़े के दिनों में पत्थर को खण्ड-खण्ड करने में सहायक हो सकती है (यदि ताप अत्यन्त निम्न हो जाय तो)। बड़े-बड़े शहरों में कोयले के जलने से इतना अम्ल उत्पन्न होकर वायु में रहता है कि वह पत्थरों द्वारा अवशोषित होकर उनके अपक्षय में हाथ बटाता है।

पत्थरों की परीक्षा : प्राय: दो प्रकार की परीक्षायें की जाती हैं (१) पत्थरों पर तुषार का प्रभाव जानने के लिये **बार्ड-परीक्षा** की जाती है। इसमें पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों को ग्लाबर लवण (सोडियम सल्फेट) के सान्द्र उबलते लवण में डालकर निकाल लिया जाता है और फिर उन्हें तीन दिनों तक हवा में टँगे रहने दिया जाता है। इससे जल वाष्पित हो जाता

है और पत्थरों के छिद्रों में लवण के क्रिस्टल जम जाते हैं किन्तु साथ ही पत्थर के कुछ खंड टूट जाते हैं। परीक्षा के पूर्व तथा पश्चात् पत्थर के टुकड़ों का भार ले लिया जाता है। भार में जितनी ही अधिक कमी होती है पत्थर उतना ही तुषार के प्रति संवेदनशील माना जाता है (२) यदि पत्थर में कैल्सियम या मैग्नीशियम कार्बोनेट उपस्थित रहता है तो उसकी परीक्षा सल्फ्यूरिक अम्ल के द्वारा की जाती है। अम्ल की बूँदें पड़ते ही बुलबुले निकलने लगते हैं। धुयें के प्रति सहनशीलता की परीक्षा के लिये पत्थरों को १% सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन में डालकर कई दिनों के लिये छोड़ दिया जाता है। यदि पत्थर में ऐसे अवयव हैं जो वायु की गैसों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं तो विलयन स्वच्छ न रहकर धुंधला होगा।

यद्यपि पत्थरों के बचाव के लिये रंजक, कोलतार, पैरैफीन जैसे पदार्थों का लेप उपयोगी पाया गया है किन्तु इनसे स्थायी रूप से रक्षा नहीं की जा सकती।

ईंटें—ईंटें वस्तुतः मृदाओं से तैयार की जाती हैं। प्रारम्भ से ही मिट्टी को पकाकर उसे कठोर बनाने का ज्ञान लोगों को था। प्राचीन खुदाइयों में मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के खिलौने आदि का मिलना इसका प्रमाण है।

मृदा क्या है ? वह सोडियम, पोटैशियम, ऐल्युमिनियम तथा मैग्नीशियम की सिलिकेट है। यह मृदा शैलों के अपक्षय से बनती है। केओलीन, जिसे चीनी मिट्टी कहते हैं चिरपरिचित मृदा है।

ईंटों के बनाने में प्रयुक्त होने वाली मृदा में ऐल्युमिनियम सिलिकेट के अतिरिक्त चूना (CaO) तथा लोह आक्साइड (Fe_2O_3) रहता है। मृदा को उपयुक्त जल की मात्रा के साथ मींड़ते हैं और फिर साँचों में भरकर ईंट बना ली जाती हैं। इन ईंटों के पकाने के लिये भट्ठों का प्रयोग किया जाता है। पकाने के समय ताप को मृदा के गलनांक से कम होना चाहिए। इसीलिये प्रायः १००० से १६००° ताप पर २४ घंटे तक ईंटों को पकाया जाता है। किन्तु सभी सिलिकेट निम्नतम ताप पर नहीं संगलित होते अतः तैयार ईंटें छिद्रमय होती हैं और वे पर्याप्त जल अवशोषित कर सकती हैं। चमकदार ईंटे जल का शोषण नहीं करतीं।

ईंटों का चुनाव करते समय दो बातों पर ध्यान रखना चाहिये :—

(१) ईंटों की जल शोषण शक्ति (२) उनका उत्फुल्लन का गुण।

कभी-कभी ईंटों की दीवालों के आर-पार आर्द्रता प्रविष्ट हो जाती है। यह ईंटों के अवगुण के कारण उतना नहीं जितना कि नींव पर गारे के गलत प्रयोग के कारण होता है। उत्फुल्लन का कारण ईंटों द्वारा अवशोषित जल में विलेय लवणों की उपस्थिति होती है। जल के वाष्पन से ये लवण ईंट की सतह पर एकत्र हो जाते हैं। अच्छी किस्म की ईंटों में लवण का एकत्रीकरण नहीं होता। अच्छी ईंटों के लिये मानक निर्धारित हैं। अच्छी ईंटों को परस्पर बजाने से सुरीली आवाज निकलती है और लोहे के तेज औजार से काटने पर बिखरने के बजाय चित्तियाँ निकलती हैं।

खप्पर अथवा पनालियों के लिये ईंट का ही कच्चा सामान चाहिए। उनके आकार-प्रकार में ही अन्तर रहता है। खोखले खप्पर नालियों के बनाने में प्रयुक्त होते हैं किन्तु छतों के लिये ठोस खप्पर चुने जाते हैं।

सीमेंट तथा कंक्रीट—सीमेंट चूने (CaO) या चूना पत्थर ($CaCO_3$) तथा मृदा ($H_2Al_2(SiO_4)_2H_2O$) का मिश्रण है जिसे खूब गरम करके महीन चूर्ण के रूप में पीस लिया जाता है। सीमेंट जल के भीतर तथा खुली वायु दोनों ही स्थितियों में जम कर कठोर हो जाती है। जब सीमेंट के साथ बालू या गिट्टियाँ मिलाकर उसे कठोर बनाया जाता है तो उसे कंक्रीट कहते हैं। कंक्रीट में बन्धक पदार्थ सीमेंट ही होती है।

बाजारों में पोर्टलैंड सीमेंट की काफी इज्जत है। यह चूना पत्थर तथा मृदा को समुचित अनुपातों में

मिश्रित करके गरम करके बनाई जाती है। चुर्क में भी ऐसी ही सीमेंट बनती हैं।

कंक्रीट की विशेषता यह है कि इसे साँचों में ढाल कर इच्छित आकार-प्रकार तैयार किये जा सकते हैं। यह काफी टिकाऊ होता है और प्रति वर्ग इंच पर ७००० पौंड से अधिक दाब सहन कर सकता है। मकानों की नीवों के लिए सीमेंट के १ भाग के साथ ४-७ भाग बालू या मिट्टी मिलाई जाती है किन्तु दीवालों में १:७ का अनुपात रहता है। यद्यपि सीमेंट तथा कंक्रीट के पाटे (स्लैब) तैयार करके इच्छानुसार मकान का ढाँचा तैयार किया जा सकता है किन्तु प्रत्येक बार ऐसे पाटे तैयार किये जाने के कारण यह विधि महँगी पड़ती है।

काँच—आजकल काँच की ईंटों से मकान तैयार करने का प्रचलन है। ये ईंटें काँचे के दो बक्सों को इस प्रकार परस्पर जोड़कर बनाई जाती हैं कि एक खोखली घनाकृति बन जाय। तैयार करते समय आंशिक रूप से वायु निकाल ली जाती है जिससे ये ईंटें इंसुलेटेड हो जाती हैं। इन ईंटों से प्रकाश छनकर भीतर पहुँच सकता है। ध्वनि के प्रति भी ये ईंटें मंदक का काम करती हैं। साथ ही देखने में आकर्षक होती हैं और टिकाऊ भी।

खिड़कियों के लिये शुद्ध क्वार्टज पसन्द किया जाता है क्योंकि यह सूर्य की पराबैंगनी किरणों को प्रविष्ट होने देता है। इससे घर के भीतर के कीटाणु मर जाते हैं।

धातुयें—अनेक धातुयें तथा मिश्रधातुयें मकान बनाने में उपयोगी हैं। ये मकान के बनाने के लिये विविध अवयवों में प्रयुक्त होती हैं। उदाहरणार्थं, कीलें, बोल्ट स्क्रू, ताले, छड़ें आदि सभी धातुओं या मिश्रधातुओं से बनती हैं। कांस्य एक मिश्रधातु है जिसमें ताम्र तथा वंग (टिन) मिला रहता है। इसका प्रयोग दरवाजों की सिटकिनियों, तालों, तथा कब्जों के के लिये होता है। ढलवाँ लोह, सीसा, ताम्र, पीतल आदि का प्रयोग पानी के नलों तथा पाइप लाइन बनाने में होता है।

आजकल फैक्टरियों में इस्पात के बनाये गये मकानों के प्रयोग का रिवाज है। मकान के विभिन्न अंगों को फैक्टरियों में ढालकर तैयार किया जाता है और वांछित स्थान पर उन्हें लाकर जोड़कर मकान खड़ा कर दिया जाता है। ऐसे मकान तुरन्त तैयार हो जाते हैं।

धातु के अतिरिक्त 'प्लाई वुड' के बने मकान भी तैयार किये जाते हैं। ऐसे मकानों की दीवालें अत्यन्त पतली होती हैं, उनमें अग्नि-काण्ड होने का खतरा नहीं रहता।

लकड़ी—मकान बनाने में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली सामग्री लकड़ी ही है। लकड़ी रासायनिक रूप से सेल्यूलोस $(C_6H_{10}O_5)x$ है जिसमें सूक्ष्म मात्रा में खनिज भी रहते हैं। शुष्क लकड़ी में ५० % कार्बन का होता है और शेष हाइड्रोजन तथा आक्सीजन का। सभी प्रकार की लकड़ियों का रसायनिक संगठन ऐसा ही होता है। समस्त लकड़ियों का संश्लेषण हरे पौदों द्वारा सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डल की कार्बन डाइ आक्साइड तथा जल के द्वारा हुआ है। इस संश्लेषण में पौदों का क्लोरोफिल उत्प्रेरक का कार्य करता है।

यद्यपि सभी लकड़ियों का रासायनिक संघटन एक जैसा होता है किन्तु **उनके भौतिक गठन में अन्तर होता है**। इसीलिये विभिन्न प्रकार के पेड़ों की लकड़ियाँ भिन्न होती हैं। सभी लकड़ियों में पाया जाने वाला सेल्यूलोस खड़ी नलिकाओं या सेलों (कोशाओं) के रूप में व्यवस्थित रहता है। ये सेल जल के संचालन, जड़ों से भोज्य पदार्थों के यातायात, पाचित भोज्य पदार्थ के संचय आदि में अत्यन्त उपयोगी होते हैं। पौदों की समस्त जीवन-क्रियायें इन्हीं सेलों के द्वारा संचालित होकर लकड़ी या दारु को जन्म देती हैं।

लकड़ियों का गृह-निर्माण सामग्री के रूप में उपयोग कोशकीय संरचना के ही कारण है। जब हम लकड़ी में कील ठोंकते हैं तो कोशा के रिक्त स्थान उसे प्रविष्ट होने में सहायक होते हैं। इस प्रकार लकड़ी के अनेक खंड परस्पर जोड़े जा सकते हैं।

लकड़ियों का **कोटि-निर्धारण** उनकी **कठोरता** के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार जो लकड़ियाँ मुलायम होती हैं वे **मुलायम** लकड़ी तथा जो कठोर होती हैं वे **कठोर लकड़ी** कहलाती हैं।

मुलायम लकड़ी के उदाहरण हैं—नुकीली पत्ती वाले वृक्षों या सदा हरे रहने वाले वृक्षों की लकड़ी; जब कि कठोर लकड़ी चौड़े पत्ते वाले वृक्षों से प्राप्त की जाती है। किन्तु यह विभाजन पूर्णतया खरा नहीं उतरता। कुछ मुलायम लकड़ियाँ कठोर लकड़ी से भी कुछ हद तक कठोर देखी गई हैं। इसी प्रकार कठोर लकड़ियाँ मुलायम देखी गई हैं। किसी भी लकड़ी की कठोरता कोशाओं की सघनता या निकटता पर निर्भर करती है। कठोर लकड़ियों को फर्श में प्रयुक्त किया जाता है किन्तु मुलायम लकड़ी को सस्ता होने के कारण अन्य भागों के लिए कठोर लकड़ियाँ काफी टिकाऊ होती हैं। प्राय: मकान में प्रयुक्त होने वाली लकड़ियाँ 'इमारती लकड़ियों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लकड़ियों में शाखू या टीक लकड़ी का अत्यधिक सम्मान है। देवदार, शीशम, आम, महुआ, नीब अन्य लकड़ियाँ हैं जो विभिन्न प्रकार के कार्यों में प्रयुक्त होती हैं।

किसी भी लकड़ी को भवन-निर्माण में प्रयुक्त होने के पूर्व उसका सुखाना अत्यन्त आवश्यक है। इसे ऋतु-करण (seasoning) कहते हैं। इसमें लकड़ी की अधिक आर्द्रता को भट्टे में रखकर या हवा में पड़े रहने देकर दूर की जाती है। ठीक तरह से सुखाई लकड़ियाँ सिकुड़ती नहीं।

सूखी लकड़ी को आरे से चीरा जाता है। इससे लकड़ी के भीतर बने वलय सुन्दर ढंग से प्रगट हो जाते हैं।

ईंटों की भाँति लकड़ी भी वर्षा के दिनों में आर्द्र मौसम में विभिन्न मात्रा में (लकड़ी की कोटि के अनुसार) आर्द्रता ग्रहण करके फूल सकती है। उसमें तमाम प्रकार के कवक आक्रमण करके उसे जर्जर कर सकते हैं, साथ ही दहनशील होने के कारण लकड़ी के घरों में आग लग सकती है किन्तु उन भागों में जहाँ अच्छी लकड़ी उपलब्ध है, विशेषत: शीतमय प्रदेशों में लकड़ी के बने मकान जाड़े के दिनों में अत्यन्त आरामप्रद होते हैं। लकड़ी ऊष्मा की कुचालक है अत: वह इंसुलेटिंग पदार्थ का कार्य करती है।

प्राचीनकाल में लकड़ी में नक्काशी करने की प्रथा थी। आजकल पालिश किये हुये लकड़ी के दरवाजे-खिड़कियाँ पसन्द किये जाते हैं।

इंसूलेटिंग सामग्री—किसी भी मकान से ऊष्मा का क्षय तीन प्रकार से होता है :—

(१) जब दरवाजे खुलते हैं या खिड़कियों में से होकर ऊष्मा का २५% क्षय हो जाता है (२) बन्द खिड़कियों से भी २५% ऊष्मा की क्षति होती है (३) शेष ५० % ऊष्मा छत तथा दीवालों से क्षय होती है।

यदि मकान को इन्सुलेट कर दिया जाय तो लगभग ९५% ऊष्मा-अपव्यय रुक जाता है। जाड़े के दिनों में शीत प्रदेशों में घरों को गरम करने में कम खर्च लगता है और गर्मी के दिनों में भी घर ठण्डे रह सकते हैं।

कोई भी पदार्थ जो उष्मा का सुचालक नहीं होता वह उत्तम प्रकार का इंसुलेटिंग पदार्थ हो सकता है। धातुयें सुचालक होने के कारण निकृष्ठ इंसुलेटिंग पदार्थ हैं किन्तु काँच, ऐस्बेस्टास, लकड़ी, कागज, तथा वायु उत्तम इंसुलेटर हैं।

यदि आप यह सोचते हों कि जब मकान बनने के लिये प्रयुक्त अधिकांश सामग्रियाँ इन्सुलेटर के ही रूप में हैं तो मकान को और अधिक इंसुलेट करने की क्या आवश्यकता? किन्तु नहीं। मकानों की छतें दीवालों की अपेक्षा कम मोटी होती हैं अत: प्राय: छतों को ही इन्सुलेट करने की आवश्यकता होती है।

इंसुलेटक नेके लिये रवा र विधियाँ काम में लाई जा सकती हैं :--

(१) **पूरक** (Fillers)—प्राय: पुराने मकानों के लिये शैल-ऊन का प्रयोग किया जाता है। यह फेल्सपार शैल को पिघलाकर उसके भीतर भाप प्रविष्ट करके

[शेषांश पृष्ठ १७ पर

हमारे पाठकों के पत्र

(१)

सुहृसर,

अगस्त १९६७ का दूसरा सप्ताह मेरे लिये एक लम्बा उत्सव था, जिसमें मुझे आपके अनुग्रह से प्राप्त 'विज्ञान' के पिछले अंकों के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। मेरे बौद्धिक जीवन की यह एक विपत्ति है कि मेरे पास निरन्तर ७० के लगभग पुस्तकों और लेखों के बन्द पार्सल मेरे निरीक्षण की आशा में पड़े रहते हैं परन्तु आप जैसे धैर्यवान् सहयोगियों की स्थिति मेरे उत्साह को बनाए रखती है।

१. प्राप्त पत्रिकाओं का व्यौरा यह है :—

(क) खन्ना स्मृति अंक

(ख) विज्ञान	जनवरी-फरवरी	१९६५
,,	मई	१९६६
,,	जुलाई	१९६६
,,	जुलाई-नवम्बर	१९६६
,,	दिसम्बर	१९६६

(ग) विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका १९६४, १-२-३ भाग)

२. खन्ना स्मृति अंक की विशेषताएँ :—

खन्ना स्मृति अंक एक छोटी परन्तु निसन्देह स्फूर्ति-जनक कृति है। पृष्ठ १४ में आपका उनके सम्बन्ध में कथन कि 'बात के लिए शायद ही कभी बात किए हों' एक ठोस हस्ती का ज्वलन्त उदाहरण है। धन्य हैं आप जिनका निरन्तर संसर्ग ऐसे विशाल व्यक्ति के साथ रहा। पृष्ठ १५-१७ में डा० सत्यप्रकाश का लेख अनेक मूर्त्त घटनाओं का निरूपण है जिनका साक्षात्कार हमें तत्काल हो जाता है। इसी सम्बन्ध में डा० ब्रजमोहन का लेख ऐसा अनुभवी है कि लेखक का रोम-रोम भाव-प्रेरित प्रतीत होता है। इस अंक ने खन्ना जी की स्मृति को नित्यत्व प्रदान कर दिया है।

इस स्मृति अंक में आपके लेख "नीरस बालू से सरस जीवन की उत्पत्ति", दायां कालम, दूसरा पैरा, १-६ पंक्तियों में एक महत्वपूर्ण सुझाव है जिससे कल्पना हो सकती है कि "कतिपय प्राणियों द्वारा सिलिका का शरीर निर्माण में उपयोग" एक भग्नावशेष है।

३. सीढ़ीदार खेतों के उपयोग :—

विज्ञान, जनफर० १९६५, पृष्ठ १०२ में आपका यह कथन कि ऐसे खेतों से भूमिक्षरण से बचाव हो जाता है, महत्वपूर्ण और दिलचस्प है।

४. आलू और अम्लता :—

ऊपर के लेख में आपका यह विचार कि मिट्टी की अम्लता आलुओं की उत्पत्ति में हानिकारक नहीं होती, बहुत कौतूहल उत्पन्न करता है, और स्वाभाविक यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि आलुओं में वह आविशेषता है जिसके कारण अम्लता निष्प्रभाव हो जाती है ?

५. शब्दावली की कुछ विशेषताएं :—

(क)—कुछ लेखों में बड़े सुन्दर हिन्दी पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जैसे विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका १९६४ संख्या १ : पृष्ठ १७ में "जैनरालाई-जेशन" के लिए **सार्वीकरण** का प्रयोग हुआ है जो कि पारिभाषिक संग्रह के "व्यापकीकरण" पृष्ठ ५६ को इस-लिए मात कर गया है कि सार्वीकरण का प्रकरण गणित है जिसके नियम अपने सम्बन्धी सब अवस्थाओं पर अवश्य लागू होते हैं। विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका, संख्या २-३ पृष्ठ ६७ में "अलट्रासैनिक" के लिए "कर्णातीत" शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो प्रकरण के अनुकूल होने के अतिरिक्त सुबोध है, "संग्रह" पृष्ठ १३१२ का "परा-

श्रव्य" निर्वचन की दृष्टि से यथार्थ होने पर सर्वसाधारण के लिए दुर्बोध है।

(ख)—विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका १९६४ संख्या १ पृष्ठ १४ में "इण्टरफीअरेन्स" के अर्थ में **व्यतिक्रम** बहुत सुन्दर और उपपन्न शब्द प्रयुक्त किया गया है। परन्तु पृष्ठ १३, पहले पैरे में इसके विरुद्ध व्यतिकरण का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है, जो "संग्रह के पृष्ठ ६७ में दिया गया है। जर्मन-संस्कृत महाकोश से तुलना करके प्रतीत होता है कि संस्कृत में व्यतिकर का अर्थ अवरोध कभी नहीं था, इसका अर्थ प्रायः मिलावट या दुर्घटना थी, इसलिए संग्रह" द्वारा प्रतिपादित शब्द "व्यतिकरण" **पुनर्विचार्य** है।

(ग)—खन्ना स्मृति अंक में "क्वांटम" पर लेख में, पृष्ठ ४६,७,१० और २०वीं पंक्तियों में तरंदैर्घ्य के में "आवृत्ति" का प्रयोग किया गया है। मालूम नहीं होता कि इस शब्द का स्रोत क्या है।

६. रेखाचित्रों की न्यूनता :—

कुछ लेखों में रेखाचित्रों की न्यूनता से प्रदर्शन का प्रभाव जाता रहा है।

उदाहरणार्थ—

(क)—विज्ञान, जुलाई-नवम्बर १९५६, पृष्ठ १९ में लीसा के उत्पादन का प्रक्रम बड़ा जटिल है, रेखाचित्रों के अभाव से यह वर्णन बहुत जटिल हो गया है।

(ख) खन्ना स्मृति अंक में रडार के वर्णन में कुछ जटिलताएँ उत्पन्न हो गई हैं जैसे पृष्ठ ४१ में रेखाचित्रों से कुछ विशदता हो जाती।

७. प्रदर्शन में ढीलापन—

प्रदर्शन प्रकार में कहीं-कहीं ढीलापन हो गया है। दृढ़ता के अभाव से निरूपण या तो कुछ अस्पष्ट हो गया है या कुछ भ्रामक, उदाहरणार्थ :—

(क) विज्ञान, पृष्ठ २३, पहला पैरा, पहली पंक्ति में 'स्पेस' शब्द को **स्थान** के आशय में प्रयोग करने से सारे सापेक्षवाद को 'भ्रमात्मक' कहा गया है। यदि अधिकांश लोगों ने पकरणानल से दिशात्मक दृष्टि-कोण वाले दिक् का अभिप्राय स्पेस से ले ही लिया है, तो सारे सापेक्षवाद को भ्रमात्मक ठहराने का प्रयोजन क्या था ?

(ख) विज्ञान मई १९६१ पृष्ठ २९-४ में दीमक के वर्णन में उन रचनाओं का वर्णन नहीं किया गया, जिनके द्वारा दीमक इतनी हानि पहुँचाती है।

(ग) विज्ञान जनवरी-फरवरी, १९६५, पृष्ठ १४, ७ वें पैरे में आइनस्टीन के प्रसिद्ध समीकरण ई-एस सी से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि एक किलोग्राम कोयले को ऊर्जा में बदला जाय तो ··बिजली पैदा होगी, यह एक जबरदस्त छलांग है जो पाठक के लिए दुर्बोध होगी।

(घ) विज्ञान जुलाई १९६६, पृष्ठ ५५, अन्तिम पैरा, अन्तिम २ पंक्तियाँ तथा पृष्ठ ५५, पहले पैरे में फोटान को 'कण' कहा गया है 'इन कणों को फोटान कहते हैं' परन्तु तुलना कीजिये विज्ञान जन-फर्व, १९६५ पृष्ठ ९, दायां कालम 'फोनान एवं फोटान क्रमशः ध्वनि-तरङ्गों तथा प्रकाशतरङ्गों के क्वाण्टा हैं'। वेबस्टर से तुलन कीजिये, जहाँ फोटान को 'प्रकाश क्वाण्टम' कहा गया है।

(ङ) खन्ना स्मृति अंक पृष्ठ ३८-३९ में विषाणु पर परिचायक सामग्री तो दिलचस्प है, परन्तु प्रदर्शन प्रकार निगमनिक है। पृष्ठ ३९ "संक्रमण की क्रियाविधि" का कोई भी आगमानात्मक पक्ष बताया नहीं गया।

आशा है आप सर्वथा सकुशल होंगे।

भवदीय,

सिद्धेश्वर वर्मा, होशियारपुर

२

आदरणीय महोदय

कुछ दिनों पूर्व दैनिक समाचार पत्रों में पढ़ा था कि विज्ञान के हिन्दी लेखकों को ट्रेनिंग दिये जाने के बारे में सोचा जा रहा है। यदि हम सच है तो विज्ञान के हिन्दी

लेखकों के लिये सौभाग्य की बात होगी। पर इसके लिये विज्ञान के लेखकों का चुनाव निष्पक्ष रूप से किया जाना आवश्यक है। पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान सम्बन्धी लेख लिखना व पाठ्य-पुस्तकें लिखना दोनों अलग-अलग बातें हैं। जहाँ पाठ्य-पुस्तकों के लेखक लिखने का दृष्टिकोण विद्यार्थियों तक ही सीमित रखते हैं वहाँ पत्र-पत्रिकाओं के लेखक जन साधारण के हित को दृष्टि में रखकर साहित्य को पुष्प अर्पित करते हैं।

भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखने वाले लेखकों के नामों की वृहत सूची बनाई जाय और उनका मार्ग-दर्शन किया जाय। उन्हें सब प्रकार के साधन उपलब्ध हों जिससे वे देश व हिन्दी भाषा की सच्ची सेवा कर सकें। विज्ञान के हिन्दी लेखकों को आर्थिक, शैक्षणिक सहायता भी दी जानी चाहिये।

सब प्रकार से प्रोत्साहन मिलने पर ही विज्ञान का हिन्दी के माध्यम से देश में प्रसार हो सकेगा।

विज्ञान सम्बन्धी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को भी काफी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

'विज्ञान' पत्र द्वारा आप जो देश व हिन्दी भाषा की सेवा कर रहे हैं उसके लिये साधुवाद।

भवदीय
श्याम मनोहर व्यास
१७ पंचवटी, उदयपुर
(राजस्थान)

[पृष्ठ १४ का शेषांश]

झागीला बना दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बुरादा, वर्मीकुलाइट आदि भी काम में लाये जा सकते हैं। इनमें आग नहीं लग सकती है। इनके साथ वायु के करोड़ों कोटर होने से ये उत्तम इंसुलेटर सिद्ध हुये हैं।

(२) **चटाई जैसे पदार्थ**—ऐसबेस्टास या रासायनिक विधि से तैयार किये सेल्यूलोस की पर्तें बिछाकर मोटी चटाई या गत्ता तैयार करके, जहाँ से ऊष्मा की क्षति सम्भव हो, लगा दिया जाता है।

(३) **रेशेदार दीवाल के बोर्ड** wall boards) —ये बोर्ड कागज से तैयार किये जाते हैं। लकड़ी की लुगदी, तिनके तथा कार्क से भी ये बोर्ड बनाये जा सकते हैं।

(४) **धातु की चद्दरें**—ऐल्यूमिनियम की पतली चद्दर का प्रयोग किया जा सकता है। इससे ऊष्मा का परावर्तन होता है। आजकल प्लास्टिक की बनी चद्दरें भी काम में लाई जाती हैं।

मकान की नींव पानी न खाये, दीवालों से घर के भीतरी भाग में सीलन न फूटे अथवा मकान अधिक टिकाऊ रहे इसके लिये कोलतार या सीमेंट का लेप करना चाहिए। यह लेप या तो ईंटा में या मकान बन जाने के बाद पलस्तर के रूप में होना चाहिए।

मकान बनाने की कला में मनुष्य अत्यन्त कुशल हो गया है। उसने रासायनिक जानकारी को इस प्रकार संप्रयुक्त किया है कि वह प्रकट न होकर भी आवश्यक ज्ञान की अपेक्षा रखती है। यदि कहा जाय कि गृह-निर्माण स्वयं में रासायनिक कला है तो अत्युक्ति न होगी। (क्रमशः)

जल की खोज

जब हम आगामी सदी के विषय में विचार करते हैं, तब यह प्रश्न अन्य प्रश्नों से प्रमुख प्रतीत होता है : कितनी अच्छी तरह से—और कितने समय तक—पृथ्वी अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है ?

इस प्रश्न की कुंजी जल में निहित है—पीने के लिए जल, हमारे आहार को उत्पन्न करने के लिए जल, औद्योगिक उन्नति के लिए जल।

आज, मनुष्य जल की बढ़ती हुई आवश्यकता जितना जल उत्पन्न करने में पिछड़ता जा रहा है।

हमें, विश्वव्यापी स्तर पर वैसी ही विकट स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जैसी स्थिति का सामना प्राचीन काल में एक नाविक को करना पड़ा था :

"प्रत्येक स्थान पर जल ही जल है—पीने के लिए एक बूंद भी नहीं है।"

उस ग्रह के लिए, जिसका दो-तिहाई भाग जल से आच्छादित है, यह एक अद्भुत अभाव है। हमारे चारों ओर प्रचुर मात्रा में जल मौजूद है।

हमारे कुल जल का ९७ प्रतिशत भाग समुद्रों में है। अब तक पीने तथा सिंचाई के लिए समुद्र के जल का बहुत कम प्रयोग किया जाता है किन्तु आशा है कि अब अधिक समय तक ऐसी स्थिति नहीं रहेगी।

अन्य २ प्रतिशत जल हिमनदों और हिम मण्डित स्थानों में जमा हुआ रहता है।

शेष १ प्रतिशत जल को यदि हमारी आवश्यकता के समय और उपयुक्त स्थान पर बाँटा जा सके तो हम मनुष्य की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

किन्तु आज, एक ओर तो लाखों व्यक्ति तूफानों और बाढ़ों के प्रकोपों से कष्ट उठाते हैं और दूसरी ओर लाखों व्यक्ति प्यासे हैं।

जब कि कुछ लोग झीलों, नदियों और सोतों के जल का बहुत ही कम प्रयोग करते हैं, कुछ लोगों की फसलें सूखा पड़ जाने से उनकी आँखों के सामने नष्ट हो जाती हैं।

अधिकाधिक लोग शहरों में रहने लगे हैं। वहाँ स्वच्छ जल का अर्थ है रुग्णता और स्वास्थ्य के मध्य अन्तर। तो भी आज, संसार के शहरों में रहने वाले ४० प्रतिशत लोगों—१० में से ४ व्यक्तियों—के लिए जल की कोई व्यवस्था नहीं है।

यदि अब ऐसी समस्या है तो भविष्य में कैसी होगी ?

सन् २००० ईस्वी तक, संसार की जनसंख्या दुगनी हो कर ६ अरब तक पहुँच जायेगी। उस समय हमारी जल सम्बन्धी आवश्यकता दुगनी से भी अधिक बढ़ जायेगी।

हम उन जल-साधनों का उपयोग करने के लिए अपनी विस्तृत नदी व्यवस्थाओं का कैसे विकास एवं नियन्त्रण कर सकते हैं जिन्हें हम अब नष्ट कर देते हैं ?

हम किस प्रकार उन भूमिगत जल साधनों का विकास कर सकते हैं जो इस समय अविकसित अवस्था में हैं ?

हम किस प्रकार मौसम में परिवर्तन और जीवन देने वाली वृष्टि का अधिक अच्छी तरह वितरण कर सकते हैं ?

किस प्रकार हम समुद्र के खारे जल को पीने योग्य मीठे जल में परिणत कर सकते हैं ?

समुद्र में गिरने से पूर्व हम किस प्रकार नदियों आदि के जल का बार-बार प्रयोग कर सकते हैं ?

हम किस प्रकार उस गन्दगी को कम कर सकते हैं जिससे हमारे नदी-नालों का जल गन्दा हो जाता है ?

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है : हम किस प्रकार संसार के लोगों और संसार के नेताओं में इस अत्यावश्यक कार्य के सम्बन्ध में जागृति उत्पन्न कर सकते हैं ?

एक कदम यह होना चाहिए कि विज्ञान और तकनीकी विद्या की गति में तेजी लाई जाये।

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभ्यताओं का अस्तित्व और विकास जलीय साधन-स्रोतों के परिमाण और उपलब्धि से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। मनुष्य द्वारा बसाई गई वे बस्तियाँ जिन्होंने बाद में बड़े-बड़े नगरों का रूप लिया, उन्हीं स्थानों पर बसाई गई जहाँ जल प्रचुर परिमाण में सुलभ था। और यदि आगे चल कर किसी कारणवश वहाँ जल की कमी पड़ गई अथवा जल मानव के इस्तेमाल लायक नहीं रहा, वहाँ मनुष्य द्वारा बसाई गई बस्तियों का धीरे-धीरे लोप हो गया। आज भी, मनुष्य जल पर बहुत अधिक निर्भर है परन्तु विज्ञान और टैक्नॉलाजी के द्वारा अब उसने अपने निवास के स्थानों तक शुद्ध जल लाने के लिये नए-नए तरीके खोज निकाले हैं।

भूमि के धरातल पर आज जितना जल विद्यमान है, मनुष्य उसके केवल १ प्रतिशत से कुछ ही अधिक भाग का उपभोग कर रहा है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि यदि मनुष्य शुद्ध जल के $\frac{1}{5}$ भाग का भी उपयोग करने में समर्थ हो जाए तो उससे संसार की वर्तमान जनसंख्या को ६ गुनी जनसंख्या की जल-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकेगी।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सबसे अधिक रोमांचकारी सिद्धान्त यह होगा कि मनुष्य अपनी आवश्यकता और इच्छानुसार मौसम पर नियन्त्रण करने अथवा उसमें परिवर्तन लाने की क्षमता प्राप्त कर ले—दूसरे शब्दों में वह जब कभी भी और जहाँ भी चाहे, कृत्रिम वर्षा करा सके अथवा बाढ़ के संकट उत्पन्न होने पर जब चाहे वर्षा को रोक सके।

मौसम पर नियन्त्रण प्राप्त करने का स्वप्न साकार होने में अभी बहुत समय लगेगा परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब यह 'स्वप्न' नहीं रहा। वैज्ञानिकों ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि वे विशिष्ट परिस्थितियों में बादल समूहों पर विशेष प्रकार का रासायनिक पदार्थ (सिलवर आयोडाइड के कण) छिड़क कर कृत्रिम वर्षा करा सकते हैं।

१९६५ में अमेरिका में कृत्रिम वर्षा कराने के लगभग ४४ प्रयोग किए गए और इन प्रयोगों द्वारा लगभग ६०,००० वर्गमील के क्षेत्र में पहले की तुलना में १० से लेकर १५ प्रतिशत तक अधिक वर्षा कराने में सफलता प्राप्त की गई।

यद्यपि मौसम पर नियन्त्रण करने की मनुष्य की क्षमता अभी बहुत सीमित और कम है परन्तु वह समय आ सकता है जब आज के सिद्धान्त और विचार कार्य रूप में परिणत हो जाएँ। सम्भवत: विज्ञान यह पता लगाने में समर्थ हो जाएगा कि टाइफून और हरीकेन की विनाशकारी शक्ति को किस प्रकार कम किया जा सकता है और किस प्रकार उस लाखों टन पानी का रचनात्मक ढंग से प्रयोग किया जा सकता है जो इन तूफानों की लपेट में आ जाता है। यही नहीं, समुद्र के खारे जल को शुद्ध जल में परिवर्तित करने की अत्यन्त प्राचीन विधि का भी नए दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा रहा है ताकि उसमें सुधार किया जा सके।

खारे जल को शुद्ध जल में परिवर्तित करने के लिये जो परम्परागत विधि काम में लायी जाती रही है, वह बहुत खर्चीली है क्योंकि इसके अन्तर्गत जल को उबालने के लिये काफी महँगा ईंधन खर्च करना पड़ता है। अब आणविक ईंधन जनित ऊष्मा सुलभ हो जाने के कारण खारे पानी को शुद्ध करने पर आने वाली लागत में काफी कमी करना सम्भव हो गया है।

नवीन विधियाँ

लेकिन इसके अतिरिक्त अमेरिका की प्रयोगशालाओं में जल शुद्ध करने के नए-नए तरीकों की खोज करने का

कार्य जारी है। उदाहरणार्थं, 'शान्ति के लिए जल सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' में अमेरिकी औद्योगिक अनुसन्धानकर्ताओं ने पहली बार ऐसे नए 'चमत्कारिक रेशो' का प्रदर्शन किया है जिनका उपयोग खारे जल तथा दूषित जल को शोधने के लिए किया जा सकता है। इसके अनुसन्धानकर्ताओं का आशा है कि यह विलक्षण विधि भविष्य में जल को शुद्ध करने वाली सबसे सस्ती और व्यावहारिक विधि सिद्ध होगी। इस विधि के अन्तर्गत धातु के ऐसे विशिष्ट पाइप का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें लाखों सूक्ष्म कृत्रिम फाइबर (रेशे) रहते हैं। बाल के आकार के ये कृत्रिम रेशे अन्दर से पोले होते हैं। इस प्रकार पाइप में एक छोर से अशुद्ध जल अन्दर जाता है तथा दूसरी ओर से शुद्ध जल बाहर निकलता है। सूक्ष्म और पोले रेशों से होकर गुजरने की प्रक्रिया में लवण तत्व तथा जल में विद्यमान अन्य अशुद्ध तत्व अलग हो जाते हैं।

कुछ अन्य अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता, विद्युत अपोहन (इलेक्ट्रो-डायलीसिस) विधि को और अधिक विकसित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस विधि के अन्तर्गत, जल में घुले हुए लवण कण विद्युतशक्ति प्रभावित झिल्ली की ओर आकृष्ट होते हैं और इस प्रक्रिया में जल से अलग हो जाते हैं। इसके विपरीत 'ओसमो-ओसमोसिस' विधि में, खारा पानी विशेष प्रकार की झिल्लियों से होकर गुजरता है और इस प्रक्रिया में ही लवण तत्व तथा अन्य अशुद्ध तत्व छन कर जल से अलग हो जाते हैं।

सीमित पैमाने पर आज इन दोनों ही विधियों का प्रयोग किया जा रहा है लेकिन अभी तक इतना इनका अधिक विकास नहीं हुआ है कि बड़े पैमाने पर इनका इस्तेमाल हो सके।

संसार के अनेक क्षेत्रों में, जलीय-साधन-स्रोतों के अर्थपूर्ण विकास के लिए बाँधों, जल विद्युत शक्ति उत्पादक संयंत्रों, नहर प्रणालियों, बाढ़ नियंत्रण योजनाओं तथा इसी प्रकार की अन्य योजनाओं का विकास और निर्माण करना परम आवश्यक है। अधिकांश विशेषज्ञों की राय में अधिकांश क्षेत्रों की जल सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए स्थानीय स्तर के बजाय प्रादेशिक स्तर पर जलीय साधन-स्रोतों का विकास करना ही सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। नदियों और उनकी सहायक नदियों के विकास के लिए एक ऐसी समन्वित विकास योजना की जरूरत पड़ती है जिसमें उनको लगते हुए सभी क्षेत्रों के निवासियों की आवश्यकताओं को पूरी तरह ध्यान में रखा गया हो। ●●

नागरी लिपि का सर्वत्र व्यवहार करें क्योंकि यह सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है।

सार संकलन

फोटोग्राफी के बदलते प्रतिमान

आधुनिक युग में फोटोग्राफी का महत्व दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। आज उसका उपयोग पारिवारिक जीवन की किसी सुखद स्मृति को सँजोने, या प्रकृति की किसी मनोरम छवि को कैद कर रखने में ही सीमित नहीं रह गया है, प्रत्युत विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी उसने हमें एक अपूर्व दृष्टि प्रदान की है। अन्तरिक्ष विज्ञान की खोजों में फोटोग्राफी की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। चन्द्रमा के विषय में सारा ज्ञान हमें १९६६ सर्वेयर अंतरिक्षयान के द्वारा लिए हुए १०,००० फोटोग्राफों के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है।

अंतरिक्ष विज्ञान की खोजों के अतिरिक्त, विभिन्न उद्योगों एवं अनुसन्धानशालाओं में भी फोटोग्राफी का निरन्तर उपयोग हो रहा है। अमेरिका का इस्पात उद्योग इस दिशा में अग्रणी है। इस्पात के धातुकर्म में उसके गुणों के विकास एवं नियन्त्रण में इसका निरन्तर उपयोग हो रहा है। इसपात के गुणधर्म उसमें उपस्थित अन्य तत्वों की प्रकृति तथा परिमाण पर निर्भर करते हैं। अत: उसकी मानकता को स्थिर करने के हेतु उसमें उपस्थित अन्य तत्वों के परिमाण पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस्पात का शुद्धिकरण एक विशाल भ्राष्ट्र में किया जाता है, जहाँ लोहे में अन्य आवश्यक तत्व मिलाकर उसे गलाया जाता है। परीक्षा के लिये उसी गलित द्रव में से थोड़ा सा अंश लेकर, ठण्डा करके जमा लिया जाता है, और फिर उस टुकड़े को धातुकर्म की प्रयोगशाला में परीक्षा के लिये भेज दिया जाता है। वहाँ पर उसे एक विद्युत आर्क में जलाकर उसका स्पेक्ट्रम प्राप्त कर लिया जाता है, और उस आरेख की मानक इस्पात से प्राप्त स्पेक्ट्रम से तुलना की जाती है। इस्पात में उपस्थित सभी तत्व अपने एक विशेष तरंग दैर्ध्य की प्रकाश किरण विकरित करते हैं, जिनका चित्र स्पेक्ट्रम में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्पेट्रोग्राफीय अध्ययन के द्वारा केवल १० मिनट में इस्पात में उपस्थित सभी तत्वों के परिमाण का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, और फिर विभिन्न विधियों द्वारा उनका नियन्त्रण कर लिया जाता है।

विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में प्राय: अधिक गति वाले कैमरों का प्रयोग किया जाता है। ये कैमरे एक सेकन्ड में १ करोड चित्र ले सकते हैं, और प्रत्येक चित्र के लेने में केवल एक सेकन्ड का सौवाँ करोड भाग का समय लगता है। साधारण प्रोजेक्टरों पर इन चित्रों को दिखाने पर कोई भी क्रिया ६००,००० बार दिखाई पड़ती है। इस प्रकार एक उड़ता हुआ नैट यान इन चित्रों में स्थिर सा ज्ञात होगा। विशाल शस्त्रास्त्रों से फेंके प्रक्षेपास्त्रों पर पड़े निशानों को भी इन चित्रों में देखा जा सकता है। इस प्रकार इन कैमरों ने काल के रूप को ही विकृत कर दिया है, और अदृश्य वस्तुओं को दृश्य बना दिया है।

इन तीव्र गति वाले कैमरों का उपयोग विभिन्न घटनाओं के अध्ययन में किया गया है। उदाहरणार्थ वायुयान के पंखों पर वर्षा के भीषण प्रभाव, अथवा इस्पात काटने वाले यंत्रों की क्रिया का अध्ययन इसकी सहायता से किया जा सकता है। इसके द्वारा इस्पात की भट्टियों में उबलते हुये गलित द्रव्यों के चित्र लिये गये हैं, और उनके द्वारा भ्राष्ट्र में लगे दुर्गलनीय पदार्थों के अंतस्थल पर गलित द्रव के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। साधारण कैमरों से इतने उच्च ताप (१६५०° सेंटीग्रेड) पर चित्र लेना असम्भव ही है।

इस तीव्रगतिशील फोटोग्राफी के नितान्त विपरीत समयान्तर फोटोग्राफी होती है, जिसके द्वारा किसी अत्यन्त मन्द क्रिया का भी अध्ययन किया जा सकता है।

इस प्रविधि में किसी वस्तु के चित्र निरन्तर एक निश्चित अवधि (जैसे प्रति सेकन्ड, प्रति मिनट, प्रति घंटा या प्रति दिन) पर लिये जाते हैं, और फिर उन्हें एक साधारण गति वाले प्रोजेक्टर पर प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार उन्हें देखने पर क्रिया में एक सहज सततता प्रतीत होती है। इस विधि के द्वारा अत्यन्त मन्द क्रियाओं जैसे पौदों की वृद्धि, बादलों का निर्माण, समुद्र तट का संक्षारण आदि का सरलता से अध्ययन किया जा सकता है।

किसी भी वस्तु के सूक्ष्मवीक्षण यंत्र द्वारा प्राप्त बिम्बों के भी चित्र लिये जा सकते हैं। इन चित्रों को 'फोटो माइक्रोग्राफ' कहते हैं, और इनके द्वारा किसी भी वस्तु का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है। अब उद्योग में इसका भी प्रचुर उपयोग होने लगा है।

मानव शरीर के **एक्सरे चित्रों** से सभी परिचित होंगे। अब इसका भी उपयोग इस्पात उद्योग में होने लगा है। एक्सरे के द्वारा एक फुट तक मोटे इस्पात के टुकड़े के आन्तरिक दोषों का पता बड़ी सरलता से लग जाता है।

फोटोग्राफी की एक अन्य विधि आकाश से चित्रों के लेनी की है। टेक्साज में अभी कुछ वर्षों पूर्व पृथ्वी तल से ४५००० फुट ऊपर से चित्र लिया गया था। इस प्रकार की **आकाशमार्गी फोटोग्राफी** का सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। इस्पात और लोहे की कम्पनियाँ इसका उपयोग लोहे की खानों का पता लगाने में करती हैं। इंजिनीयर लोग नई सड़कें निकालने में, तथा कृषि-शास्त्री पौदों के रोगों का पता लगाने में भी इसका उपयोग करते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी का जीवन—एक अनुमान

आजकल विज्ञान की जैसी उन्नति हो रही है, जिस प्रकार शोधशालाओं में, उद्योगों में, जीवन के सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटरों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है, उससे भविष्य के विषय में बड़ी आशायें बँध रही हैं। वैज्ञानिकों ने इक्कीसवीं शताब्दी के जीवन के विषय में अपनी अटकलबाजियाँ लगानी शुरू कर दी हैं। आशा है कि तब मनुष्य को स्वयं अपने हाथ पैरों से कोई कार्य न करना पड़ेगा, परन्तु उसके पास कृत्रिम हाथ, पैर होंगे जो एक कम्प्यूटर के द्वारा उसके मस्तिष्क से संयुक्त होंगे, और उसकी आज्ञा पर सभी कार्य करेंगे। तब तक जनसंख्या भी आज की दुगनी हो चुकी होगी, और मनुष्य के लिये वर्तमान नगरों में रह सकना संभव न होगा। उसके रहने के लिये तब संभवतः विशालकाय नगर होंगे, और प्रत्येक नगर वस्तुतः २०० मंजिल की लगभग १० मील लम्बी एक मील चौड़ी विशाल इमारत होगी, जिसके अन्दर ही कार्यालय, दूकानें, मनोरंजन शालायें आदि सभी वस्तुयें उपलब्ध होंगी। कुछ नगर पूरे के पूरे एक ऊँचे प्लेटफार्म पर बने होंगे, जिनके नीचे नगर के यात्रियों के चलने के लिये मार्ग होंगे। कुछ नगरों की अट्टालिका एक गुम्बद के रूप में होंगी, और पूरे नगरों में व्यापार, स्कूल, लाइब्रेरी, अस्पताल आदि सभी का कार्य कम्प्यूटर संभालेंगे। घर घर में कम्प्यूटर लगे होंगे, और लोग उन्हीं की सहायता से सभी कार्य घर की सफाई, आदि करेंगे। पाकशाला का कार्य भी स्वचालित होगा। गृहिणी केवल एक सप्ताह भर के लिये सभी आवश्यक सामग्रियों को एकत्रित करके एक कम्प्यूटर को दे देगी, और उसे सारा मेनू समझा देगी, फिर सप्ताह भर सारा भोजन निश्चित समय पर स्वयं प्राप्त होता रहेगा। खरीदारी करने के लिये बाजार जाने की आवश्यकता न पड़ेगी। घर बैठे ही गृहिणी एक विडियोफोन के द्वारा सुपर बाजार को फोन करेगी, अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का आर्डर देगी, और घर बैठे उसे सारा सामान स्वचालित यंत्रों द्वारा पहुँच जायेगा। तब कैश या चेक की भी आवश्यकता न होगी। प्रत्येक व्यक्ति का बैंक में एक खाता होगा, जो कि कम्प्यूटरों की सहायता से उसके घर, कार्यालय, तथा बाजार की दूकानों से संयुक्त होगा। उसका वेतन कार्यालय के कम्प्यूटर के द्वारा उसके बैंक के खाते में जमा हो जायेगा, और वह जब भी कुछ खरीदेगा तो दूकान का

कम्प्यूटर बैंक को उसके खाते में से रुपया दूकान के खाते में जमा कर देने के लिये संकेत दे देगा।

उस समय सारी शिक्षा भी कम्प्यूटरों के द्वारा होगी। वही प्रत्येक विद्यार्थी को गणित, व्याकरण, भाषा आदि का ज्ञान देगा, और उसकी गल्तियों का सुधार करेगा। तब कोई निश्चित कक्षायें भी न होंगी, प्रत्युत ज्यों-ज्यों कोई विद्यार्थी किसी पाठ्यक्रम में पारंगत होता जायेगा, कम्प्यूटर उसे उससे उच्च स्तर के पाठ्यक्रम की शिक्षा देता जायेगा। तब शिक्षा भी ४ वर्ष से २० वर्ष तक की अवस्था वाले सभी व्यक्तियों के लिये अनिवार्य होगी। इसके अतिरिक्त स्कूलों में वयस्क लोगों की शिक्षा का भी प्रबन्ध होगा। पुस्तकालयों में भी कम्प्यूटरों का प्रबन्ध होगा। यदि किसी विद्यार्थी को किसी सन्दर्भ की आवश्यकता होगी, तो वह उसकी सूचना कम्प्यूटर को दे देगा, और कुछ ही क्षणों में उसके समक्ष टेलीविजन पटल पर सन्दर्भ सम्बन्धी सारी सूचना प्राप्त हो जायेगी।

प्रत्येक गृह सूचना एवं संवहन की सभी प्रणालियों से युक्त होगा। प्रत्येक आवास-कक्ष की एक दीवाल पर विशाल टेलीविजन होगा, जिसमें रंगीन त्रिविम चित्र प्रदर्शित होंगे। विडियोफोन द्वारा किसी भी समय किसी से आमने-सामने संपर्क बनाया जा सकेगा।

उस समय कृषि भी स्वचालित होगी। स्वचालित ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि यंत्रों की सहायता से उपज भी कल्पनातीत होगी। उद्योगों, कारखानों में मजदूरों के स्थान पर स्वचालित मशीनें कार्य करेंगी। सचिव, प्रबन्धक आदि का कार्य कम्प्यूटर करेंगे। उस समय के मजदूर भी कुशल कारीगर होंगे, और सभी प्राविधिक ज्ञान से युक्त होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को तीन या चार प्रकार के पेशे सीखने पड़ेंगे। इन सब बातों का प्रभाव यह होगा कि प्रति व्यक्ति को प्रति सप्ताह अधिकाधिक ३० घण्टे कार्य करना पड़ेगा, और शेष समय उसे अपने आराम मौज-मस्ती के लिये उपलब्ध होगा।

मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में धान की भूसी का उपयोग

जब कारखानों में धान को कूटने के बाद, चावल से भूसी को पृथक् किया जाता है, तो यह समस्या उत्पन्न होती है कि भूसी को कहाँ फेंका जाय। हजारों टन भूसी का पहाड़ सा लग जाता है।

इस समस्या का एक सम्भाव्य समाधान कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के मिट्टी-वैज्ञानिक, विलियम ई० वाइल्डमैन, ने प्रस्तुत किया है। उनका विश्वास है कि भूसी का उपयोग खराब मिट्टी को उर्वर बनानें के लिए हो सकता है।

भूसी के सम्बन्ध में किये गये ऐसे प्रयोगों में, उन्होंने उसे २५ एकड़ के एक खेत में फैला दिया। उसे अच्छी तरह दबाया और फिर एक गहरी खुदायी करने वाले हल द्वारा जोत कर उसे मिट्टी में अच्छी तरह मिला दिया।

खेत का मालिक भूसी वाली मिट्टी में अनाज बो रहा है। वह कई वर्षों तक उपज सम्बन्धी आँकड़े और विवरण नियमित रूप से तैयार करेगा। इस प्रकार मिट्टी की उर्वरता पर धान की भूसी के प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकेगा।

श्री वाइल्डमैन को विश्वास है कि भूसी मिट्टी में कम से कम १० वर्षों तक बराबर बनी रहेगी।

इसी प्रकार एक आड़ू के उद्यान में भी भूसी का प्रयोग किया गया है। पेड़ों के बीच स्थान-स्थान पर सतह पर भूसी को फैला दिया गया। फिर ४४ इंच गहरी नाली में उसे मिट्टी में मिला दिया गया। आशा की जाती है कि भूसी से पानी को पेड़ की निचली जड़ों तक पहुँचाने में सहायता मिलेगी किन्तु फल के उत्पादन पर इसके प्रभाव के मूल्यांकन में कई वर्ष लगेंगे।

टैलिफोन के तार दबाने वाला हल

अमेरिका में एक ऐसे हल का विकास किया गया है जिसके द्वारा घास के मैदान में भूमि के नीचे टैलिफोन का तार दबाया जा सकता है और ऐसा करने पर घास अथवा मैदान की आकृति को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती है। यह परीक्षणात्मक यन्त्र उस खर्च की बचत कर देगा जो भूमि की सतह के नीचे तार बिछाने के पश्चात् मरम्मत करने पर आता है।

इस यन्त्र द्वारा सतह से १८ इंच से लेकर २४ इंच तक नीचे तार बिछाई जाती है। टैलिफोन का तार काफी नीचे होता है और उसके ऊपर भूमि की सतह पर घास आदि लगाया जा सकता है। इस प्रकार यह हल केवल घास के मैदानों के नीचे तार बिछाये जाने के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि ऐसे नये भवनों के क्षेत्रों में तार बिछाने में भी उपयोगी है जहाँ घास आदि लगाने का कार्य पूरा नहीं हुआ है।

एक व्यक्ति द्वारा चलाये जाने वाले इस हल का फल उसके पहियों के बीच स्थित है। यह फल एक १४० अंश के अर्द्धवृत्त से एक लंगर (पेण्डुलम) के समान यन्त्र के नीचे हिलाया जा सकता है। इससे हल का फल उसके पीछे ऊपर की ओर से मिट्टी को काटता हुआ सीधा नीचे घुसता जाता है।

हल का फल प्रत्येक सेकिण्ड में ४० बार ऊपर-नीचे घूमता है और इसके परिणामस्वरूप वह शक्ति बहुत कम हो जाती है जो मिट्टी में से फल को खींचने के लिए आवश्यक है। आवश्यक शक्ति की कमी हो जाने के कारण उस उपकरण का वजन केवल ३,००० पौण्ड रह जाता है जो वैसे ही कार्य करने वाले स्थिर हल के वजन के लगभग पाँचवें भाग के बराबर होता है।

क्योंकि इस हल का आकार बहुत छोटा, है इसलिए इसे ऐसे क्षेत्रों में ले जाया जा सकता है, जहाँ बड़े उपकरणों को नहीं ले जाया जा सकता। ● ●

जून-नवम्बर १९६८ **विज्ञान** पंजीकृत संख्या एल—१७५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विषय-सूची

प्रकाशक—डा० हीरा लाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

विज्ञान

दिसम्बर, १९६८

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ४ रुपया

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविन्तीति ॥ तै० उ० ३।५

भाग १०४	पौष-माघ २०२५ विक्र०, १८९० शक दिसम्बर १९६८	संख्या १२

ऋणात्मक आधार−२ की गणना पद्धति एवं उसकी कुछ विशेषताएँ

● दुलहसिंह कोठारी तथा कृष्णकुमार दशोरा

[मैथेमेटिक्स टीचर (Mathematics Teache) में प्रकाशित लेख के आधार पर]

गणना के आधार के रूप में सामान्यतः हम धनात्मक आधारों का ही प्रयोग करते हैं परन्तु ऋण दो का (गणना के आधार के रूप में) प्रयोग निःसन्देह कई रोचक तथ्यों को प्रस्तुत करता है जिन्हें उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र को समझने में विशेष कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

स्थानीय मान :—

ऋण दो के आधार पर आधारित गणना पद्धति में संख्याओं का मान उनकी स्थिति के अनुसार आगे की सारणी में प्रदर्शित किया गया है :—

$(-२)^७$	$(-२)^६$	$(-२)^५$	$(२)^४$	$(-२)^३$	$(-२)^२$	$(-२)^१$	$(-२)^०$
↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕ →
−१२८	६४	−३२	१६	−८	४	−२	१

$(-२)^{-१}$	$(-२)^{-२}$	$(-२)^{-३}$	$(-२)^{-४}$	$(-२)^{-५}$	$(-२)^{-६}$	$(-२)^{-७}$
→ ↕	↕	↕	↕	↕	↕	↕
−१/२	१/४	−१/८	१/१६	−१/३२	१/६४	−१/१२८

गणना :—

अंकों के साथ सर्वाधिक मूलभूत क्रिया गणना करना है। ऋण दो (-२ आधार) पर गणना कर भिन्न-भिन्न अंकों को प्रकट करने की क्रिया में बड़े ही रोचक तथ्य देखने को मिलते हैं जिनका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति सरलता से ही कर सकता है।

निम्नलिखित सारणी में कुछ ऋण तथा धन संख्याओं को, आधार ऋण दो पर, प्रकट किया गया है। उक्त सारणी के अध्ययन से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो इन संख्याओं की प्रतिकृति को समझने में सहायक हो सकते हैं :—

(१) ऋण दो आधार पर प्रथम स्थान का मान—एक-शून्य, एक-शून्य के क्रम से धन तथा ऋण दोनों ही प्रकार की संख्याओं में एक निश्चित क्रम से बदलता है।

(२) दूसरे स्थान पर स्थित अंकों की प्रतिकृति में एक-एक, शून्य-शून्य के क्रम से दो बार एक तथा इसके बाद फिर दो बार शून्य आते रहते हैं।

(३) तीसरे स्थान में २×२ अर्थात् चार बार एक तथा चार बार शून्य की आवृति के आधार से संख्याओं की पुनरावृत्ति होती है।

(४) चौथे स्थान में २×४ अर्थात् आठ बार एक-एक तथा आठ बार शून्य के क्रम से चौथे स्थान पर अंकों की आवृत्ति होती है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर इसके पूर्व स्थान के दुगने बार एक तथा शून्य आते रहते हैं।

सारणी १

धनात्मक संख्यायें		ऋणात्मक संख्यायें	
आधार दस पर संख्यांक	आधार ऋण दो पर संख्यांक	आधार दस पर संख्यांक	आधार ऋण दो पर संख्यांक
१	१	−१	११
२	११०	−२	१०
३	१११	−३	११०१
४	१००	४	११००
५	१०१	−५	११११
६	११०१०	−६	१११०
७	११०११	−७	१००१
८	११०००	−८	१०००
९	११००१	−९	१०११
१०	११११०	−१०	१०१०
११	१११११	−११	११०१०
१२	१११००	−१२	११०१००
१३	१११०१	-१३	११०१११
१४	१००१०	−१४	११०११०
१५	१००११	−१५	११०००१
१६	१००००	−१६	११००००
१७	१०००१	−१७	११००११
१८	१०११०	−१८	११००१०
१९	१०१११	−१९	१११२०१
२०	१०१००	−२०	१११,१००

वास्तव में बहुत कुछ अंशों तक इसी प्रकार की विशेषता दस के आधार की गणना-पद्धति में भी देखने

को मिलती है परन्तु वहाँ इन्हें इतना अधिक स्पष्ट अनुभव नहीं किया जाता ।

(५) यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि धन संख्याओं को व्यक्त करने के लिये ० तथा १ एक, तीन, पाँच आदि विषम बार ही प्रयुक्त हुए :—

उदाहरण :—१ १, ४ = १०० (तीन अंक) ८ = ११०००. पाँच अंक । इसी प्रकार ऋण संख्याओं को व्यक्त करने के लिये ० तथा १ दो, चार, छ या सम बार ही प्रयुक्त हुए हैं जैसा कि निम्न उदाहरण से स्पष्ट है :—

उदाहरण :–१ = ११ (दो अंक); –४ = ११०० (चार अंक); –१८ = ११००१० (छः अंक)

(६) यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ऋण संख्याओं को व्यक्त करने के लिये ऋण चिन्ह के प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती । यहाँ पर ऋण चिन्ह व्यवकलन के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है ।

योग क्रिया : इस पद्धति में योग-क्रिया सामान्यतः सरल क्रिया है परन्तु कुछ नई विधियों की ओर संकेत करती है । यह सर्वविदित है कि योग-क्रिया में हासिल (Carry forward) का प्रयोग करना होता है । इस क्रिया को सारणी – २ में स्पष्ट किया है ।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि

११
१

अथवा

१
११

का मान प्रत्येक अवस्था में शून्य होता है ।

नोट :– कोष्ट में लिखे अंक हासिल को प्रकट करते हैं ।

सारणी–२

आधार दस पर संख्यांक	आधार ऋण दो प्रथम हासिल	आधार ऋण दो द्वितीय हासिल	आधार ऋण दो तृतीय हासिल	आधार ऋण दो
			(१)(१)	(१)(१)
		(१)(१)	(१)(१)	(१)(१)
	(१)(१)	(१)(१)	(१)(१)	(१)(१)
१	१	१	१	१
३	१११	१११	१११	१११
४	०	००	१००	०१००

व्यवकलन :—

– २ आधार की गणना पद्धति में व्यवकलन क्रिया मात्र इसलिये बड़ी रोचक लगती है कि इसे नई विधियों से ज्ञात किया जा सकता है । जैसा कि विदित है यहाँ " – " चिन्ह का प्रयोग व्यवकलन की क्रिया के लिये ही होता है तथा किसी संख्या में से कुछ घटाने का अर्थ वही है जो उसके यौगिक प्रतिलोम के जोड़ने से होता है ।

निम्नलिखित उदाहरणों के सामान्य अध्ययन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि हासिल लेने की विधि तभी उपयुक्त ढंग से काम आ सकती है जब कि हासिल लेने को कुछ शेष हो । उदाहरण के लिये ४ दस – २ दस को ऋण दो में बदल कर घटाने की क्रिया को लेंगे :—

$$१००_{-२} - ११०_{-२} = ११०$$

आधार दस पर संख्यांक	आधार ऋण दो पर परिवर्तित संख्यांक	घटाई जाने वाली राशि का यौगिक प्रतिलोम जोड़ने पर	आधार ऋण दो पर मान
१ ३ −१ = २	१११ −१	१११ + ११ क्योंकि ११ संख्या १ का यौगिक प्रतिलोम है ११ १=०	(१)(१) (१)(१) (१)(१) १११ + ११ = ११०
२ −१	११० −१	११०० +११	(१)(१) (१) १० + ११ = ००१

उक्त प्रश्न को हल करने का सर्वोत्तम तरीका यौगिक प्रतिलोम जोड़ कर परिणाम ज्ञात करना है। इस प्रकार यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि यौगिक प्रतिलोम तथा समान संख्यायें जोड़ने की विधियाँ गणित में अधिक विवेकपूर्ण क्रियाएँ हैं।

गुणन क्रिया

गुणन क्रिया बार बार योग क्रिया के आधार से बड़ी सरलता से स्पष्ट की जा सकती है। यदि योग क्रिया को भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाय तो गुणन अपेक्षाकृत एक सरल क्रिया रह जाती है, जैसा कि आगे के उदाहरण से स्पष्ट है :—

(a) उदाहरण :—

$५_{१०} \times २_{१०} = ११०_{-२} ११०_{२}$ ११०−२११०−२११०$_{२}$

(i) ११० +११० = १००

(ii) (१)(१) १०० +११० = ११०१०

(iii) (१))१) (१)(१) (१)(१) (१)(१) (१)(१) ११०१० +११० = १ १०००

(iv) ११००० +११० = १११११०

(b) ५ ×२ = १०

१०१ ×११० = ००० १०१× १०१ × = ११११०

यद्यपि दो ऋण संख्याओं अथवा एक धन तथा एक ऋण संख्या का आधार ऋण दो पर गुणन अवश्य ही अध्यन का एक रोचक विषय है।

भाजन क्रिया

भाग के अध्ययन करने पर बालक के सामने शोध का एक नवीन एवं आकर्षक क्षेत्र खुल जाता है तथा यह तथ्य सामने आता है कि यहाँ भाग की सामान्य विधि अत्यधिक जटिल प्रमाणित होती है, जबकि बार **बार घटाने की विधि जिसे कई** बार आधुनिक विधि **के**

नाम से सम्बोधित किया जाता **है** अपेक्षाकृत अधिक **सरल एवं स्पष्ट** प्रमाणित होती है।

उदाहरण :—बारह को दो से भाग दो।

बारह तथा दो को आधार –२ पर लिख कर **निम्न विधि से भाग देंगे।**

```
११०  | ११११००                  |  १००  आधार दस पर
     | ११०००                   |        → (+४)
     |-------                  |
     |  .१००                   |  १० → (–२)
     |  १. १००                 |
     |-------                  |

| ११०००  |   १००     →     (+४)
| ११०००  |   -----         ----
|        |   ११०१०          ६
```

यदि उक्त समस्या को प्रचलित सामान्य विधि से हल किया जाय तो हमें सामान्यतः कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत होंगी। जैसे :—

उदाहरण : १ उदाहरण :—२

```
                                      १०१
११  ---------------------------|--------
   | १११००        ११०          | १११००
   |                           | ११०
   | ११०                       | --------
   |-------                    | १००
   |   १०                      |
   |                           | ११०
   | ११०                       |--------
   |                           | ११०
```

स्पष्टतः उदाहरण १ में हमें क्रिया को रोक देना पड़ेगा क्योंकि भाज्य भाजक से कम है। इसी प्रकार उदाहरण २ में शेष राशि ११० भाजक के समान बच जाती है। इस प्रकार तीसरे स्थान तक क्रिया करने के पश्चात् हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

सभी गणितीय क्रियाओं में संख्याओं के समाधान के रूप में सर्वसम्मत एक ही हल प्राप्त होता है। यह क्रिया इतने स्वाभाविक रूप में होती है कि हम इसके महत्व को विस्मृत कर जाते हैं परन्तु आधार –२ की गणना पद्धति में एक की संख्या के लिये एक से अधिक हल प्राप्त होते हैं।

जैसे :—आधार दस पर १/३ का मान = १/१११ = .०१०१०१ अथवा १·१०१० से स्पष्ट किया जा सकता है। अनन्त तक स्थापित इस रेखागणितीय समुच्चय का योग १ १११ के तुल्य होता है। यह जानना उचित ही होगा कि १/१११ ही दो भिन्न भिन्न विधियों से प्रकट की गई राशियों का सर्वथा उपयुक्त मान है। यह भी देखने योग्य है कि १००/१११, ११०११/१११ तथा १११११०/१११ जो क्रमशः दस के आधार पर ४/३, ७/३ तथा १०/३ के समान हैं क्योंकि १००/१११ को ११०.११० अथवा १.०१०१०१ द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

वैज्ञानिक संकेतन विधि का प्रयोग

आधार –२ पर व्यक्त संख्याओं को वैज्ञानिक संकेतन से भी सरलता से प्रकट किया जा सकता है। उदाहरण के लिये :--

(i) १११ १ ०० = $१.१११ + १०^{१०१}$
(१०१ = $५_{१०}$)

(ii) .००००००००११ = $१.१ + १०^{१०००}$
(१००० = $-८_{१०}$

[शेष पृष्ठ १० पर देखें]

धनुर्वात [TETANUS]

● जी० एस० राव

सामान्य परिचय –

कहा जाता है 'शरीरं व्याधि मन्दिरम्' अर्थात् यह मानव शरीर रोगों का घर है। वस्तुतः इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। एक साधारण घाव या चोट पर कुछ जीवाणुओं के संक्रामक प्रभाव से इतना जीव विष (Toxin) शरीर में उत्पन्न हो सकता है कि मनुष्य धनुर्वात (Tetanus) जैसे भयानक रोग का शिकार हो सकता है तथा मृत्यु के मुँह में चला जाता है। धनुर्वात के रोगी के लिये हिलना असंभव हो जाता है। क्योंकि जब एक पेशी एक दिशा में खिंच जाती है तो दूसरी पेशी इसके विपरीत दिशा में उतने ही बल से खिंच जाती है। रोगी को तीव्र वेदना भी भोगनी पड़ती है तथा उसकी दशा दयनीय हो जाती है।

इस रोग का कारण बैसिलस क्लोस्ट्रिडियम टेटानी (Bacillus clostridium Titani) नामक एक जीवाणु है जो मिट्टी, धूल तथा कपड़ों में पाया जाता है। यह जीवाणु शरीर में पहुँच कर एक ऐसा तंत्रिका जीव विष (nerve toxin) उत्पन्न करता है जिसकी गिनती अत्यन्त प्रबल विषों में की जाती है। आजकल इस जीवाणुजन्य विष के शरीर पर प्रभाव का गहरा अध्ययन किया जा रहा है। चेचक हैजा, मलेरिया, तपेदिक आदि रोगों से यह अन्तर रखता है क्योंकि यह उन रोगों की तरह महामारी नहीं है अर्थात् इस रोग का आक्रमण व्यष्टिगत होता है न कि समष्टिगत। इस रोग के बारे में डा० वेरोनेसी (Veronesi) का कथन पठनीय है :—

'यदि धनुर्वात रोग से लोग मृत्यु को प्राप्त न होकर किसी भाँति बच भी जाते हैं तो वे पक्षाघात से कारण निकम्मे हो जाते हैं। यदि ऐसा ही रहा तो विश्व की सड़कों पर प्रति दस वर्षों में १० लाख से अधिक धनुर्वात रोग के परिणामस्वरूप विकलांगों की संख्या में वृद्धि होगी तथा उस परिस्थिति से विवश होकर जनता तथा सरकार इस समस्या के अविलंब नियन्त्रण के उपायों की खोज करने के लिये हम लोगों से पूछेगी।

रोग के कारण—

धनुर्वात मरण सारणी के आँकड़ों से विदित होता है कि मृत्यु संख्या विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में अधिक होती है। भूमध्य रेखा के समीप के देशों में इस रोग से मरने वालों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है। उष्ण कटिबन्धी देशों (Tropical countries) में इस रोग से मरने वालों की अधिक संख्या का कारण वहाँ की मिट्टी तथा जलवायु नहीं अपितु उन देशों में स्वच्छता की कमी ही है। नाभि (Navel) काटने के लिये गन्दे उपकरणों का प्रयोग या अस्वच्छ वातावरण के कारण अधिकतर नवजात शिशुओं को एक प्रकार का धनुर्वात होता है जिसे टेटनस नियोनैटोरम (Tetanus neonatorum) कहते हैं। कुछ अविकसित देशों में नाभि पर गोबर लगाने की भी गन्दी परम्परा है। उष्ण कटिबन्धी देशों में नाभि-धनुर्वात से मरने वालों की संख्या धनुर्वात मृत्यु संख्या के ३० से ८० प्रतिशत तक होती है।

यों तो धनुर्वात सभी उम्र के लोगों को सभी प्रकार के आघातों के कारण होता है। आकस्मिक आघातों के अतिरिक्त शल्य-चिकित्सा, टीका लगाना, खतना, गर्भपात, कान खोदना तथा सुई लगाना आदि में असावधानी के कारण यह रोग हो सकता है।

रोकथाम के उपाय—

स्वच्छता के सरल साधनों द्वारा इस रोग से बचाव संभव है। यदि उष्ण कटिबन्धी देशों के बच्चों में जूते पहनने की आदत डाली जाय तो वे छोटे-मोटे घावों से तथा इस रोग से भी बच सकते हैं। केवल स्वच्छता में सुधार के कारण धनुर्वात रोग से मरने वालों की संख्या जापान में बहुत घट गई है। इसी प्रकार जापान में धनुर्वात से मरने वाले शिशुओं की संख्या में भारी कमी अस्पतालों में प्रसव की संख्या में बृद्धि के कारण हुई क्योंकि घर की अपेक्षा अस्पतालों में अधिक स्वच्छता संभव है।

विकासशील देशों में स्वच्छता का वातावरण स्थापित करने के लिये उनकी आर्थिक दशा बाधक सिद्ध हो रही है और जब तक आर्थिक विकास न हो तब तक सन्तोषजनक ढंग से स्वच्छता का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। प्रतिरक्षीकरण या असंक्रमीकरण (Im nunization) के द्वारा स्वच्छता के अभाव में तथा घाव बड़ा होने पर भी मनुष्य इस रोग से बच सकता है। प्रतिरक्षण (Immunity) के बारे में अच्छी तरह समझने के लिये रोगोत्पादक जीवाणु तथा इस रोग की प्रकृति को जानना भी आवश्यक है।

पहचान तथा अध्ययन—

धनुर्वात एक विचित्र संक्रामक रोग है। जिस जीवाणु से यह रोग होता है उसमें ऊतकों (Tissues) पर आक्रमण करने की शक्ति नहीं के बराबर है। ऊतकों में कोई ऐसे क्षत या विकार भी उत्पन्न नहीं होते हैं जिनकी पहचान इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से की जा सके। अतः घाव को देखकर संक्रमण का पता नहीं लग सकता है और केवल उन जीवाणुओं की उपस्थिति इस रोग के शरीर में व्याप्ति भयानक लक्षणों का कारण नहीं हो सकती है।

रोगाणु सिद्धान्त के प्रारंभिक दिनों की बात है कि बर्लिन विश्वविद्यालय के आर्थर निकोलाइर ने यह देखा कि धनुर्वात कारक जीवाणु शरीर भर में वितरित नहीं होते हैं। इन्होंने यह भी ज्ञात किया कि धनुर्वात के लक्षण प्रबल स्ट्रिकनीन से उत्पन्न लक्षणों के समान हैं। सन् १८८९ में एक जापानी जीवाणु वैज्ञानिक शिबासुबरो किटासाटो ने एमिल वॉन बेहरिंग के सहयोग से क्लोस्ट्रिडियम टेटानी (clostridium Tetani) को पृथक् किया। एक वर्ष के बाद नडफेयर नामक डेन्मार्क के वैज्ञानिक ने निकोलाइर के विचारों की पुष्टि की। वे कुछ जन्तुओं के शरीर में क्लोस्ट्रिडियम टेटानी के शुद्ध सम्वर्ध को, जिससे अन्य प्रकार के बैसिलस अलग किये गये हों, सुई द्वारा प्रविष्ट कराकर उन जन्तुओं में धनुर्वात के लक्षण पैदा करने में सफल हुये। अतः उन्होंने सिद्ध किया कि धनुर्वात के जीवाणुओं से एक जीवविष उत्पन्न होता है जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। डिफ्थीरिया बैसिलस तथा बोटुलिनस बैसिलस के द्वारा भी इस प्रकार के जीव विष उत्पन्न होते हैं जिसके १ घन सेन्टीमीटर रोगाणु युक्त निस्यन्द दस लाख से अधिक चूहों को मारने के लिये पर्याप्त हैं। जब इन जीवविषों को विलग करके शुद्ध रूप में बनाया गया तो पता लगा कि ये कुचला संखिया या सर्पविष से भी अधिक विषैले हैं। टेटनस बोटुलिनस या पेचिस के विषों का आधा पाउंड विश्व के मानव समुदाय को नष्ट करने के लिये पर्याप्त है (यह गणना केवल सैद्धान्तिक है)। सुई द्वारा प्रविष्ट कराने पर ये विष उपर्युक्त प्रभाव रखते हैं परन्तु मुँह से या फेफड़ों द्वारा सेवन से इनका विषैला प्रभाव लाखों गुना कम हो जाता है।

धनुर्वात तथा बोटुलिनस के बैसिलस प्रबल जीवविष क्यों पैदा करते हैं ? डिप्थीरिया के तथा अनेकों अन्य जीवाणुओं के जीवविष ऊतकों पर आक्रमण करके उन्हें ध्वस्त करते हैं। चूँकि जीवाणु विघटित ऊतकों पर तेजी से विकसित होते हैं, ये जीवविष जीवाणुओं के आक्रमण के लिये सहायक होते हैं। परन्तु धनुर्वात तथा बोटुलिनस के जीवाणु जन्तु ऊतकों पर आक्रमण नहीं करते हैं। अतः इससे उत्पन्न जीवविष का कोई उत्तरजीवित मूल्य नहीं है। ये विष केवल तंत्रिका ऊतकों पर ही अपना प्रभाव डालते हैं परन्तु ऊतक को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाते हैं। विकासीय जीव विज्ञान के आधार पर यह समझना कठिन है कि ये जीवविष उत्तरजीविता मूल्य के बिना क्यों धनुर्वात तथा बोटुलिनस के जीवाणुओं से उत्पन्न होते हैं। यदि हमें जीव-विषोत्पादन के कारण ज्ञात हो सकें तो जीवाणिवक शरीरक्रियाविज्ञान तथा विषों के जन्तुओं पर असाधारण प्रभाव से सम्बन्धित अनेक बातें मालूम हो सकती हैं।

धनुर्वात तथा बोटुलिनस से उत्पन्न जीवविषों की तुलना रोचक होगी क्योंकि ये विष समान रूप से कार्य करते हैं तथा तन्त्रिका तन्त्र पर बिना कोई दृष्टिगत संरचनात्मक क्षति पहुँचाये अपना प्रभाव डालते हैं। बोटुलिनस जीवविष पेशी क्रियाशीलता को रोककर ढीला पक्षपात पैदा करता है जबकि धनुर्वात जीवविष पेशी अतिक्रियाशीलता द्वारा आक्षेपिक पक्षाघात पैदा करता है। बोटुलिनस जीवविष तान्त्रिक पेशी संधिस्थानों पर कार्य करता है तथा यह ऐसिटिल कोलीन को जो उत्तेजक पेशी है अपवाही तंत्रिका शिराओं से मुक्त नहीं होने देता। फलस्वरूप उत्तेजक आवेग पेशियों तक पहुँच नहीं पाते हैं तथा इस प्रकार ढीला पक्षघात हो जाता है। धनुर्वात जीवविष इसके विपरीत मेरु रज्जु पर कार्य करके उसका संदमन रोक देता है। संदमन के अभाव में त्रिशिरस्क का तान प्रतिवर्तन (stretch reflex) बेरोक होने लगता है जिससे जब द्विशिरस्क (Bicept) संकुचित होता है तो त्रिशिरस्क भी संकुचित होता है। फलस्वरूप आक्षेपिक पक्षाघात हो जाता है तथा अंगों की गति बन्द हो जाती है।

कुछ वर्ष पूर्व एन० अम्बेची ने यह देखा कि धनुर्वात या बोटुलिनस के जीवविष को खरगोश की आँख में सुई द्वारा प्रविष्ट कराने पर, प्रकाश की प्रतिक्रिया के रूप में आँख की कनीनिका या पुतली को संकुचित करने वाली पेशियों में पक्षाघात हो जाता है। ऐसिटिल कोलीन के कारण ही ये अनैच्छिक पेशियाँ उत्तेजित होती हैं। इस प्रकार दोनों जीवविषों के प्रभाव में समानता पाई जाती है। धनुर्वात जीवविष के कुछ अन्य परिधीय प्रभाव भी हो सकते हैं जो केन्द्रीय तांत्रिक तंत्र पर विलक्षण प्रभाव के कारण प्रायः गुप्त रूप से होते हैं।

सन् १८९८ के अगस्त मास में वाँन वैसरमैन तथा टी० टाकाकी ने देखा कि तंत्रिका पेशी में डालने पर धनुर्वात जीवविष का पेशी द्वारा बन्धन होता है। यह एक विशिष्ट बंधन होता है। न तो कोई दूसरे बैक्टिरिया जीवविष तंत्रिका पेशी में इस प्रकार बद्ध रहता है और न शरीर की कोई अन्य पेशी धनुर्वात जीवविष को बाँध देती है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में डब्लू ई० वान हेनिन्जेन तथा उनके सहयोगियों ने यह खोज की कि यह बन्धन तंत्रिका सिरों के सूत्रयुग मन झिल्लियों में होता है तथा तंत्रिका पेशी में उपस्थित एक वसीय पदार्थ जिसे गेंग्लियोसाइड कहते हैं बन्धक का कार्य करता है। गेंग्लियोसाइड अनेक हैं परन्तु उनकी रासायनिक संरचना में कुछ भिन्नता होती है, प्रत्येक गेंग्लियोसाइड में दो भाग होते हैं जिसमें से एक भाग जल प्रतिकारक वसीय अम्ल तथा स्फिगोसिन का और दूसरा भाग जल में विलेय शर्कराओं का बना होता है। इस कारण वसीय होने पर भी वे जल में विलेय हैं तथा कोशिका झिल्लियों में इनका महत्वपूर्ण कार्य होता है। शर्करा भाग में उपस्थित सिएलिक

अम्ल धनुर्वात-जीव-विष के योगिकीकरण के लिये आवश्यक है तथा इसके हटा देने पर धनुर्वात जीवविष का योगिकरण नहीं होता है। अतः, स्पष्ट है कि केवल कुछ सिएलिक अम्ल समूह धनुर्वात जीव-विष के योगिकीकरण के लिये आवश्यक हैं तथा गैंग्लियोसाइड के अणु में उनकी स्थिति उनकी बन्धन-क्षमता को प्रभावित करती है। धनुर्वात जीव-विष तथा गैंग्लियोसाइड लगभग सम-अणुक अनुपात में बद्ध रखते हैं, परन्तु गैंग्लियोसाइड अणु में कोई पता लगाने योग्य परिवर्तन नहीं होता है। चूँकि धनुर्वात जीव-विष तथा बोट्युलिनस जीव-विष की कार्य-विधियाँ समान प्रतीत होती हैं इसलिये यह संभव है कि गैंग्लियोसाइड धनुर्वात जीव-विष को योगिकीकृत करने के बाद उसे केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र की ओर मोड़ देती हो।

ऊपर की बातों से यह निश्चित हुआ कि धनुर्वात जीव-विष ही उस रोग के समस्त लक्षणों के लिये उत्तरदायी है अतः इस रोग का निवारण प्रतिरक्षीकरण द्वारा सरलता से हो सकता है। अन्य बैक्टीरिया जीव विषों की भाँति धनुर्वात जीव-विष भी एक प्रोटीन है। प्रोटीन एंटीजेन है और इनको सुई द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराने पर ये प्रतिरक्षी पदार्थों की निर्माण क्रिया को उद्दीपित करते हैं। प्रतिरक्षी पदार्थ जीव-विष के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। डिफ्थीरिया तथा धनुर्वात के लिये प्रतिजीव-विष की खोज १८६० ई० में वाँन बेहिरिंग तथा किटासाटो द्वारा की गई। यह प्रतिरक्षी पदार्थ उन जन्तुओं के रुधिर-सीरम में उपस्थित रहते हैं जिनके शरीर में अपाय-रहित या अघातक मात्रा में तनुकृत जीवविष प्रविष्ट कराकर उन्हें असंक्राम्य बनाया गया हो। जब यह प्रतिरक्षित सीरम इसे दूसरे जन्तुओं के शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है तो उनकी शमनकारी सक्रियता बनी रहती है अतः सक्रियतापूर्वक प्रतिरक्षित जन्तुओं के सीरम की सुई लगाकर अन्य जन्तुओं को असंक्रम्य बनाया जा सकता है।

सन् १६२० में डब्ल्यू० टी० ग्लेन्नी ने लन्दन में तथा जी० रैमोन ने पेरिस में अलग-अलग यह आविष्कार किया कि जीव-विष को फार्म-ऐल्डिहाइड से क्रिया द्वारा हानि रहित बनाने पर भी वह प्रतिरक्षी उत्पादन को उद्दीपित करता है। ऐसे अविषैला प्रतिरक्षी जनक पदार्थ को टाक्साइड (Toxiod) कहते हैं। यह प्रतिजीव-विष सीरम घोड़ों को अनेक बार टाक्साइड की बड़ी मात्राओं से अधिक प्रतिरक्षित करने के बाद उनके रुधिर सीरम को शुद्ध करके बनाया जाता है।

धनुर्वात प्रति-जीव-विष सीरम के प्रयोग से प्रथम महा-युद्ध में घायल सिपाहियों की मृत्यु संख्या बहुत कम हुई। युद्ध के बाद भी सभी घायल व्यक्तियों को धनुर्वात से बचाव के लिये इसकी सुई लगाने की परम्परा बनी हुई है परन्तु इससे एक हानि भी संभव है। वह यह कि कभी-कभी इससे सीरम-रोग भी हो जाता है जो घोड़े के प्रोटीन सीरम में होने से कारण प्रतिक्रिया स्वरूप हो जाता है। जिनके शरीर में सीरम की सुई पहले भी लगी हो उनके लिये सीरम-रोग अधिक हानिकारक हो सकता है। वास्तव में स्वच्छता पर ध्यान देने से इस रोग की संभावना बहुत कम होती है और साथ ही घातक सीरम रोग होने का भय भी नहीं रहता है।

अतः, धनुर्वात टाक्साइड द्वारा धनुर्वात से मानव समुदाय को बचाने का उपाय अधिक प्रशस्त है क्योंकि टाक्साइड की व्युत्साह से सम्बन्धित (Allergic) प्रतिक्रिया सीरम की तुलना में उपेक्षणीय है। इससे प्रतिरक्षण अधिक देर तक होता है क्योंकि प्रति-जीव-विष मनुष्य का ही प्रोटीन होता है न कि घोड़े का और प्रतिक्षण अधिक गुणकारी होता है। मानव समुदाय को इससे बचाने के लिये ६ सप्ताह के अन्तर में दो धनुर्वात टाक्साइड की सुइयाँ लगाने की आवश्यकता पड़ती है। अधिक सुरक्षा के लिये ६ मास के पश्चात् एक और तथा कभी-कभी अधिक अवधि पर सुई लगाना भी अच्छा है पर आवश्यक नहीं है। स्त्रियों के धनुर्वात

टाक्साइड द्वारा प्रतिरक्षीकरण से (चाहे वे गर्भवती हों या नहीं) बच्चों में होने वाली नाभि सम्बन्धी-धनुर्वात का लगभग पूर्ण उन्मूलन संभव है।

धनुर्वात हो जाने पर उसकी चिकित्सा कठिन एवं व्ययसाध्य होती है। डी० टुवोकुरैरिन नामक विष के प्रयोग द्वारा रोगी को गतिहीन किया जाता है। वहाँ तक की कृत्रिम श्वास-क्रिया का प्रबन्ध भी करना पड़ता है। यदि रोगी को इस अवस्था में इतने समय तक जीवित रक्खा जाय कि धनुर्वात-जीव-विष जन्य क्षति की पूर्ति हो सके तो वह पुनः स्वस्थ हो सकता है। फिर भी चिकित्सा प्रत्याशित रूप में सफल नहीं हो सकती क्योंकि धनुर्वात-मृत्यु दर अब भी अधिक है। हृदय तथा रुधिर वाहिकाओं के नियन्त्रक अनैच्छिक तंत्रिका तन्त्र पर भी धनुर्वात जीव-विष का प्रभाव पड़ता है और धनुर्वात के अनेक रोगियों के हृदय तथा परिसंचारी विकारों से, मर जाने का प्रमाण उपलब्ध है। इस दिशा में अभी अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

सन् १९६६ में स्विटजरलैंड में धनुर्वात पर विचारार्थ सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रतिनिधि मण्डल ने चिकित्सिकों एवं स्वास्थ्य-अधिकारियों से यथाशीघ्र धनुर्वात-उन्मूलनार्थ विश्वव्यापी सक्रिय प्रतिरक्षीकरण का मार्ग अपनाने के लिये आग्रह किया है।

● ●

[पृष्ठ ५ का शेषांश]

(iii) ११०११०११०००० = १.१०११०११ $\times$ १०^{११११११} (११११११ = ११$_{१०}$)

(iv) ०.००००००११०१११०१ = १.१ $\times$ १०^{१००१} (१००१ = ७$_{१०}$)

आधार ऋण दो पर लघुगणक:—

ऋण दो के आधार की गणना-पद्धति में लघुगणक की रचना करने के प्रयत्न बहुत ही रोचक परिणाम प्रस्तुत करते हैं। इस क्रिया में पूर्णतः काल्पनिक संख्याओं के लिये वास्तविक लघुगणक प्राप्त होता है। जैसे :—

$$\text{Log}_{-२} \{-२i\sqrt{२}\} = ३/२$$

$$[\because (-२)^{३/२} = -२i\sqrt{२}.]$$

इसी प्रकार कुछ ऐसी संख्यायें जिनका मान वास्तविक धन संख्या है उनका लघुगणक अज्ञात होता है।

जैसे :— $\text{Log}_{-२}\, ८ = ?$

क्योंकि $(-२)^{x} = ८$ से यह निश्चित नहीं है कि x के किसी मान के लिये यह वाक्य सही होगा।

इसी प्रकार $\text{Log}_{-२}\,(-८) = ३$ क्योंकि $(-२)^{३} = -८$ होता है।

उपर्युक्त आधार में संख्याओं की गणना पद्धति का अध्ययन किया जा सकता है जिससे यह समझने में पर्याप्त रूप से सहायता मिलती है कि गणना, आधार दस तथा अन्य धनात्मक आधारों के अतिरिक्त ऋणात्मक आधार से भी की जा सकती है तथा समस्त गणितीय सिद्धान्त इस स्थिति में सर्वथा उपयुक्त प्रमाणित होते हैं।

●

फासफोरस स्थिरीकरण कम करने के उपाय

● दिनेश चन्द्र जोशी

कृषि के प्रारम्भ में अधिक उत्पादन के लिये सिर्फ खेत की जुताई एवं कुछ विशेष कृषि क्रियाएँ (inter cultural operation) ही पर्याप्त थीं परन्तु ज्यों ज्यों खेती होती गई, मृदा में पौध तत्वों की कमी होती गई। आज पौध तत्व अपने निम्नतम-स्तर पर पहुँच चुके हैं। मृदा वैज्ञानिक एवं शस्य वैज्ञानिक इस बात पर एक मत हैं कि मृदा से क्षय हुए तत्वों को वापस देकर तत्वों के स्तर को बनाए रखना चाहिये। ये तत्व मृदा में खाद एवं उर्वरक के रूप में दिये जा सकते हैं। पौध भोजन में साधारणतया अठारह तत्वों की आवश्यकता होती है। परन्तु तीन तत्व, नाइट्रोजन फासफोरस एवं पौटेशियम पौधे अधिक मात्रा में लेते हैं। इन तत्वों की पौधों को प्राप्ति विशेष कारणों पर निर्भर करती है परन्तु फासफोरस अन्य तत्वों की तुलना में एक विशेष प्रकार की परिस्थिति प्रस्तुत करता है क्योंकि फासफोरस का अधिकतम भाग मृदा में स्थिर (fixed) हो जाता है जो कि पौधों को साधारणतया प्राप्य नहीं होता है।

फास्फोरस स्थिरीकरण

फास्फोरस का पौधों के जीवन में विशेष महत्व है। पौधों के प्रारम्भिक दिनों में कोष बनने, जड़ निर्माण, शीघ्र परिपक्वता, बीज निर्माण में फासफोरस की बहुत आवश्यकता है। अगर इस समय जब कि फासफोरस की पौधों को आवश्यकता है, वह प्राप्य नहीं होता है तो उसकी कमी के कारण होने वाली हानि को भविष्य में इसकी अधिक मात्रा देकर नहीं सुधारा जा सकता है।

मृदा में अधिकतर फासफोरस सुपरफास्फेट उर्वरक के रूप में डाला जाता है। इस रूप में डाले गए फासफोरस में से सिर्फ १० प्रतिशत फास्फोरस ही पौधों को उपलब्ध हो पाता है। शेष मृदा के अधिशोषक संकर द्वारा अप्राप्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। भारतीय मृदाओं में जो कि अधिकतर क्षारकीय हैं फासफोरिक अम्ल चूने के साथ क्रिया करके त्रिकैल्सियम फास्फेट यौगिक बनाते है। पौधों को सुपरफास्फेट के द्वारा दिया फासफोरस सिर्फ एक-तथा द्वि-कैल्सियम फास्फेट के रूप में ही प्राप्य होता है। यह रूप २.५-२.८ पी एच पर ही रहता है। इससे अधिक पीएच बढाने पर यह द्वि तथा त्रि- कैल्सियम फास्फेट में बदलता है। इसके अलावा अम्लीय मृदा में $\overset{+++}{Al}$ या $Al(OH)_3$ के साथ फासफोरस स्थिर हो जाता है।

फासफोरस जैविक योगिकों के रूप में भी स्थिर होता है। बावर ने अनुसंधान द्वारा यह पता लगाया है कि फासफोरस के जैविक यौगिक फाइटीन न्युक्लिक-एसिड तथा इसी प्रकार के अन्य यौगिकों में यह तत्व पौधों को उपलब्ध नहीं होता है। यह जैविक यौगिक अजैविक धनायनों (ca, Fe, Al) के साथ में यौगिक भी बनाते हैं। ये यौगिक भी पौधों को प्राप्य नहीं हैं। इस प्रकार से मृदा में फास्फोरस बहुत से अजैविकों के रूप में उपस्थित रहता है परन्तु सिर्फ एक-तथा द्वि-कैल्सियम फास्फेट ही प्राप्य होता है।

फासफोरस स्थिरीकरण कम करने के उपाय

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि फासफोरस पौधों को आसानी से प्राप्य नहीं है। फासफोरस प्राप्य होने के लिये उचित मृदा-वातावरण तैयार करना होता है। इस वातावरण को तैयार करने के लिये विशेष कृषि-क्रियाएँ काम में लानी होती हैं। यह विधियाँ ऐसी हैं कि इनसे मृदा में फासफोरस देने पर वह अप्राप्य न बने। ये विधियां हैं :—

हरी खाद के साथ फासफोरस उर्वरक दें

हरी खाद की फसल को फूल आने के पहले मृदा में **पाट दिया** जाये तो दो–तीन माह के बाद **बने** कार्बनिक **अम्ल स्थिर फासफोरस** से क्रिया करते **हैं** तथा अप्राप्य **फास्फोरस** को प्राप्य बनाते हैं। इसके अलावा इन फसलों **के पौधों** में कुछ विशेष प्रकार की गाँठें होती **हैं**। इन **गाँठों** में जीवाणु होते हैं। ये विशेष प्रकार के कार्ब–**निक अम्ल** पैदा करते हैं। इन अम्लों के कारण स्थिर **फासफोरस** आसानी में प्राप्य हो जाता है। यही फासफोरस **अगली फसल** को आसानी से प्राप्य होता है।

फासफोरस उर्वरक देने का समय–

मृदा परीक्षण के बाद फारफोरस की **आवश्यक मात्रा** उचित समय **पर फसल** को देनी चाहिये। **उर्वरक अच्छा** परिणाम तभी देते **हैं** जब **उन्हें पौधों** की **आवश्यकता** के समय दिया जावे, क्योंकि यह उर्वरक **मृदा** में स्थानान्तरित बहुत कम होते **हैं** तथा पोधे **को प्रारम्भिक** जीवन में ही इनकी अधिक आवश्यकता **होती है**। अतः **इन्हे** बीज **बोने** के समय ही या इसके **कुछ दिनों** बाद खेत में देना चाहिये।

उर्वरक देने की विधि

फासफोरस खेतों में देने की अनेक विधियाँ **हैं**, ब्राडकास्टिंग, साइड ड्रेसिंग, बेंड प्लेसमेन्ट आदि। **फास्फो-रस मृदा** में स्थानान्तरित कम होते है अतः ऐसी विधि **काम** में लानी चाहिये कि फासफोरस पौधों की जड़ों में **ही दिया** जाय। साधारणतया दिये **फासफोरस का बहुत कम भाग पौधों** को प्राप्य होता है। इसका **कारण** फासफोरस स्थिरीकरण एवं स्थानिक अप्रा-**प्यता है**। ब्राडकास्टिंग विधि से देने पर फारफोरस सारे **खेत** में बिखेरा जाता है। इससे पौधों की जड़ों के **सम्पर्क में आने** वाली मात्रा कम होती है। इन्हीं **कारणों** को ध्यान में रखते हुए बैंड प्लेसमेंट विधि **काम में लाई** जानी चाहिये। इस विधि से **फास्फोरस पौधों** की जड़ों के पास दिया **जाता है**। साथ ही **पौधों** की **जड़ों के पास** अधिक **नमी होने** से यह आसानी से **पौधों को उपलब्ध हो सकता है**।

अनाज की फसलों के लिये फास्फोरस को १-१½ इंच गहराई **पर देना चाहिये**। **गन्ने की फसल बोते समय** ३-४ इंच **गहराई पर** हल के पीछे धारी में देना चाहिये। साधारणतया **सारी आवश्यक** फासफोरस खाद एक ही बार में दी जानी चाहिए।

विभिन्न फासफोरस उर्वरक

वही **फासफोरस उर्वरक** फसल को देना चाहिये, **जिनमें फास्फोरस** प्राप्य रूप में हों। रासायनिक रूप के साथ-साथ भौतिक अवस्था भी ऐसी हो कि **फासफोरस** स्थिरीकरण कम हो। चूर्ण रूप की तुलना में छोटी-छोटी गोलियों के रूप वाला फासफोरस उर्वरक मृदा में कम स्थिर होता है तथा लाने ले जाने तथा फसलों को देने में सुविधाजनक होता है। अतः आजकल गोलियों वाले उर्वरक विशेष रूप से उपयोग में लाये जाते हैं।

विशेष कृषि क्रियाएँ

वे सभी क्रियाएँ जो पौधों की जड़ों में मृदा वायु एंव मृदा जल-निकास को सुधारने वाली हों, फासफोरस प्राप्यता को बढाती हैं। पानी भरी हुई मृदा में फासफो-रस अप्राप्य रहता है तथा जीव-रसायन क्रियाएँ भी बंद सी **रहती है**। ऐसी क्रियाएँ हैं—गहरा हल चला-ना, अन्तः कृषि क्रियाएँ तथा फसल-चक्र आदि! गहरी तथा **समय पर** की गई अन्तः कृषि क्रियाओं से प्राप्य फास्फोरस खर पतवार को प्राप्त न होकर फसलों के पौधों को प्राप्य होते हैं। फसल-चक्र में भी छिछली जड़ों वाली फसलों के बाद गहरी जड़ों वाली फसलें उगानी चाहिये। इस प्रकार से फासफोरस संतुलित रूप से पौधों **को प्राप्त होता रहेगा**।

●

पेड़ पौधों में परिवार नियोजन

● अ. बि. सीरवाणी

आज के वैज्ञानिक युग में परिवार नियोजन पर बड़ा बल दिया जा रहा है और सन्तति निरोध के लिये उपकरण निकाले जा रहे हैं। शासन की ओर से भी इस कार्य पर प्रचुर व्यय हो रहा है और इसे रुचिकर बनाने के लिये कई संस्थाएँ क्रियाशील हैं। इन सबको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो मनुष्य संसार के लिये परिवार नियोजन कोई नया प्रयोग हो। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि पेड़-पौधों में परिवार नियोजन एक साधारण सी बात है। वैसे पौधे और मनुष्य दोनों जीवधारी हैं तथा प्रकृति की देन हैं किन्तु अन्तर यह है कि मनुष्य के पास मस्तिष्क है और सोचने की शक्ति है जो कि पौधों में नहीं है। पौधा प्रकृति द्वारा जैसा उत्पन्न हुआ है वैसा ही आज भी हमारे सामने है और उसकी जीवनचर्या का अध्ययन प्रकृति का सच्चा अध्ययन है। मनुष्य ने अपनी अटकल-बाजियाँ लगा कर कई स्थानों पर प्रकृति के नियमों की अवहेलना की है किन्तु पौधों में ऐसा नहीं हो सकता। फलतः आज भी वे प्रकृति का सच्चा रूप प्रस्तुत करते हैं। यदि हम लोग यह जानना चाहें कि प्रकृति के नियम क्या हैं तो हमें पौधों के जीवन का विवेकपूर्ण अध्ययन करना चाहिये। पौधों में परिवार नियोजन के सम्बन्ध में नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे है।

(१) नारियल का फल जो प्रायः सभी ने देखा होगा किन्तु शायद ही किसी ने यह सोचा हो कि इसमें परिवार नियोजन की भावना कितनी कूट-कूट कर भरी हुई है। प्रत्येक फल पर तीन काले निशान आँखों के आकार के बने हुये होते हैं। थोड़ा सा ध्यान देने पर यह भी पता चलेगा कि तीन में से एक आँख अन्य दो की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होती है तथा उसी से चिपका बीज भी रहता है। वास्तव में तीनों आँखे एक-एक करके तीन बीज उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं किन्तु इस दृष्टिकोण से कि यदि तीन बीज बन गए तो तीनों कमजोर होंगे, दो नष्ट होते हैं और आँखे मुरझा जाती हैं तथा केवल एक ही आगे बढ़ती है जो एक बहुत बड़े और स्वस्थ बीज को जन्म देती है। इस प्रकार नारियल तीन के स्थान पर केवल एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देना पसन्द करता है। यह प्रकृति द्वारा परिवार नियोजन का एक असाधारण उदाहरण है।

(२) साइकस (Cycas) नामक पेड़ में परिवार-नियोजन बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। साइकस की कुछ जातियों में एक ही मादा पर पाँच या छह अण्डप लगे रहते हैं किन्तु बीज केवल एक ही से बनता है। बाकी के अण्डप बिना बीज बनाए ही नष्ट हो जाते हैं।

(३) प्रायः सभी पुष्पीय पौधों में मादा से अण्डप बनते समय परिवार-नियोजन की पूरी झलक मिलती है। प्रत्येक मादा में प्रारम्भ में चार योग्य भ्रूणकोषाएँ रहती हैं किन्तु शीघ्र ही तीन नष्ट हो जाती हैं और केवल एक ही बच रहती है।

[शेष पृष्ठ १६ पर देखें]

सार संकलन

१—श्रद्धांजलि ● डा० होमी जहाँगीर भाभा को

सर जगदीश चंद्र बसु तथा सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन के पश्चात् यदि किसी भारतीय वैज्ञानिक ने आधुनिक विज्ञान-जगत को प्रभावित किया है तो वह हैं- डा० होमी जहांगीर भाभा। यदि भारत जैसा अर्ध विकसित देश आज परमाणु ऊर्जा के द्वारा पर आ खड़ा हुआ है तो इसका श्रेय विज्ञान के अनन्य महारथी डा० भाभा को है। टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च (**T.I.F.R.**), एटोमिक इनर्जी इस्टेब्लिशमेंट(A.E.E) (अब भाभा एटोमिक रिसर्च सेन्टर) अप्सरा, सी० आई० आर० (C.I.R.) तथा जरलीना नाम की तीन परमाणु भट्टियां, तारापुर, प्रताप सागर तथा कल्परवाम में निर्माणाधीन परमाणु शक्ति संयंत्र डा० भाभा के उन प्रमुख योगदानों में से हैं जो सदैव उनके स्मारक के रूप में रहेंगे।

डा०भाभा का जन्म ३० अक्टूबर सन् १६०६ को बंबई में हुआ। उन्होंने एलफिंस्टन कालेज, इन्स्टीट्यूट आफ साइंस, बाम्बे तथा तत्पश्चात् कैम्ब्रिज में शिक्षा प्राप्त की। इंग्लेंड प्रवास में उन्होंने वैज्ञानिक शोध तथा नेतृत्व में अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया जिससे उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली और पॉली तथा फर्मी जैसे विश्व-विश्रुत वैज्ञानिकों के सम्पर्क में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप, जब वह भारत लौटे तब उनका मस्तिष्क भारत में शोध एवम् विकास की महत्वाकांक्षी योजनाओं से इतना परिपूर्ण था कि इन योजनाओं के आंशिक रूप में कार्यान्वित होने पर भी दो दशाब्दियों के अत्यल्प काल में भारत में वैज्ञानिक प्रगति के दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गये।

सोपान सिद्धान्त

सन् १६३७ में डा० भाभा ने स्विस वैज्ञानिक वाल्टर हाइटलर के सहयोग से द्वितीयक अंतरिक्ष-किरण-वर्षण का सोपान सिद्धान्त (**Cascade Theory**) प्रस्तुत किया जिससे विश्व विख्यात हुये। वस्तुतः अंतरिक्ष किरणों की जटिल समस्या के इस गणितीय स्वरूप ने ही (यूकावा के कार्य के साथ) एन्डरसन द्वारा सन् १६३८ में मेसान (**meson**) के अन्वेषण एवम् रूसी वैज्ञानिक लेव लन्दाओं (**Lev Landau**) द्वारा मेसान उत्पादन पर किये गये बहुमूल्य कार्य की आधार-शिला रखी। इलेक्ट्रानों द्वारा तथा फोटान से निर्मित इलेक्ट्रान-पोजीट्रान-युग्म द्वारा रेडियधर्मी ऊजा के क्षय का डा० भाभा का सिद्धान्त वास्तविक प्रक्रम का सरलीकृत रूप होते हुये भी द्वितीयक अंतरिक्ष किरणों की प्रकृति व्याख्या करने में निश्चत रूप से सफल सिद्ध हुआ। तथ्यतः क्वांटम यांत्रिकी (**Quantum Mechanics**) में इस सिद्धान्त का अत्यन्त व्यापक उपयोग है।

उच्च ऊर्जा वाली अंतरिक्ष किरणों के अध्ययन में भारत की भौगोलिक स्थिति का सहायक होना (भूमध्य

गुलशन राय, ओम् नारायन अवस्थी तथा सुरजीत सिंह, भौतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रेखा के निकट पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र निम्न ऊर्जा के कणों को निकाल फेंकता है) तथा डा० भाभा का न्यूक्लीय भौतिकी और क्वांटम यांत्रिकी के क्षेत्र में प्रारम्भिक शोध कार्य ही वे तथ्य हैं जो उनके अंतरिक्ष किरणों में अत्यधिक रुचि के मूलभूत कारण हैं। उनकी इस रुचि की अभिव्यक्ति टाटा इन्स्टीट्यूट में अंतरिक्ष-प्रयोगशाला की स्थापना के रूप में हुई जिसकी गणना आज विश्व की सर्वोत्तम अंतरिक्ष-किरण-प्रयोगशालाओं में की जाती है।

न्यूक्लीय शोध

डा० भाभा के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप लगभग २० वर्ष पूर्व टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च की स्थापना हुई। भारत जैसे विकासशील देश में विज्ञान की प्रगति के लिये तथा विशेष रूप से परमाणु भौतिकी की प्रगति द्वारा लाभान्वित होने के लिये उन्होंने बृहत् अनुसन्धान केन्द्रों की आवश्यकता बहुत पहले अनुभव की। ये संस्थान न केवल युवा वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण देते हैं और विदेशी वैज्ञानिकों को आकर्षित करते हैं वरन् भारत के मेधावी वैज्ञानिकों को विदेश की अत्याधुनिक एवम् सुसंपन्न अनुसन्धान शालाओं के आकर्षणवश भारत से बाहर जाने से भी रोकते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज टाटा इन्स्टीट्यूट संसार के सर्वोत्तम शोध संस्थानों में से एक है जहाँ अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त, अंतरिक्ष-किरणों, मूल कणों (Elementary Particle) न्यूक्लीय तथा इलैक्ट्रानिक तकनीक पर विशद् शोध कार्य हो रहा है। इस संस्थान में अनेक रेडियोऐक्टिव समस्थानिकों का अन्वेषण हो चुका है जो कृषि तथा चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुये हैं। टाटा इन्स्टीट्यूट की आशातीत सफलता के परिणामस्वरूप सन् १९४८ में परमाणु शक्ति आयोग तथा फिर सन् १९५४ में प्रधान मन्त्री के संरक्षण में भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना हुई।

भारत की परम्परा एवम् शांति की राष्ट्रीय नीति के अनुकूल डा० भाभा ने परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोगों द्वारा भारत की सेवा पर बल दिया। डा० भाभा प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने परमाणु ऊर्जा में शक्ति का सम्पन्न स्त्रोत देखा। कृषि एवम् उद्योग के लिये इस स्त्रोत का उपयोग केवल सहायक रूप में करने की ही परिकल्पना उन्होंने नहीं की वरन् इसे गम्भीर आवश्यकता भी समझा। कोयला, पेट्रोल तथा जल-विद्युत जैसे शक्ति के अन्य स्त्रोत आधुनिक संसार की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांगों को पूरा करने में असमर्थ हैं, यह उन्होंने अनुभव किया। अतः उन्होंने परमाणु ऊर्जा संयंत्रों (Atomic Energy Plants) के विकास को लक्ष्य में रखकर प्रायोगिक अनुसन्धान परमाणु भट्टियों की स्थापना की। दुर्भाग्यवश, वह अपने प्रस्तावित शक्ति संयंत्रों में से एक को भी सक्रिय देखने के लिये यथेष्ठ समय तक जीवित न रह सके। तारापुर स्थित परमाणु ऊर्जा संयंत्र ने इस वर्ष से उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है तथा आशा की जाती है कि सन् १९७० तक शेष दो संयंत्र भी कार्य प्रारम्भ कर देंगे।

डा० भाभा बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। आत्मविश्वास, साहस, महत्वाकांक्षा तथा मेधा के वह जीवन्त उदाहरण थे। उनका व्यक्तित्व उन गुणों का दुर्लभ संग्रह था जिनकी उपस्थिति व्यक्ति को महान बना देती है। व्यावहारिक अनुसन्धान (Experimental Research) की प्रगति के लिये मौलिक अनुसन्धान के महत्व से वह पूर्णतया परिचित थे। विज्ञान का यह महान सेनानी जो भारत में वैज्ञानिक गतिविधियों का बीस वर्षों से अधिक समय तक नेतृत्व करता रहा केवल कोरा सिद्धान्तवादी ही नहीं था प्रत्युत एक कुशल प्रयोगकर्ता तथा योग्य संचालक भी था। संगीत, वास्तुकला तथा चित्रकला जैसी परिष्कृत कलाओं में उनकी अत्यधिक रुचि एवम् व्यक्तिगत उपलब्धियाँ उनकी सुसम्पन्न प्रतिभा की प्रतीक हैं।

विश्व शांति की स्थापना में डा० भाभा के योगदान चिरस्मरणीय हैं। अन्तराष्ट्रीय परमाणु उर्जा एजेन्सी के एक सक्रिय सदस्य के रूप में उन्होंने इस संस्था के प्रारूप-निर्माण एवम् कार्य योजना बनाने में मुख्य भाग लिया। जेनेवा में सन् १९५६ में परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोगों पर हुये प्रथम सम्मेलन की सफलता में उनका योगदान सर्वविदित है। उन्होंने इस ऐतिहासिक सम्मेलन की अध्यक्षता की और अनेक प्रकार से इसकी सफलता के उत्तरदायी थे। यह भारत का दुर्भाग्य है कि वह ५६ वर्ष की अल्पायु में एक विमान दुर्घटना के शिकार हो गये और इस समय जबकि देश को उनकी सर्वाधिक आवश्यकता थी वह हमारे बीच नहीं रहे।

●

[पृष्ठ १३ का शेषांश]

(४) चीड़, चिलगोजा, देवदार आदि में तो निषेचन के बाद कई भ्रूण बन जाते हैं किन्तु आगे चल कर केवल एक ही की वृद्धि होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार-नियोजन जिसे हम लोग बीसवीं शताब्दी की देन मानते हैं प्रकृति में प्रारम्भ से ही विद्यमान है। अन्तर केवल हमारी समझ का है। पौधों के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कई लोग जो परिवार नियोजन का यह सोच कर पालन नहीं करते कि यह प्रकृति के सिद्धान्तों की अवहेलना है वे वास्तव में बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। प्रकृति ने पौधों के द्वारा हमारे सामने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह स्वयं परिवार नियोजन चाहती है और मनुष्य को जो प्रकृति का ही एक अंग है, इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। परिवार नियोजन के द्वारा प्रकृति पौधों की संख्या संतुलित बनाए हुये है। मनुष्य को भी पुराने अंधविश्वास को भूलना होगा और संतुलित परिवार बनाना होगा। यही प्रकृति की पुकार है।

●

वैज्ञानिक पठन-पाठन का अभ्यास

राष्ट्र भाषा में ही करें।

२—हीलियम शताब्दी समारोह

सृष्टि में अधिकतम प्रचुरता से पाया जाने वाला द्वितीय तत्व होने के बावजूद, हीलियम पृथ्वी पर दुर्लभ है। फिर भी यह मनुष्य को ज्ञात अधिकतम उपयोगी तत्वों में एक है। अपनी दुर्लभता और उपयोगिता के कारण हीलियम एक ऐसे प्राकृतिक साधन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जिसे वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लाभार्थ सुरक्षित रखना आवश्यक है। हीलियम की खोज की यादगार को ताजा बनाने और उसे सुरक्षित रखने विषयक प्रयासों की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए अमेरिका १९६८ में एक 'हीलियम शताब्दी मनायेगा।

सबसे पहले १८६८ में, जे० नार्मन लौकियर नामक एक अंग्रेज खगोल वैज्ञानिक ने सूर्य के प्रभा-मंडल में उस गैस का पता लगाया, जिसका नाम उसने (सूर्य के लिए यूनानी भाषा के शब्द 'हीलियोस' के आधार पर) 'हीलियम' रखा। उसका विश्वास यह था कि पृथ्वी पर इस तत्व का कहीं भी अस्तित्व नहीं। उसकी इस मान्यता को २७ वर्ष बाद दो अंग्रेज वैज्ञानिकों ने कुछ खनिजों से हीलियम को पृथक करके असत्य प्रमाणित किया। फिर भी, उस समय तक, यह तत्व केवल प्रयोगशाला का ही एक चमत्कार बना रहा।

इस दिशा में एक नया मोड़ १९०५ में अमेरिका में उपस्थित हुआ, जब कंसास राज्य में खोदे गये प्राकृतिक गैस के एक नये कुएं में हीलियम का अस्तित्व पाया गया। फिर १९१८ में, इस तत्व की खोज के ठीक ५० वर्ष बाद, एक नयी हिमीकरण विधि द्वारा प्राकृतिक गैस से पर्याप्त मात्रा में हीलियम निकाला गया।

आज तक, प्राकृतिक गैस ही हीलियम का एकमात्र लाभकर स्रोत बनी हुई है। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र विश्व में हीलियम की अधिकांश पूर्त्ति अमेरिका, और विशेष रूप से, कंसास, ओकलाहोमा और टेक्सास, से प्राप्त होती है।

इस समय, खनिज परिषद् के पास १७ अरब घनफुट अशोधित हीलियम संग्रहीत है। हीलियम का यह सुरक्षित भंडार क्रम से उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि अमेरिका के हीलियम संरक्षण कार्यक्रम के बगैर इस तत्व के ज्ञात भंडार १९६५ तक समाप्त हो गये होते।

सृष्टि में हीलियम इतने सामान्य रूप में इसलिए पाया जाता है कि यह सूर्य तथा अन्य सितारों में हाइड्रोजन अणुओं के (जो सबसे अधिक मात्रा में पाये जाने वाले तत्व हैं) थर्मोन्यूक्लियर विखंडन से प्रादुर्भूत होता है। पृथ्वी पर हीलियम का उत्पादन कुछ तत्वों के रेडियोऐक्टिव क्षरण द्वारा बहुत ही कम मात्रा में होता है।

हीलियम के नकारात्मक गुण इतने अधिक हैं कि यह 'कुछ भी नहीं' होने के अधिक निकट है। किन्तु इसे विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में इतना बहुमूल्य बनाने का श्रेय भी इन्हीं गुणों को है।

हीलियम, जो हाइड्रोजन के अतिरिक्त किसी भी तत्व से अधिक हल्का होता है, गंधहीन, स्वादहीन और विष-विहीन होता है। यह न तो जलेगा और न ही

विस्फोट करेगा और धीरे धीरे बह कर ऐसे स्थानों पर भी पहुँच सकता है, जहाँ अन्य तत्व नहीं पहुँच सकते। यह रासायनिक विधि द्वारा किसी अन्य तत्व, या मिश्रण से संयुक्त नहीं हो सकता।

हीलियम का सबसे बड़ा अकेला उपयोग अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में है, जहाँ यह अनेक प्रकार के प्रयोगों के लिए सर्वोपयुक्त है। उदाहरण के लिए, इसे अंतरिक्ष यानों की द्रव ईंधन वाली टंकी में पहुँचा दिया जाता है, जिससे ऐसा दाब उत्पन्न हो जाता है, जो ईंधन को धकेल कर राकेट मोटरों में पहुँचा देता है। जैसे जैसे ईंधन समाप्त होता जाता है, वैसे वैसे हीलियम फैलता जाता है, और टंकी के भीतर के खाली स्थान को भर देता है। फलस्वरूप यान की अनमनीयता और भी बढ़ जाती है।

हीलियम का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग धातु शोधन विज्ञान के क्षेत्र में है, जहाँ इसका प्रयोग अल्युमिनियम, ताँबा, स्टेनलेस इस्पात और अन्य धातुओं की जोड़ाई में ढाल के रूप में होता है। इसके प्रयोग के फलस्वरूप हाइड्रोजन और नाइट्रोजन जैसे तत्वों के कारण विषाक्तता उत्पन्न नहीं होने पाती।

चूँकि हीलियम पर रेडियोऐक्टिवता का कुप्रभाव नहीं पड़ता और वह ताप वाहकता में विस्फोटक हाइड्रोजन के अतिरिक्त अन्य किसी भी गैस से श्रेष्ठतर होता है, अतः उसे न्यष्टि प्रतिक्रियावाहक में एक शीतकारी तत्व के रूप में तथा ताप ऊर्जा को स्थानांतरित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

हीलियम से भरे हुए मौसम-शोधी गुब्बारे वायुमंडल में जलवायु सम्बंधी आँकड़ों की खोज करते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में, हीलियम को प्रायः ऑक्सीजन में मिलाकर उससे उन व्यक्तियों के लिए प्रश्वास वायुमंडल तैयार किया जाता है, जो दमा या श्वास संबंधी अन्य रोगों से पीड़ित होते हैं।

इसी प्रकार के हीलियम-आक्सीजन मिश्रणों का प्रयोग गहरे समुद्रों की गोताखोरी में होता है। निस्संदेह, भविष्य में जब महासागरीय खोज पर अधिक बल दिया जायेगा, उसके इस उपयोग का महत्व बढ़ जायेगा। हाल में, अमेरिकी वैज्ञानिकों ने निऑन और हीलियम के एक मिश्रण का प्रयोग करके एक नई किस्म का लेसर विकसित किया है। इस उपकरण से दूरी का अधिक सही माप सम्भव हो गया है।

ऋण ४५२ अंश फारेनहाइट पर हीलियम एक द्रव बन जाता है और इस रूप में कुछ धातुओं को उस बिन्दु तक शीतित करने में समर्थ होता है जहाँ वे विद्युत संचरण के लिए बाधक नहीं रह जातीं। इस तरह की धातुओं का प्रयोग अति संचारक चुम्बकों में होता है, जिनका अनुसंधान में अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

जब हीलियम को ऋण ४५५ अंश फारेनहाइट तक शीतित कर दिया जाता है, तो वह द्रव बन जाता है और उसमें एक विशिष्ट गुण का संचार हो जाता है। उस दशा में वह ऊपर की ओर प्रवाहित होने में समर्थ होता है, जो एक ऐसी बात है, जिसकी व्याख्या करने में वैज्ञानिक असमर्थ हैं।

यह सूर्य-तत्व—हीलियम—की एक अन्य विचित्रता है, जिसे संरक्षण द्वारा मनुष्य के कल्याण के लिए अनेक प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है।

३—ब्रह्माण्ड की नई पहेलियाँ—पुलसार

आज "पुलसार" शब्द का उल्लेख किया जाय और कोई भी खगोलशास्त्री तटस्थ रहे, यह असम्भव है। विगत जुलाई में ब्रिटिश खगोलशास्त्रियों द्वारा खोजे गये इन आश्चर्यजनक कास्मिक रेडियो उत्सर्जन उद्गमों को यह नाम दिया गया है। इन उद्गमों का व्यवहार इतना असाधारण और रहस्यमय था कि वैज्ञानिकों ने इस खोज की घोषणा छः मास से पहले नहीं की। (वर्तमान मानकों की दृष्टि से यह बहुत बड़ा विलम्ब है)। इस समस्त काल में यह खोज गोपनीयता के मोटे आवरण के पीछे रखी गयी।

पुलसार इतने आश्चर्यजनक क्यों हैं? प्रथम यह कि बहुत ही छोटे कम्पन इस विकिरण की विशेषता हैं—इनकी अवधि लगभग एक सेकन्ड का एक सौवाँ भाग होती है। किन्तु, सम्भवतः, सबसे रोचक तथ्य यह है कि इन कम्पनों के बीच में सर्वथा नियमित कालांतर होते हैं, जैसे लगभग एक सेकिन्ड (जो भिन्न उद्गमों के लिए भिन्न होते हैं)। इन कम्पनों के आवर्तन की परिशुद्धता अभूतपूर्व है--एक सेकिन्ड के कुछ करोड़वें भाग तक। पहली बार खगोलशास्त्रियों के सम्मुख और मण्डल के सीमांतों से परे स्थित एक इतनी श्रेष्ठ 'घड़ी' आयी।

इस विकिरण का स्वरूप कृत्रिम उद्गम के रेडियो संकेतों से मिलता जुलता है। अपने ब्रिटिश सहयोगियों के भावावेशों को समझना बहुत ही सरल है। वास्तव में, उनके पास यह मान लेने के लिए महत्वपूर्ण आधार थे कि अन्त में दूरस्थ सभ्यताओं से संकेत खोज ही लिये गये हैं जिन पर अभी हाल ही तक न केवल विज्ञान कथा साहित्य में अपितु बहुत ही गम्भीर वैज्ञानिकों ने भी बहुत कुछ लिखा है तथा चर्चाएं की हैं।

भावावेशों के शांत होने के बाद, यह स्पष्ट हो गया कि समस्त सम्भावना के साथ पुलसार प्राकृतिक घटनाएँ ही थे, यद्यपि उनकी प्रकृति के बारे में हमारा ज्ञान बहुत ही कम था। प्रत्येक सप्ताह पुलसारों के एक या दूसरे पक्ष के बारे में सनसनीखेज समाचार प्राप्त होते हैं।

विगत अप्रैल के अन्त में मास्को के खगोलशास्त्री बी. येसिपोव ने क्रीमियाई खगोलशास्त्री के साथ क्रोमियाई खगोलीय वेधशाला के समस्त यूरोप में सबसे बड़े टेलीस्कोप (जिसका दर्पण २६० सेंटीमीटर व्यास का है) का उपयोग प्रथम बार इस तारे का वर्णक्रम प्राप्त करने के लिए किया--जो तारे की अत्यधिक क्षीणता के कारण एक अत्यन्त कठिन कार्य है। यह वर्णक्रम अपेक्षतया ५,००० डिग्री से कम ताप वाले ठंडे पिंड का है।

तब पूर्वोक्त प्रेक्षणों के प्रकाश में पुलसारों की घटना की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है? स्वयंसिद्ध है कि सर्वांगीण व्याख्या का दावा करने का समय अभी नहीं आया है। पुलसारों की खोज के तुरंत बाद ही ब्रिटेन तथा अमरीका के कुछ वैज्ञानिकों ने उनके रेडियो उत्सर्जनों की नियमित 'लय' को कुछ विशेष, तथा कथित 'सफेद बौने', तारों के कम्पनों के साथ जोड़ने का प्रयास किया।

सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के तारों का कम्पन काल, जिनका घनत्व पानी से कई करोड़ गुना

अधिक हो सकता है, आठ सेकण्ड का है। यह पुलसारों में प्रेक्षित आवर्तकालों से कहीं अधिक है, किन्तु सिद्धान्तवादी हताश नहीं हुए—क्योंकि आवर्तकाल का कम या अधिक होना स्वीकार किया गया था।

पुलसार के साथ पहचाना हुआ तारा (जैसा कि पहले कहा जा चुका है) कभी भी सफेद बौना नहीं हो सकता। इसकी अधिक सम्भावना यह है कि यह तारा उतनी विचित्र वस्तु हो ही नहीं सकती जितनी कि इसे समझा जा रहा है। गणनाओं के अनुसार, यह तारा 'उपबौने' के नाम से ज्ञात ब्रह्माण्ड पिंड को दर्शाता है, जो व्यास में सूर्य से ५.७ गुना कम है और उसकी विकिरण शक्ति सौ गुना कम है। इस तारे की दूरी लगभग १,००० प्रकाश वर्ष होनी चाहिए, अर्थात् आज के खगोलशास्त्रियों के अनुमान से कहीं अधिक। सब कुछ मिलाकर यह एक नगन्य तारा है, आकाश गंगा में इस तरह के लगभग एक हजार खरब तारे हैं। तब इसकी पहचान पुलसार के साथ क्यों की जाती है।

एक पूर्वानुमान यह है कि ये विकिरण स्वयं तारे के कारण नहीं अपितु इसके एक अदृश्य उपग्रह के कारण हैं जो सफेद बौना भी हो सकता है। इसी तरह यह भी माना जा सकता है कि तारे और इसके रहस्यमय उपग्रह के बीच का स्थानांतर भी बहुत अधिक होना चाहिए—कम से कम पृथ्वी से सूर्य तक की दूरी का कुछ हजार गुना। अन्यथा संकेतों के आवर्तकाल में कुछ थोड़ा सा स्पष्ट उतार-चढ़ाव अवश्य होता।

जहाँ तक इन पिंडों से उत्पन्न आश्चर्यजनक विकम्पित रेडियो उत्सर्जनों की प्रकृति का प्रश्न है, यह समस्या, अभी तक, बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए, कम्पनों की 'सूक्ष्म संरचना'। प्रत्येक कम्पन प्रायः तीन 'उपकम्पनों' से मिल कर बना होता है जो बहुत ही कम समय तक रहते हैं। मेरे विचार से, इस घटना का कारण कम्पनों के तथा कथित 'गत्यात्मक वर्णक्रम' से स्पष्ट किया जा सकता है, जिसमें कम्पन रेडियो संकेत का पुलसार (सफेद बौना) के गिर्द के वायुमंडल की घनी पर्तों से परावर्तन अत्यधिक महत्व पूर्ण है। तारे के वातावरण में कम्पनों के इस प्रकार के वर्णनानुसार तीव्र आघात तरंगें उत्पन्न होनी चाहिए जिनके आगे बढ़ने की दिशा में पड़ने वाले वायुमंडलीय कण अत्याधिक उच्च ऊर्जा प्राप्त करने तक त्वरित हो सकें।

इसकी बहुत अधिक सम्भावना है कि इस प्रकार के किसी पिंड को अत्यधिक शक्तिशाली कास्मिक विकिरण का उत्पादक होना चाहिए। विशेष रूप से, प्रकाशित विकिरण के प्रस्फोटनों को तथाकथित 'व्युत्क्रम काम्पटन प्रभाव' द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—अर्थात् इन कास्मिक किरणों के इलेक्ट्रान अवयव तथा तारे के वायुमंडल से उच्च ऊर्जा वाले कणों के गुजरने से उत्पन्न रेडियो उत्सर्जन क्षेत्र के बीच होने वाली अंतर्क्रिया। यदि ऐसा है तो सम्भव है हमारी आकाश गंगा के पुलसार (जिनकी कुल संख्या कुछ करोड़ है) कास्मिक विकिरण के मुख्य स्रोत हों।

विज्ञान वार्ता

१. फसलों की उपज और तारकोल

रेतीली भूमि में जल को सुरक्षित रखने के लिए भूमि की सतह से लगभग दो फुट नीचे तारकोल की एक इंच के आठवें भाग जितनी मोटी परत बिछाने की विधि अमेरिका में सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने में बड़ी प्रभावकारी सिद्ध हो रही है। आशा है कि भूमि की सतह के नीचे तारकोल की परत बिछाने की यह विधि अपना कर संसार के सभी भागों में लाखों एकड़ रेतीली भूमि में उत्पान बढ़ाया जा सकेगा।

लौरेल, डेलावेर, के समीप जे० एल० हेस्टिंग्स के फार्म पर ६ एकड़ भूमि में डेलावेर विश्वविद्यालय और अमेरिकन औयल कम्पनी ने मिल कर एक परीक्षण किया। यद्यपि १९६७ में ५० वर्षों में सबसे अधिक पानी पड़ा था, तो भी भूमि के नीचे तारकोल की परत बिछाये जाने के फलस्वरूप प्रत्येक फसल की पहले की तुलना में अधिक उपज हुई है। उन्होंने बताया कि टमाटर की उपज में ६ प्रतिशत प्रति एकड़ से लेकर फलियों वाली फसलों की उपज में १०७ प्रतिशत प्रति एकड़ तक की वृद्धि हुई। खीरा, ककड़ी की उपज में ३५ प्रतिशत प्रति एकड़ और आलू की उपज में ३७ प्रतिशत शत प्रति एकड़ की वृद्धि हुई। औसत रूप में समस्त फसलों की उपज में लगभग ३७ प्रतिशत प्रति एकड़ की वृद्धि हुई।

तारकोल की परत जल को पौधों की जड़ों से इधर उधर जाने से रोकती है और इस प्रकार भूमि में आर्द्रता बनी रहती है। आशा है कि इस विधि को अपनाने से उन स्थानों में उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा, जहाँ की भूमि रेतीली है।

२. दूध की रचना

बंगलौर-स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान ने दूध की रचना के सम्बन्ध में, विशेष रूप से उसमें प्रोटीन की मात्रा के सम्बन्ध में और अधिक अनुसन्धान करने का काम संभाला है। इस अनुसन्धान के फलस्वरूप दूधकी चीजों के नये प्रयोग खोजने की दृष्टि से उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सकेगी। इस अनुसन्धान के लिए अमेरिका की सरकार ने २ लाख ५० हजार रुपये का अनुदान दिया है।

१९६३ में इस संस्थान ने दूध के विषय में एक अन्य अनुसन्धान योजना पर काम शुरू किया था, जिसके फलस्वरूप भारत और संसार के अन्य प्रदेशों में दुग्ध उद्योग के लिए उपयोगी जानकारी हासिल हुई थी। उसके लिए अमेरिकी सरकार ने २ लाख ७० हजार रु० का अनुदान दिया था।

आशा है कि दूध सम्बन्धी नई अनुसन्धान योजना से दूध में प्रोटीन की बनावट की जानकारी हासिल करने में मदद मिलेगी। दूध की प्रोटीन पनीर, डिब्बे के दूध और आइसक्रीम में महत्वपूर्ण घटक होती है। संसार में, विशेषकर भारत जैसे विकासोन्मुख देशों में, प्रोटीन की बहुत कमी है। शाक-सब्जियों और प्राणियों से उपलब्ध प्रोटीनों को मिला कर प्रोटीन की मात्रा बढ़ाने के यत्न किये जा रहे हैं। बंगलौर में अनुसन्धान से प्राप्त जानकारी इस क्षेत्र में सहायक हो सकती है।

बंगलौर में यह अनुसन्धान जीवरसायन विभाग के अध्यक्ष डा० पी० एस० शर्मा के नेतृत्व में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किया जायगा। अमेरिकी कृषि विभाग की कृषि अनुसंधान सेवा के डा० विलियम जी० गोर्डन भारतीय वैज्ञानिकों को योग देंगे।

३. दुर्लभ अणविक पदार्थ

अमेरिका एक मानव निर्मित दुर्लभ पदार्थ पहली बार बिक्री के लिए उपलब्ध कर रहा है, जिसके चिकित्सा, खनन उद्योग और सामान्य उद्योगों के क्षेत्र में अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध होने की संभावना है।

अमेरिकी अणुशक्ति आयोग के अध्यक्ष डा० ग्लेन टी० सीबोर्ग ने कहा कि यह दुर्लभ पदार्थ, जिसका नाम कैलिफोर्नियम-२५२ है, अनुसंधान संस्थाओं को निःशुल्क दिया जायेगा।

कैलिफोर्नियम की १ पौंड (४५४ ग्राम) मात्रा की लागत ४ खरब ५० अरब डालर (३३ खरब ७५ अरब रुपये) होगी। किंतु इसकी १ ग्राम मात्रा का उत्पादन करने में भी कई वर्ष लग जायेंगे. अतः प्रारम्भ में इसे १०० डालर प्रति १।१० माइक्रोग्राम (एक ग्राम के एक करोड़वें अंश) की दर से बेचा जायेगा।

डा० सीबोर्ग कैलिफोर्नियम-२५२ के सह आविष्कर्ता हैं। उन्होंने बताया कि यह आणविक मापदंड के अंतर्गत तत्व ९८ का मानव निर्मित आइसोटोप है और प्रकृति में उपलब्ध नहीं है। अन्य रेडियमधर्मी आइसोटोपों की तरह इसका उत्पादन भी आणविक भट्ठी में होता है।

४. चन्द्रमा की परिक्रमा

अपोलो ७ की उड़ान इतनी सफल रही कि अपोलो कार्यक्रम से सम्बद्ध लोगों का विश्वास है कि चंद्रमा पर मनुष्य के उतरने की कार्यवाही अधिक से अधिक अगले वर्ष जुलाई अथवा सितम्बर में सम्पन्न हो जायेगी।

अपोलो ७ ने समानव उड़ान के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया है। हम सौरमंडल में और अंतरिक्ष में अपने इर्द गिर्द के बहुत से रहस्यपूर्ण संसारों में से सबसे निकट के ग्रह के —चंद्रमा के— पृष्ठ पर वह पहला बड़ा कदम उठाने को उद्यत हैं।

वस्तुतः अपोलो कार्यक्रम के निर्देशक लेफ्टिनेंट जनरल सैम्युअल सी० फिलिप्स का मत है कि अगले वर्ष की समाप्ति से पहले चंद्रमा पर मनुष्य को उतार दिया जायेगा।

यद्यपि अपोलो—८ के प्रक्षेपण की अभी कोई तारीख निश्चित नहीं हुई है पर 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अंतरिक्ष प्रशासन' को आशा है कि क्रिसमस के दिनों में तीन अंतरिक्षयात्री चंद्रमा के इर्द गिर्द की कक्षा में चक्कर लगायेंगे। इस प्रक्षेपण के लिए सबसे अच्छी तारीख २१ दिसम्बर बतायी जाती है।

यदि सबसे उन्नत किस्म की इस उड़ान-लगभग ९६ किलोमीटर (६० मील) की ऊँचाई पर सारा दिन चंद्रमा की बार बार परिक्रमा करने—को स्वीकृति दी गई तो इसका अर्थ यह होगा कि अंतरिक्षयान चालक फ्रैंक बोरमैन, जेम्स लोवेल और विलियम एँडर्स क्रिसमस का अधिकतर पर्व चंद्रमा के इर्द गिर्द चक्कर लगाने और वहाँ से पृथ्वी पर लौटने में बितायेंगे।

तीनों व्यक्ति चंद्रमा के इर्द गिर्द १० बार चक्कर लगायेंगे और चंद्रमा के दिखाई देने वाले भाग पर उन चार स्थानों का ध्यान से अवलोकन करेंगे जहाँ अपोलो को उतारा जा सकता है।

५. क्रोमोसोम और कैंसर

१९०२ में जर्मनी के एक भ्रूण वैज्ञानिक डा० थियोडोर बोवेरी ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था कि क्रोमोसोम (पित्र्य सूत्र) संबंधी असंतुलन से मनुष्यों में कैंसर हो जाता है। अब अमेरिका के दो वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, जिनसे इस सिद्धांत की पुष्टि होती है।

उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि मानवीय कैंसर की एक किस्म और प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से विकसित तथा विकारग्रस्त मानवी जीव कोषों का विस्तृत विश्लेषण करने पर पता चला कि कृत्रिम कोषों में ई—१६ नामक पित्र्य सूत्र नियमित रूप से सामान्य जीव कोषों की अपेक्षा अधिक पाया गया। कभी कभी तो वह ४०० प्रतिशत अधिक रहा।

इतना ही महत्वपूर्ण उनका यह निष्कर्ष भी रहा कि ई—१६ पित्र्य सूत्र व्यक्तियों के विकास के साथ जीव कोषों के सामान्य पुनर्जनन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उन्होंने बताया कि प्रयोगशाला में सामान्य जीव कोषों संबंधी की मृत्यु और ई—१६ पित्र्य सूत्र की मात्रा में ह्रास एक साथ ही सम्पन्न हुए। ऐसा आमतौर पर ५५ जीव कोषों के पुनर्जनन के उपरांत हुआ।

वैज्ञानिकों ने कहा कि उनकी खोज का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि कैन्सर वंश परम्परा से उत्पन्न हो सकता है। यद्यपि विषय सूत्र वंश परम्परा के माध्यम है, फिर भी यह सम्भव है कि कैन्सर स्वयं ही ई—१६ पित्र्य सूत्र की अतिरिक्त मात्रा को जन्म दे।
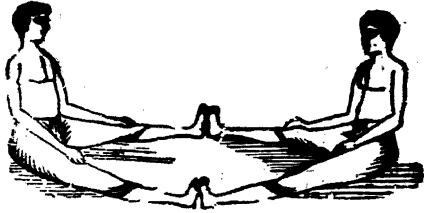
सम्पादकीय—

बधाई है •

दो अमरीकी वैज्ञानिकों के साथ प्रवासी-भारतीय डा० हरगोविन्द खुराना को १९६८ई० का नोबेल पुरस्कार औषधि विज्ञान पर प्रदान किया गया है। यह समस्त भारतीयों के लिये हर्ष एवं उल्लास का विषय है। हम विज्ञान परिवार की ओर से अपने भारतीय तरुण वैज्ञानिक का हार्दिक स्वागत करते हैं। वे तृतीय भारतीय हैं जिन्हे नोबेल पुरस्कार द्वारा गौरवान्वित किया गया है। आज से ३८ वर्ष पूर्व चन्द्रशेखर वेंकट रमन को विज्ञान में यह पुरस्कार मिला था। खुराना द्वितीय वैज्ञानिक हैं।

डा० खुराना का जन्म भारत के विभाजन के पूर्व के पंजाब के रायपुर नामक स्थान में सन् १९२२ ई० में हुआ था। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातक की उपाधि ग्रहण की थी। इसके पश्चात् उच्च अध्ययन के लिये ये इंगलैंड के लिवरपूल विश्वविद्यालय में गये जहाँ से इन्होंने पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् १९४८-४९ में स्विटज़रलैंड में तथा १९५०-५२ तक कैम्ब्रिज में शोध सहायक के रूप में कार्य करते रहे।

इन्होंने डाक्टरेट प्राप्त करने के बाद स्वदेश में आकर के यहाँ कार्य करने की इच्छा व्यक्त की थी किन्तु उस समय इन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ जिसके कारण इन्हें निराश होकर विदेश चले जाना पड़ा। कहा जाता है कि इस घटना से इनके मन में अपने देश के वैज्ञानिकों के प्रति अपार क्षोभ हुआ और वे देश से विरक्त से हो गये।

ये आजकल विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के एंजाइम् शोधसंस्थान में प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। यहीं पर इन्होंने अपनी प्रोटीन तथा न्यूक्लिआइक अम्लों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण खोजें की हैं जिनपर इन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

डा० खुराना की प्रतिभा का परिचय इस बात से भी प्राप्त होता है कि १९५८ई० में इन्हें कैनाडा की औषधि-विज्ञान संस्था ने 'मर्क पुरस्कार' प्रदान किया था। इन्हें स्वर्ण पदक भी मिल चुका है। ये अन्य देशों के द्वारा अपनी शोधों के लिये सम्मानित हो चुके हैं। अमरीका से बाहर के देशों द्वारा ये भाषण देने के लिये आमंत्रित हो चुके हैं।

काश कि अपने इस वैज्ञानिक की प्रतिभा का हम उचित मूल्यांकन कर पाते।

•

नवीन प्रकाशन

नोबेल पुरस्कार विजेता डा० लिनस पॉलिंग की सुप्रसिद्ध पुस्तक College Chemistry का हिन्दी अनुवाद विज्ञान परिषद् द्वारा छपकर तैयार है

विद्यालय रसायन

मूल्य १६) रुपया

अनुवादक : डा० शिवगोपाल मिश्र

यह इन्टर तथा बी० एस-सी० के छात्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी कृति है। आज ही वी०पी० द्वारा मँगाकर लाभान्वित हों।

मिलने का पता :—
प्रधान मंत्री
विज्ञान परिषद्, थार्नहिल रोड
इलाहाबाद-२

हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

जनवरी, १९६९

सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ४ रुपया

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ३।५

भाग १०५ | माघ-फाल्गुन २०२५ विक्र०, १८९० शक जनवरी १९६९ | संख्या १

लेसर (LASER)

श्याम लाल काकानी

"लेसर, किरण ऊर्जा, क्वाण्टम यांत्रिकी युक्ति है जिससे विद्युत चुम्बकीय विकरणों में निहित ऊर्जा की उपयोगिताओं का क्षेत्र व्यापक हो गया है।"

'लेसर' शब्द, उद्दीपन उत्सर्जन द्वारा प्रकाश का प्रवर्धन करना प्रकट करता है। ('Laser' stands for, light amplification by stimulated emission of radiation)। गोर्डन और टाउनस नामक वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम सन् १९५४ में सफलतापूर्वक अमोनिया मेसर (Ammonia maser) का प्रदर्शन किया। मेसर (Maser) में 'M' सूक्ष्म तरंग को दर्शाता है। 'लेसर' 'मेसर' एवं 'इरसर' तीनों एक ही क्रिया को प्रगट करते हैं। इनमें कोई मौलिक भेद नहीं है।

सिद्धान्त

लेसर क्रिया के लिए तीन प्रमुख आवश्यकताएँ होती हैं :—

(अ) कला संबद्ध एवं एकवर्णी प्रकाश।

(ब) उद्दीपन उत्सर्जन।

(स) सक्रिय माध्यम।

जब कला संबद्ध एवं एकवर्णी प्रकाश किरणें या विद्युत चुम्बकीय विकिरण किसी धातु से टकराती हैं तो अवशोषण, स्वतः उत्सर्जन और उद्दीपन उत्सर्जन क्रियाएँ सम्भव हो सकती हैं। अवशोषण क्रिया में परमाणु मूल अवस्था से फोटोन का अवशोषण कर उत्तेजित अवस्था मे पहुँच जाता है, जहाँ से परमाणु स्वतः फोटोन का उत्सर्जन कर मूल अवस्था में लौट आता है। लेकिन जब परमाणु पहले से ही उत्तेजित अवस्था में विद्यमान हो, और तब उस पर फोटोन की क्रिया कराई जाय तो परमाणु, स्वतः उत्सर्जन फोटोन के अतिरिक्त भी उसी तरंग दैर्ध्य का दूसरा फोटोन भी उत्सर्जन कर मूल अवस्था में लौट आता है। इस क्रिया को उद्दीपन उत्सर्जन कहते है। उद्दीपन उत्सर्जन के लिए परमाणुओं को उद्दीपन तरंग दैर्ध्य पर विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा से उत्तेजित अवस्था में लाया जाता है। इस क्रिया को पम्पिंग कहते हैं।

लेसर का अभिकल्प तैयार करत समय उद्दीपन उत्सर्जन के अतिरिक्त प्रमुख समस्या सक्रिय माध्यम

तैयार करने की आती है। सक्रिय माध्यम से तात्पर्य यह है कि जहाँ परमाणु उत्तेजित अवस्था में रह सके और जब निश्चित एवं आवश्यक आवृत्ति की प्रकाश तरंग इसमें से होकर गुजरे तो फोटोन का सोपान तैयार हो जाय।

सक्रिय माध्यम को परावर्तित बाक्स में, जिसकी सतह सीधी एवं समान्तर होती है, बन्द कर देते हैं। बाक्स की दोनों परावर्तित सतहों के बीच की दूरी (d) क्रियाशील आधी तरंग दैर्ध्य ($\lambda/२$) की बहुल समाकल होनी चाहिए $\left(d = n\frac{\lambda}{२}\right)$। जब प्रकाश तरंग बाक्स की एक दीवार से शुरू होकर दूसरी दीवार तक पहुँचती है तो उसके आयाम में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार कई परावर्तनों के पश्चात् बाक्स में स्थाई तरंग का निर्माण होता है, जो शक्तिशाली एवं समान्तर पुंज के रूप में बाहर निकलती है। इसे लेसर कहते हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि निर्गत आवृति के अनुरूप सक्रिय माध्यम में कम से कम दो भिन्न ऊर्जा तल (levels) होने चाहिए, जिससे माध्यम के अधिक ऊर्जा वाले तल को कम उर्जा वाले तल की अपेक्षा अत्यधिक जनसंख्यातिरेक रखा जा सके।

विभिन्न प्रकार के लेसर

१. ठोस अवस्था लेसर

एल्यूमिनियम आक्साइड (Al_2O_3) के एक मणिभ में ०·०५% क्रोमियम (Cr) मिलाने से इसका रंग गुलाबी हो जाता है। इसलिए इसको गुलाबी माणिक्य भी कहते हैं। गुलाबी रंग आने के कारण मणिभ में क्रोमियम के परमाणु हरे और पीले रंगों के साथ पराबैंगनी रंगों (ultraviolet colours) की व्यापक पट्टिका का अवशोषण कर केवल लाल एवं नीले रंगों की किरणों को ही पार जाने देते हैं। प्रकाश के अवशोषण से क्रोमियम के परमाणु उत्तेजित अवस्था में पहुँच जाते हैं। प्रथम कदम में परमाणु (Cr) कुछ ऊर्जा निर्मुक्ति कर क्रिस्टल जालकों को दे देते हैं, और स्वयं दीर्घ स्थाई अवस्था में आ जाते हैं। अगर उद्दीपन उत्सर्ग नहीं होता है तो इस अवस्था में कुछ देर ठहरने के पश्चात् मूल अवस्था में लौट आते हैं। इस क्रिया में ६९४३ A.° तरंग लम्बाई के फोटोन उत्सर्जन होते हैं, जो माणिक्य की लाक्षणिक प्रतिदीप्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस तरंग दैर्ध्य पर निर्मुक्त कुछ फोटोन उद्दीपन क्रिया को बढ़ाने में सहायता देते हैं, और परिणामस्वरूप ६९४३ A° तरंग दैर्ध्य पर फोटोन क्रम प्रपात या सोपान तैयार हो जाता है।

सक्रिय माध्यम के लिए गुलाबी माणिक्य (Al_2O_3 + ०·०५% Cr) को ४ से० मी० लम्बाई और ०·५० से० मी० अर्द्धव्यास की गोलाकार छड़ के रूप में तैयार कर लिया जाता है। सिरों को समान्तर एवं प्रकाशतः पालिश के लिए आंशिक रूप में चांदी का लेपन कर देते हैं। इलेक्ट्रानिक फ्लेश ट्यूब पम्पिंग के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसको साधारणतया रूबी लेसर (Ruby laser) कहते हैं।

गुलाबी माणिक्य के अतिरिक्त कई अन्य ठोस पदार्थ जैसे सैमेरियम, नियोडिमियम, केल्सियम टंगस्टेट, थैलियम, कैल्सियम फ्लोराइड यूरेनियम (CaF_2–U) एवं काँच इत्यादि भी सक्रिय माध्यम के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं।

२. गैस लेसर

सक्रिय माध्यम के लिए हीलियम और नियोन गैसों को क्रमशः १०:१ के अनुपात में मिलाकर, मिश्रण को दो समान्तर परावर्तकों के मध्य लटका देते हैं। जब हीलियम परमाणु रेडियोप्रेषित्र से उत्पन्न रेडियो आवृत्ति ऊर्जा द्वारा उत्तेजित होकर दीर्घ स्थाई अवस्था में पहुँचते हैं तो वहाँ पर मूल अवस्था में परमाणुओं से टकराकर अनुनादी शक्ति का

स्थानान्तर करते हैं। नियोन गैस की एक ऊर्जा अवस्था की शक्ति, हीलियम नियोन गैसों के मिश्रण (१० : १) की दीर्घ स्थाई अवस्था के करीब बराबर होती है। अतः टक्कर के समय नियोन परमाणु विशिष्ट ऊर्जा तल में चले जाते हैं, जबकि हीलियम परमाणु मूल अवस्था में लौट आते हैं। इससे नियोन के परमाणु तलों में प्रतिलोमीकरण शुरू हो जाता है।

हीलियम नियोन गैसों के मिश्रण के अतिरिक्त Hr एवं Xe और He एवं O_2 गैसों के मिश्रण भी सक्रिय माध्यम के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। गैस लेसर की प्रमुख विशेषता यह है कि लेसर क्रिया लगातार होती है। यही कारण है कि गैस लेसर प्रचलन में अधिक है।

३. अर्ध चालक लेसर

गैलियम आर्सेनाइड जो कि अर्द्ध चालक होता है, सक्रिय माध्यम के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार के लेसर केवल अवरक्त क्षेत्र के लिये ही उपयोग में लाए जा सकते हैं।

४. द्रव लेसर

द्रव लेसर में साधारणतया सक्रिय माध्यम के लिए द्रव यूरोपियम (iquid europium), बेन्जोल-एसिटोनेट, बेन्जिन नाइट्रोबेन्जिन इत्यादि द्रव उपयोग में लाए जाते हैं। द्रव लेसर एवं अन्य प्रकार के लेसर में प्रमुख अन्तर यह है कि इसमें विकरण शक्ति या लेसर क्रिया, रमन प्रभाव (Raman effect) के कारण होती है, जबकि अन्य प्रकार के लेसर में परमाणुओं के ऊर्जा तलों में परिवर्तन से।

लेसर के विभिन्न उपयोग

लेसर प्रकाश पुंज के अनन्य गुणों के कारण इसका उपयोग का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। यद्यपि इसका पूर्ण रूपेण उपयोग अभी तक सम्भव नहीं हुआ है, फिर भी संचार व्यवस्था एवं शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है।

संचार व्यवस्था

आज से करीब २० वर्ष पूर्व प्रकाश का उपयोग संचार व्यवस्था में करने के लिये सबसे बड़ी कमी उस पदार्थ की थी, जो कला संबद्ध (Coherent) और एकवर्णी (monochromatic) प्रकाश उत्पन्न कर सके। लेसर के आविष्कार ने इस कमी की पूर्ति कर दी है।

संसार में अब तक लम्बी दूरी पर कई संदेशों को एक साथ पारेषण (transmission) करने के लिए चार प्रणालियाँ उपयोग में आती रही हैं :—

(अ) समाक्ष केबल।
(ब) सूक्ष्मतरंग रेडियो रिले।
(स) तरंग निर्देशन।
(द) कृत्रिम उपग्रह ।

इन सब प्रणालियों का मुख्य उद्देश्य एवं सिद्धांत एक साथ कई संदेशों का संचारण एक ही रास्ते से करना है। इसको बहुपथीय प्रणाली कहते हैं।

किसी भी मनुष्य की ध्वनि संचारण के लिए सरणि जिसका आवृत्ति बैंड २०० से ४००० कम्पन प्रति सैकन्ड हो, आवश्यक होता है। इस आवृत्ति बैंड में निहित सूचना को आवृत्ति बैंड १००,२०० से १०४००० कम्पन प्रति सैकन्ड से भी पारेषण कर सकते हैं। इस प्रकार की क्रिया, जिसमें संकेत को एक आवृत्ति बैंड से अन्य आवृत्ति बैंड में स्थानान्तर किया जाय, अधिमिश्रण कहते हैं।

संचार की प्रचलित प्रणालियों की तुलना में लैसर का उपयोग अधिक लाभप्रद है, क्योंकि :—

(अ) लेसर के एक आवृत्ति बैंड से कई सरणियाँ या चेनल्स आवश्यक बैंड भी चौड़ाई अनुसार समापन की जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप १०००,००० चेनल्स एक ही लेसर से संचारण की जा सकती हैं। प्रचलित प्रणालियों में इस सुविधा का नितान्त अभाव है।

(ब) लेसर का उपयोग तीन विमीय TV प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करने के लिए भी होने लगा है।

(स) लेसर पुंज की चौड़ाई कम होने से एक स्थान से दूसरे स्थान तक संकेतों के संचारण में पारेषण क्षति अति न्यूनतम होती है, तथा अधिक दूरी पर संचारण के लिए प्रचलित प्रणालियों की तुलना में प्रवर्धक की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

(द) लेसर पुंज की चौड़ाई अगर २" और तरंग लम्बाई ६३०० A° हो तो पारेषण अधिक से अधिक दूरी तक पुंज की चौड़ाई में वृद्धि के बिना भी सम्भव हो सकता है।

वायुमण्डलीय विघ्न जैसे बादल, कोहरा इत्यादि क्षीणन उत्पन्न कर देते हैं, जिससे लेसर का उपयोग अधिक प्रभावशाली नहीं हो सकता है।

शल्य चिकित्सा

मानव के लिए लेसर का मुख्य उपयोग स्थानीकृत शल्य कर्म के क्षेत्र में हुआ है। जब मानव नेत्र का दृष्टिपटल या रेटिना क्षतिग्रस्त हो जाता है तो दृष्टि-पटल को तीव्र प्रकाश सहायता से संधान किया जा सकता है। इससे दृष्टिपटल अलग होने से बच जाता है। साधारण प्रकाश से इस क्रिया में $\frac{1}{2}$ सैकण्ड लगते हैं जबकि लेसर से केवल $\frac{१}{१००००}$ सैकण्ड से भी कम समय लगता है। इतने कम समय में नेत्र गति नहीं कर सकता है, अतः शल्य क्रिया के समय आँख को गतिहीन करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है।

आजकल लेसर का उपयोग सतह पर टिशुओं के सुधार के लिए भी होने लगा है।

अन्य उपयोग

लेसर का उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। राडार, धातुओं को काटने एवं जोड़ने, बहुत लम्बी दूरियों को सही नापने, खोदने इत्यादि के लिए लेसर का अत्यधिक उपयोग हो रहा है।

फोटोग्राफी, माइक्रोग्राफी, रमन वर्णक्रम विज्ञान एवं प्लाज्मा इत्यादि कई क्षेत्रों में लेसर के उपयोग से अत्यधिक प्रगति हुई है।

विश्व की प्रमुख प्रयोगशालाओं जैसे बैल टेलिफोन प्रयोगशालाओं में कई वैज्ञानिक लेसर की उपयोगिताओं को ज्ञात करने के लिए कार्यरत हैं। लेसर की पूर्ण संभाव्य उपयोगिताएँ निःसन्देह संसार का कायाकल्प कर देंगी। यह लिखना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि लेसर वर्तमान शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार है।

● ●

कृपया 'विज्ञान' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रेषित करें। तदनुसार हम आपकी रुचि के अनुकूल सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

—सम्पादक

पौष्टिक एवं मधुर फल—अंगूर

● श्याम मनोहर व्यास

अंगूर को ताजे फलों में गिना जाता है। यह विटामिनयुक्त पौष्टिक फल है। रक्त को शुद्ध कर यह शरीर को स्वस्थ बनाता है। वायुजनित रोगों में भी इसका सेवन किया जाता है। अंगूर की खेती फ्रांस, स्पेन और इटली में बहुतायत से होती है। धीरे-धीरे अन्य देशों में भी इसकी खेती का विस्तार हो रहा है।

उत्तरी भारत में पंजाब तथा दक्षिणी भारत में महाराष्ट्र, आन्ध्र में इसकी अच्छी पैदावार होती है। इसके लिए ३० इंच से कम वार्षिक वर्षा वाले भाग उपयुक्त समझे जाते हैं। पाकिस्तान में सीमाप्रान्त तथा बलोचिस्तान में अंगूर खूब पैदा होता है। यहाँ के अंगूर बड़े मीठे व स्वादिष्ट होते हैं। देश के विभिन्न भागों में अंगूर के बड़े-बड़े बाग हैं—हैदराबाद, जोधपुर, जयपुर, ग्वालियर, जबलपुर, नासिक, पूना, बंगलोर, कोयम्बटूर मदुरई, चण्डीगढ़ आदि। फलों के आकार, रंग, स्वाद, छिलके की मोटाई और बीज की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के अनुसार अंगूर कई किस्म के होते हैं—पूसा, बेदाना, टामसन बेदाना, कन्धारी, ब्लैक मस्काट, कालमैन, ब्यूटी बेदाना, अनाबेशाही, ग्रास आदि। उत्तरी भारत में (पंजाब) में परलेट किस्म का प्रचार है। इसका अंगूर मीठा और बेदाना होता है। यह १९६२ में अमरीका से यहाँ लाई गई थी। साधारणतः हम इन्हें दो भागों में बाँटते हैं :—

(१) बीज वाले अंगूर (२) बिना बीज वाले अंगूर।

बिना बीज के अँगूर हरे या मोतिया रंग के गोल और छोटे दाने वाले होते हैं। बीज वाले हरे, मोतिया लाल, काले या बैंगनी रंग के गोल और बड़े आकार के होते हैं।

कृषि अनुसन्धान विशेषज्ञों का कथन है कि किसान अंगूर की खेती से भारी लाभ कमा सकते हैं। यह सच है कि प्रारम्भ में बेलें साधने के लिये खंभे बनवाने पर ५००० रु० प्रति एकड़ खर्च बैठता है और फिर खाद आदि में खर्च होता है किन्तु अन्य फसलों की खेती पर जितना खर्चा आता है उतना ही अंगूर की खेती पर भी आयेगा। एक एकड़ से ५ से १५ हजार रुपये का लाभ हो सकता है।

अंगूर की खेती के लिये जमीन को पानी निकास वाली होना चाहिये। इसके लिये दुमट मिट्टी अधिक उपयुक्त रहती है। साल भर में इसे १०-१२ बार से अधिक सींचने की आवश्यकता नहीं है।

विशेषज्ञों के अनुसार अंगूर लगाने की शीर्ष प्रणाली (अर्थात् हेड सिस्टम) सबसे उपयुक्त विधि है।

यह विधि सस्ती व सुगम भी है। बरसात या जाड़े के प्रारम्भ में ३-४ मीटर के अन्तर पर कलमें या पौधे लगाने चाहिये।

लता के चढ़ने के लिये कुछ सहारे का प्रबन्ध भी करना पड़ता है।

हैड सिस्टम के अनुसार केवल एक बाँस का सहारा देना पड़ता है। इस ऊँचाई पर केवल ४-६ शाखायें ही बढ़ने देनी चाहिये। इन शाखाओं में ही फल वाली टहनियाँ लगती हैं।

सीमाप्रान्त में अंगूर के उद्यानों के चारों ओर मिट्टी की ऊँची दीवार बना दी जाती है और लतायें इतने नीचे मचानों पर चढ़ाई जाती हैं कि घुटनों के बल चल कर फल तोड़ना पड़ता है।

बम्बई प्रांत में कहीं कहीं पंगारा (Erithrina India) नाम का पेड़ अंगूर की लता के साथ लगा दिया जाता है जिस पर लता चढ़ती है। दूसरी विधि ट्रैलिस की है जो महाराष्ट्र व आन्ध्र के किसान द्वारा अपनायी जाती है।

इस विधि के अनुसार सारे खेत में तार लगा दिये जाते हैं जिस पर ये अंगूर की बेलें फैलती हैं।

अंगूर की बेल लगाने के लिये अक्टूबर मास में ८० से० मी० चौड़े और गहरे गढ़े खोदकर उन्हें एक मास तक खाली छोड़ देना चाहिये।

एक माह पश्चात् गोबर कूड़े की खाद मिलाकर इन्हें भर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त ७५० ग्राम सुपरफास्फेट भी इनमें मिला देना चाहिये।

अंगूर के पौधे से तीसरे साल फल मिलने शुरू हो जाते हैं। दो-तीन साल तक पौधे को जिस आकृति में बनाना हो उसी के अनुसार छोटी-छोटी शाखाओं को छाँटते रहना चाहिये। ठीक से देख भाल करते रहने पर ३० वर्ष तक फल लिए जा सकते हैं।

छटाई दिसम्बर के मध्य से लेकर जनवरी के अन्त तक करनी चाहिये।

छटाई के पश्चात् अंगूर की बेलों को नियमित रूप से खाद और उर्वरक देते रहना चाहिये।

फरवरी-मार्च के महीनों में अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट और पोटैशियम सल्फेट का ५ : ४ : ४ का मिश्रण १ : २ किलोग्राम के हिसाब से हर बेल में डालना चाहिये।

जिन बेलों में फल न लगें उनमें डेढ़ किलोग्राम प्रति बेल के हिसाब से यह मिश्रण डालना चाहिये।

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में फल वाली बेलों में आधा किलोग्राम अमोनियम सल्फेट प्रति बेल के हिसाब से डालना चाहिये।

अंगूर पकने के सात दिन पूर्व सिंचाई बिल्कुल बंद कर देनी चाहिये।

अंगूर को पतंग की जाति का एक कीट लग जाता है जो पत्ते खाता है।

मौसम में नमी आने पर कुछ रोग और कीड़ों का भी खतरा बढ़ जाता है।

इसके बचाव के लिये जुलाई-अगस्त और सितम्बर के महीनों में ५% डी० डी० टी० का भुरकाव या ३% फाइटोलोन दवा का छिड़काव करना चाहिये।

फाइटोलोन दवा का छिड़काव फल उतारने के तुरन्त पश्चात् करना चाहिये। बरसात के दिनों में दवा का भुरकाव या छिड़काव १५ दिन के अंतर से करना चाहिये। इससे ऐन्थ्रक्नोज और चैफर भृङ्ग की रोकथाम होगी। अंगूर का फल मुलायम होता है। इसलिये छोटी-छोटी टोकरियों में या लकड़ी के बक्सों में ५-६ किलोग्राम के लगभग महीन घास या केले के सूखे पत्तों के साथ भर कर भेजा जाता है। महाराष्ट्र व आन्ध्र में मिट्टी के बर्तनों में भी अंगूर भर कर भेजा जाता है।

सूखे हुये अंगूर तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) किशमिश (२) आबजोश (३) मुनक्का। आबजोश "हैप" जाति के अंगूर सोडा के उबलते हुये पानी में थोड़ी देर डालने के पश्चात् बनाये जाते हैं। जो बिना सोड़े के पानी में डाल कर सुखाये जाते हैं उन्हें मुन्नका कहते हैं। अंगूरों को पूरी तरह पक जाने पर ही तोड़ा जाना चाहिये। वैसे कृत्रिम तरीकों से भी ये पकाये जाते हैं।

गणित में विरोधाभास

● मोहन मरड़िया

गणित एक आधारभूत विज्ञान है। आजकल विज्ञान की दूसरी शाखाओं में जो उन्नति हो रही है उसमें गणित का बहुत बड़ा हाथ है। पिछले सौ वर्षों में गणित की आशातीत उन्नति हुई है। परन्तु कभी कभी गणित के आधारभूत सिद्धान्तों के उपयोग में ऐसे-ऐसे परिणाम निकल आते हैं जो काफी मनोरंजक होते हैं। उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं :—

1. सिद्ध करना है कि $1=0$

त्रिकोणमिति के अनुसार

$$\cos^2 x = 1-\sin^2 x$$

दोनों ओर का वर्गमूल लेने पर

$$(\cos^2 x)^{1/2} = (1-\sin^2 x)^{1/2}$$

या $\cos x = (1-\sin^2 x)^{1/2}$

दोनों ओर 1 जोड़ने पर

$$\cos x+1 = 1+(1-\sin^2 x)^{1/2}$$

दोनों ओर का वर्ग करने पर

$$(\cos x+1)^2 = [1+(1-\sin^2 x)^{1/2}]^2$$

यदि $x=\pi$ तो

$$(\cos\pi+1)^2 = [1+(1-\sin^2\pi)^{1/2}]^2$$

अथवा $(-1+1)^2 = [1+(1-0)^{1/2}]^2$

$$=(1+1)^2$$

या $(0)^2 = (2)^2$

इसलिये $0=4$

2. हम सभी जानते हैं कि १ और −१ दोनों अलग अलग संख्याएँ हैं. परन्तु इन दोनों संख्याओं को भी एक एक के बराबर सिद्ध किया जा सकता है।

$$1=\sqrt{1}$$

$$=\sqrt{(-1)(-1)}$$

$$=\sqrt{-1}\ \sqrt{-1}$$

$\sqrt{-1}=i$ रखने पर

$1=i.i$ $\quad\left[\begin{matrix} i=\sqrt{-1} \\ \therefore\ i^2=-1\end{matrix}\right]$

$=i^2$

$1=-1$

3. त्रिभुज कई प्रकार के होते हैं जैसे समकोण त्रिभुज, समद्विबाहु त्रिभुज, समत्रिबाहु त्रिभुज आदि। परन्तु यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक त्रिभुज समद्विबाहु त्रिभुज होता है :—

सचिव विज्ञान परिषद। राजकीय महाविद्यालय सिरोही (राजस्थान)।

ABC कोई त्रिभुज है। यदि $\angle B = \angle C$ सिद्ध हो जाय तो यह त्रिभुज समद्विबाहु होगा।

माना कि $\angle A$ का समद्विभाजक BC को D विन्दु पर मिलता है।

कोण समद्विभाग प्रमेय से

$$\frac{DB}{AB} = \frac{DC}{AC}$$

बहिष्कोण $ADB = \angle ACD + \angle CAD$

$$= C + \tfrac{1}{2}A$$

Sine नियम से $\triangle ADB$ में

$$\frac{DB}{AB} = \frac{\text{Sin (BAD)}}{\text{Sin }(C + \frac{1}{2}A)}$$

$$\angle ADC = \angle ABD + \angle BAD$$

$$= B + \tfrac{1}{2}A$$

$$\frac{DC}{AC} = \frac{\text{Sin }(\frac{1}{2}A)}{\text{Sin }(B + \frac{1}{2}A)}$$

इसलिये

$$\frac{\text{Sin }(\frac{1}{2}A)}{\text{Sin }(C + \frac{1}{2}A)} = \frac{\text{Sin }(\frac{1}{2}A)}{\text{Sin }(B + \frac{1}{2}A)}$$

Sin $\frac{1}{2}$ A शून्य के बराबर नहीं है क्योंकि $\angle A$ शून्य के बराबर नहीं है।

$$\therefore \text{Sin }(C + \tfrac{1}{2}A) = \text{Sin }(B + \tfrac{1}{2}A)$$

इसलिसे $C + \frac{1}{2}A = B + \frac{1}{2}A$

या $B = C$

इसलिये $\triangle$ ABC एक समद्विबाहु त्रिभुज है।

4. π एक स्थिरांक है जिसका मान $\frac{22}{7}$ या 3·14 होता है परन्तु π को शून्य के बराबर सिद्ध किया जा सकता है।

x के प्रत्येक मान के लिये

$$e^{ix} = e^{ix} \cdot e^{2\pi i} \qquad (e^{2\pi i} = 1)$$

$$= e^{i(x + 2\pi)}$$

दोनों ओर i घात करने पर

$$(e^{ix})^i = (e^{i(x+2\pi)})^i$$

$$e^{-x} = e^{-(x+2\pi)} \qquad [i.i = -1]$$

दोनों ओर $e^{x+2\pi}$ से गुणा करने पर

$$e^{2\pi} = 1$$

या $2\pi = 0$

इसलिये $\pi = 0$.

वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक मानवहीन उपग्रह

● डा० बालगोविन्द जायसवाल

रूस ने सर्वप्रथम ४ अक्टूबर १९५७ को मानव निर्मित उपग्रह "स्पुतनिक १" कक्षा में स्थापित किया था तथा ३१ जन० १९५८ को अमरीका ने अपना उपग्रह 'पायोनीयर-१" । तबसे संसार ने अंतरिक्ष युग में प्रवेश किया। इन गत दस वर्षों में, चन्द्रमा पर भेजे गए अन्तरिक्ष यानों संबंधी समाचार तो प्रत्येक व्यक्ति उत्सुकता से पढ़ता, सुनता रहा; परन्तु संसार के लिए अधिक लाभप्रद, वैज्ञानिक खोजों हेतु तथा व्यावहारिक उपयोगों हेतु छोड़ गए उपग्रहों की जानकारी उसे उतनी नहीं प्राप्त हुई, जितनी होनी चाहिए थी। अतः तत्संबंधी संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है।

उपग्रह कक्षा

किसी उपग्रह अथवा अंतरिक्ष यान को कक्षा में कैसे स्थापित किया जाए? यह गणित का प्रश्न है। पृथ्वी प्रत्येक पदार्थ को अपने केन्द्र की ओर आकर्षित करती रहती है। इसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। अंतरिक्ष में गमन करने वाला कोई भी यान (उपग्रह) गुरुत्वार्षकण द्वारा पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकर्षित होता है; क्योंकि उसमें द्रव्यमान होने के कारण, वह स्वयं एक "आकाशीय पिंड" की श्रेणी में आ जाता है। पृथ्वी के इस गुरुत्वाकर्षण के बल को संतुलित कर, उपग्रह को, पृथ्वी को आवृत करती हुई कक्षाओं में ही गतिशील रखना, उसकी परिक्रामी गति से उत्पन्न अपकेन्द्र बल का कार्य है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का बल, जो कि उसके केंद्र से बढ़ते हुए अंतर के साथ घटता जाता है, वैज्ञानिकों को ज्ञात है। अतः प्रक्षेपित किए जाने वाले उपग्रह के भार आधार पर, वे यह परिकलित कर लेते हैं कि इसे किस कक्षा में स्थापित करने हेतु कितने बल के राकेट की आवश्यकता होगी। तभी तो उपग्रहों को मनचाही कक्षा में स्थापित करने में वे सफल होते हैं। पृथ्वी एकदम गोलाकार नहीं है। इस कारण किसी उपग्रह को ठीक वृत्ताकार कक्षा में स्थापित करना प्रायः असम्भव है। इस कारण किसी उपग्रह का पथ सामान्यतः एक दीर्घवृत होता है, जिसका उपभू कम से कम १५० किलोमीटर तक तथा अपभू अधिक से अधिक कई हजार किलोमीटर तक हो सकता है। विषुवत रेखा से ३५७०० किलोमीटर की ऊंचाई पर तथा उसके समान्तर कक्षा में स्थापित उपग्रह को "स्थायी उपग्रह" अथवा "तुल्यकालिक उपग्रह" कहते हैं। कारण यह है कि इस उपग्रह को पृथ्वी की परिक्रमा करने में उतना ही समय (२४ घंटे) लगेगा, जितना कि पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक घूर्णन पूर्ण करने में लगता है। इस कारण पृथ्वी के प्रेक्षक को, इस प्रकार का उपग्रह एक ही स्थल पर स्थायी दिखाई देगा।

विविध कार्यक्रम

अंतरिक्ष अन्वेषण के तथा उसके व्यावहारिक उपयोग के अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम विश्व में चल रहे हैं। इनमें से अधिकांश तो दो प्रमुख राष्ट्रों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे हैं, परन्तु कुछेक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से भी चलाए जा रहे हैं। इनसे गत कुछ वर्षों में ही अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं:—

(क) पृथ्वी का आकार ध्रुवों पर चपटे गोले का सा नहीं है (जैसा कि अब तक माना जाता था) परन्तु "नाशपाती" का सा है, जिसका डंठल वाला सिरा उत्तरी ध्रुव पर है।

(ख) सौर-प्रकाश दाब संपादित करता है।

(ग) पृथ्वी को आवृत किए हुए चुंबकीय क्षेत्रों का आलेखन।

(घ) सूर्य पर घटित होने वाली घटनाओं का बाह्य वायुमंडल पर पड़ने वाले प्रभाव को अधिक भली भाँति समझना महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है :—

अन्वेषक (explorer) कार्यक्रम- ; अन्वेषक –१ (जो ३१ जनवरी १९५८ को प्रक्षेपित किया गया था) का भार १३.६ किलोग्राम था। इसने अंतराष्ट्रीय भू भौतिकी वर्ष की सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज—निम्न वान ऐलन विकिरण क्षेत्र की खोज की। इसके पश्चात् प्रक्षेपित अन्वेषकों ने आकाशीय ताप, विकिरण तथा चुंबकीय तूफान, आयन मंडल का आयन इलेक्ट्रॉन संघटन, सूर्य तथा अन्य ब्रम्हाण्डीय स्त्रोतों से पृथ्वी की ओर प्रवाहित होती गामा किरणों का अध्ययन किया तथा सूक्ष्म उल्का पिंडों के संबंध में सूचना प्रेषित की।

सेनामुख (Vanguard) कार्यक्रम — प्रथम सेनामुख उपग्रह १७ मार्च १९५८ को कक्षा में स्थापित किया गया। इसमें रखे वैज्ञानिक उपकरणों का भार मात्र १.५ किलोग्राम था। इसका अपभू ३९०० किलोमीटर तथा उपभू ६५० किलोमीटर था। इसने यह निर्धारित किया था कि पृथ्वी "नाशपाती" के आकार की है। सूर्य-बैटरी द्वारा चालित इसका एक प्रेषित्र अभी तक संकेत भेज रहा है। यह उपग्रह अभी कुछ सौ वर्षों तक और अपनी कक्षा में रहेगा। द्वितीय सेनामुख उपग्रह जिसका भार ९.४ किलोग्राम था, मौसम संबंधी जानकारी एकत्रित करने के लिए छोड़ा गया था। तीसरा सेनामुख उपग्रह सितंबर १९५९ में प्रक्षेपित किया गया था। इसमें रखे वैज्ञानिक उपकरणों का भार २२.५ किलोग्राम था। इसने पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का पूर्ण सर्वेक्षण किया। इसके अतिरिक्त वान एलेन विकिरण क्षेत्रों के निचले सिरों की स्थिति के संबंध में विस्तृत आँकड़े दिए तथा सूक्ष्म उल्कापिंड टक्करों का परिगणन किया।

कक्षीय खगोलीय वेधशाला (Orbiting Astronomical Observatory)—इसका भार १४४० किलोग्राम होगा तथा इसे पृथ्वी से ७६० किलोमीटर की ऊंचाई पर वृत्तीय कक्षा में स्थापित किया जाएगा। इसमें दूरदर्शक यंत्र, स्पेक्ट्रममापी, प्रकाशमापी आदि रखे रहेंगे जिनका भार ४५० किलोग्राम होगा। इस वेधशाला से खगोलीय पिंड, काली पृष्ठ भूमि में एक समान चमकते हुए दिखेंगे। खगोल शास्त्रियों का कहना है कि इस वेधशाला द्वारा सौर-मंडल, तारों तथा अंतरिक्ष के संघटन के संबंध में अमूल्य सूचनाएं प्राप्त होंगी। पृथ्वी पर से ऐसा नहीं हो पाता क्योंकि वायु मंडल बहुत से विकिरणों को रोक लेता है तथा जो आ जाते हैं, उन्हें विकृत कर देता है।

कक्षीय सौर वेधशाला (Orbiting Solar Observatory)—इस श्रृंखला में छोड़े जा रहे उपग्रहों द्वारा सूर्य तथा सौर घटनाओं का अध्ययन वायुमंडल के ऊपर से किया जाएगा ताकि अविकृत चित्र प्राप्त हो सकें। इन वेधशालाओं में एक्स किरण उपकरण, लीमन ऐल्फा स्पेक्ट्रममापी, न्यूट्रान फ्लक्स सेन्सर्स तथा गामा किरण मानीटर्स आदि लगे रहेंगे। प्रथम सौर वेधशाला ७ मार्च १९६२ को ५६० किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित वृत्तीय कक्षा में स्थापित की गई। इसका भार २०६ किलोग्राम है तथा इसमें १३ सौर प्रयोग हैं। इसने यह खोज निकाला कि सौर-तेजोग्निओं (Solar Flares) के पहिले सूर्य में गौण विक्षोभ होते हैं। अतः अब विराट सौर तेजोग्निओं की भविष्यवाणी की जा सकेगी। ये अंतरिक्ष यात्रियों को तो प्राणघातक होती ही हैं, हमारी संचार व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न कर देती हैं।

कक्षी भू भौतिकी वेधशाला (Orbiting Geophysical Observatory)— इस उपग्रह में

एक साथ ही पचास भू-भौतिकी प्रयोग रखे जाकर, इसे पहिले से परिकलित कक्षाओं में प्रक्षेपित किया जाएगा। जब इसे ध्रुवों के ऊपर की निम्न ऊंचाई वाली कक्षाओं में स्थापित किया जाएगा (उपभू २२० किलोमीटर अपभू ८०० किलोमीटर) तब यह वहाँ के वायु मंडल अध्ययन कर सकेगी।

सौर क्षेपणियों को छोड़कर इसका परिमाण १ मीटर × १ मीटर × २ मीटर है। इसका भार ४०० किलोग्राम है, जिसमें ६७·५ किलोग्राम उपकरण हैं।

संचार उपग्रह

संसार में १९६० के पूर्व तक अंतर महाद्वीप संचार व्यवस्था का अभाव खटकता था। ऐलुमिनियम वाष्प प्रलेपित ·००१३ सेन्टीमीटर (सिगरेट की डब्बी पर लिपटी पन्नी की मोटाई से लगभग आधी) मोटी पालीस्टर फिल्म का ३१ मीटर व्यास वाला एक गुब्बारा (बैलून) बनाया गया जिसका भार ६० किलोग्राम था।

इसे १२ अगस्त १९६० को १६०० किलोमीटर की ऊँचाई पर कक्षा में स्थापित कर दिया गया। यह उपग्रह कहलाया। इसने सिद्ध कर दिया कि रेडियो की सूक्ष्म तरंगों को मानव निर्मित उपग्रहों पर से परावर्तित कर अन्तर्महाद्वीपीय संचार व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। इससे अब सैकड़ों टेलीटाइप संकेत रेडियो-वीक्षण चित्र, टेलीफोन बातचीत आदि परावर्तित की हैं।

टेलस्टार (Telstar)—यह अमरीकी टेलीफोन तथा टेलीग्राम कम्पनी द्वारा स्वयं के व्यय से विकसित "सक्रिय पुनरावर्तक" प्रायोगिक संचार उपग्रह है। पहिला टेलस्टार उपग्रह १० जुलाई को ९६० किलोमीटर से ५६० किलोमीटर तक ऊंचाई वाली एक दीर्घवृत्तीय कक्षा में स्थापित किया गया। इसके द्वारा किए गए संचार प्रयोग ऐतिहासिक महत्व के हैं क्योंकि उनके द्वारा ही इस संभावना को पुष्टि प्राप्त हुई कि रेडियो-वीक्षण, टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा अन्य संकेत संचार उपग्रहों की सहायता से विश्व भर में प्रसारित किए जा सकते हैं। अपनी कक्षा की प्रत्येक परिक्रमा में टेलस्टार उपग्रह योरोप तथा अमरीका महाद्वीपों के बीच लगभग बीस मिनिट के प्रसारण रिले कर सकता है।

इसके अक्तिरिक्त भी कई अन्य प्रकार के संचार उपग्रह प्रक्षेपित किए गए हैं व किए जा रहे हैं। प्रथम "रिले" (Relay) उपग्रह १३ दिसम्बर १९६२ को प्रक्षेपित किया गया था।

प्रथम "सिनकाम" (Syncom) उपग्रह १४ फरवरी १९६३ को प्रक्षेपित किया गया। इस कार्यक्रम में "सक्रिय पुनरावर्तक" उपग्रहों को "तुल्य कालिक कक्षाओं" में स्थापित किया जाएगा। इस प्रकार के तीन उपग्रहों द्वारा ही पूरे विश्व में टेलीविजन तथा दूर संचार संबंध स्थापित हो सकेगा।

दूर संचार व्यवस्था में उपग्रहों का उपयोग दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। आपने समाचार पत्रों में पढ़ा ही होगा कि २८ नवंबर १९६६ को जापान से एक टेलीविजन संदेश प्रसारित किया गया, जो संचार उपग्रह की सहायता से, पहिली बार योरोप तथा अमरीका में सुनाया तथा दर्शाया गया।

इस प्रकार तीन महाद्वीपों के बीच संचार उपग्रह द्वारा संपर्क स्थापित हुआ। इसके बाद ७ दिसंबर १९६६ को केपकेनेडी से अमेरिका ने चौथा संचार भू उपग्रह प्रक्षेपित किया। यह प्रशान्त महासागर पर अपनी स्थायी कक्षा में स्थित हो गया। इसके द्वारा अमेरिका, योरोप, जापान तथा मध्य अफ्रीका में टेलीविजन संबंध स्थापित हो गया। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा एक साथ सैकड़ों अन्तर्महाद्वीपीय टेलीफोन कार्य कर सकेंगे तथा वायुयान अपने से बहुत दूर के अड्डों से भी संचार संबंध स्थापित कर सकेंगे, जैसा कि वे अभी तक

[शेष पृष्ठ १८ पर देखें]

विज्ञान वार्ता

१—हिमालय-क्षेत्र में गिल्लड़ रोग की रोक थाम के उपाय

हिमालय के प्रदेश में सैकड़ों वर्षों से फलने वाले गिल्लड़ रोग (गण्डमाला) की रोकथाम के लिए अब ठोस कदम उठाये जा रहे हैं। इस रोग-निरोधक कार्यवाही में नई दिल्ली का अखिल भारतीय चिकित्सा-संस्थान' (आल इण्डिया इन्स्टिट्यूट ऑव मैडिकल साइन्सेज) प्रमुख रूप से भाग ले रहा है। चिकित्सा-संस्थान को भारत-सरकार, विभिन्न राज्यों की सरकारों और अमेरिकी सरकार से सहायता मिली है।

अनुमान है कि हिमालय की सम्पूर्ण पर्वतश्रृङ्खला के २४०० किलोमीटर में फैले क्षेत्र में ६० लाख से अधिक लोगों के गलों में गिल्लड़ की बीमारी है। चिकित्सा-संस्थान के डा० वी० रामलिंगस्वामी के नेतृत्व में अनेक डाक्टर इस क्षेत्र में पिछले १० वर्षों से काम कर रहे हैं। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप गिल्लड़ के रोगियों की संख्या ४० प्रतिशत से घट कर १५ प्रतिशत रह गई है। डा० रामलिंगस्वामी अ० भा० चिकित्सा संस्थान में रोगनिदान-विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर हैं। हिमालय-क्षेत्र में होने वाले गिल्लड़ का कारण पीने के पानी का अत्यधिक कठोर होना यानी पानी में चूने (कैल्शियम) की प्रचुर मात्रा होना समझा जाता था किन्तु अब यह पता चल गया है कि यह आयोडीन की कमी के कारण होता है।

अ० भा० चिकित्सा संस्थान के डाक्टरों ने रोग-प्रसार वाली पट्टी को अध्ययन के लिए तीन टोलियों में बाँटा। उन्होंने सामान्य नमक में थोड़ी मात्रा में पोटैशियम आयोडाइड और पोटैशियम आयोडेट मिलाया। उन्होंने इसे दो टोलियों को दिया। तीसरी टोली को (जिसे नमक का यह मिश्रण नहीं दिया गया था) नियन्त्रण पर रखा।

जिन क्षेत्रों में पोटैशियम आयोडाइड अथवा आयोडेट मिलाकर नमक दिया गया था वहाँ गिल्लड़ के रोगियों की संख्या में नाटकीय रूप में कमी आई। नियन्त्रण-क्षेत्र में, जहाँ लोग सामान्य नमक लेते रहे, कोई परिवर्तन नहीं आया।

इससे स्पष्ट हो गया कि गिल्लड़ होने का मूल कारण आयोडीन की कमी है, और यह भी स्पष्ट हुआ कि यदि आयोडीन मिलाकर नमक दिया जाये तो कम खर्च में और आसानी से गिल्लड़ होने से लोगों को बचाया जा सकता है।

अमेरिकी सरकार ने इस अनुसन्धान के लिए ५००६० रुपये दिये हैं।

२—कोयम्बटूर के गन्ना-संस्थान से भारत तथा २६ देशों को लाभ

हवाई, प्वेर्टोरीको और भारत के गन्ना-उत्पादक एक-दूसरे से हजारों मील दूर आबाद प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु कोयम्बटूर (दक्षिणी भारत) में, संचालित एक अनुसन्धान-कार्यक्रम उन्हें एक-दूसरे से जोड़े हुए हैं।

कोयम्बटूर स्थित गन्ना-उत्पादन संस्थान अमेरिका के कृषि-विभाग के साथ मिल कर एक सहकारी अनुसंन्धान-प्रयास में संलग्न है, जिसका उद्देश्य गन्ने की ऐसी किस्मों का विकास करना है जो भारत और अमेरिका में उष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में सफलतापूर्वक

उत्पन्न की जा सकें तथा जिनमें रेडरौट, स्मट, मोजयिक और रटून आदि रोगों का मुकाबला करने की क्षमता हो और जो सूखे को सहार सकें।

कोयम्बटूर संस्थान द्वारा संचालित इस पंचवर्षीय योजना का समूचा खर्च पी० एल०- ८० के अन्तर्गत अमेरिका द्वारा दिये गये अनुदान से चलाया जा रहा है। अनुमान है कि इस योजना पर ६ लाख ५० हजार रुपये खर्च होगा। भारत के उष्ण कटिबन्ध वाले जिन प्रदेशों में, विशेष रूप से दक्षिणी राज्यों में, गन्ने की फसल उत्पन्न की जाती है, उनका जलवायु अमेरिका के हवाई राज्य और प्वेर्टोरीको के जलवायु से मिलता-जुलता है। हवाई और प्वेर्टोरीको के गन्ना-उत्पादकों को गन्ने के वैसे ही रोगों का सामना करना पड़ता है जैसे रोग यहाँ गन्ने की फसलों में होते हैं। इसके अलावा गन्ने की नई किस्में ऐसी होनी चाहिये जो सूखे का मुकाबला कर सकें।

योजना के अनुसार संस्थान में उपलब्ध लगभग ५०० चुनिंदा जंगली किस्मों की सहायता से दोगली किस्में उत्पन्न करने के लिये हवाई और प्वेर्टोरीको की लगभग ७५ किस्मों का प्रयोग किया जायेगा। गन्ने की जङ्गली किस्में अपनी रोग-निरोधक क्षमता और कड़ेपन के लिए प्रसिद्ध हैं।

कोयम्बटूर के वैज्ञानिक इस वर्ष गन्ने की लगभग १०० दोगली किस्में और अगले वर्ष १०० किस्में बनाने का कार्यक्रम चालू कर रहे हैं।

दोगली किस्में तैयार करने के लिए किये गये परीक्षणों के परिणामस्वरूप ७० किस्मों का विकास किया गया है। ये किस्में लूइजियाना और फ्लोरिडा राज्यों में बोने के लिए अमेरिकी कृषि-विभाग को उपलब्ध की गई थीं। इस पंच-वर्षीय योजना को भी १५ लाख रुपये के अनुदान से सहायता दी गई थी।

कोयम्बटूर के विशेषज्ञों को आशा है कि उत्तरी भारत में ३० टन प्रति एकड़ और दक्षिणी भारत में ४० टन प्रति एकड़ चीनी पैदा करने का लक्ष्य पूरा किया जा सकेगा। इस समय उत्तरी भारत में लगभग २० टन प्रति एकड़ और दक्षिणी भारत में लगभग ३० टन प्रति एकड़ चीनी पैदा की जाती है। उनका विश्वास है कि चौथी योजना के अन्त तक भारत प्रति वर्ष ४५ लाख टन चीनी पैदा कर सकेगा।

३—अमेरिकी अनुसन्धान द्वारा ज्वार की नई किस्म का विकास

संसार के लोगों के भोजन की तीसरे नम्बर की सबसे महत्वपूर्ण खाद्यवस्तु ज्वार के बारे में एक अमेरिकी कृषि-वैज्ञानिक की जो दिलचस्पी भारत में जाकर शुरू हुई थी, उसके फलस्वरूप अमेरिकी विश्वविद्यालय में एक अनुसन्धान-कार्यक्रम चालू किया गया है। संभव है कि उसके कारण एशिया और अफ्रीका के करोड़ों लोगों के भोजन की कोटि में पर्याप्त सुधार हो जाय।

पड्यू विश्वविद्यालय की इस अनुसन्धान-योजना में अमेरिका की 'अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी' योग दे रही है। उसके अन्तर्गत ज्वार की पैदावार और पोषक क्षमता बढ़ाने की संभावना का पता लगाया जायेगा। पड्यू विश्वविद्यालय में कृषि-विज्ञान के प्रोफेसर और योजना के समन्वयकर्त्ता डा० रौबर्ट सी० पिकेट की धारणा है की ज्वार की अच्छी किस्मों के विकाश से संसार के खाद्य-संकट का मुकाबला करने में महत्वपूर्ण योग मिल सकेगा।

डा० पिकेट १९६३-६४ में छुट्टी लेकर रौकफेलर प्रतिष्ठान की ओर से अध्ययन के लिए भारत आये थे। भारत में उन्होंने संसार के सभी भागों से इकट्ठी की हुई ज्वार के ८००० से अधिक नमूनों का अध्ययन किया था।

पड्यू में लौट कर डा० पिकेट ने अपना अध्ययन जारी रखा। उन्होंने पता लगाया कि विभिन्न नमूनों में प्रोटीन की मात्रा ७ से २६ प्रतिशत तक भिन्न-भिन्न है। इन निष्कर्षों तथा ज्वार की क्षमताओं के बारे में प्राप्त परिणामों के फलस्वरूप पड्यू और 'अन्तर्राष्ट्रीय

विकास एजेन्सी में ५ वर्ष तक अनुसन्धान करने का एक करार हुआ। अब उसका तीसरा साल चल रहा है।

डा० पिकेट और उनके सहकारी अनुसन्धानकर्ताओं ने पता चलाया कि ज्वार की कुछ किस्मों में आवश्यक एमिनो अम्लों (प्रोटीन के रचनाकारी तत्व) की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि प्रोटीन की अधिक मात्रा और उच्च कोटि के गुण परम्परागत होते हैं। वे इन विशेषताओं को अधिक पैदावार देने वाली उन किस्मों में विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं जो विकासोन्मुख देशों की परिस्थितियों में पनप सकें।

४—पदार्थ की पंचम अवस्था

अमेरिका के एक विख्यात रसायन-वैज्ञानिक का कहना है कि कार्बन सम्बन्धी प्रयोगों में पदार्थ की एक पंचम अवस्था के प्राप्त होने की सम्भावना है। इस अवस्था की पूर्व-कल्पना वैज्ञानिकगण कई वर्षों से कर रहे थे। यह सूचना नोबेल पुरस्कार विजेता विलार्ड एफ० लिब्बी ने दी, जो लौस एंजेलस के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में रसायन-विज्ञान के प्रोफेसर हैं।

पदार्थ की चार ज्ञात अवस्थाएं हैं—द्रव, गैस, ठोस और प्लाज्मा (आयन और इलेक्ट्रान का एक घनावरण)।

किन्तु वैज्ञानिकों का अनुमान था कि अतीव ऊँचे-वायुमण्डल के चाप से करोड़ों गुना अधिक चाप के अन्तर्गत, पदार्थ अति-धातु (सुपर-मेटल) बन कर एक पाँचवी अवस्था प्राप्त कर सकता है।

वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार दाब अणुओं को इतना निचोड़ देगा कि उनका इलेक्ट्रान-ढाँचा विच्छिन्न हो जायेगा। उस समय पदार्थ बहुत कुछ धातु जैसा हो जायेगा, जिसमें अणुओं की न्यष्टियाँ काफी स्थिर होंगी, हालाँकि कई आणविक इलेक्ट्रान अबाध रूप से गतिशील होंगे। डा० लिब्बी ने रिपोर्ट में बताया है कि ऐसा उन प्रयोगों के दौरान होने की सम्भवना है, जिनमें ग्रेफाइट की एक पट्टी को विस्फोटकों की दो पट्टियों के बीच रखा गया था। विस्फोटकों को एक साथ ही दागा गया, जिससे नन्हें हीरे उत्पन्न हो गये। डा० लिब्बी ने कहा, कार्बन के रसायन सम्बन्धी अपने ज्ञान के आधार पर हमारे लिए यह सोच पाना कठिन है कि लगभग १० करोड़ कार्बन अणुओं का एक हीरक व्यूहाणु एक सेकण्ड के एक हजारवें अंश से भी कम समय में तैयार हो सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि हो सकता है कि अति चाप के संक्षिप्त क्षण में अति धात्विक अवस्था आयी हो, जिसके दौरान हीरों का निर्माण हो सका हो।

५—मार्ग-दर्शन सम्बन्धी दोषों में कमी

वायु के तापमान में होने वाले परिवर्तन के कारण वायुयान का मार्गदर्शन करने सम्बन्धी व्यवस्था में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें आइसोटोप ईंधन से जलने वाले हीटर का प्रयोग करके कम किया जा सकता है। अमेरिका में इस हीटर का विकास किया गया है।

मार्ग-दर्शन सम्बन्धी यन्त्रों में सेंसरों के रूप में प्रयोग में आने वाले जिरोस्कोपों और एक्सेलेरोमीटरों का उस समय तक भरोसा नहीं किया जा सकता जब तक कि उनका संचालन-तापमान स्थिर नहीं हो जाता है। ताप पैदा करने की यह अवधि विशेष रूप से शीतल क्षेत्रों में अक्सर लम्बी होती है।

प्रामेथियम १४७ से जलने वाला यह नया हीटर समूची मार्ग-दर्शन संबंधी व्यवस्था को सेंसरों के संचालन-तापमान के निकट रख कर ताप पैदा करने की अवधि को कम कर देता है।

एक बॉयलर में से एथिलीन ग्लाइकोल विलयन को रेडियोसक्रिय पदार्थ से पैदा होने वाले ताप को मार्ग-दर्शन-संबंधी यन्त्र में पहुँचा दिया जाता है।

अमेरिका के अणुशक्ति कमिशन और अमेरिकी वायुसेना के सहयोग से हीटर का विकास किया गया है। अब वायु सेना द्वारा इसकी जाँच की जा रही है।

सार संकलन

निद्रा और स्वप्न

जीवन के लिये नींद आवश्यक है। आहार की भाँति नींद के बिना भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। नींद के सम्बन्ध में हाल में हुए वैज्ञानिक अनुसन्धान के फलस्वरूप एक आश्चर्यजनक खोज सम्भव हुई है। स्वप्न देखना भी मानव अस्तित्व के लिए सम्भवतः इतना ही आवश्यक है।

नींद मनुष्य के उन अनुभवों में से एक है, जिनसे वह सबसे अधिक परिचित है। वह लगभग एक तिहाई जीवन सोने में व्यतीत कर देता है। फिर भी, अभी कुछ ही समय पूर्व तक, नींद जीवन की उन घटनाओं में से से एक रही है, जिनके सम्बन्ध में सबसे कम खोज की गयी थी। ऐसी बात नहीं कि वैज्ञानिकों ने जानबूझ कर इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वास्तविकता यह है कि इसके रहस्यों के भीतर प्रविष्ट करने को कोई व्यवहारिक विधि उपलब्ध नहीं है।

नींद लेने और स्वप्न देखने की क्रियाओं की साथक ढंग पर विधिवत जाँच-पड़ताल करने के लिए उपकरण और प्रविधियाँ उपलब्ध न थीं। किन्तु हाल के वर्षों में स्थिति बहुत परिवर्तित हो चुकी है। इस समय अमेरिका में कम से कम २० 'निद्रा' प्रयोगशालाएँ हैं, जिनमें से अधिकांश विश्वविद्यालयों और अस्पतालों में हैं। इन प्रयोगशालाओं में स्वेच्छा से अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने वाले छात्र, सहायक प्राध्यापक अथवा दिलचस्पी रखने वाले नागरिक – प्रायः रात्रि के १० बजे के बाद आते हैं, और फिर रात्रि में उन पर 'तारवर्की' की जाती है।

'तारवर्की' का अर्थ यह है कि उनके शरीर की गतिविधियों, नेत्रसंचालन, नाड़ी, रक्तचाप, श्वास, हृदय की गति, तापमान, चर्म के विद्युत प्रतिरोध में परिवर्तन, 'मस्तिष्कीय लहरियों' (मस्तिष्क द्वारा सामान्यतः उत्पन्न न्यून विद्युतीय स्पन्दन, जिनके द्वारा अनुसन्धानकर्ता' मस्तिष्क की क्रियाओं सम्बन्धी संकेत प्राप्त कर सकते हैं) की गति और अन्य बातों के सम्बन्ध में उपयुक्त आँकड़े प्राप्त करने के लिए उनके शरीर के विभिन्न भागों पर नन्हें इलेक्ट्रोड और अन्य सेंसर चिपका दिये जाते हैं।

उसके बाद, स्वेच्छा से प्रयोग के लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने वाले ये व्यक्ति एक शान्त कमरे में एक शैया पर रात में सोने के लिए लेट जाते हैं। किन्तु कमरे के बाहर तार के जोड़ मापक-यंत्रों को सक्रिय रखते हैं, जिनपर अनुसन्धानकर्ता उत्सुकतापूर्वक दृष्टि गड़ाये रखते हैं।

इस अनुसन्धान के फलस्वरूप प्रादुर्भूत अधिकतम उल्लेखनीय खोजों में एक शिकागो विश्वविद्यालय में १९५० के दशाब्द के प्रारम्भिक चरण में की गयी। यह खोज नींद सम्बन्धी अनुसन्धान के क्षेत्र में विश्वविद्यालय वैज्ञानिक, डा० नैथालियन क्लीटमैन, के निर्देशन के अन्तर्गत किये गये प्रयोग के दौरान की गयी।

(१) डा० क्लीटमैन के एक स्नातक छात्र, यूजीन एसेरिन्स्की, उनके इस कथन से बहुत प्रभावित हुए कि ६० से लेकर ९० मिनट के मध्यान्तरों पर प्रायः सभी सोये व्यक्ति १५ से २० मिनट तक तीव्र गति से

नेत्र-चालन करते हैं। इसके पूर्व भी कई अनुसंधान-कर्ताओं ने इस बात को देखा था, किन्तु उन्होंने इसे बहुत महत्व नहीं दिया था। एसेरिन्स्की ने सोचा कि शायद नेत्र में होने वाली वह हलचल इस बात की सूचक होती है कि सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न देख रहा है। आगे के कई हफ्तों तक एसेरिन्स्की प्रयोगशाला के स्वेच्छासेवियों के बीच बहुत ही अप्रिय रहा। जब कभी उसके उपकरणों से तीव्र नेत्र-चालन का संकेत मिलता था, वह नींद लेने वाले व्यक्ति के कमरे की ओर उन्मुख एक माइक्रोफोन चालू कर देता था, और उस व्यक्ति को जगा देता था।

शीघ्र ही एसेरिन्स्की नींद लेने वालों की दृष्टि में जितना अप्रिय रहा, उतना ही उसके सहयोगी उससे ईर्ष्या करने लगे। वस्तुतः जगाये गये व्यक्ति इस बात की पुष्टि करते थे कि जगाते समय वे स्वप्न देख रहे थे और आमतौर पर वे अपने स्वप्न का विस्तार और स्पष्टता के साथ वर्णन किया करते थे।

अपने निष्कर्षों को जाँच करने के लिये एसेरिन्स्की समय-समय पर नींद के मध्यान्तर काल में, जब उनके नेत्रों में किसी तरह की गति नहीं होती थी, इन तथा अन्य स्वयंसेवकों को जगा देता था! प्रायः सभी मामलों में स्वेच्छासेवी व्यक्ति यही कहते थे कि जगाये जाने के ठीक पहले वे स्वप्न नहीं देख रहे थे।

उसके बाद, विश्व के कई भागों में इस प्रकार के अनेक प्रयोगों के अन्तर्गत इन खोजों की पुष्टि की गयी। इनसे पता चला कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति एक रात में ३ से ५ स्वप्न देखता है, हालांकि अधिकांश लोग अगले प्रातःकाल इन स्वप्नों को याद नहीं कर सकते हैं और कई लोग इस बात पर ज़ोर देते हैं कि वे कभी नहीं अथवा बहुत ही कम स्वप्न देखते हैं।

इस प्रकार एसेरिन्स्की ने स्वप्न के रहस्यों के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान का, जो पहले असंभव प्रतीत होता था, द्वार उन्मुक्त कर दिया।

(२) उसके साथ ही की गयी एक अन्य खोज यह थी कि तीव्र गति से नेत्रसंचालन (रैपिड आई मूवमेंट) की इन अवधियों के दौरान—जिन्हें वैज्ञानिकों ने संक्षेप में आर० ई० एम० की संज्ञा दी है—शरीर की गतिविधियों के माप सम्बन्धी अन्य आँकड़े भी परिवर्तित हो जाते हैं। रक्तचाप, हृदय की धड़कन और श्वास की गति, शरीर का तापमान और मस्तिष्कीय लहरियों के स्वरूप—इन सभी में भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तित हो जाते हैं।

फिर भी, नींद की समूची अवधि में, प्रत्येक व्यक्ति के लिये ये सभी माप एक ऐसे चक्र का अनुगमन करते हैं जिसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। यही नहीं, सभी स्वास्थ लोगों के ये चक्र प्रायः एक जैसे ही होते हैं।

अस्तु, नींद के प्रयोग के दो घंटों के दौरान, शरीर का तापमान, श्वास की गति और रक्तचाप में तब तक उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है, जब तक निद्रा का गहनतम बिंदु नहीं आ जाता। उसके बाद नींद के शेष घंटों में उनमें और भी धीमी गति से क्रमागत वृद्धि होती है। इस बीच अपवाद के क्षण वे ही हैं जिनमें तीव्र गति से नेत्र-संचालन होने लगता है। वैज्ञानिकों ने निद्रा-चक्र को ४ स्पष्ट चरणों में विभाजित किया है, जो नींद की गहनता के सूचक होते हैं। डा० क्लीटमैन के एक अन्य छात्र, डा० विलियम सी० डेमेण्ट, ने जो इस समय कैलिफोर्निया में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के चिकित्सा विद्यालय में मनो-चिकित्सक हैं, इन प्रयोगों को बहुत आगे बढ़ाया।

डा० क्लीटमैन तथा अन्य वैज्ञानिकों ने यह प्रदर्शित किया कि जिन व्यक्तियों को लम्बे अर्से तक नींद न आयी हो, वे क्षुब्ध हो उठते हैं, उनकी भूख बढ़

जाती है, उनकी स्मरण शक्ति विच्छिन्न हो जाती है, किसी विषय पर विचार केन्द्रित करने को क्षमता कम हो जाती है और हो सकता है कि वे सुप्तावस्था में जागरण के विकार से पीड़ित हों। व्यवहार और मानसिक स्थिति सम्बन्धी ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं, और ऐसे मनुष्य सामान्य नींद की अवस्था पुनः प्राप्त कर लेने के बाद अपनी पूर्वावस्था में आ जाते हैं।

डा० डेमेंट ने परीक्षण और प्रयोग में भाग लेने व्यक्तियों को स्वप्न-मुक्त कर दिया था। जब कभी उनमें से कोई व्यक्ति तीव्र गति से नेत्र-चालन करने लगता था, डा० डेमेण्ट उसकी नींद भंग कर देते थे ताकि वह स्वप्न न देख सके। हर अगली रात को डा० डेमेंण्ट अपेक्षाकृत अधिक व्यस्त हो जाते थे, क्योंकि परीक्षण के लिए आये व्यक्तियों में नेत्र-चालन की प्रवृत्ति तीव्र हो उठती थी। ऐसा लगता था मानों जितनी देर तक उन्हें स्वप्न से वंचित रखा जाता था, उतने ही अधिक वे स्वप्न से वंचित रहने के बाद, इन व्यक्तियों के व्यक्तित्व में वैसे ही परिवर्तन परिलक्षित होने लगे जैसे नींद से वंचित व्यक्तियों में होते थे, अर्थात् वे अधिक क्षुब्ध और विकल हो उठते थे। एक छात्र ने धोखा देने का प्रयत्न किया। अपने आप में भावमग्न रहने वाले व्यक्ति झगड़ालू बन गये। जब इन व्यक्तियों को एक बार पुनः स्वप्न देखने की छूट दी गयी, तो पहली रात को उन्होंने सामान्य की अपेक्षा अधिक बार स्वप्न देखा, मानों वे स्वप्नों की कमी को पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हों।

(३) डा० डेमेण्ट ने यह निष्कर्ष निकाला कि नींद की भाँति स्वप्न देखना भी जीवन के लिए एक अनिवार्य प्रवृत्ति है, और इससे कुछ शारीरिक और मानसिक उद्देश्य पूरे होते हैं।

इन परीक्षणों तथा कुछ अन्य पर्यवेक्षणों के आधार पर अनेक वैज्ञानिकों का यह विश्वास अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है कि नींद के सम्बन्ध में यह परम्परागत धारणा कि यह मस्तिष्क और शरीर से लिए विश्राम की अवधि होती है, भ्रामक और निराधार है।

यद्यपि सोने वाला व्यक्ति सचेत नहीं होता, फिर भी उसका मस्तिष्क बहुत ही सक्रिय रूप में कार्य करना जारी रखता है, और उसकी कई शारीरिक क्रियाएं (पाचन, श्वास, रक्त-संचार, गुर्दे की क्रिया, मांसपेशियों की क्रिया आदि) बहुत ही कम, अथवा तनिक भी नहीं, प्रभावित होती हैं।

साथ ही, मस्तिष्क इतना सचेत रहता है कि ऊँची ध्वनि, तेज चमक अथवा अन्य इन्द्रिय प्रेरक घटनाएं उसे तत्काल जगा सकती हैं। अतः वैज्ञानिकों का कहना है कि नींद लेने और स्वप्न देखने से केवल विश्राम का ही उद्देश्य पूरा नहीं होता बल्कि कुछ अन्य उद्देश्य भी पूरे होते हैं।

(४) एक सिद्धान्त के अनुसार, मस्तिष्क उन अप्रिय रसायनों को संग्रह करता है, जो थकान की अवस्था उत्पन्न करने में योग देते हैं। नींद और शायद स्वप्न भी— उस शारीरिक प्रक्रिया के अंग हैं, जो इन रसायनों के प्रभावों को निष्क्रिय, अथवा उनसे मस्तिष्क को मुक्त कर देती है। किन्तु यदि ये रसायन सचमुच हैं, तो वे क्या हैं? इसका उत्तर अभी भी अज्ञात है।

इनके अतिरिक्त, एक अन्य सिद्धान्त भी है, जो इस जानकारी पर आधारित है कि मांसपेशियाँ और स्नायु प्रणाली— दोनों ही— प्रयोग में न आने पर दुर्बल होती हैं, न कि सशक्त। प्रतिदिन ८ घण्टे की नींद की अवस्था में प्रयुक्त न होने के कारण स्नायु प्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार, स्वप्न प्रकृति के निराले उपकरण होते हैं, जिनके द्वारा वह प्रयुक्त न होने की अव-

स्था में थोड़े-थोड़े मध्यान्तर से स्नायु प्रणाली को सक्रिय बनाती रहती है, ताकि वह विकारग्रस्त न होने पाये।

वैज्ञानिक सामान्यतः इस बात से सहमत हैं कि नींद और स्वप्न सम्बन्धी अनुसंधान से अभी तक कुछ ऐसे परिमाण प्राप्त नहीं हुए हैं, जो व्याहारिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हों, हालांकि इससे जानकारी में वृद्धि हुई है, जो अंततः मानसिक और शारीरिक रोगों के उपचार में बहुमूल्य सिद्ध हो सकती हैं।

यही नहीं, यदि नींद और स्वप्न के उद्देश्यों का निश्चित रूप के निर्धारण हो जाय, और उनके स्वरूप की सही-सही जानकारी प्राप्त कर ली जाय, तो इन उद्देश्यों को ऐसे साधनों द्वारा पूरा करना सम्भव हो सकता है, जो नींद से अधिक सरल हो।

अतः यदि यह सत्य सिद्ध हो जाय कि नींद संग्रहीत अवांछनीय रसायनों को झाड़ कर साफ कर देती है, तो रसायनों की यह सफाई किसी औषधीय इंजेक्शन से अथवा दवा की गोली से क्यों नहीं सम्भव हो सकती, ताकि नींद की आवश्यकता ही न रहे?

सम्भवतः वह दिन दूर नहीं, जब नींद और स्वप्न की आवश्यकता को बहुत ही कम अथवा सीमित किया जा सकेगा। ऐसी स्थित में मनुष्य अपने जीवन के उस एक-तिहाई भाग को काम करने, पढ़ने-लिखने अथवा अवकाश में व्यतीत कर सकेगा, जिसे वह अभी नींद की अचेतन अवस्था में बिताने के लिए विवश है।

●

[पृष्ठ ११ का शेषांश]

नहीं कर पाते थे। इसके अतिरिक्त यह उपग्रह बादलों के चित्र लेकर पृथ्वी पर भेजेगा तथा ऋतु संबंधी जानकारी भी दे सकेगा। २ जुलाई १९६७ का समाचार था कि अमेरका ने एक टाइटन राकेट से छः संचार उपग्रह प्रक्षेपित किए हैं। इनमें से दो उस कड़ी के हिस्से हैं, जिससे वाशिंगटन और वियतनाम के बीच सीधा संचार प्रारंभ हो जाएगा। अब तो यह हो भी चुका है। इस प्रकार विश्व संचार प्रणाली में महान गति आई है। भारत भी संचार-उपग्रह प्रक्षेपित कर इस आधुनिकतम युग में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा है।

●

परिषद का पृष्ठ

● मंगलाप्रसाद पुरस्कार से विभूषित

विज्ञान परिषद् प्रयाग के भूतपूर्व प्रधान मंत्री, डा० रमेशचन्द्र कपूर को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उनकी वैज्ञानिक कृति "परमाणु विखण्डन" पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान करके गौरवान्वित किया है। यह पारितोषिक २५ जनवरी को विशेष उपाधि वितरण समारोह के अवसर पर प्रदान किया गया।

डा० कपूर अधुना जोधपुर विश्वविद्यालय में रसायन विभाग के अध्यक्ष हैं। उनकी हिन्दी निष्ठा अद्वितीय है। वे परिषद के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

डा० कपूर के पारितोषिक प्राप्त करने पर हम विज्ञान परिवार की ओर से उन्हें बधाई देते हैं और उनकी उन्नति की कामना करते हैं।

● विज्ञान परिषद अनुसधान गोष्ठी

३ जनवरी १९६९ को ढाई बजे अपराह्न में ५६ वें भारतीय साइंस कांग्रेस के तत्वावधान में "विज्ञान परिषद गोष्ठी" के अध्यक्ष पद से बोलते हुये डा० ब्रजमोहन ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक चिन्तन एवं प्रसार पर अपना महत्वपूर्ण भाषण दिया। गोष्ठी के प्रारम्भ में डा० सत्य प्रकाश ने विज्ञान परिषद प्रयाग की गतिविधियों का उल्लेख किया।

इस गोष्ठी में भारत भर के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक उपस्थित थे। आगन्तुकों में से प्रमुख नाम इस प्रकार हैं–भारतीय वैज्ञानिक एवं अनुसन्धान परिषद के महानिदेक डा० आत्माराम, बोटैनिकल सर्वे के भूतपूर्व निदेशक, राजस्थान विश्व विद्यालय के उपकुलपति डा० रामचरण मेहरोत्रा, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष डा० रत्नशंकर मिश्र, वहीं के भौतिकी विभाग के अध्यक्ष डा० नन्दलाल सिंह, गोरखपुर विश्व विद्यालय के भौतिकी के विभागाध्यक्ष डा० देवेन्द्र शर्मा, सागर विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष डा० सतगुरसरन निगम, लखनऊ विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के प्रोफेसर लक्ष्मी नारायण श्रीवास्तव, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के प्रोफेसर डा० रामदास तिवारी। इनके अतिरिक्त इलाहाबाद से डा० अरुण दे, डा० डी० एन० वर्मा, बनारस विश्वविद्यालय से डा० रमाशंकर सिंह, तथा श्री एस० वार्ष्णेय, जोधपुर विश्वविद्यालय से डा० एस० एल० कल्ला, उदयपुर से के० ए० रोडे, तथा अम्बिकाप्रसाद दीक्षित, दिल्ली से शम्भुप्रसाद शर्मा तथा नारायण प्रसाद सिंह, जम्मू से डा० सूरजदेव प्रसाद, सागर से डा० एस.एम. अहूजा तथा डा० के० पी० मिश्रा, बम्बई से राजेन्द्र सिंह तथा गोरखपुर से डा० सतीशचन्द्र त्रिपाठी ने भी भाग लिया।

गोष्ठी में रमाशंकर सिंह ने "अणु स्पेक्ट्रम" पर, डा० सदगुरशरण निगम ने "सुगन्धित तेल" पर तथा डा० सूर्यदेव प्रसाद ने "कीटनाशक" पर शोधचर्चायें प्रस्तुत कीं।

विज्ञान परिषद के सभापति डा० रामधर मिश्र ने अपने समापन भाषण में हिन्दी के माध्यम से होने वाले वैज्ञानिक कार्यक्रम की चर्चा की। अन्त में प्रधान मन्त्री डा० हीरालाल निगम ने गोष्ठी में आये हुये अतिथियों को धन्यवाद दिया।

इस अवसर पर अध्यक्षपदीय भाषण की मुद्रित प्रतियाँ बाँटी गईं।

*

सम्पादकीय—

• क्षमा याचना : अपनी बात : नया वर्ष : नई आशा

जून १९६८ से दिसम्बर १९६८ तक 'विज्ञान' के प्रकाशन में जो अनियमितता रही है, उसके लिये हमें अपने प्रेमी पाठकों का कोपभाजन बनना पड़ा। यह कुछ हद तक सही भी है।

उक्त अनियमितता के लिये हम किन-किन कारणों का उल्लेख करें हमारी समझ में नहीं आ रहा। और न हमारे पाठक हम पर विश्वास ही करेंगे। यह अर्द्धवार्षिक काल परिषद् के लिये संकटों का काल रहा है। अब परिषद् धीरे-धीरे उस पर विजय पा रहा है।

हम अपने पाठकों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम अगले दो-तीन मासों में 'विज्ञान' को नियमित रूप से प्रकाशित कर सकेंगे और वह उन सबों के पास मास की बीसवीं तिथि तक अवश्य पहुँच जाया करेगी।

किन्तु हमारा एक नम्र निवेदन यह भी है कि जिन ग्राहकों ने पिछले वर्ष का या इससे भी पीछे का चन्दा नहीं भेजा है वे कृपापूर्वक चन्दा भेज दें।

हम आपकी सेवाओं के लिए सदैव तत्पर हैं किन्तु साथ ही आपसे प्रोत्साहन भी चाहते हैं।

यदि आप अपनी रुचियों से हमें अवगत कराते रहें और अपने सुझाव भेजते रहें तो 'विज्ञान' भरसक प्रयत्न करेगी कि वह दिनोदिन आपके अनुरूप बने।

भारत में इस समय वैज्ञानिक साहित्य की कितनी आवश्यकता है, इसे छात्र एवं अध्यापक, जनता एवं शासक समान रूप से अनुभव करते हैं।

आप अपना सहयोग देकर हमें कृतार्थ करें।

●

हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान

विषय-सूची

विज्ञान परिषद, प्रयाग

प्रति अंक ४० पैसे
वार्षिक ४रुपये

सम्पादक- डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ३।५

भाग १०५	माघ-फाल्गुन २०२५ विक्र०, १८९० शक फरवरी–मार्च, १९६९	संख्या २-३

स्वप्नों का रहस्य लोक

डा० बालगोविन्द जायसवाल

स्वप्न कोरी अस्तित्वहीन कल्पना नहीं वरन सत् है। परन्तु स्वप्नों का रहस्य लोक इतना दुर्गम है कि उसकी उत्पत्ति के मूल सूत्र की पकड़ सहज साध्य नहीं है। अतः यह रहस्य अभी तक प्रायः जहाँ का तहाँ बना हुआ है कि सपनों की उत्पत्ति का मूल सूत्र कहाँ पर है तथा कौन सी शक्ति इनका परिचालन करती है? परन्तु जिस आधुनिक विज्ञान ने कुछ ही शती पूर्व सरलतम तंत्रों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रारंभ कर शनैः शनैः स्वयं की तकनीक एवं अध्ययन क्षेत्र को विकसित एवं विस्तृत कर आज के समृद्ध दुखी संसार को वरदान मानी जाने वाली अनेकों औषधियों, सुख-सुविधाओं से एवं चंद्र की परिक्रमा कर आने सदृश उपलब्धियों से उपकृत एवं चमत्कृत कर दिया है, उसी विज्ञान में इतनी विविध, व्यापक एवं वेधन शक्ति युक्त अध्ययन विधियाँ उपलब्ध हैं कि जिनसे स्वप्नों की परिचालन-क्रियाविधि की रूपरेखा प्राप्त हो जाना असाध्य नहीं है।

विज्ञान में, विभिन्न तंत्रों के अध्ययन की एक विधि "समानता" पर आधारित है—

'समान तंत्रों की अनुक्रियाएं समान होती हैं।' जिन तंत्रों की संरचनाएं समान होंगी, उनके व्यवहारों एवं अनुक्रियाओं में भी समानता पाई जाएगी। इस प्रेक्षण का कारण चाहे, वैज्ञानिक विभिन्न ऊर्जाओं की मौलिक एकता (आइन्सटाइन) में खोजें, चाहे दार्शनिक अद्वैत दर्शन में। परन्तु है यह सत्य-"एकोऽहं बहुस्याम्"। वही एक, अनेक रूपों में प्रकट होता रहता है। तभी तो वाह्यतः उसके अत्यन्त भिन्न दिखने वाले प्रकट रूपों (विभिन्न तंत्रों) की संरचनाओं एवं व्यवहारों में समानता पाई जाती है। एक दो उदाहरणों से ही यह स्पष्ट हो जाएगा।

वैज्ञानिकों ने पदार्थ के लघुत्तम कण परमाणु की संरचना की खोज करते करते पाया कि उसकी संरचना पदार्थ के बृहत्तम पिंडों-सौर परिवार—की संरचना के समान है। जिस प्रकार, सौर परिवार में बृहत्तम

पदार्थीय पिंड "सूर्य" मध्य में स्थित रहता है, तथा उसकी परिक्रमा अपेक्षाकृत लघु भार वाले ग्रह विभिन्न कक्षाओं में करते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार परमाणु का प्रायः सम्पूर्ण द्रव्यमान, मध्य में स्थित "नाभिक" में स्थित होता है तथा इसकी परिक्रमा, प्रायः भारहीन "इलेक्ट्रान" करते रहते हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न ग्रहों की कक्षाएं "दीर्घवृत्तीय आकार" की हैं तो इलेक्ट्रानों की कक्षाएं भी उसी आकार की हैं। यदि सूर्य तथा विभिन्न ग्रहों के बीच का विशाल प्रदेश-शून्य प्रदेश अर्थात् अंतरिक्ष है, तो परमाणु नाभिक एवं उसकी परिक्रमा कर रहे इलेक्ट्रानों के बीच का प्रदेश भी शून्य प्रदेश है।

इसी प्रकार का एक अन्य मनोरंजक उदाहरण है-परमाणुओं का युक्त होना एवं मानव विवाह। चाहे परमाणुओं को भावनाहीन एवं मानव को भावनावान माना गया है, परन्तु दोनों ही स्वभावतः एकाकी रहना पसन्द नहीं करते। पदार्थ प्राकृतिक अवस्था में कभी एकाकी परमाणुओं के रूप में नहीं पाया जाता। वह सदैव दो (या अधिक) परमाणुओं के रासायनिकतः युक्त समूह-"अणु" के रूप में पाया जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सामान्यतः मानव एकाकी नहीं, वरन "दम्पति" के रूप में पाया जाता है। तथा "दाम्पत्य बंधन" भी "रासायनिक बंध" के सदृश अत्यन्त प्रबल होता है।*

अब विषय पर आते हुए, समानता के आधार पर स्वप्नलोक का अध्ययन करने हेतु हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि स्वप्न का संबंध किस तंत्र से है? स्पष्टतः स्वप्न का संबंध "चेतना" (अपने व्यापक अर्थ में) से है। "चेतना तंत्र" की एक अवस्था-विशेष, "सुषुप्ति" में ही स्वप्न आते हैं। जब तक मनुष्य सोता नहीं, स्वप्न नहीं आ सकता। और यदि व्यक्ति सो रहा है; उसे स्वप्न आ रहा है, उस परिस्थिति में भी किसी अन्य ने यदि उसे बाह्य विक्षोभ द्वारा जगा दिया तो भी स्वप्न, निद्रा समाप्त होने के साथ ही साथ समाप्त हो जाता है।

अब इस चेतना तंत्र से तुलना हेतु, एक उपयुक्त भौतिक तंत्र चुना जाना आवश्यक है। यह भौतिक तंत्र इस प्रकार का होना चाहिए, जिसका संपूर्ण का गहन अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया जा चुका हो तथा साथ ही साथ, वह "चेतना-तंत्र" से समानता भी रखता हो। ऐसा एक सामान्यतम तंत्र है "जल-तंत्र," जिससे वैज्ञानिक-अवैज्ञानिक सभी परिचित हैं। इस तंत्र के, प्रस्तुत विवेचन से संगत कुछ गुण नीचे उद्धृत हैं:—

(अ) जल सामान्य ताप तथा वायुमंडलीय दाब पर, एक तरल पदार्थ के रूप में रहता है। इस रूप में इसकी निश्चित मात्रा का आयतन तो अचर रहता है, परन्तु इसका रूप (विभिन्न आकार के पात्रों में लेकर) सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है।

(आ) जल का ताप प्रशीतन द्वारा निम्न कर देने से वह जम कर "हिम" का रूप ले लेता है। हिम घन पदार्थ है, जिसकी निश्चित मात्रा का आयतन तथा रूप, दोनों ही अपरिवर्त होते हैं।

(इ) जल को तापित कर, उसका ताप उच्च कर देने से वाष्पित हो जाता है। वाष्प की निश्चित मात्रा के आयतन तथा रूप दोनों में ही, उस पर प्रभावशील ताप एवं दाब में उचित परिवर्तन कर, इच्छानुसार महान परिवर्तन किए जा सकते हैं।

(ई) वैज्ञानिकों द्वारा जल तंत्र का विस्तृत क्षेत्र में (अत्यन्त निम्न ताप से अत्यन्त उच्च ताप तक तथा अत्यन्त निम्न दाब से अत्यन्त उच्च दाब तक) सूक्ष्म अध्ययन करने पर पाया गया कि इस तंत्र का व्यवहार एक "प्रावस्था-आरेख" से दर्शाया जा सकता है; क्योंकि हिम जल एवं जल-वाष्प, एक ही रासायनिक

---

* केवल कुछ "उत्कृष्ट गैसें", (अत्यन्त लघु मात्रा में पाई जाने वाली) एकाकी परमाणुओं के रूप में पाई जाती हैं। इनकी तुलना साधु, साध्वियों से की जा सकती है।

यौगिक की विभिन्न प्रावस्थाएं हैं तथा वे इन क्षेत्रों में स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। परन्तु एक बिन्दु पर तीनों क्षेत्रों की सीमाएं मिलती हैं अतः इस परिस्थिति में (निश्चित निम्न ताप तथा निम्न दाब पर) जल तंत्र की तीनों प्रावस्थाएं—हिम, जल तथा वाष्प-एक साथ सहअस्तित्व रखती हैं। कोई भी एक दूसरे में परिवर्तित नहीं होता। चाहे सामान्य व्यक्ति (अवैज्ञानिक) को यह विचित्र सा प्रतीत हो कि प्रशीतन द्वारा निम्न ताप पर प्राप्त होने वाला हिम, तापन के पश्चात् उच्च ताप प्राप्त होने वाली जल वाष्प के साथ सह-अस्तित्व कैसे रखेगा परन्तु है यह वैज्ञानिक सत्य, प्रयोग प्रेक्षित तथ्य, जिसे विज्ञान का कोई भी स्नातक भली भाँति जानता है।

"चेतना तंत्र" भी ठीक "जल तंत्र" के समान है। इसकी संरचना तथा गुणधर्म दोनों ही जल तंत्र की संरचना तथा गुणधर्म के समान हैं। चेतना की भी तीन ही प्रावस्थाएं हैं, जो कि अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। ये हैं:—

१.भूत २.वर्तमान एवं ३.भविष्य

(अ) सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अपने "वर्तमान" में ही कार्यशील रहता है। उसके वर्तमान के विस्तार (जल के आयतन के सामान) में वह परिवर्तन नहीं कर सकता, परन्तु वर्तमान के रूप को वह अपने कर्मों द्वारा परिवर्तित कर सकता एवं करता रहता है।

(आ) कोई भी व्यक्ति अपने "भूत" के न तो विस्तार और नहीं रूप में कुछ भी परिवर्तन कर सकता है। जो कुछ वह कर चुका है, वह कर चुका। अपरिवर्त हो गया। अतः चेतना का "भूत", जल के "हिम" रूप के ठीक सदृश, विस्तार एवं रूप दोनों में अपरिवर्त है।

(इ) मानव का "भविष्य" जल की वाष्प प्रावस्था के सदृश महान परिवर्तनशील एवं अत्यन्त अनिश्चित विस्तार वाला होता है। तभी तो कर्मठ व्यक्ति एवं विकासशील राष्ट्र योजनाएं बनाकर, अपने भविष्य का स्वयं की इच्छानुसार निर्माण कर सकते हैं, एवं मनुष्य के विशेषण "भाग्यनिर्माता" को सत्य सिद्ध कर देते हैं।

परन्तु व्यक्ति की समग्र चेतना है अखंड एवं भूत, वर्तमान एवं भविष्य तो उसकी प्रावस्थाएं मात्र हैं। अब इस अखंड चेतना का अध्ययन एक विस्तृत क्षेत्र में (जल तंत्र की समानता के आधार पर) कीजिए। चेतना को प्रभावित करने वाले कारक भी दो ही हैं—ताप तथा दाब। परन्तु ये ताप तथा दाब, भौतिक ताप तथा भौतिक दाब (जो कि जल जैसे पदार्थीय तंत्र में परिवर्तन के कारक होते हैं) से निश्चित रूप से भिन्न हैं।

"चेतना का ताप", क्रोध सदृश मानसिक विकार होते हैं, जो मस्तिष्क को तपा डालते हैं। इस प्रकार "चेतना का दाब" वे सब मानसिक विकार होंगे, जो उस पर बोझ बने रहते हैं। उदाहरणार्थ उसकी अतृप्त इच्छाएं, असफलताएं आदि।

वैसे भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वतंत्र क्षेत्र दृष्टिगत होते हैं। परन्तु यदि किसी व्यक्ति विशेष का मानसिक ताप तथा मानसिक दाब निम्न कर दिया जाए अर्थात् वह क्रोध, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि दुर्गुणों को त्याग दे तथा साथ ही साथ अतृप्ति तथा असफलताओं का बोझ भी स्वयं की चेतना पर न ले अर्थात् निष्काम कर्मयोगी बन जाए, तो उसकी चेतना "त्रि" बिंदु पर स्थित हो जाएगी। वह त्रिकालज्ञ हो जाएगा। उसके मस्तिष्क में, भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों एक साथ सहअस्तित्व रखेंगे। अतः वह वर्तमान-द्रष्टा के साथ ही साथ भूत-द्रष्टा एवं भविष्य-द्रष्टा भी हो जाएगा।

यह सब दुर्गुण त्यागना एक कठिन कार्य है तथा इस ओर अग्रसर होने में वर्तमान के उस सँकरे से सँकरे कोण की ओर अग्रसर होना होता है, जिसका अंतिम बिंदु भूत तथा भविष्य का भी बिंदु है। इसीलिए प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनि नगर-सभ्यता से स्वयं

को दूर रखकर हिमालय, विंध्याचल जैसे एकांत स्थानों में जाकर, साधनारत होकर, वर्तमान से अपना संबंध न्यूनतम करते भविष्य एवं भूत से अधिकाधिक जोड़ते जाते थे। इनकी चेतना में सभी कालों का सह-अस्तित्व हो जाने के कारण ही वे सभी तंत्रों (भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक) के गहनतम रहस्यों को भी "करतलगत आमलक समाना" देखते थे।

परन्तु जन-सामान्य ऐसा नहीं कर सकता। यह एक कठिन कार्य है; जब कि जन-सामान्य सरलता एवं आराम ढूँढता है। मनुष्य ही क्यों, जड़ प्रकृति भी सरलता ढूँढती है। पानी सदैव ऊपर से नीचे की ओर स्वयं बह जाता है। ऊष्मा अधिक उष्म पिंड से न्यून ऊष्मा वाले पिंड की ओर प्रवाहित होती है। विद्युत्-ऊर्जा भी उच्च विभव क्षेत्र से निम्न विभव क्षेत्र की ओर स्वयं प्रवाहित होती है। मिट्टी के ढेले को यदि आप कुछ शक्ति लगा कर ऊपर की ओर उछालेंगे तो वह कुछ ही दूर जा कर पुनः नीचे की ओर स्वयं चला आएगा। फिर मिट्टी का पुतला "मानव", आराम खोजे तो आश्चर्य ही क्या!!

वह सो सकता है। प्रति रात्रि सोता है। कुछ व्यक्तियों की तो दिन में भी सोने की आदत होती है। स्वप्न सोते समय ही आते हैं। अतः स्वप्न आने का कारण एवं उनकी परिचालिका शक्ति की प्रकृति जानने हेतु, हमें "सोने की अवस्था" का कुछ सूक्ष्म अध्ययन करना होगा। सुषुप्ति अथवा नींद क्या है? यह जानने के लिए हमें उसके दृष्ट गुणधर्मों पर ध्यान केंद्रित करना होगा। सोते समय व्यक्ति कुछ काम नहीं कर सकता। उसका अंग अंग एवं सारा शरीर शिथिल पड़ा रहता है। हम कह सकते हैं वह केवल "अस्तित्व" रखता है। इस स्थिति में उसका संबंध वर्तमान से "न्यूतम" रह जाता है। तभी तो सोने से आराम (वर्तमान की थकावट से छुटकारा) तथा स्फूर्ति प्राप्त होती है। यहाँ तक कि सोते समय रोग (वर्तमान की एक घटना) भी कम हो जाता है।

स्वयं के बिना प्रयास किए ही, मनुष्य सोते समय, वर्तमान के सँकरे से सँकरे कोण की ओर अग्रसर होते होते, वर्तमान के अंतिम बिंदु एवं, भूत, वर्तमान, भविष्य के सह-अस्तित्व वाले "त्रि" बिंदु पर पहुँच जाता है। यह कोई कल्पना नहीं परन्तु एक सुनिगमित तथ्य है। तभी तो सोते समय उसमें कोई मानसिक ताप, क्रोध आदि एवं कोई मानसिक दाब अतृप्ति आदि नहीं दृष्टिगत होते। उसके मानसिक ताप, दाब निम्नतम रहते हैं तथा इस प्रकार उसकी चेतना को भूत, वर्तमान, भविष्य में से किसी भी क्षेत्र में विकसित होने एवं विचरण करने का अवसर प्रदान करते हैं।

इस स्थिति में उसकी सोई हुई (परन्तु जीवित) चेतना, भूत, वर्तमान अथवा भविष्य की किसी भी घटना को पकड़ने हेतु एक स्वरसधे रेडियो-सेट की तरह सक्षम रहती है। बस, इस स्थिति में चेतना पर किसी घटना विशेष का अंकित हो जाना ही "स्वप्न" है। वह किस घटना विशेष को पकड़ेगी, जीवन में कितने बार, किस किस काल की घटनाओं को पकड़ेगी अथवा एक बार भी किसी भी काल की घटनाओं को नहीं पकड़ पाएगी आदि सब बारीकियाँ, स्वप्न देखने वाले व्यक्ति-प्रति-व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती जाएंगी; क्योंकि यह सब, व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत चेतना के स्तर पर निर्भर करता है। यह स्तर, स्वयं उसके बौद्धिक, व्यक्तिगत एवं आत्मिक विकास पर निर्भर होता है; जो व्यक्ति-प्रति-व्यक्ति भिन्न भिन्न होते हैं। इसी कारण कोई व्यक्ति तो बहुत स्वप्न देखता है तो कोई अन्य जीवन भर में एक भी भविष्यसूचक अथवा वर्तमानसूचक स्वप्न नहीं देख पाता।

उपर्युक्त से एक अन्य प्रेक्षित तथ्य "यथार्थ घटनाओं की सूचना देने वाले स्वप्न, भूत, वर्तमान और भविष्य के बीच कोई व्यवधान नहीं मानते" का भी स्पष्टीकरण हो जाता है। सोते समय चेतना, "त्रि" बिंदु पर होती है। इस पर "अस्तित्व" की तीनों प्रावस्थाएं—भूत, वर्तमान एवं भविष्य—अनन्त काल तक

(शेष पृष्ठ ८ पर देखें)

हरित क्रान्ति

● शिवगोपाल मिश्र

"हरित क्रान्ति" शब्द से आप चौकें नहीं। "लाल क्रान्ति" से मिलती-जुलती होकर भी यह भिन्न प्रकार की क्रान्ति है। यह मजदूरों या कृषकों द्वारा प्रवर्तित होकर भी उससे सर्वथा भिन्न है। यह वैज्ञानिक क्रान्ति है। यह एक कृषि-क्रान्ति है। इसको लाने वाले हैं कृषि वैज्ञानिक और इसे फैलाने वाले हैं धरती- माता के सपूत—कृषक।

कहते हैं कि पेट की आग बड़ी भयानक होती है। वह साम्राज्यों को मिट्टी में मिला देती है। उसे जल-थल कुछ नहीं सूझता। यह हरित क्रान्ति बुभुक्षा या भूख को शमित करने वाली क्रान्ति है। यह उदरपोषण का सही और वैज्ञानिक उपाय है। यह भारतीय कृषिमत्ता की प्रथम झलक है। यह कृषकों के शौर्य की कहानी है और भारतीय वैज्ञानिकों के दुस्साहस की अनोखी घटना है। भारत ने दिखा दिया है कि वह राजनीतिक क्रान्ति ही नहीं, वैज्ञानिक क्रान्ति लाने में भी समर्थ है। यह क्रान्ति फसलों के अधिकाधिक उत्पादन करने में सक्षम होने के कारण ही "हरित क्रांति" कहलाई। आइये हम इसके विकास की कहानी सुनें।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अगले २०-३० वर्षों तक यदि जनसंख्या में कोई वृद्धि न हो तो खाद्य समस्या हल हो सकती है। किन्तु यह असम्भव है। प्रतिवर्ष जनसंख्या २.५ % की दर से बढ़ रही है अतः यदि अन्नोत्पादन में भी उसी के अनुरूप वृद्धि नहीं होती तो बड़ी भयावह स्थिति उत्पन्न हो जावेगी इस बात को ध्यान में रखते हुये भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने १९६२ ई० से यह निष्कर्ष निकाला कि सिंचित क्षेत्रों में अधिक उत्पादन में सक्षम गेहूँ की बौनी जातियों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय। फलतः राकफेलर फाउन्डेशन से मेक्सिको में विकसित बौने गेहूँ की जातियों को भेजने के लिये प्रार्थना की गई। सन् १९६३ ई० में ड.० एन० ई० बार्लोग ने ४ बौनी जातियों के बीजों की १०० किलोग्राम मात्रा प्रेषित की। साथ ही ६१३ होनहार जातियों के थोड़े-थोड़े बीज नमूने के रूप में भेजे। ये बीज पहले दिल्ली, लुधियाना, पूसा, कानपुर तथा पंतनगर में बोये गये। १९६४ ई० में यह देखा गया कि लर्मा रोजो तथा सोनरा ६४—इन दो जातियों के गेहूँ से ४४ मन प्रति एकड़ से भी अधिक की उपज प्राप्त हुई। उसी वर्ष नीलगिरि पहाड़ी क्षेत्र में बीजों का उत्पादन किया गया और अगली रबी फसल में १५५ स्थानों में बौनी जाति के गेहूँ के परीक्षण किये गये। विश्वस्त होने पर १९६५ ई० में देश भर में बुवाई के लिये लर्मा रोजो तथा सोनरा ६४ की संस्तुति की गई। पहली ही बार इतना अधिक उत्पादन हुआ कि इससे प्रोत्साहित होकर सरकार ने १९६६ ई०में १८ हजार टन मेक्सिकन गेहूँ के बीजों का आयात किया जिसे यहाँ पर १० लाख एकड़ में बोया गया। १९६७ में ५० लाख एकड़ में बौनी जाति का गेहूँ बोया गया। इसके पूर्व इतनी अधिक तेजी से किसी भी नवीन जाति के गेहूँ का प्रचार भारत में नहीं हुआ था। इस वर्ष १२० लाख टन उत्पादन हुआ। १९६७ में तो ११० लाख टन गेहूँ की उपज हुई।

यह है भारतीय वैज्ञानिकों की परिश्रम का एकांगी चित्र। धान की पैदावार में भी इसी प्रकार की वृद्धि हुई है। ताइचुङ किस्मों तथा आई० आर०-८ के द्वारा

आशातीत सफलता मिली है। न केवल भारत में ही वरन् इन नवीन जातियों के द्वारा पाकिस्तान तथा फिलिप्पाइन में भी उपजें बढ़ी हैं।

ऐसा अनुमान है कि १९७५-७६ तक भारत को १५०० लाख टन खाद्यान्नों की आवश्यकता होगी। १९८५ तक यह मात्रा बढ़ कर २००० लाख टन हो जावेगी। इस समय भारत ९५० लाख टन खाद्यान्न उत्पादन कर रहा है। अतः १९८५ तक उसे अपने खाद्योत्पादन को दुगुना करना होगा। किन्तु प्रश्न है कि क्या इतनी वृद्धि सम्भव है? उत्तर है क्यों नहीं।

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये भारत में किसानों को दो बातें करनी होंगी: -

१. जलवायु के अनुकूल नवीन जातियों के उन्नत बीजों का प्रयोग।

२. अधिकाधिक उर्वरकों एवं खादों का प्रयोग।

शायद किसानों को स्मरण होगा कि १९५१ तक भारतवर्ष में गेरुई निरोधी गेहूँ की किस्मों का प्रभाव था। धीरे-धीरे "नये पूसा" नाम की कई किस्में विकसित की गईं। ये ऊँची किस्में थीं अर्थात् गेहूँ की इन जातियों के पौदे काफी ऊँचे होते थे फलतः अधिक खाद देने पर ये भूमि में लोट जाते थे। इससे समस्त प्रयासों के बावजूद भी उपज में आशातीत वृद्धि नहीं की जा सकी। किन्तु बौनी जातियों के प्रचार एवं विकास के द्वारा उपज को आशा से भी परे बढ़ाया जा सका है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे कृषकों को समझना है।

बौनी जाति न केवल अपनी कम ऊँचाई के कारण जमीन में लोटती नहीं वरन् इससे अनेक शाखें निकलती हैं, और अधिक खाद डालने पर इस पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। साथ ही यह जाति अत्यधिक जाड़े के दिनों में भी उगाई जा सकती है और १०० दिनों में तैयार हो जाती है। बौनी जाति की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है देशी जाति के गेहूँ की अपेक्षा यह अधिक शीत सहन कर सकती है। इसकी बुवाई के समय निम्न ताप (जाड़ा) रहे तो कोई हानि नहीं होती। हाँ पानी का साधन होना आवश्यक है। फलतः शुष्क क्षेत्रों में जहाँ वर्षा के अभाव में गेहूँ की फसल नहीं हो पाती थी, या देर से बोने के कारण उग नहीं पाती थी, वहाँ सिंचाई के साधन जुटा कर बौनी जाति के गेहूँ को १४ नवम्बर से १४ दिसम्बर या बाद में भी बोया जा सकता है।

बौनी जाति के गेहुँओं के लिये सर्वाधिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है अतः उन मिट्टियों में भी ये जातियाँ लाभ सहित उगाई जा सकती हैं जिनका उर्वरता-स्तर अत्यन्त निम्न है। यूरिया तथा डाइ अमोनियम फास्फेट उर्वरकों का देश में उत्पादन होने तथा इन्हीं दो उर्वरकों का इन गेहुँओं पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ने के कारण किसानों को यथेष्ठ लाभ प्राप्त हो सका है।

पिछले दो-तीन वर्षों तक लगातार सूखा पड़ने के कारण कृषकों में सिंचाई के लिये जल उपलब्ध करने की दशा में जो जागरूकता आई है उससे भी गेहूँ की बौनी जातियों की सफलता में सहायता पहुँची है। सरकार की ओर से उर्वरक वितरण में दी गई सुविधाओं ने भी कृषकों को प्रोत्साहित किया है। अब किसान यह समझ चुका है कि उन्नत बीज, खाद और पानी—इन तीनों का जुगाड़ कर लेने पर दुगुनी-तिगुनी पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

अब उत्तरी भारत का किसान गेहूँ की ४० मन प्रति एकड़ पैदावार प्राप्त करता है। वह गेहूँ का ही इस्तेमाल करता है और प्रचुर गेहूँ बेचता है। उसके लिये तो जैसे मिट्टी ने सोना उगल दिया है। वह सचेष्ट है और भविष्य में वैज्ञानिक क्षेत्र की किसी भी क्रांति को वह हरित क्रांति से ला मिला देना चाहता है।

क्या ध्वनि में अपार शक्ति निहित है ?

श्याम मनोहर व्यास

ध्वनि भी भौतिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा का एक रूप है। ध्वनि की लहरों की तुलना शान्त पानी में पत्थर फेंकने पर उत्पन्न तरंगों से की जा सकती है। अन्तर बस इतना है कि पानी की तरंगें केवल सतह पर ही रहती हैं, परन्तु ध्वनि की तरंगें सभी दिशाओं में गोलाकार रूप से बहती हैं।

एक सेकण्ड में ध्वनि जितने कम्पन करती है वह उसकी कम्पन-संख्या कहलाती है। हमारे कानों की रचना ऐसी है कि वे २० कम्पन-संख्या से कम और बीस हजार से अधिक कम्पन-संख्या वाली ध्वनि नहीं सुन सकते। हम अक्सर अपने जीवन में एक हजार से पाँच हजार कम्पन-संख्या वाली ध्वनि सुनते हैं।

पशु-पक्षियों की बात पृथक है। चमगादड़ बीस हजार से अधिक कम्पन-संख्या वाली आवाज सुन सकता है। अनेक पशु-पक्षियों की श्रवण-शक्ति मनुष्य की श्रवण-शक्ति से अधिक तेज होती है। कुत्ते में भी सुनने की शक्ति काफी तेज होती है। कुछ प्राणी पेट, पैर या शरीर के किसी अन्य अंग द्वारा सुनते हैं।

साँप के कान नहीं होते;मछली के भी कान नहीं होते हैं। ध्वनि की लहरें जब इनके शरीर के स्पर्श करती हैं तो उन्हें ध्वनि का भान होता है।

पृथ्वी के किसी भी स्थान पर नीरव शान्ति नहीं है। समुद्र तल में भी जलचर प्राणियों का शोर सुनाई पड़ता है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार ध्वनि की मात्रा को भी नापा जा सकता है।

(१) हम सूक्ष्म से सूक्ष्म जिस ध्वनि को सुन सकते हैं उसे वैज्ञानिक शब्दों में शून्य डेसिबल कहते हैं।

(२) पेड़ के पत्ते खड़खड़ा रहे हों, या दो आदमी आपस में धीरे-धीरे काना फूसी कर रहे हों तो यह आवाज दस से बीस डेसिबल तक की होती है।

(३) १५० डेसिबल की ध्वनि से हमारे कान के परदे फट सकते हैं। ५० डेसिबल तक की ध्वनियाँ हमें प्रिय लगती हैं। इससे ऊपर ध्वनि कर्कश स्वर का रूप धारण कर लेती हैं।

फिर भी मनुष्य व्यवसाय और आदत के अनुसार अरुचिकर ध्वनियों को भी सुनता है चाहे उनसे कानों को हानि भी पहुँचती हो। रेल्वे लाइन के पास रहने वालों को ७५ से १०० और हवाई अड्डे के पास रहने वालों को १२५ से १४० डेसिबल की जेट विमान की आवाज सहन करनी पड़ती है।

भीड़ भरे बाजार में ६०-७५ डेसिबल का शोर होता है। पास-पड़ोस का शोर भी काफी डेसिबल की ध्वनि लिये हुये होता है।

वाद्य यन्त्रों का स्वर भी कानों को प्रभावित करता है। बायलर बजाने वाले दिन प्रति दिन बहरे होते जाते हैं। बम विस्फोट की ध्वनि भी कानों को बहरा बनाती है भारत-पाक युद्ध के दौरान कई व्यक्तियों के बम विस्फोट के कारण कान बहरे हो गये थे।

ध्वनि की तरंगों का शरीर पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

प्रयोग के रूप में चूहों को जेट विमान के एन्जिन की आवाज के पास रखा गया। ध्वनि की तरंगों के इनके शरीर से टकराने पर उनसे पैदा हुई गर्मी के कारण ये प्राणी जल कर मर गये। मानव-शरीर भी ध्वनि से उत्पन्न इस गर्मी का अनुभव करता है। इस ताप से स्नायु शिथिल पड़ जाते हैं और कानों तथा आँखों को गम्भीर नुकसान होता है।

इस हानि का तत्काल पता नहीं चलता। ५० डेसिबल से अधिक आवाज के वातावरण में काम करने वाला व्यक्ति बेचैनी अनुभव करता है। उसके रक्त का दाब भी बढ़ जाता है।

शान्त वातावरण में व्यक्ति इसकी अपेक्षा डेढ़ गुना काम अधिक कर सकता है।

तीव्र ध्वनि के कारण सिर दर्द की बीमारी भी हो जाती है।

अब वैज्ञानिक एक सेकन्ड में ५ करोड़ कम्पन वाली ध्वनि पैदा करने में समर्थ हो गये हैं। ध्वनि के इस क्षेत्र में यदि रुई-कागज रखा जाय तो अश्रव्य ध्वनि के उपयोग से वह शीघ्र भस्म हो जायगा।

वैज्ञानिकों ने अश्रव्य ध्वनि का भी उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है।

अधिक डेसिबल वाली ध्वनि द्वारा दवा या खाद्य-पदार्थों को हानि पहुँचाने वाले सूक्ष्मजीवाणुओं का नाश किया जा सकता है।

दूध को कीटाणुरहित किया जा सकता है। ध्वनि का प्रयोग धातुओं का मिश्रण बनाने में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अश्रव्य ध्वनि द्वारा पारे तथा पानी को भी मिलाया जा सकता है।

इससे वायु को शुद्ध किया जा सकता है और कपड़े सुखाये जा सकते हैं।

युद्ध के दौरान इसका उपयोग कर शत्रु सेना को अशक्त बनाया जा सकता है। तानसेन की मोहक संगीत लहरी भी ध्वनि की तरंगों का ही परिणाम था।

आश्चर्य नहीं यदि ध्वनि विज्ञान मंत्र बल की शक्ति को व्यवहारिक रूप से सत्य सिद्ध कर दे।

[पृष्ठ ४ का शेषांश]

सह-अस्तित्व रखती हैं। अतः उस स्थिति में तीनों में व्यवधान है ही नहीं। चेतना स्वयं की क्षमता एवं प्रवृत्ति के अनुसार, इन तीनों में से किसी की भी घटनाओं को पकड़ लेती है।

सोते समय मनुष्य 'केवल अस्तित्व" की अवस्था में रहता है अथवा भूत, वर्तमान एवं भविष्य, अस्तित्व की इन तीनों प्रावस्थाओं के साम्य (Equilibrium) में स्थित रहता है। परन्तु "सुषुप्ति" वास्तविक साम्य नहीं है, वरन् "आभासी साम्य" (Pseudo Equilibrium) है। तभी तो तनिक से बाह्य विक्षोभ से वह नष्ट हो जाता है एवं व्यक्ति अस्तित्व के केवल एक क्षेत्र (वर्तमान) से पूर्णतः संबद्ध (जाग कर) हो जाता है। यही कारण है कि वह स्वप्न में भूत, वर्तमान, तथा भविष्य की सभी घटनाओं से अवगत नहीं हो सकता।

*

ये विचित्र खाद्य रुचियाँ

संकलित

शायद आप लोगों में से अधिकांश ने यह सुन रखा होगा कि गाँवों में घूमने वाली "कञ्जड़" नामक जाति विचित्र प्रकार के पदार्थों को अपनी खाद्य सामग्री के रूप में प्रयुक्त करती है। पहले-पहल उनकी खाद्य रुचियों को सुन कर आश्चर्य हो सकता है किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि वे विषखोपरे, गोजर, छिपकली, साँप आदि को अपना भक्ष्य बनाते हैं। ये ऐसे खाद्य पदार्थ है जिन्हें समाज में निकृष्ट समझा जाता है और उनके खाने वालों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

यद्यपि एक ही देश में विचित्र खाद्य पदार्थों के प्रयुक्त किये जाने के उदाहरण कम हो सकते हैं किन्तु यदि समस्त संसार की विभिन्न जातियों की ऐसी विचित्र खाद्य रुचियों की सूची बनाई जाय तो अत्यन्त रोचक परिणाम प्राप्त होते हैं। लीजिये ऐसी ही सूची आपके मनोरंजनार्थ प्रस्तुत है।

इस विचित्र खाद्यों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :—

(१) पशु (२) पक्षी तथा पतंगे (३) निर्जीव पदार्थ।

आपने शिकारियों द्वारा अजगर साँप, मगर आदि के मारे जाने का वर्णन पढ़ा होगा किन्तु यह कि सर्प जैसे विषैले प्राणी को खाद्यपदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है अत्यन्त कुतूहलपूर्ण है। प्रश्न उठता है कि क्या खाने वाला मरता नहीं? आखिर ऐसे खाद्य पदार्थों की क्या उपयोगिता हो सकती है।

पशुओं में जिन प्राणियों के मांस का प्रयोग बहुतायत से होता है वे हैं मेढक, कुत्ता, बन्दर, मगर, छिपकली तथा साँप। पक्षियों तथा पतंगों में गुबरैले, टिड्डी, टिड्डे आदि आते हैं। निर्जीव पदार्थों में पत्थर, शीशे के टुकड़े तथा धातु की कीलें।

मेढक—न्यूसाउथ वेल्स में अमरीकी बुल मेढक से रुचिकर व्यंजन बनाये जाते हैं और वहाँ के वासियों का विश्वास है कि मेढक में पर्याप्त पोषण-तत्व पाये जाते हैं। मेढक खाने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। कनाडा के मांट्रियल शहर में ५ लाख डालर के मेढक प्रतिवर्ष खाद्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसा विश्वास है कि हरा मेढक अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। कहा जाता है कि सर्वप्रथम इटली के पादरियों ने मेढकों के खाने का प्रचार किया। इटली तथा स्विटजरलैंड के लाखों किसान आज भी मेंढक पकड़-पकड़ कर बेचते हैं। मेढक पकड़ने के लिये रात में तालाबों के किनारे रंग-बिरंगा प्रकाश किया जाता है। आस्ट्रेलिया में मेढक का व्यापार करने वाली बस्तियाँ की बस्तियाँ हैं।

ऐसा समाचार है कि हमारे देश के दक्षिणी भागों से तमाम मेढक पकड़ कर फ्रांस भेजे जाते हैं जहाँ उनकी टाँगों से विशिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं जिनका पर्याप्त सम्मान है।

कुत्ता—हमारे देश में कुत्ते के मांस को कोई नहीं खाता किन्तु विश्व के अनेक स्थानों में छोटे-छोटे पिल्लों के मांस को प्राथमिकता प्राप्त है।

बन्दर—हमारे देश में बन्दर अत्यंत पूज्य हैं। वह भले ही हानि पहुँचावे किन्तु कोई भी मार करके इसका मांस नहीं खाता। दक्षिणी अमरीका में बंदर के मांस को अत्यंत स्वादिष्ट एवं बलयुक्त माना है और यह वहाँ का रुचिपूर्ण भोज्य पदार्थ है।

मगर—अफ्रीका के लोग मगर के मांस को खाते हैं। भारत में केवट (धीवर जाति के लोग) नदियों से मगर का शिकार करते हैं और उसे काट-काट कर खाते रहते हैं। कछुआ को भी खाया जाता है।

छिपकली—कितनी घृणित होती है छिपकली। साथ ही विषैली भी। यदि खाने में छिपकली गिर पड़े या इसका मूत्र मिल जाय तो उस खाने को फेंक दिया जाता है किन्तु बर्मा में छिपकली को चाव से खाया जाता है। कछाड़ लोग छिपकली का अचार बनाते हैं।

साँप—जापान तथा हांगकांग में सभी प्रकार के सर्पों को खाया जाता है। इनका मांस स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होने के साथ ही गठिया रोग को दूर करने वाला बताया जाता है। केवल हांगकांग में प्रत्येक ऋतु में १ लाख सर्प खाने के काम आते हैं। ये सर्प चीन, फारमोसा तथा श्याम देश से आयात किये जाते हैं। जापान में अनेक "सर्पशालायें" हैं जहाँ प्रति वर्ष लाखों सर्प बेचे जाते हैं। कालिया तथा करैत साँप जो अत्यन्त विषैले माने जाते हैं वे भी खाने के काम आते हैं। जापान में तो साँप को उबाल कर सुखा लिया जाता है और बुकनी बना ली जाती है। यह बुकनी गठिया रोग की रामबाण औषधि बताई जाती है।

पक्षियाँ तथा पतंगे—हमारे देश में तथा अन्यत्र कौवा तथा गीध को छोड़ कर सभी पक्षियों का शिकार खाने के उद्देश्य से किया जाता है। बाज, बत्तख, कबूतर, लवे, बटेर, तोते—इन पक्षियो को विशेष रूप से खाया जाता है। किन्तु गुबरैले, टिड्डे आदि भी भोज्य पदार्थ हो सकते हैं शायद यह सबों को विश्वासनीय न प्रतीत हो। किन्तु यह तथ्य है कि बर्मा में वर्षा के दिनों में जंगलों में रहने वाली जातियाँ गुबरैलों को पकड़-पकड़ कर गर्म जल में डालती हैं और फिर नमक लगाकर रुचि से उन्हें खाती हैं। हमारे यहाँ गुबरैला घृणित माना जाता है।

अमरीकी इंडियन टिड्डियों के झुन्ड के झुन्ड पकड़ कर उन्हें उबालकर सुखा लेते हैं और फिर तल कर खाते हैं। अरबवासी टिड्डों को पकड़ कर सुखाते हैं और पीस कर आटा बनाते हैं। जापान की स्वर-सुन्दरियाँ जीते टिड्डों को निगल जाती हैं जिससे उनका स्वर सुरीला हो।

यदि यह मान लिया जाय कि मांसाहार की प्रवृत्ति के कारण तथा इन भोज्य पदार्थों में पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण इनका उपयोग होता है तो यह कहाँ तक तर्कसंगत है कि निर्जीव पदार्थों को भी भोजन के रूप में प्रयुक्त किया जाय? वास्तव में यह कुटेव है जो शरीर के भीतर किसी विशेष तत्व की न्यूनता होने के कारण विकसित होती है।

ऐसी सूचना है कि राजस्थान में एक गड़रिया का बालक नित्यप्रति १ पाव पत्थर के टुकड़े खाता था। बहुत दिनों के बाद उसके उदर में शूल उठने लगा। इसी प्रकार त्रिनिदाद के एक भारतीयवासी की लत थी कि वह नित्यप्रति काँच के टुकड़े तथा लोहे ताँबे की कीलें निगलता रहता था। बाद में उसके उदर में पीड़ा उत्पन्न हुई और आपरेशन किया गया तो कई सौ ग्राम कीलें तथा टुकड़े निकले। ये विचित्र प्रवृत्तियाँ हैं।

उपर्युक्त से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य इतना विकास कर लेने के बाद पाशविक वृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सकता। उसका स्वाद उसे विभिन्न पदार्थों को खाने के लिये प्रेरित करता है। किंतु इसका एक पहलू लाभप्रद है—वह है अन्न समस्या का समाधान—कि इन स्रोतों से भी भूख मिटाई जा सकती है।

दीर्घावस्था के रहस्य

संकलित

मनुष्य को कितने वर्षों तक जीवित रहना चाहिए, इस विषय में विज्ञान मौन है किन्तु उसे यह पता है कि कुछ पशु तथा पौदे अत्यन्त दीर्घजीवी हैं। उदाहरणार्थ कछुवा ३०० वर्षों तक, ह्वेल मछली ४०० वर्षों तक तथा कुछ पौदे भी सैकड़ों वर्ष जीवित रहते हैं। ऐसा क्यों है ? क्या मनुष्य दीर्घजीवी नहीं बन सकता ?

भारतीय मनीषियों ने दीर्घायु प्राप्त करने की कामना ही नहीं की वरन् जी करके दिखला भी दिया है। भारतीय विचारकों के अनुसार ब्रह्मचर्य के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ब्रह्मचर्य ऐसा संयमित जीवन है जिसके विषय में भारतीय विचारधारा अत्यन्त सुस्पष्ट है। जब तब ऋषियों-मुनियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर लोग चलते रहे तब तक वे दीर्घजीवी होते रहे किन्तु विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप देश में विलासिता का उदय हुआ और अकबर सम्राट के काल में औसत आयु काफी घट गई।

इधर कुछ वर्षों से न केवल भारत में वरन् अमरीका तथा अन्यत्र भी "योग" के ऊपर काफी बल दिया जाने लगा है और उन अनेक रोगों के समझने का प्रयास किया जा रहा है जो मनुष्य को दीर्घजीवी होने में बाधक हैं। रूस में वृद्धावस्था तथा दीर्घायु के सम्बन्ध में अनेकानेक शोधें हो रही हैं। वहाँ पर जनसंख्या का एक काफी बड़ा अंश दीर्घजीवी है। वैज्ञानिकों ने ऐसे अनेक व्यक्तियों से उनके अनुभवों एवं उनकी जीवन चर्याओं का संकलन किया है जिसके आधार पर उन्होंने महत्वपूर्ण बातें बतलाई हैं। दीर्घायु के जिन मूलभूत रहस्यों का उन्होंने उद्घाटन किया है उनमें से प्रमुख हैं संतुलित भोजन, धूम्रपान न करना, शराब न पीना। इनके अतिरिक्त कार्य तथा विश्राम में समन्वय, शारीरिक स्नायविक नियंत्रण तथा पासपडोस से मृदुता का व्यवहार को भी दीर्घायु के लिये आवश्यक बताया गया है।

यह सर्वविदित है कि मानसिक परिश्रम करने वालों को नाना प्रकार के रोग होते हैं किन्तु जो लोग मानसिक परिश्रम के साथ शारीरिक परिश्रम का तालमेल बैठा सकते हैं दीर्घजीवी होते हैं। उदाहरणार्थ रूस में ६० वर्ष से ७५ वर्ष की आयु वाले ४०० वैज्ञानिकों का परीक्षण करके यह ज्ञात किया गया कि इतनी उम्र के बाद भी वे सक्रिय हैं क्योंकि वे नित्यप्रति १० घण्टे से अधिक कार्य नहीं करते, रात्रि में बिल्कुल कार्य नहीं करते और ७ घंटे से कम नित्यप्रति नहीं सोते। अतः अधिक घंटे तक कार्य करते रहना, रात्रि में भी कार्य करना तथा अपर्याप्त निद्रा—ये ही अल्पजीवी होने के लिये उत्तरदायी हैं। यदि मानसिक परिश्रम करने वाले लोग नित्यप्रति शारीरिक व्यायाम करते रहें, सक्रिय विश्रम लें और कार्य तथा विश्राम के बीच समन्वय स्थापित करते रहें तो वे दीर्घजीवी बन सकते हैं।

स्पष्ट है कि दीर्घजीवी बनने के लिये किसी औषधि का उपचार न बताकर नैत्यिक जीवन को संयमित बनाने पर बल दिया गया है। वास्तव में यही प्राकृतिक जीवन है। विश्व के महान विचारकों में से दीर्घायु प्राप्त करने वाले पुरुष पैदल चलने, सवारी करने या घूमने पर बल देते थे। उदाहरणार्थ गेटे का कथन है कि घूमते समय ही उनमें उत्तम विचारों का उदय हुआ। टालस्टाय को ८१ वर्ष की आयु में भी मीलों घोड़े पर चढ़े-चढ़े घूमना अथवा पैदल टहलना प्रिय था।

दीर्घायु के प्रबल शत्रु हैं रोग। ये रोग हृदय या यकृत से सम्बन्धित होते हैं। ये रोग शारीरिक चया-

पचय क्रियाओं के शिथिल पड़ने के कारण आ घेरते हैं अतः यदि शरीर को सक्रिय रखा जाय तो रोगों को अपने पास फटकने नहीं दिया जा सकता।

कहते हैं कि जीवन कार्यशीलता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति की आयु उसकी स्वयं की अर्जित सम्पत्ति है। आर्थिक सम्पन्नता, कार्य की मात्रा, व्यायाम, घरेलू आदतें-ये सभी मिलकर आयु कह निर्धारण करते हैं। जो जितना ही तत्पर रहता है व उतना ही दीर्घजीवी हो सकता है।

जीवन एवं क्रियाशीलता के पारस्परिक सम्बन्ध को दिखाने के लिये एक महत्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख आवश्यक है। प्रयोगशाला में कुछ चूहे पाले गये जिनमें से आधों को एक ऊँचे लट्ठे पर बारम्बार चढ़ने-उतरने के लिये प्रेरित किया गया और शेष जमीन पर रखे गये। कुछ दिनों के पश्चात् सभी चूहों को घातक विकिरणों से प्रभावित किया गया। परिणाम-स्वरूप जो चूहे लट्ठे पर चढ़ने-उतरने का कार्य कर रहे थे वे तो बच गये किन्तु जो कार्यशील नहीं थे उन पर बुरा प्रभाव पड़ा। सारांश यह कि सक्रिय जीवन मनुष्य को दीर्घायु बना सकता है। इसीलिये यह कहना उचित होगा कि दीर्घायु स्वयं नहीं प्राप्त होती वरन् उसे अर्जित करना पड़ता है। और इसका एकमात्र उपाय है-शारीरिक परिश्रम। शिक्षा संस्थाओं में खेलों के महत्व को इसी से आँका जा सकता है। जो विद्यार्थी इस विचारधारा के हैं कि खेलने से समय का अपव्यय होता है वे नितान्त अंधकार में हैं। उन्हें आज से ही व्यायाम अथवा खेल प्रारम्भ कर देना चाहिए।

मानसिक कार्य करने वालों के लिये स्वच्छ वायु में घूमना अत्यन्त आवश्यक है। इससे अधिकाधिक आक्सीजन ग्रहण होती है और शारीरिक क्रियायें ठीक से चालू रहती हैं।

यहीं पर हमें इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि कुछ लोग तरुणावस्था में ही क्यों मर जाते हैं। इसका मूल कारण यही हो सकता है कि उन्होंने अवश्य ही मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम के मध्य संतुलन नहीं रखा होगा। उन्होंने इस शरीर रूपी बैटरी को आवेशित करते रहना जाना ही नहीं। यह अज्ञान के कारण होता है अथवा मानसिक कार्य को शारीरिक कार्य की अपेक्षा महत्ता प्रदान करने के कारण होता है।

वह समय आ गया है जब हम दीर्घजीवी होने के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से विचार करें। रोगों के कारण मृत्यु पर विजय प्राप्त करके जीवन की औसत अवधि को बढ़ा दिया गया है। भविष्य का मनुष्य और अधिक वर्षों तक जीवित रहेगा अतः यदि वह दीर्घजीवी होने की कला को सीख ले तो सुखमय जीवन बिता सकेगा।

रूस में दीर्घजीवी होने के नुस्खे बताये गये हैं। ये आहार से सम्बन्धित हैं अतः अनुकरणीय हैं :—

१. नित्यप्रति के भोजन में वसा तथा कार्बोहाइड्रेट की मात्रा घटा दी जाय किन्तु प्रोटीन की मात्रा को स्थिर रखा जाय। प्रोटीन की आवश्यक मात्रा ८०-९० ग्राम प्रति दिन है।

२. भोजन में लवण की मात्रा पर नियन्त्रण रखा जाय। किसी भी दशा में २ से लेकर ४ ग्राम से अधिक लवण न खाया जाय। जल तथा लवण की मात्राओं के मध्य एक निश्चित अनुपात आवश्यक है।

पौधों का परीक्षण : भूमि की उर्वरता

● नरेन्द्र त्रिपाठी

पौधों में कुछ तत्वों की कमी या अधिकता जानने के लिये उनकी रासायनिक जांच की जाती है। इसके लिये किसी कृषि रसायनज्ञ की ही आवश्यकता नहीं होती, किसान स्वयं खेत में ही यह कार्य कर सकते हैं, और किसी तत्व की कमी ज्ञात होने पर उनकी पूर्ति विभिन्न उर्वरकों द्वारा करके अपनी पैदावार बढ़ा सकते हैं।

हम जानते हैं कि पौधों के समुचित विकास एवं फसलोत्पादन के लिये १६ तत्वों की आवश्यकता होती हैं, जिसमें से कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन, ये तीन तत्व वायु अथवा जल से प्राप्त होते हैं, शेष १३ तत्वों को पौधे भूमि से प्राप्त करते हैं। इनमें से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैलसियम मैगनीशियम एवं गंधक ये ६ तत्व पौधों द्वारा साधारणतया अधिक मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं, इसलिये इन्हें मुख्य आवश्यक तत्व कहते हैं। शेष सात तत्व लोहा (आयरन), मैंगनीज, यशद, ताम्र, बोरान, मालीब्डेनम एव क्लोरीन पौधों द्वारा कम मात्रा में लिये जाते हैं, इसलिये इन्हें सूक्ष्म मात्रिक तत्व (Micro nutrients) कहते हैं।

मुख्य आवश्यक तत्वों में से भी प्रथम तीन तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम पौधों द्वारा अनुपाततः अधिक मात्रा में ग्रहीत होते हैं। यही कारण है कि विश्व की अधिकांश मिट्टियों में इनकी कमी पाई जाती है और इन्हें ही मुख्य तत्व कहा जाता है। कैल्सियम, मैगनीशियम तथा गंधक का कुछ कम महत्व है, अतः इन्हें गौण आवश्यक तत्व कहते हैं। प्रयोगों द्वारा यह पता चला है कि अपने देश की अधिकांश मिट्टियों में गंधक की भी कमी है।

पौधे इन तेरह तत्वों को भूमि से शोषित करके अपनी वृद्धि के उपयोग में लाते हैं। यह एक आम धारणा है कि यदि किसी तत्व की भूमि में अधिकता है तो वह निश्चित रूप से पौधे द्वारा भी अधिक मात्रा में शोषित होगा और उस तत्व की मात्रा पौधे में सामान्य स्तर से अधिक रहेगी। विशेष मृदाओं में जिनमें कुछ सूक्ष्ममात्रिक तत्व अधिक मात्रा में उपलब्ध रहते हैं, पौधों द्वारा अधिकता से शोषित कर लिये जाने के कारण उनमें विषालुता (Toxicity) उत्पन्न हो जाती है। इसे ज्ञात करने के लिये मृदा का रासायनिक विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। किन्तु कभी-कभी कोई तत्व मृदा में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है, फिर भी कुछ विशेष दशाओं के कारण पौधे उसे शोषित नहीं कर पाते और फलस्वरूप उसकी कमी के कारण पौधों में बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं या वृद्धि रुक जाती है। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि पौधे का रासायनिक विश्लेषण किया जाय तथा यह देखा जाय कि उसमें किस तत्व की कमी है जिसके कारण पौधे की वृद्धि रुक गयी है।

मृदा वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि प्रत्येक उर्वर भूमि में पौधों के लिये आवश्यक सभी तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हों और उसमें पैदावार भी अधिक हो, यह आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि वे सभी आवश्यक तत्व भूमि की विशेष दशाओं के कारण पौधों को प्राप्त नहीं हो पाते। इस पौधों का रासायनिक विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

तत्वों की मात्रायें—पौधों में विभिन्न तत्वों की ठीक-ठीक मात्रायें ज्ञात करने के लिये अनेकों प्रयोग-शालाओं एवं विशेषज्ञों की जरूरत पड़ेगी जो बहुत ही खर्चीली है, इसलिये भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नयी दिल्ली ने एक नयी पद्धति निकाली है, जिसे (Rapid tissue te·ting) त्वरित टिशू परीक्षण कहते है,जिससे किसान कुछ आवश्यक तत्वों जैसे—नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम की पौधे में उपस्थित मात्रा का पता लगा सकता है।

भूमि से नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोंटाश को पौधे इनके अकार्बनिक रूपों में जैसे क्रमशः नाइट्रेट, फास्फोरस एवं पोटैशियम आयन के रूप में लेते हैं जो उनके कोषा रसों में एकत्र होता है। और फिर वह विभिन्न जैविक क्रियाओं में काम आता है। कोषा रस में उपस्थित इन नाइट्रेट, फास्फेट एवं पोटैश की मात्रा से ही यह अनुमान लगाया जाता है कि पौधे में किस तत्व की न्यूनता और किसकी अधिकता है, क्योंकि ये तत्व जितनी ही अधिक मात्रा में होंगे अभिकर्मकों के साथ उतना ही गहरा रंग प्रदान करेंगे। टिशू परीक्षण के समय पौधे की जाति, आयु एवं परीक्षण किये जाने वाले अंग का ध्यान रखना चाहिये। प्रायः परीक्षण के लिये पत्तियों के डंठल या तने को ही चुना जाता है, क्योंकि ये तत्व बहुतायत से उन स्थानों पर पाये जाते हैं।

आइये पहले नाइट्रोजन का परीक्षण करें : -

नाइट्रोजन का परीक्षण—वे सभी फसलें जो भूमि से नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में ग्रहण करती हैं, जैसे गेहूँ, जौ, चना, मटर, ज्वार, बाजरा, गन्ना आदि (धान को छोड़कर) इस विधि से जाँची जा सकती हैं। इसके लिये दो प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं :—

(१) डाई-फिनाइल एमीन द्वारा परीक्षण—यह बहुत ही सरल विधि है। नाइट्रोजन परीक्षण करने के लिये बिना पूरे पौधे को नुकसान पहुँचाये पत्ती के निचले हिस्से के पास एक तेज धार वाले चाकू से लंबा चीरा लगाते हैं, और उस पर दो बूँद अभिकर्मक (डाई फिनाइल एमीन) डालते हैं। लगभग ३० सेकेण्ड बाद नीला रंग उत्पन्न होता है। नाइट्रेट की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, यह रंग उतना ही गहरा होगा।

इसी प्रकार कमजोर तने वाले पौधे जैसे गेहूँ, जौ आदि में परीक्षण के लिये जमीन से थोड़ा ऊपर तने की गाँठ के पास चाकू से एक तिरछा चीरा लगाते हैं, जिससे ऊपर का तना कट कर गिर जाता है। इस कटी गाँठ पर २-३ बूँद नाइट्रोजन अभिकर्मक डालने पर नीला रंग उत्पन्न होता है। उत्पन्न हुये रंग से नाइट्रोजन की मात्रा निम्न तालिका से ज्ञात की जा सकती है : -

कोई रंग नहीं—	पौधे में नाइट्रोजन की बहुत कमी है इसलिये नाइट्रोजन युक्त खादों को खेत में देना अत्यन्त आवश्यक है।
हल्का नीला—	पौधे में नाइट्रोजन की कमी है। इसलिये खाद देना आवश्यक है।
मध्यम नीला -	पौधे में नाइट्रोजन की कुछ कमी है। इसमें कम उर्वरक डालने पर भी उपज में वृद्धि होगी।
गाढ़ा नीला—	पौधे में नाइट्रोजन पर्याप्त है, अतः इसमें उर्वरक डालने की आवश्यकता नहीं है।

(२) ब्रे की परिवर्तित विधि द्वारा नाइट्रेट परीक्षण—इस विधि द्वारा परीक्षण के लिये पौधों के तंतुओं को पहले छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं, फिर इन कटे तंतुओं में से लगभग १।४ चम्मच एक परख-नली में लेकर उसमें उतना ही अभिकर्मक नं० १ और लगभग १० मिली० अभिकर्मक नं० २ डालकर लगभग

एक मिनट तक हिलाते हैं। फिर उसमें अभिकर्मक नं० ३ की छः बूँदें डालकर अच्छी प्रकार हिलाकर रख देते हैं, और उसमें उत्पन्न हुये रंग की तुलना प्रामाणिक द्रव के रंग से करते हैं, और नाइट्रोजन की मात्रा उपर्युक्त तालिका से ज्ञात कर लेते हैं।

फास्फेट का परीक्षण—अकार्बनिक फास्फेट्स पत्तियों के ऊत्तकों के कोषा रसों में बहुतायत से पाये जाते हैं, इसलिये यह परीक्षण पत्तियों में किया जाता है। इसके लिये पत्तियों को बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। उसमें से एक चम्मच मिट्टी को छोटी कटोरी में लेकर उसमें १० मिली० फास्फेट अभिकर्मक नं० १ डालकर एक मिनट तक खूब जोर से हिलाते हैं। इसके बाद उसमें बहुत थोड़ी मात्रा में (पिन के सिर के बराबर) अभिकर्मक नं० २ या स्टैनस क्लोराइड या स्टैनस आक्सलेट डालकर मिलाने से नीला रंग उत्पन्न होता है, जो पौधे में फास्फेट्स की उपस्थिति के अनुसार हल्का नीला से गाढ़ा नीला तक होता है। फास्फेट्स की मात्रा निम्न तालिका से ज्ञात करते हैं :—

कोई रंग नहीं या पीला रंग— पौधे में फास्फोरस की बहुत कमी है।

हरा या नीला-हरा रंग पौधे में फास्फोरस की कमी है।

हल्का नीला रंग – पौधे में फास्फोरस की मात्रा मध्यम है।

मध्यम नीला रंग पौधे में फास्फोरस पर्याप्त मात्रा में है।

गाढ़ा नीला रंग—पौधे में फास्फोरस काफी मात्रा में है।

पोटैशियम का परीक्षण—पोटैशियम प्रायः पौधों के कोषा रसों में बहुतायत से पाया जाता है। परीक्षण के लिये पौधों की पत्तियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। फिर उसमें से लगभग १।४ चम्मच एक काँच की कटोरी में लेकर उसमें २१° से ताप पर १० मिली० पोटाश अभिकर्मक नं० १ डालकर एक मिनट तक हिलाते हैं, और फिर उसमें ५ मिली० अभिकर्मक नं० २ डालकर अच्छी प्रकार मिलाते हैं। दो-तीन मिनट पश्चात् उत्पन्न हुये अवक्षेप का निरीक्षण करते हैं। जितना ही अधिक अवक्षेप उत्पन्न होगा, पौधे में पोटेशियम उतनी ही अधिक मात्रा में होगा।

बहुत थोड़ा अवक्षेप— पौधों में पोटेशियम की कमी है।

साधारण अवक्षेप पौधे में पोटेशियम मध्यम मात्रा में है।

बहुत अधिक अवक्षेप—पौधे में पोटैशियम पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

इस परीक्षण में यह ध्यान रखना चाहिये कि ताप २१° से अधिक होने पर बर्फ का पानी प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार "टिशू-परीक्षण" से कम समय में ही एक साधारण किसान भी अपने पौधों में आवश्यक तत्वों की कमी की जानकारी करके उसे उर्वरकों द्वारा पूरा करके अपनी पैदावार बढ़ा सकता है।

"टिशू परीक्षण" में काम आने वाले सभी अभिकर्मक एवं आवश्यक उपकरण, एक पेटी में रखे रहते हैं, जो प्रत्येक स्थान पर आसानी से ले जाये जा सकते हैं तथा उसकी कीमत केवल १००)से १५०) रु० तक होती है और उसे भारतीय कृषि अनुसंधानशाला नयी दिल्ली से मँगाया जा सकता है।

महान भूविद् जेम्स ड्वाइट डाना

● विजय कान्त श्रीवास्तव

भ्रान्तिमूलक सिद्धान्तों के अम्बारों से घिरे भू-विज्ञान को जो १९वीं शताब्दी तक खनिजों का वर्णन मात्र माना जाता रहा है, शुद्ध वैज्ञानिक दीक्षा प्रदान करने वालों तथा उसके क्षेत्र को विस्तृत एवं परिष्कृत करने वालों में विश्व के कुछ इने गिने भू वैज्ञानिकों में जेम्स ड्वाइट डाना का नाम सर्वोच्च माना जाता है। खनिजों के वर्गीकरण एवं मणिभों के वैज्ञानिक अध्ययन के अतिरिक्त डाना ने तत्कालीन प्रचलित सिद्धान्तों को अपने में समाहित कर एवं नवीन एवं विशुद्ध वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा का प्रणयन किया। अपने जीवन काल में अहर्निश शोध कार्य में लीन रहकर, संघर्षों से जूझते हुये वैज्ञानिक डाना अपने आप में ही एक संस्था बन गये थे।

१२ फरवरी १८१३ ई० को न्यूयार्क के उतिका नामक स्थान में जन्म लेकर बचपन में ही डाना ने अपने भू प्रेम का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। उतिका के विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय सहपाठियों के साथ आस पास के स्थानों से खनिजों एवं शिलाओं के संकलन में डाना की सर्वाधिक रुचि थी।

१८३० ई० में येल विश्वविद्यालय में प्रथम डिग्री प्राप्त करने के कुछ दिन बाद तक भी खनिजों, शिलाओं तथा अन्य जीव अवशेषों का संग्रह करना ही डाना ने अपना व्यवसाय बना लिया था। १८३३ ई० में अपने शिक्षक प्रो० सिलिमन के अनुरोध पर डाना ने जहाज पर काम करना स्वीकार कर लिया जिससे उन्हें भूमध्य सागर तक का भ्रमण करना पड़ा यह समय डाना के लिये बड़ा ही लाभदायक हुआ। बन्दरगाहों तथा अन्य स्थानों से बड़े परिमाणों में खनिजों का संग्रह कर के उनका विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ किया गया। इनके शोध परिणाम जर्नल आव साइंस में प्रकाशित किये गये। एक प्रकार से डाना के लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में यह प्रवेश था।

मणिभों की रचना के अध्ययन के लिये इस वैज्ञानिक ने पहले रसायनशास्त्र का विशिष्ठ अध्ययन किया। अपने गुरु प्रो० सिलिमन के साथ शोध कार्य करने के साथ-साथ शीशों के कृत्रिम मणिभों के निर्माण भी में आठ शोध पत्र प्रकाशित किये। इन्हीं दिनों अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिस्टम आव मिनरेलाजी' की रचना भी की।

अत्यधिक व्यस्त होने के बाद भी डाना ने १८४२ तक अंटार्कटिक तथा प्रशांत महासागर का भ्रमण एक शोध दल के साथ करते रहे। इस अवधि में खनिजों के संग्रह के अतिरिक्त इस भ्रमण में पर्वत श्रेणियों के उद्गम तथा विस्तार, कोरल तथा अन्यान्य विषयों का अध्ययन भी किया गया।

डाना को शोधकार्य करने के लिये अमेरिका सरकार से वृत्ति मिलने की भी घोषणा की गई। १८५५ तक की अवधि में इस महान् वैज्ञानिक के जीवन का सबसे शांत तथा महत्वपूर्ण समय था। भ्रमण से वापस आकर डाना ने डा० सिलिमन की पुत्री के साथ विवाह करने के पश्चात् वाशिंगटन में रहकर शोध कार्य प्रारंभ किया। अब तक संगठित खनिजों, जीव अवशेषों तथा शिलाओं के अध्ययन के अतिरिक्त अनेक विषयों का अध्ययन एक साथ इस महान वैज्ञानिक ने किया। ३०० प्रकार के जीव अवशेषों का वर्णन केवल एक प्रबंध में किया गया। कोरल तथा आईलैंड नामक पुस्तक की रचना भी इसी समय की गई। इसके अतिरिक्त डाना ने खनिजों के वर्गीकरण की नवीन एवं विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति का प्रतिपादन भी किया। पग-पग पर संघर्षों का सामना करते हुये भी वैज्ञानिक डाना ने जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि इस अवधि में प्राप्त की।

इन अनुसंधान कार्यों को देखते हुए आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने डाना से आचार्य पद के लिये अनेक

बार अनुरोध किया। परन्तु अपने कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण डाना ने जीवन की समस्त लालसाओं का त्याग कर दिया था। येल विश्वविद्यालय में अनेक कारणों से प्राचार्य पद स्वीकार करने के बाद भी ५ वर्ष बाद डाना ने अपना पहला भाषण किया।

विज्ञान की उन्नति के लिये डाना ने जार्ज ब्रुश की सहायता से न्यूहेवेन में स्कूल आव साइंस की स्थापना की तथा जीवनपर्यन्त इसकी उन्नति एवं विकास के लिये तत्पर रहे। शोध कार्यों में लिप्त रहने पर भी विज्ञान की चतुर्दिक उन्नति के लिये अमेरिका जर्नल आव साइंस के प्रधान सम्पादक का भार भी डाना को कई वर्षों तक सहन करना पड़ा था।

अपने वैज्ञानिक शिष्यों के सहयोग से इन्हीं दिनों विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'मैनुअल आव् मिनरलाजी' की रचना भी इन्होंने की।

अत्यधिक व्यस्तता के कारण १८५९ में डाना को 'मतिभ्रम' हो गया। चिकित्सा के लिए यूरोप जाने पर भी यह महान वैज्ञानिक शांत न रह सका तथा जार्ज ब्रश के सहयोग से १८६८ में सिस्टम आव् मिनरलाजी का प्रकाशन कराया।

भू-विज्ञान में महती सेवाओं के लिए म्यूनिख विश्वविद्यालय ने १८७० ई० में इस विश्वविख्यात वैज्ञानिक का सम्मान करते हुए डाक्टर आव् साइंस की पदवी प्रदान कर गौरवान्वित किया।

अत्यन्त रुग्ण होने पर भी जीवन के अंतिम दिनों में डा० डाना ने ज्वालामुखियों का अध्ययन करके पुस्तक प्रकाशित करायी। अपने शोधकार्यों में लीन तथा अन्य संघर्षों से जूझते हुए १८९५ में इस विश्वविख्यात वैज्ञानिक का देहावसान हुआ।

१८१३ से लेकर १८९५ ई० तक का समय भू-विज्ञान के लिए स्वर्णिम अवसर था। इस वैज्ञानिक की मृत्यु के साथ भू-विज्ञान का एक युग समाप्त हो गया।

[पृष्ठ २२ का शेषांश]

पनों में आते रहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना तथा अपनी आय बढ़ाना चाहता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के पास न तो वह आत्मविश्वास या लगन होती है जो ऐसे अध्ययन के लिये आश्यक है और न परिश्रम की क्षमता। अतः वह कार्य आरम्भ तो बड़े जोर से करता है किन्तु किसी परिस्थितिवश उसे जब छोड़ता है तो आत्मग्लानि होती है और वह अपने को शारीरिक रूप से थका समझने लगता है। ऐसी स्थिति में ऐसे व्यक्ति के लिये लाभदायक यही है कि वह अपनी वास्तविक क्षमता के अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करे तथा अपने को बेकार की चिन्ता से बचाये रखे।

जिस प्रकार के खेल, मनोरंजन, तथा रुचि में व्यक्ति का वास्तविक रूप से रुझान हो उसे वही करना चाहिये। आधुनिक उग्र जीवन (फास्ट लाइफ) में यदि किसी की रुचि हो तो वह वैसा जीवन व्यतीत करे अन्यथा शांत जीवन व्यतीत करना ही उसके लिये श्रेयस्कर होगा।

सार संकलन

भारतीय चावल-सुधार परियोजना

भारत चावल के भारी अभाव की अपनी समस्या हल करने के लिए सर्वतोमुखी प्रयास कर रहा है। उसका यह अभाव समूचे विश्व में निर्यात के लिए उपलब्ध चावल की मात्रा के लगभग बराबर है।

भारत द्वारा तीन वर्ष पूर्व प्रारम्भ चावल अनुसन्धान कार्यक्रम अब फलदायी सिद्ध होने लगा है। भारी उपज देने वाले बीजों की देश के भीतर विकसित दो किस्मों को हाल में किसानों द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए प्रमाणित कर दिया है। इन दोनों किस्मों के नाम 'जया' और 'पद्मा' हैं। इनका विकास धान के आयातित पौधों का स्थानीय पौधों के साथ संकरीकरण करके किया गया है।

जया और पद्मा आयातित किस्मों से-जिनमें ताइवान की ताइचुंग नेटिव-१(टी० एन०-१) तथा फिलिपीन की आई० आर०-८ नामक किस्में भी शामिल हैं-श्रेष्ठतर सिद्ध हुई हैं। नई किस्म की फसलों को पक कर तैयार होने में लगभग १०० दिन लगते हैं, जबकि टी० एन०-१ और आई० आर०-८ को तैयार होने में लगभग १२० दिन लग जाते हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय किस्मों की उपज ४,००० पौण्ड से लेकर १०,००० पौण्ड प्रति एकड़ तक होती है, जबकि आयातित किस्मों की उपज ३,२५० पौण्ड और ७,५०० पौण्ड के बीच होती है। इसके अतिरिक्त नई किस्मों के लिए अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है और उनसे प्राप्त चावल श्रेष्ठतर होता है।

सहकारी परियोजना

नई किस्मों का विकास मई, १९६५ में प्रारम्भ अखिल भारतीय समन्वित चावल-सुधार परियोजना का परिणाम है। यह एक सहकारी परियोजना है, जिसमें भारत-सरकार, अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी और रौकफेलर प्रतिष्ठान भाग ले रहे हैं। अमेरिका की अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी फिलिपीन के अन्तर्राष्ट्रीय चावल-अनुसन्धान संस्थान के साथ हुए करार के अन्तर्गत प्राविधिक सहायता प्रदान करती है।

रौकफेलर प्रतिष्ठान ने अन्तर्राष्ट्रीय चावल-अनुसन्धान संस्थान की टोली के नेता डा० वेन एच० फ्रीमैन की सेवाएं उपलब्ध की हैं।

इस परियोजना में १०० से अधिक भारतीय वैज्ञानिक और अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी द्वारा दी गई वित्तीय सहायता से गठित अन्तर्राष्ट्रीय चावल-अनुसन्धान संस्थान की ५-सदस्यीय टोली संलग्न हैं। अनुसन्धान का कार्य देश के २० प्रमुख चावल-उत्पादक क्षेत्रों में एक साथ चालू है।

भारतीय परिस्थितियों के लिए अनुकूल किस्म के बीज विकसित करने के अतिरिक्त, अनुसन्धान करने वाले कार्यकर्ता पानी, उर्वरक और कीटाणु-नाशक दवाओं के प्रयोग की अधिकतम सक्षम विधियाँ ढूँढने का भी प्रयत्न कर रहे हैं। वे चावल के उत्पादन पर बुरा प्रभाव डालने वाले फफूंदों, विषाणुओं और कीटाणुओं सम्बन्धी रोगों को नियन्त्रित करने की उत्कृष्ट विधियाँ भी ढूँढने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भारत की ओर से, भारत के विख्यात कृषि वैज्ञानिक डा० एस० वी० एस० शास्त्री विभिन्न प्रादेशिक केन्द्रों में सम्पन्न अनुसन्धान-कार्य में तालमेल रखते हैं।

दस नई किस्में लगभग तैयार

डा० शास्त्री का कथन है, पौध-प्रजनन का उद्देश्य भारत के कृषि एवं जलवायु सम्बन्धी विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नई किस्म के बीज विकसित करना है। अभी तक हमने धान की भारतीय किस्मों के साथ संकरीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय चावल-अनुसन्धान संस्थान, फिलिपीन, से प्राप्त १,००० से अधिक किस्मों का प्रयोग किया है। किसानों द्वारा प्रयोग के लिए प्रमाणित दो किस्मों के अतिरिक्त, हमारे पास १० नई किस्में अभी और हैं, जो विकास के उच्चतर चरणों तक पहुँच चुकी हैं।

भूतकाल में स्थानीय किस्मों के बीजों से प्रति एकड़ मुश्किल से १३०० पौण्ड चावल उत्पन्न होता था और उनकी फसलें लगभग ६ महीने में पक कर तैयार होती थीं। अखिल भारतीय समन्वित चावल-सुधार परियोजना द्वारा विकसित बीजों ने यह दिखला दिया है कि चावल की प्रति एकड़ उपज में ६ गुनी वृद्धि हो सकती है। उनकी फसलें स्थानीय किस्मों की अपेक्षा २ महीने पहले पक जाती हैं, जिससे कई फसलें उगाना सम्भव हो गया है।

नई किस्मों के पौधे बौने होते हैं। अधिक उर्वरक का प्रयोग करने पर भी पौधे गिरते नहीं। इसके विपरीत लम्बे पौधों वाली स्थानीय किस्में अधिक उर्वरक का प्रयोग करने पर खड़ी नहीं रह पातीं, बल्कि लेट जाती हैं। परीक्षणों से पता चला है कि जब प्रयुक्त उर्वरक (नाइट्रोजन) की मात्रा को प्रति एकड़ १२० पौण्ड अधिक कर दिया जाता है, तो स्थानीय किस्मों से प्राप्त उपज घटने लगती है। किन्तु नई किस्मों से उस समय भी अधिक उपज प्राप्त होती है, जब उर्वरक का प्रयोग प्रतिएकड़ २०० पौण्ड से अधिक हो जाता है।

डा० शास्त्री ने कहा कि यह धारणा गलत है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों से कम पुवाल प्राप्त होती है। उन्होंने कहा कि इस बात के बावजूद कि नई किस्मों के पौधे बौने होते हैं उनकी जड़ें अधिक फैलती हैं। प्रयोगात्मक खेतों में देखा गया है कि नई किस्मों से प्रति एकड़ प्रायः उतना ही पुवाल प्राप्त होता है, जितना स्थानीय लम्बे डण्ठल वाली किस्मों से मिलता है।

चावल की उपज में वृद्धि

इस समय भारत में लगभग ३६.८ करोड़ एकड़ भूमि पर खेती होती है, जिसमें से ८.८ करोड़ एकड़ (कुल क्षेत्रफल के लगभग २३ प्रतिशत भाग) पर धान की खेती होती है। किन्तु धान की खेती के इस क्षेत्रफल में से केवल २.४ करोड़ एकड़ पर ही सिंचाई की समुचित व्यवस्था है। चावल की नई किस्मों का विस्तार मुख्यतः सिंचित क्षेत्रों में ही हो रहा है, जहाँ उनसे अधिकतम उपज प्राप्त हो रही है।

अनुमान लगाया गया है कि अकेले सिंचित क्षेत्रों में ही नई किस्मों की दुबारा खेती होने पर भारत प्रतिवर्ष ४.६ करोड़ टन से लेकर ५ करोड़ टन तक चावल उत्पन्न करने में समर्थ होगा। (१९६७ में भारत की कुल चावल-उत्पादक भूमि से लगभग ३.८ करोड़ टन चावल उत्पन्न हुआ था)

भारत के चावल-विशेषज्ञ वैज्ञानिकों का मत है कि चावल-सुधार परियोजना के अन्तर्गत विकसित नये बीजों के अधिकाधिक प्रयोग के बाद फसली ढाँचे में भी परिवर्तन हो जायेगा। ये किस्में जल्दी पक कर तैयार हो जाती हैं इसलिए वर्ष में दो फसलें बोने की अवस्था में भी भूमि पर धान की फसलें ७-८ महीने से अधिक समय तक नहीं रहेंगी। फलस्वरूप, धान की खेती के बाद अदला-बदली के रूप में अधिक उपज वाले छोटे अनाजों, दालों, सब्जियों आदि की खेती के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध होगा।

● प्लास्टिक का नया हृदय

प्लास्टिक, जो ऐंद्रिक रसायनशास्त्र के बहुरुपिये बच्चे हैं, विशेष गुणों से युक्त व्यूहाणु हैं। उनके कांसे, पेंट और मिट्टी के जैसे सामान्य मिश्रण नहीं हैं, किन्तु विशुद्ध रासायनिक मिश्रण हैं और उनमें उनकी अपनी विशेषता और अनोखे गुण विद्यमान हैं।

प्लास्टिक को अनेक कार्यों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है और यह बड़ा मजबूत पदार्थ है। इसे पिघलाया जा सकता है। इसे किसी भी आकार में ढाला जा सकता है। ल्युसाइट और प्लेक्सिगलास जैसे थर्मोप्लास्टिकों को कड़ा करने के पश्चात् अग्नि की सहायता से पुनः नर्म बनाया जा सकता है और मोड़ा जा सकता है, जबकि पोलिस्टर जैसे थर्मोसेटिक प्लास्टिक तैयार हो जाने पर कड़े बने रहते हैं।

पैकिंग की सामग्री, फर्नीचर और अनेक उपयोगी वस्तुओं में प्लास्टिक का प्रयोग हो रहा है। इन वस्तुओं में हृदय की कृत्रिम कपाटियों, श्वास-नलिका और गले से पेट तक जाने वाली नली से लगा कर तैरने वाले निवासस्थान और फैल सकने वाले ढाँचे तक सम्मिलित हैं। हाल में प्लास्टिक ने शिल्पियों और डिजाइनरों का ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट किया है। समकालीन शिल्पी कुछ पारदर्शी प्लास्टिकों तथा ऐसे प्लास्टिकों का प्रयोग कर रहे हैं जिनमें से प्रकाश दिखायी पड़ता है। प्लास्टिक के ऐसे डिब्बे तैयार किये जाने लगे हैं जिनमें रखी हुई वस्तुएँ बाहर से दिखायी पड़ती हैं।

१९२० के बाद के दशाब्द में नौम गेबो और एण्टोइन पेवसनर जैसे शिल्पियों ने जो पहला कार्य किया था वह प्लेक्सिगलास को मोड़ कर कुछ वस्तुएं तैयार करना था। हाल में फर्नीचर के डिजाइन तैयार करने वालों ने इस पदार्थ को नाना प्रकारों में मोड़ने का अधिक साहसिक प्रयत्न किया है। चूँकि कुर्सियों और मेजों को अपेक्षाकृत अधिक भार सहन करना पड़ता है, इसलिये उनका मजबूत होना आवश्यक है। ताप अथवा दाब द्वारा साँचे पर रखी हुई प्लास्टिक की चादर को खींच कर अथवा कड़ा करके ढलाई का कार्य सम्पन्न किया जाता है।

प्लास्टिक की वस्तुओं के निर्माण में विकसित ढलाई का नवीनतम तरीका मूर्तिकारों में बहुत ही प्रचलित है। बिक्स ली उसका इस्तेमाल चमकदार एवं आकर्षक आभूषण बनाने में करते हैं। डेविड वीनरिक्स द्वारा निर्मित उच्च कोटि की ढली हुई मूर्तियों में पारदर्शक सपाट और गोलाइयों के ठोस ढाँचे पर बल दिया जाता है। वह बहुत ही अच्छे ढंग से तराशी हुई प्रतीत होती हैं हालाँकि उनके बनाने में रुखानी की जगह बिजली के सैण्डर का इस्तेमाल किया जाता है। सैम रिचर्डसन की कृतियाँ कई परतों वाली तथा अपारदर्शी होती हैं जिनमें भीतर के रहस्यमय जीवन को उभारने के लिए स्प्रे किया होता है।

जो कलाकार काँच से भी अधिक अनुकूल और मजबूत चीज की तलाश में रहते हैं वे प्रकाश का पारेषण करने वाली किस्म के एक्रिलिक शीटों को अधिक पसन्द करते हैं। यह थर्मोप्लास्टिक पारदर्शी, अर्धपारदर्शी तथा अपारदर्शी किस्मों का होता है।

पैकेजिंग, कपड़ों और घर की सजावट के काम में 'विनील' एवं पाल्यूरेथेन फोम का इस्तेमाल इतना बढ़ गया है कि उसके बिना काम ही नहीं चल सकता।

फ्रैंक विनेर नामक शिल्पी ने पालिस्टिरीन की पानी की बोतल का एक ऐसा डिजाइन बनाया है जिसे मोड़ कर रखा जा सकता है। उन्होंने विनील की पोशाकें भी बनाई हैं। हाल ही में बनाए गए प्लास्टिक के फर्नीचरों में पाल्युरेथेन की एक ऐसी गोल गेंदनुमा लोचशील कुर्सी भी बनाई गई है जो आदमी के बैठने के बाद अपनी आकृति में बदलती है और उसके उठ कर खड़े होते ही वह पुनः गोलाकार हो जाती है।

आज प्लास्टिक की सामग्री जोड़ने और बनाने का उद्योग बहुत ही विकसित अवस्था में है, क्योंकि इस क्षेत्र में विगत सौ वर्षों से काम हो रहा है। पिछले १० वर्षों में कुछ शिल्पियों ने प्लास्टिक की ऐसी चादरें

और तरल रेजिन बनाने के तरीके भी विकसित कर लिए हैं जो मूर्ति-निर्माण के कार्य में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुवे हैं।

● बिच्छुओं का दोहन

जर्मनी के डाक्टर फ्रेडरिक सेलो ने १० हजार जीवित बिच्छू पाल रखे हैं जिन्हें उन्होंने अफ्रीका तथा अन्य पूर्वी देशों से एकत्र किए हैं।

यदि बड़ी बिच्छू सिर में या हृदय में डंक चुभो दे तो मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो सकती है। बिच्छू का एक मिलीग्राम विष भी घातक हो सकता है। बिच्छू के पूरे शरीर में चार मनुष्यों अथवा एक ऊँट को मार डालने के लिए पर्याप्त विष रहता है। किन्तु यह देखा गया है कि शायद ही बिच्छू काटने से किसी की मृत्यु होती हो क्योंकि बिच्छू अपने द्वारा निस्सृत विष पर नियंत्रण रखता है। सर्प में यह गुण नहीं पाया जाता।

फ्रेडरिक सेलो विश्व का अद्वितीय व्यक्ति है। वह प्रत्येक मास अफ्रीका तथा अन्य देशों से जीवित बिच्छू हवाई जहाज द्वारा मँगाता रहता है और उन्हें काँच के बने पारदर्शी घरों में पालता है। बिच्छुओं का खाद्य काष्ठ-जूँ तथा कीड़े हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें पानी भी चाहिए। वह इन्हें प्रत्येक पाख में खाना तथा पानी देता है और मास में दो बार विद्युत विधि से उनका 'दोहन' करता है। बिच्छू के विष थैले पर पहले से परिगणित विद्युत मात्रा का प्रयोग करके प्रत्येक बिच्छू से .३ से २.७ मिलीग्राम तक विष प्राप्त करता है। क्रिस्टलीकरण के पश्चात् इससे विष की १ मि. ग्राम मात्रा तैयार होती है। वह एक घंटे में १८० बिच्छुओं का विष निकाल सकता है। तरल विष को सुखाने के लिये विशेष उपकरण बने हैं। इस प्रकार सुखाये गये विष की १ ग्राम मात्रा का मूल्य लगभग १० हजार मार्क है।

किन्तु सभी बिच्छुओं का विष उपयोगी नहीं है। काले रंग की बिच्छू जो अफ्रीका में पाई जाती है, वही इसके लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसको पहचानना आसान काम नहीं। सेलो स्वयं रात्रि में प्रतिदीप्ति लैम्प लेकर खंडहरों की सैर करता है और उन्हें पकड़ता है। इन बिच्छुओं का शरीर रात्रि में चमकता है क्योंकि इनमें फास्फोरस पाया जाता है।

विश्व भर के वैज्ञानिक संस्थानों में बिच्छू के विष की आवश्यकता होती है। इस विष को लवण विलयन में घोल कर घोड़े के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है और छह मास के पश्चात् वाञ्छित सीरम को घोड़े से प्राप्त किया जा सकता है। इसी से बिच्छू दंश का प्रतिरोधी सीरम तैयार किया जाता है।

बिच्छू विष का प्रयोग अन्य कार्यों के लिये भी होता है। प्राचीन काल में प्राच्य देशों में बिच्छू के चूर्ण एवं तैल का उपयोग अन्धता, लोमहीनता, सर्प विष आदि को विनष्ट करने के लिये किया जाता था। पाश्चात्य देशों में मूत्र सम्बन्धी विकार, गठिया, उदर शूल तथा ताऊन में बिच्छू के विष का प्रयोग होता है।

● थकावट

आप जानते है कि हम अपने शरीर से, एक सीमा के अंतर्गत, चाहे जितना कार्य ले सकते हैं क्योंकि हमारे शरीर की बनावट इस तरह की है कि अधिक परिश्रम मांसपेशियों, पुट्ठों इत्यादि को शक्तिशाली बनाता है और उनमें प्रतिरोध उत्पन्न करता है जो शरीर की कार्य क्षमता में वृद्धि करता है। परन्तु सीमा का उल्लंघन करने पर हमें थकावट अनुभव होती है जो कि दो प्रकार की होती है—शारीरिक और मानसिक।

जहाँ तक शारीरिक थकावट का प्रश्न है, वैज्ञानिक खोजों के अनुसार यह मांसपेशियों में लैकटिक अम्ल के निर्माण तथा उपस्थिति के कारण आती है। यह अम्ल शारीरिक क्रियाओं के लिये बेकार है। खाद्य पदार्थों से प्राप्त कार्बोहाइड्रेटों के कुछ भाग को हमारा शरीर ग्लाइकोजन में बदल देता है। हमारी मासपेशियां कार्य करते समय ग्लाइकोजन का उपयोग

करती हैं। ग्लाइकोजन एक ओर तो मांसपेशियों को कार्य करने के लिये ऊर्जा देता है, दूसरी ओर लैक्टिक अम्ल भी उत्पन्न करता है। यही अम्ल थकावट पैदा करता है क्योंकि मांसपेशियों के ऊतकों की दशा इस अम्ल की उपस्थिति में ऐसी हो जाती है कि वे कार्य नहीं करना चाहते हैं।

यद्यपि अधिवृक्क ग्रंथियाँ (एड्रीनल ग्लैंड) ऐसा स्राव उत्पन्न करती हैं जो कि अधिकांश लैक्टिक अम्ल को ठिकाने लगा देता है, परन्तु शेष अम्ल मनुष्य को उत्तेजित कर अधिक आक्सीजन ग्रहण करने के लिये बाध्य कर देता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि थकावट आयेगी ही नहीं वरन् यदि हम कार्य को सुनियोजित ढंग से करें और सामान्य बातों का ध्यान रखें तो कार्य अधिक कर सकेंगे। सुनियोजित ढंग से कार्य करने के संबंध में सबसे मुख्य बात है शारीरिक व्यायाम। व्यायाम किसी भी तरह (खेलकूद से लेकर घूमने तक) का हो सकता है। एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार नियमित व्यायाम द्वारा मनुष्य की कार्य क्षमता लगभग २० प्रतिशत बढ़ायी जा सकती है। फ्रांस के एक बड़े उद्योग संस्थान में किये गये प्रयोगों के अनुसार यह पाया गया कि वे व्यक्ति जो लिखने-पढने का कार्य करते हैं, मध्यान्तर में हल्का सा व्यायाम करें या खेल कूद में भाग लें तो वे शेष समय में प्रफुल्ल चित रहेंगे तथा बेहतर कार्य कर सकेंगे। इसका कारण यह है कि व्यायाम या खेलकूद के समय मांसपेशियाँ विश्रामकाल की अपेक्षा ५० प्रतिशत अधिक आक्सीजन लेती हैं। इस अधिक आक्सीजन वाले रक्त को मांसपेशियों तक पहुँचाने के लिये हृदय की रक्त पम्प करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इससे उन सब नलिकाओं में, भी पर्याप्त रक्त प्रवाहित होने लगता है जिनमें से सामान्यतः कम प्रवाहित होता। इससे मांसपेशियाँ की सहनशीलता में वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त ग्रंथियाँ भी अधिक सुचारु रूप से कार्य करने लगती हैं।

कुछ व्यक्तियों को रोगों के कारण जल्दी थकावट आ जाती है। जिनके शरीर में रक्त की मात्रा आवश्यकता से कम होती है या जिनकी थाइराइड ग्रंथि ठीक कार्य नहीं करती, अथवा जो मधुमेह जैसे रोगों से पीड़ित होते हैं, उन्हें भी शीघ्र ही थकावट आ जाती है। ऐसे व्यक्तियों का उपचार किया जा सकता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि विशेष परिस्थितियों में हम बहुत अधिक कार्य कर सकते हैं। जब हमें कार्य करने में बहुत आनन्द आ रहा हो या हम किसी बीमार प्रियजन की सेवा में लगे हों अथवा हमारा अपने गतव्य पर पहुँचना अत्यंत आवश्यक हो, उस समय लगातार कई दिनों तक कार्य करते रहने पर भी हमें थकावट महसूस नहीं होती। दूसरे महायुद्ध तथा भारत-पाकिस्तान युद्ध में ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं जिनमें सैनिकों ने बिना विश्राम किये कई दिनों तक कार्य किया है। इन परिस्थितियों में मस्तिष्क के रेटिक्यूलर भाग से ऐसे संकेत निकलते हैं जो थकावट के संकेतों को नष्ट कर देते हैं। मस्तिष्क का यह भाग सामान्यतः उदासीन रहता है किन्तु विशेष परिस्थितियों में वह उत्तेजित होकर संकेत देने लगता है। इस कारण हम अपनी शारीरिक थकावट को भूल जाते हैं।

एक ही प्रकार का कार्य काफी समय तक करते रहने के कारण उसमें हमारी रुचि कम हो जाती है और मन ऊब जाता है। इस ऊब के कारण भी हमें थकावट मालूम होने लगती है। यह थकावट वास्तव में मानसिक है तथा इसका उपचार है कार्य में रोचकता उत्पन्न करना। किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो कार्य के बीच में चाय-काफी आदि लेना या कुछ दिलचस्प वार्तालाप कर लेना बहुत लाभदायक होता है। इससे ऊब समाप्त हो जाती है।

नौकरी में उन्नति पाने, अधिक आय करने आदि के लिये अनेक प्रकार के 'स्वाध्याय' विज्ञापन समाचार-

[शेष पृष्ठ १७ पर देखें]

विज्ञान वार्ता

१. हाइड्रोजन बम से कृत्रिम वर्षा

एक जर्मन वैज्ञानिक ने सुझाव रखा है कि समुद्रों से भाप उठाकर बादल बनाने के लिये हाइड्रोजन बम विस्फोटों का उपयोग लाभदायी होगा। संसार में बढ़ती हुयी जनसंख्या के लिये उपलब्ध जल की मात्रा तेजी के साथ कम होती जा रही है। पानी दैनिक उपयोग की सामग्री होने के साथ ही कच्चे माल के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस समस्या का तात्कालिक हल खोजना होगा। हाइड्रोजन बम विस्फोट द्वारा बादल निर्माण में प्रमुख समस्या होगी कि बम के तापीय एवं पारमाण्विक दुष्प्रभावों से कैसे बचा जाय।

२. जीवनयुक्त भूमि का परीक्षण

इज़रायल के वीज़मान इन्स्टीट्यूट आफ़ साइन्स ने मिट्टी परीक्षण द्वारा यह पता लगाने की विधि निकाली है कि अमुक भूमि में जीव विकास हुआ है अथवा नहीं। इस विधि से प्रभावित होकर अमरीका के अंतरिक्ष प्रशासन ने निश्चय किया है कि आगामी अपोलो–११ उड़ान के बाद अंतरिक्षयात्री चन्द्रमा की मिट्टी का जो नमूना पृथ्वी पर लायेंगे, उसका एक अंश उक्त वैज्ञानिकों को परीक्षणार्थ दिया जायगा। इस नवीन विधि से शुद्धतम परिणाम प्राप्त होते हैं और अमीनो अम्लों तथा अन्य जीव निर्माता पदार्थों का सही-सही अनुमान होता है।

३. गन्दे जल के परिष्करण के लिए आइसोटोप

नगरपालिका की नालियों में गन्दे जल में पाये जाने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये छानने अथवा रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग की विधि मँहगी है अतः अमरीका की कम्पनी रासायनिक द्रव्यों के साथ आणविक आइसोटोपों को मिलाकर प्रयोग में लाने का अध्ययन कर रही है।

४. कंक्रीट की नौकायें

कैलीफोर्निया के एक युवक इंजीनियर जो मिलर का विश्वास है कि पत्थर पानी में तैर सकता है। वह लोह सीमेंट की नौकायें बनाता है। ये नौकायें अत्यन्त टिकाऊ होती हैं। मिलर जिस मिश्रण का उपयोग करता है उसमें रेत, सामान्य सीमेंट तथा उचित मात्रा में पानी होता है। इन नौकाओं की मरम्मत आसानी से की जा सकती है।

५. डा० आत्माराम भारतीय विज्ञान संस्था के अध्यक्ष

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के महानिदेशक डा० आत्माराम को अब परिषद की अध्यक्षता के साथ साथ नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भारतीय विज्ञान संस्थान के वर्ष १९६९-७० के अध्यक्ष पद का भार सौंपा गया है। डा० आत्माराम की उक्त पद पर नियुक्ति उक्त संस्थान की शासी सभा के निर्वाचन द्वारा की गई है। परिषद का महानिदेशक उक्त संस्थान का एक सदस्य होता है।

●

सम्पादकीय—

चन्द्रमा पर मानव

अपोलो ८ की अन्तरिक्ष यात्रा से यह सिद्ध हो चुका है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य चन्द्रमा पर उतर सकेगा। अमरीका वास्तव में बधाई का पात्र है। उस देश ने १९७० तक चन्द्रमा पर प्रथम मानव उतारने की जो घोषणा की थी वह प्रायः ६ मास पूर्व ही सफल हो जावेगी। इससे कितना आत्म विश्वास प्रकट होता है और वैज्ञानिकों द्वारा कितना श्रम किया गया प्रतीत होता है!

अमरीका के तीन अन्तरिक्ष यात्रियों ने दिसम्बर १९६८ में १४७ घंटे तक अन्तरिक्ष यात्रा करके पहले-पहल चन्द्रमा को ७० मील की दूरी से देखा। यह यात्रा अद्वितीय इसलिए कही जा सकती है कि अभी तक अमरीका द्वारा आयोजित १७ तथा रूस द्वारा आयोजित १० समानव अन्तरिक्ष यात्राओं में एक भी इतनी दीर्घकालीन अथवा लोमहर्षक नहीं रही जितनी कि अपोलो ८ की अन्तरिक्ष यात्रा।

आज तक संसार का कोई भी प्राणी पृथ्वी से इतनी दूर की यात्रा पर नहीं गया—२२३००० मील जितना कि अपोलो ८ के यात्री। इन्होंने सर्वाधिक तेज गति से यात्रा की है।

वैज्ञानिकों की जिस पूर्व गणना का सही सही प्रमाण इस अन्तरिक्ष यात्रा में सही उतरा, वह कल्पनातीत है। महीनों के अहर्निश प्रयास का सफल परिणाम न केवल उन वैज्ञानिकों को वरन् संसार के प्रत्येक प्राणी को आश्चर्यचकित कर चुका है।

अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य जिस चन्द्रमा के साथ अपने सम्बन्ध जोड़ता रहा है अब उसकी पुष्टि हो रही है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रकाशक : डा० हीरालाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक : गोपाल कृष्ण अग्रवाल, हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५।

भाग १०५	ज्येष्ठ-आषाढ़ २०२६ वि०, १८९१ शक मई-जून १९६९	संख्या ५-६

मूक पौधों की भाषा

● डा० रमेशचन्द्र तिवारी

जन्मजात गूँगे-बहरे पेड़-पौधों की भाषा की चर्चा सभी को वैज्ञानिक अटकल तथा सरासर मिथ्या प्रतीत हो सकती है। पेड़-पौधों को पशु-पक्षियों के बराबर भी महत्व नहीं प्रदान किया जाता क्योंकि पौधे पशुओं एवं पक्षियों की तरह सक्रिय भी नहीं होते। यद्यपि वे हमारे जीवन के लिए अपना सर्वस्व (जड़, तना, पत्ती, शाखा, फूल, फल, बीज) समर्पित कर देते हैं फिर भी किसान उनके दुःख-दर्द के प्रति तनिक भी ध्यान नहीं देते। काश, कृषक पेड़-पौधों की मजबूरियों का निवारण कर सकते तो हमारे भोजन की केवल पूर्ति ही नहीं होती बल्कि वे अन्न भंडार भर देते। पेड़-पौधों की कठिनाइयों का यदि निवारण करना है तो हमें उनकी भाषा समझनी होगी। तभी हम उनके भोजन एवं जल की पूर्ति तथा कीट व्याधियों का निवारण कर उन्हें स्वस्थ रख सकेंगे।

थोड़ी देर के लिए अपने खेतों और क्यारियों में उग रहे पेड़-पौधों को गूँगे और बहरे मनुष्य मान लीजिए क्योंकि इनके क्रिया-कलापों में कोई विशेष असमानता नहीं होती, केवल चलने-फिरने की ही विषमता पाई जाती है। गूँगे-बहरे मनुष्यों की भाषा क्या है? इशारा बस न! इशारा करके ही वे अपनी भूख-प्यास और दुःख-दर्द का परिचय कराते हैं।

ठीक यही दशा हमारे खेतों में खड़ी फसल, बाग में उगे पेड़-पौधों तथा आँगन की तरकारियों की होती है। जब कभी उन्हें भूख-प्यास लगती है तो वे अपने शरीर का रूप-रंग बदल कर यह इंगित करने लगते हैं कि उनके इस परिवर्तन की ओर ध्यान देकर आप उनकी गुहार सुनें। इसलिए कि एक किसान को अपने पेड़-पौधों का इतना ज्ञान होना चाहिए जितना एक मनुष्य की चिकित्सा करने वाले डाक्टर को रोग निदान के लिए होता है।

पेड़-पौधे तो इतने चालाक होते हैं कि केवल भोजन न माँगकर वे इतना तक बता देते हैं कि उन्हें भोजन में अमुक तत्व की आवश्यकता है। यदि वह तब उन्हें नहीं मिला तो वे पतले, दुबले तथा पीले पड़ ही जायेंगे।

पौधे विभिन्न तत्वों की आवश्यकता की पुकार भिन्न-भिन्न परिवर्तनों के द्वारा करते हैं। इसे बहुत ही सुगमता से समझा जा सकता है।

यह भलीभाँति ज्ञात है कि पौधों के समुचित तथा उनके जीवन-चक्र की पूर्ति के लिए कुल १६ तत्वों की नितान्त आवश्यकता होती है। इन १६ तत्वों में से जिन ९ तत्वों को पौधे प्रचुर मात्रा में ग्रहण करते हैं वे हैं कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, मैग्निशियम, तथा गंधक। शेष ७ तत्व जस्ता, ताँबा, लोहा, मैंगनीज, मौलिब्डनम, बोरान तथा क्लोरीन हैं जो पौधों को सूक्ष्म मात्रा में चाहिए। उपर्युक्त सभी तत्वों की उपस्थिति में ही पेड़-पौधे सफलतापूर्वक उग सकते हैं। यदि एक तत्व की भी कमी हुई कि वे निर्बल होकर मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। अतः एक सफल कृषक को उपर्युक्त १६ तत्वों की पूर्ति का ध्यान रखना आवश्यक है।

कार्बन, नाइट्रोजन तथा आक्सीजन को तो पौधे ग्रहण मुख्य रूप से वायुमंडल से करते हैं। शेष का एकमात्र साधन भूमि ही है जिनमें से भारतीय मिट्टियों में केवल नाइट्रोजन तथा फास्फोरस का अभाव है। कहीं-कहीं पोटेशियम तथा अन्य तत्वों की न्यूनता के लक्षण भी देखने को मिले हैं। अतः इन तत्वों को भूमि में, जिस पर फसल लहरा रही है, पूर्ति के लिए खादों एवं उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। जहाँ तक उर्वरकों का प्रश्न है देश के विभिन्न भागों में निर्मित कारखाने लाखों टन नाइट्रोजनवाले, फास्फेटीय तथा पोटाशयुक्त खादों का उत्पादन कर रहे हैं। इन उर्वरकों के उचित प्रयोग के लिए कृषकों को कुशल तथा अनुभवी होना चाहिए जिससे वे अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकें।

खादों एवं उर्वरकों की कमी के कारण ही पौधों को लाचार होकर, कृषक को आकृष्ट करने के लिए, अपनी आवश्यकताओं का प्रदर्शन ऐसे ढंग से करना पड़ता है कि कृषक उसे समझकर उन्हें भोजन देने का प्रबन्ध करे। अतः पौधों के शरीर पर दृष्टिगोचर होने वाले उन विभिन्न परिवर्तनों का उल्लेख आवश्यक है जो भिन्न तत्वों की न्यूनता से सम्बन्धित हैं। इसी को हम पेड़ पौधों की मूक भाषा कहते हैं।

यदि फसलों में नाइट्रोजन की पूर्ति नहीं हो पा रही तो उनकी पत्तियों का शीर्ष पहले पीला पड़ जायेगा, फिर निचली पत्तियाँ पीली पड़ने लगेंगी और अत्यधिक न्यूनता के फलस्वरूप में झुलस कर गिर जायेंगी। पौधों का पतला-दुबला तथा कमजोर बना रहना, पत्तियों का पीलापन तथा छोटा होना, पौधों का बौनापन, और मन्द वृद्धि, नाइट्रोजन की कमी के प्रमुख लक्षण हैं। जैसे ही ऐसे लक्षण पौधे प्रदर्शित करने लगें उनको नाइट्रोजन वाले उर्वरक देने का प्रबन्ध अविलम्ब करना चाहिए। यूरिया, अमोनियम सल्फेट, कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट अथवा अन्य नाइट्रोजन वाले उर्वरक सिंचाई के पूर्व (यूरिया को सिंचाई के दो तीन पूर्व या पश्चात्) खेत में डालने से उनकी यह माँग पूरी की जा सकती है।

पौधों में पोटेशियम की कमी का स्पष्ट लक्षण उनकी निचली (भूमि के समीप) पत्तियों के शीर्ष तथा किनारों का जल जाना या सूखे भाग का गिर जाना और पत्तियों का कटा-फटा दिखाई पड़ना है। अनाज वाली फसलों तथा घासों में पोटेशियम की न्यूनता होने पर पत्तियाँ पहले शीर्ष से मुरझा कर गिरने लगती हैं और धीरे-धीरे उनका किनारा प्रभावित होता है परन्तु पत्तियों की मध्य शिरा पर कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि पौधे उपर्युक्त लक्षण प्रदर्शित करें तो पोटेशियम सल्फेट, म्युरियेट आफ पोटाश अथवा अन्य पोटाशीय खादों का प्रयोग अगली फसल में करना चाहिए। न्यूनता प्रदर्शित करने वाले पौधों पर यदि खादों का प्रयोग किया जायेगा तो लाभ नहीं मिलेगा अतः इनका प्रयोग बीज बोने के पूर्व करना उचित होता है।

पौधों में फास्फोरस की न्यूनता होगी तो उनकी पत्तियों, तनों तथा शाखाओं का रंग बैंगनी सा हो जायेगा। इसके अतिरिक्त उनकी वृद्धि रुक जायेगी तथा उनमें बीज व फल देर से लगेंगे और देर से पकेंगे भी। पौधों का छोटा तथा पतला होना, और दानों, बीजों

एवं फलों की कम पैदावार भी फास्फोरस की कमी के प्रमुख लक्षण हैं। जिस खेत के पौधे उपर्युक्त लक्षणों का प्रदर्शन करें उस खेत में दूसरी फसल बोने के पूर्व सुपरफास्फेट, अमोनियम फास्फेट (डाई अथवा मोनो एमो फास) अथवा अन्य फास्फेटीय खादें अवश्य डालना चाहिए।

पौधे कैल्शियम की कमी और उसकी माँग के प्रदर्शन के लिए अपनी नव विकसित पत्तियों को घुमावदार कर लेंगे, पत्तियों के शीर्ष तथा किनारों पर जले धब्बों का प्रदर्शन करेंगे, जड़ें मृतक सी हो जायेंगी उनका अग्रभाग सूख जायेगा, वे छोटी तथा अत्यधिक शाखाकारी हो जायेंगी। साथ ही साथ उनकी पत्तियों के किनारों पर हरे रंग की रेखा खिंच जायेगी। पौधों के शरीर के उपर्युक्त प्रदर्शन का अर्थ होता है कि उन्हें कैल्सियम चाहिए और एक कृषक का कर्तव्य हो जाता है कि अपने खेत में चूने का प्रयोग करके अपने पौधों की दशा सुधारें।

इन प्रदर्शनों के अतिरिक्त शेष तत्वों की माँग की और उनकी पूर्ति की आशा पौधे विभिन्न तरीकों से अपनी भाषा में कृषकों को समझाने का प्रयास करते हैं। कुछ अन्य आवश्यक तत्वों की कमी के लक्षणों का विवरण बगल में दिया गया है।

इसके अतिरिक्त सूखा तथा तेज धूप, जल मग्नता के प्रभाव तथा कीड़ों व रोगों के आक्रमण के फलस्वरूप तत्वों के कमी के लक्षण और भी जटिल हो जाते हैं तथा पौधे अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं। कभी-कभी पौधे अत्यधिक तत्व खा लेने के कारण अजीर्णता अर्थात् विषालुता से कुप्रभावित होकर अपना रंग रूप बदलकर सहायता की गुहार करने लगते हैं।

यदि जलाभाव होगा तो पौधे दिन में अपनी पत्तियों को मुरझाया रूप देकर सिंचाई की माँग प्रस्तुत करते हैं। उन्हें यदि कीड़े-मकोड़े या रोग परेशान करते हैं तो भी वे अपने कटे फटे घावों तथा रोग लक्षणों द्वारा अपनी प्राण रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

तत्व	पौधों द्वारा प्रदर्शित न्यूनता-लक्षण
जस्ता (जिंक)	पत्तियों की शिराओं के मध्य पीली रेखाओं का बन जाना तथा पुरानी पत्तियों का मर जाना और पौधों का बौना होना।
बोरान	शीर्ष कलिका के पास की नई पत्तियों के आधार के पास पीलापन तथा उनका गिर जाना, जड़ों के शीर्ष भाग का सूखना, तनों व पत्तियों का सूखापन तथा पोरों (अन्तर्गांठों) का छोटा होना।
लोहा	बृहत शिराओं का हरापन तथा शिराओं के मध्य भाग का पीलापन, नवीन पत्तियों का हरित पदार्थ रहित होना, न्यूनता अधिक होने पर पत्तियों के शीर्ष तथा किनारों का जल जाना।
मैंगनीज	पत्तियों पर जगह-जगह जले हुए धब्बे पड़ जाना तथा उनका पीला होना, परन्तु साथ ही शिराओं का हरा बने रहना।
गंधक	पत्तियों की शिराओं का पीला पड़ना परन्तु शिराओं के मध्य भाग का अपेक्षाकृत हरा रहना, कुछ सूखे धब्बों का पड़ना, अपरिपक्व तथा हरे फलों का पाये जाना।
ताँबा	नवविकसित पत्तियों का झुलसकर गिर जाना।

अतः प्रत्येक कृषक को अपनी फसल के तत्व सम्बन्धी रोगों, विषालुता लक्षणों, कीड़ों तथा रोगों के विभिन्न लक्षणों का पूरा-पूरा अनुभव होना आवश्यक होता है। उनकी इस भाषा को समझ कर पौधों की आवश्यकता की पूर्ति कर उन्हें स्वस्थ रख कर अधिक उपज ली जा सकती है।

किसानों का सबसे बड़ा शत्रु घासपात

घासपात......घासपात......घासपात। संसार में सभी जगह घासपात उग आते हैं। कोई भी किसान चाहे वह एशिया, यूरोप, अफ्रीका, और मध्यपूर्व में खेती करता हो, अथवा उत्तर या दक्षिण अमेरिका में-घासपात से बच नहीं सकता। उसकी फसलों पर इनका दुष्प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। जिस प्रकार मृत्यु और कर अपरिहार्य हैं, उसी प्रकार जहाँ कहीं खाद्यान्न फसलें उगेंगी, वहाँ घासपात भी अवश्य उगेंगे।

घासपात ऐसे पौधों को कहते हैं, जो किसी स्थान पर अवांछित रूप से उग आते हों। इनके कारण किसानों को कीड़े-मकोड़ों, फसल के रोगों और महामारियों की अपेक्षा कहीं अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अकेले अमेरिका में ही, घासपात से प्रति वर्ष करोड़ों डालर की हानि होती है। हानिकारक पौधों को नष्ट करने के लिए किसान प्रतिवर्ष २॥ अरब डालर से अधिक धन व्यय करते हैं।

घासपात के विरुद्ध सदियों से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अभियान जारी है। यद्यपि उन्हें नष्ट करने की दिशा में, विशेष रूप से पिछले ३ दशाब्दों के दौरान सांस्कृतिक, यांत्रिक और जीव वैज्ञानिक नियंत्रण की विधियों के विकास के फलस्वरूप, पर्याप्त प्रगति हुई है, फिर भी घासपात आधुनिक खेती के लिए अभी भी एक गम्भीर समस्या बने हुए हैं। कुछ कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि घासपात का पूर्ण निरोध असम्भव है, फिर भी उन्हें कम करना और उनके कारण होने वाली क्षतियों को पर्याप्त रूप में घटा देना आवश्यक हैं।

घासपात हानिकारक क्यों हैं?

(१) घासपात के कारण पौधों से अनाजों की उपज बहुत कम हो जाती है और उनकी किस्म बहुत घटिया हो जाती है, खेती का खर्च बढ़ जाता है और उसके लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इनके कारण खेती के क्रियाकलाप में प्रायः बाधा उत्पन्न हो जाती है।

(२) मिट्टी से मिलने वाले पोषक तत्वों, जल, धूप और आवश्यक गैसों के लिए घासपात फसलों के गम्भीर प्रतियोगी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, सरसों के एक पौधे को जई के सुविकसित पौधे की अपेक्षा दुगनी नाइट्रोजन और फास्फोरस, ४ गुना पोटैशियम, और ४ गुने पानी की आवश्यकता होती है।

(३) फसलों को सींचने के लिए प्रयुक्त पानी और उर्वरक का अधिकांश घासपात के पेट में चला जाता है और इससे किसानों को लागत बढ़ जाती है।

(४) घासपात पकी फसलों की कटाई में भी बाधक होते हैं। कभी-कभी कड़े मोथों या घासपात के कारण फसल काटने के लिए प्रयुक्त मशीनें टूट जाती हैं। घासपात की निराई के कारण फसलों की कटाई का खर्च बढ़ जाता है। कितने ही घासपात रोग के कीटाणुओं को बढ़ावा देते है, जो वांछनीय फसलों को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

(५) कुछ घासपात जहरीले होते हैं और उन्हें खाने से दूध और मांस देने वाले पशु और मुर्गियां मर जाती हैं। कभी-कभी फसलों में मिले होने के कारण नशीले घासपात खाद्यान्न का विषाक्त कर देते हैं।

(६) घासपात बड़ी तेजी से फैलते हैं। चिरायता के हर पौधे से करोड़ों बीज उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत, अलफाल्फा घास के हर पौधे से ५० हजार बीज उत्पन्न होते हैं, जबकि गेहूँ के पौधे से औसत रूप से १२० बीज उत्पन्न होते हैं।

(७) घासपात बड़ी जल्दी बढ़ते हैं। नियंत्रण के लिए प्रयुक्त साधनों से उनके विकास की गति जल्दी

प्रभावित नहीं होती। इनके पौधे प्रायः कड़े होते हैं। खराब से खराब मौसम में भी वे उग आते हैं और बढ़ते हैं। उनमें नये वातावरण के अनुकूल अपने को ढालने की क्षमता बहुत अधिक होती है। उदाहरण के लिए, इस समय अमेरिका में जो मोथे और घासपात पाये जाते हैं, उनमें से ७० प्रतिशत से अधिक यूरोप से यहां आये हैं।

(८) घासपात केवल जमीन पर ही नहीं बल्कि पानी में भी उग आते हैं। पानी में उगने वाले घासपात बहुत ही कष्टदायक और मँहगे सिद्ध हो सकते हैं।

नियंत्रण की विधियाँ

नियंत्रित करने की विधियों के अन्तर्गत उनकी निराई और छँटाई के अलावा उन्हें जला कर भस्म कर देने के तरीके भी शामिल हैं। फसलों की अदला-बदली से भी घासपात को नष्ट करने में सहायता प्राप्त होती है।

हाल के वर्षों में, विश्व में जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से हुई है और खाद्योत्पादन में वृद्धि करने की दिशा में विशेष प्रयत्न किये गये हैं। विशेष रूप से अल्पविकसित देशों में खाद्यान्नों की बढ़ती हुई आवश्यकता को दृष्टिगत रख कर घासपात को नष्ट और कम करने के लिए ठोस विधियों की आवश्यकता को आम तौर से स्वीकार किया गया है।

घासपात को नष्ट करने के लिए जीव-वैज्ञानिक विधियों के अंतर्गत कीड़े-मकोड़ों और पौध रोगों का प्रयोग किया गया है। यह विधि प्रभावकारी भी सिद्ध हुई है। किन्तु घासपात को नष्ट करने वाले रसायनों की खोज ने पिछले दो दशाब्दों के दौरान फसलों की उपज पर भारी प्रभाव डाला है।

अमेरिका में घासपात-नाशक रसायनों का उत्पादन करने वाले उद्योग का तीव्र गति से विकास हुआ है। १९६४ में विभिन्न प्रकार के २५ करोड़ पौंड घासपात-नाशक रसायनों का उत्पादन हुआ। इसमें से ३.६ करोड़ पौंड से अधिक का निर्यात किया गया १९५९ में, अमेरिका की फसलों वाली ५,३ करोड़ एकड़ भूमि पर घासपात-नाशक रसायनों का प्रयोग किया गया। १९६२ में भूमि का यह क्षेत्रफल बढ़ कर ७ करोड़ एकड़ से अधिक हो गया। आजकल ८ करोड़ एकड़ से अधिक भूमि पर घासपात-नाशक रसायनों का प्रयोग हो रहा है।

इन रसायनों (हर्बीसाइडस) की सहायता से किसान बड़ी और श्रेष्ठतर फसलें उगाने में समर्थ हुए हैं। जई, जौ, गेहूँ और चारे की फसलों में रसायनों द्वारा घासपात पर नियंत्रण लगाने से उनके उत्पादन में लगभग २० प्रतिशत वृद्धि हुई है।

चरागाहों में रसायनों का प्रयोग करके विषाक्त घासपात को नष्ट किया गया है, जिसके फलस्वरूप, चारे के पौधे बढ़कर अधिक लम्बे हुए हैं और उन्हें चरने वाली गायों की दूध मात्रा और किस्म में सुधार हुआ है। वैज्ञानिकों का कहना है कि घासपात-नाशक दवाओं के प्रयोग से खाद्य-पदार्थों की किस्म खराब नहीं होती।

घासपात को नष्ट करने की दिशा में हुई नवीन खोजों में एक यह है कि कुछ कीड़े केवल घासपात खा कर ही जीवित रहना चाहते हैं। वैज्ञानिक यह पता लगाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि कुछ प्रकार के कीड़े कुछ विशेष पौधों से ही पोषण क्यों प्राप्त करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, यूरोप में पाया जाने वाला एक प्रकार का गुबरैला कनाडियन थिसल (भड़भांड की एक किस्म) की वृद्धि को नियंत्रित करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह कँटीला पौधा उत्तरी अमेरिका में बहुत पाया जाता है। अनुसंधान से पता चला है कि प्रति वर्ग गज क्षेत्र में दो भड़भांड उग आने से फसलों की उपज में १९ प्रतिशत कमी आ सकती है। यदि प्रति वर्ग गज भूमि में उनके १९ पौधे हों, तो उपज में ७० प्रतिशत कमी आ सकती है।

विस्कौंसिन विश्वविद्यालय में घासपात-नियंत्रण विषय के प्रोफेसर, डा० ले रायहोल्म ने कहा, "विश्व का अधिकांश खाद्यान्न विषुवत रेखा के निकट पृथ्वी

को चारों ओर से घेरने वाली भूमि की एक ४ हजार मील चौड़ी पट्टी पर ही पैदा होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश, यही वह क्षेत्र भी है, जहाँ घासपात के नियंत्रण के महत्व को लोग बहुत कम अनुभव करते हैं और तत्सम्बन्धी विधियों का न्यूनतम प्रयोग होता है।" उन्होंने यह भी बताया कि धान, गेहूँ, गन्ना, छोटे अनाजों और सोरघम के खेतों में अनायास उग आये घासपात के कारण उपज की जो हानि होती है, उसके कारण भी विश्व में खाद्याभाव की समस्या इतनी गम्भीर हुई है।

विश्व के कुछ भागों में खेतो में इस प्रकार उत्पन्न अवांछित घासपात के कारण खेती करना अत्यन्त दुष्कर और अलाभकर है।

अमेरिका में भी, जहाँ खेती की उत्पादकता विश्व में सबसे अधिक है, घासपात के कारण फसलों की उपज बहुत कम हो जाती है। घासपात के कारण पिछले १० वर्षों के भीतर प्रायः ४४ करोड़ डालर मूल्य के लगभग ८६ लाख टन मक्के की वार्षिक क्षति हुई है। गेहूँ, जई, जौ, चावल, सोयाबीन, रुन, सब्जी, दाल और घासों की फसलों की भी भारी क्षति पहुँची है।

आइडाहो विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक डा० लैम्बर्ट सी० एरिक्सन के अनुसार, यद्यपि हाल के वर्षों में घसापात-नियंत्रण सम्बन्धी विज्ञान ने भारी प्रगति की है, फिर भी नियंत्रण करने वाले साधनों की सुलभता के अनुरूप इस समस्या की तीव्रता में कमी नहीं आ सकी है। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व-भर में घासपात की समस्या तब तक बराबर बढ़ती रहेगी, जब तक ठोस और सतर्कतापूर्ण घासपात-नियंत्रण कार्यक्रम लागू नहीं होंगे।

भारतीय मनीषियों के विचारों से लाभान्वित होने के लिए आवश्यक है कि हिन्दी के साथ ही संस्कृत का भी अध्ययन किया जाय। विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने में भाषायें बाधक हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम सभी अवरोधों को दूर करके भाषाओं के सरलतम रूप का विकास करें।

प्रश्न चर्चा—विज्ञान का मनोविज्ञान

आप वैज्ञानिक हैं !!

क्या ?

१—आपने कभी वैज्ञानिक बनने का सपना बनाया था या यूँही इस क्षेत्र में चले आये ?

२—आपके मन में सतत नवीन विचार उठते रहते हैं जिन्हें आप लिपिबद्ध करते रहते हैं

३—आप सार्वजनिक छुट्टियों में भी प्रयोगशाला में आते रहते हैं

४—आप समय की परवाह किये बिना लगातार कार्य करते रहते हैं

५—इधर-उधर का शोर आपके चित्त की एकाग्रता को भंग कर देता है

६—आप अपने कार्य की प्रगति अपने मित्रों से बताते रहते हैं

७—आप अपने क्षेत्र के वैज्ञानिकों से प्रतिस्पर्धा का अथवा ईर्ष्या का भाव रखते हैं और वैज्ञानिक जगत की हलचलों से आप क्षुब्ध होते रहते हैं

८—आप प्रयोगशाला के साथ ही वाचनालय में समान रूप से अपना समय बिताना पसन्द करते हैं

९—आप विदेश में जाकर अनुभव प्राप्त करने को सर्वोपरि महत्व देते हैं

१०—आप अन्य देश की प्रयोगशालाओं में जाकर कार्य करना पसन्द करेंगे

११—आप देश के वैज्ञानिक वातावरण में सचाई एवं व्यवहारिकता पाते हैं

१२—आपकी राय में भारत महानतम वैज्ञानिक उपलब्धि प्राप्त कर सका है अथवा उसके आगे प्राप्त करना है

१३—आप लेखन द्वारा जीविकोपार्जन को निकृष्ठ समझते हैं

१४—आप परीक्षा-कार्य से अधिकाधिक आर्थिक लाभ उठाना उचित समझते हैं

१५—आप गुरु-शिष्य परम्परा में निष्ठा रखते हैं

१६—आप नितान्त कर्मठ एवं कुशल अध्यापकों की नियुक्ति के समर्थक हैं

१७—आप समाचार पत्रों में अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों पर कुछ लिखना पसन्द करते हैं

१८—आपको हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव खटकता है ? और यदि हाँ तो आप उसके लिये कुछ करते हैं

१९—आपके मन में राजनीतिज्ञों, छात्रों के लिये असन्तोष व्याप्त है

२०—क्या भारत की निरपेक्षता नीति आपको रुचिकर लगती है ।

२१—प्रयोगशाला में बरती जाने वाली निष्ठा से समाज में सुखपूर्वक जिया जा सकता है

यदि आप उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर में से तीन चौथाई प्रश्नों के उत्तर हाँ में दे रहे हैं तो आप निश्चित रूप से वैज्ञानिक हैं। अगली प्रश्न चर्चा में दूसरी किस्त प्रस्तुत की जावेगी ।

पाठक अपने विचार प्रेषित कर सकते हैं ।

—सम्पादक

आवास-अलंकरण

● डा० शिवगोपाल मिश्र

जितनी आवश्यकता आवास तैयार करने की है उससे अधिक उसे स्वच्छ और सुन्दर रखने की है। वस्तुतः यही आवास अलंकरण है।

यदि कोई यह कहे कि तड़क-भड़क की अपेक्षा सादगी अच्छी है तो इसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए किन्तु असलियत यह है कि कुछ हद तक तड़क-भड़क को प्रश्रय देना ही होगा। फिर आवास के मामले में तो और भी। जो लोग निर्धन हैं, वे भले ही आवास अलंकरण को अपव्यय एवं निरर्थ समझें किन्तु जो अनुभवी हैं और साथ ही साधन सम्पन्न हैं वे आवास अलंकरण को अपरिहार्य मानते आये हैं। तभी तो प्रत्येक युग में प्रत्येक शहर या ग्राम में अच्छे-अच्छे तथा दर्शनीय आवास या प्रासाद बनाये जाते रहे हैं।

अलंकरण चाहे जिस क्षेत्र में प्रयुक्त हो, उसका मुख्य उद्देश्य सुन्दरता की वृद्धि है और यह सुन्दरता प्रत्येक मनुष्य को अच्छी लगने वाली अनुभूति है। यह संसार इसीलिये रहने योग्य स्थान है क्योंकि इसमें सुन्दर वस्तुओं की बहुलता है।

आवासों अर्थात् रहने के स्थानों के अलंकरण के प्रधान अंग निम्नलिखित हैं:—

१. रंजक या पेंट २. इनैमेल ३. लैकर ४. वार्निश ५. कागज आदि।

इन पदार्थों को आवासों के अलंकरण में प्रयुक्त किये जाने के प्रमुख तीन उद्देश्य माने जा सकते हैं:—

(अ) सुरक्षा (आ) रूप (इ) स्वच्छता

यदि घरों के बनाने में प्रयुक्त सामग्रियों को वायुमण्डल के प्रभावों से न बचाया जाय तो वे शीघ्र ही विनष्ट हो जायँ। यह विनाश वायुमण्डल की आक्सिजन, आर्द्रता, तथा सूक्ष्म जीवों द्वारा वर्द्धित होता है। लकड़ी, लोहा या अन्य पदार्थ, जो घरों के बनाने में प्रयुक्त होते हैं वे सरलता से नष्ट हो सकते हैं किन्तु यदि उनकी सतहों पर पेंट या रंजक पदार्थ अथवा अन्य किसी पदार्थ का पतला लेप कर दिया जाय तो उनकी आयु बढ़ जाती है। साथ ही ये पदार्थ घर की सुन्दरता में वृद्धि करते हैं। हाँ, इनके मूल्य पर ध्यान देना आवश्यक है। मूल्यवान सामग्रियों के संरक्षण में महँगे से महँगा पेंट लगाने में सोच विचार नहीं करना चाहिए।

उन लोगों के लिये जो सर्वत्र सुन्दरता का दर्शन करना चाहते हैं, जिन्हें रंगों का मिश्रण प्रिय है, जिनकी आँखें रंगावलियों में डूबी रहना चाहती हैं, ये रंजक तुष्टि प्रदान करने में समर्थ होते हैं। आजकल विविध वर्णों वाले रंजक प्राप्त हैं।

न केवल संरक्षण एवं सौंदर्य की दृष्टि से वरन स्वच्छता की दृष्टि से भी रंजक आदि उपयोगी हैं। खुरदुरी सतहें शीशे के समान चमकने वाली, समतल तथा छिद्रों आदि से रहित हो जाती हैं।

पेंट या रंजक :

पेंट या रंजक चार के अवयव होते हैं--१. पिगमेंट या रंजक २. तैल ३. तनुकारक ४. शुष्कक इन चारों अवयवों के संयोग से जो पदार्थ प्राप्त होता है उसमें विशेष रंग होता है। यदि श्वेत रंग का ही पेंट बने तो शायद उतना आकर्षक न लगे फलतः रंग लाने की दृष्टि से और भी पदार्थ मिला दिए जाते हैं। शायद पचास वर्ष पूर्व जितने पेंट ज्ञात थे उनसे कहीं अधिक और आकर्षक पेंट अब ज्ञात हैं। रसायन

विज्ञान ने मानव की रुचियों को परिष्कृत करने में जो सहयोग दिया है वह पेंट के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। पेंट के चारों अवयवों में से उनके पृथक-पृथक कार्य हैं। पिगमेंट से पेंट को जैसे शरीर प्राप्त होता है अर्थात् किसी सतह पर प्रसरित होने का गुण मिलता है जब कि तैल में कोई पिंगमेंट निलम्बित किया जाता है और उस पर टिके रहने में तैल सहायक बनता है। किन्तु सदैव पिगमेंट और तेल ही नहीं प्रयुक्त किये जाते। उनके तनूकरण की आवश्यकता आ पड़ती है। इससे पेंट का प्रवेश भीतर की परतों में हो सकता है, सतह पर पेंट की मोटाई कम की जा सकती है और पेंट की गई सतह आकर्षक बन सकती है। इन सब बातों के साथ ही यह भी आवश्यक है कि किसी सतह पर लेप किया गया पेंट जल्द ही सूख भी जाय। इसके लिये शुष्कक की आवश्यकता पड़ती है। अंत में विभिन्न रंगों के लाने के उद्देश्य से इसमें कुछ रंगीन पदार्थ मिलाये जा सकते हैं।

पिंगमेंट

जिन प्रमुख पिगमेंटों का प्रयोग पेंटों में होता है, वे हैं। श्वेत-सीस, जिंक श्वेत, टाइटेनियम आक्साइड तथा लिथोपोन।

श्वेत सीस की रासयनिक संघटना $Pb(OH)_2$ $2PbCO_3$ है जिससे इसे क्षारकीय लेडकार्बोनेट भी कहाजाता है। इस पदार्थ को तैयार करने के लिये डच प्रक्रम प्रयुक्त किया जाया हैजिसमें सीसे के छीलन को सिरके के ऊपर फैला दिया जाता है जिससे पहले लेड ऐसीटेट बनता है। जिन मिट्टी के पात्रों में उपर्युक्त क्रिया होती है उनके ऊपर खैर की छाल फैला ली जाती है। इससे कार्बन डाइ आक्साइड उत्पन्न होती जो ऐसीटेट से क्रिया करके क्षारकीय लेड कार्बोनट बनाती है।

इस पदार्थ से श्वेत रंग का पेंट प्राप्त होता है जो सरलता से सतह के ऊपर फैलता है किन्तु इसका सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि यदि वायु में गन्धक के गैसीय यौगिक विद्यमान हों तो यह काला पड़ जाता है।

जिंक श्वेत जिंक आक्साइड है जिसे जिंक को आक्सीजन में गरम करके तैयार किया जाता है। यद्यपि यह श्वेत सीसे से कहीं अधिक श्वेत होता है किन्तु इसमें प्रसरण की गति कम है। इससे बनी सतह दृढ़ होती है किन्तु कालक्रम में चिटक जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गन्धक के गैसीय यौगिकों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिससे रंगी गई सतह सदैव चमकती रहती है, धूमिल नहीं पड़ती। व्यवहारिक दृष्टि से श्वेत सीस तथा जिंक श्वेत को मिलाकर प्रयोग करना उपयोगी है।

टाइटेनियम आक्साइड में प्रसरण की शक्ति काफी है किन्तु महँगा होने के कारण पृथक से प्रयुक्त नहीं किया जाता। प्रायः श्वेत सीसे के साथ इसे मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है।

लिथोपोन जिंक सल्फेट तथा बैरियम सल्फाइड को गरम करके बनाया जाता है। इसकी विशेषता है श्वेत चमक तथा अच्छी प्रसरण गति किन्तु सूर्य के प्रकाश में यह मलिन पड़ने लगता है अतः आंतरिक रंगाई के लिये ही इसका प्रयोग संस्तुत किया जाता है।

कभी-कभी पिगमेंटों को अपमिश्रित करने के लिये बेरियम सल्फेट, सिकता, जिप्सम तथा खड़िया मिट्टी का व्यवहार किया जाता है। इससे पेंट के मूल्य में कमी तो आती है किन्तु प्रायः इससे रंजक के गुणों में ह्रास आ जाता है।

पिगमेंटों को सतहों पर लगाने के लिये उन्हें प्रायः अलसी के तेल में निलम्बित किया जाता है। प्रायः इस तेल को सीसे या मेंगनीज यौगिक के साथ उबाल कर काम में लाया जाता है। इससे यह तेल जल्दी सूखता है। यदि तेल में अपमिश्रण कर दिया जाता है तो वह सरलता से सूखता नहीं। कभी-कभी तारपीन का तेल ($C_{10}H_{16}$) मिला कर उपर्युक्त तेल की प्रवेश्यता, सूखने में शीघ्रता तथा पेंट की कठोरता में वृद्धि कर दी जाती है। इस अवस्था में तारपीन का तेल तनूकारक कहलाता है। लाल सीसा Pb_3O_4 तथा मैंगनीज डाइआक्साइड ऐसे यौगिक हैं जिन्हें मिला देने से पेंट जल्दी सूखता है। इन पदार्थों को शुष्कक कहते हैं।

विभिन्न रंग लाने के लिये पेंट में जिन अन्य यौगिकों को मिलाया जाता है उनकी सूची निम्नांकित प्रकार है :

हरा रंग : क्रोम हरित, जिंक हरित

नीला रंग : प्राशयन ब्लू ($Fe_4Fe(CN_6)_3$ अल्ट्रामैरीन ब्लू, कोबाल्टब्लू ($Co_3(AlO_3)_2$

लाल रंग: लाल सीस ($Pb_3(O_4)$, वेनिसीलाल Fe_2O_3, सिंदूर (HgS)

पीला रंग: क्रोम पीत ($PbCrO_4$), जिंकक्रोम ($ZnCrO_4$) तथा कैडमियम पीत (CdS)

श्याम रंग:कजली, ग्रेफाइट, अस्थि श्याम

भूरा रंग: लोह तथा मैंगनीज के यौगिक

पेंटों के प्रकार: ऊपर हमने जिस प्रकार से पेंट के अवयवों की चर्चा की उससे जो मिश्रण प्राप्त होगा वह सतहों में ऊपर-ऊपर लगाया जाता है अतः उसे वाह्य पेंट कहते हैं। इसमें सभी प्रकार के पिगमेंटों को अलसी के तेल में थोडा तारपीन का तेल डाल कर पेंट तैयार किया जाता है। किन्तु जब तारपीन तेल की मात्रा अधिक किन्तु अलसी के तेल की मात्रा कम करके पिगमेंटों से पेंट तैयार किये जाते हैं तो उन्हें अन्तः पेंट कहते हैं। इस प्रकार का पेंट धुँधला रहता है। अलसी के तेल से कुछ चमक आती है किन्तु वार्निश मिलाने से उसमें काफी चमक आ जाती है।

पेंट का एक और प्रकार है जलीय पेंट। प्रायः जिप्सम को ग्लू तथा रंग के साथ जल में घोल लेते हैं। इसे कैल्सीमीन कहते हैं। यह रंगने पर अत्याकर्षक रंग प्रदान करता है। इसका उपयोग घरों के भीतरी हिस्सों की पुताई के लिये किया जाता है। घर के बाहरी भागों को चूने से पोता जाता है।

वार्निश: जब रेजिन या गोंद को ऐल्कोहल या अलसी के तेल में घोल लिया जाता है तो उसे वार्निश कहते हैं। यह दो प्रकार की मानी जाती है :—

१. स्पिरिट वार्निश–गोंद या रेजिन को ऐल्कोहल में विलयित करके तैयार की जाती है। चपड़ा इस कोटि को बहुप्रयुक्त वार्निश है। यह चपडा पेड़ की छाल को छेद करके रस चूसने वाले कीटों द्वारा स्रावित रालमय पदार्थ है। जब चपड़े को लकडी के बने सामान में पोता जाता है तो ऐल्कोहल उड़ जाता है और चपड़े की पतली सतह लकड़ी पर रह जाती है। यह वार्निश अधिक टिकाऊ नहीं होती।

२. तैल वार्निश: रेजिन या गोंद को अलसी के तेल में घोलकर इसे तैयार करते हैं। प्राय इसके साथ तारपीन का तेल मिला दिया जाता है। गोंद तथा तेल के सूखने तथा आक्सीकरण से एक कठोर एवं टिकाऊ सतह बन जाती है।

इनैमेल: इनैमेल वह वार्निश है जिसमें कोई पिगमेंट मिला रहता है। यह पिगमेंट उन पिगमेंटों में से कोई एक हो सकता है जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इनैमेल का प्रयोग अन्तः पेंट के रूप में होता है अतः प्रायः वार्निश के साथ लिथोपोन का ही व्यवहार किया जाता है। सूखने पर ब्रश करने का कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ता।

[क्रमशः]

सार संकलन

१. अन्तरिक्षीय संचार प्रणाली से भूमण्डल पर विविध लाभ

दिल्ली के एक अस्पताल में एक शल्यचिकित्सक अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन के निकट यू० एस० नेशनल लाइब्रेरी और मैडिसिन से टैलिटाइप द्वारा प्राप्त अनुसन्धानात्मक जानकारी की मदद से एक कठिन रोग का विश्लेषण करता है। अफ्रीका के एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थी टैलिविजन पर एक प्रमुख फ्रांसीसी वैज्ञानिक का व्याख्यान सीधे पेरिस से सुनते हैं। इण्डोनेशिया में इंजिनियर किसी नई निर्माण-योजना के बारे में अपने आँकड़े टोकियो में गणनायन्त्र के आंकड़ों से मिलाते हैं। मेड्रिड का एक व्यापारी अपने टेलिफोन का चोंगा उठाता है और एक मिनट के अन्दर ही १० हजार मील दूर अपने किसी ग्राहक से बातचीत करता है।

अब से कुल ५ वर्ष पहले ऐसी बातों को भविष्य के स्वप्न मात्र समझा जाता था, किन्तु अब ये बातें व्यावहारिकता की सीमा में आ गई हैं।

अन्तरिक्ष-युग की सबसे विलक्षण देन संचार-उपग्रह या पृथ्वी से २२,५०० मील (३५,००७ किलोमीटर) की ऊँचाई पर चक्कर काटने वाले 'कौमसेट्स' (कम्यूनिकेशन्स सैटेलाइट्स) हैं जिन्होंने संचार-व्यवस्था में क्रान्ति कर दी है।

विश्वव्यापी संजाल: पिछले ५ वर्षों में भारत समेत ६३ देशों ने इन संचार-उपग्रहों के सहारे विश्वव्यापी संचार-व्यवस्था की बुनियाद डाली है। अभी यह व्यवस्था शैशवावस्था में है किन्तु यह अब भी प्रत्येक महाद्वीप में काम करती है और प्रतिदिन इसके माध्यम से टैलिफोन और टैलिविजन के सभी प्रकार के हजारों प्रसारण किये जाते हैं। इस व्यवस्था को 'इन्टैलसैट' (इन्टरनेशनल टैलिकम्युनिकेशन्स सैटेलाइट) की संज्ञा की गई है।

इन दिनों वाशिंगटन में दूर-संचार उपग्रहों की प्रणाली से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहा है, जिसमें भारत समेत ६३ देशों के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं। वे 'इन्टैलसैट' प्रणाली के संचालन का स्थायी प्रबन्ध करने के लिए अमेरिकी राजधानी में एकत्र हुए हैं।

इस सम्मेलन के जो उपाध्यक्ष चुने गये हैं उनमें भारत-सरकार के संचार-मन्त्रालय के सचिव श्री एल० सी० जैन भी हैं। जो देश 'इन्टैलसैट' के सदस्य नहीं हैं उन्होंने सम्मेलन में अपने प्रेक्षक भेजे हैं। हर देश 'इन्टैलसैट' का सदस्य बन सकता है। बहुत ऊँचाई पर उड़ने वाले संचार-उपग्रहों (कौमसेट्स) में यह अनूठी क्षमता है कि वे मनुष्यों और देशों के लाभार्थ अच्छी संचार-प्रणाली की बाधाओं को भंग कर सकें। 'कौमसेट' उपग्रह विशेष रूप से एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के विकासशील देशों में २ अरब लोगों के लिए सहायक होंगे।

इन उपग्रहों से औद्योगिक देशों में संचार-व्यवस्था में सुधार होगा। किन्तु उनकी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका विकासशील देश में उपयुक्त संचार प्रणाली का ढांचा बनाने में उनकी क्षमता के रूप में है। इस समय सीधे एशिया से अफ्रीका को अथवा उत्तरी अफ्रीका से दक्षिणी अफ्रीका का संचार-सम्पर्क कायम करना सम्भव नहीं है। दक्षिण अमेरिका के अधिकांश देश अपने पड़ोसी देशों के साथ अच्छी तरह संचार-सम्पर्क नहीं रख सकते।

अभी कुछ समय पहले तक चिली से पड़ोसी देश ब्राजिल की टैलिफोन का सम्पर्क न्यूयार्क होकर था और इसमें हजारों मील का फेर पड़ता था।

'कामसेट्स' उपग्रहों से इस स्थिति में कैसे अन्तर आयेगा?

असल में इस प्रकार का हरेक उपग्रह आकाश में टैलिफोन का स्विचबोर्ड है। उपग्रह को पृथ्वी से सन्देश प्राप्त होते हैं और फिर वहाँ से उन्हें विद्युदाणविक विधि से पृथ्वी के किसी दूसरे स्थल को भेज दिया जाता है। प्रत्येक उपग्रह अपनी ऊंचाई (२२,५०० मील या ३६,००० किलोमीटर) के कारण हर समय पृथ्वी के एक-तिहाए पृष्ठ को देख सकता है। इस प्रकार हिन्द महासागर के ऊपर चक्कर काटने वाला एक उपग्रह पूर्वी अफ्रीका से सन्देश या टैलिविजन-चित्र लेकर उन्हें जापान को, और इन दो स्थलों के बीच में सभी जगहों को, प्रेषित कर सकता है।

एक साथ सन्देशः संचार-उपग्रह बहुत से सन्देशों को एक साथ ही सम्प्रेषित कर सकते हैं। पहले संचार-उपग्रह 'टैलस्टार' को १९६२ में पृथ्वी की नीची कक्षा में स्थापित किया गया था और वह ३०० से कम सन्देशों को संभाल सकता था।

अब इन्टैलसैट' के सदस्य देश जिन नवीनतम संचार-उपग्रहों का संचालन करते हैं, वे टैलिफोनों, टैलिग्राफों, टैलिविजन प्रसारणों और अन्य संचर-सम्पर्कों के दोतरफा १, २०० सूत्रों को एक ही समय में चालू रख सकते हैं।

कुछ वर्षों के भीतर अधिक शक्तिशाली उपग्रह देशों के भीतर भी संचार-सेवाएं उपलब्ध कर सकेंगे। अमेरिका के 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' ने एक ऐसा परीक्षणात्मक उपग्रह तैयार किया है जो न केवल पृथ्वी के केन्द्रों से प्रेषित सन्देशों का आदान कर सकेगा, बल्कि समुद्रों में चलते जहाजों और आकाश में उड़ते वायुयानों के सन्देशों को भी इधर-उधर भेज सकेगा। ६,००० परिपथ वाले जो विशाल उपग्रह बनाये जा रहे हैं उस प्रकार के एक उपग्रह के निर्माण पर लगभग २ करोड़ डालर (१५ करोड़ रुपये) लागत आयेगी।

कम लागतः किन्तु लागत का हिसाब संचार-उपग्रह की क्षमता के अनुपात से ही लगाना होगा और यह क्षमता संसार में चालू किसी भी संचार-प्रणाली की अपेक्षा अधिक है। जब एक उपग्रह पूरी तरह अपना कारोबार करने लगे तब उसके हजारों परिपथों में से किसी एक पर कोई एक सन्देश भेजने में बहुत कम लागत आयेगी। भारत जैसे किसी देश के लिए संचार-उपग्रहों के माध्यम से अपनी स्थानीय संचार-सेवाओं का विस्तर करने के लाभ बहुत अधिक और अनगिनत हैं।

२. मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली अभी तक रहस्यपूर्ण

हम कैसे सोचते हैं? मस्तिष्क में वह कौन सी चीज है जो हमें स्मरणशक्ति प्रदान करती है? मस्तिष्क में वह कौन सी शक्ति है जो हमें जानीपहचानी आकृति, अथवा दृश्य या छपे हुए पृष्ठ को पहचानने में मदद देती है?

२० वीं शताब्दी की इस तीसरी चौथाई में जब मनुष्य बाह्य अन्तरिक्ष में जा सकता है, अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य के सिर के ऊपरी भाग का जो आन्तरिक भाग है उसमें वास्तव में क्या क्रिया होती है। अपनी कार्य-प्रणाली के रहस्य को जानने में मस्तिष्क की गति बहुत मन्द रही है। मानसिक क्रियाकलाप के शरीर-विज्ञान सम्बन्धी पहलुओं का पता लगाने के साधन अब भी बहुत सीमित हैं।

वैज्ञानिक लोग चिरकाल से यह मानते हैं कि प्रत्येक विचार और यहाँ तक कि प्रत्येक स्वप्न और अचेतनता अथवा अचेतनता की अवस्था में होने वाली प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया किसी न किसी तरह किसी शारीरिक तरीके से प्रकट होनी चाहिए। किन्तु अभी इस बारे में बहुत कम जाना जा सका है कि ये क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं क्या होनी चाहिए और उनका किसी विचार अथवा प्रेरणा से कैसे सम्बन्ध हो सकता है। तथापि मस्तिष्क के मामले में वैज्ञानिक लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। वे थोड़ा-थोड़ा करके उसके भेद को जानते जा रहे हैं। यद्यपि अनुसन्धान का यह कार्य अभी अपनी शैशवावस्था में ही है, पर इसकी शुरूआत बड़ी चमत्कार पूर्ण रही है।

यद्यपि खोजबीन का कार्य कई दिशाओं में चल रहा है किन्तु मानवी मस्तिष्क के बारे में विज्ञान के

अभियान का एक अच्छा-खासा दृष्टान्त वह परीक्षण है जो गेन्सविल (फ्लोरिडा) के फ्लोरिडा विश्वविद्यालय में जे० हिलिस मिलर हैल्थ सेन्टर की दृश्य विज्ञान प्रयोगशाला में किया गया है। बहुत पहले से यह विदित है कि मस्तिष्क के कुछ भाग विशिष्ट क्रियाओं का नियमन करते हैं। इस प्रकार, पर्किन्सन रोग जैसे कुछ रोगों के लक्षणों में रोगी को राहत देने के लिए मस्तिष्क की शल्यक्रिया द्वारा मस्तिष्क के छोटे-छोटे भागों को बदलना सम्भव हो गया है।

दृश्य विज्ञान प्रयोगशाला में खोपडी के पिछले भाग के उस उभरे हुए हिस्से के बारे में परीक्षण किये गये हैं जिसे मस्तिष्क का पिछला भाग कहते हैं। यही वह भाग है जहाँ किसी चीज को देखने के परिणाम स्वरूप मस्तिष्क में होने वाली क्रियाएँ सबसे अधिक आसानी से देखी जा सकती हैं।

फ्लोरिडा के अनुसंधानकर्ता अपने परीक्षणों में मस्तिष्क की तरंगों का विश्लेषण करने के लिए गणनायन्त्रों का उपयोग करते हैं। मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न वैद्युतिक तरंगों का पता लगाने और उन्हें अंकित करने के लिए चिरकाल से इलैक्ट्रो-एन्सेफैलो-ग्राफ (ई० ई० जी०) नामक उपकरण का प्रयोग किया जा रहा है। ई० ई० जी० द्वारा इन तरंगों को कागज के फीते पर लहराती हुई रेखाओं के रूप में अंकित किया जाता है, इसीलिए इन्हें मस्तिष्क की तरंगें कहा जाता है।

मस्तिष्क की तरंगों से, विश्लेषणकर्ता आसानी से यह निश्चय कर सकते हैं कि जच अथवा निगरानी किया जाने वाला व्यक्ति जागा हुआ है या सोया हुआ है और क्या वह अपस्मार जैसे रोगों की अवस्थाओं से पीड़ित है। विश्वविद्यालय के जिन छात्रों ने इन परीक्षणों के लिए अपनी सेवाएं अर्पित की हैं वे अपने सिर पर एक उपकरण (हैडसैट्स) पहन लेते हैं। यह उपकरण उस उपकरण जैसा दिखाई देता है जैसा कि टैलिफोन के कुछ आपरेटर अपने कानों के दोनों ओर लगाते हैं। किन्तु इन उपकरणों में कान को सुनाई देने वाले यन्त्रों के बजाय छोटे-छोटे इलैक्ट्रोड होते हैं जो मस्तिष्क के पिछले भाग को धीरे-धीरे दबाते हैं।

स्वयंसेवकों को एक अन्धेरे और ध्वनि-अवरोधक कमरे में रखा जाता है। तब उन पर रोशनी डाली जाती है। प्रश्न यह है कि तब मस्तिष्क की तरंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

मानवी विश्लेषणकर्ता तरंगों के रूप में किसी प्रकार के परिवर्तन का पता नहीं लगा सकते। किन्तु जब 'सामान्य गणनायन्त्रों' द्वारा जाँच-पड़ताल की गई तो प्रकाश के परिणामस्वरूप तरंगों में निश्चित परिवर्तन दिखाई दिये। गणनायन्त्र वैज्ञानिकों को मस्तिष्क की तरंगों में उस स्थान का निर्देश सही तौर पर कर सकते हैं जहां उत्प्रेरित प्रतिक्रियाएं होती हैं।

इस सिलसिले में और अधिक परीक्षण करते हुए, विभिन्न रंगों के प्रकाश का उपयोग किया गया और उससे यह पता चला कि प्रत्येक भिन्न रंग से मस्तिष्क की तरंगों का रूप कुछ भिन्न हो जाता है। परीक्षण कर्ताओं का विश्वास है कि दो या तीन वर्षों तक और परीक्षण करने के बाद वे इस स्थिति में हो जायेंगे कि मस्तिष्क तरंग को देख कर वह बतला सकें कि व्यक्ति को रंग की पहचान है या नहीं और वह कहाँ तक रंग को नहीं पहचान पा रहा है।

निःसन्देह यह अनुसन्धान के क्षेत्र में एक सफलता होगी। दृष्टि सम्बन्धी चार्टों की सहायता से सरलता पूर्वक वर्णान्धता को निश्चित किया जा सकता है किन्तु इसके लिये सम्बन्धित व्यक्ति को सहयोग की आवश्यकता है। यदि मस्तिष्क की तरंगों से वर्णान्धता के कारण का पता लगाया जा सके तो ऐसे व्यक्तियों की भी जांच की जा सकती है जो कुछ बताने में असमर्थ हों अथवा बताना न चाहता हो। कोई भी वैज्ञानिक यह भविष्यवाणी करने को तैयार नहीं है कि मस्तिष्क की तरंगों से सीधे किसी व्यक्ति के विचारों को जानना सम्भव है। किन्तु परीक्षणों से यह प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है उसका बड़ा महत्वपूर्ण प्रयोग किया जा सकता है।

अब तक परीक्षणकर्ता मस्तिष्क में रसोलियों का पता लगाने समर्थ हो चुके हैं। यद्यपि मस्तिष्क में पता लगाने की अन्य विधियाँ भी हैं, पर इस नई विधि द्वारा उनका ठीक-ठीक निदान किया जा सकता है। इसी प्रकार, इस बात की सम्भावना है कि इस विधि से अन्य रोगों का पता लगाया जा सकेगा अथवा उनका निदान किया जा सकेगा। दृष्टि सम्बन्धी परीक्षणों के साथ-साथ श्रवण सम्बन्धी परीक्षण भी किये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्राप्त अनुभव से वैज्ञानिक लोग अब शायद श्रवण शक्ति में हुई कमी की जाँच कर सकेंगे और यह भी मालूम कर सकेंगे कि व्यक्ति कितना बहरा है। इससे पूर्व ऐसा करना सम्भव नहीं था।

कोई व्यक्ति उस ध्वनि के स्रोत के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता जो निरन्तर मस्तिष्क में पैदा होती रहती हैं। वास्तव में वह ध्वनि नहीं है। वह तो विद्युत् तरंग है। इस सम्बन्ध में ऐसी आम धारणा है कि यह ध्वनि मस्तिष्क की सामान्य क्रियाओं से उत्पन्न होती रहती है। शरीर के तापमान, रक्तचाप, श्वास क्रिया, पाचन क्रिया तथा शरीर की उन अन्य गतिविधियों के सम्बन्ध में मस्तिष्क द्वारा निरन्तर मार्ग-दर्शन किया जाता है जिनका केवल मृत्यु के साथ अन्त होता है।

वर्षों से, अनुसन्धानकर्ता मस्तिष्क की क्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए पशुओं के मस्तिष्क की छानबीन करते रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क की रासायनिक एवं विद्युत् सम्बन्धी गतिविधियों के विषय में जानकारी मिलनी प्रारम्भ हो गई। किन्तु इससे यह भी पता चला है कि पशुओं के सम्बन्ध में किये गये परीक्षणों का मनुष्य के मस्तिष्क के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए सीमित महत्व है। उदाहरण के तौर पर बिल्लियों की दृष्टि मनुष्यों की दृष्टि से बहुत भिन्न है।

३. मौसम के बारे में क्या किया जा सकता है

अभी भी, मनुष्य अपनी इच्छानुसार मौसम में परिवर्तन कर पाने समर्थ नहीं हो सका है। सीमित प्रयोगात्मक तरीकों को छोड़ कर वह धूप अथवा वर्षा पर अधिकार नहीं पा सका है। लेकिन, इन प्रयोगात्मक उपायों में ही आज की यह महान आशा निहित है कि सम्भवतः कल मनुष्य मौसम पर विजय प्राप्त करने और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उनमें परिवर्तन कर सकने में समर्थ हो सकेगा।

मौसम में परिवर्तन करने की क्षमता प्राप्त करने के अपेक्षाकृत नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धान में संलग्न वैज्ञानिक कोई ऐसा जटिल विद्युदणुयंत्र बनाने का स्वप्न नहीं देख रहे हैं जिसके बटन और नियंत्रणचाभियां घुमाते ही विश्व के तापमान, हवाओं इत्यादि पर नियंत्रण किया जा सकेगा। लेकिन, उनकी कल्पना क्या है? और अब तक उन्होंने इस दिशा में क्या किया है—भले ही उनकी सफलता का प्रश्न कितना ही अधिक विवादग्रस्त क्यों न हो? लेकिन, इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशिष्ट क्षेत्रों में होने वाली वर्षा के परिमाण पर हवाई अड्डों तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर पड़ने वाले कोहरे की घनता तथा प्रलयंकारी तूफानों की उग्रता कम करने अथवा उनका मार्ग बदलने के प्रयासों पर इस अनुसंधान का स्पष्ट असर पड़ रहा है।

सम्भवतः इस क्षेत्र में सबसे अद्वितीय प्रयोग १९४०–५० में किया गया जब अमेरिका के जनरल इलेक्ट्रिक कार्पोरेशन ने कृत्रिम वर्षा कराने के प्रयास में बादलों पर हवाई जहाज द्वारा सिलवर आयोडाइड (सिलवर और आयोडीन के मिश्रण से तैयार एक लवण) का चूर्ण छिड़का। इस प्रयोग के पीछे यह सिद्धान्त निहित था कि वर्षा उस समय होती है जब वायुमण्डल में सूक्ष्म कणों के चारों ओर नमी संचित अथवा एकत्र हो जाती है। सिलवर आयोडाइड का छिड़काव नमी को आकर्षित कर कृत्रिम वर्षा कराने के उद्देश्य से किया गया था।

इसके बाद, लगभग प्रत्येक महाद्वीप पर हवाई जहाजों के द्वारा अथवा पर्वत-शिखरों पर स्प्रे-गन लगा कर इस प्रयोग को किया गया। इन प्रयोगों ने सिलवर आयोडाइड के साथ अथवा उसके स्थान पर सूखी बर्फ, ब्राइन मिश्रण इत्यादि का भी इस्तेमाल किया गया है। इन प्रयोगों के प्रभावों को मापने के मार्ग में

एक सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि कोई भी अभी तक यह निश्चित रूप से तथा प्रामाणिक तौर पर नहीं कह सकता कि 'वर्षा' उक्त रसायनों का छिड़काव करने के कारण हुई है अथवा एक स्वाभाविक प्राकृतिक प्रक्रिया का फल है। फिर भी, दीर्घकाल में विभिन्न अवसरों पर होने वाली वर्षा के परिमाणों की तुलना करके यह दावा किया गया है कि कृत्रिम वर्षा के तरीकों को अपना कर अमेरिका में १० प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में १५ प्रतिशत, इज़रायल में २० प्रतिशत तथा स्विट्जरलैण्ड में १०० प्रतिशत अधिक वर्षा कराई जा सकी है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, भारत, जापान तथा अन्य राष्ट्रों में किए गए कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी प्रयोगों में भी इसी प्रकार की सफलता प्राप्त होने के दावे किए गए हैं।

अब तक कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी अपने सबसे अधिक महत्वाकांक्षी प्रयोग में अमेरिका ने १९६६ में अनुसन्धान और कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी प्रयोगों पर १ करोड़ ४० लाख डालर व्यय करने की योजना तैयार की है और इसमें से आधी धनराशि अमेरिका के कुछ अनुर्वर और शुष्क प्रदेशों में कृत्रिम वर्षा या हिमपात सम्बन्धी प्रयोगों पर खर्च होगी। यदि कृत्रिम वर्षा के कार्य को व्यावसायिक आधार पर सम्भव बनाना है तो कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर तुरन्त ही मालूम होने चाहिये। ये प्रश्न हैं : किस प्रकार के बादल कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी प्रयोग के लिये श्रेष्ठतम होंगे? बादल के किस भाग पर प्रयोग का सबसे अधिक प्रभाव पड़ेगा? कृत्रिम वर्षा सम्बन्धी पदार्थ कितनी मात्रा में बादलों पर छिड़का जाये? और इस कार्य के लिये कौन सी विधि सर्वश्रेष्ठ होगी?

प्रयोगों से यह पता चल चुका है कि बादलों पर वर्षा कराने वाले रसायन छिड़कने के और भी लाभजनक परिणाम होते हैं। जब यह कार्य उचित तापमान और परिस्थितियों में किया जाता है, तो इससे वर्षा में विलम्ब भी कराया जा सकता है, उपल-वृष्टि की उग्रता तथा बिजली का कड़कना कम किया जा सकता है तथा प्रलयंकारी तूफानों की भीषणता घटाई जा सकती है।

यह एक विडम्बनापूर्ण बात है कि मनुष्य ने हाल के दशकों में मौसम और ऋतुओं में परिवर्तन कर दिया है लेकिन उसने यह परिवर्तन जान बूझकर नहीं किया है। विशाल नगरों के निर्माण के लिये वृक्षों और वनस्पति का बहुत बड़ी संख्या में नाश किया गया है जिसके कारण जल के वाष्पीकरण की गति बहुत अधिक मंद हो गई है। घरों, कार्यालयों और फैक्टरियों से निकलने वाले धुएं के कारण वायुमण्डल में धूल-कणों की प्रचुरता हो गई है। फलतः पहले की तुलना में आज नगरों को खुले स्थानों की अपेक्षा ३० प्रतिशत कम धूप तथा १० प्रतिशत अधिक वर्षा प्राप्त होती है।

अध्ययनों से यह भी प्रकट हो गया है कि शहरों में सप्ताह के अन्य दिनों की तुलना में रविवार तथा त्यौहारों के दिन कम वर्षा होती है। स्पष्ट है कि कारखानों में धुवां पैदा होने के कारण वर्षा कण नहीं बन पाते हैं। जब तक मौसम सुधार किये जाने सम्बन्धी विधियाँ व्यापक रूप से अमल में नहीं आने लगती हैं, तब तक मनुष्य भीषण मौसम के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिये अन्य विधियों का प्रयोग करने में समर्थ हो सकता है। हाल के वर्षों में मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करने के विषय में जो महत्वपूर्ण प्रगतियाँ की गयी हैं वे इस दिशा में अत्यन्त आशाजनक सफलताएँ हैं। मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियां करने वालों के लिए एक बहुत बड़ी परम्परागत बाधा संसार के बड़े भागों की मौसम सम्बन्धी इन दशाओं की कम जानकारी थी, जिसके आधार पर नई भविष्यवाणियाँ की जा सकेंगी।

अब मौसम सम्बन्धी उपग्रहों, मानव-रहित मौसम सम्बन्धी स्टेशनों, वायुयानों, जहाजों तथा मौसम का पता लगाने वाले पृथ्वी स्थित केन्द्रों में प्रयोग में आने वाले आधुनिक मौसम सम्बन्धी उपकरणों की सहायता से संसार के अधिकांश भागों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध हो गयी है।

[शेष पृ० २१ पर]

४. भारतीय जड़ी-बूटियाँ और कैंसर का विकास

जब से करवीर-बन्धु नामक भारतीय बूटी से विनक्रिस्टाइन नामक औषधि तैयार की गई है तब से कैंसर-निरोधक औषधि की खोज करने वाले और अधिक विश्वास के साथ ऐसी भारतीय जड़ी-बूटियों की खोज में जुट गए हैं, जिनसे प्रभावशाली कैंसर निरोधक औषधियों का विकास किया जा सकता है।

इनमें से अनेक भारतीय जड़ी-बूटियाँ इस समय भी खाद्य-पदार्थों, रेशों तथा लकड़ी के रूप में काम आती हैं। रौवोल्फिया नामक मिश्रणों में जिनका इस्तेमाल हाइपर-टेंसन जैसे रोग के इलाज में होता है, ऐसे नाना प्रकार के तत्व निहित हैं जिनकी पहचान अत्यन्त सूक्ष्म वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा ही की जा सकती है।

जड़ी-बूटियों की जाँच करने सम्बन्धी एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में साझीदार होने के कारण लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषधि अनुसन्धान संस्थान ने अभी हाल में अपने अनुसन्धान कार्यक्रम में पशुओं पर कैंसर निरोधक जड़ी-बूटियों का परीक्षण करने की बात भी शामिल कर ली है। इसके लिए पी एल-४८० कोष से संस्थान को वित्तीय सहायता प्राप्त हो रही है। जड़ी-बूटियों की जाँच करने सम्बन्धी इस अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम का संचालन नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट, बेथस्डा, मेरीलैण्ड की कैंसर कैमोथेरपी नेशनल सर्विस द्वारा किया जा रहा है। इसका उद्देश्य ऐसे रासायनिक तत्वों का पता लगाना, उन्हें पृथक् करना, उनकी पहचान करना और कैंसर के उपचार में उनकी सम्भावित उपयोगिता का मूल्यांकन करना है। सरकारी एजेन्सी नेशनल इंस्टिट्यूट्स ओव् हेल्थ की एक शाखा के रूप में यह पी-एल-४८० कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्य सरकारों को कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आमंत्रित करती है।

लगभग ५ वर्षों से भारतीय और अमेरिकी वैज्ञानिक भारतीय जड़ी-बूटियों में कैंसर निरोधक तत्वों की पहचान करने सम्बन्धी जटिल प्रयोगों में संलग्न हैं। दर्जनों भारतीय वनस्पतिशास्त्री नियमित रूप से खेतों और वनों में भारतीय जड़ी-बूटियों के नमूने एकत्र करते हैं। परीक्षण के लिए उसी जड़ी-बूटी का नमूना स्वीकार किया जाता है जिसकी एक पौण्ड मात्रा आसानी से एकत्र की जा सकती है। बलबस नामक एक जड़ी में कुछ ऐसे अम्लयुक्त रसायन विद्यमान होते हैं, जो कैंसर की चिकित्सा में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अतः इस जड़ी की विशेष तौर पर खोज की जाती है। वैज्ञानिक ऐसे बीजों की खोज करते हैं जिनमें रासायनिक दृष्टि से सर्वथा अनूठे प्रकार के तेल विद्यमान होते हैं। इसके अलावा वे स्थानीय बाजारों में ऐसी जड़ी-बूटियाँ भी खरीदते हैं, जो प्रभावशाली औषधियों के रूप में विख्यात हैं।

पौधे से छोटे-छोटे नमूने काटे जाते हैं और उन्हें धूप में सुखाया जाता है। इसके बाद उन नमूनों पर पहिचान डाली जाती है और जहां से उन्हें लाया जाता है उन स्थानों का रिकार्ड रखा जाता है जिससे यदि किसी पौधे विशेष में कैंसर विरोधी सक्रियता दिखाई पड़े तो उसका दूसरा नमूना लाया जा सके।

लखनऊ की प्रयोगशालाओं में डा० एम० एल० धर के नेतृत्व में इन नमूनों का सत निकालते हैं। यह सब आधे आसुत जल और आधा एथिल एलकोहल घोल में मिला होता है। इसके बाद जल और एलकोहल को रासायनिक ढंग से उस सत से अलग कर लिया जाता है। फिर एक तत्व के रूप में उस सत को परीक्षण के लिए रख लिया जाता है। ज्यादातर सत पाउडर के रूप में होते हैं किन्तु कुछ लिसलिसे और चिपचिपे भी होते हैं।

चूंकि पशुओं पर उनके परीक्षण की पूरी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए लखनऊ की प्रयोगशाला इन सतों को मैडिसन (विस्कोन्सिन) स्थित अलमुर्नी रिसर्च फाउन्डेशन के पास भेजती है। वहाँ जीवविज्ञानी उसका कैंसर के दो रूपों पर परीक्षण करते हैं। एक रूप वह है जिसे वाल्कर २५६ इन्टरामस्कुलर (सालिड ट्यूमर) कहते हैं और दूसरा रूप है जो परिसंचरण-तंत्र में होता है।

इस परीक्षण-प्रक्रिया की तैयारी के दौरान अनेक चूहों और चुहियों में जीवित कैंसर कोषिकाएं पहुँचा दी जाती हैं। इसके बाद उन्हें ६-६ के समूहों में अलग कर दिया जाता है। एक समूह का कोई इलाज नहीं किया जाता है और बाकी समूहों में से हरेक का निश्चित अवधियों पर उस परीक्षणात्मक दवाई से इलाज किया जाता है जो उक्त पौधे के सत से नमकीन घोल के रूप में बनी हुई होती है। फिर जो जीव इलाज के अंतर्गत होते हैं उनमें हो रहे कैंसर के विकास का उन जीवों में हो रहे कैंसर विकास का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जिनका इलाज नहीं किया जाता है। इस तुलनात्मक अध्ययन से औषधि की कैंसर विरोधी क्षमता आँकी जाती है।

अनेक सतों का कोई परिणामकारी प्रभाव नहीं हुआ। अब तक कोई ६०० भारतीय बूटियों का परीक्षण हुआ है जिसमें से लगभग दो दर्जन बूटियों के सतों का इन प्रारम्भिक परीक्षणों में थोड़ा असर पाया गया और उनके पुनः परीक्षण किए गए। करवीर बन्धु नामक बूटी के सत का एक अमेरिकी औषधि निर्मात्री कम्पनी द्वारा विस्तृत परीक्षण किया जा रहा है। यह परीक्षण अमेरिकी पी-एल-४८० कार्यक्रम में शामिल नहीं है।

कैंसर केमोथैरेपी नेशनल सर्विस सेन्टर के योजना-निदेशक ने कहा है, हमें यह आशा है कि यदि हम इन मिश्रणों में से बहुत से मिश्रणों की जाँच करें तो हमें किसी ऐसे प्रभावशाली मिश्रण का पता चल जायेगा जिसके विषय में हमारे रसायन शास्त्रियों का कभी ध्यान भी नहीं गया है। हमारे सहित अनेक लोग यह अनुभव करते हैं कि पौधा अक्सर उन लोगों की तुलना में अधिक अच्छा रसायनशास्त्री है जो प्रयोगशालाओं में कार्य करते हैं।

जब औषधि प्राकृतिक तरीकों से अथवा कृत्रिम तरीकों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाती है, तब कुत्तों और बन्दरों पर जाँच करके उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि रक्त चाप और गुर्दे आदि के कार्य पर इनका कैसा प्रभाव पड़ता है। यदि जाँच ठीक उतरती है तो उसे कैंसर से पीड़ित मनुष्यों पर प्रयोग में लाने के लिये तैयार कर लिया जाता है।

औषधियों के सम्बन्ध में छानबीन करने विषयक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत कैंसर के उपचार के लिये जो सबसे प्रभावशाली औषधि खोजी गयी है वह केम्पथीन नामक औषधि है। यह एक ऐसे वृक्ष की छाल से तैयार की गयी है जो चीन की मुख्य भूमि के जंगलों में पाया जाता है। १९३४ में जीव विज्ञानशास्त्रियों ने इस वृक्ष को अमेरिका में लगाया और अब शिकागो, कैलिफोर्निया में इस वृक्ष का एक बहुत बड़ा बगीचा मौजूद है।

विज्ञान वार्ता

१. कालजयी पेटी

जापान के मैनिशी समाचार पत्रों एवं मात्सुशिता बिजली औद्योगिक कम्पनी ने मिलकर एक्सपो-७० नामक टाइम कैप्सूल (कालपेटी) को ओसाका नगर की उत्तरी सेनरी पहाड़ी में स्थित जापानी विश्वप्रदर्शनी की भूमि में गाड़ने की योजना बनाई है। यह कैप्सूल १ टन भार वाला होगा। इसका आकार गोल घड़े जैसा होगा। इसके भीतर एक खोल होगा जो नटों से कसा होगा। बाहरी ढक्कन को बिजली से पिघला कर जड़ा जावेगा। इसमें १५० लिटर सामग्री रखने की क्षमता होगी। सुरंग के भीतर १५° ताप रहेगा। यह कैप्सूल ५००० वर्ष तक पड़ा रहेगा। इसके भीतर कौन सी वस्तुयें रखी जायँ, इसके लिए संसार के प्रसिद्ध व्यक्तियों से पूछताछ की जा रही है। क्या आप भी कुछ सुझाव दे सकते हैं? क्या इतने काल के पश्चात् सभ्यता राजनीति एवं साहित्य से सम्बन्धित आज की उपलब्धियों को आदरपूर्वक ग्रहण किया जावेगा?

२. जेट युग का प्रभात

ब्रिटेन और फ्रांस के सहयोग से "कनकोर्ड" नामक एक नवीन वायुयान निर्मित किया गया है जिसका आकार एक विशाल जलपक्षी के समान है क्योंकि इसकी नाक पक्षी चोंच के समान दिखती है और इसका पिछला भाग पूँछ के समान दिखता है। यह वायुयान ध्वनि से भी तेज गति से उड़ सकता है और साथ ही १२८-१४४ व्यक्तियों को भी ढो सकता है। इसमें दूर की यात्रा करने वाले (फ्रांस से न्यूयार्क) यात्रियों की सुविधा के लिये सभी आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध होंगी। इसकी गति १४५० मील प्रति घंटा होगी।

कहा जाता है कि रूस ने भी ऐसा ही यान निर्मित कर लिया है। ब्रिटेन तथा फ्रांस के इस सम्मिलित प्रयास में ६० करोड़ पाउंड खर्च हुये हैं। इस वायुयान में दो के बजाय ४ इंजिन लगे हैं और यह १३ टन का भार लेकर उड़ सकता है। किन्तु अमरीकी विशेषज्ञों का कहना है कि उतरते समय यह वायुयान ध्वनि की अधिकतम सीमा, ११२, से अधिक आवाज करता है अतः न्यूयार्क हवाई अड्डे में इसे उतरने की अनुमति नहीं मिल सकती। यही नहीं, वायु के विपरीप रुख के कारण फ्रांस से बर्लिन की यात्रा बिना रुके असम्भव भी है। इस प्रकार 'कनकोर्ड' का विरोध हो रहा है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि विश्व में जेट युग का प्रभात हो चुका है।

३. वायु संदूषण की समस्या

अमरीका के विशेषज्ञों का अनुमान है कि सन् २००० तक वायुमण्डल में सल्फर डाइआक्साइड तथा कार्बनमोनोआक्साइड इन दो गैसों की मात्रा में काफी वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ सल्फर डाइआक्साइड की मात्रा २ करोड़ टन प्रतिवर्ष से बढ़कर ३ करोड़ टन से भी अधिक हो जावेगी। यह गैस बड़े-बड़े कारखानों में कोयला जलाने से उत्पन्न होती हैं। कार्बनमोनोआक्साइड गैस मोटर कारों से निकलती है! इसकी मात्रा १-२ करोड़ टन से बढ़कर ४ करोड़ टन तक हो जायेगी। निस्सन्देह इन मात्राओं को कम करने के लिये कम से कम कोयले का प्रयोग और मोटर कारों में उत्पन्न कार्बन मोनोआक्साइड को अवशोषित करने के लिये उपाय करने की आवश्यकता होगी किन्तु क्या इस्पात कारखानों के मालिक तथा मोटर मालिक इस उपायों से लगने वाले व्यय को सहन करने के लिये तैयार हैं? यदि नहीं, तो क्या उन्हें वायुमण्डल दूषित करने का अधिकार प्राप्त है?

४. प्रकाश से भी तीव्रगामी कण

६० वर्ष तक डा० ऐल्बर्ट आइंस्टीन (१६०५) के इस मत का खंडन करने वाला शायद ही हुआ हो कि प्रकाश से तीव्रगति अन्य किसी पदार्थ की हो सकती है किन्तु अब अमरीका के भौतिक शास्त्री डा० गेरैल्ड फाइनबर्ग, जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय के हैं, ने यह अभिकल्पना प्रस्तुत की है कि विश्व को ऐसे कणों से पूरित किया जा सकता है जिनकी गति प्रकाश से भी तीव्र हो। इन कणों को उन्होंने "टैकियान" नाम दिया है ग्रीक भाषा में इसका अर्थ है = क्षिप्र)। ये कण विद्युततः उदासीन होंगे। इस दृष्टि से ये कण सर्वथा युगान्तरकारी प्रतीत होते हैं। ज्यों ज्यों इनकी गति बढ़ती जावेगी त्यों त्यों ये ऊर्जा का ह्रास करेंगे किन्तु सामान्य कण इसके विरुद्ध आचरण करने वाले होते हैं। ऐसे कण प्रकाश से अधिक वेगवान होने पर ही विद्यमान रह सकते हैं जबकि सामान्य पदार्थ प्रकाश के वेग पर ऊर्जा में परिणत हो जाते हैं।

५. शक्तिशाली चुम्बक

अमरीका की वेल टैलीफोन लैबोरेटरी ने ठोस और शक्तिशाली चुम्बकों का निर्माण समैरियम या सेरियम नामक विरल मृदाधातुओं से करने में सफलता प्राप्त की है।

६. मेथेन गैस से हीरा

मार्श गैस या मेथेन से हीरा बनने की बात अविश्वसनीय प्रतीत होती है क्योंकि कहाँ गैस और कहाँ इतना कठोर पदार्थ हीरा! किन्तु ओहियो में मेथेन गैस को २०००° फारेनहाइट पर हीरे के बीजों के ऊपर प्रवाहित करते बड़े हीरे प्राप्त किये जा चुके हैं। इस ताप पर गैस अपघटित होकर कार्बन उत्पन्न करती है जो हीरे के कणों के ऊपर निक्षेपित हो जाता है। बाद में इन कणों के विन्यासित होने पर हीरे बन जाते हैं।

७. टेलीविजन पर उदर के भीतर की क्रियाओं का चित्रण

जर्मनी में रंगीन टेलीविजन केमरा के प्रयोग द्वारा श्वास नलिका तथा आमाशय के भीतर के चित्रों का अंकन किया जा चुका है। इसके लिये केमरा को काँच तंतु नलिका (ग्लास फाइबर ट्यूब) से जोड़ देते हैं और नलिका को रोगी के मुख से पेट के भीतर प्रविष्ट करा देते हैं।

यद्यपि प्रारम्भ में काले-श्वेत रंगों में पेट के भीतर के रिक्त स्थानों का चित्रण इस प्रकार किया जा चुका था किन्तु चिकित्सा-छात्रों को पेट के भीतर क्या हो रहा है प्रदर्शित करने में कठिनाई होती थी अब लाल, हरे तथा नीले रंगों में चित्रपट पर उदर के भीतर की क्रियाओं का चित्रण प्रस्तुत किया जा सकेगा। चिकित्सा के क्षेत्र में यह विधि वरदान स्वरूप सिद्ध होगी।

८. चूहों को नष्ट करने की नवीन विधि

यह विधि ऐसे प्रजनन शक्ति-शून्य चूहों का विकास है जिनमें चूहियों के प्रति काम-प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। चूहियों के साथ उनका सम्पर्क होने से झूठे गर्भाधान हो जाते हैं। वे चूहियों के बच्चे जनने में असमर्थ रहते हैं और वे २१ दिन तक ही अवधि के लिये किसी सामान्य अथवा प्रजनन-शक्ति-शून्य चूहे के सम्पर्क में नहीं आती हैं। यह विधि ओक्लाहोमा विश्वविद्यालय के मेडिकल सेन्टर की प्रयोगशाला में डा० ऐलन जे० स्टेनली द्वारा विकसित की गई है। उनकी प्रयोगशाला में प्रजनन शक्ति से शून्य तमाम चूहे हैं।

डा० स्टेनली शहरों की गन्दी बस्तियों के ऐसे स्थानों में इन चूहों को छोड़ना चाहते हैं जहाँ चूहों की समस्या मौजूद है।

उनका कहना है कि समस्त चूहों का अन्त करने के लिये एकमात्र व्यावहारिक तरीका प्रजनन शक्तिविहीन चूहों का प्रयोग करना है। उन्होंने बताया कि पिंजड़ों तथा सामान्य विषों का प्रयोग करके चूहों का अन्त करना सम्भव नहीं है। चूहे बड़े चतुर जीव हैं और वे विषैली वस्तुएं नहीं खाते हैं अथवा पिंजड़ों में नहीं घुसते हैं।

संसार के सभी भागों में चूहों का अन्त करने सम्बन्धी कार्यक्रम पर बहुत अधिक धन व्यय होगा और

बहुत अधिक समय भी लगेगा, किन्तु इस कार्यक्रम पर खर्च करने से बड़ा लाभ प्राप्त होगा।

६. मौसम सम्बन्धी नवीन प्रयोग

मौसम संबन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिये १० अप्रैल को अमरीका द्वारा निम्बस-३ नामक उपग्रह छोड़ा गया। इसकी विशेषतायें हैं :—

पृथ्वी के चारों ओर के वातावरण के साथ ही पृथ्वी से लेकर अत्यधिक तुंगता तक के वातावरण के ताप की माप। इसके साथ यह उपग्रह जलीय भाप, कार्बन डाइआक्साइड, ओजोन आदि वातावरण में मिश्रित विभिन्न गैसों का शुद्ध मापन भी करेगा।

कम ऊँचाई पर उड़ने वाले मौसम संबन्धी गुब्बारों, समुद्र में तैरने वाले बोयों, जलयानों, विमानों की टोह, उनके द्वारा एकत्रित सामग्री को उनसे लेकर बेल्टसविल (मेरीलैण्ड) स्थित गोडार्ड स्पेस फ्लाइट सेन्टर तक पहुँचाना। गुब्बारे और बोया आदि अन्य उपकरण सागर की सतह या उसके आसपास का ताप मापेंगे।

पृथ्वी की उष्णता का मापन। इसमें इस बात की माप की जायेगी कि पृथ्वी को सूर्य से कितनी मात्रा में ऊष्मा मिलती है और वह उसमें से कितनी मात्रा पुनः वातावरण में प्रत्यावर्तित कर देती है। इस प्रकार की जानकारी से सम्भव है कि तूफानों के जन्म और अन्त को प्रभावित किया जा सके।

पृथ्वी के ५० से ७० किलोमीटर ऊपर पृथ्वी के वातावरण पर पड़ने वाले सौर-विकिरण की माप। संभव है कि मौसम के निर्माण में इसका भी योग हो।

वायु के बहाव की दिशा और गति की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्थानों पर घूमते हुए मौसम सम्बन्धी गुब्बारों की टोह और उनसे प्राप्त होने वाली तत्सम्बन्धी जानकारी का संकलन।

मौसम सम्बन्धी मौजूदा उपग्रह केवल एक ही काम कर रहे हैं। वे तूफानों की तस्वीरें खींचते और उन्हें केन्द्र को पारेषित करते हैं।

'निम्बस' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पहली बार यह उपग्रह उन सभी या अधिकांश बातें को एकत्र करेगा जिनकी जानकारी मौसम-सम्बन्धी भविष्यवाणी करने के लिए आवश्यक है। 'निम्बस' में ऐसे टेलीविजन कैमरे भी होंगे जो दिन और रात दोनो में नित्य पृथ्वी पर छाने वाले बादलों की तसवीरें खींचेंगे और उन्हें उसी समय गोडार्ड केन्द्र सहित विश्व के ४० राष्ट्रों के ४०० केन्द्रों को टेलीकास्ट करेंगे।

१०. पौधों के रोगों के अध्ययन से मृगी रोग का पता

विषाणु के विष से तम्बाकू के पौधे को एक भयंकर रोग लग जाता है क्योंकि यह रोग बड़ी तेज़ी के साथ खेत में फैल जाता है और उसके पौधे ऐसे नष्ट हो जाते हैं मानों वे जल गये हों, इसलिये यह रोग वाइल्ड फायर के नाम से पुकारा जाता है।

अमेरिका की कृषि अनुसन्धान सेवा (ए आर एस) के मेडिसोन (विस्कोन्सिन) स्थित वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि इस विष को चूहों के मस्तिष्क में दाखिल करने पर उनका शरीर ऐंठने लगता है। उन वैज्ञानिकों ने बताया कि इस जानकारी से इस बात का पता लग सकता है कि मनुष्यों को मृगी का रोग क्यों लग जाता है। मृगी एक ऐसा रोग है जिससे रोगी को दौरे पड़ते हैं और कभी कभी वे बेहोश हो जाते हैं।

इन परीक्षाओं में अनुसन्धान कर्ताओं ने विषाणुओं के विष को शुद्ध करके उसे चूहों के मस्तिष्क में दाखिल किया।

थोड़ी मात्रा में विष दाखिल किये जाने पर ४ से २४ घंटों तक के समय में उनके शरीर में ऐंठन पैदा हुई। अधिक मात्रा में विष दाखिल किये जाने पर तीन घंटे में उनके शरीर में ऐंठन पैदा हो गयी और उससे समस्त जन्तु मर गये।

गर्म करने से उस विष का प्रभाव बदल गया। गर्म किये गये विष से न तो जन्तुओं के शरीर में ऐंठन पैदा

हुई और न ही उससे तम्बाकू पौधों में रोग के चिन्ह पैदा हुए।

ए आर एस के वैज्ञानिकों को आशा है कि इस सम्बन्ध में और अधिक अध्ययन करने पर वे उस विष की रासायनिक रचना को पहिचान सकेंगे और उन्हें पौधों तथा जन्तु के रोगों के सम्बन्ध में उसके प्रभाव को समझने में सहायता मिल सकेगी।

११. कपास के कीड़े की खोज

कपास में लगने वाला 'बाल वीविल' नामक कीड़ा गत १० शताब्दियों से संसार भर में कपास की उपज को भारी क्षति पहुँचा रहा है।

अमेरिका की कृषि अनुसन्धान सेवा के वनस्पति विज्ञानी डा० इयरी स्मित, जूनियर, ने ओक्साका (मैक्सिको) में हुई पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई में पाए गए कपास में उक्त कीड़े को भी पाया। बाद में बताया गया कि वह कीड़ा १०,००० वर्ष पुराना है।

'बाल वीविल' नामक इस कीड़े की जानकारी व्यापारिक किस्मों को कपास की फसलों को और भी उन्नत बनाने में लाभकर सिद्ध होगी।

कृषि विज्ञान के जानकारों की यह निश्चित राय है कि वीविल कपास के बीज के भीतर १,००० वर्ष तक रह सकता है। उनके कथनानुसार उनके इस विश्वास का आधार वह जानकारी है जो उन्होंने वीविल की आदतों और कपास के रूप के बारे में प्राप्त की है।

कपास में लगने वाले कीड़े 'बाल वीविल' की जानकारी मनुष्य को १०० वर्ष से कुछ कम समय से है। इसे सबसे पहले १८४३ में पहिचाना गया था लेकिन इसकी पौधों में लगने वाली किस्म १८०० तक अज्ञात रही है। १८८० में बाल वीविल मैक्सिको की कपास को क्षति पहुँचाता हुआ पाया गया।

मैक्सिको की खुदाइयों में प्राप्त कपास का रेडियो-सक्रिय कार्बन १४ से किए गए काल-निर्णय के अनुसार यह ज्ञात हुआ है कि कपास ६९८ ईस्वी तक पुरानी हो सकती है।

●

[पृष्ठ १५ का शेषांश]

मौसम के सम्बन्ध में बहुत बड़ी संख्या में जो आँकड़े उपलब्ध किये जा रहे हैं उनका मनुष्य द्वारा विश्लेषण किया जाना सम्भव नहीं है। प्राप्त होने वाले मौसम सम्बन्धी आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिये अमेरिका के मौसम सम्बन्धी कार्यालय द्वारा बड़े बड़े गणनायंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है ताकि मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियां करने वालों द्वारा इन आँकड़ों का प्रयोग किया जा सके।

अन्तरिक्ष में मौसम सम्बन्धी उपग्रहों की स्थापना करने विषयक वर्तमान अमेरिकी योजनायें संसार के विस्तृत भागों के सम्बन्ध में कम से कम पांच दिन पूर्व मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियां करना सम्भव बना सकती हैं।

आशा है कि ऐसी दीर्घकालीन भविष्यवाणियों के परिणाम स्वरूप प्रतिवर्ष खेतीबाड़ी, यातायात, पर्यटन आदि में अरबों डालर की बचत हो सकेगी और भीषण मौसमों की विपत्तियों से लोगों के प्राणों और सम्पत्ति की रक्षा की जा सकेगी।

❁

परिषद का पृष्ठ

डा० धर को मानद पदवी

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ने ३० मार्च को विशेष समारोह में डा० नीलरत्न धर को उनकी वैज्ञानिक सेवाओं के उपलक्ष्य में डी० एस-सी० की मानद पदवी से सम्मानित किया है।

डा० धर परिषद के अध्यक्ष रह चुके हैं। वे शीलाधर मृत्तिका गवेषणागार, प्रयाग विश्वविद्यालय के आजीवन निदेशक हैं। उन्होंने भौतिक रसायन तथा मृत्तिका रसायन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोधकार्य किये हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा उन्हें द्वितीय बार यह सम्मान प्रदान हुआ है।

भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति

१९ मार्च १९६९ को दिल्ली में "भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक परिषद" के तत्वावधान में "भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति" का संविधान तैयार किया गया। इसमें हिन्दी, मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड, मलयालम में प्रकाशित वैज्ञानिक पत्रिकाओं के १२ सम्पादकों ने भाग लिया। इस अवसर पर भा० वै० एवं औ० परिषद के महानिदेशक डा०आत्माराम तथा शिक्षा मंत्री डा० वी० के० आर० वी० राव भी उपस्थित थे।

डा० राव ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक संस्थान जैसी संस्था के स्थापित किये जाने की सूचना भी दी।

'विज्ञान' के सम्पादक भी उक्त समिति के सदस्य चुने गये हैं।

सम्पादकीय

तामिल या तेलगू

उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री ने यह घोषणा की है अगले सत्र से जूनियर स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों को अनिवार्य रूप से तमिल या तेलगू का अध्ययन करना होगा जिसके लिये प्रादेशिक सरकार आवश्यक साधन जुटावेगी।

शिक्षा मन्त्री की यह घोषणा अत्यन्त उत्साहवर्द्धक प्रतीत होती है। उत्तरी भारत में दक्षिण भारत की भाषाओं का यह अध्ययन स्कूली स्तर पर सर्वथा नवीन होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस घोषणा से दक्षिण भारत के वासियों के मनों से उस आशंका का उच्छेद होगा जिसके वे शिकार होते रहे हैं। इससे उत्तर और दक्षिण के लोगों में पारस्परिक सौहार्द बढ़ेगा। उनकी भाषाओं के प्रति रुचि दिखला कर उत्तर भारतवासी यह दिखा देंगे कि न तो उन्हें किसी भी भाषा से विरोध है और न वे दक्षिणवासियों पर हिन्दी को लादना चाहते हैं।

किन्तु आधारभूत प्रश्न यह है कि क्या दक्षिणी भारतवासी हिन्दी के प्रति अनर्गल प्रचार एवं कुत्सा की अभिव्यक्ति को बन्द कर सकेंगे, क्या वे समान आदर भाव से हिन्दी का उपध्ययन इसी प्रकार अनिवार्य बना सकेंगे?

यह सच है कि उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत की भाषाओं को सीखकर उनके साहित्य से लाभान्वित हो सकेंगे किन्तु क्या वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्हें उन भाषाओं के साहित्य से लाभ होगा? अवश्य ही यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर नकारात्मक है। उल्टे दक्षिण भारतवासियों को हिन्दी से इस दिशा में प्रचुर योग मिल सकता है।

आवश्यकता है कि उत्तर और दक्षिण में भाषा के सम्बन्ध में उदारवादी दृष्टि से काम लिया जावे। मात्र तुष्टि की भावना घातक होगी।

प्रकाशक : डा० हीरालाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक : गोपाल कृष्ण अग्रवाल, हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ३।५।

भाग १०६ | ज्येष्ठ-आषाढ़ २०२६ विक्र०, १८९१ शक
जुलाई-अगस्त १९६९ | संख्या ७-८

वैदिक वाङ्मय में रसायन शास्त्र

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

रसायन शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू हो जिसका रसायन शास्त्र से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्ध न आता हो। गुफा मानव ने जब सर्वप्रथम दो पाषाण खण्डों को बल-पूर्वक घर्षित कर अग्नि स्फुलिंग उत्पन्न किये, या जब उसने प्राकृतिक अश्मकों को साफ करके उनसे प्राचीनतम विभिन्न भोंड़े शस्त्रों का निर्माण किया, या जब सर्वप्रथम उसने कच्चे एवं पके हुए स्वादिष्ट मांस का अन्तर समझा तभी उसने अनजाने ही, रसायन शास्त्र से संबंधित कई तथ्यों का उद्घाटन कर दिया था। किन्तु जहाँ तक इतिहास के पृष्ठों पर सुसंयोजित रूप से लिखे जाने योग्य रसायन शास्त्र सम्बन्धी तथ्यों का प्रश्न उठता है हमारे सामने एक समस्या उपस्थित हो जाती है। विश्व के किसी भी भाषा या प्राचीन संस्कृति के इतिहास एवं अन्य उपादानों का अध्ययन कर यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि अमुक समय पर रसायन शास्त्र की यह स्थिति थी। तथापि इस क्षेत्र में द्रष्टव्य सामग्री की दृष्टिकोण से, मानव संस्कृति के प्राचीन-तम ग्रंथों में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान है। वेद कदाचित् अभिलेख हैं जो संगठित रूप से अपने समकालीन विश्व के प्राचीनतम भारतीय समाज एवं संस्कृति के विविध रूपों का दिग्दर्शन कराते हैं।

वेदों को साधारणतः केवल प्रार्थना, पूजा या धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित आध्यात्मिक ग्रन्थ माना जाता है। भारतीय लोगों की वेदों के संबंध में अत्यन्त उच्च एवं पवित्र आस्था है। वे वेदों को अपौरुषेय एवं ज्ञान की समस्त शाखाओं के उद्गम के रूप में अनादि एवं ईश्वर के समकक्ष मानते हैं। किन्तु श्रद्धा एवं परम्परागत मान्यताओं से परे हट कर विशुद्ध वस्तुगत दृष्टिकोण से भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों पर अत्यन्त विस्तृत कार्य किया है, अतः प्रश्न विशेष पर विभिन्न मान्यताएं एवं दृष्टिकोण मिलते हैं। इन सबके कारण काल निर्णय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं आदि के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मोटे रूप में, चारों वेदों, ऋग, यजुः, साम एवं अथर्व, में प्राचीनतम् वेद ऋग्वेद माना जाता है जिसका रचना-काल ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है एवं आधुनिकतम अर्थात् अथर्व वेद का काल ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व।

सामाजिक, सांस्कृतिक, काल निर्णय आदि से सम्बन्धित प्रश्नों पर अधिक जानकारी के इच्छुक पाठक, राधाकमल मुखर्जी, मजूमदार एवं पुसालकर, मुन्शी एवं दिवाकर, वाराय, ईश्वरीप्रसाद, लोकमान्य तिलक, मैक्समूलर, कीथ, मैकडोनल्ड आदि के लिखित एवं सम्पादित ग्रन्थ देख सकते हैं। सुविधानुसार विद्वान पाठक लेखक से भी पत्र व्यवहार कर सकते हैं। जहां तक वैदिक वांगमय में विज्ञान सम्बन्धी सामग्री का प्रश्न है, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उपलब्ध सामग्री की तुलना में इस क्षेत्र में बहुत कम प्राप्य है। विशेषतः रसायन शास्त्र के सम्बन्ध में तो बहुत ही कम लिखा गया है। इस क्षेत्र में यद्यपि डा० पी० सी० राय एवं डा० सत्यप्रकाश के ग्रन्थ विशेष अवलोकनीय हैं, एवं अन्य प्रकीर्ण साहित्य भी उपलब्ध है फिर भी अन्वेषणोच्छुकों के लिए विशाल कार्य क्षेत्र खुला है। इसी दृष्टि से अन्यत्र प्रकाशित प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित शोधात्मक लेख-माला को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि सभी पाठकगण ज्ञान के इस क्षेत्र का भी रसास्वादन कर सकें। वर्तमान विचार एवं क्रिया पद्धति के समगामी ये शोधात्मक प्रयत्न, पुरातत्व, इतिहास एवं सम्बन्धित ज्ञान शाखाओं के विद्वानों के कार्यक्षेत्र के आयामों के विस्तार में सहायक हों, एवं उनका ध्यान इस ओर आकर्षित हो इस दृष्किोण से भी यह नम्र प्रयास प्रस्तुत किया जा रहा है।

●आइये अब हम वेदों में प्राप्य रसायन शास्त्र से सम्बन्धित विविध प्रकरणों का सिंहावलोकन करें :—

सुरा एवं सोम रस

सुरा एवं सोम रस सम्बन्धी अध्ययन, कार्बनिक रसायन शास्त्र के क्षेत्र में आता है। जहाँ तक सोम रस का प्रश्न है, बहुधा इसे सुरा के समान मान लिया जाता है, किन्तु तथ्य अलग ही है। चारों ही वेदों में सोम की प्रार्थना सम्बन्धी प्रचुर ऋचाएँ हैं। सोम अत्यंत महत्वपूर्ण पेय माना जाता था। देवताओं एवं दानवों में, समाज में जाकर ससम्मान इसका पान करने के लिये युद्ध होता रहता था। सोम पान से आयु, शक्ति, सद्विचार आदि में आश्चर्यजनक वृद्धि अनुभूत की जाती थी। ("सोम राजन् प्राण आयूंषि—सूर्यो वासराणि" ८। ६। ४६ ऋग्)। सुरा एवं सोम में अंतर बतलाते हुए सुरा की निन्दा की गई है एवं सुरा को नाशक कहा गया है। (सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एषः मा मा हिंसी १६। ७ यजुः।) एवं ("यथा मांस यथा सुरा—निहन्यते मनः" ६। ७०। १ अथर्व)। सुरा एवं सोम दोनों की निर्माण विधि का भी आभास हम वेदों में पा सकते हैं। सुरा से प्रार्थना की गई है कि वह सोम से मिलकर उसके गुण नष्ट न करे। सोम, हरे रंग की कोई जड़ी होती थी। इसे पत्थर पर पीस कर एवं छननों एवं कपड़ों द्वारा छान कर इसमें कभी-कभी दूध या कभी-कभी औषधियों का रस भी मिलाया जाता था। दूध एवं औषधियों के मिश्रण से सोम की शक्ति में अभिवृद्धि हो जाती होगी। सोम अत्यंत सुस्वादु पेय था ("स्वाद्वीं त्वा स्वादुना—मधुमतिं मधुमता सृजामि स सोमेन" १६। १ यजुः।)। कभी-कभी सुरा एवं सोम मिश्रित कर दिये जाते थे। उत्तम सम्मिलित प्रभाव प्राप्त करने का इस मिश्रण का लक्ष्य होता था। (१६। ६ यजुः)। सुरा अर्थात् आधुनिक अलकोहल के निर्माण की विधि यजुर्वेद में प्राप्य है ("अतिथ्यं रूपं—तिस्त्रो रात्रिः सुरा सुता"।।१६।१४। इत्यादि यजुः)। इस प्रकार की विधियाँ आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित हैं। चावल के बुरादे को सड़ाने से प्राप्त रस को तीन दिन तक अन्य वस्तुओं के साथ किण्वित् करने तथा आस्त्रवित करने पर सुरा प्राप्त होती थी। यह संदर्भ स्पष्टतः सिद्ध करता है कि अत्यन्त प्राचीन वैदिक काल में भी भारत में किण्वन (आधुनिक एंजाइम एक्शन) एवं आसवन (डिस्टलेशन) की रासायनिक विधियाँ प्रचलित थीं।

अथर्ववेद काल में, प्रतीत होता है कि सुरा का प्रयोग अधिक बढ़ गया था। सुरा की प्रशंसा की गई है। सुरा का उपयोग करने वाला देवों का भी प्रिय हो जाता है यह कहा गया है। (१५। २। ६। १-३ अथर्व)।

सोम के सम्बन्ध में विस्तृत विचार करते हुए डा० सत्य प्रकाश ने इसे एफेड्राबिस्टच्या नामक वनस्पति बतलाने का प्रयत्न किया है, जो कि दक्षिणी अमेरिका में अभी भी कहीं-कहीं प्राप्य है। वैसे सोम के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक निर्णय प्राप्य नहीं है। सोम रस के सम्बन्ध में तांत्रिक एवं आध्यात्मिक अर्थ भी लगाये जाते हैं।

सोम के सम्बन्ध में विशुद्ध वस्तुवादी दृष्टिकोण से एवं वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करना, रसायन शास्त्र द्वारा रसायन शाला में इस पर प्रयोग करना, इसका पूर्ण संगठन, गुण धर्म आदि ज्ञात करना एवं चिकित्सा शास्त्रियों द्वारा मानव शरीर पर इसके प्रभाव ज्ञात करना यह सब मिलाकर इतिहासज्ञ, पुरातत्वविद्, वनस्पति शास्त्री, रसायन शास्त्री, चिकित्सा शास्त्री आदि के सम्मुख समवेत रूप से सुलझाने योग्य एक श्रेष्ठ शोध समस्या हो सकती है।

रासायनिक तत्वों एवं यौगिकों के परस्पर अन्तर का ज्ञान वैदिक युग में नहीं था। पंचतत्व से सृष्टि की निर्माण सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा भी बाद की ही है। किन्तु उस समय भी कुछ धातुएँ यथा सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा, लोहा एंव टिन ज्ञात थीं। पीतल को भी धातु समझा जाता था जबकि यह मिश्र धातु है।

स्वर्ण एवं रजत इन दो धातुओं का वैदिक काल में बाहुल्य से प्रयोग होता था। इन धातुओं सम्बन्धी ऋचाएं विपुल प्रमाण में प्राप्य हैं। कुछ ऋचाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन धातुओं का खनना, उत्पादन आदि वैदिक युग में विशाल स्तर पर होता था। आचार्य राय ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वैदिक काल में लोहा प्रयुक्त नहीं होता था एवं वैदिक आर्य लोहा की उत्पादन एवं उपयोग विधियां नहीं जानते थे। "अयस्" शब्द लोहे के लिये नहीं वरन् धातु मात्र के लिये विशेष कर सुवर्ण के लिये काम में लाया जाता था। (देखिये 'ए हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री, पृष्ठ ३५ द्वारा आचार्य राय)। लेखक के मतानुसार यह प्रश्न कि वैदिक काल में लोहा ज्ञात था या नहीं, अभी भी विचारणीय ही माना जाना चाहिये, क्योंकि वेदों के कई उदाहरण सूक्ष्म चिंतन करने पर आचार्य राय के मत के विपरीत प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, त्वष्टा के हाथ में "अयस् वज्र" है ('हस्तयोवज्रमायसम्' १। १३। ८१ ऋग्) एवं नाक्तिों के हाथ में छुरा है। (सं नः शिशिहि भुरिजोरिव छुर "-८।१।८।१६ ऋग्) ये वर्णन हैं। निश्चय ही सोने के हथियार नरम होना चाहिये। न तो उनका वज्र बनाया जा सकता है, न छुरा, न घोड़े के पैर में लगने वाली नाल। छुरे के निर्माण के लिये, कुठार एवं वज्र के लिये उपयुक्त धातु लोहा ही हो सकती है। हो सकता है इन वस्तुओं का निर्माण मिश्रधातुओं से होता हो लेकिन इस सम्बन्ध में कहीं भी स्पष्ट संदर्भ प्राप्त नहीं है। डा० सत्यप्रकाश, नियोगी, डा० रांगेय राघव आदि के साहित्य का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि ऋग्वेद काल में लोहा ज्ञात था। यही निर्णय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व का हो सकता है। विद्वज्जन इस प्रश्न पर विशेष विचार कर सकते हैं।

वैदिक युग में स्वर्ण के विविध प्रकार के उपयोग होते थे। पशुओं को सोने से सजाया जाता था (हिरण्य श्रृंगो अये अस्य पादा १। १६३। ६ ऋग्)। स्वर्ण मुद्राएं भी बनाई जाती थीं। इतना ऊँचा ताप प्राप्त किया जा सकता था कि स्वर्ण भी पिघल कर बहने लगे। सोना पिघल जाय, इस हेतु तवे एवं भट्टियाँ, अवश्य ही ज्ञात होगें। सामवेद में दो कान सुवर्ण के ऐसी गाय का वर्णन है (उभौ कर्णौ हिरण्यया १ (२), ३, ३)। यजुर्वेद ३४। ५०-५१) एवं अथर्ववेद में संदर्भ हैं जो यह बतलाते हैं कि मानव शरीर में स्वर्ण विद्यमान है। यह तथ्य ऋषियों को ज्ञात था कि स्वर्ण का प्रभाव जीवनी शक्ति वर्द्धक, मृत्युनाशक एवं आयुष्यवर्द्धक होता है। ये दोनों ही तथ्य आधुनिक विज्ञान एवं प्राचीन आयुर्वेद द्वारा परिपुष्ट एवं प्रयुक्त हैं।

यजुर्वेद में पुरुष मेध प्रकरण के अन्तर्गत कई व्यावसायिक नाम हैं जैसे लुहार, स्वर्णकार, लोहा गलाने

(अयस्ताप), धातु पीटने वाला (मिसर) आदि। ये नाम स्पष्ट करते हैं कि उस समय धातु कर्म काफी बड़े पैमाने पर होता था। धातु गलाने वाले का यदि नाम है तो उसके उपयोगी उपकरण यथा भट्टी, तथा उच्च ताप उत्पादक ईंधन आदि भी विकसित हो ही चुके होंगे।

अथर्ववेद में सीसे (लेड) का उल्लेख है। सीसे के छुरों को शत्रुओं को मारने एवं भगाने वाला बतलाया गया है। इन्द्र को अपने भक्तों को सीसे के छुरे प्रदान करने वाला बतलाया गया है। अथर्ववेद में रोगों एवं औषधियों का सर्वत्र मानवीकरण किया गया है। हो सकता है सीसा का औषधि के रूप में रोगों रूपी राक्षसों के बेधने (मारने, नष्ट करने) हेतु वर्णन किया गया हो

टिन एवं तांबा के सम्बन्ध में अथर्ववेद में प्रतीकात्मक ऋचा है। 'श्याममयो अस्य मांसानि, लोहितमस्य लोहितम् भस्मं हरित वर्णः ११। २। ७ एवं ८ अथर्व)। टिन धातु के लिये त्रपु शब्द प्रयुक्त होता था एवं लोहित अयस् शब्द तांबे के हेतु प्रयुक्त होता था।

●आइये अब हम वेदों में प्राप्य रसायन शास्त्र से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सम्बन्धित अन्य प्रकीर्ण प्रकरणों का अध्ययन करें।

वैदिक युग में अग्नि उत्पादन

वैदिक काल में अग्नि उत्पन्न करने का आज के मैच बाक्स जैसा कोई रासायनिक साधन उपलब्ध नहीं था। दो शुष्क काष्ठ खंडों को बलपूर्वक रगड़ने पर उत्पन्न चिनगारियों द्वारा ज्वालाएं उत्पन्न की जाती थीं। (यथा मन्थन्ति बाहुभिः ३। २६। ६, अरण्योर्निहितो जात वेदा (३। २। २६। २ ऋग्) इत्यादि। महर्षि अंगिरा का अग्नि में विशेष योगदान रहा होगा क्योंकि उनके नाम का इस संदर्भ में कई बार प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ, 'स जायते मथ्यमानः सहो महत् त्वमाहुः सहस्स पुत्रमंगिरा।। १५। २८।। यजुः।

रत्न शोधन

रत्नों का शोधन तपा कर किया जाता था। अग्नि में से जब चमकदार रत्न प्राप्त होते होंगे तो वैदिक आर्यों का मन अत्यंत प्रसन्न हो जाता होगा। देखिये (अग्निमीले पुरोहित होतारं रत्न धातमम्। ६ (३) ३ ४। सामवेद या "अग्निर्हरण्यान्यक्रीत् दधत् रत्नानि दाशुषे" १ (१), ३। १० साम०) इत्यादि। वैदिक ऋषि अग्नि को ही रत्नदाता मान कर अग्नि की प्रशंसा में ऋचाएं गा उठते थे। वैसे अग्नि एवं रत्न सम्बन्धी ऋचाओं के अन्य दार्शनिक, तांत्रिक एवं वस्तुवादी अर्थ भी संभावित हैं।

समुद्र फेन का उपयोग

समुद्र के फेन का शस्त्र बनाने में उपयोग होता था। कहा जाता है कि फेन से निर्मित शस्त्र के द्वारा इन्द्र ने नमुचि राक्षस का शिरच्छेद कर डाला था।

"अपं फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोद वर्तयः। विश्वायद जयः स्पृधः।" यजुः १६। ७१

इस एवं समुद्र फेन के प्रयोग सम्बन्धी अन्य ऋचाओं के तांत्रिक एवं वर्षा ऋतु सम्बन्धी अन्य अर्थ भी लगाये जा सकते हैं।

दही बनाना, अन्य पेय पदार्थों का निर्माण

उष्ण दुग्ध में दही डालने पर वह फट जाता है एवं उचित क्रिया करने पर दही डाल कर दूध जमाया जा सकता है, रसायन शास्त्र की किण्वन क्रिया सम्बन्धी यह तथ्य यजुर्वेद काल में ही ज्ञात हो चुका था। वैसे आजकल के दृष्टिकोणों से यह जानकारी रोजमर्रा की घरू बात है। "पयसो रूपं यद्यवा, दध्नोः रूपं कर्कन्धुनि" १६।२३ यजुः।

"माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्रः" ७।६७२।१ अथर्व दूध एवं दही के अतिरिक्त अन्य कई खाद्य एवं पेय

पदार्थ जोकि विशिष्ट रासायनिक पद्धति (पाकशास्त्रीय सामंजस्य) द्वारा बनाये जाते थे, ऋगुवेद काल में प्रचलित थे। यथा "धानाः, करम्भाः, सक्तवः, परवायः पयोद्रधिः सोमस्य रूपं हविषा, अपीक्षा वजिनं मधुः।।" १६।२१ यजुः। डा० सत्यप्रकाश ने अपने ग्रन्थ "प्राचीन भारत में रसायन का विकास" में इस विषय पर विस्तार से लिखा है।

मधु विद्या

शहद का तो ऋगुवेद काल में अत्यधिक उपयोग होता था। मधु से आर्य लोग बहुत प्रसन्न थे। उनकी कई ऋचाएं मधु पर ही हैं।

दध्यंकाथर्वण ऋषि का इस संदर्भ में कई बार आदरपूर्वक नाम लिया गया है। मधु विद्या का भी दार्शनिक अर्थ लगाया जाता है।

रँगाई विज्ञान

आचार्य राय ने अपने ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री' में रंगाई विज्ञान के सम्बन्ध में लिखा है कि वैदिक युग में कपड़े भिन्न प्रकार के स्थायी, न धुलने वाले रंगों से रंगे जाते थे। इन रंगों को वनस्पतियों के रसों से ही प्राप्त किया जाता रहा होगा। विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण, उनके अणु संगठनों का अध्ययन आदि रसायन शास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है।

वेदों में सृष्टि के मूल सम्बन्धी विचार एवं वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली

सृष्टि एवं दृश्य वस्तु जगत के पदार्थों का मूल अन्ततोगत्वा क्या है? इस प्रश्न पर विचार करना भौतिक रसायन शास्त्र का विषय है। चारों ही वेदों में यत्र-तत्र प्रचुर प्रमाण उपस्थित हैं जो महर्षियों की इस संबंधी जिज्ञासाओं का प्रदर्शन करते हैं। महर्षियों ने प्रश्न तो प्रस्तुत किये ही हैं, साथ ही वैज्ञानिक शैली पर उनके उत्तर भी प्रस्तुत किये है जो मानव के तत्कालीन मनीषा की विकासावस्था के दृष्टिकोण से अत्यन्त उच्चकोटि के सिद्ध होते हैं। निम्नलिखित विवरण वैदिक विचार पद्धति पर भी प्रकाश डालता है।

ऋगुवेद में एक महर्षि ने प्रश्न किया है, वह कौन है जो जन्म एवं मृत्यु का कारण जानता है? वह कौन सा वृक्ष या वन था जिससे इस विश्व की रचना की गई है? (ऋगः १०।३।३२।७)। आकाश ही अनन्त नहीं है, निश्चय ही इससे भी परे बहुत कुछ है।

सांख्य इत्यादि दर्शनों की अनीश्वरवादी नास्तिक दार्शनिक प्रणालियों के बीज भी वेदों में पाये जा सकते हैं। ऋषि ने कहा है जितने भी मतवाद हैं वे मस्तिष्क के व्यायाम मात्र हैं। जब कोई ईश्वर को जनता नहीं तो वर्णन कैसे कर सकता है? माना कि ईश्वर है लेकिन उस ईश्वर को किसने बनाया? सृष्टि रचयिता ने स्वयं कहाँ बैठकर सृष्टि की रचना की? को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्...को वेद यत आ बभूव"। ०।११।१२६।५ ऋग् एवं इसी सूक्त की अन्य ऋचाएँ।)। यह उदाहरण प्रमाण है इस बात का कि वैज्ञानिक विकास की मूल चिन्तन प्रणाली जिसमें लचर दलीलों पर एवं प्रचलित मान्यताओं पर, अविश्वास कर, सत्यान्वेषण का आग्रह निहित रहता है, उस समय भी प्रकृष्टावस्था में थी। प्राचीन भारत में स्वतंत्र चिन्तक एवं वैज्ञानिक विचारधाराओं वाले मनीषियों की अत्यधिक प्रतिष्ठा थी (देखिये ३२।६ यजुः)। अन्य देशों की ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप शासक वर्ग से विपरीत होने पर उन्हे फाँसी नहीं मिलती थी। यदि उनका तिरस्कार हुआ होता तो क्यों ऐसी अनीश्वरवादी ऋचाएँ भी आस्तिक महर्षि व्यास द्वारा वेदों में ससम्मान संहित होतीं? सृष्टि के रहस्य के ज्ञाताओं को बंधु एवं पिता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। कहा गया है यस्तानि वेद स पितुः पितासत्" ३२।६ यजुः।।

वेदान्त का आस्तिक दर्शन भी बीज रूप में स्पष्टतः वेदों में परिलक्षित होता है। स्पष्ट उद्घोष

किया गया है, "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमम् मातरिश्वानमाहुः ।।" १।५।१०।२८ अथर्व) । अन्तिम सत्य एवं एकमात्र तथ्य एक ही है । विचक्षण लोग उक्ति को भिन्न रूप में परिभाषित किया करते हैं। वैदिक युग में इन्द्र, रुद्र, मातरिश्वा आदि भौतिक शक्तियों के अधिष्ठाता प्रतीक या देवता माने जाया करते थे। शक्तियों के विभिन्न रूपों का उत्स एक ही है, यह आधुनिक विज्ञान भी परिपुष्ट करता है। उपर्युक्त एक ही ऋचांश वैदिक चिन्तन की गंभीरता, स्पष्टता एवं महानता का परिचायक है।

सृष्टि के विकास एवं उत्पत्ति संबंधी एक अन्य कल्पना के अनुसार ईश्वर या परम पुरुष या कालपुरुष के विभिन्न अंगों से सृष्टि के विभिन्न उपादान निर्मित हुए। उदाहरणार्थ नाभि से अंतरिक्ष, आँख से सूर्य आदि (देखिये ३१।१३ यजुः एवं सामवेद ६ (३), ४।३-७। अथर्ववेद के दसवें काण्ड का सम्पूर्ण दूसरा सूक्त प्रत्येक विज्ञान प्रेमी के लिये पर्यवेक्षणीय है। इसमें जो विविध प्रश्न एवं शंकाएँ उठाई गई हैं एवं उनकी प्रस्तुतीकरण की जो शैली है वह द्रष्टव्य है। पुरुष के सम्पूर्ण अंगों एवं उपयोगों के संबंध में प्रश्न उपस्थित किये गये हैं कि किसने एवं कैसे इन्हें उत्पन्न किया? यह पानी एवं सोम कहाँ से प्राप्त करता है? वह किस स्रोत से मानसिक एवं आध्यात्मिक जगत् की शक्ति प्राप्त करता है? ("केन पार्ष्णी आभृते केन गुल्फौ ?... इत्यादि)। इसी प्रकरण के संदर्भ में, अथर्ववेद के समस्त सातवें एवं आठवें सूक्त भी इसी प्रकार की समस्याओं के चिन्तन से भरे पड़े हैं। समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किये गये हैं जो ऋषियों के गहन चिन्तन एवं अनुभूतियों के परिचायक हैं तथा आधुनिक सिद्धान्तों के समकक्ष हैं। इन विश्लेषणों में हम तन्त्र एवं आगम के भी बीज स्पष्ट रूप में देखते हैं जो कि बाद में शैव, बौद्ध एवं शाक्त तथा जैन मनीषियों द्वारा काफी विकसित किये गये।

एक ही ब्रह्म या सत् या इन्द्र से सृष्टि की उत्पत्ति तो मानी गई है लेकिन इस संबंध में आधुनिक विज्ञान सम्मत सुसंयोजित श्रृंखलाबद्ध विवरण या सूक्त वेदों में परिलक्षित नहीं होता। हो सकता है अन्तः दृष्ट, परावाणी द्वारा अनुभूति ऋचाओं को वैखरी या व्यवहारिक वाणी द्वारा प्रगट करना असंभव एवं अनुपादेय समझ कर ही ऋषियों ने लोक कल्याणार्थ सांकेतिक रूप में अनुभव प्रस्तुत किये हों! वेदों एवं उपनिषदों के 'यतो वाचा निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह'...'नेति नेति' नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो'...आदि सुप्रसिद्ध ऋचांश इसी मत की पुष्टि करते हैं। सृष्टि के मूल रहस्य को अनुभव मात्र किया जा सकता है। लिखा या पढ़ाया नहीं जा सकता। विचार, भाषा एवं तर्क से परे भाव क्षेत्र ही नहीं, उससे भी आगे भावातीत क्षेत्र में प्रवेश ही पूर्ण ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है, समय-समय पर यही प्रदर्शित कर गयी हैं महावीर, बुद्ध जैसी विभूतियाँ। आधुनिक युग में भी श्री रमण महर्षी, श्री अरविन्द, श्री आनन्दमूर्ति एवं श्री विशुद्धानन्द सरस्वती, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि का आविर्भाव, उनका साहित्य एवं मार्ग-दर्शन हमें बतालाता है कि विज्ञान एवं दर्शन एक ही बिन्दु पर मिलते हैं जो कि मानव का लक्ष्य है। इस बिंदु का ज्ञान समुचित साधनों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह बिंदु "अणोरणीयान् महतो महीयान्" है। इसे ही जानने के अतिरिक्त परम श्रेय प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है 'नान्यः पंथ विद्यते यनाय (यजुर्वेद)।

निर्वात का चमत्कार

●श्याम मनोहर व्यास

गणित में शून्य का बड़ा महत्व है। किसी भी संख्या के आगे शून्य लगा देने पर उसका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है। विज्ञान में भी ऐसे ही निर्वात (शून्य स्थान) चमत्कार उत्पन्न करता है।

पानी के ऊपर निर्वात (Vaccum) पैदा कर देने से कुँए का पानी नल में चढ़ कर ऊपर पहुँच जाता है। मिट्टी का तेल भी इसी सिद्धान्त पर ऊपर चढ़ता है। 'वाल्वों' और ट्यूबों में पैदा किये गये 'निर्वात' के कारण ही रेडियो और टेलीविजन जैसे आविष्कार सम्भव हो सके हैं।

निर्वात वाली भट्ठी में पिघला कर बनाये गये धातु इतने अधिक शुद्ध, मजबूत और ताप-सहिष्णु होते हैं, कि उनके उपयोग द्वारा अति वेगशाली और अंतरिक्ष-भेदी विमानों का निर्माण सम्भव हो सका है। अन्तरिक्ष यात्रा के लिये भी अन्तरिक्ष यान ऐसी ही धातुओं से बनाये जाते हैं। निर्वात के द्वारा ही कई आधुनिक आविष्कार सम्पन्न हुये हैं। वातानुकूलन, शीत भण्डार, टेलिविजन, रेडियो वाल्व, विद्युत-बल्ब आदि, तेलों से विटामिन ए व ई का निकालना आदि। पेनिसिलीन तथा दूसरी कई एंटी-बायोटिक दवाओं का शीघ्रता से सुखाना भी इसी से सम्भव है। 'अतिशून्यता' में जल विहीन करके सुखाई हुई सब्जियाँ पकाने पर ताजी सब्जियों के समान ही रुचिकर लगती हैं। निर्वात के बिना रेडियो ब्राडकास्टिंग भी नहीं हो सकता है। अत्यधिक शून्यता में ही पदार्थों से इलेक्ट्रान नकलते हैं और नियंत्रित किये जा सकते हैं। कैथोड-रे-ऑसिलियोग्राफ' जिसका एक रूप टेलिविजन सेट के 'परदे' पर दृश्य पैदा करना है, 'अत्यधिक शून्यता' पर ही आश्रित है।

'इलेक्ट्रान माइक्रास्कोप' वस्तुओं को दस लाख गुना तक परिवर्धित करके दिखाता है और 'मास-स्पेक्ट्रोग्राफ' परमाणविक कणों के अध्ययन में काम आता है। ये आधुनिक शोध के महत्वपूर्ण साधन 'अत्यधिक निर्वात' में ही काम करते हैं।

यूरेनियम की कच्ची धातु में से यूरेनियम २३५ का, जिसका प्रयोग परमाणु-भट्ठियों और बमों में होता है—पृथक्करण 'निर्वात' में ही सम्भव हो सका है।

'निर्वात' का अर्थ है—खाली स्थान—ऐसी जगह जहाँ कोई वस्तु न हो। 'अत्यधिक शून्यता वाला स्थान' पैदा करने में उत्तरोत्तर उन्नति के कारण ही परमाणु विज्ञान के बड़े बड़े संयन्त्रों—परमाणु भंजक मशीनों और कई उपकरणों का आविष्कार हुआ है। साइक्लोट्रोन व बीटाट्रोन इनमें मुख्य हैं। बिल्कुल 'निर्वात' स्थान की केवल कल्पना ही की जा सकती है। हमारे पास चाहे कितने ही अच्छे पम्प आदि साधन क्यों न हो, हम किसी 'बन्द स्थान' को हवा, गैस या वाष्प से सम्पूर्णतया खाली नहीं कर सकते। खाली करने पर भी उसमें कुछ हवा के अणु बच रह जाते हैं जो स्वच्छंदतापूर्वक इधर-उधर घूमते रहते हैं। शक्तिशाली पम्पों से एक कमरे जितने बड़े बन्द स्थान में वायुमंडलीय दबाव घटते-घटते १ खरब तक गिर जाता है।

ऐसी 'अत्यधिक शून्यता' ही उपयोगी सिद्ध होती है! टंगस्टन और टैंटालम जैसी दुर्लभ धातुओं के लिये

जो अतिशून्य वाली भट्टियों प्रयुक्त होती हैं, वे बहुत छोटी होती हैं।

निर्वात के कारण भट्टी में आक्सीजन गैस और आक्साइड के मिश्रण से होने वाले धातु का क्षय अत्यन्त कम हो जाता है!

रूस ने ऐसे धातु मिश्रण बनाये हैं जो मजबूत होने के अतिरिक्त प्रचण्ड ताप को भी सहन कर सकते हैं।

बहुत सी प्रचलित उपभोक्ता सामग्रियों जैसे—फिल्म धातुपत्र या बर्क के आभूषण इत्यादि तैयार करने वाली मशीनों के 'रोल' यदि 'बैक्यूम-धातुओं' के बने हों, तो उन रोलों में से ढले हुये पदार्थ अत्यधिक चमकदार और आकर्षक होते हैं।

आजकल बाजार में बहुत सी ऐसी सुन्दर वस्तुयें मिलती हैं जिन पर ऊपर से सोने, चाँदी या ताँबे का पानी चढ़ा मिलता है परन्तु असल में यह प्लास्टिक की बनी होती हैं। ये गहने आजकल महिलाओं में काफी लोकप्रिय सिद्ध हो रहे हैं। प्लास्टिक के ये गहने बन्द टंकी में निर्वात उत्पादन करके ही तैयार किये जाते हैं। इन पदार्थों पर किसी भी धातु सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, कोबाल्ट, निकल, क्रोमियम आदि का पेंट किया जा सकता है। इस प्रकार कई वस्तुओं का वैज्ञानिक स्वरूप निर्वात द्वारा संशोधित व परिवर्तित होने लगा है। रेल इंजनों व मोटर गाड़ियों के अनेक कल-पुर्जे शून्य स्थान में पिघलाये हुये धातु मिश्रणों से बनाये जाते हैं।

भविष्य में 'निर्वात' के द्वारा और भी कई आविष्कार सम्पन्न होंगे। अन्तरिक्ष यात्रा में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। वास्तव में विज्ञान के क्षेत्र में निर्वात का महत्वपूर्ण स्थान है।

चन्द्रमा पर मानव-पदार्पण की तिथि मानवीय प्रगति की सबसे महत्वपूर्ण तिथि है। इसके लिये अमरीकी वैज्ञानिकों एवं अन्तरिक्ष यात्रियों को भुलाया नहीं जा सकेगा। उन्होंने एक नये ग्रह का दर्शन कराया है।

चन्द्रमा पर जीवन का अस्तित्व

● रिचर्ड एम० टटर

क्या चन्द्रमा पर जीवन का अस्तित्व है ? यदि यह मान लिया जाय कि वह वस्तुतः अविकसित और जीवनशक्ति विहीन है, तो पृथ्वी के इस दूरवर्ती उपग्रह की संरचना कैसी है ? क्या मनुष्य भविष्य में किसी दिन चन्द्र-तल पर उपनिवेश बसाने और वहाँ से वाह्य अंतरिक्ष के और भी अधिक दूरस्थ स्थानों की खोज के लिए जाने में समर्थ होंगे ?

सुदीर्घकाल से मनुष्य की वैज्ञानिक जिज्ञासा को बढ़ाने वाले इन तथा अन्य प्रश्नों के उत्तर अभी ज्ञात नहीं किन्तु बहुत सम्भव है कि इस वर्ष के समाप्त होते-होते वे ज्ञात हो जायँ। यदि सभी बातें योजनानुसार सम्पन्न हुईं, तो जुलाई की १६ वीं तिथि को अमेरिकी अंतरिक्ष-यात्री चन्द्रमा पर उतरेंगे और तल पर खोज करेंगे।

चन्द्रमा तल जाने और वहाँ से पृथ्वी पर वापिस आने वाला ४,८०,००० मील लम्बा उड़ान, जो ८ दिनों में पूरी होगी, अपोलो-योजना के चरम बिन्दु की प्रतीक होगी। यह ऐसा कार्यक्रम रहा है, जिसमें ८ वर्ष की गहन तैयारी और अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा लगभग २,००० घण्टे तक अन्तरिक्ष में की गयी उड़ान शामिल रही है।

किन्तु सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण होने के बावजूद अपोलो योजना राष्ट्र के अनवरत जारी अंतरिक्ष कार्यक्रम का एक अंश मात्र है। यह कार्यक्रम १२ वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ, और अब तक इस पर ४४ अरब डालर से अधिक धन व्यय हो चुका है।

चन्द्रतल पर मनुष्य के प्रथम अवतरण की घटना के सामने पिछली और शायद आगे की भी सभी अंतरिक्षीय सफलताएँ बौनी प्रतीत होंगी।

सदियों से मनुष्य सौर मण्डल के किसी अन्य ग्रह तक की यात्रा का सपना देखता आ रहा है और अब, इतिहास के बृहत्तम प्रौद्योगिक प्रयास के बाद वह असम्भव स्वप्न साकार होने के निकट पहुँच गया है। चन्द्रतल पर उतरने वाले पहले अंतरिक्ष यात्री अपने चन्द्र-यान से बाहर निकलने पर जो कुछ देखेंगे, वह अभी सर्वथा अज्ञात है। इस सम्बन्ध में अटकल-बाजियाँ तो अनेक की गयी हैं, किन्तु उनमें से शायद ही कोई वास्तविक तथ्य हों।

सच तो यह है कि चन्द्रतल पर मनुष्यों के उतरने के बाद ३ सप्ताह से पहले वे तथ्य ज्ञात न हो सकेंगे।

इसका कारण यह है कि अंतरिक्ष-यात्रियों और उनके द्वारा चन्द्रतल से पृथ्वी पर लायी गयी वस्तुओं के नमूनों को उस अवधि तक एक विशेष ढंग से निर्मित चन्द्र संग्राहक प्रयोगशाला के भीतर बाहरी संसार से पूर्णतया निरुद्ध अवस्था में रखा जायेगा। यह प्रयोग-शाला ह्यूस्टन, टैक्सास, स्थित समानव अंतरिक्ष-यान केन्द्र पर राष्ट्रीय उड्डयन एवं अंतरिक्ष प्रशासन द्वारा संचालित होगी।

पहले की अंतरिक्ष उड़ानों में पृथ्वी पर सकुशल लौटने के तुरंत बाद अन्तरिक्ष-यात्रियों का सार्वजनिक स्वागत किया गया था। फिर, क्या कारण है, कि इस बार इतनी अद्वितीय सफलता के बाद भी चन्द्र-यात्रियों के

आगत-स्वागत में इतना विलम्ब होगा! ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि चन्द्रमा के वायुमण्डल में और उसकी सतह पर विचरण करने के कारण यदि चन्द्र-यात्रियों के शरीर कुछ प्रभावित होंगे, तो उनके छूत से पृथ्वी पर जीवन को विकृत होने से रोका जाय, हालाँकि इसकी सम्भावना बहुत कम है। प्रयोगों से पता चला है कि पृथ्वी पर उत्पन्न कुछ जीव अंतरिक्ष के साथ थोड़े समय तक खुले सम्पर्क में आने पर भी जीवित रह सकते हैं। इसके विपरीत, यह बात कल्पनीय—हालांकि इस बार भी असम्भव—है कि चन्द्र-तल के जीव इस ग्रह (पृथ्वी) की यात्रा में जीवित बचे रहेंगे। अतः, 'नैसा' की प्रयोगशाला में अंतरिक्ष-यात्री, उनके अंतरिक्ष-यान, और चन्द्र-तल से लायी गयी वस्तुओं के नमूनों की पूरी तरह जाँच और परीक्षा की जायेगी और इस प्रकार इस बात का निर्धारण किया जायेगा कि वे चन्द्रमा से अपने साथ कोई हानिकारक जीव तो नहीं लाये हैं।

चन्द्र संग्राहक प्रयोगशाला (ल्यूनर रिसीविंग लेबोरेटरी) को अंतरिक्ष-यात्रा युग का एलिस द्वीप कहा जा सकता है। उसकी तुलना न्युयार्क बन्दरगाह के उस पार्श्ववर्ती स्टेशन से कुछ हद तक की जा सकती है, जहाँ आज से ५०-६० वर्ष पहले अमेरिका जाने वाले आप्रवासियों को रोक कर उनके स्वास्थ्य और शरीर की पूरी तरह जाँच और परीक्षा की जाती थी, और उसके बाद ही उन्हें अमेरिका की मुख्य भूमि पर पहुँचने दिया जाता था।

किन्तु ह्यूस्टन प्रयोगशाला जिसके आयोजन और निर्माण में चार वर्ष लग गये और १ लाख डालर व्यय हुए, कुछ दृष्टि से और भी अपूर्व है। उसके टैक्निशियन और वैज्ञानिक निरोधक-केन्द्र के कर्मचारियों के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त, चन्द्र-तल से लाये गये नमूनों का परीक्षण और विश्लेषण करेंगे, जिनकी दृष्टि से समय का महत्व बहुत ही अधिक होगा। ये ऐसे परीक्षण—जैसे विकिरण सम्बन्धी परीक्षण—हैं, जिन्हें तुलनात्मक दृष्टि से अधिक संक्षिप्त समय के भीतर ही सम्पन्न करना आवश्यक होगा, अन्यथा अत्यन्त बहुमूल्य आँकड़े सदैव के लिए नष्ट हो जायेंगे। और, अंत में, यह प्रयोगशाला चान्द्र-सामग्रियों के नमूनों को विश्व भर के वैज्ञानिकों द्वारा और अधिक परीक्षण और अनुसन्धान के लिए तैयार, शोधित और वितरित भी करेगी।

दूषित होने की क्रिया दो तरफा हो सकती है। चन्द्रमा से लौटा कर लायी जाने वाली वस्तुओं पर ऐसे कीटाणु विद्यमान हो सकते हैं, जो पृथ्वी पर रहने वाले जीव-जन्तुओं के लिये हानिकारक हो सकते हैं। इसके विपरीत, चन्द्रमा से यहाँ आने वाले कीटाणुओं पर यहाँ की परिस्थितियों का दूषित प्रभाव पड़ने से नमूने नष्ट हो सकते हैं, जो लाभदायक परीक्षण के लिये चन्द्रमा से यहाँ लाये जायेंगे।

दोनों संभावनाओं को टालने के लिये ल्यूनर रिसीविंग लेबोरेटरी को ऐसे घेरे के भीतर बन्द किया गया जिसे समस्त कीटाणुओं को अन्दर जाने से रोकने के लिये बनाया गया है। जिसमें अन्तरिक्ष-यान के चालकों को रखा जायेगा और जहाँ चन्द्रमा से लायी जाने वाली सामग्री की जाँच की जायेगी, इसकी दीवारों को सील कर दिया गया है ताकि अन्दर तथा बाहर जाने वाले तरल पदार्थों को छान कर शुद्ध किया जा सके। उस घेरे में बेकार जाने वाले तरल पदार्थों को ठिकाने लगाये जाने से पूर्व उन्हें विशेष क्रिया द्वारा कीटाणुरहित किया जायेगा।

अलग-अलग रखे जाने की अवधि में किसी भी व्यक्ति को उस क्षेत्र में प्रवेश करने अथवा उस क्षेत्र से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी, जहाँ अन्तरिक्ष-यान चालकों की अगवानी की जायेगी। नमूने की जाँच किये जाने सम्बन्धी क्षेत्रके

कर्मचारी कीटाणुरहित किये गये एक कमरे में से प्रवेश करेंगे और बाहर आयेंगे। उस कमरे में वे उस समय विशेष वस्त्र पहनेंगे जब वे अन्दर जायेंगे। जब वे बाहर आयेंगे तब स्नान करके दूसरे वस्त्र पहनेंगे।

ल्यूनर रिसीविंग लेबोरेटरी की समस्त व्यवस्था पूर्ण हो चुकी है, परीक्षण किये जा चुके हैं जिनमें अन्तरिक्ष यान-चालक उपकरणों तथा कार्य-विधियों की बार-बार परीक्षा कर चुके हैं। उस ऐतिहासिक दिन की प्रतीक्षा की जा रही है, जब तीन अन्तरिक्ष-यान-चालकों को ७५ लाख टन पौण्ड की प्रवेग शक्ति वाले सेटर्न बी राकेट द्वारा पुनः अन्तरिक्ष में भेजा जायेगा। अन्तरिक्ष-यान के इंजन में जो तरल ईंधन प्रयोग में लाया जायेगा, उसमें मिट्टी के तेल के साथ तरल आक्सिजन और तरल हाइड्रोजन भी मिली होगी। चन्द्रमा पर पहुँचने और चन्द्रमा से पृथ्वी पर लौटने की उड़ानों के दौरान बना करने वाले विशेष तेल और अन्य हाइड्रो-कार्बन से बनी हुई चीजें प्रयोग में लायी जायेंगी।

वर्तमान कार्यक्रम के अनुसार अंतरिक्ष यान चालकों में से दो व्यक्ति चन्द्रमा पर लगभग २४ घंटे बितायेंगे। वे इस दौरान अवलोकन करने के साथ-साथ मिट्टी तथा चट्टान के नमूने एकत्र करेंगे। उसके पश्चात् उस तीसरे अन्तरिक्ष-यान-चालक के साथ मिलने के हेतु ऊपर उठने के लिये पुनः पतले पायों वाले अपने छोटे चंद्र-कक्ष में प्रवेश करेंगे, जो चन्द्रमा की सतह से लगभग ७० मील की ऊँचाई पर उस कमाण्ड कक्ष का संचालन कर रहा होगा। उसके लगभग साढ़े तीन दिन पश्चात् तीन यात्रियों वाला वह अन्तरिक्ष-यान प्रशांत सागर में उतारा जायेगा।

अन्तरिक्ष-यान के समुद्र में उतर जाने के थोड़ी देर बाद ल्यूनर रिसीविंग लेबोरेटरी अन्तरिक्ष-यान चालकों को अलग-अलग रखने सम्बधी अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी। जैसे ही बन्द अपोलो अन्तरिक्ष-यान को जहाज पर चढ़ा लिया जायेगा, अन्तरिक्ष यान चालक सीधे, प्लास्टिक की एक कोमल सुरंग के द्वारा, एक हाउस टेलर जैसी यूनिट में चले जायेंगे, जहाँ उन्हें अलग-अलग रखा जायेगा। चन्द्रमा की यात्रा करने वाले वे तीन व्यक्ति एक चिकित्सक और एक इंजिनियर के साथ, समुद्री जहाज तथा वायुयान द्वारा ह्यूस्टन प्रयोगशाला में जाते समय भलीभाँति बन्द किये गये ट्रेलर में रहेंगे।

यह आशा की जाती है कि समुद्र से अन्तरिक्ष-यान को निकाल कर अन्तरिक्ष-यान चालकों को ह्यूस्टन पहुँचाने में ५ दिन से अधिक समय नहीं लगेगा। इसमें वे साढ़े तीन दिन भी शामिल हैं जो चन्द्रमा से पृथ्वी पर लौटने में लगेंगे। अन्तरिक्ष यान की चालकों की २१ दिन की प्रवास की अवधि पूरी करने के लिये प्रयोगशाला के भीतर घेरे के अन्दर बन्द स्वागत-क्षेत्र में १२ दिन से अधिक समय नहीं बिताना पड़ेगा।

२१ दिन तक अलग रखे जाने की अवधि केवल स्वेच्छा पर निर्भर न थी। अवधि ज्ञात संक्रामक रोगों के लिए स्पष्टतः सामने आ जाने के लिए पर्याप्त थी। चन्द्रमा से प्राप्त नमूने थोड़ी भिन्न श्रेणी में आते हैं। अपने सुसंहत साइज के कारण उनमें हानिकारक सामग्री का अधिक सशक्त सांद्रण होगा इसलिए उन्हें चन्द्र-पृष्ठ छोड़ने के दिन से ३० दिनों की अवधि तक मानव-सम्पर्क से दूर रखा जायेगा।

चन्द्रमा से एकत्र नमूनों की वैज्ञानिक मौलिकता बनाए रखने के लिए अतिरिक्त-सावधानी बरती जायेगी। सावधानी बरतने की यह कार्रवाई उसी समय से प्रारम्भ हो जायेगी जब अंतरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर से लगभग ५० पौण्ड सामग्री एकत्र करके उन्हें इस्पात के निर्वात डिब्बों मे मुहरबन्द करेंगे।

यह सामग्री जब धरती पर लाई जायेगी तो उसे दोषरहित रखने के लिए दो कार्रवाइयां की जायेंगी।

एक तो परीक्षण के क्षेत्र के चारों ओर ऐसी दीवारें होंगी जो उन्हें किसी भी प्रकार के कृषि सम्बन्धी दोषों से बचाए रहेंगी। दूसरे उन्हें निर्वात आलमारियों में रखा जायेगा। ये निर्वात आलमारियां स्टील के बक्स जैसी होंगी जिनमें शीशे भी लगे होंगे। बक्स में इनको रबर के लम्बे दस्तानों के द्वारा रखा उठाया जायेगा। ये दस्ताने उन्हीं बक्सों में फिट होंगे और बाहर खड़े वैज्ञानिक उन्हें पहन कर इन नमूनों का परीक्षण आदि करेंगे।

पिछले दिनों चन्द्रमा के तल की जो तस्वीरें खींची गई हैं वे अपेक्षाकृत बहुत अच्छी हैं। वैज्ञानिकों का अब मोटे तौर पर चन्द्र-पृष्ठ के बारे में कुछ जानकारी हो चुकी है। किंतु चन्द्रमा की मिट्टी के भौतिक-रासायनिक गुणधर्म, वहाँ की चट्टानों के स्वरूप निर्माण तथा उसके अन्य संघटन अब तक पूर्णतः अज्ञात हैं। इन बातों से सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर तो हाउस्टन प्रयोगशाला में होने वाले सैकड़ों परीक्षणों द्वारा ही पाया जा सकेगा।

प्रयोगों की इस श्रृंखला में इस बात का निश्चय किया जायेगा कि चन्द्रमा पर जीवन है या नहीं। सम्बद्ध प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों का मत है कि चन्द्रमा का वातावरण ऐसा है कि वहाँ जीवन के होने की संभावना संदेहास्पद है। किन्तु, दूसरी ही श्वास में वे यह भी कह देते हैं 'किंतु हम पूर्णतः निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि वहां जीवन कतई नहीं है।"

चन्द्रमा से अंतरिक्ष यात्रियों की वापिसी में अपोलो योजना का पटाक्षेप नहीं होता है। इसके बाद ल्यूनर रिसीविंग लेबोरेटरी तथा संसार भर के विभिन्न स्थानों पर स्थित अन्य वैज्ञानिक केन्द्र में एक दूसरा नाटक प्रारम्भ होगा और जब तक यह नाटक पूरा होगा तब तक, संभव है कि मनुष्य ज्ञान की अपनी कष्टसाध्य एवं अनवरत खोज के दौरान में और भी कई सीमांत पार कर चुका होगा।

---

१६ जुलाई को अपोलो-११ ने उड़ान भरी, २१ जुलाई को चन्द्रमा पर मनुष्य ने पाँव रखा और २४ को वह लौट कर पृथ्वी पर आ गया। संसार की आजतक मानवीय सफलताओं में चन्द्रमा पर मानव का पदार्पण सर्वाधिक कुतूहलपूर्ण है।—सम्पादक

पौध पोषण में गौण तत्व

● दिनेश चन्द्र जोशी

पौधों की सामान्य वृद्धि के लिये पिछले कुछ वर्षों तक नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटेशियम ही पर्याप्त समझे जाते थे। पौध-पोषण में विस्तृत अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि इन तत्वों के साथ-साथ पौधे मृदा से कुछ और तत्व भी प्राप्त करते हैं। ये तत्व हैं—लोहा, ताँबा, मैंगनीज, जस्ता, मोलीब्डीनम एवं बोरान। ये तत्व यद्यपि फसलों की वृद्धि के लिये आवश्यक हैं तथापि इनकी बहुत-थोड़ी मात्रा में जरूरत पड़ती है। ये प्रायः गौण या सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं।

पौधों में सामान्य वृद्धि प्रकिण्वों (Enzymes) की पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर होती है। गौण तत्व प्रकिण्व-अणु के रचक तथा प्रकिण्व निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। गौण तत्वों की कमी से पौधों की वृद्धि रुक जाती है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं। जाति के अनुसार पौधों की गौण तत्व आवश्यकता भिन्न होती है।

सामान्यतया गौण तत्व मृदा में पौधों की आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं परन्तु ये तत्व पौधों को निश्चित रासायनिक रूप में ही प्राप्य होते हैं। गौण तत्वों के यह रासायनिक रूप मृदा पी-एच, आक्सीकरण व अवकरण क्रियाओं के अनुसार बदलते हैं। सामान्यतया सभी गौण तत्व मृदा पी-एच० ६ से ७ पर प्राप्य रूप में होते हैं।

मृदा में लौह तत्व होर्नब्लेंडी, बायोटाइट, क्लोराइट व पायराइट खनिजों के अपक्षय से प्राप्त होता है। पौधे लौह तत्व फेरस के रूप में ही प्राप्त कर सकते हैं। क्षारीय मृदा में यह अप्राप्य फेरिक रूप में होता है तथा मृदा पी-एच ६ से ७ पर ही पौधों को प्राप्य हो सकता है। लोहा, क्लोरोफिल अणु का मुख्य अंशक तो नहीं है, परन्तु क्लोरोफिल निर्माण क्रियाओं में महत्वपूर्ण भाग लेता है। इस तत्व की कमी पूरी करने के लिये १५-२० पौंड प्रति एकड़ की दर से लोहा फेरस सल्फेट या फेरस-चीलेट के रूप में पौधों को दिया जाता है।

खनिज पायरोलुसाइट, रोडोमाइट तथा रोडोक्रोसाइट के अपक्षय से मृदा में मैंगनीज तत्व प्राप्त होता है। अम्लीय मृदा में प्राप्य मैंगनीज की ज्यादा मात्रा होती है, जिससे पौधों पर विषैला प्रभाव हो जाता है। क्षारीय मृदा में यह तत्व अप्राप्य रूप में होता है। पौधे मृदा पी-एच ६ से ७ पर उपस्थित सक्रिय रूप ही प्राप्त करते हैं। मैंगनीज क्लोरोफिल निर्माण एवं नाइट्रोजन चयापचयन क्रियाओं के लिये आवश्यक है। मैंगनीज की कमी वाले क्षेत्रों में १५-३० पौंड प्रति एकड़ की दर से मैंगनीज, मैंगनीज सल्फेट के रूप में पौधों को दिया जाना चाहिये।

खनिज कैलसाइट, डोलोमाइट, कैलमैगनाइट के अपक्षय से मृदा में जस्ता तत्व प्राप्त होता है। औसतन मृदा में जस्ता ०·००३-००८ प्रतिशत होता है। रेतीली मृदा में जिंक की मात्रा कम होती है। क्षारीय मृदा में यह तत्व अप्राप्य रूप में होता है। जस्ता प्रोटीन निर्माण में भाग लेने वाले प्रकिण्व का रचक है। पौधों की वृद्धि के लिये आक्सिन आवश्यक है। जस्ता आक्सिन निर्माण क्रियाओं में भाग लेता है। जस्ता-न्यून फसल पर ५-५० पौंड प्रति एकड़ की दर से जिंक सल्फेट का छिड़काव करना चाहिये।

साधारणतया मृदा में ताँबा तत्व की मात्रा १० से २०० अंश प्रति दस लाख अंश तक होती है। तांबा

पौधे में क्लोरोफिल निर्माण, नाइट्रोजन चयापचयन, प्रकाश संश्लेषण तथा अन्य आक्सीकरण-अवकरण क्रियाओं में सक्रिय भाग लेता है। तांबा इन क्रियाओं में भाग लेने वाले प्रकिण्व का रचक है। तांबा मृदा में जैविक अंश, ह्यूमस, के साथ रासायनिक अनुबंध में होता है। २ से ५० पौंड प्रति एकड़ की दर से नीले थोथे के रूप में छिड़काव करने पर तांबा की कमी पौध में पूरी की जा सकती है।

मृदा में बोरान मुख्य रूप से टोरमेलीन खनिज के अपक्षय से प्राप्त होता है। औसतन मृदा में २०-२०० पौंड बोरन प्रति एकड़ तक होता है। अम्लीय मृदा में प्राप्य बोरीन कम होता है। क्षारीय मृदा में प्राप्य बोरान की मात्रा अधिक होने से पौधों पर विषाक्त प्रभाव होता है। बोरान पौधों में मुख्य रूप से हारमोनल व शर्करा चयापचयन क्रियाओं में भाग लेता है। बोरान कमी वाले पौधों में प्रोटीन अधिक तथा बसा कम होती है। सिंचाई के पानी में बोरान की मात्रा १ अंश प्रति दस लाख अंश से ज्यादा होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है। कमी वाले पौधों में बोरीन ५-५० पौंड प्रति एकड़ की दर से बोरेक्स तथा कोलमेनाइट के रूप में देना चाहिये।

खनिज पेगमेटाइट, क्वार्टज, एपेटाइट तथा चूने के पत्थर में पर्याप्त मोलीब्डीनम होता है तथा इन खनिजों के अपक्षय से मृदा में प्राप्त होता है। औसतन मृदा में मोलीब्डीनम ११-१० अंश प्रति दस लाख अंश तक होता है। कटाव से प्रभावित मिट्टियों में मोलीब्डीनम की मात्रा कम होती है। अम्लीय मृदा में मोलीब्डीनम अप्राप्य होता है। मृदा पी एच ६ से ८ तक ही मोलीब्डीनम प्राप्य रूप में होता है। अम्लीय भूमि में चूना देने से मोलीब्डीनम प्राप्यता बढ़ जाती है।

दलहन पौधों एवं फालीदार पौधों के लिये मोलीब्डीनम विशेष रूप से आवश्यक है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्रिया में मोलीब्डीनम सक्रिय रूप से भाग लेता है। मोलीब्डीनम की कमी से पौधों के फास्फोरस पोषण में भी कमी आ जाती है। मोलीब्डीनम नाइट्रोजन चयापचयन प्रकिण्वों का रचक है। इस तत्व की कमी वाले पौधों को १-२ पौंड प्रति एकड़ की दर से अमोनियम मोलीब्डेट के रूप में फासफोरस उर्वरकों के साथ देना चाहिये या पौधों पर छिड़काव करना चाहिये।

भूप्रबन्ध क्रियाएं एवं गौण तत्व

गौण तत्व मृदा में पौधों की आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं। इन तत्वों की प्राप्यता बनाए रखने के लिये मृदा पी एच, आक्सीकरण एवं अवकरण क्रियाओं को विशेष भूप्रबन्ध क्रियाओं द्वारा निर्धारित करना आवश्यक है।

अपर्याप्त निकास वाली मृदा सामान्यतया अम्लीय होती है। अम्लीय मृदा उपस्थित प्राप्य गौण तत्वों की अधिक मात्रा पौधों के लिये हानिकारक होती है। भूमि पर एकत्रित पानी को उपयुक्त निकास देना चाहिये। भूपरिष्करण क्रियाओं द्वारा मृदा के रिसन का सुधार कर तथा चूना देकर गौण तत्वों के हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता है।

क्षारीय मृदा में बोरान की विषालुता से पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं। अन्य सभी गौण तत्व क्षारीय मृदा में अप्राप्य होते हैं। क्षारीय मृदा में इन तत्वों की प्राप्यता व गंधक एवं अन्य अम्लीय प्रभाव वाले उर्वरकों के उपयोग द्वारा बढ़ाई जाती है। कार्बनिक खाद देने से भी इन तत्वों की प्राप्यता बढ़ती है। क्षारीय भूमि में अधिक सिंचाई द्वारा हमेशा नम रहने से भी गौण तत्वों की प्राप्यता बढ़ जाती है। परन्तु सिंचाई का पानी क्षारीय नहीं होना चाहिये। क्षारीय पानी में बोरान की मात्रा भी अधिक होती है। पानी में १ अंश प्रति १० लाख अंश से अधिक बोरान होने पर अधिकतर फसलों की वृद्धि रुक जाती है।

रेतीली भूमि में गौण तत्वों की कमी होती है। गौण तत्वों की कमी पूरा करने के लिये प्राप्य गौण तत्व को उपयुक्त रासायनिकों द्वारा चूर्ण रूप में देना या छिड़काव करना चाहिये।

रेडियो भेषज

● मुकुल चन्द पाण्डेय

सृष्टि के आरम्भ से ही नाना प्रकार की व्याधियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जीवधारियों के विनाश का कारण बनती रही हैं। किन्तु इनमें से अनेक बीमारियों के रोकथाम के उपाय भी खोजे जाते रहे हैं। भारतीय संहिताओं में वर्णित आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित धनवन्तरि, चरक, सुश्रुत तथा दैवी गुणों से अभिषिक्त अश्वनी कुमारों का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आधुनिक काल में विभिन्न भेषजीय अनुसंधानों को रासायनिक परिवेश में उत्कर्षोन्मुख किया जा रहा है। चिकित्सा क्षेत्र में विगत वर्षों की महानतम उपलब्धियों में रेडियो-समस्थानिकों से संश्लिष्ट औषधियों का गौरवपूर्ण स्थान है। शरीर की उपापचय क्रियाओं, रुग्ण तथा स्वस्थ अंगों का निदान, लक्षण-ज्ञान, रोगग्रस्त व नीरोग दशाओं के विभेदीकरण, उपचार के क्रमिक तरीकों की दिशा में रेडियोसक्रिय अनुरेखक सबल अस्त्र सिद्ध हुए हैं।

अपनी तीव्रतर कार्य क्षमता के आधार पर ये अनुरेखक उच्चतम गवेषणात्मक यथार्थता, रोग के स्तर का परिशुद्ध प्रेक्षण तथा तत्सम्बन्धित आँकड़ों की प्राप्ति का परम्परागत विधियों की अपेक्षा अधिक सत्यता के साथ बोध कराते हैं। हाइपरथायराडिज्म तथा पालीसायथेमिया सदृश असाध्य रोगों पर नवीनतम चिकित्सा पद्धति (रेडियोसमस्थानिकों के अनुप्रयोग) विश्व भर में अब लोकप्रिय हो चली है। नियोप्लास्टिक तथा समान रोगों पर इन भेषजों का बहुआयत से प्रयोग होने लगा है। किरणीयन के स्रोतों से सूइयों (इंजेक्शनों) बीजों या गोलियों के द्वारा उपयोगी उपचार से अन्तराकाशी या अन्तः क्रिया से नासूर (कैंसर) जैसी बीमारियों पर सहज नियंत्रण प्राप्त किया जा सका है। कोबाल्ट-६० किरणीयक स्रोत के विशिष्ट रूप से क्रियान्वित चिकित्सा विधि के तीव्र प्रयोग से विकिरण चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जा सकी है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई-७४ के समस्थानिक प्रभाग ने विविधि प्रकार की रेडियो औषधियों, किरणीयन स्रोत तथा रेडियो रसायनों की संश्लिष्ट औषधियों को सृजित किया है। इस दिशा में नूतन औषधियाँ दिन-प्रतिदिन के सघन विकास योजना के अन्तर्गत निर्माणाधीन है।

लगभग पचास से ज्यादा उन्नतिशील दवाओं का अन्वेषण किया जा चुका है जो विभिन्न रोगों के उपचार में उपयोगी साबित हुई हैं। इनमें आयोडीन-१३१ फास्फोरस-३१, क्रोमियम-५१, स्वर्ण-१६८, लौह-५६, सोडियम-२४ तथा पोटैशियम-४२ विशेष उल्लेखनीय हैं। रोगों के सामान्य लक्षणों के अभिज्ञान, हृदय के विकारों, थायोराइड की अव्यवस्था को आयोडीन चिकित्सा से नियंत्रित किया जा सकता है। इसी प्रकार रक्त विकारों को सोडियम उपयोग से ज्ञात किया जा सकता है। बहुत से जैविक उपयोग के कार्बनिक पदार्थ, यथा प्रोटीन, एमीनो अम्ल, वसा, शर्करा तथा विटामिनों को रेडियोसक्रिय समस्थानिकों से अंकित कर शरीर पर उनके प्रभाव का सरलता से पता लगाया जा सकता है। वास्तव में इनके उपयोग से यह सरलता से विश्लेषित किया जा सकता है कि कौन सा तत्व क्या प्रभाव डालता है ? बहुत से विटामिनों (विटामिन बी-१२) को रेडियो कोबाल्ट, रेडियो आयोडीन आदि से अंकित कर इनका क्रियात्मक महत्व सुगमता से जाना

जा सकता है। इसी प्रकार यकृत, वृक्क, पित्ताशय और मस्तिष्क ग्रन्थियों के गुप्त रोगों की पहचान आसानी से इस रीति द्वारा की जा सकती है। तिल्ली के गहन व्याधि का सरल निदान भी ज्ञात किया जा सकता है।

कुछ समस्थानिक ऐसे हैं जो अत्यल्पकाल में ही प्रभावरहित हो जाते हैं। उनको अधिक समय तक क्रियाशील बनाये रखने के लिए दूरस्थ स्थानों पर ले जाने के लिए समस्थानकीय दुग्ध एकक की सुविधा भी उत्पादन केन्द्रों पर सुलभ है। सामान्यतया आयोडीन-१३२, टेक्नीशियम-६६ एम को अधिकांश निदान सम्बन्धी अध्ययनों के लिए उपयुक्त देखा गया है जो आयोडीन-१३१ का सहज विकल्प स्वरूप है। यह साधन अपने अनुकूलतम नाभिकीय लक्षणों के कारण जटिल अवयवों-मस्तिष्क यकृत, अस्थि, मज्जा, जरायु आदि के अक्षतिकारी अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान देने में समर्थ हुआ है। इन्हें बिना किसी हानिप्रद कार्यों के अधिकाधिक समय तक रखा जा सकता है। दुग्ध एकक में अनावश्यक द्रव्य विलीन हो जाते हैं। किसी असाध्य रोग के उपचार के सम्बन्ध में इन रेडियो-भेषजों के लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र से सम्पर्क स्थापित कर प्राप्त किया जा सकता है। रेडियो आयोडीनीकरण विरोधी रंगों का सम्मिलित उपयोग आदि दुर्लभ कार्यों की सेवायें भी अब उपलब्ध हैं।

अभी तक उद्भूत रेडियो-भेषजों में २४ इंजेक्शन, २६ पेय विलयन तथा ४ वाह्य उपयोग की व्यावहारिक उपादेयता ज्ञात है। इन प्रभावशाली औषधियों के कार्य क्षेत्र में जाने के पूर्व भलीभाँति निश्चयात्मक परीक्षण कर लिया जाता है। इन परीक्षणों में भौतिक, रासायनिक, रेडियो रासायनिक तथा जीववैज्ञानिक विशेष द्रष्टव्य हैं। भौतिक परीक्षणों में सान्द्रता (गाढ़ापन), विशुद्धता, कोलाइड की दशा में कणों के आकृति का मापन आदि सम्मिलित हैं। रासायनिक नियंत्रण में हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (पी० एच०), अशुद्धियाँ, भारी धातुओं तथा अवलम्बवाहकों का पुनरीक्षण आदि आते हैं। रेडियो रासायनिक परीक्षण में इस बात का दृढ़ निश्चय कर लिया जाता है कि प्रयुक्त रेडियो सक्रिय रसायन का अधिकांश भाग वांछित रासायनिक स्वरूप में उपस्थित है अथवा, नहीं। जीववैज्ञानिक नियंत्रण में विषैलेपन की अवांछनीयता, बंध्यता तथा उष्मीय परीक्षण साथ ही जीवधारियों के शरीर पर इनका प्रभाव व चिकित्सालयों में इनके लक्षणों का अभिज्ञान किया जाता है। कुछ औषधियों की अर्धआयु इतनी कम होती है कि उनके निर्माण व वितरण के मध्यान्तर में परीक्षण के लिए अन्तराल नहीं मिल पाता। विशिष्ट क्रियाशीलता के आधार पर परीक्षणों के निष्कर्ष जानने के पूर्व ही उन्हें पैक कर दिया जाता है।

कोबाल्ट-६०, स्वर्ण-१६८, इट्रियम-६० प्रभृति किरणीयन स्रोतों के आन्तरिक क्रियाशीलता तथा अन्तराकाशी आधार पर नासूर के उपचार में सफलता मिली है। नासूर की चिकित्सा में वाह्य उपयोगों का कोबाल्ट-६० के बड़े पैमाने पर प्रयोगों द्वारा विशेष प्रकार से सज्जित चिकित्सा स्रोतों में बहुमूल्य उपलब्धि हुई है।

कोबाल्ट-६० संसाधन

रेडियम नलियों तथा सुइयों की अपेक्षा कोबाल्ट-६० नलियों तथा सुइयों के रूप में अच्छा समझा जाता है क्योंकि विखण्डन पर रोगाणु से छुआछूत की अल्पतम सम्भावना हुआ करती है। कोबाल्ट-६० की तुलना रेडियम से की जा सकती है जिसमें खुराक की सुव्यवस्थित संहति सरल होती है। कोबाल्ट नलिकायें कोबाल्ट के तार को प्लेटिनम-राडियम के मिश्रधातुसे ढककर बनाया जाता है जिसमें एक खुला हिस्सा होता है। तदनन्तर ये विशिष्ट क्रियाशीलता के साथ किरणीयन के द्वारा कार्यक्षेत्र व आकार में व्यापक रूप से सुलभ होती हैं।

टेलीचिकित्सा स्रोत

उच्च तीव्रता वाले कोबाल्ट-६० स्रोत की टेली-चिकित्सा इकाइयाँ अब वस्तुतः प्रयोग में लाने के लिए

लक्ष्य हैं। ये टिकियों के रूप में तीव्र विशिष्ट सक्रिय कोबाल्ट-६० संक्षारण रोधी इस्पात के बने कैपसूल में दोहरे तौर पर सुरक्षित पाये जाते हैं। इसका मानदण्ड बैल्डविन-फ़ारमर आयनीकरण प्रकोष्ट के द्वारा किया जाता है। इनके उपकरणों को भरने के लिए किरणीयन के बाह्य स्रोत अब आसानी से प्राप्य हैं। व्यापारिक विख्यात स्रोतों के अतिरिक्त अधिक प्रभावशाली शक्ति वाले स्रोत भी अनुरोध पर संभारित किये जा सकते हैं।

स्वर्ण-१६८ कणिकाएं

प्लेटिनम के आच्छादन से ढके सोने के कण ०·८ मि० मी० व्यास तथा २·५ मि० मी० लम्बाई के आयामों में विशिष्ट सक्रियता से किरणीयन सहित उपलब्ध हैं। ये एलुमिनियम मैगजीनों में भरे रहते हैं जो आरोपण उपकरणों के लिए अति उपयुक्त होते हैं। सोने के ०·५ मि० मी० व्यास के तार जो ०·१३ मि०मी० के प्लेटिनम तार के अन्दर पड़े रहते हैं, उपलब्ध हैं। किसी भी वांछित लम्बाई के तार को विशिष्ट किरणीयन के द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।

इट्रियम-६० शलाकाएं

इट्रियम आक्साइड के छड़ नाइलोन से ढके हुए तथा स्टेनलेस स्टील के पंचदार गर्तिका में जुड़े हुए प्राप्य हैं। ये छड़ विशेष रूप से तीव्र किरणीयन से प्रभावित किए रहते हैं जिनका मापन एक आयनीकरण प्रकोष्ठ में किया जाता है।

प्रगति की पराकाष्ठा के साथ ऊपर विहित रेडियो समस्थानिक सामग्रियों के अतिरिक्त व्यापक रूप में प्राथमिक रेडियो समस्थानिक, कार्बन-१४ तथा ट्रिटियम अंकित योगिक तथा किरणीयन स्रोत आदि अनुसंधानों के निमित्त उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त सुगमता की दृष्टि से रेडियो रेखक प्रयोगशालाओं तथा रेडियो आइसोटोप संचालक उपकरणों के प्रतिरोपण में हर प्रकार की सहायता भी अनुरोध पर प्राप्त हो सकती है। इन महानतम भेषजीय उपलब्धियों ने मानवता की चिरन्तन सेवा में एक नया अध्ययन जोड़ दिया है। इस दिशा में निरन्तर अन्वेषण गतिमान है; निकट भविष्य में इस कार्य से असाध्य रोगों का उपचार अति सुगम हो जावेगा।

विचार विनिमय

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम विभिन्न सामयिक समस्याओं पर विद्वानों एवं सुधी पाठकों के विचारों को प्रस्तुत करेंगे। लेखकों से अपने विचार प्रेषित करने का हम अनुरोध करते हैं]— सम्पादक

विज्ञान की भाषा—स्वरूप निर्धारण

विचार-विनमय नामक इस स्तम्भ का समारम्भ हम विज्ञान की भाषा के स्वरूप निर्धारण से कर रहे हैं। आशा करते हैं कि पाठक गण अपने उद्‌गारों को हम तक प्रेषित करके हमें इस कार्य को अग्रसर करने में हमारी सहायता करेंगे।

यदि सारे विश्व में विज्ञान की एक ही भाषा हो सकती तो शायद इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता न पड़ती कि विज्ञान की भाषा का स्वरूप क्या हो। तब अनैच्छिक रूप से उसी का अध्ययन करके दक्षता प्राप्त की जाती। किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है।

अमरीका, रूस चीन, जापान तथा जर्मनी ने क्रमशः अंग्रेजी, रूसी, चीनी, जापानी तथा जर्मन भाषाओं के माध्यम से अपने-अपने देश में वैज्ञानिक प्रगति की है। यदि किसी अन्य राष्ट्र को उन देशों की वैज्ञानिक प्रगति का परिचय प्राप्त करना हो तो उसे तत्सम्बन्धी भाषा में दक्षता प्राप्त करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। किन्तु किसी भी राष्ट्र के वैज्ञानिकों के लिये एक साथ इतनी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि पहले किसी भी देश में इतनी भाषाओं को सीखने की सुविधायें नहीं हैं और यदि हैं तो वैज्ञानिकों के पास इतना समय नहीं कि वे इतनी भाषाओं को सीखें और सरलता से उनका व्यवहार कर सकें। बस यहीं से अनुवाद की आवश्यकता का समारम्भ होता है। किसी एक भाषा में कोई अनुवाद हो जाने पर उस भाषा को समझने वालों की संख्या के अनुसार ही उसकी उपयोगिता चरितार्थ होगी। अमरीका तथा इंगलैंड की भाषा अँग्रेजी है। ये दोनों अत्यन्त अग्रणी राष्ट्र हैं अतः विभिन्न भाषाओं में प्राप्त वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद अँग्रेजी में होता रहता है फलतः वे समस्त अन्य राष्ट्र जहाँ अँग्रजी बोली और समझी जाती है, ऐसे अनुवाद से बिना प्रयास ही लाभ उठा लेते हैं। भारतवर्ष में अँग्रेजी के प्रति जो व्यामोह फैला है उसका मूल कारण यही है। अँग्रेजों के पदार्पण के साथ ही हमारे देश में अँग्रेजी भाषा का प्रचार हुआ और आश्चर्य यह कि उनके चले जाने के २२ वर्षों के बाद भी वह आज इतनी लोकप्रिय एवं आकर्षक बनी हुई है कि आये दिन उसके समर्थन में देश में उपद्रव खड़े होते रहते हैं।

विज्ञान-मंच से

इसमें कोई भी अत्युक्ति नहीं कि अँग्रेजों के शासन से देश में मानसिक परतन्त्रता तो फैली किन्तु भारत वासियों को अँग्रेजी जैसी सशक्त भाषा को सीखने एवं उस पर अधिकार प्राप्त करने का सुअवसर भी मिला। शायद स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् जो वैज्ञानिक प्रगति देश में हुई है वह अँग्रजी के ज्ञान के बिना सम्भव न हो पाती। तभी तो देश के बड़े-बड़े नेताओं ने अँग्रजी को "ज्ञान का वातायन" कहकर देश में अंग्रेजी बने

रहने की जोरदार अपील की है। उनके समक्ष अंग्रेजी का "अन्तराष्ट्रीय स्वरूप" था।

किन्तु प्रश्न है कि क्या प्रत्येक देश के लिए अंग्रेजी सीखना आवश्यक है? क्या अनुवादों के द्वारा वही कार्य हिन्दी द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता? यदि नहीं, तब फिर क्यों न हम रूसी, चीनी आदि भाषाओं के के प्रति भी उतनी ही निष्ठा दिखावें जितनी कि हम अंग्रेजी के प्रति दिखाते हैं?

इसका एकमात्र उत्तर यही होगा कि हमें अपने राष्ट्र में अपनी एक भाषा—राष्ट्र भाषा—चुनकर उसी में सारा कार्य करना होगा। सौभाग्यवश हमारे राजनीतिक कर्णधारों ने इस दिशा में अत्यन्त दूरदर्शिता से काम लिया है। देश के संविधान में उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में जो कार्य पहले अंग्रेजी में होता था अब वह हिन्दी में ही होना चाहिए।

किन्तु १६ वर्षों के बाद भी यह नहीं हो पाया। इसलिए बारम्बार यह कहने और सुनने की आवश्यकता पड़ती है कि वैज्ञानिक अध्ययन की भाषा का स्वरूप क्या हो? वह अंग्रेजी ही रहे या हिन्दी हो? या अन्य कोई भाषा। जिन लोगों को अंग्रेजी का मोह है वे अन्तिम श्वास तक उसी की माला जपना चाहते हैं, भले ही आने वाली पीढ़ियों का उसमें अनर्थ छिपा हो किन्तु उसके समक्ष वे राष्ट्र के हित की तिलांजलि दे देना चाहते हैं। वे ऐसे रंगीन स्वप्नलोक में रह रहे हैं जहाँ अंग्रेजी ही अंग्रेजी की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

दूसरी ओर जो लोग राष्ट्रीयता के आवेश में आकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर अविलम्ब शिक्षा के माध्यम को हिन्दी बना देना चाहते हैं, उन पर अंग्रेजी भक्त लोगों का यह अभियोग है कि देश पर जबरन हिन्दी लाद रहे हैं। यह ठीक है कि किसी पर कोई भाषा को लादकर राष्ट्र का हित नहीं साधा जा सकता किन्तु क्या यह भी उतनी ही सशक्त दलील नहीं है कि राष्ट्र भाषा को इसी प्रकार अनन्त काल के लिये उपेक्षित भी नहीं रखा जा सकता अन्यथा हमें एक बार फिर यह विचार करना होगा कि क्या देश में भारतीय भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने की आवश्यकता नहीं है?

यदि मात्र अंग्रेजी की उपयोगिता के आधार पर राष्ट्रभाषा हिन्दी को अव्यवहारिक माना जाता तो शायद यह समस्या न उत्पन्न होती जितनी कि इस भय के कारण हो रही है कि हिन्दी, जो उत्तर भारत में सर्वत्र बोली तथा लिखी जाती है, कहीं दक्षिण भारत पर हावी न हो जाय। राजनीतिक क्षेत्र में इसे उत्तर भारत की दक्षिण भारत पर विजय माना जाता है। इस समय हिन्दी का जो विरोध हो रहा है उसके मूल में यही दुर्भावना कार्य कर रही है अन्यथा राष्ट्रभाषा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के बजाय उसका यह अपमान एवं विरोध कैसा? उसकी बराबरी में अन्य भारतीय भाषाओं के नाम लेने या प्रान्तीयता की दुहाई देने से क्या लाभ? किन्तु आज दक्षिण भारत एवं बंगाल से यही आवाज उठ रही है कि जब प्रान्तीय भाषायें एक समान हैं तो फिर हिन्दी को ही यह राष्ट्रभाषा पद क्यों? हिन्दी में न तो कोई नोबेल पुरस्कारविजेता हुआ है न उसका साहित्य ही समृद्ध है?

वस्तुतः ये ऐसी दलीलें हैं जिन पर यदि ध्यान दिया जाय तो शायद सदियों में भी राष्ट्र भाषा का प्रश्न तै न हो पाये। किन्तु समस्या राष्ट्रभाषा चुनने की नहीं। वह तो पहले ही चुन ली गई है—सम्भवतः उस काल में जब लोगों को हिन्दी से वैर-भाव न था। यदि अब कोई समस्या है तो वह है राष्ट्र भाषा का देशव्यापी व्यवहार एवं उपयोग। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्र के हितैषियों ने सारे देश में विज्ञान की शिक्षा को हिन्दी में दिये जाने के प्रति चिन्तित होकर "वैज्ञानिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी जिसके द्वारा देश भर में एक जैसी शब्दावली के प्रयोग की सलाह दी जानी थी। इस कार्य में जो प्रगति हुई वह सन्तोषजनक तो नहीं

कही जा सकती किन्तु देश की गाड़ी चलाने के लिए काफी है। इन्टरमीडियेट तथा बी-एससी कक्षाओं तक के लिये प्रयोग में आने वाले अंग्रेजी शब्दों के समानार्थी हिन्दी शब्दों की सूची अब कोश के रूप में प्रकाशित हो चुकी है और शब्दावली आयोगों की सिफारिश है कि पाठ्य पुस्तकें लिखते समय इसी शब्दावली का व्यवहार किया जाय। इस शब्दावली से लेखकों को न केवल बल मिला है वरन् ऐसे लेखक भी लेखन कार्य में प्रवृत्त हुये हैं जिनमें मूलतः इतनी शक्ति न थी कि बिना किसी से सहायता लिये शब्दों का प्रणयन कर सकते।

वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन होने प्रारम्भ हुए हैं। वे समस्त पुस्तकें जो विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अंग्रेजी में प्राप्त थीं और अत्यन्त लोकप्रिय थीं, या तो सरकारी सहयोग से या प्रकाशकों द्वारा निजी प्रयास से कुशल अनुवादकों द्वारा अनूदित हो चुकी हैं या हो रही हैं। इससे एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि न केवल हमारे छात्रों को सस्ते दामों पर हिन्दी में अंग्रेजी की पुस्तकें उपलब्ध होने लगी हैं वरन मौलिक रूप से विभिन्न विषयों पर जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनके स्तरों में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है। लेखकों ने अनूदित साहित्य से न केवल विषय सामग्री ग्रहण की है, वरन् शैली का भी अनुकरण किया है जिससे कुछ हद तक भारतीय लेखकों द्वारा लिखी पुस्तकें अत्यन्त रोचक एवं ग्राह्य हो सकी हैं।

यदि यह मान लिया जाय कि विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाय तो हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि अभी बहुत वर्षों तक अंग्रेजी हमारे लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होती रहेगी, हमारे लिये प्रेरणा की स्रोत बनी रहेगी और कुशल अध्यापकों एवं शोधकर्ताओं के लिये अपरिहार्य होगी। विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के पाठन का हमें सुव्यवस्थित आयोजन करना ही होगा किन्तु साथ ही हिन्दी के प्रयोग में शिथिलता नहीं बरतनी होगी। यदि कठोरता के साथ इन दोनों नियमों का पालन नहीं किया जावेगा तो दुविधा की स्थिति बनी रहेगी जो किसी भी दशा में देश हितैषिणी नहीं होगी।

आगे आने वाली पीढ़ी को यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाना चाहिये कि अन्ततः राष्ट्र का सारा वैज्ञानिक चिन्तन हिन्दी के माध्यम से होना है—चाहे वह पुस्तक लेखन का हो, शोध ग्रंथ का प्रकाशन हो या भाषण हो।

वर्तमान पीढ़ी को जिसे हम "बूढ़ी पीढ़ी" कह सकते हैं अत्यन्त उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। उसे राष्ट्रभाषा की महत्ता को स्पष्ट करते हुये छात्रों को चिन्तन की उचित दिशा प्रदान करनी होगी। राष्ट्रभाषा के प्रेमी बनते हुये आज वैज्ञानिकों को अपने द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में कुछ ऐसा प्रयास करना होगा जो विकास की दिशा का सूचक हो। उन्हें ऐसे शब्द प्रयुक्त करने होंगे जो सरल एवं सार्थक हों। जहाँ तक सम्भव हो, विवादास्पद शब्दों के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार-विनिमय द्वारा एकमत हो लेना होगा। भाषा को भावों के अनुकूल बनाने के यथासम्भव सभी प्रयास किये जाने होंगे। यदि कोई उसमें सुधार करता है तो उसका स्वागत करना होगा। प्रत्येक वैज्ञानिक को यह घोषित कर देना होगा कि वह भारतीय होने के नाते राष्ट्र भाषा का समर्थक है और उसे सीखने के लिये प्रयत्नशील है। किन्तु जो लोग विज्ञान में ऐसी भाषा के प्रयोग का आये दिन समर्थन करते रहते हैं कि वह संस्कृतनिष्ठ न हो अर्थात् सरल हो तो उनके लिये हमारा निवेदन यह है कि वे भूल पर हैं। क्या कोई भारतीय कभी यह कहता है अंग्रेजी में प्रकाशित अमुक वैज्ञानिक पुस्तक क्लिष्ट है! क्लिष्टता का सीधा सम्बन्ध भाव-प्रकाशन से है। यदि ऐसे भावों का प्रकाशन करना है जो गम्भीर हैं तो निश्चय ही प्रयुक्त शब्दावली क्लिष्ट होगी। कभी भी कोई अभिव्यक्ति पाण्डित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से नहीं की जाती। किसी भाषा में विचार व्यक्त करते हुये उसकी प्रकृति से सर्वथा परिचित होना आवश्यक होता है।

अतः यदि कोई यह कहे कि भारत का वैज्ञानिक बिना हिन्दी का अध्ययन किये ही उच्च कोटि के लेख लिख सकेगा, तो असम्भव है। अतः वे लोग जिनका विज्ञ न से सरोकार नहीं हैं, वे मात्र चर्चा या विवाद की दृष्टि से इस भाषा के सम्बन्ध में कोई बात न कहें तभी देश का कल्याण हो सकेगा। किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति यह जानते हैं कि उन्हें किस स्तर के भाषा-ज्ञान की आवश्यकता होगी। और वे उसके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। राजनीतिज्ञों को इस दिशा में सहयोग प्रदान करने के लिये तत्पर रहना चाहिये।

जो लोग अर्थ कमाने की दृष्टि से अथवा हिन्दी को बदनाम करने के लिये ऐसी क्लिष्ट शब्दावली का प्रारम्भ में ही प्रयोग करके अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं उनकी कलई अवश्य खुलकर रहेगी। किन्तु इसके पूर्व देशवासियों को, अध्यापकों को तथा राजनीतिज्ञों को लक्ष्य पूर्ति के लिये संतोष एवं धैर्य से काम करना होगा।

आप वैज्ञानिक हैं

१—आपकी रुचि साहित्य और राजनीति की ओर है या नहीं ? यदि है तो आप काफी समय तत्सम्बन्धी साहित्य के पढ़ने तथा तद्विषयक वार्ताओं में बिताते हैं या नहीं ?

२—आपने देश के अधिकांश भागों का भ्रमण समाप्त कर लिया है या नहीं ? आपको देहातों में जाकर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है या नहीं ? इनसे आपको प्रेरणायें मिलीं हैं या नहीं ?

३—आप देश के आर्थिक विकास से सन्तुष्ट हैं या नहीं ? उसके उल्लेख से आप उत्तेजित होते रहते हैं या नहीं ?

४—आप अपनी आमदनी से संतुष्ट हैं या नहीं ? आपके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी समान होनी चाहिए या नहीं ?

५—आप ईश्वर पर विश्वास करते हैं या नहीं ? धार्मिक स्थलों पर जाने पर आपको शान्ति मिलती है या नहीं ?

६—आपको अपनी मातृ भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है या नहीं ? लेख लिखते या पढ़ते समय अधिकांशतः अपने भावों को क्या आप हिन्दी में सोचते हैं तब अंग्रेजी में लिखते या इसके विपरीत ? या नहीं प्रयोग करते हैं ?

७—आपको भारत की प्राचीन गरिमा पर गर्व है और उसके पुनरुज्जीवन की कल्पना करते हैं अथवा नहीं ?

८—दैनिक जीवन की वस्तुयें आपको निष्प्राण लगती हैं या सप्रयोजन ?

९—अन्य राष्ट्रों की प्रगति को देखते हुये आपके मन में ऐसे विचार उठते हैं कि नहीं कि हमारा देश भी उनकी बराबरी कर सकता ?

१०—क्या झूठ बोलने से ही मनुष्य बड़ा हो सकता है ? आप अपने जीवन में झूठ को महत्व देते हैं या नहीं ?

११—क्या आप निर्धन रह कर भी राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं ?

यदि आप उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर में ५ से अधिक में हाँ कर सकते हैं तो आप निश्चित रूप से वैज्ञानिक प्रवृत्ति के हैं। अगली प्रश्नचर्चा में वैज्ञानिक बनने की दिशा में सम्बन्धित अन्य प्रश्नों की प्रतीक्षा कीजिये।

परिषद् का पृष्ठ

२६ जुलाई १९६९ को विज्ञान परिषद् की कार्य-कारिणी की एक बैठक हुई जिसमें

१—परिषद् के भूतपूर्व सभापति डा० श्री रंजन की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें उनकी सेवाओं का उल्लेख किया गया और उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की गई।

२—नये पदाधिकारियों के नाम प्रस्तावित हुये जिन्हें मुद्रित करके सभ्यों के पास उनके मत प्रदानार्थ प्रेषित किया जा रहा है।

३—इस बैठक में डा० सद्गोपाल, जो कि परिषद् के आजीवन सभ्य हैं, विशेष आमन्त्रण पर सम्मिलित हुये। उन्होंने 'विज्ञान' को नवीन दिशा प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में अपने अमूल्य सुझाव दिये।

४—एक प्रस्ताव द्वारा चन्द्रमा पर मानव के पदार्पण किये जाने के सम्बन्ध में उल्लास प्रकट किया गया। इस घटना को वैज्ञानिक सफलताओं में सर्वोपरि स्थान दिया गया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर डा० एफ० सी० औलक परिषद् के आजीवन सभ्य बने।

सम्पादकीय

चन्द्रमा पर मानव

मानव सभ्यता के प्रथम विकास से ही किलकारी भरते शिशु के हृदय में चन्द्रमा को देखकर विशेष उल्लास उत्पन्न होता रहा है। यही चन्द्रमा न जाने कितने प्रेमी-प्रेमिकाओं को सरसता एवं स्निग्धता प्रदान करने वाला एवं कवियों के लिये अनेकानेक अप्रस्तुतों का व्यंजक रहा है। चन्द्रमा की उत्पत्ति एवं उसके स्वरूपादि के विषय में अनेक पौराणिक कथायें एवं किम्बदन्तियाँ भी प्रचलित रही हैं। वह पूजनीय समझा जाता रहा है।

किन्तु इधर १०-११ वर्षों से रूसी एवं अमरीकी वैज्ञानिकों ने मानों चन्द्रमा सम्बन्धी समस्त रहस्यों का उद्घाटन अपना ध्येय बना लिया था। एक के बाद एक १५ ल्यूना नामक अन्तरिक्ष यान रूस द्वारा छोड़े गये और विभिन्न प्रकार की चन्द्रमा विषयक जानकारी प्राप्त की गई। इसी प्रकार अमरीका की विशाल अपोलो योजना के अन्तर्गत ग्यारह प्रयास हुये। और अन्तिम् एवं ग्यारहवें प्रयास ने तो समस्त संसार के मनुष्यों को चकित कर दिया। शायद आज तक मानव इतिहास में इसमें बड़ी विजय कभी नहीं प्राप्त हुई। यह विजय एक लोक द्वारा दूसरे लोक पर विजय है। सम्भवतः आजतक नई दुनिया की खोज को रोमांचकारी घटना की संज्ञा प्रदान की जाती थी और एवरेस्ट पर्वत पर मानव चरण रखने को गौरव का विषय समझा जाता था किन्तु यह एक घटना समस्त पूर्ववर्ती घटनाओं से बाजी मार ले गई। इसका श्रेय अमरीका के दो अन्तरिक्ष यात्री आर्मस्ट्रांग तथ एल्ड्रिन को है जिन्होंने अपने प्राणों की ब जी लगाकर चन्द्रमा पर पदार्पण करने का दुस्साहस किया।

जरा कल्पना कीजिये कि ४ लाख किलोमीटर दूरी पर स्थित चन्द्रमा, जह न तो वायु है और न जल और न उसके सम्बन्ध में कोई विशिष्ट जानकारी है। किन्तु ११ वर्षों के अनथक प्रयास से अरबों रुपये व्यय करके चन्द्रमा तक पहुँचने का मानवीय साहस!! यह दुस्साहस नहीं तो क्या है!

कहा जाता है कि जितना धन व्यय किया गया उसकी तुलना में दो व्यक्तियों को चन्द्र धरातल पर उतारने का जो प्रथम आह्लाद एवं अनुभव हुआ वह नितान्त महंगा एवं श्रम निरर्थक है। किन्तु ऐसी धारणा घोर भ्रम है। चन्द्रमा की यात्रा से मानवीय पौरुष एवं उत्साह का प्रथम परिचय मिला है जिसके आधार पर वह अन्य ग्रहों की ओर अग्रसर होगा। यह सहकारी कार्य किसी एक राष्ट्र के गौरव का विषय नहीं है अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के उल्लास का पर्व है। हमने अपनी आखों से मानव को एक दूसरे ग्रह की यात्रा सम्पन्न करते देखा। इससे बड़ा वैज्ञानिक प्रमाण और क्या हो सकता है मानवीय प्रगति का।

चन्द्रमा से लाई गई धूल एवं चट्टानों के विश्लेषण से पहली बार उन अटकलबाजियों का अन्त हो गया जिसके अनुसार चन्द्रमा पर जीवन की कल्पना की जाती थी। चन्द्रमा जीवित प्राणियों से सर्वथा रहित है और उसकी चट्टानें पृथ्वी के समान होने पर भी टाइटैनियम नामक धातु में धनी हैं।

जो लोग चन्द्रमा को पूजते थे उनको मानव के पदार्पण से धक्का भले लगा हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वी वासी ही वे प्राणी हैं जिन्हें अन्य ग्रहों में बँट जाना होगा। हमारे ऋषि मुनियों के नाम पर अनेक नक्षत्रों एवं ग्रहों क नामकरण शायद ऐसी ही अन्तर्ग्रहीय विजय का सूचक हो।

जुलाई, अगस्त १९६९ विज्ञान पंजीकृत संख्या एल. २७५९
उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रकाशक : डा० हीरालाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक : गोपाल कृष्ण अग्रवाल, हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ३।५।

भाग १०७	पौष माघ २०२६ विक्र०, १८९१ शक जनवरी-फरवरी १९७०	संख्या १-२

भारत में आग्नेय क्रियायें

● विजय कान्त श्रीवास्तव

आग्नेय क्रियायें पृथ्वी की गतिशील क्रियाओं के साथ-साथ समय तथा दूरी में फैली हुई हैं। बलयित पर्वत निर्माणकारी क्रियायें तथा आग्नेय क्रियायें लगभग समान रूप में पायी जाती हैं यद्यपि इनमें यदा-कदा परिवर्तन होता रहता है। विशालमाला में आग्नेय क्रियायें भूद्रोणियों से सम्बधित होती हैं। इसमें अत्यसिलिक लावा डाइक तथा सिल के रूप में विद्यमान रहता है। शिलाओं में बसाल्ट के साथ-साथ सीलाइट, केराटोफायर, रायलाइट, अन्डेसाइट आदि प्रधान हैं। अतिसिलिक तथा सिलिक शिलायें आग्नेय क्रियाओं के अन्त में प्रायः आइलैंड आर्क में पायी जाती हैं। इस प्रकार सिलिक, अल्पसिलिक तथा अतिसिलिक शिलाओं से मिलकर आफियोलिटिक रूप प्रदान करती हैं।

पर्वत निर्माणकारी क्रियाओं में ग्रेनोडायोराइट तथा ग्रेनाइट अतिशय मात्रा में पाये जाते हैं जो आंतरिक तथा मैगमेटिक क्रियाओं बने हुए होते हैं तथा विशाल बैथोलिथ के रूप में पाया जाता है। इनमें अन्तर्भेदन बलन की अवस्था में होता है जिसे निवर्तनिक क्रिया कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्भेदन बाद में भी पाया जाता है जिसे पोस्टपेक्टानिक कहा जाता है। इसमें पायी जाने वाली प्रधान शिलायें पोटाश ग्रेनाइट तथा पेगमाटाइट हैं। भारत में विभिन्न भौमिकीय अवस्थाओं में हुई आग्नेय क्रियाओं का संक्षिप्त विवेचन दिया जा रहा है :—

(१) धारवार क्रम —

भारत की सबसे पुरानी आग्नेय क्रिया धारवार क्रम की मानी जाती है। इनमें कायान्तरित बसाल्ट अधिक है जो हार्नब्लैंड शिस्ट बन गये हैं। यह क्रम लगभग २००० मि० वर्ष तक माना जाता है। इस बड़ी अवधि में कई बार बसाल्ट शिलाओं का क्रम पाया

गया है जिसमें ग्रेनाइट तथा अनेक अवसादीय शिलायें भी पायी गई हैं। वर्तमान अवस्था में ये शिलायें अत्यधिक कायांतरित हैं तथा इनके प्रारम्भिक रूप प्रायः नष्ट हो चुके हैं। ऐसी शिलायें अनेक स्थानों पर पायी जाती हैं। मैसूर, राजस्थान, नेल्लोर, आ०प्र०, सिंह भूम [बिहार], म० प्र०, शिलांग [आसाम] आदि प्रमुख स्थान हैं। सब स्थानों का एक संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है :—

मैसूर—मैसूर में पाये जाने वाले धारवार क्रम की शिलाओं को तीन भागों में बाँटा गया है १— अधो २— मध्य ३— उपरि। अधो क्रम में अत्यसिलिक, सिलिक, अर्न्तर्भेदित तथा ज्वालामुखीय शिलायें पायी गयी हैं तथा इनके साथ टुफ तथा राख के स्तर भी पाये गये हैं। मध्य क्रम में संस्तरित शिलायें हैं तथा अन्त में अतिसिलिक शिलायें पायी जाती हैं। रागनदुर्ग, बेलकाल, शिकोगा, पितलाली, कुक्कापतन तथा चितलदुर्ग में ऐसी शिलायें प्रधान रूप से पायी जाती हैं। इसी में कुछ सिलिक भी हैं जैसे बाबाबुदीन, एपीडायोराइट। उपरि क्रम में भी ठीक यही रूप देखा जाता है। मैसूर में इन क्रियाओं का क्रम निम्न प्रकार माना जाता है (डा०दुबे)—

ट्रावनकोर ग्रेनाइट—५०० मि० वर्ष
क्लोजपेट ग्रेनाइट—१२००–९५० मि० वर्ष
चार्नोकाइट —१६०० मि० वर्ष
पठारीय नाइस —२३०० मि० वर्ष
चैम्पियन नाइस तथा अधोधारवार
— लगभग ३००० मि० वर्ष

नेल्लोर (आ०प्र०)—यहाँ की कान्द्रा ज्वालामुखीय शिलाओं में डोलेराइट, एपीडायोराइट, इफ, हार्नब्लैंड तथा क्लोराइट शिष्ट पाया जाता है जो डाइक तथा सिल की भाँति हैं। इनके ऊपर ही आग्नेय क्रम की ग्रेनाइट शिलायें पायी जाती हैं।

सिंहभूम (बिहार) :—चाइवासा में टुफ तथा हार्नब्लेंड शिष्ट के रूप में सबसे पुरानी शिलायें पायी गई हैं। इसके बाद लौह शिला क्रम पाया जाता है। ठीक इसी समय का उत्तर सिंहभूम की क्षारीय शिला है। यहीं डालमा ट्रैप पाया जाता है। गंगपुर में इसी क्रम की शिलायें प्रायः कायांतरित हो गयी हैं। इसके बाद ग्रेनाइट, पेग्माटाइट तथा क्वार्ट्ज की पतली धारा पायी जाती है। ग्रेनाइट शिलाक्रम के बाद सिलिक क्रम की शिलायें मयूरभंज तथा डलभूम में पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त डलभूमि, कोलहन, बोनाई तथा क्योंझर में अत्यसिलिक शिलायें पायी गयी हैं। यदि लौह शिलाओं की आयु १२०० मि० वर्ष माना जाय तो आग्नेय क्रिया १२०० मि० वर्ष के बाद की ही होगी। सम्भवतः यह धारवार क्रम की अंतिम क्रिया हो।

शिलांग (आसाम):—धारवार क्रम की ही शिलांग पहाड़ी के पूर्व भाग में खासिया ग्रीनस्टोन की शिलायें हैं जो डालमा ट्रैप के समकक्ष की मानी जाती हैं। पहाड़ी में पुराने ग्रेनाइट, नाइस तथा नवीन ग्रेनाइट हैं। इसे मिलियम ग्रेनाइट कहा जाता है [पैस्को—१९५० पृ० २४३]।

मध्य प्रदेश :—नागपुर में सासर क्रम में ग्रेनोडायोराइट मैग्मा पाया जाता है। इसके ठीक बाद सिलिक अप्लाइट की शिलायें हैं। छिंदवाडा में ये अप्लाइट बहुत बाद में डाइक के रूप में अन्तर्भेदित हैं। वलय क्रिया के पश्चात् यहाँ अनेक स्थानों पर पेग्माटाइट पाया जाता है [बेस्ट १९५८ पृ० ९७]।

राजस्थानः—राजस्थान में अरावली क्षेत्र में आग्नेय क्रियायें पायी जाती हैं। इनमें से सबसे पुराना वेराच ग्रेनाइट है जो कि बुन्देलखंड ग्रेनाइट के समान है। काले एम्फीबोल के कण तथा पतले डोलेराइट अन्तर्भेदन के प्रमाण हैं। अरावली क्रम में हरे हार्नब्लेंड शिष्ट तथा फायलाइट साथ के हैं तथा सहसंस्तरित हैं। दिलवाड़ा के पास कुछ अमिगडलायड तथा हार्नब्लेंड शिष्ट पाया जाता है जो कि वेसल क्रम का माना जाता है। इसके अन्त में वेसिकुलर लावा का प्रवाह पाया जाता है जिसे खैरामिलिया अमिगडलायड कहते हैं तथा जो स्लेट के ऊपर पाया जाता है। अन्य स्थान के डोलेराइट डाइक निमांरा क्षेत्र के अरावली क्रम के बाद के हैं तथा रायलो क्रम के पहले के हैं। ग्वालियर

क्रम में लावा रनथम्भोर अयनति में ६ क्षेत्रों में पाया जाता है [हेरान–१६२६ पृ० ६६]।

इस प्रकार वलकृत पर्वत मालाओं में आग्नेय क्रियायें पायी जाती हैं। विजावर क्रम की आग्नेय क्रियाओं की अवधि संदिग्ध है। जबलपुर तथा सोन घाटी की क्रियायें धारवार क्रम के साथ जोड़ी जाती हैं जबकि मध्यभारत की कुडप्पा क्रम के साथ राजस्थान में हुई इन क्रियाओं की अवधि निम्न प्रकार निर्धारित की जाती है [डा० दुबे] :—

मलानीटायोलाइट तथा जैलार किवाना ग्रेनाइट
४५० मि० वर्ष

इरिन पुरा ग्रेनाइट ७३५ मि० वर्ष

देहली तथा अरावली पश्चात् ग्रेनाइट तथा बरोच ग्रेनाइट
१२००–६५० मि० वर्ष

(२) कुडप्पा क्रम :—

दूसरी आग्नेय क्रिया कुडप्पा में पायी गयी है। कुडप्पा घाटी में वेल परले लाइमस्टोन पायध्नी क्रम तथा बादपती शेल चेयर क्रम में क्वार्ट्ज डोलेराइट की मोटी सिल तथा बसाल्ट का अन्तर्भेदन हुआ है। सिंहभूम का नवीन डोलेराइट डाइक इसी क्रम का है। कुडप्पा घाटी के लगभग २५ कि० मी० पश्चिम में वाजरा करूर स्थान की आग्नेय क्रिया इन क्रियाओं का केन्द्र माना जाता है [पिचाअय १६३५ पृ० १४७]। इन्हीं आग्नेय क्रियाओं के आधार पर कुडप्पा क्रम का वर्गीकरण भी किया जाता है। रायोलाइट तथा अम्लीय टुफ कु बहाव सेमरी क्रम विंध्य के ज्वालामुखी क्रिया तथा मलानी क्रम की क्रिया इस अवधि की हैं। मध्य कुडप्पा में दक्षिण तथा मध्य भारत में अत्यसिलिक लावा पाया गया है। सरगुजा के पार रेर नदी में तातापाती के पास रायलेटिक टुफ तथा साचराक्लीसिटिक लावा पाया गया है। रायपुर, बालाघाट में ज्वालामुखीय क्रम पाया जाता है। सकोली क्रम के ऊपर भी रायोलेटिक शिला का बहाव है।

सोन घाटी तथा अन्य स्थानों पर इस क्रम का अतिसिलिक लावा भी पाया गया है। मझगवां, यत्ना तथा छतरपुर बुन्देलखंड में हीरा युक्त अग्लोमेरेटिक टुफ भी पाया गया है। दिल्ली क्रम में जो कुडप्पा युग का ही माना जाता है अलवर तथा आजमगढ़ में डोलेराइट की मोटी तह पायी जाती है। दिल्ली के उपरान्त इरिनपुर ग्रेनाइट में भी अन्तर्भेदन है। इडार में कहीं कहीं ग्रेनाइट पाया गया है।

(३) विन्ध्य आग्नेय क्रिया :—

सिरोही में डोलेराइट तथा बसाल्ट की मात्रा पायी गयी है। इसमें कहीं कहीं व्यतिक्रम भी पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधि को आग्नेय क्रिया विंध्ययुग के पहले तथा बाद की नहीं है परन्तु इसके समकालीन है। सोन घाटी में डोलेराइट का अन्तर्भेदन भी पाया जाता है जो इसी अवधि का है।

हिमालय क्षेत्र :—पारानदी पर कैम्ब्रियन तथा पर्मियन संस्तरों में अन्तर्भेदन पाया जाता है। स्थिती क्षेत्र में पहाड़ी प्रायः ग्रेनाइट की है। रुपशू में ग्रेनाइट का कार्बोनीफेरस तथा पर्मियन क्रम में अन्तर्भेदन है।

सिक्किम में आर्योनाइसेस की पतली ग्रेनाइट शिलायें पायी जाती हैं। ये ग्रेनाइट चुम्बी ग्रेनाइट तथा स्कोल ग्रेनाइट के समान हैं। इनका समय टरशियरी माना जाता है [हायडेन १६०७ पृ० ५६]। कश्मीर में बायोटायट ग्रेनाइट के अनेकों सिल तथा डाइक पाये गये हैं [आडेन १६३५ पृ० ७६]।

मध्य हिमालय क्षेत्र के ग्रेनाइट डोरारा स्लेट के भी पहले के माने जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय क्षेत्र में हरसीयन समय में ग्रेनाइट का अन्तर्भेदन हुआ था।

(४) कैम्ब्रियन क्रियायें

साल्टरेंज क्षेत्र में काले भूरे रंग की ज्वालामुखीय शिलायें पायी गयी हैं। इनमें जिप्सम तथा संगमरमर पाया गया है। ये सब दक्षिण ट्रैप के माने जाते हैं।

(५) उत्तर कार्बोनीफेरस युग की क्रियायें :—

कैम्ब्रियन के बाद भारत में महाद्वीपीय अवस्था कार्बोनीफेरस तक रही। उत्तर पश्चिम भारत में पंजाब, कश्मीर तथा हाजरा में भूमि का पिंड माना जाता है। टेथीस भूद्रोणी के समय उत्तर पश्चिम भाग कुछ समय तक गोंडवाना महाद्वीप का भाग बना फिर भूद्रोणी में समा गया। इस अवस्था में आग्नेय क्रियायें हुईं

तथा ग्लासोप्टोरिस तथा गंगोमाप्टोरिस वनस्पतियाँ इनके नीचे दब गयीं। धीरे धीरे इनके ऊपर एग्लोमेरुटिक ट्फ तथा राख आ गये। यूरेलियन से प्रारम्भ होकर यह क्रिया ट्रिपासिक तक चलती रही। ये कियायें अर्द्ध सागरीय अवस्था में पायी गयी हैं नंगा पर्वत के पास असोर में डोलेराइट की तह पायी गयी है। ये सब पंजाब क्रम की हैं। उत्तर कार्बोनीफेरस क्रम की क्रिया काफी विस्तृत है।

(६) जुरासिम क्रम की आग्नेय क्रियायें :—

गोंडवाना द्वीपसमूह में अधोजुरासिम समय में आग्नेय क्रियायें प्रारम्भ हुईं। ठीक इसी समय आस्ट्रेलिया, ब्राजील तथा अर्जेन्टाइना में भी आग्नेय क्रियायें प्रारम्भ हुईं। भारत में राजमहल में ये क्रियायें मुख्य तथा बसाल्टिक तथा दिचस्टेन प्रकृति की हैं। ये सब दरार से निकले लावा माने जाते हैं परन्तु सिमरा के पास गोदावरी पहाड़ी पर गड्ढा भी पाया जाता है। कोनला क्षेत्र में पाये जाने वाले डाइक भी इसी प्रकृति के हैं। बसाल्ट के अतिरिक्त लैम्प्रोफायर मैग्मा भी इनमें पाये जाते हैं।

(७) क्रेटेसस इयेसीन अवधि की क्रियायें :—

इस समय में महाद्वीपों में विशाल मात्रा में आग्नेय क्रियायें हुई हैं। भारत के पश्चिम तथा मध्य भाग में ये आग्नेय क्रियायें दरार की भाँति हुई हैं। कच्छ तथा पटथम में अनेक स्थानों पर अनेक लैकोलिथ अन्तर्भेदन पाये जाते हैं। काठियावाड़ में अनेक डाइक पाये गये हैं। ये सब अनकरामाइट तथा मुजियाराइट प्रकृति के हैं। सौराष्ट्र, अहमदाबाद के आसपास ४८ बहाव इनके पाये गये हैं [वेस्ट १९५८ पृ० १५६]। बड़ौदा काठियावाड़ में अनेक स्थानों पर फूटानिक तथा हिपाबेसल प्रकृति की शिलाओं के बहाव पाये गये हैं [फेडन १८८५ पृ० २७, कृष्णन १९२५ पृ० ३८०, चैटर्जी १९३२ पृ० १५५, माथुर दूबे तथा शर्मा १९२६ पृ० २८९]।

हिमालय क्षेत्र में उत्तर कश्मीर में ज्वालामुखीय शख ट्फ का संस्तर पाया जाता है [वाडिया १९३८ पृ० १५७]।

टेथीस भूद्रोणी में अर्द्ध सागरीय लावा का बहाव पाया जाता है [हेम तथा गैन्सर १९३९, पृ० २१४-२१५]।

आसाम तथा बर्मा अन्डमान द्वीप में भी इस प्रकार की शिलायें पायी गयी हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आग्नेय क्रियायें धारवार, कुडप्पा तथा अधो विंध्यन तक तीव्र थीं। फिर ये क्रियायें उत्तर कार्बोनीफेरस से लेकर अधोटरशियरी अवधि तक तीव्र हो गयीं थीं।

संदर्भ

१– आडेन, जे० वी०	१९३५	ट्रैवसर्स इन हिमालय रिकार्ड, जियो० सर्वे० इंडि० ६९, भाग २
२—...	१९४९	डाइक इन वेस्टर्न इंडिया, ट्रांस नैगु इन साइंस ३, भाग ३
३– चैटर्जी, एस०सी०	१९५५	दी पेरिडोटाइस आव् मानपुर सिंहभूम, बिहार एंड ओरिजिन आव् एसोसियेटेड एसबेरप्स, बुले० जियो० सोसा० अमे० ६६
४ —...	१९५७	जियोलाजी आव् पावागढ़ हिल, करेंट साइंस २६
५ चैटर्जी, एस०के०	१९३२	इग्नियस राक फ्राम वेस्ट गिरफारेस्ट, काठियावाड़ जर्न० जियो० ४०
६ —कुलरान, ए०ल०	१९३०	जियोलाजी आव् सिरोही स्टेट, राजपुताना मेम० जि० स० इंडि० ६३
७—दुबे, वी०एस०	१९५०	कुडप्पा इग्नियस एग्निविटी, करेंट साइंस १६
८—डन, जे०ए०	१९२९	जियोलाजी आव् नार्थ सिंहभूम, मेम० जि० स०द० ५४
९—फेडन, एफ०	१८८५	जियोलाजी आव् काठियावाड़, मेम० जि० स० इ० २१
१०—हायडेन, एच०	१९०४	जियोलाजी आव् सीती मेम० जि० स० इ० ३६ भाग १

(शेष पृष्ठ १२ पर देखें)

जल संदूषण एवं स्वच्छता

● डा० शिवगोपाल मिश्र

प्राचीनकाल में शायद ही जल की शुद्धता पर उतना ध्यान दिया जाता रहा हो जितना कि आजकल। यदि बड़े-बड़े नगरों में जल की सफाई (परिष्कार) न की जाय तो न मालूम एक ही दिन में कितने लोग नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जायँ। चाहे विषम ज्वर हो, या हैजा अथवा पेचिश—ये सभी रोग जल की अशुद्धता से फैलते हैं। नगरों में बिना स्वच्छ किया जल प्रयुक्त किये जाने की कल्पना ही भोंड़ी मानी जावेगी। किन्तु देहातों में अब भी नदियों एवं कुओं, यहाँ तक कि तालाबों के पानी को केवल उनकी ऊपरी स्वच्छता देखकर, प्रयुक्त करने में ग्रामीण लोग हिचकते नहीं। बरसात के दिनों में नदियों के जल में गन्दगी आकर मिलती है, नदियों में बड़े-बड़े शहरों का मलमूत्र आकर मिलता है, लाशें फेंकी जाती हैं जिससे उनका पानी अत्यन्त दूषित हो जाता है। यह जल न त पीने योग्य रहता है और न अन्य कार्यों के उपयुक्त। अतः जल संदूषण एवं उसकी स्वच्छता, कूड़े करकट की सफाई, मलमूत्र की व्यवस्था—ये सभी बाते स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं जिनके प्रति नगर महापालिकायें एवं राज्य के स्वास्थ्य विभाग सतर्क रहते हैं। स्वच्छ जल सदैव उसके शुद्ध होने का प्रमाण नहीं है और न जल का गन्दलापन उसके हानिकारक होने का सूचक। यह गन्दलापन अकार्बनिक तलछट के कारण हो सकता है जो हानिप्रद नहीं होता। स्वच्छ होने पर भी जल में अदृश्य जीवाणु पाये जा सकते हैं जो नाना रोगों को फैलाते हैं। फलतः जल की सफाई या जल के संदूषण से सम्बन्धित हमें निम्नांकित बातों की ओर ध्यान देना होगा :—

(१) शहरों एवं गाँवों में जल के साधन

(२) जल में पाई जाने वाली सामान्य गन्दगियाँ

(३) जल को परिष्कृत करने की विधियाँ

इन पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

शहरों तथा गाँवों में जल की आवश्यकता

बड़े-बड़े शहरों में विविध प्रकार के उद्योगों को चलाने, मल को हटाने, आग बुझाने, सड़कें साफ करने, उद्यानों को सींचने एवं घरों में नहाने-धोने तथा पीने के लिए पानी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा अनुमान है कि प्रति व्यक्ति को लगभग २०० गैलन जल प्रति दिन आवश्यकता पड़ सकती है अतः समस्या उठ खड़ी होती है कि इन कार्यों के लिये इतनी प्रभूत जलराशि कहाँ से प्राप्त की जावे। यदि शहरों के पास नदियाँ, झीलें या बड़े-बड़े जलाशय हुये तो इसे सौभाग्य मानना चाहिए अन्यथा जलपूर्ति के लिए सैकड़ों मील दूर स्थित पहाड़ों से, नदियों या झीलों से पानी लाना पड़ सकता है। अमरीका के न्यूयार्क शहर में १०० मील दूर से पानी बड़ी-बड़ी सुरंगों से होकर लाया जाता है। अपने देश में बम्बई में मीलों दूर से जल लाया जाता है। छोटे-छोटे शहरों में कुओं से जल प्राप्त करके संग्रहीत किया जाता है। अमरीका में बड़े-बड़े शहरों में प्राइवेट कम्पनियाँ बंद बोतलों में जल बाँटती हैं। उन्हें इसके लिये लाइसेन्स लेना होता है।

देहातों में जल के साधन भी इसी प्रकार के हैं किन्तु अन्तर इतना ही होता है कि यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कुये, झरने, नदी, झील आदि से जल लाना होता है। अधिकांश देहातों में कुओं से ही जल प्राप्त किया जाता है। ये कुयें कुछ फुट गहराई से लेकर सैकड़ों फुट तक गहरे हो सकते हैं। जिन प्रदेशों में वर्षा कम होती है वहाँ कुयें अत्यन्त गहरे बनाने पड़ते हैं और उनमें पानी की मात्रा कम होने के साथ ही पानी का स्वाद नमकीन होता है। राजस्थान में पानी का अभाव है। वहाँ के लोग अपने घरों में छतों तक में बड़े-बड़े जलाशय बनाकर वर्षा के जल को संचित करने का प्रयास करते हैं और उसी का उपयोग करते हैं।

पीने के जल के साथ ही संसार के समस्त मीठे जल की समस्या उग्र होती जा रही है। यद्यपि सागरों में अपार जलराशि है किन्तु उसका उपयोग पीने या कपड़ों के धोने के लिये ऐसे ही नहीं किया जा सकता। आजकल अमरीका का ध्यान सागरों के खारी जल को पेय जल के रूप से परिणत करने की ओर लगा है।

जल की अशुद्धियाँ

वर्षा से प्राप्त जल शुद्धप्राय होता है। पहाड़ों एवं देहाती क्षेत्रों में शहरों के धुयें एवं धूल से आसमान रहित होता है अतः वर्षा-जल में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं रहती। किन्तु ज्योंही वर्षा-जल पृथ्वी की सतह पर पहुँचता है उसमें नाना प्रकार की अशुद्धियाँ मिल जाती हैं। इसमें से कुछ पानी तो नालों एवं नदियों का रूप धारण करके अन्ततः सागर पहुँच जाता है और शेष भाग मिट्टी में अवशोषित होकर विभिन्न गहराइयों पर जल-तल बनाता है। यही जल कुओं के जल के रूप में निकाला जाता है। अतः स्पष्ट है कि ऐसे जल में भी अनेक अशुद्धियाँ मिली हुई रहती हैं।

प्राकृतिक जल कितना ही शुद्ध क्यों न हो उसमें कुछ गैसें भी अवश्य घुली रहती हैं। आक्सीजन तथा कार्बन डाइआक्साइड ऐसी ही गैसें हैं। आक्सीजन के घुलने से जल में स्वाद उत्पन्न होता है और कार्बनिक पदार्थों का विनाश होता है किन्तु जब सड़ती हुई वनस्पतियों में से होकर जल बहता है तो उसमें से तमाम कार्बन डाइआक्साइड पानी में घुल जाती है। कभी-कभी गन्धक की खानों से होकर बहने वाले झरने पर्याप्त हाइड्रोजन सल्फाइड गैस अवशोषित कर लेते हैं। ऐसे जलों का औषधीय महत्व बताया जाता है। प्रायः पहाड़ी स्थानों में ऐसे झरने मिलते हैं।

पानी में गन्दगी के लिये उत्तरदायी पदार्थों में सड़ती-गलती चीजें प्रमुख हैं। इनमें नाना प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणु बृद्धि करते रहते हैं जो जल में मिल जाते हैं। शहरों में गन्दे नालों से बह कर विष्टा, मूत्र तथा अन्य गन्दगी नदियों में मिलती रहती है जिससे नदियों का पानी दूषित हो जाता है। उसमें बदबू आने लगती है और नाना प्रकार के अदृश्य जीवाणु अड्डा बना लेते हैं। इन सबको कार्बनिक अशुद्धियाँ कह सकते हैं।

दूसरे प्रकार की भी अशुद्धियाँ जल में पाई जाती हैं। इन्हें खनिज-अशुद्धियाँ कहते हैं। इनके अन्तर्गत खनिज लवण आते हैं। पानी में कैल्सियम, मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट एवं सल्फेट तथा सोडियम के क्लोराइड सल्फेट, एवं कार्बोनेट प्रचुर मात्रा में घुल सकते हैं। इनके साथ ही लोह के लवण भी रह सकते हैं। ये लवण मिट्टी के संसर्ग से पानी में विलयित होते रहते हैं—चाहे पानी सतह पर बहे अथवा पृथ्वी के भीतर प्रवेश करता हो।

कभी-कभी अत्यधिक कार्बनडाइआक्साइड विलयित रहने पर जब जल खड़िया मिट्टी की चट्टानों या परतों में से होकर प्रवाहित होता है तो धीरे-धीरे वह उसके बीच में से होकर अपना मार्ग बना लेता है। कभी-कभी तो बड़ी-बड़ी गुफाये बन जाती हैं। इनके बनने का रहस्य यही होता है कि खड़िया मिट्टी गैस से युक्त जल में घुलनशील है—इससे कैल्सियम बाइकार्बोनेट बनता है।

कठोर जल

जल में खनिज तत्वों की उपस्थिति मात्र उसे कठोर नहीं बनाती। जल की कठोरता तो जल का वह

गुण है जिसके कारण वह साबुन के साथ झाग नहीं उत्पन्न कर पाता। यह कठोरता जल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड, बाइकार्बोनेट तथा सल्फेट की उपस्थिति के कारण आती है। इन यौगिकों में से भी जब जल में केवल बाइकार्बोनेट रहते हैं तो अस्थायी कठोरता उत्पन्न होती है। यदि ऐसे जल को कुछ देर तक गरम कर दिया जाय तो यह कठोरता दूर हो जाती है क्योंकि गरम करने से कैल्सियम बाइकार्बोनेट अविलेय कैल्सियम कार्बोनेट में परिणत हो जाता है जिसे छानकर पृथक कर लिया है।

गरम करने पर

$$Ca(HCO_3)_2 \longrightarrow CaCO_3 + H_2O + CO_2$$
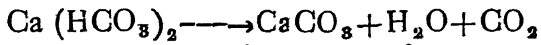
किन्तु जब जल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट पाये जाते हैं तो उन्हें सरलता से विलग नहीं किया जा सकता। ऐसे जल को स्थायी कठोर जल कहते हैं और उसकी कठोरता को स्थायी कठोरता कहते हैं। ऐसे जल में साबुन से कपड़े धोने पर झाग नहीं उठता। उल्टे बहुत सी साबुन अविलेय होती रहती है। इस प्रकार से धोबियों के लिए ऐसा स्थायी कठोर जल बेकार होता है।

कठोर जल + साबुन → अविलेय साबुन + लवण

$$CaCl_2 + 2C_{17}H_{35}COONa \rightarrow Ca(C_{17}H_{35}COO)_2 + NaCl$$
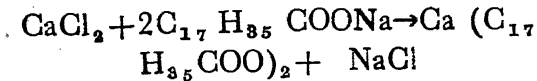
ऐसा कठोर जल औद्योगिक कार्यों के लिये भी अनुपयुक्त होता है क्योंकि बायलरों में $CaCO_3$ अथवा $MgCO_3$ का शल्क जम जाता है जिसके कारण अधिक ईंधन की आवश्यकता पड़ती है।

किन्तु कठोर जल अपेय नहीं कहा जा सकता।

जल में आयोडीन तथा क्लोरीन

यह देखा गया है कि प्रायः प्राकृतिक जलों में आयोडीन की काफी मात्रा रहती है किन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनके जलों में आयोडीन की न्यूनता पाई जाती है। ऐसा जल पीने से कण्ठमाला नामक रोग हो जाता है जिसमें थायराइड ग्रन्थि फूल जाती है। ऐसे क्षेत्र कण्ठमाला क्षेत्र Goitre regions) कहलाते हैं। हमारे प्रदेश में तराई क्षेत्र (जौनसार भाभर) इसके लिये कुख्यात है! ऐसे क्षेत्रों में नमक के साथ सोडियम आयोडाइड मिला कर खाने को दिया जाता है तथा जल के साथ आयोडाइड घोल दिया जाता है।

इसके विपरीत जल में फ्लोरीन की अधिक मात्रा हानिकारक सिद्ध होती है। यदि जल के प्रति दस लाख अंश में १ अंश से अधिक फ्लोरीन हो तो बच्चों के दाँत बिगड़ने लगते हैं फलतः जल में से अधिक फ्लोरीन हटाने के लिये उपाय किये जाते हैं। इनमें से सबसे सस्ती विधि है पानी के नल के मुँह में कैल्सियम फास्फेट की पोटली बाँध रखना जिससे पीने के लिये जल निकालते समय वह पोटली में से होकर निकले। इससे जितना भी अधिक फ्लोराइड होता है वह कैल्सियम फास्फेट के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है और बाहर आने वाला जल सर्वथा निर्दोष होता है।

परिष्करण के पूर्व जल की कई प्रकार से परीक्षा की जाती है :—

जल को गँदला नहीं होना चाहिये, उसे रंगहीन स्वच्छ, गन्धहीन, तथा रुचिकर स्वाद वाला होना चाहिये। ऐसा जल पीने के लिये अच्छा माना जाता है।

रासायनिक दृष्टि से जल में खनिजों एवं सड़े हुये कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक होता है। यदि सड़े हुये कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति देखी जावे तो यह समझना चाहिये कि पानी दूषित है।

जल का सूक्ष्मदर्शी परीक्षण भी आवश्यक है। जल में नाना प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु तथा अन्य प्राणी रह सकते हैं। प्राकृतिक जल में असंख्य बैक्टीरिया रहते हैं किन्तु इनमें से अधिकांश हानिकारक नहीं होते। पीने वाले जल में इनकी जाँच किसी रसायनज्ञ अथवा जीवाणुविद द्वारा की जाती है। जब एकाएक जल में इनकी संख्या अत्यधिक हो जाती है तो हानि की आशंका उठ खड़ी होती है। इसका यह अर्थ निकलता है कि साथ ही जल के द्वारा जल-संग्रह विदूषित हो रहा है। किन्तु बैक्टीरिया में बैसिलस कोली की जाँच पर अधिक ध्यान दिया जाता है। ये जीवाणु मनुष्यों की आँतों में पलते हैं और मल द्वारा बाहर आते हैं अतः इनकी उपस्थिति रोगवादी जीवाणुओं के खतरे की सूचना देती है।

अतः जल के परिष्करण के लिये जहाँ तक सम्भव हो जल स्रोत के उद्गम पर उसे गन्दगी, विष्टा आदि से संदूषित न होने दिया जाय। किन्तु फिर भी शहरों में जल को उपयोग में लाने से पूर्व उसे निलम्बित पदार्थों, जीवाणुओं तथा रोगाणुओं से मुक्त कर लेना चाहिये। इसके लिये कई प्रक्रम काम में लाये जाते है।

(१) तलछटीकरण (२) वातन (३) स्कन्दन (४) छानना तथा (५) जीवाणुहनन।

सर्वप्रथम जल को बड़े-बड़े जलाशयों में पम्प किया जाता है जहाँ पर एक दिन में अथवा इससे अधिक काल में जलमें निलम्बित गन्दगी का ६५ प्रतिशत जलाशयों की पेंदी में बैठ जाता है। जलमें ऐल्गी अथवा अन्य पौधे न उगें इसलिये नीले थोथे की कुछ मात्रा मिला दी जाती है (लगभग १० पौन्ड प्रति १० लाख गैलन)।

जल में दुर्गन्धपूर्ण गैसें, जल में से कार्बनिक पदार्थ रंगीन पदार्थ तथा कुस्वाद उत्पन्न करने वाले पदार्थों को आंशिक रूप से नष्ट करने के लिये वातन क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसके अन्तर्गत जल में वायु मिश्रित की जाती है। यह वायु कई प्रकार से मिश्रित की जाती है। जल को छिद्रों से होकर फुहार रूप में बहने दिया जा सकता है अथवा सोपानों के ऊपर से जल को गिराया जाता है।

इस प्रकार के वातन से जल में आक्सीजन विलियत हो जाती है जिससे उसका स्वाद सुधर जाता है। यही नहीं, इससे जल में प्राप्त फेरस यौगिक अविलेय फेरिक यौगिक में परिणत हो जाते हैं जिन्हें छान कर पृथक किया जा सकता है। इससे कुछ कार्बनिक पदार्थ भी आक्सीकृत हो जाता है जिसके कारण बैक्टीरिया के भोज्य पदार्थों में न्यूनता आती है।

जब पानी अत्यधिक गँदला होता है तो उसमें से निलम्बित पदार्थों को विलग करने के लिये स्कन्दन किया जाता है। यह क्रिया कतिपय रासायनिक यौगिकों को पानी में मिला कर सम्पन्न की जाती है। ऐसे यौगिकों में फिटकिरी (पैटैशियम ऐल्यूमिनियम सल्फेट) अथवा फेरस सल्फेट प्रमुख हैं। इनके डालने से निलम्बित पदार्थ इनसे बने श्लिषीमय अवक्षेप के साथ जलाशय की पेंदी में बैठ जाते हैं। यही नहीं, बैक्टीरिया भी साथ में अवक्षिप्त हो सकते हैं। इस क्रिया में तीन-चार घन्टे का समय लगता है।

इसके बाद जल को तीव्र गति से छानने वाले छन्नकों में से होकर बहने दिया जाता है। प्रायः बालू की बजरी, या कोयले के छन्ने सन्तोषजनक होते हैं। इन छन्नों की सफाई होते रहना चाहिये क्योंकि इनके रन्ध्र बन्द हो सकते हैं। इसके लिये उल्टी दिशा में जल को दाब के अन्तर्गत पम्प किया जाता है।

इतने के बाद भी जल सर्वथा पेय नहीं होता। उसमें बैक्टीरिया रह सकते हैं फलतः इनको विनष्ट करने के लिये क्लोरीनीकरण क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसके लिये क्लोरीन गैस को छोटी-छोटी नालियों द्वारा जल के भीतर प्रवाहित किया जाता है। इससे हाइपोक्लोरस अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनते है।

$$Cl_2 + H_2O \rightarrow HClO + HCl$$
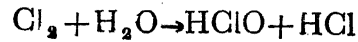
इनमें से प्रथम अस्थायी होता है अतः वह शीघ्र ही HCl तथा आक्सीजन में परिणत हो जाता है। यह आक्सीजन अत्यधिक क्रियाशील होती है फलतः यह जीवाणुओं एवं रोगाणुओं को विनष्ट कर देती है। किन्तु क्लोरीनीकृत जल में क्लोरीन की गन्ध आती रहती है और स्वाद अच्छा नहीं होता अतः आजकल जल में पहले अमोनिया गैस प्रवाहित करके उसके बाद क्लोरीन गैस प्रवाहित की जाती है। इससे क्लोरैमीन बनता है जिसमें क्लोरीन की तरह की दुर्गन्ध या बुरा स्वाद नहीं पाया जाता। यही नहीं, क्लोरैमीन अधिक समय तक जीवाणुओं को विनष्ट करने की क्षमता को स्थिर रख सकता है।

$$2\,NH_3 + Cl_2 \rightarrow NH_4Cl + NH_2Cl$$ क्लोरैमीन

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य रासायनिक विधियाँ है जिनके प्रयोग से जल को शुद्ध बनाया जा सकता है। इनमें से ओजोन (O_3) तथा पराबैंगनी किरणों के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। पराबैंगनी किरणें पारद-वाष्प लैम्पों द्वारा उत्पन्न होती हैं और जब जल को ऐसे लैम्पों के ऊपर से होकर बहने दिया जाता है तो पानी शुद्ध हो जाता है। प्रायः तैरने के

लिये प्रयुक्त होने वाले जलाशयों का परिष्करण इसी विधि से किया जाता है।

अब जल में से कैल्सियम तथा मैग्नीशियम की अधिक मात्रा दूर करने के लिये धोने वाले सोडा (Na_2CO_3) का प्रयोग किया जा सकता है।

$$CaCl_2 + Na_2CO_3 \rightarrow CaCO_3 + 2NaCl$$
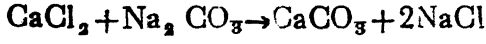
इस प्रकार जल में NaCl रह आता है जिसकी उपस्थिति आपत्तिजनक नहीं मानी जाती।

इन विधियों से भी उत्तम विधि है परमुटिटों के प्रयोग की। ये सोडियम ऐल्यूमिनियम सिलिकेट हैं जिन्हें $Na_2OAl_2O_3\ 2SiO_2$ सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इन्हें विशिष्ट पात्रों में भर कर कठोर जल को इनमें से होकर प्रवाहित किया जाता है जिसमें कैल्सियम तथा मैग्नीशियम आयन ग्रहीत हो जाते हैं और बदले में सोडियम आयन जल के साथ नीचे चले आते हैं। इस प्रकार जल की कठोरता जाती रहती है।

$$Na_2O.\ Al_2O_3\ 2\ SiO_2 + Ca$$
$$\rightarrow Al_2O_3\ 2\ SiO_2 + 2\ Na + CaO$$
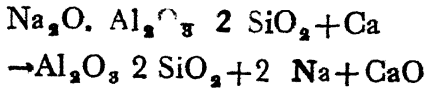
कालान्तर में परमुटिटों का नवीनीकरण आवश्यक हो जाता है। यह खारी पानी के प्रयोग द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

देहातों में कुओं से जल की प्राप्ति होती है। जो कुँआ जितना गहरा होगा, उसका जल उतना ही साफ होगा। जहाँ तक सम्भव हो बाल्टी द्वारा पानी न खींच कर पम्प से पानी चढ़ाना चाहिये। कुयें की जगत पक्की होनी चाहिये, उसके मुँह को ढक कर रखना चाहिये। इससे पानी के भीतर पत्तियाँ नहीं जा पातीं।

आजकल परमाणु ऊर्जा के सस्ता होने से खारे जल को मीठे जल में परिणत करने के प्रयोग किये जा रहे हैं। अमरीका में तो यह उद्योग का रूप धारण कर रहा है। अपने देश के ट्राम्बे के परमाणु ऊर्जा केन्द्र के प्रयोगों से कच्छ की खाड़ी से मीठा पानी बनाने के प्रयोग किये गये हैं और आशा है कि भविष्य में यह जल न केवल पीने के पानी की कठिनाइयों को हल कर सकेगा वरन् खेतों की सिंचाई के लिये भी उपलब्ध बन सकेगा।

(क्रमशः)

शोक प्रस्ताव

१२ फरवरी १९७० को प्रयाग के सम्मानित व्यक्ति श्री बेनीप्रसाद जी का निधन हो गया। विज्ञान परिषद् में श्री अग्रवाल के निधन पर १३ फरवरी को एक शोक प्रस्ताव पारित हुआ "श्री बेनीप्रसाद जी का सम्बन्ध परिषद् से पिछले पचास वर्ष से अधिक का था और उनका सहयोग परिषद् को सदा प्राप्त होता रहा। उन्होंने परिषद् के प्रकाशनों में सहयोग दिया और विज्ञान परिषद् भवन के निर्माण में उन्होंने और उनके परिवार ने उदारता पूर्वक सहायता की। परिषद् उनके शोक संतप्त परिवार के साथ संवेदना प्रकट करता है और उनके आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थी है।"

एक वैज्ञानिक कहानी —

मौत एक पेड़ की

● रामलखन सिंह

जाड़े के दिनों में सुबह की धूप का अपना ही आनन्द होता है और उस दिन मैं उसी आनन्द में मग्न था। रात बर्फ पड़ी थी किन्तु सुबह सुबह इतनी चमकीली धूप उगी कि लान में कुर्सी खींचकर आ बैठा था। पास में बैठी हुयी पत्नी चाय ढाल रही थी। अंजू, शेरू को छेड़ रही थी और वह बड़े ही अन्दाज से गुर्रा कर उसे डराने की कोशिश कर रहा था। सम्भवतः उसे भी धूप सेंकते समय छेड़ा जाना भला नहीं लग रहा था। वैसे घर में शेरू की सबसे अच्छी दोस्ती अंजू से ही है और ऐसे क्षण कम ही आते हैं जब उसे इसका छेड़ना भला न लगता हो। पर इस समय वह खुली धूप में आराम से बैठा था और इसीलिए दुम खींचे जाने पर भी मात्र गुर्रा कर शान्त हो जाता था। उसे खेलने को तैयार करने के यत्न में हार गयी तो उसे हम दोनों की तरफ आना पड़ा—"पापा!" और सामने के ही स्टूल पर बैठ गयी —"आज रात तो खूब बर्फ पड़ी है ना!"

"हाँ बेटी!" मैंने पत्नी से चाय का कप लेते हुए कहा—"बर्फ पड़ना तो यहाँ साधारण बात है पर आज कुछ ज्यादा ही पड़ी।"

"अच्छा पापा, यदि इस रात कोई बाहर रह जाता तब तो व..." और शेष उसकी मुक्त हँसी में खो गया। पत्नी को उसकी बकवास पसन्द नहीं और वह उठ कर चलने लगीं तो उसने ही पकड़ लिया—"अरे माँ तुम बैठती क्यों नहीं —"मुझे नहीं सुनना तेरी बड़बड़" वह चली ही गयी। इस पर उसे थोड़ा तुनकने का अवसर मिल गया—"तो पापा क्या मैं बड़बड़ करती हूँ?"

"अरे नो—" मैंने तुनकने के अन्दाज में थोड़ा टेढ़ी हो रही उसकी गर्दन सीधी कर दी—"तू तो मेरी रानी बिटिया है। हाँ तो तू बर्फ की बात कर रही थी न—"

"हाँ। मैं कह रही थी कि इस बर्फ में कोई रात भर बाहर रह जाये तो ठंडा हो जाये।"

"कोई क्यों, हजारों लोग बाहर रहते हैं। सामने खड़े हुए यह पेड़-पौधे सब यूँ ही तो रहते हैं रात भर।

"आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे इन पेड़ों को भी आदमी की तरह सर्दी-गर्मी लगती हो।"

"अरे बुद्धू! इसमें भी तुझे सन्देह है क्या?" मैंने उसे स्टूल से खींचकर पास की कुर्सी पर बिठा लिया—"ये पेड़ भी तेरी मेरी तरह जीवित हैं। इन्हें भी ठंडी रात में सिहरन होती है और गर्म लू में जलन। कभी कभी तो सीमा से अधिक ठंड पड़ने पर इनकी मृत्यु भी हो सकती है।"

"क्या!" आश्चर्य से उसकी आँखें चौड़ी हो उठीं—ठंड लगने से पेड़ भी मर सकते हैं!"

"हाँ हाँ! ठंड से पेड़ों की मौत भी हो सकती है।

"पर कैसे?" उसे विश्वास नहीं हो रहा था मेरी बात पर। किन्तु छोटे बच्चों को समझा पाना भी उतना आसान नहीं है, इसलिए एक क्षण को मेरे मन में आया कि बहका कर टाल दूँ—"अरे बेटे जैसे ठन्ड से मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है वैसे ही पेड़ भी मर सकते हैं।"

किन्तु वह सतर्क थी--"ओह नो पापा ! आप मुझे टाल रहे हैं।"

अब बताने के अतिरिक्त उपाय ही नहीं रहा तो सोचा थोड़ा टहल कर देखूँ यदि आसपास ठंड खाया हुआ कोई पेड़ दिख जाये तो इसे समझा दूँ और इसी ध्येय से उठ पड़ा "बेटी माँ से बोल कर आ कि हम दोनों अभी थोड़ा देर में आ जायेंगे।"

किन्तु उसे कहना नहीं पड़ा क्योंकि वह स्वयं ही खाली प्यालियाँ उठाने बाहर आ रही थी "अरे बाबा स्वयं तो जंगलों में रह कर पेड़-पौधों से बातें करते ही हो, अब बच्चों को भी सिखाना आवश्यक है क्या--"

"ओह सुधा--" तब तक वह पास आ चुकी थी "तुम समझती क्यों नहीं कि प्रकृति के पास सिखाने को इतना है कि बस कई जन्म लग जायँ। फिर इन्ही पेड़ों को प्यार करते करते ही तो मैने तुम्हे प्यार करना सीखा।"

"हटो भी!" उसने अपनी नाक पर रख उठी मेरी उँगली को झटकते हुए थोड़ा दबा दिया--"उमर ढलने को आयी किन्तु बचपना नहीं गया।"

बेटी की उपस्थिति में छेड़े जाने पर वह ऐसे ही क्रोध दिखाती है। किन्तु माँ को चिढ़ता देखकर अंजू को शैतानी सूझ आती--"छोड़ो भी पापा ! जब माँ आप को प्यार नहीं करने देतीं तो आप ही क्यों बोलते हैं--।"

"अरे हो--।" सुधा ने उसे एक धौल जमायी--मेरी दादी को तो देखो।"

हम दोनों फारेस्ट रेस्ट हाउस से बाहर की सड़क पर आ गये। चारों ओर देवदार के बूढे और जवान पेड़ खड़े थे। थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि एक खुले स्थान में सूख रहा एक पेड़ दिख गया। उसके आसपास के पेड़ कटे जा चुके थे इसलिए वह अपेक्षाकृत खुले स्थान में था। हम दोनों ही उधर बढ़ गये--"देखो बेटे! यह बेचारा ठंड खा गया है--" और वहीं पास में कटे हुए एक तने पर बैठ गये। हमने चारों तरफ से मर रहे उस पेड़ को छू कर देखा। और अधिक जान सकने की उत्सुकता उसकी आँखों में उभर आयी।

"अंजू! तुमने वह रेस्ट हाउस देखा है ना जिसमें हम लोग ठहरे हुए हैं--' मैंने उसे अपनी ओर आकृष्ट करने के ध्येय से पूछा तो उसने स्वीकृति में सर हिला दिया।

"अच्छा बता कि इतना बड़ा मकान कैसे बना है"

"क्यों! वह छोटी छोटी ईंटों से मिलकर बना है।"

"शाबाश" मुझे उसके उत्तर से प्रोत्साहन मिला--जैसे वह छोटी छोटी ईंटों से बना है वैसे संसार की प्रत्येक वस्तु छोटी छोटी इकाइयों के संगठन से बनी है। यह पेड़ भी ऐसा ही इकाइयों के संगठन से बना है। इन इकाइयों को कोशिका (सेल) कहते हैं। प्रत्येक कोशिका में ऊपर एक अर्ध व्यापित झिल्ली होती है और उसके अन्दर जीवद्रव्य भरा रहता है। यही जीवद्रव्य पेड़ की वृद्धि का संचालन करता है।--" यहाँ पर उसने मुझे रोक दिया--"लेकिन पापा यह जीवद्रव्य झिल्ली से बाहर क्यों नहीं आ जाता--"

"बेटी। इसकी संरचना ऐसी होती है कि अपने घनेपन के कारण यह बाहर नहीं आता। यदि अर्ध व्यापित झिल्ली (सेमीपरिमियेबुल मेम्ब्रेन) के बाहर इससे भी अधिक सान्द्रता का द्रव्य हो तो अवश्य ही यह बाहर आ सकता है।' मुझे उसके प्रश्न से आभास लगा कि वह समझ रही है और इसीलिए आगे बढ़ गया--"हाँ तो यही छोटी-छोटी कोशिकायें मिलकर पेड़ को आकार देती हैं किन्तु इनके संगठन में बीच बीच में खाली स्थान बच रहता है। इसे अन्तरकोषकीय क्षेत्र (इन्टर सेलुलर स्पेस) कहते हैं। इसमें जड़ों से खींच कर ऊपर चढ़ रहा पानी भरा रहता है। जब बहुत ठंड पड़ती है तो पानी का तापमान घटता है। एक सीमा से अधिक ठंड पड़ने पर इसका तापमान इतना घट सकता है कि अन्तरकोशकीय क्षेत्र में भरा तरल जमने लगे। और जब पानी जमता है तो उसके आयतन में प्रसार होता है।"

"क्यों?" उसने रोक दिया।

"यह पानी का भौतिक गुण है कि ठोस अवस्था में आने पर उसका घनत्व कम हो जाता है। तभी तो पानी में बर्फ तैरती है।"

"ओह। प्रकृति में कितनी विचित्रता है—" उसने चारों ओर फैली वनस्पति को दृष्टि भर देखा। आँखों में सब कुछ समझ पाने की एक आकांक्षा तिर उठी।

"हाँ तो जब कोशिकाओं के बाहरी स्थान में भरा पानी जमता है तो वर्फ बनने पर अधिक आयतन घेरता है। किन्तु स्थान तो पहले से ही भरा रहता है इसलिए आयतन की यह वृद्धि कोशिकाओं पर दबाव डालती है। दबाव पड़ने से कोशिकाओं के अन्दर भरे जीवद्रव्य का संकुचन होता है और परिणामस्वरूप उसमें उपस्थित तरल द्रव रिसकर बाहर आ जाता है किन्तु, बाहर आते ही वह भी जमता है जिससे पुनः दबाव बढ़ता है। इस प्रकार क्रम चलता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि जीवद्रव्य का विघटन हो जाता है और कोशिकाओं का आकार अव्यवस्थित हो जाता है। यही स्थिति मृत्यु की स्थिति है।"

सुनकर भी कुछ क्षण तक वह शांत रही। फिर धीरे से उठी और पास ही उग रहे एक छोटे पौधे को सहलाने लगी– "प्रकृति की गोद में पल रहे यह सीधे-सादे पेड़ क्या कुछ नहीं सहते—" 'सहने वाले ही तो बड़े भी होते हैं—" उठकर मैं पास ही खड़े एक स्वस्थ कद्दावर देवदार को तरफ ताकने लगा।

(पृष्ठ ४ का शेषांश)

११—हरने, ए० एम०	१६१५	जियोलाजी आव् सेंट्रल राजपुताना मेम० जि० स० इ० ७६
१२—कृष्णन, एम०एस०	१६२५	पेट्रोलाजी आव् रामून फ्राम गिरनार एंड आधामहिल रि० जि० स० इ० ५८
१३ —...	१६५७	वालरैनिक एपिसोड इंडियन जियोलाजी जी० मद्रास विश्व०
१४—माथुर के०के०, दूबे वी० एस० तथा शर्मा एम०एन०	१६२६	मैग्नेटिक डिफरोरीयन इन माउंट गिरनार जर्न०जि० ३४
१५—...	१८८७	फिजिकल जियोलाजी आव् वेस्ट ब्रिटिश गढ़वाल रे० जि० स० इ० २०
१६ पैस्को, इ० एच०	१६१२	ए ट्रैवर्स एक्रास नंगा हिल रे० जि० स० इ० ४२ भाग २
१७—पिचामुथु	१६४६	साइकल्स आव् धारवार सेडिमेन्टेशन, करेन्ट साइ० १५
१८—रामाराव, बी०	१६४०	आरवियन काम्प्लेक्स आव् मैसूर बुल० मैसूर जिगडिप नं० १७
१६ रिटेल, बी०डब्लू०	१६५५	डिस्ट्रिब्यूशन आव् इग्नियस राक इन स्पेस एंड टाइम बुले० जि० स्वे० सम० ६६
२० –वाडिया, डी०एन०	१६३३	नोट आन जियोलाजी आव् नंगा पर्वत, रे० जि० स० इ० ६६
२१—वेस्ट, डब्लू० डी०	१६५८	पेट्रोग्राफी एंड पेट्रोलाजी आव् फार्टी एट फ्लोस् आव् डेकन ट्रैप........ ट्रास० वेचु० इ० इंडि० नं० ४
२२ –वेन, ए०एच०	१८८०	आन दी ट्रांस इन्डस एक्सटेंशन आव पंजाब साल्ट रेंज, मे० जि०स० इ० १७ भाग २.

तारापुर सम्बन्धी तथ्य-१

● संकलित

तारापुर बम्बई से ६५ मील उत्तर अरब सागर के तट पर बसा एक गाँव है, जहाँ भारत के प्रथम आणविक बिजली घर की स्थापना हुई है। प्रधान-मन्त्री इन्दिरा गान्धी ने १९ जनवरी, १९७० को इस कारखाने उद्घाटन किया। तारापुर का यह बिजलीघर, जो एशिया में अपनी किस्म का सबसे बड़ा कारखाना है, अणु की अपरिमित शक्ति को व्यापारिक स्तर पर उन्मुक्त करने के लिए भारत द्वारा किये गये प्रथम साहसिक प्रयास का प्रतीक है। आइये हम बिजली तथा बिजली घर से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों का समाधान खोजें।

बिजली का उत्पादन कैसे होता है ?

हम एक स्विच खोल कर या बटन दबा कर बिजली बुलाने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि इसे एक निश्चितप्राय घटना मान बैठे हैं। किन्तु यदि हमें यह समझना है कि अणु से कैसे और क्यों बिजली प्राप्त की जाती है, तो सबसे पहले हमें इस बात की कुछ जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये कि यह शक्ति या ऊर्जा के अन्य स्रोतों से किस प्रकार प्राप्त होती है।

हम जितनी बिजली का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः सारी की सारी टर्बोजेनरेटर नामक यन्त्रों द्वारा उत्पादित होती है। ये यन्त्र यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा या बिजली में परिवर्तित करने के साधन होते हैं। टर्बो-जेनरेटर में एक टर्बाइन होती है, जो एक चालक धुरी (ड्राइव शैफ्ट) द्वारा एक विद्युतीय उत्पादक यन्त्र (इलैक्ट्रिकल जेनरेटर) से सम्बद्ध होती है। तीव्र गति से प्रवाहित एक द्रव पदार्थ (पानी या भाप) टर्बाइन के फलकों पर आघात करता है, जिसके फलस्वरूप चालक धुरी तीव्र गति से घूमने लगती है। चालक धुरी के घूमने के फलस्वरूप जेनरेटर का आर्मेचर लट्टू की तरह तीव्रगति से चक्रवत घूमने लगता है। आर्मेचर एक चुम्बक के छोरों के बीच स्थित होता है, और जब उसके ताम्र-लपेट (कापर वाइण्डिंग) चुम्बकीय क्षेत्र के आरपार जाते हैं, तो एक विद्युत् धारा उत्पन्न हो जाती है। यह विद्युत्धारा सम्प्रेषण-लाइनों में से प्रवाहित होकर जटिल वितरण संजालों में पहुँच जाती है, जो हमारे घरों, दफ्तरों, दुकानों और उद्योगों को बिजली सुलभ करते हैं।

टर्बाइन को संचालित करने वाले द्रव पदार्थ को वेग से ठेलने वाली ऊर्जा कहाँ से आती है ? इसके मूल स्रोत तीन हैं। जलशक्ति (जो या तो प्राकृतिक प्रपात द्वारा या बाँध द्वारा निर्मित जलाशय से निकले पानी द्वारा उत्पन्न होती है); रासायनिक ऊर्जा (जो कोयले और तेल जैसे वाष्प ईंधनों को भाप बनने के लिए जलने से उत्पन्न होती है); और आणविक ऊर्जा (यह भी भाप उत्पन्न करती है)।

अणु कितना शक्तिमान है ?

ऊर्जा के स्रोत के रूप में अणु और जीवाश्म ईंधन में कोई समानता नहीं। भारत में कोयले के ईंधन द्वारा बिजली उत्पन्न करने वाले किसी आधुनिक बिजली घर में प्रति किलोवाट-घण्टा बिजली के उत्पादन पर १.१६ पौण्ड कोयला जलाना पड़ता है। तारापुर आणविक बिजली घर में १.१६ पौण्ड ईंधन

से ८३,००० किलोवाट–घण्टा से भी अधिक बिजली उत्पन्न होती है।

आणविक ऊर्जा द्वारा ताप कैसे उत्पन्न होता है ?

अणुशक्ति की प्रक्रिया की व्याख्या करने का सर्वश्रेष्ठ ढंग यह है कि विखण्डन प्रक्रिया का वर्णन किया जाय।

आणविक विखण्डन के अन्तर्गत, एक भारी ईंधन अणु दो अपेक्षाकृत हल्के अणुओं में विभाजित हो जाता है, जिन्हें विखण्डन–उत्पाद कहते हैं। ये दोनों प्रायः अत्यन्त अस्थिर (रेडियोसक्रिय) होते हैं। अणु का विखण्डन होने पर, उसकी विखण्डित हो रही न्यष्टि के भीतर से दो या तीन उप-आणविक कण उन्मुक्त हो जाते हैं जिन्हें न्यूट्रान कहते हैं। विखण्डन क्रिया के साथ साथ ही, तत्काल गामा-रश्मियों के रूप में, जो एक्स–रे जैसी होती है, ऊर्जा का भी निस्सरण होता है।

यदि विखण्डित अंशों (विखण्डन उत्पादों और न्यूट्रानों) के संयुक्त पिण्ड को जोड़ा जाय, तो कुल योग मौलिक ईंधन-अणु के एकदम बराबर नहीं होगा। विखण्डन के फलस्वरूप अणु-पिण्ड का जो अंश 'लुप्त' हो जाता है, वह पिण्ड और ऊर्जा के समीकरण सम्बन्धी आइन्स्टीन के ऐतिहासिक सूत्र (ई० = एम० स०,[२] जिसमें ई० = ऊर्जा, एम० = पिण्ड और सी० = प्रकाश वेग) के अनुसार ऊर्जा में परिणत हो चुका होता है। इस ऊर्जा का अधिकांश भाग, ठीक उसी समय जब अति-ऊर्जस्वित अंश विखण्डित अंश अत्यन्त तीव्र गति से उड़ कर बिखरते और ईंधन में निहित अन्य अणुओं से टकराते हैं, ताप के रूप में प्रकट हो जाता है। एक आणविक रिऐक्टर (न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक) में उत्पन्न यह ताप ही विद्युत् उत्पादन के प्रारम्भिक बिन्दु के रूप में प्रयुक्त होता है।

आणविक विखण्डन उस समय होता है, जब कुछ भारी अणुओं के सघन आंतरिक भाग, अर्थात् न्यष्टि, पर उप-आणविक कण आघात करते हैं। वास्तव में, अणुओं की संरचना में एक सन्निहित अस्थिरता होती है जो बन्दी ऊर्जा की प्रतीक होती है। विभिन्न उप-आणविक कणों में से, न्यूट्रान ही उस ऊर्जा को उन्मुक्त करने वाला अधिकतम प्रभावकारी साधन होता है।

क्योंकि न्यूट्रान न केवल विखण्डन उत्पन्न करते हैं, बल्कि इस प्रक्रिया के दौरान उन्मुक्त होते हैं, इसलिए एक शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया सम्भव हो जाती है। यह शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया एक ऐसी प्रतिक्रिया होती है, जिसके अन्तर्गत, किसी एक गुण द्वारा उन्मुक्त न्यूट्रान एक अन्य अणु को विखण्डन प्रक्रिया से गुजरने के लिए उत्प्रेरित करता है, जिसके परिणामस्वरूप उससे भी आगे एक अन्य अणु का विखण्डन होता है, और यह क्रम आगे भी जारी रहता है। शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करने और उसे स्वधारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आणविक ईंधन की न्यूनतम मात्रा (महत्वपूर्ण पिंड) की स्थापना की जाय।

आणविक प्रतिक्रिया वाहक क्या है ?

आणविक या न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक (एटोमिक रिएक्टर) एक स्वयं-धारी प्रतिक्रिया शृंखला प्राप्त करने अर्थात् आणविक ईंधन 'जलाने' का एक उपकरण मात्र है। इसके मुख्य भाग निम्नलिखित हैं ;

१—आणविक ईंधन का क्रोड़ : अमेरिकी सरकार ने संवृद्ध यूरेनियम की पूर्ति करना स्वीकार कर लिया है, जो तारापुर में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। संवृद्ध यूरेनियम में अति-विखण्डनीय यूरेनियम–२३५ आइसोटोप की मात्रा उसकी उस मात्रा से अधिक होती है, जो प्रकृति में मिलती है।

२ —एक मंदक (माडरेटर) : विखंडन प्रक्रिया के अंतर्गत उन्मुक्त न्यूट्रोन प्रारम्भ में अत्यंत त्वरित गति से चलायमान होते हैं। किन्तु जब वे प्रतिक्रियावाहक

क्रोड में आस पास के पदार्थ से टकराते हैं, तो उनकी गति धीमी होने लगती है। गति का इस प्रकार मन्द होना वांछनीय होता है क्योंकि सामान्य रूप से मन्द गति गामी न्यूट्रान विखण्डन उत्प्रेरित करने में तीव्र गति गामी न्यूट्रानों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होते हैं। वह पदार्थ जो न्यूट्रानों की गति शीघ्रता से मन्द करने में समर्थ हो और साथ ही न्यूट्रानों को आत्मसात करने के लिए प्रवृत्त न हो, मन्दक या 'म ड-रेटर' कहलाता है।

मन्दक के रूप में सामान्यतः पानी, 'भारी' पानी और ग्रेफाइट का प्रयोग सबसे अधिक होता है तारा-पुर में पानी का प्रयोग किया जाता है।

३—शीतक प्रणाली : यह विखण्डन की दर, फलतः ताप जनन की दर, को नियामित करने का एक साधन है। शीतक प्रणाली की आवश्यकता ईंधन तत्वों को अतितप्त होने से रोकने, और ताप को प्रति-क्रियावाहक से एक वाष्पजनक प्रणाली तक पहुँचाने के लिए होता है। इस समय आणविक बिजली उत्पन्न करने वाले संयत्रों में सामान्यतः सबसे अधिक प्रयुक्त शीतक साधारण पानी है। तारापुर में 'जल क्वथनी' (ब्वायलिंग वाटर) किस्म के दो प्रतिक्रियावाहक हैं। इन्हें यह नाम देने का कारण यह है कि इनमें पानी को इसलिए उबलने दिया जाता है, ताकि प्रतिक्रियावाहक में वाष्प तैयार हो सके। कुछ अन्य किस्म के प्रतिक्रियावाहकों (जैसे चापानुकूलित जल प्रतिक्रियावाहकों) में पानी को इतने दाब या चाप के अन्तर्गत रखा जाता है, जो उसे प्रतिक्रियावाहक में उबलने से रोक सकने के लिए पर्याप्त हो। आण-विक बिजलीघरों में प्रयुक्त अन्य शीतकों में से धातुएं (मुख्यतः सोडियम), गैस (मुख्यतः हीलियम) और कुछ जैव रसायन शामिल हैं।

४—नियंत्रण प्रणालीः अधिकांश प्रतिक्रियावाहकों को क्रोड़ (कोर) में सन्निविष्ट उन्मुक्त न्यूट्रानों की संख्या नियामित करके नियन्त्रित किया जाता है। सामान्यतः यह कार्य न्यूट्रानों को आत्मसात् करने वाले विशेष पदार्थों जिन्हें 'न्यूट्रान शोषक' कहा जा सकता है, के प्रयोग से सम्पन्न किया जाता है। आमतौर पर इन पदार्थों को समंजनीय छड़ों द्वारा, जिन्हें नियंत्रण छड़ें कहते हैं, प्रतिक्रियावाहक के भीतर प्रविष्ट कर दिया जाता है। इन छड़ों का प्रयोग सामान्य नियंत्रण के अतिरिक्त आपत्कालीन स्थितियों में प्रतिक्रियावाहक को शीघ्रता से बन्द करने के लिए भी होता है।

जब ईंधन भरा जाता है, उस समय अनेक नियंत्रण छड़ 'उपस्थित' ('इन') की स्थिति में होते हैं। जब प्रतिक्रियावाहक पूरी तरह भर चुका होता है, उस समय कुछ छड़ों को पूर्णतः और कुछ को अंशतः हटा कर उसे चालू कर दिया जाता है। छड़ों को अंशतः हटाने की कार्यवाही क्रमशः धीरे धीरे, और उन यन्त्रों के संकेत पर जो विखण्डन की दर की जाँच पड़ताल करते हैं, की जाती है। ज्योंही शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया स्वयंधारी बन जाती है, अंशतः हटाये गये छड़ों को स्थायी दशा वाली संचालन स्थितियाँ कायम रखने के लिए आवश्यकतानुसार खिसकाया-हटाया जाता है। अगर चालक बिजली के स्तर को बढ़ाना चाहता है, तो नियन्त्रण छड़ों को और अधिक हटा लिया जाता है। अगर वह प्रतिक्रियावाहक को बन्द कर देना चाहता है, तो सभी नियन्त्रण छड़ों को पुनः पूरी तरह प्रविष्ट कर दिया जाता है। बटन दबा कर अत्यन्त शीघ्रता से यह कार्य सम्पन्न करने के लिए विशेष उपकरणों की व्यवस्था होती है। इनके अलावा, नियंत्रत और बन्द करने वाले अनेक स्वतः चालित उपकरण भी लगे होते हैं।

तारापुर की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ?

अरब सागर के तट पर विस्तृत बलुहे मैदान के बीच स्थित तारापुर बिजलीघर के अन्तर्गत कई विशाल, भूरे, घनाकार भवन शामिल हैं, जिनमें केन्द्रीय खण्ड १८५ फुट ऊंचा है। वहां दो आणविक प्रतिक्रियावाहक हैं, जिनमें से प्रत्येक २,००,००० किलोवाट क्षमता वाले टर्बो-जेनरेटर से युक्त है।

ये प्रतिक्रियावाहक फ्लास्क जैसे आकार वाले स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखे गये हैं, जिसका व्यास

६५ फुट और ऊँचाई १०० फुट है। इस्पात की दीवार ५ इंच मोटी है। यह पात्र चारों ओर से कंक्रीट की मोटी दीवारों से घिरा है। प्रतिक्रियावाहकों में से प्रवाहित होकर उच्च चाप वाली वाष्प दोनों टर्बाइनों के धुरों (शैफ्ट) को प्रति मिनट १,५०० चक्र की गति से घुमाती है। टर्बाइन से सम्बद्ध जेनरेटर बिजली उत्पन्न करते हैं, जो एक ग्रिड में संचारित होकर महाराष्ट्र और गुजरात, दोनों राज्यों को लाभान्वित कर रही है।

परियोजना और उसका क्रियान्वयन

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने तारापुर में व्यक्तिगत रुचि ली और ७ दिसम्बर १९६३ को आयोजित एक समारोह की अध्यक्षता की। इस समारोह में अमेरिका और भारत के बीच एक समझौता हुआ जिसमें इस परियोजना के लिए ७.५ करोड़ डालर (५६.२५ करोड़ रुपये) के अमेरिकी ऋण की व्यवस्था हुई। समझौता पत्र पर अमेरिकी राजदूत चेस्टर बोल्स, भारत में अणुशक्ति कार्यक्रम के जनक, स्वर्गीय डा० एच० जे० भाभा और वित्तमन्त्रालय के तत्कालीन सचिव श्री एल० के० झा ने हस्ताक्षर किये।

तारापुर परियोजना डा० भाभा के उस सद्प्रयास का चरम बिन्दु थी, जिसका उद्देश्य अणुशक्ति के बहुमुखी लाभों की सहायता से भारत के आर्थिक विकास को तीव्रतर बनाना था। डा० भाभा की मृत्यु के बाद, तारापुर परियोजना का कार्य अणुशक्ति विभाग के अध्यक्ष डा० विक्रम साराभाई के नेतृत्व में अबाध गति से जारी रहा।

श्री एम० एन० चक्रवर्ती समग्र तारापुर परियोजना के प्रशासक और डा० महेश दयाल उसके प्रधान इंजिनियर रहे हैं।

अमेरिका की जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी और इण्टर्नेशनल जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (भारत) को, जिन्हें संयुक्त रूप से 'आई० जी० ई०' कहते हैं, परियोजना का मुख्य ठेकेदार नियुक्त किया गया। तारापुर के लिए आणविक प्रणाली की डिजाइन आई० जी० ई० ने सैनजोन्स, कैलिफोर्निया, स्थित अपने आणविक बिजली उपकरण विभाग में तैयार की। प्रतिक्रियावाहक के लिए पात्रों या पीपों का निर्माण अमेरिका की एक फर्म, 'कम्बशन इंजिनियरिंग' ने किया। परियोजना के परम्परागत पुर्जों के विस्तृत अभियंत्रण बिजलीघर के निर्माण कार्य की व्यवस्था के लिए आई० जी० ई० ने बेचटेल कार्पोरेशन को नियुक्त किया।

परियोजना के निर्माण का कार्य अक्तूबर, १९६४ में प्रारम्भ हुआ और १९६९ में पूरा हुआ। निर्माण कार्य की अधिकतम व्यस्त अवधियों में ६,५०० नर-नारियों ने दिन-रात, २४ घण्टे अबाध रूप से कार्य किया।

तारापुर के निर्माण में ११० हजार घन गज कंक्रीट १२ हजार टन इस्पात, ४४,००० टन सीमेण्ट, १,०५,००० घन गज बजरी या कंकड़, और ५२,००० घन गज बालू प्रयुक्त हुआ। इसमें प्रयुक्त पाइपों और केबलों की कुल लम्बाई क्रमशः ४० मील और २५० मील थी।

क्या तारापुर संयंत्र अणुबम जैसा विस्फोट कर सकता है?

भौतिक दृष्टि से यह सर्वथा असम्भव है कि कोई विद्युत् संयंत्र अणुबम जैसा व्यवहार करे। अणुबम में, मूलतः विशुद्ध विखण्डनीय सामग्री के टुकड़े त्वरित गति से दब कर एक सघन पिण्ड के रूप में परिणत हो जाते हैं, जो निमिष मात्र के लिए उसी रूप में बँधे रहने के लिए बाध्य होता है, ताकि श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उसमें से होकर प्रसारित हो जाय किन्तु आणविक बिजली घरों में प्रयुक्त प्रतिक्रियावाहकों में ये स्थितियाँ न तो होती हैं और न ही हो सकती हैं। वे अपेक्षाकृत घुलनशील ईंधन प्रयुक्त करते हैं; उनकी डिजाइन भिन्न होती है और उनकी संचालन-विधि भिन्न होती है।

आणविक बिजलीघर की सुरक्षा आणविक ऊर्जा को नियंत्रित करने पर नहीं, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्री को अनुसीमित रखने पर निर्भर है।

आणविक बिजलीघर में उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्रियां विखण्डन की 'राखें'—तथाकथित विखण्डन उत्पाद—हैं। ये विविध पदार्थों की मिश्रण हैं। उनमें से गैसें और कुछ ठोस पदार्थ होते है। निर्मित विखण्डन उत्पादों की मात्रा पिण्ड के रूप में कम—तारापुर में प्रतिदिन कुछ पिण्ड मात्र—और रेडियोसक्रियता के रूप में बहुत अधिक होती है।

तारापुर में इन रेडियोसक्रिय उच्छिष्ट अंशों को ठिकाने लगाने के उद्देश्य से 'रेडवेस्ट' नामक एक पृथक भवन में शोधित किया जाता है। कर्मचारियों और अड़ोस पड़ोस के क्षेत्रों को रेडियोसक्रिय विषाक्तता से सुरक्षित रखने के लिए असाधारण एहतियाती उपाय लागू किये गये हैं। संयंत्र से निकलने वाली भाप और हवा को भी ३६६ फुट ऊंची खुली चिमनी से बाहर निकाल कर वायुमण्डल में उन्मुक्त करने से पूर्व, अच्छी तरह शुद्ध कर लिया जाता है।

पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणी, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, मुख्यतः सूर्य से निस्सरण के फलस्वरूप उत्पन्न रेडियोसक्रियता के अनुभिश्रित सागर में सदा से रहते आ रहे हैं। विकिरण की जितनी मात्रा को मनुष्य सहन कर सकता है, वह सामान्यतः ऊंचाई के अनुपात से बढ़ती जाती है। अमेरिका में बड़े बड़े आणविक बिजलीघरों के सम्बन्ध में प्राप्त अनुभवों से यह संकेत मिलता है कि इस प्रकार के कारखानों में काम करने वाले व्यक्ति को उस व्यक्ति की अपेक्षा कम विकिरण का सामना करना पडता है, जो ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर रहता है।

तारापुर से भारत को क्या लाभ होगा ?

तारापुर बिजलीघर भारत के अधिकतम उद्योग-प्रधान क्षेत्रों में से एक को लाभान्वित कर रहा है। गुजरात और महाराष्ट्र, दोनों ही राज्यों में, पहले दो दशाब्दों के दौरान कई बड़ी-बड़ी योजनाएं लागू होने के बावजूद, बिजली की मांग उसकी पूर्ति से बहुत अधिक है। जब कभी वर्षा अच्छी नहीं होती, और उस क्षेत्र की जल विद्युत परियोजनाओं के जलाशय सूख जाते हैं बिजली के उपयोग में जबर्दस्ती कटौती करनी पड़ती है। इन कटौतियों के कारण राष्ट्रीय आय को भारी क्षति हुई है, और समय समय पर बेरोजगारी का दौर प्रारम्भ होता रहता है। १९६९ के ग्रीष्म में तारापुर बिजलीघर चालू हो जाने से उस क्षेत्र में उस समय लागू सभी कटौतियां समाप्त कर दी गयी। जल-विद्युत के विपरीत, आणविक बिजली वर्षा पर निर्भरता से मुक्त है। इसलिए तारापुर बिजलीघर पश्चिमी भारत में रहने वाले करोड़ों लोगों को नियमित और विश्वसनीय रूप से बिजली सुलभ करने वाले साधन का प्रतीक है।

तारापुर बिजलीघर द्वारा उत्पन्न ४,००,००० किलोवाट बिजली महाराष्ट्र और गुजरात में उद्योगों के और अधिक विकास में भारी योग प्रदान कर रही है। अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध होने से खेती को भी बहुत लाभ पहुँच रहा है। ग्रामीण विद्युतीकरण तीव्र गति से प्रगति कर रहा है, जिससे किसान लोग पम्प-सेटों द्वारा अपने खेत सींचने में समर्थ हो रहे है। इस समय कितने ही किसान पहले की एक फसल के स्थान पर साल में तीन-तीन फसलें उत्पन्न करने लगे है गांवों में हजारों नये उद्योग स्थापित हो रहे हैं।

सार संकलन

● संकलित

१. प्रलयंकर जीवाणु

हमारी शताब्दी के पहले दशक में ब्रितानी विश्व-विख्यात कथाकार एच० जी० वेल्स ने एक उपन्यास लिखा—वार आफ द वर्ल्डस। मंगल के विचित्र निवासियों से मानवता को बचाने के तमाम उपाय विफल हो गये तो पृथ्वी के वैज्ञानिकों ने उस पर कुछ ऐसे जीवाणुओं से हमला किया जो अत्यन्त घातक थे। मंगलवासी उस हमले के सामने असहाय हो गए, सारे के सारे अपने प्राणों से हाथ धो बैठे।

वेल्स की तेज आंखें भविष्य में देख सकती थीं। जीवाणुओं-रोगाणुओं को संहारक अस्त्र बनाने की सम्भावना उन्हें तभी दीख गई थी। बाद के वर्ष गवाह हैं कि उनकी बात अक्षरशः सच निकली। १९४६ में अमरीकी विज्ञान पत्र "साइंस इलस्ट्रेटेड" के संपादकीय निदेशक ने एक रेडियो प्रसारण में कहा : "बाट्यूलिनस नामक रसायन का एक घन इंच टुकड़ा अमेरिका और कैनाडा की तमाम आबादी को खत्म करने के लिये पर्याप्त है"। उनका दावा गलत नहीं था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान रसायन को विशुद्ध रूप में बनाने के उपाय खोज निकाले गए थे। वीयतनाम के संघर्ष में वीएतकांग की छापामार लड़ाई से तंग आकर अमेरिका ने पेड़ों की पत्तियाँ नष्ट करने और पीने के पानी को दूषित करने वाले रसायनों का इस्तेमाल किया। सारे संसार ने अमेरिका के इस कदम का विरोध किया। १९६६ में सात नोबेल पुरस्कार सम्मानित वैज्ञानिकों ने अनेक अन्य विख्यात अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ मिल कर तत्कालीन राष्ट्रपति लिंडन जानसन से अनुरोध किया कि वह अपनी जैविक रासायनिक युद्ध-नीति पर पुनर्विचार करें।

जैविक-रासायनिक युद्ध कितना भयानक, कितना विनाशकारी हो सकता है, इसका पता प्रसिद्ध ब्रितानी विज्ञानपत्र "साइंस जर्नल" के संपादक राबिन क्लार्क की पुस्तक 'वी आल फाल डाउन" को पढ़कर लगता है। पिछले महीनों के भीतर प्रकाशित विज्ञान साहित्य की यह एक महत्वपूर्ण कृति है। अपनी पुस्तक में क्लार्क ने जैविक-रासायनिक अस्त्रों का विषद वैज्ञानिक विवेचन करने के साथ साथ मानवीय और नैतिक मूल्यों के प्रश्न उठाये हैं, राजनेताओं के पाखंड पर गहरे आघात किये हैं, उनसे मानवता की रक्षा की अपील की है।

संसार में जैविक-रासायनिक अस्त्र सम्बन्धी अनुसन्धान बड़े रहस्यमय, गोपनीय ढंग से किया जाता है। अमेरिका में उसे "प्रतिरक्षा-जैविकी" नाम दिया गया है। विख्यात विज्ञान-लेखक कलिंग पुरस्कार-विजेता लार्ड रिशी केल्डर ने एक बार एक अमेरिकी प्रतिरक्षा जैविक विद् से पूछा कि वह अपनी अनुसन्धान शाला में क्या खोज निकालना चाहते हैं, तो जवाब मिला, 'शरीर की रासायनिक क्रियाओं का इलाज'। अनेक अन्य युद्धास्त्रों की तरह इसके अनुसन्धान में एक तर्क और दिया जाता है : शत्रु के जैविक-रासायनिक आक्रमण से बचाव के लिये यह अनुसन्धान आवश्यक है। ब्रिटेन पार्टन डाउन स्थित 'सूक्ष्म जैविक अनुसन्धान संस्थान' के निदेशक डा० गार्डन स्मिथ का कहना है : 'अनुसन्धान के दो लक्ष्य हैं—जैविकी युद्ध से ब्रिटेन की जनता और सेनाओं की होने वाली हानि का अंदाजा लगाना और ऐसे आक्रमण में बचाव के उपायों का खोज करना।'

जैविक युद्ध की सबसे बड़ी खूबी है 'आसानी'।

जैविक अस्त्र आखिर हैं क्या ? विभिन्न रोग पैदा करने वाले जीवाणु, जिनके उत्पादन की विधियाँ सभी को मालूम हैं। तब उन्हें शत्रु भूमि पर डालने का सवाल उठता है। यह काम भी उतना ही आसान है। मामूली स्प्रे उपकरण से बखूबी काम चल जाता है। स्प्रे से फैलाये गये रोग-जीवाणु हवा में मिल जायेंगे और सांस लेने पर शरीर के भीतर पहुँच जायेंगे और संक्रामक रोग बड़ी आबादी का सफाया कर डालेगा। इस सब में बहुत खर्च भी नहीं होता। छोटे राष्ट्र भी उन्हें अपना सकते हैं। इनकी तुलना में परमाणु अस्त्रों या प्रक्षेपास्त्रों की बात करें तो जैविक-अस्त्रों की रोमांचक भयानकता स्पष्ट हो जाती है। कुछ घण्टों के भीतर शत्रु-भूमि की सारी हवा दूषित हो जायेगी और मृत्यु का तांडव शुरू हो जायेगा।

इतिहास :—जैविक-रासायनिक युद्ध का विचार अपने में नया नहीं। हजारों साल पहले मनुष्य ने 'जहर' का आविष्कार किया था, जो एक रसायन है। विष देकर मार डालने की घटनायें विश्व के इतिहास में भरी पड़ी हैं। भोजन या पीने के पानी में जहर मिला कर किसी नगर की जनता के विनाश की घटनायें भी मौजूद हैं। प्राचीन भारत में 'विषकन्याएं' जैविक अस्त्र ही थीं। शत्रु के नगर के गिर्द घेरा डाल कर नगर में प्लेग फैला कर आबादी का खात्मा कर देने के प्रसंग भी ज्ञात हैं। प्लेग की भयानकता का अन्दाजा सभी को है। लेकिन हमारी शताब्दी से पहले इतने विशाल पैमाने पर जैविक रासायनिक अस्त्रों के इस्तेमाल की बात नहीं सोची गई। मास्को इन्स्टीट्यूट के कर्नल आदम सिकोविन के शब्दों में "आज की मान्यता है कि जैविक युद्ध सबसे अधिक प्रभावशाली है। इसका कारण केवल जैविक अस्त्रों का घातक गुण नहीं है, बल्कि सूक्ष्म जैविकी, संक्रामक रोग-विज्ञान और मौसमविज्ञान की प्राप्ति है।'

जैविक युद्ध के एजेन्ट :—लगभग १६० संक्रामक रोगों का प्रभाव आदमी पर होता है। जैविक युद्ध में इन्हीं का सहारा लिया जा सकता है। कई तरह के रोगाणु उन्हे पैदा करते हैं। यह संभव नहीं दीखता कि किसी नयी किस्म के अधिक संक्रामक रोगाणुओं का पता लग सकेगा। लेकिन इन्हीं रोगाणुओं की नई-नई किस्में पैदा की जा सकती हैं। उनके गुणों में परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'पास्चुरेला पेस्तिस' नामक एक रोगाणु की, जो प्लेग फैलाता है, १४० विभिन्न किस्में १९५९ तक मालूम हो चुकी थीं।

मनुष्यों पर जैविक युद्ध एजेन्ट का प्रभाव तीन प्रकार से आंका जा सकता है : रोग की छूत लगाने के लिये अनिवार्य एजेन्टों की संख्या, आदमी के शरीर पर उसका प्रभाव और संक्रामक रोग फैलाने की उसकी क्षमता। इन तीनों बातों को ध्यान में रखते हुये वैज्ञानिक अपने काम में लगे हैं। रोगाणु आदमी पर कितना घातक प्रभाव डाल सकते हैं इसका कुछ अन्दाजा जानवरों पर किये गये परीक्षणों से लग सकता है। पाँचवें दशक में आस्ट्रेलिया में खरगोशों की संख्या बेतहाशा बढ़ते-बढ़ते ५० करोड़ हो गई, फिर भी उनकी संख्या रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। हर साल खरगोशों से १० करोड़ पाउण्ड की हानि होती। इसका क्या इलाज हो सकता था? १९५० में 'मिक्सोमैटोसिस' नामक एक रोगाणु खरगोशों के बीच पहुँचा दिया गया। कुछ महीनों के भीतर ६० प्रतिशत खरगोश मौत के शिकार हो गये। दो साल बाद वह समस्या यूरोप में उठी, तो यही रोगाणु इस्तेमाल किया गया। साल भर के भीतर-भीतर यह रोग फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम, और स्विट्जरलैण्ड में फैल गया और ६० से ९० प्रतिशत खरगोश उसके शिकार बने।

वैज्ञानिक अब नये किस्म का प्लेग फैलाने वाले रोगाणुओं के तलाश में हैं। बाच्यूलिनस का उल्लेख पहले किया जा चुका है, लेकिन वह भी एक सीमा से ज्यादा खतरनाक नहीं। वैज्ञानिकों ने उससे कहीं अधिक घातक रोगाणु खोजे हैं। राबिन क्लार्क के अनुसार अगर एक ग्राम मुर्गी के भ्रूण ऊतक में क्यू बुखार के जीवाणु का टीका लगा दिया जाये तो वह दस लाख से अधिक मनुष्यों को मौत के घाट उतारने को

काफी होगा। इसी प्रकार एक रोग है एंथ्रैक्स, जिसके कारण मनुष्यों और पशुओं में कैन्सर जैसा रोग हो जाता है। ब्रिटेन ने एक टापू पर इसका परीक्षण किया। टापू की सारी भेंडें मर गयीं और अब सौ साल बाद ही दोबारा आदमी या पशु इस टापू पर बस सकेंगे।

रासायनिक युद्ध के एजेन्टः—जैविक अस्त्रों के अलावा सभी राष्ट्र रासायनिक अस्त्रों पर भी परीक्षण कर रहे हैं। अमेरिका और सोवियत संघ दोनों के पास काफी परिमाण में रासायनिक अस्त्र हैं। जर्मनी इस दिशा में बढ़ रहा है। उबकाई और आँसू लाने वाली गैसें, गला फँसा देने वाली गैसें, धमनियाँ फाड़ने वाली गैसें, घाव पैदा करने वाले एजेन्ट, दिमाग पर असर और शरीर को सुन्न कर देने वाली गैसें सभी रासायनिक अस्त्र हैं। ये अस्त्र आदमी को सुला देते हैं, अंधा या बहरा कर देते हैं और कभी-कभी लकवा पैदा कर देते हैं। उबकाई, पेचिश, साँस लेने में कठिनाई, लगातार रोना या बिना रुके हंसना, भयानक भय और आतंक, घोर निराशा व उदासी, पागलपन भी इनसे पैदा होते हैं और मृत्यु तो है ही।

विभिन्न गैसों के इस्तेमाल से पहले विश्वयुद्ध में लगभग आठ लाख आदमी मरे थे, दूसरे विश्वयुद्ध में ये भयानक गैसें इस्तेमाल नहीं की गयीं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उनका उत्पादन भी नहीं हुआ। उभय पक्षों ने उनका खूब उत्पादन किया। जर्मनी ने चौथे दशक में मस्तिष्क को निष्क्रिय बना देने वाली गैसें बनायी थी लेकिन उनका प्रयोग युद्ध में नहीं किया इंगलैड ने एक: वी एजेंट बनाया। यह इतना भयानक है कि अगर यह त्वचा को छू भर ले तो मृत्यु निश्चित है। अमेरिकी 'वी-एक्स' इससे भी ज्यादा भयानक है। मार्च १९६७ में इसका परीक्षण किया गया तो परीक्षण स्थल से ४८ किलोमीटर दूर चरती ६,००० भेड़ें मौत की गिरफ्त में आ गयी थीं। सभी देशों में प्रतिरक्षा के नाम पर इससे भी अधिक घातक गैसों की खोज जारी है।

हानियां

जैविक रासायनिक युद्ध के अनेक खतरे है। उसके परिणाम भी पूरी तरह मालूम नहीं होते। कोई नहीं जानता कि शत्रु-भूमि पर जैविक रासायनिक युद्ध छेड़ने का असर क्या होगा? शायद वे रोगाणु वांछित दिशा में काम ही न करें। शायद उनसे इतने भीषण संक्रामक रोग सारे संसार में फैल जायें कि सारी मानवता की सत्ता का संकट सामने आ जाये।

जैविक-रासायनिक आक्रमण से शत्रु देश की अर्थ-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करना बिलकुल संभव है। एक सोवियत वैज्ञानिक ने एक बहुत खतरनाक किस्म का गेहूँ रोगाणु खोज निकाला है, जो अमेरिकी गेहूँ पर खासतौर पर असर करता है। अगर वह रोगाणु अमेरिकी फसलों पर छोड़ दिया जाये तो क्या होगा?

उपाय

इस आक्रमण से बचने का उपाय क्या है? टीके, गैस मास्क, रोगाणुओं से रक्षा करने वाले (अंतरिक्ष यात्रियों जैसे) वस्त्र, रोगाणु से बचाने वाले आश्रय-स्थल और रोगाणुओं के आक्रमण के बाद उपचार। लेकिन बड़े पैमाने पर आक्रमण हो तो इनमें से कोई भी काम नहीं आयेगा। इसलिए इसे सबसे घटिया किस्म की सामरिक निर्दयता कहा गया है। लेकिन कुछ लोग इसे 'अधिक मानवीय' कहने लगे है। पैटागन के परामर्शदाता डा० क्लिफर्ड एफ० रासवीलर का कथन है: बड़ी संख्या में आदमियों को मारने का इससे अच्छा तरीका नहीं हो सकता। रोगाणु मानव शरीर को बदशक्ल नहीं करते। इसीलिए यह युद्ध अधिक मानवीय है, अधिक सदय"।

परिषद का पृष्ठ

१ विज्ञान परिषद अनुसन्धान गोष्ठी

५७ वें इण्डियन साइंस कांग्रेस के अवसर पर ३ जनवरी को खडगपुर में विज्ञान परिषद अनुसन्धान गोष्ठी का विशिष्ट अधिवेशन सम्पन्न हुआ जिसका सभापतित्व डा० देवधर ने किया। इस गोष्ठी में ट्रा०बे स्थित एटामिक इनर्जी सेंटर के लब्धप्रतिष्ठ रसायनज्ञ डा० जगदीशशंकर ने अध्यक्षपदीय भाषण दिया। उन्होंने अपने मुद्रित भाषण में भारत में परमाणु ऊर्जा की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों से सभागत वैज्ञानिकों ने उपस्थित होकर इस अधिवेशन की शोभा बढ़ाई। ध्यान रहे कि इस अधिवेशन की समस्त कार्य वाही राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से ही सम्पन्न होती है। उपस्थित वैज्ञानिकों की सूची निम्नांकित है।

डा० देवेन्द्र शर्मा (गोरखपुर विश्वविद्यालय) पुरूषोत्तम दास स्वामी (उदयपुर) गुरुबचन सिंह (बनारस विश्वविद्यालय) डा० सतीश श्रीवास्तव (भुवनेश्वर) डा० सतीशचन्द्र त्रिपाठी (गोरखपुर विश्व-विद्यालय) डा० सत्यप्रकाश (इलाहाबाद) रा० सिंह हिमांशु (जमशेदपुर) एल० शर्मा (जमशेदपुर) कैलाश प्रसाद शर्मा (बिहार विश्वविद्यालय), सुधांशुकुमार जैन (कलकत्ता) जी०एम० पणढेरकर (विक्रम विश्वविद्यालय) तेजनारायण (लखनऊ वि० वि०) डा० रामदुलारे श्रीवास्तव(लखनऊ विश्वविद्यालय) राजेन्द्रप्रसाद (छपरा) राजेन्द्र प्रसाद शाही (छपरा) एस० एन० श्रीवास्तव (आगरा), शारदा प्रसाद सक्सेना (पूना), सतीशकुमार अग्रवाल (इलाहाबाद वि० वि०) शशिभूषण (गोरखपुर विश्वविद्यालय) बी०पी० यादव (लखनऊ विश्वविद्यालय) कृष्णकुमार लद्दा (कलकत्ता विश्वविद्यालय) प्रभातकुमार सिंह (जमशेदपुर), सुभाष चन्द्र कुण्ड दास (मेदिनीपुर), डा० गौरीशंकर मिश्र (जबलपुर वि०वि०, बद्री विशाल अग्रवाल (इलाहाबाद वि० वि०), रमाशंकर सिंह (हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), भानुदत्त पाठक (जयपुर), यतीन्द्र स्वरूप रावत (खडगपुर)।

विज्ञान क्लब द्वारा व्याख्यान माला का आयोजन

लोकोपयोगी विषयों पर वैज्ञानिक व्याख्यानों की व्यवस्था के हेतु विज्ञान परिषद के अन्तर्गत विज्ञान क्लब की स्थापना की गई है। इसकी सदस्यता सभी विज्ञान प्रेमियों के लिये निर्वाध रूप से खुली हुई है। यह निश्चय हुआ है कि प्रत्येक मास कम से कम एक व्याख्यान परिषद भवन में आयोजित हो। इसके लिये सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों एवं मनीषियों से सम्पर्क स्थापित किया जाय।

इस व्याख्यान माला के अन्तर्गत प्रथम व्याख्यान परिषद् के भूतपूर्व सभापति डा० सत्यप्रकाश ने दिया। यह व्याख्यान १९ जनवरी को ४½ बजे सायंकाल परिषद भवन में हुआ। इस अवसर पर ५० से अधिक परिषद के सदस्य छात्र एवं प्राध्यापक उपस्थित थे। डा० सत्यप्रकाश जी के व्याख्यान का विषय था "भारत को वर्तमान परिस्थिति में तरुण वैज्ञानिक का सहयोग।"

डा० सत्य प्रकाश ने अपने ७० मिनट के भाषण में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि वैज्ञानिक के दो दल माने जा सकते हैं तरुण तथा प्रौढ। किन्तु तरुण कौन है इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में १९२१ ई० के आस पास जो भी अध्यक्ष नियुक्त हुये उनकी आयु २५-३० वर्ष की थी

अब तो ३०–३१ वर्ष की आयु में अध्यापक बनते हैं तब सारा विश्वविद्यालय ही तरुण था। जो वैज्ञनिक भारत में कार्य कर रहे थे उनकी शिक्षा-दीक्षा विलायत में हुई थी फलतः उनके द्वारा जो भी शोध कार्य किया गया वह पश्चिमी परम्परा से प्रभावित था। धीरे धीरे देश में कई संस्थान बने जिनमें उपयोगी कार्य हुये। रमन, कृष्णन आदि के कार्यों से सभी परिचित हैं। उस समय अध्यापकों को शोध का न तो अवसर प्राप्त था और न वे इसके लिये सोच ही पाते थे।

अब इतना अधिक शोध हो रहा है और इतनी प्रतिस्पर्धा है कि वैज्ञानिक यह शिकायत करने लगे हैं कि उन्हें अवसर ही नहीं प्रदान किया जाता कि वे कार्य करें। भला कार्य करने वाले को कौन रोक सकता है। क्या यह सच नहीं है कि पहले की अपेक्षा अधिक सुविधायें प्राप्त हैं। शायद ही कोई ऐसा शोध कर्त्ता हो जिसे छात्रवृत्ति न मिलती हो और शायद ही ऐसी प्रयोगशाला हो जिसे अनुसन्धान-सहायता प्राप्त न हो। किन्तु दुख है कि भारत में उच्चकोटि का कार्य नहीं हुआ। आज के तरुण विदेश जाकर कार्य करना चाहते हैं और धन कमाना चाहते हैं किन्तु जब वे अपने देशों में आते हैं तो हाथ पर हाथ धरे नजर आते हैं। उन्हें कौन रोकता है।

डा० सत्यप्रकाश ने अन्त में यह कहा कि तरुण अत्यन्त लोचशील होते हैं। वे रुढ़ियों के प्रति विद्रोह करें और कठिन कार्य करके देश के लिये गर्व का विषय बनें। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त है जहाँ पति-पत्नी, बाप-बेटा तथा साथी-साथी ने मिलकर गौरव-पूर्ण कार्य किये हैं। आज के तरुण वैज्ञानिक की यह शिकायत निस्सार है कि उन्हें उन्नति के अवसर नहीं दिये जा रहे। वे अपने से बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करते हुये अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय दें।

पुस्तक समीक्षा

विज्ञान प्रगति : नवम्बर १९६९ बाल विशेषाँक। मूल्य ५० पैसे। प्रकाशक—कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

'बाल दिवस' के अवसर पर प्रकाशित "विज्ञान प्रगति" का यह विशेषांक अत्यन्त आकर्षक, चित्रों से पूर्ण एवं बच्चों के लिए पठनीय वैज्ञानिक सामग्री से पूर्ण है। इसमें १४ लेखों के अतिरिक्त 'करो और देखो', आविष्कारों की कहानी, गणित पहेलियाँ, दिमागी कसरत, क्या—क्यों-कैसे, सही उत्तर बताइए जैसे स्तम्भों की योजना है। कुल मिलाकर ४८ पृष्ठों में यह सामग्री संकलित है। लेखों में आग लगाने वाला शीशा, कार्क की कहानी, कम्प्यूटर, अद्भुत पेड़-पौधे, अनोखे जन्तु, चन्द्र विजय के बाद, पौधों का रसोईघर, टेलीविजन, तुम भी चांद पर जाओगे, स्टेनलेस स्टील कैसे बना, चमत्कारी लेसर किरणें, जब सूर्य पवन से हारा, हम क्यों पानी पीते हैं शीर्षक हैं। लेखों का विस्तार अधिक नहीं है जिससे वे रोचक बन गये हैं। मोटे टाइप की छपाई बच्चों के लिये पढ़ने में सरलता उत्पन्न करने वाली है।

सभी दृष्टि से यह अंक उपयोगी बन पड़ा है। आशा है छोटी कक्षाओं के बालक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं।

आविष्कारों का आवाहन : लेखक—माया प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक—तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी। पृष्ठ संख्या १५०। मू० ३ रुपये। प्रथम संस्करण १९६९।

यह २२ वैज्ञानिक लेखों का संकलन है जिसमें "समस्त देश, काल वा उनसे भी अनवच्छिन्न सूक्ष्मातिसूक्ष्म, प्रतिब्रह्माण्ड, अतीन्द्रिय, अलौकिक को मानव मस्तिष्क में अँटा लेने की एक आयामहीन, परिणामहीन किन्तु सत्य और तर्क प्रतिष्ठ चेष्टा" की गई है। इसके पूर्व है विज्ञान के नये सत्य नये वादे नामक कृति के द्वारा श्री त्रिपाठी जी विज्ञान के लेखन-क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं। उनका मौलिक चिन्तन, एवं उनका गहन अध्ययन पुस्तक में स्थान-स्थान पर झलकता मिलेगा। उनकी भाषा अत्यन्त शास्त्रीय एवं भावों के अनुरूप है। श्री त्रिपाठी की शैली अनेकानेक विज्ञान के लेखकों के लिये पथ-प्रदर्शन का काम कर सकती है।

इन समस्त निबन्धों में आधुनिक मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत अनेक समस्याओं का बारम्बार संकेत एवं उनका विवेचन दिया गया है। लेखक की दृष्टि जीवन कृषि, पौराणिक आख्यान—सभी ओर कार्यशील है। अगले पचास वर्षों में ही नहीं वरन् १०० वर्षों या बाद में आने वाले संसार की वे स्थान-स्थान पर स्मृति दिखाते चलते हैं। अथाह की थाह-काल यान्त्रिकीय शीर्षक लेख में श्री त्रिपाठी जी ने अपनी मौलिक शोधों को वैज्ञानिकों की तुला पर खरा उतरने के लिये प्रस्तुत किया है।

आशा है भारतीय वैज्ञानिक इस पुस्तक के अध्ययन के उपरान्त श्री त्रिपाठी जी की विलक्षण प्रतिभा की दाद देंगे।

सम्पादकीय

युवा वैज्ञानिकों में मठाधीशों के प्रति विरोध भावना

खडगपुर के ५७ वें भारतीय वैज्ञानिक सम्मेलन के एक वैज्ञानिक संवाददाता ने लिखा है कि नई पीढ़ी के वैज्ञानिक समुदाय में वर्तमान वैज्ञानिक मठाधीशी के विरुद्ध गहरा विरोध है। युवा वैज्ञानिक केवल वेतन के मामले में ही चिन्तित नहीं हैं वरन वे भारतीय विज्ञान में विद्यमान एक पुरानी गुटबन्दी से भी परेशान हैं। भारतीय वैज्ञानिक क्षेत्र में जो लोग गुटबन्दी से बाहर हैं उन्हें वहिष्कृत माना जाता है। वे युवा वैज्ञानिकों द्वारा किये गये महत्वपूर्ण अनुसन्धानों को मान्यता नहीं देते और उनके अनुसंधान परिणाम महत्वपूर्ण भारतीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में नहीं छप पाते। जब कभी कोई कनिष्ठ वैज्ञानिक महत्वपूर्ण अनुसन्धान करता भी है तो उसका लाभ स्वयं उसे प्राप्त न होकर उस वरिष्ठ वैज्ञानिक अथवा विश्वविद्यालय को मिलता है जिसकी प्रयोगशाला से वह कनिष्ठ वैज्ञानिक सम्बन्धित होता है।

युवा वैज्ञानिकों का यह भी आरोप है कि बड़े वैज्ञानिकों की गुटबन्दी का यहाँ तक प्रभाव पड़ता है कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलनों के प्रतिनिधित्व का अवसर भी उन्हें नहीं दिया जाता। यही नहीं आर्थिक सहायता भी उन्हें नहीं दी जाती। बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक संस्थाओं का संरक्षण पुराने लोगों के ही हाथ में है। वे विशिष्ट योजनाओं को प्रोत्साहित नहीं करते और न सरकार से उनके लिये अनुदान की सिफारिश ही करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विदेश से लौटने वाले युवा वैज्ञानिक पुनः विदेश को लौट जाने के लिये बाध्य होते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें सच्चाई का अंश काफी है। यद्यपि पुराने वैज्ञानिक सफाई देते हैं कि वे सभी सम्भव प्रकारों से युवावैज्ञानिकों को प्रश्रय दे रहे हैं किन्तु वह दावा थोथा है। उनके अन्तःकरणों में छल-कपट व्याप्त है। वे अपने कार्यकाल में अपने से कम वय वाले शोधकर्ताओं को ख्याति का द्वार नहीं झँकाना चाहते। वे स्वयं अपने पदों को बचाते हुये यत्रतत्र उपदेश देते प्रतीत होते हैं। अन्यथा वैज्ञानिक जगत में वास्तविकता का अर्थ है करके दिखा देना। यदि युवा वैज्ञानिक वास्तव में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे है तो उनके लिये स्थान देना चाहिए। उन्हें अधिक काल तक इस संसार में रहना है अतः उनके अहं की तुष्टि होनी चाहिए किन्तु आँख मूँद कर नहीं विवेक और अनुभव से युवा पीढ़ी को तुष्ट करके भारत की गरिमा मंडित करना कोई कठिन काम नहीं।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रकाशक : डा० हीरालाल निगम, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक : गोपाल कृष्ण अग्रवाल, हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | चैत्र २०२७ विक्र०, १८९२ शक मार्च अप्रैल १९७० | संख्या ३-४

चन्द्रमा का भूवैज्ञानिक विश्लेषण

● विजय कान्त श्रीवास्तव

चन्द्रमा पर मनुष्य के पदार्पण ने मानव कल्पनाओं को एक मूर्त रूप प्रदान किया है। विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के लिये यह दशक चिरस्मरणीय रहेगा। अमरीकी अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा लाये गये चन्द्र धरातल की शिलाओं, मिट्टियों तथा अन्य वस्तुओं के अध्ययन से नवीन तथ्यों का उद्घाटन हो रहा है। चन्द्र सम्बन्धी कुछ प्रश्नों का उत्तर इस यात्रा से मिला है परन्तु जैसे-जैसे अध्ययन किया जा रहा है, नये तथ्य मिलते जा रहे हैं और उनका संतोषप्रद उत्तर मिलना अपेक्षतया कठिन होता जा रहा है।

चन्द्रमा पर से लाई गई शिलाओं को अध्ययन के लिये विश्व भर में भेजा रहा है तथा हाउस्टन, टेक्सास, अमरीका स्थित प्रयोगशाला में वैज्ञानिक इनका अध्ययन कर रहे हैं। इन अध्ययनों के आधार पर ही यहाँ चन्द्रमा का एक भूवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

जल : अंतरिक्ष-यात्रियों द्वारा लाये गये शिलाखंडों एवं मिट्टियों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि चन्द्रमा पर जल का सर्वथा अभाव है। इसका कारण चन्द्रमा का अल्प गुरुत्वाकर्षण हो सकता है क्योंकि इसके कारण वहाँ वाति की संभावना समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सूर्य के प्रखर ताप द्वारा जल के सूखने की भी संभावना हो सकती है। परन्तु हमारे वाष्प सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी द्वारा ही हुई है, तो क्या पृथ्वी का जल का अंश चन्द्रमा पर नहीं होगा? सम्भव है यह पृष्ठ के नीचे घनीकृत हो, वर्फ की भाँति जम गया हो परन्तु यदि ऐसा होता तो भी कुछ वाष्प के कण अवश्य विद्यमान होते तथा कुछ अर्द्रता अवश्य पायी जाती एवं इनकी विद्यमानता वेधशालाओं द्वारा लिये गये स्पेक्ट्रम चित्रों में अवश्यमेव आती। किन्तु कहीं भी ऐसे प्रमाण नहीं मिल पाये हैं अतएव चन्द्रमा पर जल का अभाव माना जाता है।

धूल: शिलाओं के छोटे छोटे टुकड़े ही धूल बन जाते हैं। शिलाओं द्वारा धूल बनने की प्रक्रियाओं का बड़ा महत्व है। इसमें भी समस्त क्रियाओं में जल द्वारा विदरण की क्रिया

सर्वाधिक उत्तम होती है। परन्तु चन्द्रमा पर जल का अभाव माना जाता है। इस अवस्था में इतने छोटे छोटे कणों का होना एक प्रश्न ही है। यदि चन्द्रमा प्रशान्त क्षेत्र से निकला हो तो पहले यह भी धूल में रहा होगा। हो सकता है कि बाद में यह बदल गया हो परन्तु वायुमण्डल के अभाव में ऐसा सम्भव नहीं है।

मिट्टी: अन्तरिक्ष-यात्रियों के पैरोंमें चन्द्रमा की मिट्टी चिपकती थी अतः मिट्टी का गीला होना सम्भव है। परन्तु जल के अभाव में ऐसा कैसे हो सकता है? अन्तरिक्षयात्री प्लास्टिक के जूते पहने थे। मिट्टी के कण भी सूखे थे। अतः हो सकता है कि घर्षण विद्युत के कारण मिट्टी जूतों में चिपक गयी हो। अभ्रक के छोटे कण तथा अन्य कण शीघ्र ही आकर्षित होते हैं।

गैसें: मिट्टी की भाँति चन्द्रमा पर भी गैसों में भी समानता पायी गई है। अब तक की खोज द्वारा चन्द्रमा की मिट्टी में आर्गन, हीलियम, जेनान गैसों की विद्यमानता का प्रमाण प्राप्त हो चुका है। इनको सूर्य के उन आणविक कणों द्वारा पहचाना गया है जो वायुमंडल में पाये जाते हैं। इनकी उपस्थिति से यह ज्ञात हो जाता है कि ये सूर्य द्वारा ही निर्मित होंगी। इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन टेक्सास में डाक्टर यूरी के द्वारा किया जा रहा है। इससे अनेक सूचनायें प्राप्त होने की सम्भावना है।

चन्द्रमा पर की मिट्टी में एक वनस्पतिशास्त्री डाक्टर चार्ल्स वाकिन शा ने पालक के बीज बोये। ये पालक के बीज कुछ ही दिनों में लगभग डेढ़ इंच उग आये। इन पौधों के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस मिट्टी में उर्वरा-शक्ति विद्यमान है। ये पौधे पृथ्वी की मिट्टी में उत्पन्न पालक के पौधों से अधिक मजबूत एवं बड़े पाये गये। इससे यह प्रतीत होता है कि की मिट्टी में वे समस्त तत्व विद्यमान हैं जो पृथ्वी पर की मिट्टी में पाये जाते हैं। वैज्ञानिकों ने बतलाया है कि इनमें ऐसे कोई तत्व नहीं हैं जो पौधों को हानि पहुँचा सकें। इनमें धातु तथा अधातु दोनों प्रकार के तत्वों की विद्यमानता है। यथा फासफोरस, कैलशियम, गन्धक, लोहा, मैगनीशियम, मैगनीज, जस्ता, ताँबा एवं टाइटेनियम इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि यह मिट्टी पृथ्वी की मिट्टी के समान ही है तथा उर्वरा शक्ति से युक्त है। सूक्ष्ममात्रिक तत्व बड़े महत्व के होते हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि बोरान, मालिब्डिनम आदि तत्व भी इनमें हैं। ये तत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फसलों पर गहरा प्रभाव डालते है।

स्पष्टतः दोनों मिट्टियों में केवल जल का अन्तर है। जल के अभाव में चन्द्रमा की उर्वरा शक्ति का क्या उपयोग हो सकता है यह एक बड़ी समस्या है। यदि चन्द्रमा पर जल प्राप्त हो जाय, जिसकी आशा कम ही है तो चन्द्रमा पर पर्याप्त मात्रा में कृषि की जा सकती है। परन्तु यह स्वयं में एक समस्या है। यदि किसी प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा पर जल ले जाया जा सके या वहीं पर जल उत्पन्न किया जा सके तो सम्भव है कि समस्या हल हो जाय। यदि एक बार भी ऐसा हो जाय तो सदैव के लिये रास्ता खुल जायगा क्योंकि पहली बार की वनस्पतियाँ ही वायुमण्डल की विषाक्त गैसों को लेकर प्राण वायु का संचार करेंगी। इससे यह भी अनुमान लगाया जाता है कि चन्द्रमा को अन्तरिक्ष के अन्य पिंडों के अध्ययन के लिये आदर्श प्रयोगशाला बनाया जा सकता है।

शिलायें: अन्तरिक्ष-यात्रियों ने चन्द्र-शिलाओं का वर्णन किया है। उनके अनुसार ये शिलायें चमकने वाली तथा फिसलने वाली हैं। नील आर्मस्ट्रांग ने अभ्रक तथा बसाल्ट पहचाना है। चमकने वाली तथा फिसलने वाली शिला अभ्रक के कारण हो सकती है। श्वेत अभ्रक अत्यंत द्युतिमय होता है परन्तु वह इन शिलाओं में नहीं पाया गया। यहाँ चन्द्रमा की चमक का कारण भी समझ में आता है। सम्भव है चन्द्र-द्युति इन शिलाओं पर के परावर्तित किरणों द्वारा हो। परावर्तन की क्रिया का आभास तो पृथ्वी पर भी किसी बड़े टीले या कठोर चट्टान के पास धूप में दोपहर में जाने पर होता है। वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा में शीशे का अंश प्राप्त किया है तथा अनुमान है यह लगभग ५० प्रतिशत तक हो सकता है। शीशे का खनिज द्युतिमय होता है। हो सकता है चन्द्र-द्युति का कारण यही हो।

उपर्युक्त दोनों शिलाओं की उत्पत्ति आग्नेय है। अभ्रक इनमें कम पाया जाता है। अभ्रक यदि बड़ा हो तो पेगमाटाइट शिला की कल्पना होती है परन्तु यह शिला भी वायुमण्डल के अभाव में असम्भव है। ताप तो है परन्तु इसके निर्माण में जल की आवश्यकता होती है तथा इस शिला में अन्य खनिजों के बड़े बड़े टुकड़े पाये जाते हैं। यदि ऐसा होता तो कुछ अन्य खनिज अवश्य पहचाने जाते। अभ्रक शिष्ट तथा नाइस शिलाओं में मिलता है परन्तु केवल ताप से इसका भी बनना असम्भव है। जलवायु के अभाव में कायान्तरण नहीं हो सकता जिससे यह शिला बनती है। दूसरी शिला पायी जा सकती है क्योंकि इसकी उत्पत्ति आग्नेय है परन्तु इस शिला के साथ अन्य शिलाओं का होना आवश्यक है।

जब शिलाओं का विस्तृत ज्ञान हो जायगा तो इसकी उत्पत्ति का भी ज्ञान आसानी से हो जायगा। इन शिलाओं के साथ धूल के कण भी पाये गये हैं। धूल शिलाओं के टूटे भाग हैं। इनके बनने की प्रक्रिया पर ध्यान देना है। इनका विदरण हो नहीं सकता क्योंकि वायुमंडल नहीं है एवं जल भी नहीं है। ताप-परिवर्तन से तथा खिंचाव से शिलायें टूट गई हों या न्यून गुरुत्वाकर्षण के कारण तीव्र फिसलन से शिलायें टूट गयीं हों।

गड्ढे एवं दरार : चन्द्र-धरातल पर अनेक छोटे बड़े गड्ढे तथा दरार पाये गये हैं। ये सब असमान हैं, कुछ बड़े कुछ छोटे, कुछ चिपटे, उभड़े एवं कुछ गोल हैं। इनकी निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया के लिये कई अनुमान हैं।

हो सकता है कि ये सब ज्वालामुखी द्वारा निर्मित हों परन्तु इस समय में कोई भी कार्यरत गह्वर नहीं दिखलाई पड़ रहा है। हो सकता है कि ये सब ज्वालामुखी समाप्तप्राय हों। ज्वालामुखी की क्रिया समाप्त होने पर प्रायः गह्वर बन जाया करते हैं अतः ये सब गड्ढे उन दिनों की याद दिलाते हैं जब वहाँ ज्वालामुखी कार्यरत था। चन्द्रमा बहुत पहले ठंडा हो चुका है। यदि व्यापक अध्ययन से यह पता चल जाय कि इनमें से एक भी आज भी तप्त है तो यह प्रक्रिया स्पष्ट हो जायगी। परन्तु सबका अध्ययन एक दुरूह कार्य है तथा दूरबीनों द्वारा लिये गये चित्रों में उद्गार की अवस्था नहीं दिखलाई पड़ती।

यदि चन्द्रमा के टूटने के समय की अवस्था नम रही हो तो उस समय गड्ढे बन सकते हैं। ये गड्ढे धूल में छिप सकते हैं। दूरबीन द्वारा चन्द्रमा के बहुत अन्दर के चित्र नहीं मिल पाते। अतः इन चित्रों के अभाव में इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

ताप-परिवर्तन के कारण भी गड्ढे बन सकते हैं तथा बिगड़ भी सकते हैं परन्तु ऐसे चित्रों के अभाव में कुछ कहना कठिन है।

आकाश में उल्का अनेक दिशाओं में फैली हैं। ऐसी अनेक उल्कायें पृथ्वी से टकराया करती हैं परन्तु पृथ्वी की कक्षा में वायुमंडल के कारण उनमें से अनेक जल जाती हैं। हम प्रायः रात्रि में टूटते तारों के रूप में इन उल्काओं को देखते हैं। तीव्र वेग से टकराने के कारण ये उल्कायें विशाल गह्वर का निर्माण करती हैं। हो सकता है चन्द्रमा पर के गड्ढों का कारण यही हो परन्तु ऐसी अवस्था में आज भी यह क्रिया होनी चाहिए।

पृष्ठ : चन्द्रमा का अत्यन्त पृष्ट कठोर है। ध्वज गाड़ते समय अन्तरिक्ष यात्रियों ने इसे अतिशय कठोर पाया। यह कठोरता शिलाओं के कारण है। पिछले विवेचन से स्पष्ट है कि आग्नेय शिलायें विद्यमान हैं जो कठोर हुआ करती हैं।

उपयोगी खनिज : चन्द्रमा पर अनेक खनिजों के पाये जाने की सम्भावना है परन्तु वहाँ स्वर्ण, चाँदी तथा प्लैटिनम का अभाव है। उनके अतिरिक्त अन्य अनेक बहुमूल्य तत्व पाये गये हैं। टाइटैनियम की विपुल राशि के प्राप्त होने की सम्भावना है। शीशा भी काफी मात्रा में मिल सकता है। विस्तृत अध्ययन से चन्द्र-शिलाओं धूल एवं मिट्टी के उपयोग की सम्भावनाओं पर प्रकाश पड़ेगा।

इस प्रकार चन्द्रमा वैज्ञानिकों के लिये एक समस्या है। इस बार की यात्रा से एवं कुछ शैल-खंडों के अध्ययन से कुछ तथ्य ज्ञात हुए हैं। निकट भविष्य में चन्द्रमा पार की जाने वाली यात्राओं से अन्य तथ्यों के उपलब्ध होने की आशा है।

● ●

लुप्तप्राय जन्तु—गेण्डा

● रामेश वेदी

पाँच हजार साल पहले मोहनजोदड़ो में गैंडा पूजा का पशु माना जाता था। सिन्धु घाटी की सभ्यता के जो लोग मोहनजोदड़ो में बसते थे उनमें विश्वास था कि यह उन्हें विपत्तियों से बचाने की सामर्थ्य प्रदान करता है। मिट्टी की चौकोर पट्टियों पर वे गैंड़े को अंकित करते थे। गण्डे-तावीज के रूप में वे इसे धारण करते थे।

भारत और नेपाल में यह मंगलकारी पशु समझा जाता रहा है। संस्कृत साहित्य में तथा आदिवासियों में इसके साथ अनेक प्रकार के विचित्र विश्वास जुड़े हुए देखे जाते हैं। ल्होटा नागा गेण्डे की हड्डी का एक टुकड़ा अपने खेतों के पास इस विश्वास से गाड़ देते हैं कि उनकी फसलें अच्छी उगेंगी।

लोक-कथाओं के अनुसार समर-विद्या के विशारद श्री कृष्ण ने भले ही इसे युद्ध के लिए उपयुक्त जानवर नहीं पाया परन्तु इतिहास और पुरातत्व साक्षी हैं कि युद्ध-लोलुप मनुष्य को अपने उदय के आदि-काल में रक्षा करने के उपायों में जिस मजबूत ढाल की आवश्यकता थी वह उसे गेण्डे की खाल से प्राप्त करता था। टाँगों के ऊपर चारों जोड़ों पर मोटी खाल की जो तहें होती हैं वे ढाल बनाने के लिए उपयुक्त होती हैं। एक गेण्डे की खाल से चार ढालें बन जाती हैं। तलवार की मूठों और बन्दूक भरने की छड़ों को वह इसी से बनाता था। जावा निवासियों के १४१६ ई० के एक चीनी वर्णन में बताया गया है कि इन लोगों के क्रिस के हत्थे सोने के या गेण्डे के सींग के बनाये जाते थे। मलयवासी गेण्डे को अलौकिक शक्ति का पुंज मानते हैं।

जातियाँ: संसार में गेण्डे की पाँच जातियाँ पाई जाती हैं—दो अफ्रीका में, और तीन एशिया में। आकार और डील-डौल में सबसे बड़ा अफ्रीकी सफेद गेण्डा है। तब भारतीय गेण्डे का नम्बर आता है और उसके बाद अफ्रीकी काले गेण्डे का; तत्पश्चात् जावा वाला और अन्त में सुमात्रा वाला।

जहाँ तक मनुष्य द्वारा संहार किये जाने का सवाल है उसने सभी जातियों का सफाया करने के लिए प्रयत्न किये हैं। प्राणिशास्त्रियों के सर्वेक्षण के अनुसार एशियाई जातियों को अपेक्षाकृत अधिक मारा गया है। इस समय पाई जाने वाली जातियों के गेण्डों की अनुमानित संख्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

विश्वास किया जाता है कि इस समय अफ्रीकी काले गेण्डे ग्यारह हजार और साढ़े तेरह हजार के बीच में हैं। इस गेण्डे के सामान्यतया दो सींग होते हैं, परन्तु अभिलेखों के अनुसार किसी-किसी के तीन सींग भी निकल आते हैं। सामान्य नियम यह है कि अगला सींग अधिक लम्बा होता है। आदिवासी इस प्रकार के गेण्डे को **बोरेली** कहते हैं। जिस गेण्डे के दोनों सींग बराबर हों या पिछला सींग बड़ा हो उस तरह के गेण्डे को **कीटोला** कहते हैं।

गेण्डे की विभिन्न जातियों में सबसे बड़ा अफ्रीका का सफेद गेण्डा है। कन्धे पर इसकी ऊँचाई कभी-कभी साढ़े छः फीट तक पहुँच जाती है, और लम्बाई बारह फीट तक। इसका उपरला ओंठ नोकदार न होकर चपटा होता है जिससे मुख चौरस दीखता है। काले गेण्डे के मुकाबले में इसका अगला सींग कहीं अधिक लम्बा होता है।

यह साढ़े पांच फीट ढाई इंच तक का नापा गया है। पिछला सांग कभी-कभी दो फीट तक बढ़ जाता है परन्तु सामान्यतया एक ठूंट से कुछ ही बड़ा होता है। सफेद गेण्डे की आदतें काले से भिन्न होती हैं। यह थूंथनी को आकाश में ऊँचा उठा कर चलता है जब कि काला नीचे धरती के पास रखता है।

सफ़ेद गेण्डा कभी भी विस्तृत क्षेत्र में नहीं पाया जाता रहा। चिड़ियाघरों में भी यह शायद ही कभी देखा गया हो। अजायबघरों में भी बहुत ही कम दीर्घाओं (गैलरियों) में इसके भुस भरे नमूने मिलेंगे। अनुमान है कि अफ्रीका में जीवित सफ़ेद गेण्डे लगभग ढाई हज़ार और साढ़े तीन हज़ार के बीच में होंगें

एशिया में पाई जाने वाली तीनों जातियों की संख्या कहीं कम है। भारतीय एक सींग वाले गेण्डे के बारे में अनुमान है कि इनकी कुल संख्या ६२५ से अधिक नहीं होगा जिनमें से नेपाल में राप्ती घाटी के दोनों ओर पाँच सौ वर्गमाल के क्षेत्र में लगभग १८५, बंगाल में ६५, और असम में ३७५ होंगे।

जावा का एक सींग वाली क्षुद्रतर जाति भारतीय गेण्डे के समान भारी गठन की नहीं होती यद्यपि कन्धे पर नापा जाय ता दोनों की ऊँचाई लगभग एक समान होगी। इसका सिर तुलना में छोटा होता है। इस जाति की मादा में सांग नहीं होता। नर का सींग भी बहुत बड़ा नहीं होता। लन्दन के "नेचुरल हिस्ट्री म्युजियम" में एक सींग साढ़े आठ इंच लम्बा रखा हुआ है। आधार में इसकी परिधि लगभग बीस इंच है। जावा का यह गेण्डा पश्चिमी जावा के उद्जोंग कूलोन आरक्षित वन में ही सीमित है। अनुमान है कि इनकी संख्या पच्चीस से पचास के बीच में होगी।

विश्वास किया जाता है कि एशियायिक या सुमात्रा के दो सींग वाले गेण्डों की कुल संख्या एक सौ सत्तर होगी। ये मुख्यतया वर्मा, मलय और सुमात्रा में पाये जाते हैं। गेण्डे की पांचों जातियों में यह सबसे छोटी जाति लघुतम गेंडक (Rhinoceros sumatrensis) है जिसकी कन्धे पर ऊँचाई चार से साढ़े चार फीट तक होती है। थूंथनी से पूंछ के सिरे तक यह आठ फीट लम्बा होता है। यह गेण्डा यद्यपि दो सींग वाला है परन्तु इसका अगला सींग छोटा होता है और पिछला नाममात्र को ही होता है। कुछ लेखकों ने अगले सींग की अधिकतम लम्बाई दो फीट साढ़े आठ इंच और पिछले की एक फुट पाँच इंच तक अभिलिखित की है। इसके शरीर पर गहरे भूरे लम्बे बाल उगे रहते हैं। कानों पर भी बालों की झालर होती है। बालों वाले कानों की एक और जाति भी पाई जाती है। किसी समय इसे सुमात्रा के गेण्डे का एक भेद माना जाता था परन्तु अब यह एक अलग जाति स्वीकार कर ली गई है। जनवरी १८६८ ई० में पकड़े गए एक गेण्डे को देख कर लन्दन की जुऔलोजिकल सोसायटी के मन्त्री डा० स्क्लैटर ने मूलतः इसका वर्णन किया था। यह प्राणी अन्ततः लन्दन भेजा गया था और इसे जुऔलोजिकल सोसायटी ने १२५० पौण्ड में खरीद लिया था। इसके कानों के ऊपर एक बालदार झालर थी। इसका शरीर लम्बे, बारीक, लाली लिए हुए भूरे रंग के बालों से ढका था। सुमात्रा के गेण्डे की तुलना में इसकी त्वचा अधिक चिकनी थी और अपेआकृत सूक्ष्म कणों वाली थी तिस पर इसकी पूंछ अधिक छोटी थी।

एशिया की तीनों जातियाँ कभी भारत में मिल जाती थीं। जावा का छोटा एक सींग वाला गेण्डा एक समय बंगाल में, विशेषतः सुन्दरबन में काफी मिलता था। परन्तु १९०० ई० के लगभग वह लुप्त हो गया। सुमात्रा का दो सींग वाला गेण्डा लगभग १९३५ ई० तक आसाम की मिजो पहाड़ियों में मिल जाता था।

निवास स्थान : इस समय भारतीय गेण्डे का निवास यद्यपि बहुत सीमित हो गया है परन्तु पुरातत्वीय तथा ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि एक जमाने में यह दूर-दूर तक फैल हुआ था और भारत के बहुत से स्थानों में पाया जाता था। यहाँ तक कि दक्षिण भारत में भी मिल जाता था। इस उपमहाद्वीप में वनों के कटने और जलवायु के बदलने के साथ-साथ गेण्डे के निवास-स्थान भी बदलते चले गए।

पंजाब की राजधानी चण्डीगढ़ के उत्तर में पाँच मील पर पिंजौर नामक एक स्थान है। यहाँ की खुदाई में चट्टानों के अन्दर पुराने प्राणियों के अश्मीभूत अवशेष मिले हैं। उनसे मालूम होता है कि दस लाख साल पहले यहाँ गेण्डे विचरते थे।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त सामग्री में गेण्डा जिस बहुलता और यथार्थता के साथ अंकित किया गया है उससे पता चलता है कि यह वहाँ भलीभाँति जाना-पहिचाना प्राणी था। सिन्धु घाटी की सभ्यता (लगभग ५००० साल पहले) के जमाने में सिन्ध और शायद पश्चिम में और आगे भी यह बहुत सामान्य रूप से पाया जाने वाला पशु था।

अपने संस्मरणों में बाबर ने लिखा है कि सिन्धु के पास झाड़ियों से भरी धरती पर उसने १५१९ ई० में गेण्डे का शिकार किया था। सोलहवीं शताब्दी में भी गेण्डा पेशावर में मिल जाता था। अबुल फ़जल ने गेण्डे के शरीर की बनावट का तथा इसकी आदतों का सही रिकार्ड किया है। बादशाह अकबर ने घोड़े पर बैठ कर इस अजीब जानवर का पीछा किया होगा। अकबर के जीवन वृत्तान्त में अबुल फ़जल लिखते हैं कि घोड़े की पीठ पर सवार आदमी के ऊपर भी यह हमला कर देता है। इसकी खाल को तीर नहीं बींध सकता। यह इतनी मजबूत होती हैं कि इससे छाती की रक्षा के लिए कवच, ढाल तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं[1]।

कहा जाता है कि अकबर के समय गेण्डा देहली के आसपास मिल जाता था। आक्रमण के दौरान तैमूर ने कश्मीर के पास १३९८ ई० में कई गेण्डों का शिकार किया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक यह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र और रुहेलखण्ड में तथा बंगाल में गंगा की घाटी में पाया जाता था। सौ बरस नहीं बीते जब कलकत्ते की बस्ती अलीपुर में गेण्डे घूमा करते थे। १३८७ ई० में शिवालक और दून घाटी में आखेट के लिए जब फ़िरोज-शाह आया तो उत्तराखण्ड के इस भाग, हरिद्वार और देहरादून के प्रदेश में यह जन्तु मिल जाता था।

१. आईन-इ-अकबरी, १९४८, जिल्द ३, पृष्ठ १३४।

हिम युग का प्राणी

अन्तिम हिम युग (लगभग १४००० ईस्वी पूर्व से ११००० ईस्वी पूर्व) की जो गुफाएँ फ्रान्स और स्पेन में मिली हैं उनमें गेण्डा चित्रित है। दूसरे पशुओं के चित्रों की तुलना में यहाँ गेण्डे के चित्र कम ही हैं। श्री ऐब्बे एच० बुइल ने अपनी पुस्तक 'गुफा कला की चार सौ शताब्दियों' में दो चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनमें से एक में तो वह युद्ध की मुद्रा में दिखाया गया है। शरीर को कुछ समेट कर और गरदन को सिकुड़ा कर जैसे वह दुश्मन पर हमला करने को तैयार हो। दोनों चित्रों में इस पशु के दो सींग हैं जिनमें अगला तो खासा लम्बा और पिछला बहुत छोटा दिखलाया गया है[2]।

प्राणिशास्त्र के पण्डितों के अनुसार इसे रहाइनोसिरोस टाइकोरिनस (Rhinoceros Ticorinus) कहते हैं।

विविध भाषाओं में नाम

चरक और सुश्रुत ने गेण्डे के लिए खड्ग और खड्गी शब्दों का प्रयोग किया है। खड्ग का शाब्दिक अर्थ तलवार है। चूंकि मुख के ऊपर नाक पर उगे हुए सींग की आकृति तलवार के आकार सदृश होती है इसलिए इसके ये नाम पड़े हैं। 'हलायुध कोश' में संस्कृत में गेण्डे के ग्यारह नाम संगृहीत हैं :-खड्ग, खड्ग मृग (तलवार वाला पशु,) तुंगमुख (जिसके मुख के ऊपर ऊंचा उभार है), क्रोडीमुख, वार्ध्रीणस (जिसकी नाक उठी हुई है), बली (बलवान्), बज्रवर्मा (कठोर चमड़ी वाला), एकचर (अकेला घूमने वाला), गण्ड, गण्डक, गणोत्साह। लोक में प्रचलित गेण्डा शब्द संस्कृत के गण्ड और गण्डक शब्दों से निकले हैं।

[शेष पृष्ट ८ पर]

२. फोर हण्ड्रेड सेंचुरीज ग्राफ़ केव आर्ट, ऐब्बे एच० बुइल, पृष्ठ ८२, चित्र संख्या ४४ और पृष्ठ १०५, चित्र संख्या ७०

जीव संदीप्ति

● डा० शिव प्रकाश

समुद्र, मछली, अथवा लकड़ी में प्रायः जो प्रकाश दिखाई पड़ता है उसका कारण जीवित जीवाणुओं की उपस्थिति होती है। इन जीवाणुओं द्वारा उत्सर्जित प्रकाश को **जीव संदीप्ति** (Bioluminiscence) कहते हैं।

जानवरों तथा वनस्पतियों दोनों में हो संदीप्त जातियाँ पाई जाती हैं। बनस्पतियों में जीवाणु तथा फफूंदी सम्मिलित हैं। ये जीवाणु समुद्री जल में ही पाये जाते हैं, ताजे पानी में नहीं। संदीप्त जीवाणुओं को कृत्रिम रूप से भी उत्पन्न किया जा सकता है। सोडियम क्लोराइड के रूप में उपस्थित लवण का ३-५% जलीय विलयन इसके लिये उत्तम अवस्था है। प्रकाश उत्पन्न करने वाले अन्य जीवों तथा जीवाणुओं और फफूंदी में इस प्रकार भेद किया जा सकता है कि इनके द्वारा उत्पन्न प्रकाश समान तीव्रता, दिन व रात दोनों में चमकने वाला तथा किसी प्रकार की उत्तेजना पर निर्भर नहीं करता जबकि अन्य जीव तभी प्रकाश उत्पन्न करते हैं जब उत्तेजना की अवस्था हो या उन्हें छेड़ा जाय।

बरसात के दिनों में नम स्थानों अथवा नदी के किनारे आपने जुगुनुओं को चमकते देखा होगा। जुगुनू की यह चमक जीव संदीप्ति के कारण ही होती है। इस प्रकार उत्सर्जित प्रकाश जलते हुये दीपक, विद्युत बल्ब अथवा मोमबत्ती से निकले हुये प्रकाश से इस अर्थ में भिन्न होता है कि इसमें उष्णता नहीं होती। इसी कारण से जीव संदीप्ति को 'शीतल प्रकाश' कहा जाता है। इसमें जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसका ताप ०.००१० सें० के लगभग होता है। यदि अधिक उष्मता होती तो जीव तथा वनस्पति जलकर राख हो जाते। फिर भी उत्पन्न प्रकाश साधारण प्रकार की ही भाँति फोटोग्राफ़ी की प्लेट को प्रभावित कर सकता है तथा अभिक्रिया को प्रेरित कर सकता है। इस संदीप्ति में परावैंगनी अथवा अवरक्त क्षेत्र सम्मिलित नहीं होता। यह संदीप्ति रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप तो उत्पन्न होती है परन्तु रसायनों का आपस में इस प्रकार संयोजन होता है कि जो अभिक्रिया-ऊष्मा होती है वह अत्यन्त न्यून मात्रा में होती है।

जीव संदीप्ति हज़ारों वर्ष पूर्व से ज्ञात है पर इसके रासायनिक आधार का ज्ञान १८८७ ई० तक नहीं हो सका। राफेल डूब्वा फ्रांसीसी रसायनज्ञ ने इस प्रकार चमकने वाले पदार्थ को लूसीफ़ेरीन नाम दिया जिसका अर्थ होता है 'प्रकाश धारक'। डूब्वा ने एक क्लान से चमकने वाला तरल पदार्थ परख नली में रखा। थोड़ी देर में उसकी चमक समाप्त हो गई। जब इसमें एक अन्य क्लान से वही तरल निकाल कर मिलाया गया तो शीघ्र ही चमक वापस आगई। प्रयोगों के आधार उन्होंने यह देखा कि लूसीफेरीन तब तक नहीं चमकता जब तक कि उसमें अन्य 'अज्ञात' पदार्थ उपस्थित नहीं होता। इस अज्ञात पदार्थ का नाम उन्होंने **लूसीफ़ेरेस** रखा। एक छोटे से सामुद्रिक जीव साइप्रिडिनिया में लूसीफ़ेरीन तथा लूसीफेरेस दोनों पदार्थ उसके शरीर के अलग-अलग भागों में विद्यमान रहते हैं। इस जीव के शरीर से इन तरलों को पृथक करके उनका रासायनिक विश्लेषण करके हार्वे ने यह प्रदर्शित किया कि इनके संगठन में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सिजन तत्व उपस्थित हैं जैसा कि सभी जीवित कोशिकाओं में पाया जाता है। हार्वे तथा अन्य वैज्ञानिकों ने जो जीव-संदीप्ति पर कार्य कर रहे थे, अपने सतत्, प्रयोगों द्वारा यह पता चलाया कि लूसीफेरीन जल अथवा वायु से ऑक्सिजन लेकर आक्सीकृत होता है तभी प्रकाश उत्पन्न होता है। यह रासायनिक अभिक्रिया तब तक नहीं होती जब तक लूसीफेरेस भी उपस्थित न हो।

समुद्र की सामान्य स्फुरदीप्ति **प्रोरोजून नोरिलुका** के कारण होती है। गहरे पानी की कई मछलियों में संदीप्त अंग पाये जाते हैं। लूसीफेरीन वर्णक पर लूसीफेरेस एंजाइम की अभिक्रिया द्वारा एक माध्य यौगिक बनता है जो ऑक्सिजन की उपस्थिति में रासायनिक संदीप्त पदार्थ बनाता है। जीवाणुक लूसीफेरीन रिवोफ्लेवीन फास्फेट ($FMNH_2$) होता है। आंशिक रूप से शुद्ध किया गया लूसीफेरेस **एक्रोमोबैक्टर फिशराई** से प्राप्त) $FMNH_2$, ऑक्सिजन तथा लम्बी शृंखला के वसीय ऐल्डीहाइड डोडेकिल एल्डीहाइड, पामिटाल्डीहाइड) की उपस्थिति में प्रकाश उत्सर्जन करने वाली अभिक्रिया को उत्प्रेरित करता है। प्रत्यक्ष रूप से यह संदीप्ति एंजाइम उत्प्रेरित इलेक्ट्रान स्थानान्तरण की क्रिया होती है। ऐल्डीहाइड का कार्य स्पष्ट नहीं है परन्तु यह यौगिक प्रकाश उत्पन्न होने वाली क्रिया में प्रयुक्त हो जाता है और ऐसा संभवतः वातजीवी आक्सीकरण द्वारा उत्पन्न हाइड्रोजन-परॉक्साइड के निर्माण के कारण होता है। जुगुनू में पाये जाने वाले लूसीफेरीन की संरचना ज्ञात नहीं है पर इसे फ्लेवीन से सम्बन्धित किया जा सकता है। जुगुनू से प्राप्त लूसीफेरेस क्रिस्टलीय होता है। अधिकतम संदीप्त के लिये **मैग्नीशियम** तथा एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट (ATP) का होना आवश्यक है। ऐसी संभावना हो सकती है कि अवकृत लूसीफेरीन ATP से अभिकृत हो कर एडिनोसीन मानो फॉस्फेट (AMP) बनाता हो जो ऑक्सिजन द्वारा ऑक्सीकृत हो कर रासयानिकतः संदीप्त हो जाता है।

एयर्थ, रहोड तथा मैक्लारी ने १९५८ ई० में जुगुनू द्वारा प्राप्त लूसीफेरीन के क्रिस्टलीय पदार्थ का अध्ययन करके निम्नलिखित क्रियाविधि समझाई।

१. लूसीफेरीन (LH_2) एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट से अभिक्रिया करके AMP लूसीफेरीन तथा (LH_2-AMP) तथा पाइरोफॉस्फेट (PP) बनाता है।

२. LH_2-AMP ऑक्सिजन की उपस्थिति में प्रकाश देता है और एडिनिउआक्सी लूसीफेरीन (L-AMP) उत्पन्न करता है। L-AMP विघटित होकर L तथा AMP बनाता है।

३. L प्रकाश अभिक्रिया का शक्तिशाली अवरोधक है और एक बार जब यह ATP तथा लूसीफेरेस से अभिकृत हो चुकता है तो लूसीफेरेस में LH_2 के आक्सीकरण की क्षमता नहीं रह जाती।

४. सह एंजाइम-A (CoA) एंजाइम तल से L को दूर करके प्रकाश उत्सर्जन में अभिवृद्धि करता है। L-CoA सीस्टाइन, ग्लूटाथायोन अथवा हाइड्रॉक्सिल एमीन से अभिकृत हो कर संगत ऑक्सीलूसीफेरिल बनाता है।

५. L-CoA लूसीफेरेस की उपस्थिति में AMP द्वारा विभक्त हो सकता है और जब PP आधिक्य में हो तो ATP तथा मुक्त L का निर्माण होता है। ●

[पृष्ठ ६ का शेषांश]

जीव-जन्तुओं का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक गण्डे को रिहनोसिरोज-युनिकौर्निस (Rhinoceros unicornis Linn) कहते हैं। रिहनोसिरस लैटिन भाषा का शब्द है जो ग्रीक में रहनोकेरास रिहस (Rhis) या रिहनोस (Rhino-Keros) का अर्थ नाक है और केरोस का अर्थ सींग। रिहनोसिरोस युनिकौर्निस का अर्थ हुआ ऐसा प्राणी जिसके नाम के ऊपर एक सींग होता है। आधुनिक प्राणिशास्त्र की पुरानी पुस्तकों में भारतीय गण्डे के लिए ये दो नाम भी मिलते हैं—रहानोसिरोस इण्डिकुस (Rhinoceros indicus cuv) और रहानोसिरोस स्टेनोकेफेलस (Rhinoceros stenocephalus)।

(क्रमशः)

द्रव्यमान

• श्यामलाल काकानी

"किसी भी पदार्थ के द्रव्यमान का ज्ञान, हम उससे सम्बन्धित प्रभावों से कर सकते हैं। लेकिन द्रव्यमान क्या है? इसकी विशुद्ध व्याख्या या परिभाषा करना एक विकट समस्या है। वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि शायद द्रव्यमान की परिभाषा, भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में, सापेक्षता के सिद्धन्त के प्रतिपादन के पश्चात् एक और नई क्रान्ति लाएगी।"

द्रव्यमान क्या है? इसकी विशुद्ध परिभाषा अभी तक संभव नहीं है। किसी भी वस्तु के द्रव्यमान का ज्ञान, उस पर सम्बन्धित प्रभावों से ही प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु के भारीपन और हल्केपन का अनुमान हम उसको हाथ में उठाकर अर्थात् उस स्थान पर वस्तु पर, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के माप से बता सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वस्तु का द्रव्यमान उस स्थान पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-बल का परिणाम है। अगर वही वस्तु पृथ्वी की सतह पर रखी हुयी है, और हम उसे जड़त्व अवस्था से गतिमान अवस्था में लाना चाहते हैं, तो हम अनुभव करेंगे कि वस्तु इसका प्रतिरोध करती है (गति का पहला नियम)। उपर्युक्त वर्णित वस्तु की दो भिन्न अवस्थाओं से यह स्पष्ट है कि वस्तु का द्रव्यमान दोनों अवस्थाओं में भिन्न गुणों पर निर्भर करता है। प्रथम दशा में वस्तु का द्रव्यमान, गुरुत्वाकर्षण बल पर निर्भर करता है, और इसको गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान (Gravitational Mass कहते हैं, और M_g से प्रदर्शित करते हैं। दूसरी दशा में द्रव्यमान जड़त्व गुण पर निर्भर करता है। इसको अवस्थित्व द्रव्यमान (Inertial Mass कहते हैं और सधारणतया M_i से प्रदर्शित करते है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि वस्तु के गुरुत्वाकर्षण और अवस्थित्व द्रव्यमानों का आंकिक मान बराबर होता है [टिप्पणी १ देखो]। किन्तु यदि हम जड़त्व और गुरुत्वाकर्षण के स्थान पर अन्य प्रभावों-जैसे जड़त्व और ताप ग्राहिता इत्यादि-को आधार मान कर वस्तु का द्रव्यमान ज्ञात करें तो आंकिक परिणाम सदैव भिन्न प्राप्त होंगे।

विभिन्न वैज्ञानिकों ने द्रव्यमान की भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का संक्षित विवरण निम्न प्रकार है:—

1. अवस्थित्व द्रव्यमान

पदार्थ का वह गुण, जिससे वह यथास्थिति में रहने का प्रयास करता है, जड़त्व कहलाता है। इस गुण पर आधारित द्रव्यमान को अवस्थित्व द्रव्यमान कहते हैं। चिरसम्मत यांत्रिकी (Classical Mechanics) के अनुसार अवस्थित्व द्रव्यमान के दो विशेष गुण होते हैं:

(अ) अवस्थित्व द्रव्यमान संयोज्य राशि है। अर्थात् दो वस्तुओं को मिलाने से उनका कुल द्रव्यमान, दोनों के पृथक पृथक द्रव्यमानों के योग के बराबर होगा: $M = m_1 + m_2$

(ब) जब कोई वस्तु एक अवस्थितत्व प्रणाली से दूसरी अवस्थितत्व प्रणाली में जायेगी तो उसके द्रव्यमान में कोई परिवर्तन नहीं होगा। दूसरे शब्दों में द्रव्यमान पर वस्तु के वेग या गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

2 सक्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान

कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि एक पदार्थ, दूसरे पदार्थों में गुरुत्वाकर्षण प्रेरित करता है। उनके अनुसार इसी कारण सूर्य के चारों ओर निश्चित कक्षों में ग्रह चक्कर

लगाते हैं, और वस्तुओं को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है। इस गुण पर अधारित वस्तु के द्रव्यमान को सक्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

3 निष्क्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान

कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि पदार्थ गुरुत्वाकर्षण खिचाव का सुग्राही होता है। उनके अनुसार पृथ्वी और अन्य ग्रह, सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल के सुग्राही होने के कारण ही इसके चारों ओर निश्चित कक्षों में घूमते हैं। इस प्रकार के द्रव्यमान को निष्क्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

4 निरपेक्ष गतिक द्रव्यमान

कुछ वर्षों पूर्व प्रसिद्ध कैनाडियन भौतिक शास्त्री कम्फर (Kaempffer) ने गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान के सम्बन्ध में संभावना प्रकट की। उन्होंने इसे निरपेक्ष गतिक द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

5 ऋणात्मक द्रव्यमान

बुध ग्रह के कक्ष में होने वाले असंभावित परिवर्तनों का संतोषजनक वर्णन करने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम को सामान्यीकृत बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में उन्होंने ऋणात्मक द्रव्यमान या प्रति-द्रव्यमान की संभावनाएँ व्यक्त की हैं। वैसे प्रति इलेक्ट्रान, प्रति न्यूट्रान और प्रति प्रोटॉन की खोजों से यह प्रतीत होता है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रति या ऋणात्मक द्रव्यमान की उपस्थिति संभव है।

6 वेनान्त और मेक की परिभाषाएँ

जर्मन वैज्ञानिक वेनान्त के अनुसार किसी भी वस्तु का द्रव्यमान उसके वेग पर निर्भर करता है। दो वस्तुओं के द्रव्यमान उस समय बराबर होंगे, जब उनमें सीधी टक्कर के पश्चात् वेग वृद्धि भी बराबर हो।

वैज्ञानिक मेक के अनुसार दो वस्तुओं के द्रव्यमानों का अनुपात उनमें परस्पर प्रेरित त्वरणों के विपरीत एवं ऋणात्मक अनुपातों के बराबर होगा। अर्थात्

$$\frac{M_1}{M_2} = -\frac{f_2}{f_1}$$

जबकि M_1 और M_2 क्रमशः दोनों वस्तुओं के द्रव्यमान और f_1 और f_2 क्रमशः उनमें उत्पन्न होने वाले त्वरणों को प्रदर्शित करते हैं।

7 स्वयं तथ्य मूलक परिभाषा

सन् १९५७ में वैज्ञानिक हर्मीज ने द्रव्यमान की नई परिभाषा की है, जो स्वयं तथ्य मूलकों (Set axioms) पर आधारित है।

8 विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त और द्रव्यमान

आइन्स्टीन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का द्रव्यमान उसके वेग पर निर्भर करता है, और वस्तु की विराम अवस्था में उसके द्रव्यमान को विराम द्रव्यमान कहते है। आइन्स्टीन के अनुसार वस्तु की गतिमान और विराम अवस्थाओं में निम्नांकित संबंध होता है:-

$$M = \frac{m}{\sqrt{\left(1-\frac{V^2}{C^2}\right)}}$$

जबकि M = गतिमान अवस्था में वस्तु का द्रव्यमान
m = वस्तु का विराम द्रव्यमान
V = वस्तु का वेग
C = प्रकाश का वेग

9 विद्युत चुम्बकीय द्रव्यमान

वैज्ञानिक प्वांकारे ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वस्तु का द्रव्यमान उसके विद्युत चुम्बकीय गुणों के कारण होता है। लेकिन प्वांकारे इसको सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं बना सके अतः वैज्ञानिकों ने इसको विशेष महत्व नहीं दिया।

10 द्रव्यमान की ऊर्जा पर आधारित परिभाषा

आइन्स्टीन के प्रसिद्ध सूत्र $E = Mc^2$ [ऊर्जा = द्रव्यमान × (प्रकाश का वेग)^2] से यह स्पष्ट है कि वस्तु का द्रव्यमान, उसकी ऊर्जा पर निर्भर करता है। इस सूत्र की सत्यता भी प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुकी है।

11 सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त और द्रव्यमान

समान्य सापेक्षता सिद्धान्त में वस्तु का द्रव्यमान, समाकलन अचर के रूप में प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के

अनुसार किसी भी ग्रह का, किसी भारी पिंड के चारों ओर घूमने (निश्चित कक्ष में) का अवकल समीकरण

$$\frac{d^2U}{d\theta^2}+U=\frac{a}{h^2U^2}+3a$$ होता है।

जबकि $U=\frac{1}{\gamma}$

$\gamma\rightarrow$अर्द्धव्यास दिष्ट राशि (Radius vector)

और $a=MU^2$ जहाँ M वस्तु का द्रव्यमान है।

आइन्स्टीन के क्षेत्री-समीकरणों में घनत्व की विभाओं को लेकर यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि एक ग्राम द्रव्यमान, $2{\cdot}476\times10^{-39}$ सेकन्ड समय के बराबर होता है।

विश्लेषण

कुछ ऐसे सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन हुआ, जिनमें वस्तु के द्रव्यमानों को सभी दिशाओं में बराबर और कुछ सिद्धान्तों में भिन्न भिन्न दिशाओं में अलग अलग माना गया है। अगर वैज्ञानिक मेंक का सिद्धान्त सही माना जाय तो पदार्थ का अवस्थित्व द्रव्यमान, उसमें अन्तर्निहित गुणों के कारण नहीं, बल्कि कुछ अन्य कारणों से होना चाहिए। आइन्स्टीन ने भी इस सिद्धान्त को अपने सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त में समाविष्ट करने का प्रयास किया था, लेकिन वैज्ञानिकों ने इसका समर्थन नहीं किया।

क्षेत्रीय समीकरणों में द्रव्यमान के बारे में दो वैकल्पिक कल्पनाएँ की हैं। प्रथम कल्पना के अनुसार द्रव्यमान को स्थिति का फलन एंव सभी दिशाओं में समान माना गया है। इसको द्रव्यमान का आदर्श क्षेत्र सिद्धान्त (Scalar field concept of mass) कहते हैं।

दूसरी कल्पना में इसको स्थिति का फलन लेकिन भिन्न भिन्न दिशाओं में अलग माना गया है। इसको द्रव्यमान का टेन्सर क्षेत्र या दिष्ट राशि क्षेत्र सिद्धान्त कहते हैं। लेकिन इन कल्पनाओं और व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त में आपस में ही विरोधाभास है।

द्रव्यमान की विभिन्न व्याख्याएँ, द्रव्यमान की विशुद्ध परिभाषा को जो इसके भौतिक महत्व को प्रकट करे, देने में असमर्थ है। द्रव्यमान की विशुद्ध भौतिक परिभाषा देना आज वैज्ञानिकों के समक्ष विकट समस्या है। शायद इस समस्या के समाधान से भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में एक बार फिर अभूतपूर्व क्रांति आ सकती है। इस पर अधिक प्रकाश तो आने वाला समय ही डाल सकेगा।

टिप्पणी—अगर किसी वस्तु का पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में, द्रव्यमान m_g और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान M_g और वस्तु की पृथ्वी के केन्द्र से दूरी R हो तो, न्यूटन के प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार वस्तु और पृथ्वी के बीच गुरुत्वाकर्षण बल

$$F=G\frac{M_g m_g}{R^2}$$ होगा

अगर वस्तु का अवस्थित्व द्रव्यमान m_1 हो तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्य क्षेत्र में, वस्तु का त्वरण यांत्रिकी के द्वितीय नियम के अनुसार

$$g=\frac{GM_g}{R^2}\cdot\frac{m_g}{m_1}$$ होगा।

इस समीकरण में $\frac{GM_g}{R^2}$ राशि, पृथ्वी सतह पर सभी वस्तुओं के लिए समान होगी जबकि राशि $\frac{m_g}{m_1}$ वस्तुओं की बनावट और प्रकृति पर निर्भर करेगी। लेकिन प्रयोगों से यह देखा जा सकता है कि सभी वस्तुएँ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में एक ही त्वरण ($g=9.81m/sec^2$ app.) से गिरती हैं। अतः इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुरुत्वाकर्षण और अवस्थित्व द्रव्यमानों का अनुपात सभी वस्तुओं के लिए एक ही होगा, और यह उसके आकार और प्रकृति पर किसी भी प्रकार से निर्भर नहीं करेगा।

अतः किसी भी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान पूर्णरूप से उसके अवस्थित्व द्रव्यमान से ज्ञात किया जाता है। इसलिए दोनों बराबर होंगे अगर नापने की इकाइयाँ ठीक हों। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण बल, वस्तुओं की जड़त्व की अवस्थाओं पर ही निर्भर करता है।

● ●

उदयपुर कृषि विश्वविद्यालय

● संकलित

इतिहासः इस विश्वविद्यालय की स्थापना १९६२ में हुई थी और इतने स्वल्प काल में ही राज्य को भारत का अन्नोत्पादक क्षेत्र बनाने के निमित्त मार्गदर्शक कार्य किया है। अमेरिका के लैण्ड ग्रान्ट (भूमि अनुदान) कालेजों के नमूने पर उदयपुर विश्वविद्यालय की स्थापना उस समय के ठीक १०० वर्ष बाद हुई थी जब प्रेसिडेण्ट अब्राहम लिंकन ने 'मौरिल एक्ट' को जुलाई १८६२ में स्वीकृति देकर अमेरिका में लैंड ग्रान्ट कालेजों की अनुमति दी थी।

गतिविधियाँः उदयपुर विश्वविद्यालय, अपने समकक्ष अमेरिकी विश्वविद्यालयों की तरह, अपनी गति-विधियाँ अध्यापन तक ही सीमित नहीं रखता। वहाँ अनुसन्धान और ज्ञान-विस्तार के कार्य भी किये जाते हैं। प्रो० नाग द्वारा तैयार किया जाने वाला मांस-विधायन का कारखाना अनुसन्धान और ज्ञानविस्तार के कार्यों का उदाहरण है।

उदयपुर विश्वविद्यालय का श्रीगणेश राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के रुप में हुआ था और तब उसके अन्तर्गत ३ कालेज थे: कृषि कालेज-जिसकी शाखाएं जोबनेर और उदयपुर में थीं; पशु-चिकित्सा कालेज बीकानेर; तथा कृषि-इंजिनियरिंग एवं तकनीकी विद्या कालेज, उदयपुर। एक वर्ष बाद विश्वविद्यालय का नाम बदल गया और उसका अधिकार-क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। उदयपुर विश्वविद्यालय होकर वह विविध विषयों के अध्यापन की संस्था के रुप में परिणत हो गया तथा उसमें उदयपुर नगर की म्युनिसिपल सीमाओं के अन्तर्गत अन्य सभी कालेज समाविष्ट हो गये। उसके पाठ्यविषयों में विज्ञानों तथा साहित्य व समान्य शिक्षा के सभी विषयों की शिक्षा आ गई। अब विश्वविद्यालय के ६ घटक कालेज हैं और ११ सम्बद्ध कालेज हैं।

अमेरिकी सरकार अमेरिका की एक अन्यतम प्रख्यात लैण्ड ग्रान्ट संस्थाओहायो स्टेट विश्वविद्यालय के माध्यम से उदयपुर विश्वविद्यालय की सहायता देती रही है।

यद्यपि एक ऐसी शिक्षण संस्था के जीवन में ७ वर्ष बहुत कम समय है, जिसने पूर्णतः नये सिरे से कार्य प्रारम्भ किया हो उदयपुर विश्वविद्यालय ने अधिक उपज देने वाले अनाज पैदा करने, आलू और फलों का उत्पादन करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है। गेहूँ को मण्डियों में भेजे जाने और किसानों द्वारा खेतीवाड़ी सम्बन्धी उपकरणों का प्रयोग किये जाने के सम्बन्ध में भी उसने प्रारम्भिक कार्य किया है।

अनुसन्धानकेन्द्रः उदयपुर के बाहर लगभग २३ मील दूर वल्लभ नगर के स्थान पर एक अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। यह केन्द्र एक हजार एकड़ भूमि में स्थित है और तेजी के साथ देश में एक महत्वपूर्ण अनुसन्धान केन्द्र बनता जा रहा है। एक विस्तृत अनुसन्धान कार्य के अन्तर्गत मक्का की किस्मों में सुधार किया जा रहा है। मक्का की एक ऐसी नई किस्म का विकास किया जा रहा है जो राजस्थान के लिये उपयुक्त होगी। स्थानीय मक्का बोने से भी अच्छी उपज होती है। 'मलान' नामक किस्म को बोने से दोगली किस्मों के बराबर उपज होती है।

अंगूर की फसलों का भी राजस्थान में उज्ज्वल भविष्य है। हाल में अंगूर की फसल को हानि पहुँचाने वाले एक नये कीट का पता लगाये जाने के बावजूद राजस्थान विश्वविद्यालय में अंगूर के सम्बन्ध में अनुसन्धान जारी है। विश्वविद्यालय के परीक्षण केन्द्र ने खाने के काम में लाने तथा दाख बनाने के लिये लगभग ३०० देशी तथा विदेशी किस्में एकत्र की हैं।

राजस्थान के कृषि-वैज्ञानिक तथा राज्य के अधिकारियों का यह विश्वास है कि राजस्थान में अंगूर की अच्छी फसलें उत्पन्न होने की बड़ी सम्भावना है। इजरायल का दौरा करने के पश्चात् वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं। वहाँ उन्होंने यह देखा है कि वहाँ की जलवायु तथा भूमि आदि राजस्थान से मिलती-जुलती है।

मुर्गी पालन: राजस्थान में मुर्गी पालन व्यवसाय को ठोस आधार पर स्थापित करने में उदयपुर विश्वविद्यालय को उल्लेखनीय सफलता मिली है। एक पृथक विषय के रूप में मुर्गी-पालन सम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भ की गयी थी और इस विषय में पशुओं की चिकित्सा और पशुपालन के सम्बन्ध में स्नातकीय उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। ज्ञान-विस्तार कार्य से मुर्गी पालन क्षेत्र बनाने में सहायता मिली है। इसके परिणामस्वरूप राजस्थान से दिल्ली, आगरा, अहमदाबाद, कांडला और अन्य शहरों को उन्हें भेजा जाता है।

परीक्षण केन्द्र के अनुसंधान निदेशक डा० वी० के० श्रीवास्तव ने कहा कि हम मुर्गियों की एक नई देशी नस्ल का विकास कर रहे हैं और इसके लिए हम जिन नस्लों का विकास कर चुके हैं उन्हीं को प्रसंकरित कर रहे हैं।

दुग्धसम्भरण योजना: विश्वविद्यालय द्वारा की गई एक सबसे प्रसिद्ध सेवा उसकी दुग्धसम्भरण योजना है। इस योजना ने नगर के लोगों को काफी प्रभावित किया है। ओहायो विश्वविद्यालय से दान में मिले ८१,००० डालर की कीमत के डेरी उपकरणों तथा राज्य सरकार से मिले ८,००,००० रुपयों की बदौलत यह दुग्धसंभरण योजना १९६४ से चल रही है। उदयपुर विश्वविद्यालय की प्रशिक्षण और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही यह योजना इस क्षेत्र के डेरी उद्योग की अनेकानेक समस्याओं का समाधान भी कर रही है। इस योजना से उदयपुर, भीलवाडा, चित्तौरगढ़ और पाली जिले में डेरी उद्योग का विकास हुआ है। इन क्षेत्रों से लगभग ४,००० लिटर दूध प्रतिदिन एकत्र किया जाता है। यह योजना इतनी सफल हुई है कि उससे द्वारा की जा रही दुग्ध और दुग्ध-पदार्थों की सप्लाई के अन्तर्गत उदयपुर के आसपास के नगर भी शामिल कर लिये जायेंगे।

● ●

जीवन में रंगों का महत्व

चाहे अस्पताल हो, चाहे दूकान, चाहे हवाई जहाज के भीतर हो या होटल में, रंगों का प्रभाव पड़ ही जाता है। भूरे तथा पीले रंगों से मिचली आती है जबकि हरे तथा नीले रंग सुख पहुँचाने वाले होते हैं। हरे रंग से सोचने की प्रवृत्ति उठती है जब कि लाल रंग से नवीन विचार उठते हैं। पीले रंग से बीमारी शीघ्र बढ़ जाती है। यह कुपच को बढ़ाता है। काले रंग से निराशा उत्पन्न होती है। नीले और हरे रंगों की अपेक्षा पीले रंग में लाल बैंजनी चित्तियाँ भूख को बढ़ाती हैं। पीला रंग सन्यासियों के लिये उत्तम है। अतः चाहे खाना खाते समय हो या खरीदारी करते समय या बीमारी के क्षण में अथवा यात्रा करते समय, रंगों का हमारे जीवन पर प्रभाव होता है।

सार संकलन

१. कृषि वैज्ञानिकों द्वारा गंदगी के विरुद्ध संघर्ष

गंदगी की समस्या उन समस्याओं में से एक है जिनका अधिकांश औद्योगिक राष्ट्रों को सामना करना पड़ रहा है। शहरों में चलने वाली वायु आँखों को पीड़ित करती है और उससे फेफड़ों में रुकावट उत्पन्न होती है। अनेक नालों तथा नदिओं का जल गंदला हो जाता है। किन्तु, सौभाग्य से, गंदगी की समस्या का अधिकांश उत्तर-दायित्व स्वयं मनुष्य पर है। और यदि मनुष्य एक समस्या उत्पन्न कर सकता है तो वह उसे हल भी कर लेता है।

उदाहरण के रूप में, अमेरिका के कृषि वैज्ञानिक, लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये सक्रिय रूप से गंदगी का अन्त करने के लिये संघर्ष कर रहे हैं। वे उस आहार की रक्षा कर रहे हैं जो हम खाते हैं, उस जल की रक्षा कर रहे हैं, जो हम पीते हैं, उस वायु की रक्षा कर रहे हैं, जिसे श्वास के द्वारा हम अपने भीतर ले जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने ऐसी विधियों का विकास किया है जिनके द्वारा गंदगी को कम किया जा सकता है। वे खेतों में बेकार जाने वाली इन वस्तुओं के उपयोग में लाने की नई विधियाँ खोज रहे हैं।

कृषि वैज्ञानिक विनाशकारी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये विनाशकारी कीटाणुओं का प्रयोग कर रहे हैं। ऐसा करने से कीटाणुनाशक औषधियों की अधिक आवश्यकता नहीं रहेगी। कीटाणुनाशक औषधियों से भी गंदगी फैलती है।

तलछट, धूल, खेतों में बेकार जाने वाली वस्तुओं आदि से गंदगी फैलती है। वैज्ञानिक लोग इनका अन्त करने से लिये निरन्तर कार्य कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्राप्त की जाने वाली जानकारी को केवल अमेरिकी खेतों में ही नहीं बल्कि अनेक अन्य देशों में भी प्रयोग में लाया जा रहा है।

इनमें से केवल तलछट की समस्या ही कुछ वैज्ञानिकों के कथनानुसार गंदगी का सबसे बड़ा और सबसे पुराना स्रोत है। पुरातत्वज्ञों का कथन है कि तलछट और बाढ़ों के कारण अनेक प्राचीन सभ्यताएं नष्ट हो गयी हैं।

अमेरिका की आबादी २० करोड़ तक पहुँचने के साथ ही मलवे को निपटाने की चुनौती भी उत्तरोत्तर गंभीर होती जाती है। राजपथों के किनारों पर स्थान स्थान पर पड़ा टनों मलवा समस्या को और भी गंभीर बना रहा है।

पशुओं से प्रति वर्ष २ अरब टन से अधिक गोबर की खाद प्राप्त हो रही है। परम्परानुसार, किसान अपने खेतों में उसे बिखेर देते हैं और उर्वरक के रूप में इसका इस्तेमाल करते हैं। फिर भी, आधुनिक कृषि में यह इस्तेमाल मितव्ययी नहीं है। शहरों के आस-पास इस तरह की खाद का इस्तेमाल इसकी बदबू के कारण बहुत ही अप्रिय माना जाता है।

कुछ बड़े उत्पादक इस खाद को निर्जलित करने के बाद घरेलू बागबानी तथा व्यापारिक खेती करने वालों के हाथ बेचते भी हैं। कुछ लोग गोबर के निपटाने के लिए छिछले ताल बनाते हैं। फिर भी बहुधा इन तालों से

नदियों, झीलों और धाराओं में उर्वरक तत्व फैलते हैं जिससे उनमें शेवाल, या ऐसे ही प्रकार के अन्य अवांछित घास-पतवार की उपज बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि मनोरंजन के काम आने वाली जल-धाराएं अवांच्छित हो जाती हैं तथा मछली उद्योग को क्षति पहुँचती है।

कृषि के इंजिनियर खाद-लागून मिलने वाले उर्वरक तत्वों का इस्तेमाल करने की सोच रहे हैं। इससे जहाँ एक ओर जल धाराओं को खाद-लागून से शुद्ध किया जा सकेगा वहीं दूसरी ओर खाद-लागूनी के इस्तेमाल से पशुओं के लिए अतिरिक्त चारा भी पैदा किया जा सकेगा।

अन्य बेकार के पदार्थों, उदाहरणार्थ कृषिगत माल की तैयारी के कारखानों से निकलने वाला फालतू मलवा, के इस्तेमाल के तरीकों की खोज भी की जा रही है। इनमें से अनेक वस्तुएं जैसे सूखे साइट्रस (नीबू की जाति के फल), शीरा और दूसरे अनेक प्रकार के फलों, सब्जियों और अनाजों का अवशिष्ट चारे के काम आता है।

अमेरिकी कृषि मंत्रालय की कृषि अनुसंधान सेवा कृषिनाशक दवाइयों के आवश्यकता से अधिक इस्तेमाल के विरुद्ध सुरक्षात्मक दृष्टि से मिट्टी, जल, फसल, पशुओं और कीड़े-मकोड़ों के नमूनों का अध्ययन करती है। अकेले मिसिसिपी डेल्टा से ही प्रति वर्ष ३००० से ऊपर नमूने लिए जाते हैं और उनका विवेचन किया जाता है।

मिट्टी-विशेषज्ञ रेडियो सक्रिय धूल से फसल को बचाने तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उससे मनुष्यों और पशुओं की रक्षा करने के तरीकों की खोज में भी हैं। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने ऐसे तरीकों का विकास कर लिया है जिनके द्वारा संकटकालीन स्थिति में गेहूँ से मिला ९० प्रतिशत रेडियो सक्रिय स्ट्रान्शियम धोकर निकाला जा सकता है। उन्होंने एक ऐसे उपकरण का डिजाइन भी बनाया है जो दूध में मिले स्ट्रान्शियम का ९० प्रतिशत भाग अलग निकाल सकेगा।

हमारे वातावरण के लिए खतरा गंभीर है या नहीं किन्तु हमारे सामने जो कार्य है वह निश्चय ही बहुत बड़ा है। यह कार्य तब और भी बड़ा हो जाता है जब हम दूषण के गैर-खेतिहर स्रोतों पर ध्यान देते है जैसे मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुंआ, टायर की छीजन से गिरने वाला रबड़, औद्योगिक धुआँ तथा अन्य उच्छिष्ट पदार्थ आदि। यह चनौती ऐसी है जिसका सामना तो करना ही चाहिए। कृषि के क्षेत्र में विज्ञान प्रत्येक ऐसे बड़े खेतिहर प्रदूषण-स्रोत को खत्म करने के काम को प्राथमिकता दे रहा है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

२. ज्योतिष

ज्योतिष के बारे में एक बात निश्चित है कि वह ही विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसका हमें प्राचीन काल से ले कर अब तक क्रम-बद्ध अभिलेख मिलता है। यह आम धारणा है कि बेबीलोनियन ज्योतिष का विकास यूनानी ज्योतिष से स्वतन्त्र रूप में हुआ।

बेबीलोनियन और यूनानी ज्योतिष में मुख्य अन्तर यह है कि बेबीलोनियन ज्योतिष सिर्फ अंकगणित पर आधरित है और इसमें नक्षत्रों की गति से संबधित ज्यामितीय आकार (माडल) नहीं है, जबकि यूनानी ज्योतिष का आधार ज्यामिति है। इनके अन्तर से हम यह असानी से जान सकते हैं कि उनमें से प्रत्येक का हिन्दू ज्योतिष पर क्या प्रभाव पड़ा।

ज्योतिष यूनान से भारत किस प्रकार पहुँचा इस समस्या के हल में चान्द्र सिद्धान्त में टालेमी द्वारा किये गये संशोधन विशेष महत्वपूर्ण हैं। सूर्य सिद्धान्त, जो हिन्दू ज्योतिष की महत्वपूर्ण पुस्तक है के मूलतः यूनानी उद्गम पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। इसकी पुष्टि उसमें वर्णित शब्दावली में प्रयुक्त इकाइयों और संगणना विधि से होती है। परन्तु उत्तर भारत में ज्योतिष टालेमी के चान्द्र सिद्धान्त में सुधार से लगभग अछूता सा ही रहा जो एक विशेष घटना है। हिन्दू ज्योतिष के अध्ययन से ई० पू० १५० से १५० ई० तक के ३०० वर्ष के समय की यूनानी ज्योतिष के विकास की काफी अच्छी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

वराहमिहिर की पंच सिद्धांतिका के अनुसार प्रारम्भिक हिन्दू ज्योतिष में हम ज्योतिष अध्ययन की दो भिन्न विधियों में स्पष्ट भेद देख सकते हैं। पहली विधि त्रिकोणमितीय है जो सूर्य सिद्धान्त पर आधारित है और दूसरी बेबीलोनिया ज्योतिष की तरह गणितीय विधि है, जो कि दक्षिण में प्रचलित है।

सन् १८२५ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्नल जान वारेन ने कला संकलित नामक एक ५०० पृष्ट की पुस्तक लिखी है, जिसमें उत्तर दक्षिण भारत में समय विभाजन की विभिन्न प्रचलित विधियों का वर्णन किया है। इसमें हमारे लिए भविष्यवाणी की सत्यता उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह तथ्य कि ज्योतिष को उस पद्धति का, जो ईसा की तीसरी शताव्दी में रोमन सम्राज्य में और छठी शताव्दी में वराहमिहिर के समय प्रचलित थी, १८२५ ई० में भी उपयोग किया जाता था। पश्चिमी देशों में हिन्दू ज्योतिष के प्रभाव का एक और दृष्टान्त मिलता है, जो मध्ययुग में हेलेनिक प्रभाव से मुक्त थे। हाल ही में एक लेटिन पुस्तक प्रकाशित हुयी है, जिसमें सूर्यसिद्धान्त में वर्णित विधियों का उल्लेख किया गया है।

हिन्दू ज्योतिष इतिहासकारों का यह प्रमुख ध्येय होना चाहिये कि नक्षत्र और चन्द्र ग्रहों की गणना आदि सम्बन्धी इतिहास की पुस्तकों को ढूंढने की कोशिश करें क्योंकि यह निश्चित है कि इतने विकसित ज्योतिष का कोई न कोई मूल स्रोत अवश्य होगा। इस सामग्री का प्रकाश में आना ज्योतिष के विकास के लिये आवश्यक है।

यह माना जा सकता है कि विधियों की भिन्नता होते हुए भी सभ्य देश में मानव का एकमात्र ध्येय अपने वातावरण का अध्ययन रहा है। प्रकृति के कुछ अद्भुत नियम सर्वत्र और सर्वदा एक से हैं। न्यूटन भी सेब को गिरते देखकर इसी सिद्धान्त से आकृष्ट हुआ था। उस समय गैलीलियो ने वस्तु की गति के नियम का प्रतिपादन कर लिया था। इसी आधार पर न्यूटन ने अपना प्रसिद्ध नियम प्रतिपादित किया :

"ब्रह्माण्ड में प्रत्येक कण दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह गुरुत्वाकर्षण बल दोनों कणों की मात्राओं के गुणनफल का समानुपाती और उन दोनों के बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है।'

अठारहवीं शताब्दी में बिशप बर्कले तथा अन्य दार्शनिकों का विचार था कि सूर्य, चाँद और नक्षत्र हमारे मस्तिष्क के विचार मात्र हैं और उनकी संरचना के बारे में जानने की कोशिश करना व्यर्थ है। कुछ ऐसे ही विचार दार्शनिक अगस्त कांच के भी थे तो भी कुछ समय पश्चात् उपर्युक्त प्रश्न (खगोलीय पिण्डों का अध्ययन) ही ज्योतिषविदों के अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया।

फ्रानहोफर की रेखाओं की प्रकृति ज्ञात करने के संबंध में अनेक प्रयोग किये गये लेकिन सही प्रकृति जर्मन भौतिकविद किर्चोफ के विकिरण नियम के प्रतिपादन के उपरान्त ही १८५१ ई० में ज्ञात हुई। उनके विकरण नियम के दो भाग हैं। पहले भाग के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपनी विशिष्ट विकिरणें ही उत्सर्जित करती है। दूसरे भाग के अनुसार उच्चताप के स्रोत से उत्सर्जित होने वाले विकिरणों को जब अपनी विशिष्ट विकिरणों से चमकने वाली निम्न ताप की गैस में से गुजारा जाता है तो पारेषित प्रकाश में चमकने वाली गैस की विकिरणें चमकदार पृष्ठभूमि पर काली रेखाओं के रूप में दिखायी देंगी। इस नियम से वैज्ञानिकों को सारे और नक्षत्रीय वातावरणों का रासायनिक विश्लेषण करने का आधार प्राप्त हो गया।

क्या ब्रह्माण्ड का आरम्भ स्वाभाविक रूप से हुआ है? अथवा उसका उद्भव कैसे हुआ। इसके बहुत से धार्मिक और दार्शनिक उत्तर दिये जाते रहे हैं। सब धर्मों और दर्शन ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। इसका सबसे आसान हल है कि हम यह मान लें कि ब्रह्माण्ड सदैव विद्यमान था या हम यह नहीं जान सकते कि वह कैसे और कब बनना आरम्भ हुआ ? अब, ज्योतिषशास्त्र के आधुनिक अनुसंधानों के बल पर, प्रथम बार हम उन प्रश्नों का— कि क्या ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति स्वाभाविक थी ? और यदि ब्रह्माण्ड का आरम्भ हुआ है तो क्या प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय रहे हैं—तर्कसंगत उत्तर खोज सकते हैं।

क्या प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं ? यह स्पष्ट है कि सीमित अवधि के लिये हम प्राकृतिक नियमों को अपरिवर्तनशील मान सकते हैं, परन्तु विविध विवेचनाओं के उपरान्त हम देखेंगे कि ब्रह्माण्ड में परिवर्तन अवश्य आये हैं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हवल ने सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड के विस्तार के मापन की ओर ध्यान आकृष्ट किया। हवल का नियम यह है कि यदि एक गैलेक्सी दूसरे से दुगनी दूरी पर है तो उसकी गति नजदीक वाली से दुगनी रफ्तार से कम होती जायेगी। हवल के नियम के अध्ययन से ब्रह्माण्ड में परिवर्तन के समय का पता चलता है। अनुमान है कि परिवर्तन का यह समय लगभग सत्तर खरब वर्ष होगा। इस लम्बे समय के मध्यावधि में प्राकृतिक नियमों में कितना परिवर्तन आया होगा या नहीं, यह विचारणीय है। इसका उत्तर आइंस्टीन के आपेक्षिकता सिद्धान्त में मिलता है।

ज्योतिषशास्त्र में आइंस्टीन के सिद्धान्त को स्थूल रूप में लागू करने से ब्रह्माण्ड के विस्तार को उस दूरी से मापा जा सकता है, जो ब्रह्माण्ड के अर्धव्यास के समतुल्य हो। दूरी समय के साथ बदलती रही है। इसका वर्तमान मान दस अरब प्रकाश-वर्ष अनुमाना गया है। परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्त को लागू करने से जो सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है वह है कि अब से सत्तर खरब (बिलियन) वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड का अर्धव्यास शून्य होना चाहिये था। डिके ने गणना की है कि उस समय जब ब्रह्माण्ड का अर्धव्यास वर्तमान व्यास से $१०^{१८}$ गुना कम था उसका ताप तब १० खरब डिग्री रहा होगा। जब ब्रह्माण्ड में विस्तार होने लगा तो ताप घटने लगा। स्पष्ट है कि उत्पत्ति के विषय में मनुष्य की चिर जिज्ञासा को शांत करने में ज्योतिषशास्त्र ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

३. ग्रहों की यात्रा

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान मानव मस्तिष्क और भावना का महत्तम साहसिक कार्य है। पिछले दशाब्द में, अन्तरिक्ष-यात्रा ने मनुष्य और वस्तुतः जगतीतल के समस्त जीवन के लिए एक सर्वथा नवीन प्रारब्ध का द्वार उन्मुक्त किया है। हम लोग, जो आज जीवित हैं, जीवन के विकास-क्रम के अन्तर्गत एक आधारभूत नये चरण में भागीदार हैं, जो शायद उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्राचीन काल में समुद्र से आदिकालीन जीवों का भूमि पर आविर्भाव था।

हम इस प्राचीन प्रश्न का अधिकतम स्फूर्तिदायक सम्भव उत्तर प्रस्तुत कर रहे हैं कि क्या चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व सम्भव है ?

उत्तर है : "हाँ"।

विज्ञान और प्रौद्योग के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ, कल्पना और भावना के धनी मनुष्य आपस में मिल कर कार्य करते हुए, जीवन को उसके मूल आवास, इस नीले ग्रह-पृथ्वी की सीमा से आगे, ऊपर और बाहर की ओर असीम नयी सीमाओं में भेज सकते हैं।

विश्व भर के उन विचारशील लोगों को, जो अमेरिका के अपोलो-कार्यक्रम को मानवजाति का, और मानव जाति के लाभार्थ कार्यान्वित उद्यम मानते हैं, इस स्फूर्तिदायक सम्भावना का आभास मिल चुका है। अन्तरिक्ष यात्रा के मानवीय अभिमान के अन्तर्गत विश्वव्यापी भू-उपग्रही संचार संजाल का आविर्भाव हुआ है। गत वर्ष, मास्को के टेलिविजन पटलों पर रूसियों को घर बैठे ही पृथ्वी से २,४०,००० मील की दूरी से अपोलो-८ द्वारा अत्यन्त निकटता से खींच कर भेजे गये चन्द्रतल के विस्मयकारी दृश्यों के चित्र देखने और उस पर सवार अन्तरिक्ष-यात्रियों की ध्वनियाँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यूरोप के करोड़ों लोगों ने अपोलो-१० द्वारा भेजे गये चन्द्रतल के सुन्दर रंगीन टेलिविजन-चित्र देखे।

इस वर्ष ग्रीष्म में मंगलग्रह पर भेजे गये मैरिनर शोध-वाहनों की सहायता से विश्व भर के टेलिविजन-दर्शकों ने कुछ ही घण्टों के भीतर उस रक्तिम ग्रह की सतह के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त की, जितनी भूतल पर स्थित दूरवीक्षण यन्त्रों की सहायता से खगोल-वैज्ञानिकों की सारी पीढ़ियों ने अब तक प्राप्त नहीं की। रूस के दो अन्तरिक्षयानों ने हाल ही में शुक्र ग्रह के बादलों से ढके हुए वातावरण में प्रवेश किया था। उन्होंने सफेद

ग्रह के बारे में नई सूचनाएं रेडियो द्वारा पृथ्वी पर भेजीं। समानव तथा स्वचालित अन्तरिक्ष-यानों की अंतरिक्ष-यात्रा का युग सम्पूर्ण मानवता के सामने तेजी के साथ प्रगति कर रहा है।

फिर भी, जैसा कि सभी नए साहसिक कार्यों या आन्दोलनों के साथ होता है, विरोधी आवाजें भी उठाई जा रही हैं। कुछ सन्देही पूछते हैं कि अन्तरिक्ष से व्यावहारिक आर्थिक लाभों की संभावनाएं हैं भी या नहीं, क्या हम पृथ्वी पर ही कुछ अन्य अपेक्षाकृत लाभप्रद योजनाओं पर काम नहीं कर सकते या कि आगे जाने के पहले क्या संसार के अन्य सामाजिक दुर्गुण दूर नहीं किए जाने चाहिए? यह प्रश्न तर्कसंगत है और इसमें यथोचित उत्तरों के बारे में विचार भी किया जाना चाहिए।

अंतरिक्ष अनुसन्धान से ठोस व्यावहारिक आर्थिक लाभ हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों अन्तरिक्ष अनुसंधान के पहले १० वर्षों में जो प्रत्यक्ष लाभ हुए हैं वे हैं, उपग्रह द्वारा विश्वव्यापी संचार-व्यवस्था तथा मौसम सम्बन्धी उपग्रहों द्वारा विश्व भर के मौसम की भविष्यवाणी।

मौसम सम्बन्धी उपग्रहों के द्वारा जो बचत की जा सकती है वह अरबों डालरों तक पहुंच सकती है। टाइरोस-३ द्वारा कार्ला नामक तूफान की जो पूर्वसूचना दी गई थी उसकी बदौलत टेक्सास के तट-क्षेत्र से ३,५०,००० व्यक्तियों को तूफान आने के पहले हटा दिया गया था और इस प्रकार अनगिनत व्यक्तियों की जीवन-रक्षा की जा सकी। इससे अलावा हम समुद्र यात्रा में पथ-निदेशक उपग्रहों, टेलिविजन कार्य-क्रम का प्रसारण करने वाले उपग्रहों, आँकड़े देने वाले उपग्रहों, भू-उपग्रहों और भूसाधनों से सम्बन्धित उपग्रहों की आशा भी कर रहे हैं और वे सभी, भविष्य में भारी आर्थिक लाभ के सूचक हैं।

अकेले भू-साधन सम्बन्धी उपग्रह ही हमें खनिजों के सर्वेक्षण, पेट्रोल की खोज, कृषि-विज्ञान, वन विज्ञान, समुद्र-विज्ञान, जल-विज्ञान तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में इतना लाभ पहुँचा सकते हैं कि उससे अंतरिक्ष कार्य-क्रम पर होने वाला सारा खर्च पूरा हो सकता है।

अन्तरिक्ष अनुसंधान के जो अप्रत्यक्ष लाभ हैं उनके मूल्य का अनुमान लगाना अधिक कठिन है। चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए अमेरिका को अपनी टेक्नालाजी को बहुत ही व्यापक सीमा तक विकसित करना पड़ा है। इससे अनेक अन्य क्षेत्रों के लिए अनेक नई प्रविधियों का विकास भी हुआ है। अन्तरिक्ष ने विश्वविद्यालयों और उद्योगों को चुनौती दी है और उन्होंने बड़ी शान के साथ उस चुनौती को स्वीकार भी किया है।

अन्तरिक्ष युग की प्रगति से निसन्देह, १९७० और १९८० की दशाब्दियों में नई सम्पत्तियों का सृजन होगा। यह भी इस बात का एक महत्वपूर्ण कारण है कि हम अपने अन्तरिक्ष कार्य-क्रम को और भी शक्ति के साथ आगे बढ़ायें। इसका सारा काम, निस्संदेह पृथ्वी पर ही किया जा रहा है और इसका लाभ सभी मनुष्यों को प्राप्त होगा।

हमारे समाज की दशाओं में सुधार करने के लिये हमें नई टेक्नालाजी के आधार पर बहुत अधिक उपज बढ़ा कर अधिक सम्पदा उत्पन्न करनी चाहिये। हमें इस सम्बन्ध में अशान्त एवं असंतुष्ट होना चाहिये कि हम सामाजिक बुराइयों पर विजय पाने की दिशा में धीमी गति से अग्रसर हो रहे हैं। यदि हम चन्द्रमा पर जा सकते हैं, तो हम बड़े और सुन्दर शहर क्यों नहीं बना सकते। हम अज्ञानता, अपराधों और निर्धनता का अन्त क्यों नहीं कर सकते!

अन्तरिक्ष में मनुष्य का भविष्य असीमित है। हम विकास के एक ऐसे नये मंच पर आरूढ़ हो गये हैं जो मानव जाति की समस्त भावी पीढ़ियों को कार्य-व्यस्त कर देगा। असंख्य क्षेत्रों में हमें रहस्यों का पता लगाना है। हमें दृढ़ता के साथ अन्तरिक्ष में अग्रसर होना चाहिये।

अकेले व्यावहारिक लाभों ने ही इस साहसिक प्रयास के औचित्य को सिद्ध कर दिया है, किन्तु अन्य दूसरे मानवीय कारण भी हैं। अन्तरिक्ष में होने वाली प्रगति से हमें उन समस्याओं के नये समाधान ढूँढने के

कार्य में अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहन मिलता रहना चाहिये जिनका आदि काल से मनुष्य का पृथ्वी पर सामना रहा है।

४. बिन पानी की बर्फ

साधारणतया पदार्थ की तीन अवस्थाएं होती हैं : ठोस, द्रव और गैस। यदि पानी गर्म किया जाय तो वह भाप बन कर गैस अवस्था में आ जाता है। और यदि ०° से० से भी नीचे ताप तक ठंडा किया जाये तो ठोस अवस्था में आकर बर्फ बन जाता है। इस प्रकार, पानी प्रकृति में ठोस, द्रव और गैस तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। लेकिन कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो साधारण दशाओं में द्रव अवस्था को प्राप्त ही नहीं होते। वे या तो ठोस अवस्था में रहते हैं या फिर गर्म होने पर बिना द्रव अवस्था में परिवर्तित हुए ही गैस अवस्था में आ जाते हैं। कपूर तथा नेफ्थलीन ऐसे ही पदार्थ हैं जो ठोस से सीधे ही गैस अवस्था में आ जाते हैं और यह दशा-परिवर्तन की क्रिया ऊर्ध्वपातन कहलाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड भी एक ऐसी ही गैस है जो कि साधारण ताप द्रव अवस्था में नहीं पाई जाती, यद्यपि इसे विशिष्ट दशाओं में द्रव अवस्था में लाया जा सकता है। ठोस अवस्था में कार्बन-डाई-आक्साइड बहुत ठंडी होती है और अवस्था परिवर्तन की क्रिया में द्रव रूप में नहीं आती है। इसीलिये इसे 'सूखी बर्फ' (ठोस कार्बन-डाई आक्साइड) कहते हैं। वायुमण्डलीय दाब पर सूखी बर्फ की ऊर्ध्वपातन क्रिया-७८·७ सें० पर होने लगती है।

कार्बन-डाई-आक्साइड को ठोस अवस्था में लाने का काम सर्वप्रथम सन् १८३५ में थिलोलियर नामक एक वैज्ञानिक ने किया। लेकिन ठोस कार्बन-डाई-अक्साइड (सूखी बर्फ) का उत्पादन इसके काफी समय बाद तक नहीं हुआ और थिलोलियर का प्रयोग केवल प्रयोगशाला के महत्व का ही रहा ; सूखी बर्फ का भारी मात्रा में उत्पादन तो १९२५ ई० में आरम्भ हुआ।

भारतवर्ष में इस समय तीन कारखाने इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर करते हैं और प्रतिवर्ष लगभग ५०० टन सूखी बर्फ का उत्पादन होता है।

शुष्क बर्फ बनाने के लिए कार्बन-डाई आक्साइड गैस की कच्चे माल के रूप में आवश्यकता होती है जो या तो मिट्टी का तेल और पेट्रोलियम पदार्थ जलाने पर मिल सकती है अथवा इसको चूने की भट्टियों या ऐल्कोहल बनाने के कारखानों से प्राप्त किया जा सकता है।

इस गैस को सर्वप्रथम कुछ रसायनों में जैसे मोनोइथेनोल एमिन, सोडा कास्टिक, सक्रिय तारकोल आदि से गुजार कर शुद्ध किया जाता है। तत्पश्चात् गैस को संपीडित करके ९००-१००० पौंड प्रति वर्ग इंच का दाब उत्पन्न किया जाता है जिससे गैस १५·५० सें० पर ही द्रव अवस्था में आ जाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड का चरम ताप ८७·३१ सें० है अतः इससे अधिक ताप पर इसे द्रवीभूत करना असम्भव है चाहे कितना ही दाब क्यों न बढ़ाया जाय।

द्रव कार्बन-डाई-आक्साइड को फिर संघनकों में संघनित किया जाता है। इससे द्रव वायुमण्डलीय दाब पर आ जाता है और इसका ताप त्रिक बिन्दु (५१·५० सें०) से नीचे रहता है। फलस्वरूप कार्बन-डाई-आक्साइड हिम का ऊर्ध्वपातन आरम्भ हो जाता है। यह हिम अति पोली होती है। इस हिम को निकाल कर यांत्रिक संपीडकों में दबाया जाता है जिससे वह ठोस बन जाती है। यही सूखी बर्फ है। इसके १०×१०×१० इंच के घन का भार ५० पौंड है।

सूखी बर्फ के टुकड़े को क्राफ्ट पेपर में लपेट कर तापरोधक बर्तनों से रखा जाता है। सूखी बर्फ-७८ सेन्टीग्रेड ताप पर सीधी गैस में बदलने लगती है। यह पानी की बर्फ के अनुपात में बहुत ठंडी होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व भी साधारण बर्फ से अधिक होता है।

इसका उपयोग खाद्य वस्तुओं जैसे कि मांस, मछली, अंडे, आइसक्रीम, आदि को ठंडा रख कर दूर-दूर तक पहुँचाने में होता है। यह वस्तुओं को सड़ने से बचाती

है क्योंकि इससे एक तो वे ठंडी रहती हैं और दूसरे निष्कासित कार्बन-डाई-आक्साइड जीवाणुओं के मारने तथा उनकी मात्रा को बढ़ाने से रोकने में सहायता देती है।

एक गणना के अनुसार अगर एक मालगाड़ी के डिब्बे में खाद्य पदार्थ को १ टन सूखी बर्फ से ठंडा किया गया हो तो उतने ही पदार्थ को निश्चित स्थान तक पहुँचाने के लिये ४ टन पानी की बर्फ की आवश्यकता होगी तथा रास्ते में कई बार पानी की बर्फ और भरनी पड़ेगी। इस प्रकार सूखी बर्फ खाद्य उद्योग में एक बहुत उपयोगी वस्तु प्रमाणित हुई है।

प्रयोगशाला में विभिन्न घोलों से पानी को एकाएक बर्फ बनाया भी जा सकता है। यह कार्य सूखी बर्फ द्वारा सम्पन्न हो सकता है। वायुयान में एल्यूमिनियम के जोड़ लगाने के काम में भी सूखी बर्फ का उपयोग होता है। बादलों को तलछट विधि द्वारा ठंडा बना कर आप जहाँ चाहें वर्षा भी करा सकते हैं। पाइप लाइनों में पानी को बर्फ बना कर उसके बहाव को रोका जा सकता है और इस प्रकार पाइप लाइन की मरम्मत की जा सकती है। इस प्रकार सूखी बर्फ बहु-उपयोगी है। लेकिन भारत में इसका उपयोग अधिकतर आइसक्रीम व दवाइयों के बनाने में होता है। इतनी अधिक उपयोगी वस्तु होते हुए भी हम इसकी तुलना पानी की बर्फ से नहीं कर सकते। कारण कि यह काफी महँगी पड़ती है। साधारण बर्फ में कच्चा माल पानी है जब कि सूखे बर्फ के लिये कार्बन-डाई-आक्साइड गैस की आवश्यकता होती है। इसके बनाने में भी साधारण पानी की बर्फ की अपेक्षा अधिक खर्च आता है।

● ●

विज्ञान को आजीविका का साधन न मानकर मुक्ति का साधन मानना श्रेयस्कर होगा। ●

कृषि स्नातकों का अन्धकारमय भविष्य

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान के निदेशक डा० स्वामीनाथन ने बताया है कि अगले चार वर्षों में हमारे देश में ८९५० कृषि स्नातक, ४१९६ कृषि उत्तर स्नातक तथा ७०५ कृषि इंजीनियरों के बेकार रहे आने की सम्भावना है। इसका एक कारण यह है कि अधिकांश छात्र प्रसार सेवाओं की अपेक्षा शोधकार्य के प्रति आकृष्ट होते हैं। इसी आशंका से त्रस्त कृषि छात्रों ने "रजिस्टर्ड फार्मिगं प्रैक्टीशनर" को मान्यता दिए जाने का समर्थन करते हुये अपील की है कि छोटी-छोटी मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ खोलने तथा हानिकारी जीवों की पहचान के लिए सरकार उन्हें पूंजी प्रदान करे।

अपने समस्त कार्यों में देवनागरी लिपि का व्यवहार करके राष्ट्र भाषा को गौरवान्वित करें ●

विज्ञान वार्ता

१. टेक्टाइट्स की खोज

संसार के विभिन्न भागों में एक चमकीली चीज बिखरी पड़ी मिलती है। उसे 'टेक्टाइट्स' कहते हैं। लगभग एक शताब्दी पहले इसका पता लगा था। तबसे अब तक यह भू-वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य की वस्तु बनी हुई थी।

अब, १० वर्ष के निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद, एक अमेरिकी वैज्ञानिक को इस बात का पूरा विश्वास हो गया है कि टेक्टाइट्स चन्द्रमा से आया है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेन्सी के एम्स अनुसन्धान केन्द्र के डा० डीन आर० चैपमैन का कहना है कि पृथ्वी पर 'टेक्टाइट्स' की वर्षा कम से कम तीन बार हो चुकी है और पृथ्वी पर १ करोड़ से लेकर १० करोड़ टन तक चन्द्रमा की शैल-सामग्री (चट्टानी टुकड़े) मौजूद हैं।

श्री चैपमैन के अनुसार पृथ्वी पर टेक्टाइट्स की सबसे हाल की वर्षा लगभग ७,००,००० वर्ष पहले उस समय हुई होगी जब छोटे पर्वत के आकार का एक तारा चन्द्रमा से टकराकर फटा था और उसके विस्फोट के फल-स्वरूप चन्द्रमा पर 'टाको' नामक विवर बना था। उस समय चन्द्रमा का मलबा, जिसमें उसकी द्रवीभूत चट्टानों की बूंदें भी थीं, सभी दिशाओं में उड़ा था और उससे वे धारियाँ या 'किरणें' भी पड़ गईं जो अब भी विवर विशेष से चमकती हैं।

इनमें से प्रमुख 'किरणों' का संरेखण इस ढंग का है कि डा० चैपमैन को विश्वास है कि वह इस बात की पहिचान है कि उसी रास्ते से पदार्थ पृथ्वी की ओर आया और मैडागास्कर से तस्मानिया के दक्षिण तक, उत्तर-पश्चिम आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया के उत्तर में और फिर दक्षिण-पूर्व एशिया और फिलीपाइन्स के ऊपर बिखर गया।

उस पदार्थ की उड़ान के रास्ते का संगणक द्वारा विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि उस पदार्थ की बूंदें अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के रूप में पृथ्वी पर गिरीं। डा० चैपमैन ने बताया कि आस्ट्रेलियाई टेक्टाइट्स की समाकृति वैसी ही है। उन्होंने आगे कहा कि रसायनिक रूप से वे सब एक जैसी ही हैं और एक ही घटना की उपज हैं।

डा० चैपमैन के अनुसार टेक्टाइट्स की अन्य वर्षाएं १ करोड़ ५० लाख वर्ष तथा ३ करोड़ ५० लाख वर्ष पहले हुई थीं इन दोनों अवसरों पर टेक्टाइट्स की वर्षा के मुख्य केन्द्र क्रमशः चेकोस्लोवाकिया और अमेरिका थे।

डा० चैपमैन का यह कार्य चन्द्रमा के इतिहास पर प्रकाश डालता है और उससे चन्द्रमा के धरातल के कुछ स्थानों के निर्माण का समय निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

२. ल्युकेमिया की नई औषधि

अमेरिका में असाध्य ल्युकेमिया (रक्त श्वेताणु-मयता रोग) के इलाज के लिये एक बड़ी ही आशाप्रद नई दवाई का विकास किया गया है। यह दवाई इस रोग का पूर्ण इलाज नहीं है फिर भी यह अन्य दवाइयों की तुलना में अधिक प्रभावकारी है और इससे बीमारी का पूर्ण परिहार हो जाता है। यह रोग एक प्रकार का रक्त-कैंसर होता है।

इस औषधि को अभी हाल ही में लाइसेन्स दिया गया है। इसका नाम साइटोसाइन आराविनोसाइड है। यह औषधि अमेरिका की संघ सरकार, वहां के उद्योग, विश्व-विद्यालयों और स्वतन्त्र संस्थानों के २० वर्षीय सहकारी प्रयास का परिणाम है। इसका व्यापारिक पक्ष कलामाज़ू (मिशिगन) की 'द आपजॉन कम्पनी' के हाथ में है।

अमेरिका के राष्ट्रीय कैंसर संस्थान के अधिकारियों के अनुसार, जिन्होंने इस दवाई के मानवों पर होने वाले अधिकांश परीक्षण किए हैं, इस दवाई को ग्रानुलोसाइटिक और लिम्फोसाइटिक ल्यूकेमिया के १८४ मरीजों को दिया गया जिनमें से ३७ प्रतिशत मरीजों के रोग का काफी हद तक परिहार हो गया। अन्य दवाइयों से लगभग १५ प्रतिशत लोगों को ही लाभ होता है।

ह्यूस्टन (टेक्सास) स्थित एम० डी० एण्डरसन अस्पताल के डा० एमिल फ्रेयरीच का कहना है कि साइटोसाइन आराविनोसाइड नामक इस दवा से उनके द्वारा इलाज किए गए ५० प्रतिशत मरीजों को लाभ हुआ है। वह इस औषधि को कैंसर के इलाज के क्षेत्र में एक नयी दिशा मानते हैं।

ल्यूकेमिया के रोग में रक्त में उससे श्वेताणु की मात्रा अनियन्त्रित रूप से बढ़ जाती है। इसका सही कारण अज्ञात है किन्तु कुछ अनुसंधानियों का मत है कि इसका कारण रक्त कोशिकाओं का कैंसरयुक्त उत्परिवर्तन भी हो सकता है।

यह औषधि उस रासायनिक द्रव्यों में से एक है जिसके सम्बन्ध में १९५१ में येल विश्वविद्याल के दो अनुसंधान-कर्ताओं द्वारा जल-शोषक समुद्री पदार्थों के सत्वों का अध्ययन करने के बाद, सर्वप्रथम जानकारी दी गयी थी। उसके १० वर्ष पश्चात् अपजोहन द्वारा सहरोसाइन तैयार किया गया था और १९६४ से इसकी प्रयोशाला में और रोगियों पर जाँच होती रही है।

पशुओं के लिये नवीन खाद्य: आम की गुठली

अनुमान है कि प्रतिवर्ष भारतवर्ष में औसतन ४ करोड़ टन आम की उपज होती है जिससे लगभग ½ करोड़ टन आम की गिरी प्राप्त हो सकती है। इसे पशुओं को खिलाने से यकृत में विटामिन-ए का काफी संचय हो जाता है। आम की गुठली में ८.५% अपरिष्कृत प्रोटीन, ०.१९% कैल्सियम तथा ०.२% फास्फोरस होता है।

चीनी उत्पादन का नया प्रयोग

गन्ने के समान चीनी बनाने के लिये उत्तर भारत में अब चुकन्दर उगायी जाने लगी है। इसकी उपज ३०-७० मीटरी टन है जिसमें चीनी की मात्रा १५-१८% तक होती है। यह छह मास में तैयार होने वाली फसल है। इसके विपरीत गन्ना एकवर्षीय फसल है। अभी लखनऊ, पन्तनगर, जालन्धर, गंगानगर तथा श्रीनगर केन्द्र में चुकन्दर सम्बन्धी प्रयोग किये जा रहे हैं। इससे चीनी का संकट दूर हो सकेगा।

सम्पादकीय

हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ

सभी प्रदेशों में विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तकों के निर्माण के लिये जो संस्थायें सस्थापित हुई हैं वे "हिन्दी ग्रंथ अकादमी" के नाम से पुकारी जावेंगी। हमारे प्रदेश, उत्तर प्रदेश, में भी "हिन्दी ग्रंथ अकादमी' का शुभारम्भ जनवरी मास से हो चुका है। इस अकादमी के 'निदेशक' हैं पूर्णकालिक अधिकारी श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव और उपसचालक हैं सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री बालकृष्ण जी राव।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि उत्तरप्रदेशीय हिन्दी ग्रंथ अकादमी को भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से २५० पुस्तकों के अनुवाद कराने का कार्यभार सौंपा गया है। यही नहीं, उसे विज्ञान एवं मानविकी की विभिन्न शाखाओं में मौलिक पुस्तकें लिखाने का भी अधिकार दिया गया है।

इस अकादमी को एक ओर जहाँ इतना उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य सौंपा गया है, वहीं उस पर पाबन्दी भी लगाई गई है। अकादमी के समक्ष बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० स्तर तक की पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद किये जाने की अवधि क्रमशः जुलाई १९७१ तथा जुलाई १९७२ रखी गयी है। साथ ही विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन्हें पाठ्यक्रमों में विहित कराने का भी भार अकादमी पर होगा। उसे अपने आर्थिक सम्बल के लिये विभिन्न केन्द्र अभिकरणों के भंग होने पर अपना कार्य क्षेत्र विस्तारित करने का आदेश केन्द्र से प्राप्त है।

हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित होने के २२ वर्षों बाद यह ऐसी सुखद घोषणा है जिसकी ओर समस्त हिन्दी प्रेमी अध्यापकों एवं छात्रों का अध्ययन आकर्षित होगा। अंग्रेजी के गिरते हुये स्तर के कारण विद्यार्थियों को न केवल अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों के समझने में किन्तु कक्षाओं में अध्यापकों एवं छात्रों को व्याख्यान देने तथा समझने में कठिनाई का अनुभव होता रहा है। केन्द्री शिक्षा मन्त्रालय ने वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद की जो योजना ५–६ वर्ष पूर्व चालू की थी उससे अनेकानेक पुस्तकें अनूदित होकर प्रकाश में आई हैं। किन्तु मात्र अनुवाद अध्यापन के क्षेत्र में पर्याप्त नहीं। मौलिक लेखन पर अधिकाधिक बल दिये जाने की आवश्यकता है। इससे न केवल ज्ञान के स्तर में वरन् भाषा-शैली में सुधार होगा।

'हिन्दी ग्रंथ अकादमी' की स्थापना से मौलिक लेखन के क्षेत्र में निश्चित रूप से युगान्तर की सम्भावना है। जिन वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों ने अपने-अपने क्षेत्र में हिन्दी को प्रश्रय देकर उसकी जड़ें मजबूत की हैं, उनके लिये यह सुनहला अवसर होगा पूर्णाहुति के रूप में अपनी क्षमता के अनुरूप ग्रंथों का प्रणयन करना। आशा है शीघ्र ही उत्तर प्रदेश अपने गौरव के अनुकूल ही पाठ्य पुस्तकों के क्षेत्र में प्रशस्त परम्परा स्थापित करेगा।

• •

'विज्ञान' के सम्बन्ध में

(फार्म ४)

१.	प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
२.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	प्रसाद मुद्रणालय द्वारा के० राय
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	५/७ बेली एवेन्यू, प्रयाग
४.	प्रकाशक का नाम	डा० वाचस्पति
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	प्रधाम मन्त्री, विज्ञान परिषद, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
५.	सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	२५, अशोक नगर, इलाहाबाद-१
६.	उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं।	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद इलाहाबाद

मैं डा० वाचस्पति घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर **वाचस्पति**

प्रकाशक

विषय-सूची

प्रति अंक ४० पैसे
वार्षिक ४ रुपये

डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | चैत्र २०२७ विक्र०, १८९२ शक मई १९७० | संख्या ५

देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर

● डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

कृषि शास्त्र के क्षेत्र में दिनों दिन बढ़ते हुये ज्ञान के साथ साथ पौधों के स्वस्थ विकास के लिये आवश्यक तत्वों में सूक्ष्म मात्रिक तत्वों को अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा है। इन तत्वों की आवश्यकता पौधों के लिए उतनी ही होती है, जितनी कि प्रमुख तत्वों की, परन्तु इनकी आवश्यक मात्रा प्रमुख तत्वों की अपेक्षा न्यून होती है। यही कारण है कि इनको 'सूक्ष्म मात्रिक तत्व' के नाम से पुकारा जाता है। ये सूक्ष्म मात्रिक तत्व हैं—ताँवा, जस्ता, मैंगनीज, बोरान, मालिब्डनम तथा लोहा। इन तत्वों की प्राप्य मात्रा यदि आवश्यकता से कम हुई तो पौधों का विकास रुक जाता है एवं उनमें तरह तरह के रोगों के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। यदि ये रोग समय पर आवश्यक तत्वों को डाल कर रोके नहीं जाते तो सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है एवं किसानों को मिलता है केवल पौधों का सूखा ढाँचा। यदि ये ढाँचे किसी रूप में भी जानवरों को खिलाये जाते हैं तो उनमें भी तत्वों की न्यूनता के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि मिट्टी में इन तत्वों की न्यूनता पौधों के विकास को तो रोक ही देती है पशुओं पर भी हानिकर प्रभाव डालती है। ऐसे दोहरे नुकसान करने वाले ये सूक्ष्म मात्रिक तत्व कभी कभी मिट्टी में अधिक मात्रा में रहने पर भी पौधों को प्राप्य नहीं होते हैं।

ध्यान देने पर यह विदित होगा कि मिट्टी की कुछ भौतिक तथा रासायनिक क्रियायें इनकी प्राप्यता पर प्रभाव डालती हैं। इन प्रभावकारी क्रियाओं में मिट्टी में चिकनी मिट्टी की मात्रा, मिट्टी का पी०एच०, चूने एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा प्रमुख हैं। मृदा में इन तत्वों की समुचित प्राप्यता बनाये रखने के लिये इन कारकों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

प्रायः देश के किसी न किसी कोने से किसी रोग के लग जाने के कारण सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाने के समाचार मिलते रहते हैं। इसके लिये तरह तरह की अटकलें

लगाते-लगते उस साल की फसल पूर्णतया नष्ट हो चुकी होती है। अतः यह आवश्यक है कि फसल लेने के पहले मिट्टी की रासायनिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो। इसके साथ ही इन तत्वों की न्यूनता सम्बन्धी रोगों की समुचित जानकारी हो। आइये, देखें इन छोटे तीरों द्वारा बने गहरे घावों को एवं इन घावों की गहराइयों को।

ताँबाः हरे पौधों में ताँबे के न्यूनता जनित रोग विभिन्न पौधों में अलग अलग होते हैं। फिर भी इसका क्लोरोसिस रोग तो प्रायः सभी पौधों में देखा गया है। सिट्रस फलों में गोंद निकलना ताँबे की न्यूनता से उत्पन्न प्रमुख रोग है। चित्तीदार पत्तियों, शीर्ष डालियों का गिर जाना, अन्तर गाँठों का छोटा हो जाना, फलों का फट जाना आदि इस तत्व की कमी के लक्षण हैं।

अनाज की फसल में सफेद टिप, पीला टिप आदि रोग ताँबे की न्यूनता के कारण होते हैं। इन रोगों के होने पर पहले तो फसलों में बालें निकलती ही नहीं, यदि निकलीं भी तो वे छोटी होंगी एवं उनमें दाने बहुत ही कमजोर होंगे। इस प्रकार यह देखा गया है कि दाने की उपज भूसे की उपज से अधिक प्रभावित होती है।

पौधों में ताँबे की न्यूनता मिट्टी में कापर सल्फेट डालकर या इसके घोल का पौधों पर छिड़काव करके ठीक की जा सकती है। छिड़काव के द्वारा ताम्र की न्यूनता शीघ्रता से दूर की जा सकती है। मिट्टी में इस तत्व को डालने के पहले मिट्टी में चूने की मात्रा उसका पी-एच० एवं कार्बनिक पदार्थ के बारे में पूरा ज्ञान आवश्यक है। अधिक चूने एवं अधिक कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी में ताँबे की प्राप्यता कम हो जाती है अतः ऐसी मिट्टियों में आवश्यकता से अधिक ताँबा डालना पड़ता है। पी-एच० का अधिक एवं बहुत कम होना ताँबे की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इन कारकों की जितनी ही अधिक मात्रा मिट्टी में होगी, न्यूनता रोग उतना ही अधिक गहरा होगा।

जस्ता : जस्ते की न्यूनता का प्रमुख लक्षण है पत्ती की शिराओं एवं उसके आस-पास के स्थानों पर हरे रंग का अभाव। कहीं कहीं रोग की अत्यधिकता के कारण हरा रंग इस प्रकार अदृश्य हो जाता है कि पत्ती एकदम सफेद दृष्टिगत होने लगती है। इस तत्व की कमी होने पर पैलीसेड कोशिकायें आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार पत्तियाँ आवश्यकता से अधिक बड़ी दिखाई पड़ती हैं। इसकी कमी से टमाटर की जड़ें जगह जगह पर फूल जाती हैं। फलीदार पौधों में इसकी कमी से फलियों में दाने बहुत कम पड़ते हैं जिससे उपज बहुत घट जाती है। अभी हाल में धान का खैरा रोग इस तत्व की न्यूनता के कारण बताया गया है।

न्यूनता के लक्षण प्रतीत होने पर जिन्क सल्फेट के घोल का छिड़काव करना चाहिए। मिट्टी में डालने के पहले मिट्टी में उपस्थित चूने की मात्रा, कार्बनिक पदार्थ एवं पी-एच० का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

मैंगनीजः मैंगनीज की न्यूनता से पत्तियों की अन्तर-शिराओं से लगे हुये स्थान हरीतिमा रहित हो जाते हैं। रोग की अति अवस्था में सम्पूर्ण पत्ती की यही अवस्था हो जाती है। दाने वाली फसलों में ग्रे स्पेक, सफेद स्ट्रीक ड्राई स्पाट, एवं लीफ स्पाट जैसे रोग इसकी न्यूनता के कारण होते हैं। मटर में मार्श स्पाट, गन्ने में पहला ब्लाइट, गन्ने का फटना जैसे हानिकर रोग इसी की न्यूनता के कारण होते हैं।

कमी के साथ कभी-कभी इसकी अधिकता से भी पौधे बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। तम्बाकू जैसी मुख्य फसल इसकी जरा भी अधिकता नहीं बरदाश्त कर सकती एवं असमय में ही इसकी पत्तियाँ सूखने लगती हैं।

यह तत्व जैसा कि विदित है चूने की मात्रा एवं मृदा की पी-एच० स्थिति से अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्वों से अधिक प्रभावित होता है। अतः इसका छिड़काव करना अधिक उपयुक्त है। चूंकि मैंगनीज डाई आक्साइड अधिक सस्ता साधन है अतः इसके सम्बन्ध में जानकारी आवश्यक है। यह पानी में अघुलनशील तो है परन्तु मिट्टी में डालने पर यदि उसमें कार्बनिक पदार्थ की पर्याप्त मात्रा है तो यह धीरे-धीरे घुलनशील होता रहता है।

बोरानः इसकी न्यूनता प्रायः अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की अपेक्षा अधिक देखी गई है इसलिये कृषि के लिये इसे हम प्रमुख सूक्ष्म मात्रिक तत्व की संज्ञा दे सकते हैं। इसकी न्यूनता के लक्षण पौधों की जाति के अनुसार वदलते रहते हैं। इसकी न्यूनता में प्रायः पौधों की जड़ें विल्कुल नहीं वढ़ पातीं। परिणाम यह होता है कि फ्लोयम एवं जायलम कोश दोनों एक दूसरे में मिल जाते हैं। इस प्रकार पौधों में तत्व घोलों को ले आने एवं ले जाने वाली नलिकायें टूट जाती हैं एवं खाद्य पदार्थ समुचित रूप में प्रत्येक भाग में नहीं पहुँच पाता। परिणामस्वरूप पौधा मर जाता है। प्रथम मृत्यु पौधे के कक्ष कलिका की होती है जिससे पौधे का वढ़ना रुक जाता है।

इसकी कमी से चुकन्दर का "हर्ट राट" सेव का इन्टरनल कार्क एवं अल्फ़ाअल्फा का "यलो टाप" अन्य प्रमुख रोग पाये गये हैं। शलजम का ब्राउन हर्ट रोग पूरी की पूरी फसल नष्ट कर देता है। वोरान की कमी हो जाने से पौधे का फूल एवं फल धारण करना, सेचन क्रिया, कोशों का विभाजन, नाइट्रोजन उपापचय, कार्बोहाइड्रेट उपापचय, हारमोन का वहाव एवं प्रभाव तथा पौधों का पानी से सम्वन्ध आदि कार्य प्रभावित होते हैं।

मिट्टियों में अन्य तत्वों को डालते समय वोरान का कोई यौगिक भी मिलाया जा सकता है। इसको मिट्टी में डालते समय वोई जाने वाली फसल मिट्टी में मिलाने के ढंग एवं वोरान के स्रोत के वारे में ज्ञान आवश्यक है। मिट्टी में अधिक चूने की मात्रा इसकी प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

मालिब्डनमः यह पौधों के लिये आवश्यक तत्वों की शृंखला में जोड़ा जाने वाला अन्तिम आवश्यक तत्व है। लेकिन इसका प्रयोग इतनी तेजी से वढ़ रहा है कि वह दिन दूर नहीं जब यह सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में प्रमुख तत्व गिना जाने लगेगा। यह भी एक आश्चर्यजनक वात है कि इसकी सवसे कम मात्रा पौधों के लिये आवश्यक होती है।

गोभी का ह्निपटेल रोग सर्वत्र पाया गया है। इस रोग से फसल पूरी की पूरी नष्ट हो जाती है। सरसों जाति की फसलें भी इस तत्व की कमी से वहुत अधिक प्रभावित होती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार ०.१ के ०.३ अंश प्रति दस लक्ष अंश मालिब्डनम मिट्टी में डालने से फसल की पैदावार वढ़ जाती है।

इस तत्व की प्राप्यता अन्य तत्वों की भाँति अधिक पी-एच० होने पर घटती नहीं अपितु वढ़ जाती है। इसकी कमी प्रायः अम्लीय मिट्टियों में पाई जाती है। इन मिट्टियों में कुल वोरान की मात्रा पर्याप्त होते हुये भी वोरान अप्राप्य अवस्था में होने के कारण फसल को प्राप्त नहीं हो पाता।

लोहा : इस तत्व की मिट्टी में उपस्थित मात्रा किसी भी प्रमुख आवश्यक तत्व से कम नहीं होती परन्तु इसकी पौधों के लिये आवश्यक मात्रा इसको सूक्ष्म मात्रिक तत्व श्रेणी में लाती है। इसकी प्राप्यता अधिक चूने वाली मिट्टियों में अत्यन्त कम हो जाती है। परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकार के रोग पौधों को प्रभावित करते हैं। इसकी कमी से पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, पौधों का विकास रुक जाता है एवं फल यह होता है कि दाने नहीं पड़ते। फलों में इसकी कमी के लक्षण प्रायः हर एक मिट्टी में देखे गये हैं।

लोहे की न्यूनता को रोकने के लिये इसको प्राप्य अवस्था में मिट्टी में रख पाना अत्यन्त कठिन है। अमोनियम सल्फेट के साथ इसका प्रयोग लाभकर वताया जाता है।

मृदा विज्ञान के क्षेत्र में हुई शोधों से ज्ञात हुआ है कि इन तत्वों को इनके कीलेटों (Chelates) के रूप में डालना वहुत ही लाभकर है। विशेषकर जिन्क, मैंगनीज, तथा लोहा के कीलेट तो वहुत ही लाभकारी सिद्ध हुये हैं।

आज जव कि प्रति दिन नई-नई अधिक उपजाऊ किस्में निकाली जा रही हैं सूक्ष्म मात्रिक तत्वों का कुछ ही दिनों में अभाव हो जाना अवश्यम्भावी है। अतः इन उन्नतिशील जातियों से पूर्ण फायदा उठाने के लिये यह

[शेष पृष्ठ ५ पर]

विस्फोटक पदार्थों के कुछ विशिष्ट उपयोग

● डा० अरुणकुमार सक्सेना

डाइनामाइट, प्लास्टिक जेली तथा टी० एन० टी० आदि विस्फोटक पदार्थों की विध्वंसक-क्षमता को देख-सुन कर लोगों के दिल काँप उठते हैं। इन पदार्थों से बने अस्त्र देखते-देखते बड़ी से बड़ी तथा मजबूत से मजबूत इमारत को क्षरण भर में धराशायी कर देते हैं। बड़े से बड़े पुल जो वर्षों के अथक परिश्रम से बनाये जाते हैं, वे पलक मारते भू-लुण्ठित हो जाते हैं। यात्रियों से भरी तथा टैंकों से लदी रेल गाड़ियाँ क्षरण भर में ताश के पत्तों के घर के समान नष्ट हो जाती हैं।

किन्तु शायद आपने कभी ध्यान नहीं दिया होगा कि ये पदार्थ उपयोगी भी हो सकते हैं! शायद आप इसे मानने के लिए तैयार भी न हों! किन्तु इन विस्फोटक पदार्थों के कुछ विशिष्ट उपयोग भी हैं, जिनसे मनुष्यों का उपकार भी होता है। जंगलों में बड़े-बड़े वृक्षों के काटने के पश्चात् जो ठूंठ बच रहते हैं, उनको भी इन पदार्थों की सहायता से अल्प समय में एवं नगण्य दामों में ठेकेदार निकलवा कर लाभ उठाते हैं। ये उपयोग कई प्रकार के हैं:

१– शंकु घान या आकृति मूलक घान

२– भू-दोलनी सर्वेक्षरण

३– धातु का काम

४– जल के भीतर विस्फोट

शंकुघान या आकृतिमूलकघानः इसको मुनरो नामक वैज्ञानिक ने १८८८ ई० में अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पर आधारित द्वितीय महायुद्ध के दौरान निकाला था। उन्होंने इसका उपयोग मोटी-मोटी इस्पात की चादरों को कम समय में छेद करने के लिये किया था, जो आगे चल कर बज़ूका तथा PIAT आदि आधुनिक अस्त्रों को तैयार करने में सहायक हुआ। इन अस्त्रों की भेदन शक्ति इतनी अधिक होती है कि ये देखते-देखते पैटन टैंकों को भी कुछ ही क्षरणों में भेद कर बेकार कर देते हैं। इसमें शंकु के आकार इस्पात के अत्यन्त कठोर टुकड़ों के पीछे बहुत ही अधिक विस्फोटक शक्ति वाले विस्फोटक पदार्थ रखे जाते हैं। इन अस्त्रों को जब छोड़ा जाता है, तो शंकु वाला भाग विस्फोटक की सहायता से अपनी धुरी पर तेजी से नाचता हुआ इस्पात की चादरों में क्षरण भर में छेद कर अन्दर चला जाता है। आजकल इस सिद्धान्त का उपयोग कुए का मोहरा (well Casing) तथा खुली भट्टी के टैपिंग में होता है।

भू-दोलनी भविष्यवाणीः पृथ्वी में धातुओं तथा तेल के भण्डारों का पता लगाने के लिए सैकड़ों फुट गहराई तक पृथ्वी की जाँच की जाती है। भू-गर्भ वैज्ञानिक दिन-रात धातुओं तथा तेल के भण्डारों की खोज कर रहे हैं। इस कार्य के लिए भूकम्प के धक्के वाले मूल-सिद्धान्त पर आधारित तरंगों का उपयोग किया जाता है। इन प्रयोगों में वे पृथ्वी के भीतर सैकड़ों फुट नीचे विस्फोट कराते हैं तथा उनसे निकली हुई ध्वनि तथा कम्पन तरंगों को अपने उपकरणों से लेखापत्र पर अंकित कर लेते हैं। फिर व्याख्या करके पृथ्वी में लुप्त धातुओं तथा तेल को ज्ञात कर लेते हैं। इस प्रयोजन के लिए अमोनियम नाइट्रेट से बने विस्फोटक पदार्थों को बन्द कनस्टरों में गहराइयों में ले जाकर विस्फोट कराते हैं तथा उनसे उठे स्थिर-जल-दाब को नाप लेते हैं।

धातु का कामः आजकल विभिन्न प्रकार की धातुयें उपलब्ध हो रही हैं जो अत्यधिक कठोर होती हैं। उनको

मशीनों से एक विशेष आकार में ला पाना एक टेढ़ी खीर है। इन क्रियाओं तथा कार्यों के लिए विशेष प्रकार की बड़ी-बड़ी, मँहगी मशीनों को कार्य में लाना पड़ता है। यह कार्य इन विस्फोटक पदार्थों के द्वारा अत्यन्त आसानी से सम्पन्न हो जाता है। खुदाई भी आजकल इन पदार्थों के द्वारा आधुनिक रीति से हो रही है।

जलगत विस्फोट : आबादी बढ़ रही है। यातायात बढ़ रहा है। माल की खपत भी अपने पुराने रिकार्डों को तोड़ चुकी है। जहाज भी बड़े बन रहे हैं। ये बड़े-बड़े जहाज पुराने बन्दरगाहों के लिए एक समस्या बन गये हैं। आजकल बन्दरगाहों को भी गहरा किया जा रहा है जिससे बड़े से बड़े मालवाहक जहाज सीधे बन्दरगाहों पर सामान शीघ्रता से उतार सकें। इसको दृष्टि में रखते हुए पानी के अन्दर मोटी-मोटी चट्टानों को काटने के लिए विस्फोटकों का प्रयोग किया जा रहा है। रिपल राक बन्दरगाह से जो ब्रिटिश कोलम्बिया के सीपूर जलमध्य में हैं से ३,७०,००० टन चट्टानें इन विस्फोटकों की सहायता से उड़ा कर निकाली गई हैं और इन्हें बड़े-बड़े मालवाहक जहाजों के योग्य बना दिया गया है।

● ●

[पृष्ठ ३ का शेषांश]

आवश्यक है कि हमारे किसानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाय। इनके द्वारा जनित रोगों इनकी प्राप्यता को प्रभावित करने वाले कारकों एवं न्यूनता को दूर करने के लिये उपायों के बारे में किसानों को जानकारी दी जाय। किस फसल एवं किस मिट्टी में कितनी मात्रा किसी तत्व की डालनी है यह भी एक आवश्यक विषय है क्यों कि कमी के अलावा इनकी अधिकता भी पौधों एवं उनको खाने वाले पशुओं के लिये हानिकर है।

● ●

पोषण सम्बन्धी पाँच योजनायें

अमरीका की सहायता से भारत से निम्नवेतन भोगी व्यक्तियों के भोजन में सुधार की पंचसूत्री योजना कार्यान्वित होगी। इसके अंग होंगे :—

- नमक के साथ लोह तथा कैल्सियम की मिलावट
- आटा के साथ प्रोटीन, खनिज तथा विटामिनों का मिश्रण
- चाय बनाने के लिये दूध के स्थान पर ऐसी औषधि का प्रयोग जिसमें वानस्पतिक प्रोटीन होंगे
- आधुनिक बेकरियों (पावरोटी की शालाओं) से शृंखलित सूचना कार्यक्रम
- खाद्य विश्लेषण के लिये प्रयोगशालाओं की स्थापना करते समय आवश्यक उपकरण।

लोमहर्षक प्राणि लेखमाला–२

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

• रामेश वेदी

शरीर की बनावट: गैण्डे का भार सामान्यतया दो-तीन टन होता है। उगाण्डा में एक सफेद मादा गेण्डा पकड़ी गई थी जिसका वजन साढ़े-तीन टन के लगभग था। अनुमान है कि धरती पर यह सबसे भारी जीवित प्राणी है। दो साल के बच्चे का भार लगभग आधा टन होता है। भारी-भरकम शरीर की तुलना में इसका कद छोटा होता है। एशिया की जातियों में भारत का एक सींग वाला गेण्डा सबसे बड़ा गेण्डा है। कन्धे पर इसकी कुल ऊँचाई लगभग छह फुट होती है। थूँथनी से लगा कर पूंछ के सिरे तक की लम्बाई साढ़े दस फीट होती है। दोनों टाँगे जहाँ शरीर के साथ मिलती हैं वहाँ खाल की तहें ऐसी दीखती हैं मानों ढालों की तहें मढ़ी हों। खाल बहुत मोटी, कवच जैसी और काले-सलेटी रंग की होती है जिस पर बाल इतने विरल होते हैं मानों हो ही नहीं। हाँ कान और पूँछ पर बाल उगे रहते हैं।

गैण्डे के पैर छोटे और गठीले होते हैं। प्रत्येक पैर में तीन अंगुलियाँ होती हैं जो खुरनुमा नाखून में समाप्त होती हैं। तीसरी या बीच की अँगुली सबसे अधिक उन्नत होती है। गेण्डे के नाखून हाथी के नाखून जैसे लगते हैं।

इस पशु में हँसलियाँ (Collar bones) नहीं होतीं। सिर बड़ा और आँखें छोटी होती हैं। मुँह भद्दा-सा दीखता है। उसके ऊपर संगीन सरीखा निकला हुआ सींग भयानक जान पड़ता है। दूर से देखने पर नर और मादा गेण्डे में कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता क्योंकि दोनों की थूँथनी पर एक ही जैसा सींग उगा होता है।

गेण्डे के सींग की रचना अन्य पशुओं के सींगों से बिलकुल भिन्न होती है। वास्तव में यह सींग न हो कर आपस में मिल कर चिपके हुए बालों का एक समूह है जो बहुत कठोर बन गया होता है। ये बाल शृंग तन्तुओं के एक साथ मिल जाने से बने होते हैं। यह सींग कपाल की हड्डी से जुड़ा हुआ नहीं होता, जैसे कि ढोर-डंगर तथा मृगों के सींग हड्डियों के साथ की बढ़ी हुई रचनाएँ होती हैं। गेण्डे का सींग अधिक चर्मीय होता है और माँस के अन्दर तक गया होता है। धकेला जाने पर यह बाँये-दायेँ मामूली सा हिल सकता है। जोर की चोट लगने पर यह टूट जाता है। चोरी-छिपे शिकार करने वाले सींग की जड़ में लाठी से कस कर प्रहार करके इसे तोड़ लेते हैं। फलस्वरूप बने ज़ख़म में से बहुत खून बहता है। एक वरस के भीतर ही वहाँ नया सींग उगना शुरू हो जाता है। सींग की लम्बाई एक-डेढ़ फुट होती है। औसत सींग आठ इंच से बड़ा नहीं होता। भारतीय गेण्डे का सबसे बड़ा सींग चौबीस इंच लम्बा देखा गया है जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। दिल्ली के चिड़िया घर में 'मोहन' नामक गेण्डे का सींग छह इंच से बड़ा नहीं होगा। अफ्रीका में पाये गये रहाइनोसिरोज सुमात्रेन्सिस के सींग से भारतीय गेण्डे को ईर्ष्या हो सकती है। यह बत्तीस इंच लम्बा था।

आत्मरक्षा या दुश्मन पर हमला करने के हथियार के रूप में भारतीय गेण्डे अपने सींग का प्रयोग नहीं करते। हाँ, अफ्रीकी गेण्डा इस्तेमाल करते हैं। भारतीय गेण्डे के ऊपरले और निचले जबड़े में जो कुतरने वाले दाँत रहते है, उनसे वह अपने दुश्मन को काटने की कोशिश करता है। इस प्रक्रिया में वह सिर को ऊपर धकेलता है। इससे यह कल्पना कर ली जाती है कि वह सींग मार रहा है। इसके विपरीत अफ्रीकी गेण्डे के जबड़े छोटे रहते हैं और उसमें भारतीय गेण्डे जैसी शक्तिशाली दाढ़ों का अभाव होता है।

अफ्रीकी गेण्डे के लिये सींग एक हथियार है। वह उसे घिस कर सदा पैना रखता है परन्तु भारतीय गेण्डा ऐसा नहीं करता है और न ही उसे इसकी आवश्यकता होती है। हाँ भारतीय गेण्डे को हमने चिड़िया घरों में कई बार दीवार के साथ या सीखचों के साथ सींग को रगड़ते हुए देखा है। उसका कारण सींग की जड़ में लगे वे पराश्रयी होते हैं जो खुजली पैदा कर रहे होते हैं। गेण्डा केवल खुजलाहट को मिटाने के लिए सींग को रगड़ना है। शिकागो के ब्रिकफील्ड चिड़ियाघर में भारतीय गेण्डे का जोड़ा सींगों को रगड़ा करता था। चिड़िया घर के सहायक संचालक राल्फ ग्राहम ने कीचड़ में पराश्रयियों को मारने को कुछ दवाएं मिला कर सींग पर लगा दीं। इससे उनकी सींगो को घिसने की आदत छूट गई थी तथा उनके सींग भी ठीक तरह से बढ़ने लगे।

मेन विश्वविद्यालय के एक अमेरिकी जीवशास्त्री डाक्टर डब्ल्यू० एफ० डोव ने १९३३ ई० में एक अमेरिका बैल के मस्तक पर मामूली सा आपरेशन करके यह सिद्ध कर दिया था कि पशुओं के मस्तक पर गेण्डे (युनिकार्न-एक श्रृंगी) के सींग जैसा सींग उगाया जा सकता है।

शाकाहारी प्राणी: गेण्डा शाकाहारी प्राणी है। प्रकृति में यह वृक्षों की टहनियाँ, कोपलें, जड़ें, बेलें, घास आदि खाकर गुजर करता है। चारा खाने में ऊपर का ओठ अधिक काम आता है इसलिए वह बहुत मजबूत होता है। आहार के भेद के अनुसार गेण्डे के विभिन्न जातियों के ओठों की रचना में अन्तर होता है। अफ्रीकी काला गेण्डा क्योंकि कोपलों को बहुत कुतर कर खाता है इसलिये उसका ओंठ मुड़ा हुआ रहता है। भारतीय गेण्डे के समान अफ्रीकी सफेद गेण्डा घास को चरने वाला प्राणी है इसलिए उसके ओंठ चौकोर होते हैं।

देहली की पशु वाटिका में मोहन नामक गेण्डे के भोजन में घास, चोकर, चना, जई, सब्जियाँ, फल, वृक्षों की पत्तियाँ और कोमल शाखाएं रहती हैं। सुबह नौ बजे उसे सूखा आहार दिया जाता है जिसमें हरा चारा और पत्ते रहते हैं। हरे चारे में ज्वार, जई आदि की चरी ढाई सौ किलो ग्राम और किसी पेड़ के ताजे काटे हुए पत्ते सौ किलो ग्राम रहते हैं। पीपल, बरगद, जामुन, इमली आदि तीस-पैंतीस प्रकार के पेड़ हैं जो इसके भोजन के काम आते हैं। राजधानी में इनमें से जो मिल जाता है वह मँगा लिया जाता है। नीम पत्तियों को यह इतना शौक से नहीं खाता।

हरे चारे के अलावा सुबह के भोजन में यह मिश्रण भी इसे दिया जाता है:

भीगा चना	डेढ़ किलोग्राम
गेहूँ का चोकर	डेढ़ किलोग्राम
जई और जौ	डेढ़ किलोग्राम
गुड़ (केवल सर्दियों में)	आधा किलोग्राम
हल्दी पिसी हुई	पचास ग्राम
फ़ीड सप्लिमेंन्ट	पैंतीस ग्राम
हड्डियों का चूरा (बौन मील)	पैंतीस ग्राम
औरो फेक	पैंतीस ग्राम

दोपहर ढाई बजे उसे खिचड़ी दी जाती है जिसमें ये चीजें डाली जाती हैं :—

चावल	२ किलोग्राम
मूँग की दाल	आधा किलोग्राम
अलसी के बीज	एक पाव
हल्दी	पचास ग्राम
गुड़	आधा किलोग्राम

गेण्डे का पालक सुबह के सूखे भोजन मिश्रण में से

आधा बचा लेता है। उसे खिचड़ी में मिला कर गोले बना लेता है। बाड़े के बाहर पालक जब गोले बना रहा होता है तो तसले की आवाज सुनकर मोहन स्वयं वहाँ पहुंच जाता है और पालक के हाथ से गोले खाता है।

मोहन की आहार तालिका में छह केले प्रति दिन सम्मिलित किये जाते हैं। पशु वाटिका में जब कोई बिमारी (वायरस इन्फेक्शन) फैलने वाली होती है तो उसकी रोकथाम के उपायों में सभी पशु पक्षियों को एण्टिबायोटिक दवा दी जाती है। गेण्डे को यह दवा केले के अन्दर रख कर खिला देते हैं। सावधानी के रूप में साल में दो-तीन बार इसका चार-चार दिन का कोर्स मोहन को दे दिया जाता है।

आदतें: गेण्डा रात में विचरने वाला जीव है। यह गरमी और लू जल्दी खा जाता है इसलिये दिन भर अपनी ठण्डी माँदों के अन्दर कीचड़ में लेटा रहता है। गेण्डों का नित्यकर्म सूरज छिपने से पहले ही शुरू हो जाता है। वे अपनी मांदों से निकल कर घास के मैदानों में चरने या जल धाराओं में पानी पीने निकल पड़ते हैं। इनमें झुण्ड में रहने की बुद्धि नहीं होती। ये जोड़ों में रहते हैं। बड़े हो जाने पर बच्चे मां-बाप से अलग हो जाते हैं। अपवाद रूप से चार पांच गेण्डे भी एक साथ चरते हुए मिल जाते हैं। एक बार सात गेण्डे एक जगह चरते हुए देखे गये थे। ये एक परिवार या एक गिरोह के सदस्य नहीं थे क्योंकि विभिन्न दिशाओं से चरते हुए ये वहाँ अचानक आ मिले थे। छेड़ा जाने पर ये सातों अलग-अलग दिशाओं में चले गये।

स्वभाव से यह डरपोक जानवर है। मनुष्य को कम ही मारता है परन्तु घायल और क्रुद्ध हो जाने पर सुअर की तरह गुरगुराता हुआ बड़ा भयंकर हमला करता है। यह सचमुच प्राचीन युग के प्राणियों की याद दिलाता है जिनमें देह तो खूब विशाल बन गई होती है परन्तु उसकी तुलना में मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ होता।

गेण्डे की दृष्टि इतनी तीव्र नहीं होती परन्तु ऐसी कमजोर भी नहीं होती। पकड़ने की प्रक्रियाओं में देखा गया है कि ट्रक के पार्श्व में यदि बिस्कुट के बराबर एक निशान हो तो उसे वह पचीस गज दूर से देख कर अपने सींग से निशाना साध सकता है।

दूसरे चौपाये के समान गेण्डा भी उछलता हुआ बड़े वेग से भाग सकता है कूद सकता है, ट्विस्ट कर सकता है और झटपट मुड़ सकता है। हाथी इनमें से कुछ नहीं कर सकता। बड़ा आकार और शरीर होने के बावजूद भी भारतीय गेण्डा काफी तेज भाग सकता है।

गेण्डों की आपस में भयंकर लड़ाई नहीं होती कि उनकी जान चली जाय या इसमें वे भयंकर रूप से घायल हो जायँ।

पानी से प्यार: गेण्डा पानी वाली जमीन में रहना पसन्द करता है। पशु-वाटिकाओं में उसे इसी प्रकार का स्थान दिया जाता है। लखनऊ की पशु-वाटिका में इसका बाड़ा एक आदर्श प्राकृतिक आवास बन गया है। पशु-वाटिकाओं में देखा गया है कि सरदियों में तो यह अपने बाड़े में इधर-उधर घूमता है या धरती पर लेटा रहता है, परन्तु मार्च में गरमी शुरू होते ही यह बाड़े के जोहड़ में घुस जाता है और भैंसों की तरह अपने शरीर को सारा का सारा पानी में डुबो लेता है। केवल थूथनी और आँखें बाहर रखता है जिससे ताजी हवा में साँस ले सके। थूँथनी पर बैठने वाली मक्खियों को कानों से उड़ाता रहता है। बरसात में भी यह जब कीट-पतंगे परेशान करते हैं तो यह अपना अधिक समय जोहड़ के अन्दर गुजारता है। पानी से बाहर विचरते समय यह मक्खियों व मच्छरों के दंश से बचने के लिए अपने शरीर पर कीचड़ लपेटे फिरता है।

गेंडे कम क्यों हो गये: इस उपमहाद्वीप के अधिक भागों से गेण्डे के लुप्त होने के मुख्य कारण निम्नलिखित प्रतीत होते हैं :—

१. सुनने और देखने की कम शक्ति।

२. मन्द बुद्धि और मूर्खता। जब तक खतरा सिर पर न आ जाय यह बुद्धुओं की तरह चरता चला जाता

[शेष पृष्ठ १३ पर]

बागवानी

• डा० शिवगोपाल मिश्र

दिनों दिन शहरों में खुली जगहें विलुप्त होती जा रही हैं। जहाँ देखिये वहीं ऊंची-ऊंची इमारतें जन्म ले चुकी हैं। किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि बिना खुली जगह के मुक्त ढंग से श्वास ले पाना सम्भव हो सकेगा ? नगरों की आयोजना करते समय आयोजकों के समक्ष यह विकट समस्या है। वे अधिकाधिक मुहल्लों में कम से कम एक केन्द्रीय पार्क की संस्तुति करते हैं जहाँ प्रातः एवं सायंकाल नागरिक खुली हवा में जाकर साँस ले सकें। सुखी एवं स्वस्थ जीवन के लिए खुली हवा अत्यावश्यक है। दिन के समय इसकी प्राप्ति उद्यानों या बगीचों में हो सकती है। किन्तु क्या इतने से सारी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है ! नहीं, प्रत्येक घर से लगा हुआ बगीचा होना ही इस पूर्ति का सर्वोत्तम उपाय होगा। किन्तु क्या दुमंजिले, तिमंजिले या इससे ऊपर के खण्डों को भी नीचे लगे हुये बगीचे से उतना ही लाभ मिल सकेगा ! उत्तर होगा 'नहीं'। तो फिर ऊपरी मंजिलों पर रहने वालों के लिये बगीचे के साधन कैसे जुटाये जायँ ! आइये, हम ऐसी ही पहेलियों एवं गुत्थियों को सुलझाने में रसायन के योगदान की चर्चा करें।

उद्यान अथवा बगीचा लगाने तथा उसकी देख-भाल करने का कार्य अत्यन्त रोचक होता है। उद्यान से घर की शोभा बढ़ती है, स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है और बैठे-ठाले खाने की चीजें उत्पन्न की जा सकती हैं। प्रातः काल पुष्पों तथा वृक्षों के बीच घूमने से ताजी हवा मिलती हैं, आँखों में तरावट आती है और जो कवि-हृदय हैं उनके लिये पुष्पों का खिलना, भौंरों तथा तितलियों का उड़ना आदि कल्पना के लिये सामग्री प्रदान करते हैं। दिन भर की थकावट को दूर करने का उत्तम साधन है घर के उद्यान में घूमना और बेकार समय में कार्य करके कुछ उत्पादन करना।

अवश्य ही यह उद्यान-विज्ञान का अनुभूत्यात्मक पक्ष है। इसका वैज्ञानिक पक्ष और भी ज्ञानवर्धक है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह न जानना चाहेगा कि उद्यान विज्ञान के अन्तर्गत कौन सा रसायन शास्त्र निहित है, पौधे कैसे उगते हैं, उर्वरक क्या हैं, विभिन्न कीटों तथा रोगों का पदार्थों पर क्या कुप्रभाव हो सकता है और सर्वोपरि यह कि क्या मिट्टी के बिना भी बाग-वानी सम्भव है ! दूसरे शब्दों में हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या ऊंची मंजिलों पर रहने वाले लोग भी बागवानी कर सकते हैं ?

जिसमें रसायन शास्त्र की पहुँच है, उद्यान विज्ञान का वह पक्ष है पौदों की वृद्धि। पौदों की वृद्धि स्वयं एक रासायनिक प्रक्रम है। इसमें मिट्टी के अवयव एवं वायु के अवयव भाग लेते हैं। सूर्य का प्रकाश भी कम महत्व-पूर्ण नहीं है। जिन अवयवों की मिट्टी में न्यूनता होती है उनकी सम्पूर्ति उर्वरकों द्वारा की जा सकती है। यही कारण है कि चाहे खेती हो या बागवानी; दोनों ही में उर्वरकों का अत्यधिक महत्व एवं उपयोग है। इस प्रकार थोड़ी मिट्टी से दीर्घ काल तक पौधों को पोषण मिलता रह सकता है।

पौदे उगते रहते हैं तभी उन पर नाना प्रकार के

कीट एवं अन्य व्याधियों का आक्रमण हो सकता है। किन्तु आधुनिक युग में इन आक्रमणों से बचाव के लिए अनेक उपयोगी रासायनिक औषधियाँ खोज निकाली गई हैं जिसके फलस्वरूप अब न तो पौदों का रस परपोषी चूस सकते हैं और न पौदा व्याधियों से ग्रस्त होकर नष्ट हो सकता है।

और तो और कृत्रिम पोषण के द्वारा पौधों के विकास के लिए मिट्टी अनावश्यक सिद्ध हो चुकी है जिसके फलस्वरूप धरती पर बागवानी करना आवश्यक नहीं रह गया। अब तो कितनी भी ऊँचाई पर फूल उगाइये, तरकारियाँ उत्पन्न कीजिये। यही नहीं, रेगिस्तान में भी खेती कीजिये। यह है रसायन शास्त्र का चमत्कार जिसकी ओर रूस, पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया, अमरीका, जापान इंगलैंड आदि का ध्यान गया है। जिन देशों में खेती योग्य भूमि सीमित है उनके लिये मृदाहीन बागवानी वरदान सिद्ध हो सकती है।

मिट्टी परीक्षण–अत्यावश्यक

बाग अथवा उद्यान की स्थापना किसी भूखंड में ही किये जाने की सम्भावना है किन्तु जिससे कि लगाये गये पेड़ पौधे तथा फूल पत्तियाँ ढंग से उगें और बढ़ें यह आवश्यक है कि उस भूखंड की मिट्टी का परीक्षण करा दिया जावे। यह मिट्टी परीक्षण वह साधन है जिसके आधार पर कृषि रसायनज्ञ यह बता पाने में समर्थ होते हैं कि अमुक भूमि पर पेड़-पौदे उग सकेंगे या नहीं। आजकल कृषि के अन्तर्गत खेतों की मिट्टी-परीक्षा पर काफी बल दिया जाता है। इससे यह पता चल जाता है कि मिट्टी में कौन कौन से अवयव सीमित मात्रा में हैं और कौन से अधिक मात्रा में। यदि आवश्यक तत्वों में से कोई भी तत्व या कई तत्व न्यून मात्रा में हों तो उनकी पूर्ति रासायनिक उर्वरकों के द्वारा की जाती है। भारतवर्ष में नाइट्रोजन उर्वरकों को तैयार करने के कई कारखाने चालू हो गये हैं जिससे किसानों को अपने खेतों में कई गुनी उपज प्राप्त करने में सहायता मिलती है। यही नहीं फास्फोरस उर्वरक भी हमारे देश में तैयार होने लगे हैं। कुछ मिट्टियों में पोटैशियम की न्यूनता हो सकती है। इसी प्रकार कुछ मिट्टियाँ अम्लीय हो सकती हैं, तो कुछ क्षारकीय या लवणीय। ऐसी मिट्टियों में खेती करने के पूर्व इन्हें सुधारने की आवश्यकता होती है। यह कार्य यदि मिट्टी अम्लीय हुई तो चूने के प्रयोग द्वारा पूरा किया जाता है। यदि मिट्टी में तनिक भी अवांछित अम्लता या क्षारीयता विद्यमान रहे तो पौदे नहीं उग सकते। कभी कभी मिट्टी में कुछ ऐसे तत्वों की न्यूनता हो सकती है जो पौदों के लिये आवश्यक तो होते हैं किन्तु अत्यल्प मात्रा में। ऐसे तत्व 'सूक्ष्म मात्रिक तत्व' कहलाते हैं और मिट्टी में ठीक से प्राप्य न होने पर पौदों तथा फसलों में नाना प्रकार के न्यूनता रोग उत्पन्न कर सकते हैं। फलतः एक ओर जहाँ नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम जैसे त्रितत्वों की आवश्यकता है वहीं कैलशियम, मैग्नीशियम जैसे तत्व भी उपयोगी हैं। सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में बोरन, जिंक, ताम्र, लोह, मैंगनीज तथा मालिब्डनम ये छह तत्व प्रमुख हैं। इन तत्वों के अतिरिक्त भी पौदों की वृद्धि के लिये पृथक से कुछ कारकों की आवश्यकता होती है। इनमें से आर्द्रता (जल), कार्बन डाइ आक्साइड, सूर्य प्रकाश (ताप) प्रमुख है। साथ ही कुछ हार्मोन भी हैं जो पौदों की वृद्धि को नियन्त्रित करते हैं। इन्हें फायटोहार्मोन या वृद्धि नियामक कहते हैं।

रसायनिक बागवानी

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह धारणा बननी स्वाभाविक है कि मिट्टी तो निमित्त मात्र है। यदि समुचित तत्वों का एक मिश्रण तैयार करके पर्याप्त जल में विलयित कर लिया जाय तो वह पौदों की वृद्धि में सहायक हो सकता है। जब इस प्रकार से कृषि की जाती है तो उसे मृदा विहीन पादप कृषि अथवा रासायनिक बागवानी कहते हैं। यह विज्ञान के साथ ही कला है। इस कला के जनक हैं कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० विलियम एफ० गेरिक। उन्होंने १९२९ ई० में ऐसी कला के लिये

जो नाम प्रस्तावित किया था वह था जलकृष्टि (hydroponics)। वास्तव में हाइड्रोपानिक्स का शाब्दिक अर्थ जल के द्वारा कार्य है। यद्यपि जल संवर्द्धों का प्रयोग सर्वप्रथम १८६० ई० में एक जर्मन कृषि रसायनज्ञ नाप (Knop) तथा एक वनस्पति शास्त्री सैच (Sachs) द्वारा किया गया किन्तु व्यापारिक स्तर पर जल संवर्द्धों को फसल उगाने के लिये प्रयुक्त करने का श्रेय गेरिक को ही है।

हाइड्रोपानिक्स वह कला है जिसके द्वारा मिट्टी के बिना ही पौदों को उगाया जा सकता है। इस विधि से पौदे उगाने के कई लाभ हैं :

(अ) पौदों को घर में उगाया जा सकता है

(आ) ऐसे पौदों की वृद्धि अधिक, फल बड़े और फूल अधिक सुन्दर होते हैं।

(इ) पौदों को उगाने के लिये आवश्यक रासायनिक उर्वरकों का मूल्य खेतों में उगाने की अपेक्षा कम होता है

(ई) पौधे पर कीटों के आक्रमण तथा मिट्टी से उत्पन्न होने वाले रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(उ) उगाये गये फल तथा अन्नों का स्वाद अच्छा तथा कोटि उत्तम होती है।

(ऊ) साल में कई फसलें ली जा सकती हैं और ऋतु-कुऋतु में पौदे उगाये जा सकते हैं।

एक प्रकार से आत्मनिर्भरता सम्बन्धी यह श्रेष्ठतम प्रयोग है जिसमें वैज्ञानिकों को आशातीत सफलता मिली है, जिन देशों में सीमित कृष्य भूमि है वहाँ पर हाइड्रोपानिक्स द्वारा उपज बढाई जा सकती है।

उपस्करों की आवश्यकता

हाइड्रोपानिक्स के प्रचार हो जाने पर यह जानना आवश्यक हो गया कि इस प्रकार से उगाई गई फसलें खेतों में उगाई गई फसलों से टक्कर ले सकती हैं या नहीं ! अमरीका में जो प्रयोग किये गये हैं वे अत्यन्त उत्साहवर्द्धक हैं। किन्तु समस्या है कि बिना मिट्टी के फसलों के उगने के कार्य को कैसे अग्रसर किया जाय। निस्संदेह पोषण सम्बन्धी पूर्ण जानकारी होते हुये भी सबसे आवश्यक समस्या तो रह ही जाती है। वह है उपयुक्त पात्र जिनमें फसलें उगाई जायें या पेड़-पौदे लगाये जायें। इन पात्रों के क्या आकार हों, इनमें पोषण कैसे भरा जाय और फिर बीजों को किस प्रकार उगने दिया जाय—ये प्रमुख समस्यायें थीं। इन सबों के सम्बन्ध में प्रयोगों द्वारा समुचित जानकारी एकत्र की गई। किसी भी शौकिया या पेशेवर बागवान को चाहिए कि जितना भी साहित्य इस सम्बन्ध में उपलब्ध हो उसको पढ़े और कार्य रूप में परिणत करे।

पात्रों की समस्या : आधान अथवा पात्रों का आकार-प्रकार बोई जाने वाली फसल या पौदे की संख्या पर निर्भर करेगा - ये पात्र सिद्धान्त रूप में किसी भी आकार के हो सकते हैं। ये लकड़ी, धातु, इनैमेल, कांच या चीनी मिट्टी में के किसी भी सामग्री के बने हो सकते हैं। ये सीमेंट तथा अलकतरा के भी बने हो सकते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई सुविधानुसार (स्थान के अनुसार) कुछ भी हो सकती है किन्तु गहराई के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध हैं। सबसे उपयुक्त गहराई ६"मानी गई है। केवल गहरी जड़ों वाले बहुवर्षियों के लिए ही इससे अधिक गहरे पात्रों की आवश्यकता होगी।

बीज शय्या: यह वह जाली है जो पात्रों के मुख पर फैलाई रहती है। यह जाली लोहे की तारों की होती है। इसे इतनी दृढ़ होना चाहिए कि यह पौदों और बिछावन (शय्या) के भार को सहन कर सके। शय्या के रूप में खर पतवार, तिन, बुरादा आदि का प्रयोग होना चाहिए। इसमें बीजों को बो कर उन्हें सूर्य के प्रत्यक्ष प्रकाश से सुरक्षित रखा जाता है। इस बीज शय्या के कई उपयोग हैं :

१. यह पौदों को आश्रय प्रदान करती है

२. यह बीजों को उगने के लिये तथा जड़ों के द्वारा ग्रहण होने वाली आर्द्रता को अवशोषित किये रहती है।

३. यह पौदों के निचले हिस्सों एवं पोषण विलयन तक वायु के आवागमन को प्रोत्साहित करती है।

४. यह जड़ों को सूर्य-प्रकाश से बचाती है।

५. यह खनिज खाद्यों एवं कार्वनिक पदार्थों की भी पूर्ति करती है।

इस प्रकार यह मिट्टी को स्थानापन्न करती है।

वीज शय्या का उपयुक्त आकार ६–१२ फुट लम्बा तथा २ से ४ फुट तक चौड़ा माना गया है। ध्यान रहे कि बीज शय्या में नमी अधिक न रहे नहीं तो पौदे ठीक से नहीं उगेंगे। यह वीज शय्या नये पौध के लिये नर्सरी का काम करती है। कभी कभी इस पर बालू की परत बिछाई जा सकती है, अधिकांशतः रासायनिक बागवानी करते समय पौदों को मिट्टी या बालू में अलग उगने दिया जाता है और बाद में बेड़ें लाकर लगा दी जाती हैं। ज्यों-ज्यों पौदे बढ़ते हैं उनकी जड़ें पात्र में भरे पोषण विलयन की ओर बढ़ती हैं। प्रारम्भ में पात्र के भीतर विलयन का स्तर ऊपर रखा जाता है और धीरे धीरे उसे नीचे लाया जाता है जिससे जड़ें बढ़ सकें और वायु में श्वास ले सके।

पोषण विलयन

पात्र में भरा जाने वाला विलयन संस्तुत तत्वों से युक्त होना चाहिए। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, पौदों को वृद्धि के लिए कई तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। इन तत्वों को लवण के रूप में, जो जल विलेय हों, चुना जाता है। फिर इनकी मात्रायें स्थिर की जाती हैं। विलयन में इन तत्वों की निरन्तर सम्पूर्ति बनाये रखने के लिये विशिष्ठ आयोजन करने होते हैं। एक प्रतिनिधि पोषण विलयन की संरचना निम्न प्रकार होगी:

कैल्सियम नाइट्रेट	११८ ग्राम प्रति लीटर
मैग्नीशियम सल्फेट	४९ ग्राम ,, ,,
पोटैशियमफाडाइहाइड्रोजन फास्फेट	२९ ग्राम ,, ,,

इनके अतिरिक्त लोह, ताँबा, जिंक आदि तत्वों की सूक्ष्म मात्रायें उपयुक्त लवण रूप में मिश्रित कर दी जाती हैं। पूरे पोषण विलयन की लवणीयता को १५००–२५०० अंश प्रति दशलक्षांश के बीच स्थिर रखना पड़ता है। विलयन को उपयुक्त पी-एच० पर भी लाना होता है। अधिक ठंडे प्रदेशों में विलयन को गरमाने की भी आवश्यकता पड़ती है। यह कार्य पात्र के भीतर विद्युत केबिल बिछाकर सरलता से सम्पन्न किया गया है। सर्वप्रथम १९३४ ई० में इस प्रकार के प्रयोग हुये। इसके अलावा पात्रों को उष्ण पौध गृहों (Green house) में भी रखा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि विलयन को पहले वायलर में गरम करके तब पात्रों में पहुँचाया जाय।

पात्रों के भीतर स्थिर सान्द्रता वाले पोषण-विलयन को पहुँचाने का कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। प्रायः पात्रों के निचले भाग एक पाइप द्वारा जुड़े रहते हैं जिससे होकर विलयन पहुँचाया जाता है।

वातनः यह आवश्यक है कि विलयन के भीतर वायु के आवागमन की यथेष्ट योजना रहे क्योंकि विना आक्सीजन के पौदे की जड़ें वृद्धि नहीं कर सकतीं। इस उद्देश्य से पात्रों में भरे विलयन में वातन एक आवश्यक एवं गम्भीर समस्या है। इसके लिये सम्पीडकों द्वारा वायु को बुदबुदाया जाता है।

सम्भवतः इतना होने पर भी सूर्य के प्रकाश के बिना पौदे ठीक से वृद्धि नहीं करते अतः आवश्यक है कि जहां भी रासायनिक बागवानी अपनाई जाय सूर्य प्रकाश आता हो अथवा कृत्रिम प्रकाश की पूर्ण व्यवस्था हो। इस प्रकार से १९२७ ई० में प्रथम प्रयास गुलाब के फूल की खेती से किया गया।

किन्तु हमने जो भी वृत्तान्त दिये हैं उन्हें पढ़ कर आप यह समझ रहे होंगे कि यह कोरी बकवास होगी। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि रूस में उगाई गई ककड़ियां प्रत्येक ५.६ किलोग्राम भार की हुई और १ वर्ग मीटर मृदाविहीन बाग से ३० किलोग्राम ककड़ी की उपज मिली। इस विधि द्वारा उगाई जाने वाली तरकारियों के उत्पादन मूल्य में ३०-३५% की कमी देखी गई है। इसमें प्रत्येक वर्ष खेतों को जोतने और इन्हें तैयार करने की झंझट समाप्त हो जाती है।

बालू-संवर्द्ध

उपर्युक्त पोषण संवर्द्ध विधि में बीज शैया के लिये विशेष उपकरण की आवश्यकता पड़ती है। इसे समाप्त

करने की दृष्टि से आजकल बालू की बजरी, कोयले के चूरे आदि को आधार मानकर उनमें पोषण विलयन डालकर फ़सलें उत्पन्न की जाने लगी हैं। वास्तव में यही मृदा विहीन शस्य उत्पादन है। प्रयुक्त बालू या कोयला एक प्रकार से ऐसी मिट्टी के तुल्य है जिनमें शोषण की क्षमता नगण्य एवं जिनकी विलेयता नाममात्र की होती है फलतः पोषण विलयन द्वारा समस्त तत्वों की सम्पूर्ति की जाती है।

ऐसे बालू का प्रयोग १८४२ ई० से प्रयोगशालाओं में होता रहा है किन्तु १९२९ ई० के बाद इनका उपयोग व्यावहारिक कृषि के लिये होने लगा। पात्रों के भीतर १० फीट × २ फीट × ३ इंच बालू भर कर पोषण विलयन डाल दिया जाता है। १९३५ ई० में अत्यन्त हल्की बजरी ग्रैवेलाइट का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

हमारे देश में रासायनिक बागवानी सम्बन्धी कतिपय प्रयोग स्वर्गीय सम्पूर्णानन्द जी के प्रोत्साहन पर बनारस केन्द्र में सम्पन्न हुये। इसके लिये जिस बालू संवर्द्ध विधि का प्रयोग हुआ उसे बंगाल विधि (Bengal Method) के नाम से पुकारा जाता है। जो पात्र प्रयुक्त हुये थे वे ग्लेज युक्त गमले थे जिनकी पेंदी में एक एक छेद थे जिनसे होकर अधिक विलयन रिस सके। वातन के लिये रबर की नली में स्थान स्थान पर छिद्र बनाये गये थे।

रासायनिक बागवानी का परिवर्तित रूप हमें प्रत्येक घर की गृह वाटिका या सामने के फूल उद्यान में मिलेगा। मिट्टी के गमलों में कम्पोस्ट भर कर गुलदाऊदी, समैरिया, एस्टर आदि का उगाना या गमलों में टमाटर और बैंगन उगाना आजकल मालियों की सर्वप्रिय विधियाँ हैं। कम्पोस्ट में निहित सारे पोषण तत्व कुछ काल तक तत्वों की पूर्ति कर पाते हैं किन्तु प्रायः उनमें एक न एक तत्व की न्यूनता देखी जा सकती है। वैज्ञानिक रीति से बागवानी करते समय किसी भी अवस्था में एक भी तत्व का न्यून नहीं होने देना होता साथ ही फूलों फलों एव पौदों की रक्षा का भार सम्हालना होता है।

वही माली या शौकिया बागवान सफल हैं जो विभिन्न उर्वरकों एवं कीटनाशी औषधियों के प्रयोग द्वारा पौदों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचने देता। डी० डी० टी०, गेमेक्सिन, २-४ डी, बोर्डो मिश्रण आदि के प्रयोग उनके उपकरणों की जानकारी तथा उर्वरकों के प्रयोग सम्बन्धी गुरों को कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता रासायनिक बागवानी का मूलाधार है।

(क्रमशः)

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

है, उस पर भी भागने की बजाय यह उलट कर हमला कर बैठता है।

३—निश्चित ठिकानों पर मल विसर्जन करना। लीद के बड़े ढेरों को देख कर शिकारी उनके पास छिप कर बैठ जाते हैं और गेण्डों के आने-जाने की प्रतीक्षा करते हैं। इस पशु की यह आदत है कि लीद करने के स्थान पर यह पीठ की ओर से पहुँचता है। बस, जब यह उल्टी चाल देख कर जा रहा होता है तो शिकारी इसे मार गिराते हैं।

४—खेती के लिए जंगलों को काटना और मनुष्य द्वारा इसका संहार। असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी उन्नीसवीं शताब्दी तक मुख्यता घनी घास और जंगलों से आवृत्त थीं। दूर दर्शी औद्योगिकी को इधर चाय के बागानों के लिए उपयुक्त भूमि नजर आई। इस क्षेत्र में चाय उद्योग के बढ़ने के साथ-साथ वनों का बहुत अधिक सफ़ाया कर दिया गया। जंगली जानवर धीरे धीरे कम होते गये जिसमें गेण्डे को शिकारियों ने चोरी छिपे खूब मारा। ब्रह्मपुत्र की घाटी में तो थोड़े बहुत गेण्डे बच भी गये परन्तु गंगा की घाटी में यह पशु उन्नीसवीं शताब्दी में ही लुप्त हो गया था। १९०० तक यह केवल दक्षिणी नेपाल, उत्तरी बिहार, उत्तरी बंगाल और असम में सीमित रह गया था। जीवन-संघर्ष में जैसे दूसरे भारी भरकम शरीर वाले दैत्याकार जीव अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल नहीं रहे उसी तरह यह भी प्राकृतिक दुश्मनों से और तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों में अपनी रक्षा न कर सका।

(क्रमशः)

जीवाणु भोजी तथा उनके उपयोग

• डा० देवेन्द्र प्रसाद शर्मा

जीवाणु भोजी या बैक्टिरियल वाइरस, वाइरस की वह जाति है, जो किसी विशेष जीवाणु या अन्य जाति पर परजीवी की भाँति जीवन व्यतीत करती है। इसकी खोज स्वतंत्र रूप से एक अंग्रेज वैज्ञानिक टोर्ट (१९१५) तथा एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक डी० हेरीली (१९१६) ने की थी यद्यपि इससे भी पूर्व (१८९९) एक रूसी वैज्ञानिक डी० गेमेल को इसकी उपस्थिति का पता लग चुका था। डी० हेरीली ने पेचिस उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के सम्बन्ध में अपना कार्य १९१७ ई० में प्रकाशित किया। यह स्वयं एक रोचक घटना थी। उन्होंने पेचिस के जीवाणुओं को सर्वप्रथम मल परखनलियों में वर्द्धित किया। दूसरे ही दिन उसने चाइना केन्डिल छन्ने से छान करके उसकी कुछ बूदें पेचिस जीवाणु के नये ब्राथ माध्यम (Broth Culture) में प्रविष्ट किया। बीमारी की अवस्था में प्रवेश किया गया पेचिस का जीवाणु कुछ दिन तेजी से बढ़ा किन्तु पुनः बीमारी कम हो जाने पर माध्यम पारदर्शक हो गया। इस प्रकार मल से प्राप्त छनित ने पेचिस के जीवाणु की वृद्धि रोक दी। इस प्रकार के कारक का पहले पहल पता डी० हेरीली ने लगाया जो पेचिस के जीवाणु को नष्ट कर देता है और जो पेचिसग्रस्त प्राणी के मल में पाया जाता है। ऐसे जीवाणु को जीवाणुभोजी (Bacteriophage) नाम दिया गया।

स्वरूपः जीवाणु भोजी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं जो जन्तुओं के ग्रस्त कोशों में पहुँच कर गुणन प्रारम्भ कर देते हैं। इसके फलस्वरूप ग्रसित कोशिकाएं लयित हो जाती हैं परन्तु अन्य अनुसन्धानकर्ताओं के अनुसार जीवाणु भोजी रासायनिक कारक हैं जो संभवतः एन्जाइम के गुणों से मिलते-जुलते हैं। वाइरसों का कोई यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। यदि इन्हें इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जाय तो इनसे कई प्रकार की अंडाकार रचनायें दिखलाई पड़ती हैं। अधिकांश रूप में इनका आकार गोला या अंडाकार होता है जिससे एक भाग जुड़ा हुआ पुच्छ की भाँति प्रतीत होता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि जीवाणु भोजी में निम्नलिखित क्रियाएं स्पष्ट रूप से होती हैं :—

(१) जीवाणविक कोशिका पर फेज़ का अवशोषण।
(२) तत्पश्चात् कोशिकाओं में उनका प्रवेश।
(३) कोशिकाओं में प्रवेश करके नये फेज उत्पन्न होने की दशाएं।
(४) जीवाणविक कोशिका का लयन तथा जीवाणु भोजी का पुनः निष्कासन।

यह पता लगा है कि जीवाणु भोजी में ताप सहने की भी शक्ति विद्यमान होती है। उदाहरणार्थ लैक्टिक अम्ल के फेज़ ७०-७५° सें० ताप तक क्रियाशील अवस्था में रह सकते हैं। परन्तु इसी उच्चतम ताप पर आध घण्टे गरम करने पर उनकी क्रियाशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त फेज न्यून ताप तथा शुष्कीकरण से भी शीघ्र नष्ट नहीं होते। उनकी क्रियाशीलता पर हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (पी०एच०) का भी प्रभाव पड़ता है तथा पी०एच० ६-५ तक वे अतिक्रियाशील होते हैं।

रासायनिक संघटनः यह देखा गया है कि फेज तथा सम्बन्धित जीवाणुओं में कार्बनिक यौगिक की रचना जटिल तथा भिन्न होती है। उदाहरणार्थ फेज में शीर्ष की रचना DNA से हुई रहती है जो कुंडली के आकार का

[शेष पृष्ठ १७ पर]

अब लीजिये नया रासायनिक भोजन

● श्याम मनोहर व्यास

भूख की समस्या इस युग की सबसे बड़ी समस्या है। जनसंख्या की वृद्धि ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है! स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की जनसंख्या सन् १९५१ एवं १९६१ में क्रमशः ३६, ४४ करोड़ थी। आज वह बढ़कर ५३ करोड़ के लगभग हो गई है। भारत ही नहीं विश्व के अनेक देशों के सामने जनसंख्या गम्भीर समस्या है। विशेषकर एशियाई देशों के लिये यह चिन्ताजनक है। फिर भी वैज्ञानिक इस प्रयोग में जुटे हुए हैं कि क्या कोई ऐसा रासायनिक खाद्य तैयार किया जा सकता है जिसे ग्रहण करके मानव काफ़ी समय तक जीवित रह सके तथा अकाल की विभीषिका से अपने को बचा सके!

अमेरिका में चिकित्सा और मानसोपचार सम्बन्धी अनुसंधान करने वाली एक संस्था है वैकेविल मेडिकल इंस्टीच्यूट। यह संस्था अक्सर कारागार के बंदियों पर अपने प्रयोग किया करती है। कैलिफोर्निया के एक जेल में पन्द्रह कैदियों पर एक प्रयोग किया गया जिसका प्रयोजन था क्या मनुष्य किसी विशुद्ध रासायनिक भोजन पर जीवित रह सकता है? इन व्यक्तियों को दिन में चार बार एक रासायनिक घोल पीने को दिया गया। यह रासायनिक घोल ऐमीनो अम्लों का मिश्रण था। साथ ही इस घोल में वे सभी पौष्टिक तत्व विद्यमान थे जो मानव जीवन के लिये आवश्यक हैं, जैसे विटामिन, कार्बोहाइड्रेट खनिज लवण आदि। यह घोल ठण्डा, स्वाद में मीठा और गाढ़ा था। इसमें सभी रासायनिक तत्व व यौगिक उचित मात्रा में तौल कर या नाप कर मिलाये गये थे।

डाक्टरों ने इस घोल का परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति न केवल इससे जीवित रह सकता है वरन् उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। इस घोल का सेवन करते हुये कैदियों ने चार मास निकाल दिये। डाक्टर मिल्टन विनिट्ज ने दस वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करके यह खाद्य तैयार किया था।

आज मानव ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों-उपग्रहों पर पहुँच रहा है। पृथ्वी की जनसंख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है। भोजनाभाव की स्थिति में यह रासायनिक खुराक किसी संजीवनी से कम नहीं है। यही नहीं, यह कृत्रिम रासायनिक आहार अनेक रोगों से भी मानव को मुक्ति दिला सकेगा। भोजन पकाने के झंझट से भी वह मुक्त हो जायगा। इस रासायनिक भोजन को ग्रहण कर मनुष्य अपने शेष समय का पूरा सदुपयोग कर सकेगा। स्वर्गीय डा० जेस ग्रीन्स्टाइन ने भी परिपूर्ण रासायनिक भोजन बनाने में काफी महत्वपूर्ण कार्य किया।

चूहों पर प्रयोग

सन् १९५७ में अमेरिका की नेशनल हैल्थ लेबोरेटरी ने इस भोजन की गोलियों का चूहों पर प्रयोग किया। चूहे इस खुराक पर जीवित रहे और सामान्य चूहों की तरह उन्होंने प्रजनन में भी योगदान दिया। उनके जीवन के अन्य कार्य कलाप भी सामान्य चूहों जैसे ही रहे। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य भी इसी तरह जीवित रह सकता है।

अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए भी उपयोगी

रूसी वैज्ञानिकों के अनुसार यह भोजन अन्तरिक्ष यात्रियों के लिये भी उपयोगी है। इस रासायनिक भोजन

को चूर्ण के रूप में चाहे जितने समय तक सुरक्षित रख सकते हैं। यह भार एवं आयतन की दृष्टि से भी लघु है। इसे ग्रहण करने पर ६-७ दिन में एक बार शौच जाना पड़ता है। अमेरिका की नासा (नेशनल एरोनाट्रिटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन) ने अमरीकी अन्तरिक्ष यानों के चालकों के लिये यह खुराक तैयार करने का निश्चय किया था, इस कार्य के लिये दस लाख पौंड राशि स्वीकृत की गई थी। इस भोजन का नाम रखा गया था मानव का अन्तरिक्ष भोजन। जब यह खुराक बंदियों को दी गई तो कुछ दिन तक लोग उनींदे से रहे और सिर दर्द से भी पीड़ित रहे। एक व्यक्ति को लगा कि उसके सिर के बाल उड़ जायेंगे और दूसरे को चिन्ता सताने लगी कि उसका पुरुषत्व क्षीण हो रहा है। तीसरे को प्रतीत हुआ कि उसके दाँत खराब हो रहे हैं। इस स्वादहीन पाउडर में नारंगी और सन्तरे आदि का थोड़ा सा रस भी मिलाया गया। कई बंदियों ने घबरा कर इस आहार को त्याग दिया। धीरे धीरे नियमित रूप से आहार लेने वाले कैदियों के शरीर में पुनः स्फूर्ति आने लगी और उनका शरीर सभी रोगों से एकदम मुक्त हो गया। रक्त में कोलेस्टरोल की मात्रा भी घटने लगी। कोलेस्टरोल की अधिकता हृदय रोग का एक बहुत बड़ा कारण माना जाता है।

प्रति सप्ताह रासायनिक चूर्ण में तीस गैलन भभके का पानी मिलाया जाता था। सप्ताह भर तक पन्द्रह व्यक्तियों के लिये यह विलयन पर्याप्त था।

घोल का रासायनिक विश्लेषण

जीव कोश की रचना अनेक प्रकार के अत्यन्त जटिल प्रोटीनों से होती है। किन्तु शरीर के ये विविध प्रोटीन २२ प्रकार के एमीनों अम्लों से बनते हैं। इनमें से ८-१० तो मानव जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। मानवोपयोगी भोजन में १८ प्रोटीन रहते हैं। इस रासायनिक भोजन में प्रोटीन तथा अन्य तत्व एक ग्राम के १००वें भाग तक सूक्ष्मता से नाप कर मिलाये जाते हैं। विटामिन ग्लूकोज, नमक व अन्य खनिज तथा ईथिल लिनोलीट आदि भी उचित मात्रा में मिलाये जाते हैं।

वैसे एमीनो अम्ल का निर्माण कार्य बड़ा कठिन है पर जिस कच्चे माल के एमीनो अम्ल तैयार किये जाते हैं वे हैं तारकोल और वायु। वैज्ञानिक इस प्रयत्न में संलग्न हैं कि किस प्रकार सस्ते तरीके से एमीनो अम्ल तैयार हो सकें।

यह रासायनिक भोजन हृदय रोग और अन्य पाचन क्रिया सम्बन्धी रोगों में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। भार घटाने के लिये भी यह आहार एक प्रकार की अचूक औषधि है। सच पूछा जाय तो घास फूस के रेशों में स्थित सेल्युलोस, कार्बोहाइड्रेट का सबसे बड़ा स्रोत है जिसका मानव अभी तक पूरा लाभ नहीं उठा पाया है। गाय और दूसरे जुगाली करने वाले पशु इस सेल्युलोस को प्रोटीन में परिवर्तित करते हैं। जुगाली की क्रिया एक प्रकार के जीवाणुओं के कारण होती है। अब वह दिन दूर नहीं है जब मनुष्य वर्तन में ये जीवाणु पाल कर अनुपयोगी घास फूस से सीधे खाने योग्य प्रोटीन प्राप्त कर सकेगा।

आहार विशेषज्ञों का कथन है कि शीघ्र दुनिया प्राकृतिक भोजन त्याग कर कृत्रिम रासायनिक भोजन की भक्त बन जायगी। भूकम्प और बाढ़ पीड़ितों के लिये यह भोजन वरदान सिद्ध होगा।

ब्रिटेन की एक आहार अनुसन्धानशाला के संचालक डा० फ्रैंकलीन ने हरी वनस्पतियों की सहायता से दूध तैयार किया है। उनके अनुसन्धान दल ने गाजर के टुकड़ों, पात गोभी के पत्तों और मटर की फलियों से दूध का निर्माण किया है। इंग्लैंड के वाटफ़ोर्ड अनुसन्धान केन्द्र के अध्यक्ष डा० फेक वाक्स के कथनानुसार यह आविष्कार संसार की खाद्य समस्या को हल करने में हाथ बटायेगा। अविकसित एवं अकाल ग्रस्त देशों में यह दूध सचमुच बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

इस कार्य के लिये हरे पत्ते को सावधानी से पानी में मसला जाता है। फिर पानी को तब तक गर्म किया जाता है जब तक कि पत्तों से सारा प्रोटीन नहीं निकल आता। प्रोटीन युक्त इस घोल में विविध विटामिन, खनिज लवण एवं

शर्करायुक्त कार्बोहाइड्रेट मिलाये जाते हैं। पशुओं की चर्वी की जगह वनस्पति चर्वी मिलाई जाती है। कुछ रासायनिक यौगिक मिलाकर इसका हरापन भी दूर कर दिया जाता है। सोयाबीन से तैयार किया गया दूध भी काफी पौष्टिक और सस्ता सिद्ध हुआ है। भारत में मैसूर स्थित खाद्य अनुसन्धान शाला ने मूंगफली से एक प्रकार का दूध तैयार किया है। निकट भविष्य में अब वनस्पति घी के समान वनस्पति दूध भी बाजारों में बिकने लगेगा। आज के बाजार भाव से यह काफी सस्ता भी पड़ेगा।

यह सत्य है कि अब नये रासायनिक खाद्य पदार्थ तथा पेय ही हमें अकाल की विभीषिका से बचा सकेंगे।

● ●

[पृष्ठ १४ का शेषांश]

दृष्टिगत होता है। यह अत्यन्त बहुलीकृत होता है। फेज DNA तथा जीवाणुओं के DNA रासायनिकतः भिन्न होते हैं। प्रसरण प्रभाव द्वारा DNA को फेज से पृथक किया जा सकता है। इनका अणुभार भी बहुत अधिक होता है। कोली बैसिलस (Coli bacillus) जीवाणु के फेज DNA का अणुभार २५,०००,००० है जिसमें प्रोटीन तथा लिपिड भी पाये जाते हैं।

भौतिक तथा रासायनिक कारकों का प्रभाव

फेज में सम्बन्धित जीवों की अपेक्षा भौतिक तथा रासायनिक कारकों के रोकने की शक्ति अधिक होती है। उन पर अधिक दाब (६००० वायुमंडल) तथा विकिरण ऊर्जा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनको उबालने, अम्ल की क्रिया, परावैंगनी किरणें तथा रासायनिक रोगाणु नाशी से शीघ्र नष्ट नहीं किया जा सकता।

प्रकृति में महत्व: फेज प्रकृति में साधारणतया सभी स्थानों में पाये जाते हैं किन्तु मल तथा गंदे पानी में ये विशेष रूप से पाये जाते हैं। ऐसा पता लगाया गया है कि जीवाणुभोजी अपने को विचित्र रूप से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुरूप बना लेने में समर्थ होते हैं। प्राणी शरीर में (जहाँ कहीं भी जीवाणु पाया जायेगा) शरीर की ग्रन्थियों में, निकासी जल में इनके बैठने के लिए उपयुक्त परिस्थितियां स्वयं उत्पन्न हो जाती हैं।

ये नदी के जल में तथा निकासी जल में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनके साथ ही साथ वे भी सूक्ष्मजीव रहते हैं जो मानव के लिए घातक होते हैं जैसे हैजा तथा पेचिस फैलाने वाले जीवाणु। रोगी मनुष्यों के रक्त, थूक, मूत्र इत्यादि में भी ये प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

दैनिक जीवन में महत्व तथा उपयोग : इनका उपयोग औषधि के रूप में कुछ बीमारियों जैसे पेचिस, हैजा, प्लेग को ठीक करने में किया जाता है। डिसेंट्रिक पाली वैलेण्ट तथा कालरिक फेज का उपयोग प्रकाइलैक्सिस बीमारी को ठीक करने में किया जाता है। इनका उपयोग अब कुछ संक्रामक बीमारियों में भी किया जाने लगा है।

जीवाणुभोजी हमारे लिए हानिकारक भी सिद्ध हुए हैं। ये प्रतिजैविकी पदार्थों के निर्माण में विघ्न उत्पन्न करते हैं, ये खट्टे दूध में भी हानिकारक हैं क्योंकि ये लाभदायक सूक्ष्मजीवों को बढ़ने नहीं देते।

वर्तमान युग में अन्तरिक्ष अणुविज्ञान के विकास के फलस्वरूप संवर्धन का उपयोग (विशेष कर डाइसोजेनिक संवर्धन) किरणन के पता लगाने में भी किया जा रहा है जो एक नयी खोज है।

● ●

सार संकलन

सन् २००१ की पत्तल पर प्रोटीन

इस सदी के अन्त में, विश्व की पूरी आवादी को पेट भरने के लिए सालाना ६ करोड़ टन खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगेगी। इसकी परिपूर्ति के लिए हमें आज की तुलना में दुगुना खाद्य उत्पन्न करना होगा। कैसे होगी इस लक्ष्य की परिपूर्ति? और क्या क्या परोसेंगे सन् २००१ की पत्तल पर हम?

सन् २००१ की पत्तल पर होंगे नवीन रूपों में उपलब्ध प्रोटीन के नये-नये व्यंजन और कुल्हड़ में होगा प्रोटीन-बहुल वानस्पतिक दुग्ध। मगर यह प्रोटीन कहाँ से आयेगा?

इस प्रोटीन के नये स्रोत होंगे एककोशीय यीस्ट, जीवाणु (बैक्टीरिया), कवक (फफूंद) एवं शैवाल, घास-पात, मूंगफली, सोया-बीन, बिनौला, नारियल आदि वनस्पतियां।

हमें ऐसा प्रोटीन चाहिए, जो गुणों में जैविक (पशुओं से प्राप्य) प्रोटीन का मुकावला कर सके और कम खर्च से औद्योगिक स्तर पर आसानी से तैयार किया जा सके ऊपर बताये वानस्पतिक स्रोतों से ऐसे प्रोटीन का निर्माण संभव है।

पहले एक कोशीय प्रोटीन यानी सूक्ष्मजीवों से प्राप्त हो सकने वाले प्रोटीन पर विचार करें। अब तक के परीक्षणों से यह आशा बंधती है कि खमीर पनपाकर (यीस्ट द्वारा) ५० से ५५ प्रतिशत, फफूंदों से १५ से ४५ प्रतिशत तथा शैवालों (एल्गी) से २० से २६ प्रतिशत तक प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ बनाये जा सकते हैं।

ये आँकड़े शुष्क होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अभी हम विभिन्न अनाजों को जिन रूपों में खाते हैं, उसमे हमें गेहूं से १०-१२ प्रतिशत, चावल से ८-९ प्रतिशत तथा मांस मछली से लगभग २०-२२ प्रतिशत तक ही प्रोटीन प्राप्त होता है। कौन से सूक्ष्म जीव प्रोटीन निर्माण में विशेष सहायक हो सकते हैं, उसका कुछ अंदाज तालिका 1 से हो जायेगा।

ये सब कोरी संभावनाएं ही नहीं हैं। यीस्ट से प्रोटीन बन रहा है और उसका उत्पादन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। पेट्रोलियम कारखानों से उप-उत्पाद के रूप में मिलने वाले सूक्ष्मजीवों का प्रोटीन के निर्माण में महत्वपूर्ण उपयोग रहा है। फ्रांस के खोजकर्ता चैम्पैनट ने यह दर्शा दिया है कि सूक्ष्मजीवों से प्राप्त प्रोटीन में उच्च जैविक गुण होते हैं और यदि व्यापारिक स्तर पर इसे बनाया जाये तो यह अकेला ही खाद्योपयोगी प्रोटीन की सारी कमी को पूरी कर सकता है।

इसी तरह मांस से मिलने वाले प्रोटीन की पूर्ति के लिए पशुधन बढ़ाना अनिवार्य नहीं है। यह एककोशीय प्रोटीन उतना ही गुणवान और २॥ हजार गुना कम समय में तैयार किया जा सकता है।

सन् २००१ तक जो बहुकोशीय वनस्पति आपकी भोजन तालिका की शोभा बढ़ायेंगे वे हैं—समुद्री शैवाल, घास-पात, बिनौले, मूंगफली, सोयाबीन, नारियल आदि के व्यंजन।

क्लोरेला आदि प्वलकों तथा अन्य समुद्री वनस्पतियों

का जापान आदि देशों में तो प्रोटीन बहुल भोज्य पदार्थों के रूप में उपयोग हो भी रहा है।

इधर इंग्लैंड में लगभग ७,००० रुपयों की लागत से ऐसी मशीन तैयार की जा चुकी है, जो घास-पात से प्रोटीन खींच कर बोतलों में भरती है। ब्रिटिश विज्ञानियों ने यह भी हिसाब लगा लिया है कि तिपतिया घास से प्रति हैक्टर लगभग ३,००० किलोग्राम ऐसा प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है जिसे दूध के रूप में पिया जा सकता है।

मूँगफली एवं सोयाबीन से भी दुग्ध बनाया जा रहा है। सोयादुग्ध तो प्रोटीन के लिहाज से किसी पशुजन्य दुग्ध की बराबरी कर सकता है। उसमें वनस्पति तेल, फास्फेटाइड, शरीर का क्षारीय संतुलन रखने के लिए आवश्यक खनिजों तथा विटामिनों का भी बाहुल्य होता है। तालिका-ख में सोयादुग्ध और गौदुग्ध की तुलना की गयी है।

आर्थिक दृष्टि से भी सोयादुग्ध बहुत लाभप्रद है क्योंकि एक किलो सोयाबीन से १० लिटर दूध बनता है।

तालिका—क

सूक्ष्म जीव का वर्ग	वैज्ञानिक नाम	प्रोटीन प्रतिशत	प्रमुख ऐमीनो अम्ल (प्रति १०० ग्राम प्रोटीन)	
			लाइसींन	मेथियोनीन
यीस्ट	१-कैंडिडा ट्रापिकैलिस	४५	७.७ ग्रा०	०.८ ग्रा०
	२-सेकेरोमाईसीज सेरेविमी	५०	७.३ ,,	१.२ ,,
जीवाणु	१-बैसीलस मेगाटीरिम	४०	७.० ,,	१.८ ,,
	२-बेसीलस स्टिप्ट्रोथर्मोफिलस	७५	७.४ ,,	२.७ ,,
कवक	पेनीसीलियम नोटेटम	३८	४.० ,,	१.० ,,
शैवाल	स्टाइरुलीना मैक्सिमा	६५	४.६ ,,	१.८ ,,

तालिका—ख

	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कार्बोहाइड्रेट प्रतिशत	राख प्रतिशत	पानी प्रतिशत
सोयादुग्ध	३.५	२.८	३.१	०.५	९०.०
गौदुग्ध	३.७	३.७	४.८	०.७	८७.४

बिनौला कल तक केवल पशुओं का भोजन समझा जाता था, अब उससे खाद्य तेल वड़े पैमाने पर प्राप्त किया जा रहा है। अगली सदी में शायद बिनौला हमारे भोजन का प्रमुख अंग होगा। कुछ और वस्तुओं के साथ मिला कर इसका प्रोटीन-बहुल आटा मध्य अमरीका में इन्कापेरीना तथा पेरुविटा और इथियोपिया में फाफा नामक खाद्य पदार्थों के नाम से खाया भी जाने लगा है। इसके लिए पहले इसमें स्थित प्राकृतिक विष गेसीपोल को दूर करना जरूरी है। मूँगफली का आटा भी प्रोटीन-आहार बनाने में प्रयुक्त हो रहा है। इसे चने के आटे के साथ मिला कर ४२ प्रतिशत प्रोटीन वाली रोटियाँ व बिस्कुट बन रहे हैं। १५ प्रतिशत मूँगफली के आटे में ६०

प्रतिशत टैपियोका तथा २५ प्रतिशत गेहूं का आटा मिला कर नकली चावल भी बनाया जा रहा है।

नारियल की खली (२५ प्रतिशत) तथा सोयाबीन के आटे (७५ प्रतिशत) से भी प्रोटीन पूर्ति की आशा की जा रही है।

अब तो हालैंड की एक कम्पनी ने एक महत्वपूर्ण ऐमीनो अम्ल लाइसीन का कृत्रिम निर्माण करके संश्लिष्ट प्रोटीन के निर्माण की आशा उत्पन्न कर दी है।

(नवनीत से साभार)

ये अजीब औषधियाँ

औषध सम्बन्धी साहित्य में काफ़ी घपला है, जिसका एक प्रमुख कारण औषधों पर इतने व्यापक स्तर पर लिखा जाना है। वैज्ञानिक दृष्टि और अनुशासन में लिखे गये कम से कम १० हजार लेख हमें सिर्फ औषधियों पर मिल जायेंगे। इनमें विभ्रम उत्पन्न करने वाली औषधों पर ही १ हजार लेख हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के गवेषणा कार्य औषधों के क्षेत्र में फैली इस कोलाहली हटाने में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं और यहाँ इस टिप्पणी के वस्तुपरक रूप के लिए आधार उन्हीं को बनाया गया है।

औषध-परिवार : औषधें संख्या में इतनी अधिक हैं कि उनके परिवार का कोई निश्चित विभाजन संभव नहीं है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हें दो बड़े भागों में बाँट सकते हैं—पहला भाग उन औषधों का है जो स्वाभाविक हैं, दूसरे भाग में कृत्रिम अथवा संश्लिष्ट औषधें आती हैं। एक अन्य प्रकार का विभाजन चेतना-शून्य कर देने वाली अपेक्षाकृत शान्त औषधों और आन्दोलन की खलबली—में फेंक देने वाली उत्तेजित औषधों के बीच हो सकता है। अंतिम प्रकार बिल्कुल अलग, विभ्रम उत्पन्न करने वाली उन औषधों का है जिन्हें अक्सर चेतना विस्तार और अनुभव के कलात्मक निखार के साथ जोड़ा जाता है।

अफीम, मारिजुआना और कोकेन—इन स्वाभाविक औषधों के नाम कम से कम हमारे लिए नये नहीं हैं। अफीम पोस्त के पौधे से बनती है, जिसके बीजों का रस निकाला जाता है। अफीम चिंतित मन को आराम पहुँचाती है और एक हद तक पीड़ा का नाश भी करती है। ऐसा अनुमान है कि केंद्रीय स्नायुमण्डल के कुछ हिस्सों पर अफीम का असर पड़ता है, जिससे कि भूख, प्यास, डर और काम-अभिप्रेरण में कमी आ जाती है। अफीम का शारीरिक निर्भरता से जुड़ा होना सबसे खतरनाक है—निश्चित खुराक के अभाव में अफीमची पसीने से तरबतर हो जाता है, उबकाई और उल्टियाँ आने लगती हैं। यह भी जरूरी नहीं है कि पिनक में अफीमची पीड़ा से पूरी तरह मुक्त हो जाए, बल्कि पीड़ा के साथ जुड़े भय में धुँधलापन आ जाता है।

अफीमचियों का भारत में लंबा इतिहास है, लेकिन हांगकांग और चीन के कुलियों के अफीम आकर्षण के इतिहास से यह अलग है। भारत के कुछ हिस्सों में औरतें चीखते- चिल्लाते दुधमुँहे छोटे बच्चों को आराम पहुँचाने के लिए अपने स्तनों पर अफीम का लेप करती हैं। अध्ययनों से यह पता चला है कि भारत में अपराध और अफीम का कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है—यहाँ अफीम आकर्षण पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए है। ईरान की तरह भारत में, ऐसा समझा जाता है। लोग अफीम की तरफ इसलिए आकर्षित होते हैं कि उन्हें आराम या डाक्टर की जरूरत है और दोनों के अभाव में अफीम उनमें शारीरिक निर्भरता ला देती है।

एक अद्भुत पौधे कैनबिस इंडिका से बनने वाली औषध मारिजुआना की पहचान कई नामों से होती है। भांग, चरस और पौट—ये सिर्फ कुछ उदाहरण हैं। मारिजुआना के नशे में व्यक्ति अपने-आप को हल्के विभ्रम में महसूस करता है, उसके अन्दर की रुकावटें टूटती हैं। हें हे की मुद्रा में मूर्खतापूर्ण व्यवहार के लक्षण भी उसमें देखे जा सकते हैं। ऐसा विचार है कि मारिजुआना व्यक्ति को अपराध की सीमा तक आक्रामक बना सकती है, जब कि कुछ लोग इसे सिर्फ हलका मादक द्रव्य मानते हैं। बहरहाल अतिरिक्त सामाजिकता तो व्यक्ति में आ ही

जाती है—वह उत्साही और बातूनी हो जाता है। खुराक की बढ़ी हुई मात्रा व्यक्ति के निर्णय और स्मृति को गड्डमड्ड कर देती है। मारिजुआना के असर में उन्हें पेंटिंग में नये विस्तार दीखे, या संगीत का अधिक गहरा आनन्द मिला, पर इस आनन्द की सच्चाई और सुझाव को अलग करना बड़ा मुश्किल है।

वेदों में मारिजुआना के पौधे को पवित्र माना गया है। जीवन के सच्चे आनन्द को अनुभव करने का यह रास्ता है। काम अभिप्रेरण से छुटकारा पाकर ईश्वर की प्राप्ति के लिए धार्मिक समुदाय भांग का सेवन करता रहा है। आध्यात्मिक-चमक के साथ मारिजुआना का यह संबंध यूरोप और अमेरिका के बीटनिकों को बनारस के घाट-गलियों में आज तक खींच रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य एशिया में मारिजुआना समलैंगिकता से जुड़ी है।

कोकेन आदमी को हिंसक बना देती है, यहाँ तक कि चिकित्सा में भी कोको की पत्तियों से बनने वाली इस औषध का उपयोग बहुत कम है। कोकेन थके हुए आदमी को पहले आराम पहुँचाती है—पेट की कुलबुलाहट कम करती है, फिर उसके लिए आफत बन जाती है—आफत भी ऐसी जो आसानी से पीछा न छोड़े। व्यक्ति अपने को ताकतवर समझने लगता है। चारों तरफ की दुनियाँ और लोग उसे अपने ही खिलाफ दीखते हैं—लोग जो उसकी किसी भी समय हत्या कर सकते हैं। अपने बचाव के लिए व्यक्ति का व्यवहार आक्रामक हो जता है।

कोकेन व्यक्ति को विभ्रम के संसार में पहुंचाती जरूर हैं, पर आधुनिक युग में इस तरह के विशिष्ट अनुभवों के लिए भ्रांतिजनक औषधों को अत्यधिक प्रचार मिला है। इन औषधों का आकर्षण स्वप्नदर्शी संसार की यात्रा (ट्रिप) के लिए है, यानी पुराने जमाने में लोग इस (ट्रिप) के लिए क्या नहीं करते थे—जंगल में जाकर तपस्या के लिए घर तक छोड़ देते थे और आज यह सब कितना आसान है।

अमेरिका और मेक्सिको में आध्यात्मिक पकड़ के लिए एक रेगिस्तानी कैक्टस प्योतल की जड़ें काम में लायी जाती रहीं हैं। मेस्कालिन इसी का आधुनिक (संश्लिष्ट) रूप है। प्रसिद्ध अंगरेजी लेखक अल्डुअस हक्सले, जिन्होंने औषध का आकर्षण क्रमबद्ध अध्ययन किया, मेस्कालिन को स्वर्ग के द्वार खोलने की कुँजी मानते हैं। लेकिन मेस्कालिन आदमी को आसानी से नरक में भी धकेल सकती है। ज्यां पाल सार्त्र ने मेस्कालिन की ट्रिप भयभीत कर देने वाली बताई—उबकाई जैसी तनावपूर्ण कालिन विल्सन की किताब 'अजनबीपन से आगे' में मेस्कालिन के अनुभव पर एक लंबा लेख है, जिसका स्वर्ग जितना रुझाता है नर्क उतना ही डराता भी है।

मेस्कालिन जैसी ही एक अन्य औषध सिलोसीबीन है, लेकिन एल० एस० डी० (लिसरजिक ऐसिड डाइमेथिलामाइड) के बराबर प्रचार शायद ही किसी आधुनिक औषध को मिला हो। अमेरिकी कालेज स्तर के लड़कों की कुल संख्या का १० प्रतिशत एक न एक बार एल० एस० डी० की ट्रिप जरूर ले चुका होता है। अमेरिकी प्रोफेसर टिमोथी लिवरी तो एल० एस० डी० के प्रमुख प्रचारकों में से हैं और उनका कहना है कि दिमाग की सही पकड़ के लिए यह जरूरी है कि हम दिमाग से परे चले जायें।

एल० एस० डी० की ट्रिप २०-३० मिनिट में शुरू होती है। तेजी से इधर उधर तैरते हुए रंग बोलते हुए महसूस होते हैं। कोई गजब नहीं कि संगीत सुनने के साथ साथ दीखने भी लगे। व्यक्ति को लगता है कि वह अपने ही शरीर से फिसलता चला जा रहा है। ट्रिप में रुचि रखने वाले इस अद्भुत यात्रा को ब्रह्मांडीय कास्मिक) अनुभव बताते हैं। चिंतन और तर्क के संसार से व्यक्ति का कोई सम्पर्क नहीं रहता। ट्रिप के चक्कर में कुछ लोग अपनी असली दुनियाँ से इतना अलग हो जाते हैं कि कभी वापस नहीं लौटते। मृत्यु उनके लिए जरा डर नहीं रहता—परिवार और व्यवसाय की तो खैर चिंता ही क्या? यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने एल० एस० डी० को रासायनिक ढंग से बीटनीक बनना बताया है।

गैर कानूनी बाजार में इधर एल० एल० डी० की टक्कर के दो नये नाम सुनने को मिले हैं। तीन-चार घंटे की छोटी ट्रिप के लिए डी० एम० टी० ने ऊब का भी व्यवसाय करने वाले अमेरिकी समाज को आकर्षित किया है।

संश्लिष्ट औषधें—अफीम, मारिजुआना और प्योतल इन सभी स्वाभाविक औषधों ने एक न एक संश्लिष्ट औषध को जन्म दिया है। अफीम के संश्लिष्ट रूप यानी परखनलियों की संतान इन कृत्रिम औषधों की जड़ें स्वाभाविक औषधों में ही हैं। अफीम के संश्लिष्ट रूप पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अफीम की सभी अच्छाइयों को अगर अलग किया जा सकता तो उसके संश्लिष्ट रूप मानवता के लिए वरदान सिद्ध होते। पर सच्चाई यह है कि औषधों की मानसिक तथा शारीरिक निर्भरता हर क्षण व्यक्ति को कमजोर बनाती रहती है। एक बात यह भी है कि माफिया और हेरोइन (अफीम के विकसित रूप) की निर्भरता व्यक्ति को किसी दूसरी संश्लिष्ट औषध की तरफ नहीं जाने देती। उदाहरण के लिए कोडेन अफीम से बनायी जाती है, पर उसका आकर्षण बहुत कम है।

कोकेन यदि आधुनिक व्यक्ति के लिए दुःस्वप्न बन गई है तो उसकी जगह ऐम्फीटामिन ने ले ली है। लेकिन ऐम्फीटामिन की बढ़ी हुई खुराक व्यक्ति को समाज विरोधी कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकती है। परीक्षा-ज्वर में छात्र ऐम्फिटामिन के लिए अतिरिक्त आकर्षण पैदा कर लेते हैं, जो उन्हें स्वर्ग की झलक दिखा कर नरक में धकेलती है।

अन्त में यहाँ ऐलकोहाल की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। ऐलकोहाल पर इतना ज्यादा लिखा गया है कि हम सब उसके परिणामों से परिचित हैं। विभिन्न आध्यात्मिक अनुभवों की विस्तृत व्याख्या करने वाले अद्भुत अमेरिकी दार्शनिक विलियम जेम्स ने ऐलकोहाल के पक्ष में तर्क दिये हैं और कोई आश्चर्य नहीं अगर औषधों के आधुनिक प्रवक्ता जेम्स में अपनी जड़ें खोजते हैं। लेकिन किसी भी अन्य औषध की तुलना में ऐलकोहाल के परिणाम भयावह और जटिल हैं, इस बात को सभी मानते हैं।

औषध, अभिचार और सेक्स—औषधों का संक्षिप्त परिचय आधुनिक जीवन के इस बड़े सवाल को हमारे सामने रखता है कि भयाक्रांत कर देने वाले भविष्य को जानते हुए भी व्यक्ति औषधों में रुचि क्यों लेता है! क्यों उसके अन्दर एक विशिष्ट औषध के लिए ही रुझान होता है! मनोवैज्ञानिकों के विचार में औषध-आकर्षण अपने-आप को पीड़ित करने की मानसिक मजबूरी है। सुखसिद्धान्त जैसी पुरानी विचारधारा के साथ भी उसे जोड़ा जाता है, हालांकि आत्मपीड़न की मजबूरी भी अंततः सुख को प्राप्त करने के लिए ही है। यौनजीवन से औषध का सम्बन्ध सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। औषध अभिचार (विचक्राफ्ट) और सेक्स में आता है। एक आत्मस्वीकृति में चिकित्सक को एक युवक ने बताया कि औषध उसे लड़की के सामने ताकतवर बना देती है। लेकिन औषध पर जीवित रहने वाले व्यक्तियों को साधारणतया सेक्स के संबंध में निष्क्रिय माना जाता है। औषधों का असर कुछ लोगों में तो काम अभिप्रेरण को ही धीरे-धीरे गायब कर देता है।

न्यूयार्क मेडिकल कालेज के प्रोफेसर राबर्ट एल० शैरोफ ने दस वर्ष की खोज से मालूम किया है कि लती लोगों का चरित्र और उनकी व्यक्तिगत समस्याएं उन्हें अलग-अलग तरह का नशा चुनने पर मजबूर करती हैं। एल० एस० डी०, मेस्कौलिन, मारीजुआना इस्तेमाल करने वाले आमतौर पर वे होते हैं जो समझते हैं कि वह कोई बड़ी तोप हैं, जब कि वे ऐसा कुछ होते नहीं। औषध उन्हें असलियत से कतरा कर अपने बडप्पन को निभाने के लिए आराम से अकेला छोड़ देती है। ये लोग आमतौर पर बौद्धिक कामों पर लानत भेजते हैं, यह कह कर कि दिमाग सिर्फ पाखण्ड, ध्वंस और धोखा पैदा करता है। वे मानते हैं कि सिर्फ मन का जगत ही सत्य है। उनकी चुनी हुई औषध उन्हें अपने आप को यह समझने का अवसर देती है कि वे दूसरों के मुकाबले अधिक तथा अधिक गहराई से अनुभव कर सकते हैं और औषध से दूर रहने वालों के

[शेष पृष्ठ २४ पर]

विज्ञान वार्ता

कुछ चमत्कारी जड़ी बूटियाँ

अखिल भारतीय औषधि विज्ञान संस्थान (AIIMS) ने कम से कम छह ऐसी दवायें जड़ी बूटियों से तैयार की हैं जिनके प्रयोग से कम दाम पर अधिक लाभकारी प्रभाव प्राप्त होने की संभावना है। अजमैलिन, पेरुवोसाइड, गुग्गल की गोंद तथा जटामांसी का परीक्षण भारतीय औषधि शोध परिषद द्वारा हो रहा है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी दवाओं में से अधिकांश जड़ी बूटियों से प्राप्त की जाती रही हैं किन्तु इनकी विशुद्धता, प्रभावकता आदि के सम्बन्ध में कोई मानकीकरण नहीं हो पाया जिसके कारण उनके प्रति संदिग्धता बनी हुई है। जापान तथा पश्चिमी देशों ने इन देशी औषधियों के महत्व को स्वीकार किया है और जर्मनी तथा जापान ने अजमैलिन तथा पेरुवोसाइड नामक दवाओं को हृदय रोगों के लिये खरीदना प्रारम्भ कर दिया है। रूस में भी जड़ी बूटियों से विकसित औषधियों को प्रधानता दी जाती है। अजमैलीन एक ऐल्कैलायड है जो सर्पगन्धा (Rauwolfia Serpentina) नामक जंगली पौदे से प्राप्त किया जाता है। यह पौदा बिहार, देहरादून, शिमला तथा रोहिलखंड के अनेक भागों में प्रचुरता से उगता है। पेरुवोसाइड पीले कनेर से प्राप्त औषधि है। जर्मनी में ये दोनों औषधियां Gilurytmal तथा Encordin नाम से तैयार करके बेची जाती हैं।

यद्यपि सर्पगन्धा से भारतीय जनता शताब्दियों से परिचित रही है किन्तु १९३० में आकर ही इसके औषधि गुणों का पता चला। अब तक इससे ३५-४० ऐल्केलायड प्राप्त किये जा चुके हैं किन्तु इनमें से रिसर्पीन ही प्रसिद्ध है जिसे १९३४ में पृथक किया जा सका। यह रक्त चाप की उत्तम दवा है और बाजार में १९५३ से मिल रही है।

हल्दी तथा कस्तूरी से भी कुछ दवायें तैयार की गई है जो शोथ एवं गठिया में लाभकारी सिद्ध हो सकेंगी। कस्तूरी सर्पदंश में प्रतिविष का काम करती है।

गुग्गल की गोंद हृदय रोग की रोकथाम करती है। जटामांसी से बच्चों के चिड़चिड़ेपन तथा आक्रामकपन की रोकथाम की जा सकती है। इससे मृगी तथा तंत्रिका की गड़बड़ी दूर की जा सकती है। जटामांसी कुमायूं जिले, सिक्किम तथा भूटान में उगती है।

विश्वविद्यालयों मे रसायन सम्बन्धी शोधें सर्वोपरि

विज्ञान एवं टेक्नाजी समिति ने अपनी १० वर्षीय रिपोर्ट में यह बताया है कि विश्वविद्यालयों में होने वाली शोधों में रसायन का प्रमुख स्थान है। इसके बाद भौतिकी, गणित, जीवविज्ञान तथा भूगर्भ का नम्बर आता है। रसायन विभागों में जो शोधें चल रही हैं वे मूलभूत महत्ता एवं औद्योगिक सम्प्रयोग दोनों से सम्बन्धित हैं। विशेषतया औषधीय पादपों, कीट नाशियों, रंजकों, प्रतिजैविकों एवं सौरभिक तेलों पर होने वाली शोधें उल्लेखनीय हैं। कार्बनिक रसायन शाखा में प्राकृतिक उत्पाद, बसा, एवं तेल, संश्लिष्ट कार्बनिक रसायन, संश्लिष्ट रंग एवं औषधियों पर विशिष्ठ कार्य हो रहा है। भौतिक रसायन में कोलायड़, रसायन गतिकी तथा रासायनिक उष्मा, वलगतिकी, क्वांटम रसायन

ठोस अवस्था रसायन पर कार्य हो रहा है। रासायनिक गतिकी के अन्तर्गत विलयनी अभिक्रियाएं तथा बहुलकीकरण प्रमुख हैं। अकार्बनिक रसायन की अधिकांश शोध जटिल निर्माण, धातु उत्प्रेरक तथा विन्यास सम्बन्धों पर हैं। वैश्लेपिक रसायन में विरल मृदा तत्व एवं आक्सीकरण पर बल दिया जा रहा है। जैव रसायन के अन्तर्गत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन उपापचय, किण्वन, ऊतक, संवर्द्ध तथा सूक्ष्मजीवों के अन्तर्वर्ती उपापचय के साथ साथ भारतीय विश्वविद्यालयों में एंजाइम, विटामिन तथा पादप प्रतिजैविकों पर कार्य हो रहा है।

भौतिकी में स्पेक्ट्रास्कोपी, ठोस अवस्था भौतिकी, अल्ट्रासानिक, न्यूक्लीय भौतिकी तथा एक्स किरणों पर उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। जैव भौतिकी (biophysics) में प्रोटीन की संरचना पर कार्य हो रहा है। न्यूक्लियीय भौतिकी में कणों की संरचना एवं अन्तर अभिक्रियाओं तथा विखण्डन पर कार्य हो रहा है। ठोस अवस्था भौतिकी के अन्तर्गत क्रिस्टलों की संरचना एवं उनके भौतिक एवं यांत्रिक गुणधर्मों का अध्ययन हो रहा है। परमाणु भौतिकी में परमाणु की क्वांटम यान्त्रिकी, प्लाज्मा भौतिकी आदि पर कार्य हो रहा है।

गणित में जिन क्षेत्रों में कार्य हो रहा है उनमें संख्याओं का सिद्धान्त, ऐवस्ट्रैक्ट बीजगणित, टोपोलाजी, फलन विश्लेषण, द्रव यांत्रिकी, प्लास्टिकता, गणितीय स्टैटिस्टिक्स प्रमुख हैं।

जैव विज्ञानों में आकारिकी, भ्रूणविज्ञान, पादप रोग विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, कवकविज्ञान, मृदा सूक्ष्मजीव पादप पोपण का जीव रसायन आदि पर कार्य हुए हैं।

● ●

[शेषांश पृष्ठ २२ का]

मुकाबले अपने भीतर ज्यादा दूर तक देख सकते हैं। शराब, बार्बीटुरेट और शामक औषधियां लेने वाले लोग प्रो० शैरोफ के अनुसार अधिकाँश वे हैं जिन्हें अपने आक्रामक या यौन उत्तेजना को सँभालने में कठिनाई होती है। ये या तो दंभी और जालिम होते हैं या शराब पीने से हो जाते हैं। अफीम, मारफीन, शामक पदार्थ लेने वाले लोग अक्सर निष्क्रियता और निराले में रहना पसंद करते हैं। मुसीबत पड़ते ही उनकी बधिया बैठ जाती है और उन्हें अँधेरा दिखाई देने देने लगता है। उनकी पसंदगी की औषध उन्हें आत्मप्रतिष्ठा की हानि के भय से बचाती है। ऐसा लती बहुधा अपने सब दर्द समाज पर थोप देता है और आश्वस्त हो जाता है कि समाज ने ही उसे औषध की शरण में धकेल दिया है। इस तरह वह अपने विकास और प्रौढत्व की ओर बढ़ने का संघर्ष छोड़ देने का एक अच्छा बहाना पा जाता है।

(दिनमान से साभार)

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

'विज्ञान' के सम्बन्ध में

(फार्म ४)

१. प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
२. प्रकाशन की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	प्रसाद मुद्रणालय द्वारा के० राय
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	५/७ बेली एवेन्यू, प्रयाग
४. प्रकाशक का नाम	डा० वाचस्पति
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
५. सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	२५, अशोक नगर, इलाहाबाद-१
६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं।	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

मैं डा० वाचस्पति घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर वाचस्पति
प्रकाशक

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

०७ } ज्येष्ठ २०२७ विक्र०, १८९२ शक जून १९७० { संख्या ६

द[illegible]ण अफ्रीका की सोने की खानें*

● डा० सत्य प्रकाश

गत वर्ष (१९६९ ई०) मुझे अगस्त मास से अक्टूबर मास तक दक्षिण अफ्रीका में रहने का अवसर मिला। दक्षिण अफ्रीका स्वतंत्र देश है, जिसमें चार प्रदेश हैं, नेटाल ट्रान्सवाल, केपप्राविन्स और आरेंजफ्रीस्टेट। अनेक बातों के लिए यह प्रसिद्ध है। भारत की खोज के लिए वास्को-डिगामा पुर्तगाल से चला और अपनी यात्रा में उसने केप-आव्-गुडहोप (सदाशा अन्तरीप) की खोज कर डाली, और अपनी पताका वहाँ लहरायी। यूरोप वालों को धीरे-धीरे दक्षिण अफ्रीका का पता चला, और खेती की लालच में वहाँ बसने लगे। गन्ने और अंगूर एवं सन्तरों (मैण्डेरिन) के बागों से यह देश सुहावना बन गया। धीरे-धीरे यहाँ की सोने की खानों से युरोपवासियों का परिचय हुआ। बस थोड़े से समय (लगभग ६० वर्षों) में यह देश कुबेर-पुरी बन गया।

जब मैं ट्रान्सवाल के प्रसिद्ध नगर जोहेन्सबर्ग में पहली बार हवाई जहाज से ७ अगस्त को उतरा तब नहीं जानता था कि यह कितना धनी नगर है। बाद को अपने व्याख्यानों के लिए जब वहाँ पहुँचा, तब पता चला कि यह सारा नगर सोने की खानों पर बसा हुआ है। जोहेन्सबर्ग के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में पहुँचा तब पता चला कि विश्वविद्यालय का नाम विटवाटर्सरैण्ड-विश्वविद्यालय है। जोहेन्सबर्ग जिस भूमि पर बसा है उसे विटवाटर्सरैण्ड या संक्षेप में रैण्ड कहते हैं। आरेन्ज और लिम्पोपो नदियों के बीच के दोआब को रैण्ड कहा जाता है। इसके तीन विभाग हैं—पश्चिमी रैण्ड, मध्य रेण्ड और पूर्वी रैण्ड। पश्चिमी रैण्ड के बाद दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड भी है। जोहेन्सबर्ग समुद्र तल में ६००० फुट ऊँचाई पर है और हीरे की खानों वाले नगर किम्बरले से २९८ मील, लेडीस्मिथ से ३५० मील उत्तर में, और पोर्ट एलिजवेथ से ७१४ मील दूर है।

---

* 'विज्ञान क्लब' में दिया गया भाषण

कहा जाता है कि भूगर्भ के अतीत इतिहास में वह भूमि जहाँ जोहेन्सबर्ग है एक अन्तरीय सागर (इनलैन्ड सी) था, जो कालान्तर में भूभाग के नीचे आ पड़ा। इस स्थल की उपयोगिता का प्रथम श्रेय जार्ज हैरिसन को है (१८८६ ई०)। और तबसे "विटवाटर्सरैण्ड स्वर्ण खानों" की घोषणा सार्वजनिक रूप से हुई। इसके पूर्व का इतिहास भी महत्व का है जो संक्षेप में इस प्रकार है—

१८०६ :जान बैरोज ने जो केप-प्रदेश के गवर्नर का सचिव था, इस प्रदेश के पर्वतों के नक्शे तैयार किए। किम्वदन्ती थी कि इन पर्वतों में सोना है।

१८५३ : जान हेनरी डेविस नामक व्यक्ति ने जिसे भूगर्भ शास्त्र से थोड़ा सा परिचय था ट्रांसवाल में सोने का पता लगाया। जब इस बात का पता ट्रान्सवाल के अधिकारियों को लगा, तो उन्होंने डेविस को अपने देश से भगा दिया। उन्हें डर था कि कहीं विदेशियों को इस बात का पता चल गया, तो वे ट्रान्सवाल पर आक्रमण कर देंगे।

१८५४ : केप प्रदेश के वोरसेस्टर स्थान पर सोने का पता लगा।

१८६८ : सोने को खानों में से निकालने के लिए दो दक्षिण अफ्रीकी कम्पनियाँ बनीं, जिनका उद्देश्य टाटी-गोल्ड फील्डों (टाटी) से सोना निकालना था। यह स्थान वह है, जिसे अब बौट्स्वाना कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका से बाहर ट्रांसवाल के उत्तर पश्चिम में वह स्थल है।

१८७० : नैटाल की उमट्वालूमी नदी के तट पर सोने की खानों की कुछ खोदाई हुई जिसका विवरण प्रकाशित हुआ।

१८७१ : उत्तर ट्रान्सवाल के वाटरबर्ग के 'एर्स्टलिंग में स्वर्णखान में काम करने वाली पहली कम्पनी बनी।

१८७३ : "पिलिग्रिम्स-रेस्ट" नामक स्थान पर प्रथम बार वस्तुतः असली सोना शुद्ध रूप में निकाला गया।

१८७४ : आस्ट्रेलिया के हेनरी ल्यूइस ने विटवाटर्स रैण्ड में नदी की बालू में सोना पाया।

१८८२ : डि-काप स्वर्णभूमि का पता चला, जिसमें पूर्वी ट्रान्सवाल में सोने की खुदाई का काम आरम्भ हुआ।

१८८६ : विटवाटर्सरैण्ड के स्वर्ण-क्षेत्र की सार्वजनिक घोषणा।

१८८८ : क्लेर्क्सडार्प में सोने की खोदाई का काम आरम्भ।

१९३३ : कार्बन लीडर रीफ (कोयले की अस्तर खान) की खोज और दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड में स्थित स्वर्णक्षेत्र में कार्य।

१९४१ : क्लर्क्सडार्प स्वर्णक्षेत्र में अति नीची गहराई पर कार्य का आरम्भ।

१९४५ : फ्रीस्टेट स्वर्ण क्षेत्र की खोदाई का आरम्भ।

१९५६ : इवैण्डर-स्वर्णक्षेत्र की खोदाई का आरम्भ।

खनन प्रबन्ध : संसार में सभ्यता के आरम्भ में ही स्वर्ण से मनुष्य परिचित रहा। ऋग्वेद और यजुर्वेद और बाद के ब्राह्मण साहित्य में स्वर्ण और स्वर्ण से बने शतमानों और स्वर्णाभरणों का उल्लेख है। कहा जाता है कि ईसा से २७०० वर्ष पूर्व उर की रानी-शब-अद स्वर्णाभरण का प्रयोग करती थी और उसके साथ जो सोना दफनाया गया, वह आज ४६०० वर्ष बाद भी उतनी ही चमक का बना हुआ है। कहा जाता है कि विश्वव्यापी प्रयत्नों के बाद भी गत दस हजार वर्षों में जितना सोना पाया गया है, उसे इकट्ठा कर किया जाय, तो उससे कठिनाई से तेलवाला एक कार्गो जहाज भर पावेगा। इस स्वर्ण राशि में एक तिहाई सोना वह होगा, जो गत ८० वर्षों में दक्षिणी अफ्रीका से मिला है।

दक्षिण अफ्रीका की खानों में मनुष्य भूगर्भ में लगभग २-२.५ मील की गहराई तक पहुँच गया है। भूगर्भ में इससे अधिक नीचे मनुष्य कभी उतरा ही नहीं। आज अफ्रीका की इन खानों में ढाई लाख आदमी भूमि की गहराई में प्रतिदिन कार्य कर रहे हैं।

दक्षिण अफ्रीका में प्रतिवर्ष १००० टन सोना (२८ हजार मन) निकाला जाता है, और इतना सोना निकालने

के लिए आठ करोड़ (८०,०००,०००) टन शिला-खण्ड पीसना पड़ता है। इस २८ हजार मन सोना का आयतन १० फुट घन (१० × १० × १० घन फुट) होता है।

खनन-क्षेत्र लगभग क्षेत्रफल में ४ वर्ग मील है और इसकी ऊपर पृष्ठ भूमि पर इमारतें तैयार करने में १० लाख टन मिट्टी समतल की गयी है। यदि ६० वर्ष इन खानों में काम चलता रहा, तो इतने दिनों में इतना सोना यहाँ से निकाल लिया जायगा, जितना सोना समस्त पृथ्वी पर १७५०-१८५० तक के १०० वर्षों में भी नहीं निकला था। खानों में काम करने वाले जल पम्प जितना पानी प्रतिदिन पम्पन करेंगे, वह पानी १३ लाख की आबादी वाले जोहेन्सबर्ग की आवश्यकता से कहीं अधिक होगा। एक टन शिला अस्तर तोड़ने के लिए २½ (ढाई) टन हवा की आवश्यकता होती है। इस काम के लिए खानों में चलने वाले वातायन पंखे प्रति मिनट २,२८०,००० घन फुट हवा संचालित करते हैं। ऊर्जा प्रदान करने वाले यंत्रों में २१८,००० अश्व शक्ति है। खानों के भीतर ५०० लोकोमोटिव (स्वचालित वाहन) काम करते हैं।

खनन क्षेत्र : दक्षिण अफ्रीका में सोने की ५० के लगभग बड़ी खानें हैं जिनसे प्रतिवर्ष ३०,०००,००० औन्स सोना तैयार होता है (लगभग १००० टन) अर्थात् पश्चिमी दुनियाँ में जितनी सोने की खपत है उसका तीन-चौथाई भाग, और संसार भर में जितना सोना प्राप्त होता है उसका ६६ प्रतिशत; समस्त संयुक्तराष्ट्र अमरीका में प्रतिवर्ष जितना सोना प्राप्त होता है, उससे कहीं अधिक सोना तो कुछ अकेली कम्पनियाँ साल भर में निकाल लेती हैं। विटवाटर्सरैण्ड के खनन-संघ द्वारा एक वर्ष में जितना सोना निकलने लगा है, उतना सोना १६०० ई० से पूर्व किसी शती में भी समस्त संसार में नहीं निकाला गया था।

ट्रांसवाल में इतना सोना आया कहाँ से इसकी मीमांसा अनेक भूगर्भ शास्त्रविदों ने की है। यहाँ के सोने की कहानी २,५००,०००,००० (ढाई-अरब) वर्षों का इतिहास है। विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि जब यह धरती बच्चा थी उस समय इसके महाद्वीप अपने स्थायी स्थलों पर नहीं आ पाये थे, उस समय प्रकृति की विशाल शक्तियाँ इस धरती पर आक्रमण कर रही थीं—वायु का दाब, ताप, और तूफानी प्रभंजन उथल-पुथल मचा रहे थे। उस समय सोने के पर्वतों का सोना ग्लेशियरों (हिमनदों) और नदियों में बह कर एक विशाल आन्तरिक-सागर (इनलैन्ड सी) में पहुँच गया। यह सागर बाद को चट्टानों से पट गया। यह आन्तरिक सागर ही वह स्थल है जो ट्रांसवाल के नीचे दबा हुआ है, और जिसके ऊपर ट्रांसवाल का हरितक्षेत्र बसा हुआ है।

इस आन्तरिक समुद्र में वह बह कर संसार के पर्वतों से सोना आने लगा, और इस समुद्र के किनारे के कंकड़-पत्थरों के बीच में जमा होने लगा। यह समुद्र कैस्पियन सागर के आकार का रहा होगा। लाखों वर्षों के बाद जब जलवायु में परिवर्तन हुआ तो यह समुद्र ऊपर से पट गया। भीतर का पानी सूख गया, और भूमि का सोना पृथ्वी के भीतर दब गया, पृथ्वी तबसे हिरण्यगर्भा बन गयी। आज इस प्रकार यह सोना ऊपरी धरातल से २५००० फुट की गहराई पर दबा पड़ा है। कोई एक जगह नहीं बल्कि लगभग ६ इंच मोटी धारी के भीतर जो आन्तरिक समुद्र का तट था।

ट्रान्सवाल-सोने का अयस्क कोई आम श्रेणी का तो नहीं है, और संसार की अन्य खानों की अपेक्षा इससे सोना प्राप्त करना कठिन भी है। (अच्छी श्रेणी के अयस्क कैलिफोर्निया (दक्षिण अमरीका), यूकोन (आस्ट्रेलिया) में और पूर्वी ट्रांसवाल के बारबर्टन में हैं। किन्तु यहाँ के अयस्कों की खानें बड़ी विशाल हैं, और इनमें सोने का होना सन्देहजनक नहीं है, इसलिए दक्षिण अफ्रीका की खानों की विशेषता है।

विटवाटर्सरैण्ड नद क्षेत्र में सात खानें बहुत बड़ी और महत्व की हैं। (१) ईस्ट रैण्ड, (२) सेण्ट्रल रैण्ड, (३) वेस्ट रैण्ड (ये तो गोल समुद्र का उत्तरी किनारा हैं) (४) दूरस्थ वेस्ट रैण्ड, (५) क्लेर्क्सडार्प गोल्ड-फील्ड, (६) आरेंज फ्रीस्टेट, और (७) इवैण्डर। जैसे सोने की लंका

थी, या कुबेर पुरी थी, उसी तरह से इन सात क्षेत्रों के कारण दक्षिण अफ्रीका स्वर्ण भूमि या संसार का सबसे धनवान स्थल बन गया।

६ जून १८८६ ई० की बात है। उस समय दक्षिण अफ्रीका प्रजातंत्र का अध्यक्ष स्टीफेनस जारेनस पालक्रूगर था। इसे एक कृषक हैरिसन से पत्र मिला, जिसमें सोने की खोज की बात घोषित की थी। बड़ी विनम्रता से उसमें ये शब्द थे 'आई थिंक, आई हैव फाउन्ड ए पेबुल गोल्ड' मैं समझता हूँ, मैंने सम्पत्ति प्रदायक स्वर्णक्षेत्र का पता लगा दिया है।" प्रेसिडेण्ट के आदेश से दो कमिश्नर (सी० जोहेनेस यूर्वर्ट और जोहेन रिसिक) नक्शा तैयार करने के लिए नियुक्त किए गए। तबसे उस धरती के भाग्य खुले जो आज जोहेन्सबर्ग के नाम से संसार में विख्यात है।

जोहेन्सबर्ग जलमार्ग से बहुत दूर है—पास में न तो नदी है और न समुद्र। बहुत दिनों तक सोने की खोदाई का काम ७५ मील लम्बे एक कटि क्षेत्र में होता रहा जिसे "रीफ" (दी रीफ) कहते थे। इसमें तीन स्वर्ण क्षेत्र थे—सेन्ट्रल रैण्ड (मध्य रैण्ड), वेस्ट रैण्ड (पश्चिमी रैण्ड) और ईस्टरैण्ड (पूर्वी रैण्ड)। इन क्षेत्रों में अनेक नगर धीरे-धीरे बस गए-जैसे जोहेन्सबर्ग, जर्मिस्टन, रुडेपोर्ट क्रूगर्सडार्प रैण्डफाण्टाइन, बाक्सबुर्ग ब्रेकपैन, बिनोनी, स्प्रिंग्स और निगेल। मुझे इन अनेक नगरों में जाने का अवसर मिला। दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड स्वर्णक्षेत्र की खोज बाद को हुई। इसकी खानों में पानी निकला, जिससे काम में बाधा पड़ी। चुम्बकत्वमापी यंत्रों द्वारा इस क्षेत्र का विस्तार में अध्ययन डा० एडोल्फ क्राहमान ने किया। अति प्राचीन लावा के नीचे दबे हुए स्वर्ण प्रस्तरों का जब पता चला तो इस रीफ का नाम वेण्टर्सडार्प काण्टेक्ट रीफ पड़ा। कुछ समय बाद एल्सबर्ग रीफ और कार्बन लीडर से भी परिचय हुआ।

अनेक स्थलों पर स्वर्ण क्षेत्र डोलोमाइट के आवरण से संरक्षित है। इस डोलोमाइट क्षेत्र के भीतर लाखों टन पानी, कीचड़ और मिट्टी है। इंजीनियरों ने क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए द्रव सीमेण्ट का बड़ी मात्रा में प्रयोग किया (सीमेन्टन प्रक्रम), जो पानी को सोख ले। कहीं कहीं पानी के स्रोतों को बाँधा, पानी को पीछे हटाया। कुछ दिनों पहले वेस्ट ड्राइफ़ोण्टाइन को प्रतिदिन ३६,००० ००० गैलन पानी खान से बाहर उलीचना पड़ता था। इस सब काम के लिए अतुल धनराशि व्यय की गयी है। दूरस्थ वेस्टरैण्ड को ६००,०००,००० रैण्ड (६०, करोड़ दक्षिणी अफ्रीका सिक्का=६ अरब रुपया) इस व्यवस्था के लिए खर्च करना पड़ा है।

दूरस्थ वेस्ट रैण्ड के प्रयास से प्रोत्साहित होकर एक और स्वर्णक्षेत्र का पता चला, जो क्लेर्क्सडार्प के निकट है, और जहाँ यूरेनियम भी मिलता है। इन खानों में से बफेल्सफौण्टाइन, हार्टेबीस्ट फौण्टाइन, वालरींव्स आदि भी प्रसिद्ध है।

आरेंज फ्रीस्टेट की खानों का पता १६ अप्रैल १९४६ को अकस्मात चला। पातालफोड़ यंत्र पर काम करने वाले एक मिस्तरी हेविटसन को गेडूल्ड क्षेत्र में काम करते पृथ्वी के भीतर ५ फर्लांग नीचे पर शिला का एक विस्तृत क्रोड-खंड मिला, जिसमें थोड़ा सा सोना था। इस क्रोड खंड में २३०३७ इंच पेनीवेट की मात्रा सोने की थी। इंच पेनीवेट इकाई में शिला खंड को आँका जाता है।

इंच पेनीवेट इंच=रीफ की चौड़ाई × प्रतिटन सोने की मात्रा (पेनीवेट में)। गेडूल्ड शब्द का अर्थ "धैर्य" है, और बड़ा धैर्य रखने पर इस खान में से सोना निकल सका।

नवीनतम खानों में से प्रमुख तो इवैण्डर है। सोमवार १ जनवरी को १९५६ को खोदाई का कार्य खुले मैदान में एक स्थान किनराँस पर आरम्भ हुआ। बृहस्पतिवार को वहाँ दो मकान बन गए, और शुक्रवार तक सारा नगर बसाया जाने लगा। कार्य तत्परता का यह ज्वलन्त उदाहरण है। आज यह स्वर्णक्षेत्र १० × ५ वर्ग मील में फैला हुआ है और २५,००० व्यक्ति यहाँ काम करते हैं।

इस प्रकार दक्षिणी अफ्रीका के सात स्वर्ण क्षेत्र ३०० मील लम्बे चाप पर स्थित हैं। यह स्पष्ट है कि जितने

श्वेत वर्ण यूरोपीय इस क्षेत्र में बसे हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं। यह सब श्वेत वर्णों की एकमात्र सम्पत्ति है।

सोने का परिष्करण : जिस रीफ में से सोना निकालना होता है उसकी मोटाई ३ फुट से ८ फुट तक (औसत ३½ फुट) होती है। कर्मचारी मजदूर इस रीफ की जाँच करते हैं, और जब उन्हें निश्चय हो जाता है कि रीफ स्थायी है, और जान का खतरा नहीं है, तब वे इसमें ३-३½ फुट गहरे छेद करते हैं। इन छेदों में विस्फोटक भर दिए जाते हैं। विस्फोटकों की सहायता से चट्टान चूर चूर कर दी जाती है, और यह चूरा खान से बाहर निकाला जाता है।

साधारण यांत्रिक परिष्करण के बाद इसे गलाया जाता है। इस प्रकार जो कच्चा सोना या बुलियन मिलता उसका रंग सुनहरा हरा होता है। यह ईंटों में ढाला जाता है, और प्रत्येक ईट १००० औंस की होती है। इसमें ८८ प्रतिशत सोना, ६ प्रतिशत चाँदी, और ३ प्रतिशत जस्ता, लोहा, ताँबा (कभी कभी कुछ प्लैटिनम भी) होता है। सारे अफ्रीका में तैयार किया बुलियन एक केन्द्रीय परिष्करण शाला में भेज दिया जाता है जिसे 'रैण्ड रिफाइनरी' कहते हैं, और जो जर्मिस्टन में है। यहीं सोने का परिष्करण होता है, और मुद्रा वाला सोना तैयार होता है।

इस रैण्ड रिफाइनरी में शतप्रतिशत शुद्ध सोना तैयार नहीं करते। केवल ९९६० भाग / १०,००० भाग शुद्धता का करते हैं। बाजारों में ९९·५ प्रतिशत सोने की माँग अधिक है, जिसमें ०·५ प्रतिशत चाँदी भी हो। चाँदी होने से कभी कभी सोने के लक्षणों में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। कभी कभी कुछ अन्य धातुओं की विद्यमानता पर भी आपत्ति नहीं की जाती, यदि वे अत्यल्प माना में हों।

आभरण बनाने वाले व्यवसायी तो कैरटों में सोने के मूल्य को आँकते हैं। १८ कैरट सोने का अभिप्राय उस सोने से है जिसमें १८/२४ भाग शुद्ध सोना हो। २२ कैरट सोना तो आभरणों के लिए बहुत अच्छा माना जाता है।

जर्मिस्टन परिष्करण शाला के द्वार पर प्रतिदिन १२१,००० सूक्ष्म औंस सोना आता है। यहां से प्रतिदिन सोने के ३०० बार (दण्ड) और १२,५०० सूक्ष्म औंस चाँदी निर्यात होती है।

सोने के अन्तिम परिष्करण का कार्य प्रसिद्ध सायनाइड विधि से सम्पादित होता है। इस परिष्करण से पूर्व पारद के साथ उनका संरस (अमलगम) तैयार करते हैं।

स्वर्ण खनन संबंधी कम्पनियाँ :

दक्षिणी अफ्रीका में इस समय स्वर्ण-खनन के कार्य में सहयोग देने वाली प्रमुख सात कम्पनियाँ निम्न हैं—

१—एंग्लो एमेरिकन कारपोरेशन आव् साउथ एफ्रीका, लिमिटेड।

२—एंग्लो ट्रांसवाल कानसालिडेटेड इनवेस्टमेन्ट कम्पनी, लिमिटेड।

३—जनरल माईनिंग एण्ड फिनान्स कारपोरेशन, लिमिटेड।

४—गोल्डीफील्ड्स आव् साउथ एफ्रीका, लिमिटेड़

५—जोहेनेसबर्ग कानसालिडेटेड इन्वेस्टमेन्ट कम्पनी, लिमिटेड़।

६—रैंडमाइन्स, लिमिटेड।

७—यूनियन कारपोरेशन, लिमिटेड।

खनन संबंधी व्यय का अनुमान :

ऐसे खान पर जो प्रति मास १८०,००० टन अयस्क का खनन और उपयोग करती हो, अनुमानिक व्यय ६०,००००० रैंड है। एक रैंड हमारे दस रुपये के मूल्य का है (आधापौण्ड)। यह व्यय लगभग इस प्रकार है—

खोदाई के कार्य में	रैण्ड	२५,०००,०००
रिडक्शन प्लांट (चूर्ण तैयार करने पर)		६,०००,०००
जमीन के भीतर की विकास आयोजना		७,०००,०००
कम्प्रेस्ड एयर (संपीडितावायु)		१,७५०,०००
बिजली		२,५००,०००
वेण्टिलेशन (स्वच्छ हवाप्रवाह)		७५०,०००
में पानी पम्प करने		१,०००,०००
अन्य फुटकर भूगर्भ संयत्रों पर		२,०००,०००
ऊपर की इमारतें		१,७५०,०००
यातायात साधन		१५०,०००
कर्मचारियों के मकानों और उनकी सुविधाओं पर		८,५००,०००
सामान्य व्यय		५००,०००
योग		६०, ०००, ०००

.पारद के अष्टादश संस्कार एवं स्वर्ण निर्माण की विधियाँ

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

पारे के द्वारा देह एवं लौह शुद्धि के लक्ष्यों के निमित्त मुख्यतः जिन अठारह संस्कारों के नाम बताये जाते हैं उनकी परिभाषाओं को, उनके महत्व को, एवं संस्कारों को, प्रायोगिक रूप से करने की विधियों को थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ विविध रूप में भारतीय रसशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णित किया है । वर्णन की शैली साहित्यिक, आलंकारिक एवं मनोरंजक है तथा एक ही शब्द के लिये विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे अभ्रक लिये गगन, भेक आदि शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। वस्तुओं के परिमाणों के वर्णन में तथा तपाने के ताप, समय आदि के सबंध में आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार विवरण प्राप्त नहीं हैं। अतः ग्रन्थों के आधार पर श्लोकों के शुद्ध एवं वास्तविक अर्थ लगाकर कार्य प्रारम्भ कर सकना या मात्र पढ़ पढ़ कर प्रयोगशाला में कार्य करने से सफलता प्राप्त करना प्रायः दुरूह पाया गया है। गुरु परम्परा द्वारा प्रायोगिक ज्ञान की प्राप्ति ही अद्यावधि एक सुगम एवं निरापद पथ माना गया हैं अतः प्रस्तुत लेख में अठारह संस्कारों की परिभाषाओं एवं उनकी क्रियाविधियों का संकेतकारक विहंगावलोकन मात्र किया जा रहा है। विस्तृत जानकारी के इच्छुक पाठकगण निष्णात आचार्यों एवं प्रयोग करने वाले विद्वानों से सम्पर्क कर सकते हैं तथा सिद्ध नागार्जुन, भिक्षु गोविंद, नित्यनाथ सिद्ध ढुण्ढुकनाथ, यशोधर, कायस्थ चामुण्ड, गोपालकृष्ण भट्ट, गोविन्दाचार्य, तीसट, प्राणनाथ आदि प्रमुख रसविद्या विशारद आचार्यों के विरचित निम्नलिखित प्रमुख ग्रन्थ देख सकते हैं—रस रत्नाकर, रस रत्न समुच्चय, रस हृदय तन्त्र, पारद संहिता, रसार्णव, रसेन्द्र चिन्तामणि, रस संकेत कलिका, रसेन्द्र सार संग्रह इत्यादि।

जैसा कि कहा जा चुका है पारद की चैतन्यमयता एवं मानवीकरण संबंधी कल्पना की गई है। अतः पारद के अन्तर्निहित दोषों को हटाने के लिये जो सर्वप्रथम कार्य किया जाता है वह है स्वेदन अर्थात् पसीना लाना। अतः पारद का प्रथम संस्कार है स्वेदन।

(१) **स्वेदन :** इस संस्कार के लिये पारद को पोटली बनाकर दोला यंत्र में क्षार एवं अम्लौषधियों के साथ पकाना पड़ता है। इस क्रिया से पारद के दोष ढीले होकर छूटने योग्य हो जाते हैं।

(२) **मर्दन :** मर्दन अर्थात् रगड़ना। विहित औषधियों के साथ एवं रसों के साथ स्वेदित पारद को घोटा जाता है तो वह लुगदी या कल्क जैसी वस्तु का रूप ले लेता है।

(३) **मूर्च्छन :** इस अवस्था में पारद को मूर्च्छित या बेहोश कहा जाता है। यह हुआ मूर्च्छन संस्कार।

(४) **उत्थापन :** बेहोश या मूर्च्छित पारे को डमरू यंत्र में ताप द्वारा उड़ाकर पुनः क्रियाशील अवस्था में लाना, उत्थापन संस्कार कहलाता है।

(५) **पातन :** पातन (सब्लिमेशन) अर्थात् गिराना। उपर्युक्त संस्कारों के दौरान भी जो दोष न निकल सकें उन्हें हटाने के लिये पारे में विभिन्न पदार्थ मिलाकर उसका तीन तरह से उर्ध्व, अधः एवं तिर्यक पातन संस्कार करते हैं। इस हेतु उत्थापित पारद को उपर्युक्त पातन यंत्रों में ताप देकर, उड़ाकर एकत्र कर लेते हैं।

(६) **रोधन या बोधन :** उपर्युक्त संस्कारों में कष्ट सहते सहते पारा मरणप्राय या नपुंसक सा हो जाता

है। उसे पुनः शक्तिशाली एवं जागृत करने के लिये यह संस्कार किया जाता है। इस हेतु पारे को तीन दिन तक घड़े में सेंधव नमक के जल में रखा जाता है।

(७) नियमन : बोधित या शोधित पारा अत्यधिक चंचल (मोबाइल) एवं अनियंत्रित हो जाता है। उसे अपने नियंत्रण में लाने के लिये ताकि अगले संस्कार स्वेच्छा एवं सफलतापूर्वक किये जा सकें यह संस्कार किया जा सकता है। इस हेतु पारद का स्वेदन नागरमोथा, इमली मागंरा, धतूरा, आदि औषधियों के स्वरसों में किया जाता है।

(८) दीपन : नियमित पारा, अगले संस्कारों में भूखा बनकर धातुओं एवं पदार्थों के समुचित भक्षण के योग्य हो सके एवं औषधोपयोग में शुद्ध एवं साथ ही शक्तिशाली रूप में लाया जा सके इसलिये दीपन संस्कार किया जाता है। इस हेतु नियमित पारद को पंच लवण, काली मिर्ची आदि के चूर्ण एवं कांजी मिलाकर दोला यंत्र में अनवरत रूप से तीन दिन तक स्वेदित किया जाता है।

दीपन के पश्चात् अनुवासन किया जाता है। जो किन्हीं ग्रन्थों के मत से संभाव्य बीस या उन्नीस संस्कारों में नवां संस्कार है। इसे दीपन का अनुसंस्कार कहा जा सकता है। पारद की भूख और अधिक प्रदीप्त करने के लिये दीपनोपरांत प्राप्त पारे को जंभीरी निम्बू के रस में सूर्य की तीक्ष्ण धूप में मिट्टी या पत्थर के बर्तन में रखने से दीप्त पारद अनुवासित हो जाता है।

पारद के उपर्युक्त आग संस्कार आयुर्वेद में अनिवार्य माने गये हैं। अष्टम संस्कार तक आते आते पारद की सात कंचुलियाँ (दोष) तथा अन्य दोष छूट जाते हैं एवं लोह शुद्धि के उपयोग की वास्तविकता प्राप्त कर लेता है।

पारद के अग्रिम संस्कार इस प्रकार हैं—

(९) गगन ग्रास या अभ्रक भक्षण : टंकण एवं कृष्णाभ्रक आदि को दिये हुए प्रमाण में लेकर मूषा में तीव्रता से तप्त करने पर अभ्रक सत्व प्राप्त होता है एवं अष्ट संस्कृत पारे का क्रमशः चौसठवां, बत्तीसवां, सोलहवां, एवं आठवां हिस्सा अभ्रक सत्व एवं प्रत्येक बार सोलहवां हिस्सा बिड लेकर कच्छप यंत्र में तपाने पर पारा अभ्रक सत्व खा लेता है। इस भक्षण संस्कार से पारे की भूख एवं पाचन शक्ति बढ़ जाती है। यहां बिड पर भी संक्षिप्त टिप्पणी उचित होगी।

बिड : बिड की तुलना आदमी के उपयोगी पाचक चूर्णों एवं चटनियों से की जा सकती है। बिड प्राप्त होता है दी हुई जड़ी-बूटियों को जलाकर, भस्म कर, उनके क्षारीय भस्मों को गौमूत्र में डाल कर एवं सुखा कर। भिन्न भिन्न प्रयोगों के लिए भिन्न भिन्न बिड होते हैं, जैसे कि वड़वानल, ज्वालामुख, हंसपाक आदि। अगले प्रायः सभी संस्कारों में बिड का प्रयोग किया जाता है।

(१०) चारण : चारण अर्थात् चबाना, खिलाना। इसके अन्तर्गत पारे को कई पदार्थ चराये जाते हैं जिसमें वह अग्रिम गर्भद्रुति आदि की पात्रता प्राप्त कर सके। अभ्रक, स्वर्ण आदि का पारद में अन्तर्भूत हो जाना ही चारण है। इस कार्य के लिये अभ्रक सत्व ताम्र सत्व, पारे आदि को बराबर मात्रा में लेकर तप्त खल्व लकड़ी में कत्थे की की आग में मर्दित करते हैं और तपाते हैं।

(११) गर्भद्रुति : अग्नि के बिना ही पारद द्वारा ग्रास की गई धातुओं का पारद के गर्भ में घुलकर द्रव (द्रुति) बन जाना ही गर्भ द्रुति है। सुवर्णमाक्षिक सत्व एवं अभ्रक तत्व तथा पारा बराबर लेकर तत्व में घोटने से गर्भद्रावी पारद निर्मित हो जाता है।

(१२) बाह्य द्रुति : मूषा के भीतर अभ्रक आदि को वज्र वल्ली के रस और सांवर्चल आदि औषधियों के साथ बाहर ही पृथकतः पिघला कर पारे में अग्रिम संस्कार जारण के लिये मिलावें तो यह क्रिया बाह्य द्रुति कहलावेगी। गर्भद्रुत पारद में ही बाह्यद्रुति संभव है।

(१३) जारण : जारण अर्थात् बाह्यद्रुति द्वारा मिलाने -गर्भ स्वर्ण, अभ्रक सत्व आदि पदार्थों का पारे में जलाने की सीमा तक पकाना। जारण के संबंध में परिभाषा दी गई है 'जारण हि नाम गालन पातन व्यतिरेकेण घन हेमादि ग्रास पूर्वक पूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वम्' (रसेन्द्र सार

संग्रह)। इस संस्कार के अन्तर्गत विविध प्रकार की वस्तुओं के जारण होते हैं जैसे गंधक, अभ्रक, नाग, वंग, स्वर्ण, रोप्य आदि के। पारे से छह, आठ, बारह, सौ आदि गुना गंधक लेकर कच्छप यंत्र में तपाने से षड़गुण, अष्टगुण शतगुण जारित पारद प्राप्त होता है। षड़गुण गंधक जारित पारद एक न्यूनतम आवश्यकता बतलायी गयी क्योंकि इसके बिना देह एवं लौह शुद्धि की अग्नि क्रियाएं असंभव हैं। विभिन्न धातुओं के जारण के विभिन्न प्रकार बतलाये गये हैं। धातुओं के जारण के लिये उनके बीज लिये जाते हैं जैसा कि स्वर्ण बीज, रौप्य बीज आदि। धातु बीजों के निर्माण की भी विशिष्ट विधियाँ होती हैं। जारण के कई भेद हैं जैसे घन सत्व, समुख, निर्मुख, वासना मुख, बाल, वृद्ध आदि। इन जारणाओं के विभिन्न परिणाम होते हैं।

(१४) **रंजन** : रंजन अर्थात् रँगना। इस संस्कार में पारे को तरह तरह का रंग दिया जाता है एवं उसमें अन्य वस्तुओं को रंग देने की शक्ति उत्पन्न की जाती है ताकि इच्छित वर्णन की इच्छित धातु प्राप्त हो सके। रंजन संस्कार के लिये सिद्ध किये हुए स्वर्ण एवं रोप्य आदि बीजों को विविध धातुओं एवं रक्त वर्ण वाली जड़ी बूटियों के रसों (रंजन तेल) के साथ अन्य मूषा में रखकर तपाते हैं एवं एकरस कर देते हैं। इससे पारे में हरे, पीले आदि रंग उत्पन्न हो जाते हैं। यह हुआ रंजन संस्कार।

(१) **सारण** : पारद में सरक सरक कर दी हुई धातु में अन्दर तक प्रवेश करने की शक्ति उत्पन्न करना सारण कहलाता है। द्वन्द्व मेलापक करने वाली औषधियों की उपस्थिति में मालकांगनी, करंज आदि द्रव्यों का सारण तैल तैयार किया जाता है। इस सारण तेल एवं धातुओं (रांगा, सीसा आदि) को कई तरह की चर्वियों एव रंजित पारद के साथ काफी लम्बे समय तक तपाया जाता है। इस क्रिया से पारद में अगले संस्कार क्रामण की उद्‌भावना प्रारंभ हो जाती है।

(१६) **क्रामण** : यह संस्कार सारित पारद में वह गुण उत्पन्न करता है जिससे वह हल्की धातुओं के कण कण में प्रविष्ट होकर (क्रामण कर) उन्हें सोने से परिवर्तित होने के योग्य बना दे। हिंगुल मारित तीक्ष्ण लोह या स्वर्ण माक्षिक मारित ताम्र लौह को आक के दूध या काँजी आदि भावना द्रव्यों के साथ तथा इन्द्रगोप, रक्त कान्तक आदि के कल्क के साथ सारित पारद को अन्धमूषा में तपाने से क्रामण सम्पन्न होता है। मैनसिल से मारा हुआ सीसा तथा शुद्ध हरिताल से मारा हुआ रांगा ये दोनों क्रमशः सुवर्ण एवं चांदी बनाने में क्रामणक का कार्य करते हैं। कहा भी है "शिलया निहितो नागो, वर्ग वा तालकेन शुद्धेन। क्रमशः पीते शुक्ले, क्रामणम् एतत् समुद्दिष्टं"।

(१७) **वेध** : वेध अर्थात् बींधना। क्रामण संस्कृत पारे की सहायता से हलकी धातुओं को अच्छी तरह बींध कर सोने में बदलने से संबंधित एवं प्रस्तुत लेखमाला के शीर्षक से सीधा संबंध रखने वाला यह संस्कार है। पाठकों के कौतुक एवं मनोरंजन की दृष्टि से हम इस पर किंचित विस्तार से विचार करेंगे।

क्रामण संस्कृत पारद वेध करने योग्य हो जाये इस लिये उसे कई तेलों के मिश्रण में घंटों मर्दन करना पड़ता है। धरणीधर संहिता में कहा गया है, "अथ वेध विधान हि कथयामि सुविस्तरम्।...धूर्त तैल महेः तैलम् कंगुणी तैलमेव व।...यामैकं र्मदिमं सम्यक् पारदो वेध क्रत् भवेत्॥ "अर्थात् धतूरा, खस, कांगनी, जलमांगरे के बीज, सींगिया जत्त कन्हेर, कन्हेर की जड़, समुद्र शोष के तैल एवं अन्य क्रामण तैलों का मिश्रण लेकर क्रामण संस्कारित पारद के साथ एक प्रहर तक मर्दित करने से वेध संस्कार सम्पन्न होता है। दी हुई विधियों से क्रिया करने पर शत, सहस्त्र, लक्ष एवं अयुत वेधी तक पारद तैयार किया जा सकता है, अर्थात् अपने से सौ, हजार, लाख, अरब आदि गुनी तांवां, लोहा आदि धातुओं को वेधक पारा सोने में वदल सकता है।

वेधन कर्म पाँच प्रकार का बतलाया गया है। लेप वेध, क्षेप वेध, कुन्त वेध, धूम वेध और शब्द वेध। इन क्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

लेप वेध : यह अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली पारे से सम्पन्न होता है। धातु का वाह्य स्तर ही स्वर्ण बनता है। तांबे, लोहे के महीन वरकों पर इस पारे का लेप कर अन्धमूषा में तपाने से वे स्वर्ण में वदल जाते हैं।

क्षेप वध : क्षेप अर्थात् फेंकना। पिघले हुए चांदी, तावे आदि में क्षेप वेधक पारा डालकर उन्हें स्वर्ण वना देना है क्षेप वेध।

कुन्त वेध : सीसा, चांदी या तांवा अलग पात्र में एवं कुन्तवेधी पारा अलग पात्र म पिघला कर दोनों द्रवों को मिलाने पर यदि स्वर्ण वने तो यह क्रिया हुई कुन्तवेध।

धूम वेध : जिस पारे को गर्म करने से उसकी वाष्प या धुंए के स्पर्श मात्र से लोहा, चांदी आदि स्वर्ण वन जावे तो वह पारा हुआ धूमवेधक एवं क्रिया हुई धूमवेध।

शब्द वेध : शब्द वेध समर्थ पारद की गोली मुँह में रखकर फुंकनी से तप्त लोहे या सीसे आदि को फूंक मारने मात्र से यदि सोना बन जाये तो यह क्रिया हुई शब्द वेध।

अब हम कुछ विधियों का पर्यवेक्षण करेंगे जोकि तांबा, चांदी, लोहा आदि धातुओं को सोने में परिवर्तित करने के लिये प्राचीन रस ग्रन्थों में दी गई हैं।

पत्र लेप विधि : शुद्ध चांदी एवं तांबे के महीन पत्र लेकर उन्हें कई बार अम्लवर्गीय औषधियों में भावित करे एवं क्रामण संस्कारोक्त औषधियों से लेपन कर तदनन्तर सुवर्णादि बीजरहित ग्रास जीर्ण पारे से लेपन करे एवं पुट देवे। इससे वर्क के ऊपरी हिस्से स्वर्ण हो जावेंगे।

तांबे से सोना बनाना : सम भाग सुवर्ण बीज ग्रास पारे को यदि अपने से सौगुने पिघले तांबे में मिलाया जाय तो वह तांवे को सोने में वदल देता है। एक अन्य विधि के अनुमार यदि चार तोले पारे में तीन तोला सुवर्ण बीज युक्त तांवा मिला दिया जाय एवं इन दोनों के मिश्रण में सौ गुना अधिक साधारण पिघला तांवा मिलाया जाय तो समूचा मिश्रण स्वर्ण में परिवर्तित हो जायेगा।

इसी तरह से लोहा, सीसा, चांदी, मिश्र धातुओं आदि को स्वर्ण में परिवर्तित करने की विधियों के भी विवरण प्राप्त होते हैं। इन सवके संबंध में संक्षिप्त विवेचन हम इस लेखमाला के अग्रिम पुष्प में करेंगे एवं आधुनिकतम वैज्ञानिक विकास के प्रकाश में इस समीक्षा का प्रयास करेंगे कि पारे एवं सोने में रासायनिक दृष्टि से क्या संवन्ध हैं एवं उनका पारस्परिक परिवर्तन भौतिक विधियों से किस प्रकार संभव है? विशुद्ध रासायनिक विधियों से स्वयं पारे को सोने में वदलना या पारे की सहायता ले हलकी धातुओं को सोने में वदलना संभव है या नहीं?

● ●

कितना महँगा

डाक्टरों का कहना है कि चुम्बन से न केवल संसर्ग रोग फैलने की आंशका है वरन् प्रत्येक चुम्बन से २० सेकंड आयु कम होती है और हृदय की कम्पन गति दूनी हो जाने से रक्त चाप बढ़ता है जिससे कालान्तर में वीमारी हो सकती है। किन्तु क्या इससे स्त्री-पुरुषों के वीच चुम्बन में कमी आ सकेगी?

लोमहर्षक प्राणि लेखमाला–३

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

● रामेश वेदी

पारिवरिक जीवन : पालतू ढोरों तथा वन्य मृगों से गेण्डे का दाम्पत्य जीवन भिन्न होता है। उनके समान इसमें बहुपत्नी-प्रथा नहीं देखी जाती। नर गेण्डे के हरम में एक ही पत्नी होती है।

संवेशन के समय कामासक्त गेण्डे अपनी प्रेयसी के नितम्बों तथा उसकी सींग की नोक को स्पर्श करने में सुख मानते हैं। जंगल में संवेशन के चार उदाहरण, फरवरी के अन्त से अप्रैल के अन्त तक, देखे गए हैं। चार साल में एक बार गर्भधारण किया जाता है। सत्रह-अठारह महीने तक बच्चा माँ के गर्भ में रहता है। कुछ प्राणिशास्त्रियों ने यह अवधि उन्नीस महीने लिखी है परन्तु नेपालियों का विश्वास है कि गर्भधारण करने की कुल अवधि सामान्यतया एक साल होती है। मादा गेण्डा साल के किसी भी समय बच्चे को जन्म दे देती है। एक ब्यांत में एक ही बच्चा पैदा होता है। जन्म के समय शिशु गेण्डे का भार लगभग १६० किलोग्राम होता है। एक बार पेट चीर कर गर्भाशय में से बच्चा निकाला गया था जिसके सब अंग बन चुके थे। इसका भार ५४ किलोग्राम था और लम्बाई १२४ सेन्टी-मीटर (चार फीट एक इंच) थी।

माँ बड़ी सावधानी से शिशु की रक्षा करती है। उसे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती। घास चरते हुए वह माँ के आगे-आगे रहता है। यही बात अफ्रीकी सफेद गेण्डे में देखी जाती है जो भारतीय गेण्डे के समान ही घास चरने वाला है। ये दोनों जातियाँ घनी और ऊँची घास वाले जंगलों में रहती हैं जहाँ अफ्रीका में तो बबर शेर से और भारत में बाघ से बचाने के लिए शिशु को आगे रखने की आदत पड़ गई है। शेर छोटे बच्चे को ही मार सकता है, पूरे गेण्डे को मारना उसके बस में नहीं है। दूसरी ओर कोंपलों को कुतर कर खाने वाले गेण्डों की जातियों में बच्चों को आगे रखने की सावधानी बरतना आवश्यक नहीं होता क्योंकि ये ऐसे जंगलों में रहते हैं जहाँ वृक्ष और घासें घनी नहीं होतीं, छितरी और छोटी झाड़ियों में चरता हुआ गेण्डा दूर से ही खतरे को पहचान जाता है। अफ्रीकी काले गेण्डे के शिशु अपने माँ-बाप के पीछे चलते हैं। काफी बड़ा हो जाने तक बच्चे को माँ-बाप का संरक्षण मिलता रहता है। इसका एक कारण यह है कि चार साल तक तो वह माँ का दूध पीता है।

बन्दी जीवन में सन्तति : पशुवाटिकाओं में जब इनकी ठीक तरह सार-सम्हाल की जाती है तो वहाँ इनकी सन्तति भी बढ़ती रहती है। बन्दी-जीवन में गेण्डे के प्रसव के उदाहरण मिल जाते हैं। काजीरंगा संश्रय (संक्चुरी) से पकड़ी हुई एक मादा गेण्डा १९६१ के मध्य जून में कलकत्ता से जापान भेजी जाने वाली थी। अलीपुर पशुवाटिका में कठघरे के अन्दर ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। अब प्रश्न यह उठा कि क्या बच्चे को भी माँ के साथ ही जापान भेज दिया जाय ? बच्चे की यात्रा का किराया तथा यात्रा में उस कोमल शिशु के कष्टों का

और ऐसी ही अनेक बातों का विचार करते हुए उसे माँ से अलग कर अलीपुर पशु-वाटिका में ही रखने का निश्चय किया गया। एक मास की आयु के भोले-भाले बच्चे के वियोग में ही उसकी माँ रानी को विदेश यात्रा के लिए अकेला रवाना होना पड़ा।

गेण्डे का जीवन-काल लगभग साठ वरस है। अनुमान है कि वन्दी-जीवन में इनकी आयु कुछ वढ जाती है। पुराने विश्वासों में पशु-जगत् में सबसे अधिक उम्र एक-श्रृंगी गेण्डे की कही जाती है। पहले जमाने के लोगों की मान्यताओं के अनुसार यह कम से कम दो हजार साल तक जिन्दा रहता है।

रोग : काजीरंगा वन जन्तु विहार में गेण्डों को अपने प्राकृतिक जीवन में भी रोगों से आक्रांत होते पाया गया है। पशु-जगत् रोगों के फूट पड़ने से संश्रय को सैकड़ों दुर्लभ गेण्डों से वंचित हो जाना पड़ता है। वन्य जीवन की रक्षा के उद्देश्य से स्थापित भारतीय मण्डल (वाइल्ड लाइफ प्रिजर्वेशन बोर्ड) ऐसे रोगों के आक्रमण से इन्हें बचाने में प्रयत्नशील रहता है।

दिल्ली की पशु-वाटिका में मोहन गेण्डे को किसी रोग से आक्रांत होते नहीं देखा गया।

चिड़िया घरों तथा जंगलों में भी कुछ पक्षी गेण्डों की पीठ पर वैठे उसके शरीर पर शरण पाने वाले पराश्रयियों को चुगते रहते हैं। ये पक्षी गेण्डे के अच्छे मित्र हैं। इससे गेण्डे को दो लाभ होते हैं—एक तो पराश्रयियों से मुक्ति और दूसरा यह कि ये पक्षी किसी भी अजनबी को देख कर उड़ जाते हैं और गेण्डे को सावधान हो जाने का संकेत मिल जाता है।

जीवन के आरम्भिक वर्षों में गेण्डे का सबसे वड़ा दुश्मन शेर होता है—बबर शेर और धारीदार शेर दोनों ही। बंदी हो जाने पर इसे शेरों से खतरा नहीं रहता। इसके वल और सामर्थ्य को देखकर उनकी इस पर हमला करने की हिम्मत नहीं पड़ती। वड़े गेण्डे का मुख्य शत्रु मनुष्य है।

हाथी से यदि मुकावला हो जाय तो गेण्डा उससे डरता नहीं। कहा जाता है कि यह उसकी टाँगों के नीचे घुस कर उसके पेट पर चोट करने की कोशिश करता है। प्लीनी ने लिखा था कि हाथी के साथ लड़ने से पहले यह पत्थर पर रगड़ कर सींग को तेज कर लेता है।

गेंड़े की पकड़ : गेण्डे को पकड़ना सचमुच वहुत कठिन काम है जिसमें वन-अधिकारियों को बड़े जोखिम का सामना करना पड़ता है। उनके आने-जाने के स्थानों पर नौ फुट लम्बे, पांच फुट चौड़े और छह फुट गहरे गढ़े खोदे जाते हैं। वनों में जगह-जगह पड़े हुए लीद के ढेरों के आस-पास गढ़े खोदना अधिक कारगर समझा जाता है। इन्हें घास-पात से इस तरह ढक दिया जाता है कि पशु को पता न चले। इनमें किसी समय गेण्डा गिर सकता है। वन-अधिकारियों की राय में रात्रि के समय गिरे तो अच्छा रहता है। हाथियों की खेदा पद्धति के समान यहाँ गेण्डों को घेर कर इधर हाँका नहीं जाता। कहा जाता है कि अपनी आदत के अनुसार जब वह मल विसर्जन के लिए उधर उलटा जा रहा होता है तो गढ़े में गिर जाता है।

सीधा-सादा गेण्डा जो अब तक शान्त भाव से घास के कोमल अंकुरों को निश्चिन्तता से चर रहा था गढ़े में गिरते ही एक भयंकर जीव वन जाता है। वह तुरन्त अपनी थूँथनी से गड्ढे की दीवार की मिट्टी को खोदना शुरू करता है। कई जगहों पर मिट्टी नरम और गीली होती है। इसे खोद कर वह कभी-कभी गड्ढे से बाहर निकलता हुआ भी देखा गया है।

गढ़े में गेण्डे के गिरने की खबर मिलते ही पकड़ने वाला दल रस्से, फावड़े, टोकरियाँ, पिंजरा आदि आवश्यक सामान ले कर वहाँ पहुँच जाता है। उन्हें देखते ही वह क्रोध में ललकारता है। परन्तु वहाँ उसकी परवाह करने वाला कोई नहीं होता। सावधानी से नजदीक पहुँचते हुए वन-कर्मचारी मोटे और मजबूत रस्सों के फन्दों को उसके शरीर पर फेंकना शुरू करते हैं। सबसे पहले उसकी बलशाली गरदन को वश में करना होता है। गरदन को जकड़ लेने के बाद अगला काम आसान हो

जाता है। उसी तरह फंदे फेंक कर गेण्डे को सात-आठ जगह से बांध लिया जाता है। रस्सों के दूसरे सिरे आस-पास के पेड़ों से बाँध दिये जाते हैं। इतने बंधनों में जकड़ा जाने के बावजूद भी वह छुटकारा पाने के अपने प्रयासों में जरा भी ढील नहीं करता। उस समय वह क्रोध और पशुबल का मूर्त रूप बना होता है। हुंकार कर पास आने वालों पर झपट उठता है।

बाँधने का काम पूरा हो चुकने पर गढ़े के एक ओर से मिट्टी हटा कर नाली खोदी जाती है। गढ़े की दीवार जब दो फुट रह जाती है तो रस्सों के सहारे नाली के अंतिम सिरे तक एक पिंजरा सरकाया जाता है। इसके खुले दरवाजों का मुख गढे की दीवार से सटा कर रखा जाता है। अगला काम अधिक जोखिम का है। कुछ सधे हुए कर्मचारी दो-फुटी दीवार को कस्सियों से काट कर पतला करना शुरू करते हैं। उन्हें अपने बिलकुल पास देख कर मुँह से झाग निकालता हुआ बन्दी उन पर बार-बार झपटता है। बुद्धिहीन यह विशाल दानव उस समय छूट जाय तो !

जब दीवार लगभग छः इंच मोटी रह जाती है तो खुदाई का काम रोक देते हैं। जो रस्से बन्दी पशु को इधर बढ़ने से रोक रहे थे उन्हें ढीला कर देते हैं। पिंजड़े के पीछे खड़ा एक कर्मचारी सफेद कपड़े को हिला कर पशु को भड़काने की कोशिश करता है। गुस्से में वह उस पर झपट पड़ता है। ऐसे एक दो हमलों में पतली दीवार टूट जाती है और गेण्डा पिंजड़े में दाखिल हो जाता है। फिर दरवाजे गिरा दिये जाते हैं।

इस कशमकश में जीव का कई बार सींग टूट जाता है या कोई दूसरा अंग क्षतिग्रस्त हो जाता है। १९६२ की जनवरी में पेरिस की जन्तु-शाला के लिए इन आरक्षित जंगलों से जो मादा गेण्डा पकड़ी जा रही थी, उसका यह प्राकृतिक शृंगार टूट गया था। तब असम सरकार को बाध्य होकर इस शूर्पणखा की पेरिस यात्रा रद्द कर देनी पड़ी थी। फिलेडलिफिया की पशु-वाटिका की मांग के लिए पकड़े जाते हुए एक गेण्डे ने स्वतन्त्र होने की कोशिशों में गड्ढे के अन्दर ही दम तोड़ दिया था। इससे असम सरकार को इस मूल्यवान जीव से मिलने वाली भारी रकम की हानि उठानी पड़ी।

पशुओं का व्यापार करने वाले कुछ साहसिकों ने अफ्रीकी गेण्डे को पकड़ने में अद्भुत शौर्य और सूझबूझ का परिचय दिया है। गड्ढे खोदे बिना ही वे गेण्डे को सफलता पूर्वक पकड़ लेते हैं। जंगल से बाहर खुले मैदान में वे गेण्डे का पीछा करते हैं, पकड़ने वाले लोग दो-तीन दलों में अलग-अलग बँट कर ट्रकों में सवार हो जाते हैं।

गेण्डों को पकड़ने जाना एक आनन्ददायक यात्रा नहीं है। यह खतरे से भरा काम है। जब पकड़ने का कार्य शुरू होता है तो दल में प्रत्येक सदस्य के जिम्में अपना-अपना काम होता है। अपनी रक्षा करना भी उसके अपने जिम्मे होता है। दल के सदस्यों को तब न तो फुर्सत होती है और न ही उसके लिए संभव होता है कि वे अपने साथी केमरामैनों तथा दूसरे आलतू-फालतू लोगों की चिन्ता कर सकें। इन लोगों को भी सभी विपत्तियों का सामना करने के लिए सन्नद्ध होकर जाना होता है।

जिन ट्रकों में ये लोग सवार होते हैं वे खूब मजबूत बने होते हैं और लगभग पाँच टन वजन के भारी रहते हैं। छोटा-मोटा ट्रक तो गेण्डे के सींग की टक्कर से ही पलट जाय। सींग की चोटों से ट्रक के पार्श्व चलनी बन जाते हैं। ट्रक के देह की धातु को छेद कर सींग की नोक पार निकल जाती है। ऐसा लगता है कि तोपों से इन पर गोलियाँ दागी गई हैं। यह चोट अचानक ट्रक के मर्म स्थल पर लग जाय तो कई बार क्षति गम्भीर होती है। एक बार एक ताजा पकड़ा हुआ गेण्डा रस्सों मे जकड़ा हुआ धरती पर पड़ा था। जिस लारी द्वारा उसे पकड़ा गया था वह पास में खड़ी थी। वायरलेस द्वारा पकड़ने का समाचार आधार शिविर को भेज दिया गया था। वहाँ से वह ट्रक चल पड़ा था जिसमें गेण्डे को लादा जाना था। वशीकरण रस्सों में कसा हुआ गेण्डा मुक्त होने के लिए रह-रह कर जोर मारता। एक बार उसने ऐसा सींग मारा कि पास में खड़ी हुई लारी की पेट्रोल की टंकी बिंध

गई। पेट्रोल की धार फूट पड़ी। लारी को हटाने से पहले ही गेण्डे का सिर पेट्रोल के द्वारा बुरी तरह नहा गया।

अपने पीछे आते हुए ट्रकों को देख कर गेण्डा बेतहाशा भागता है। ट्रक जब बिलकुल पास जा जाता है तो वह अपने मजबूत सींग से जोर का वार करता है। सींग की टक्करों से वह ट्रक को नष्ट कर देना चाहता है।

शिकारी दल के सदस्य मौका पाते ही रस्से के फंदे फेंकते हैं। गले में पहला फंदा पड़ने के बाद गेण्डे के क्रोध कीं सीमा का अतिक्रमण होता है। परन्तु इससे उसकी निरंकुश गतिविधियों को वश में करने में सहायता मिलती है। एक इन्च मोटा रस्सा तीन टन वजनी बलशाली दानव के दर्प को भी क्रमशः कम करते रहते हैं। फिर ट्रक खड़ा कर लिया जाता है। युद्ध शुरू हो जाता है। गेण्डा पीछे को हटता है। रस्सा तन जाता है। अपने भारी सिर को ऊपर और नीचे उठा कर झटके देता है। रस्सा इतना छोटा कर लिया जाता है कि गेण्डा कम से कम ऊधम मचा सके। तब चार-पाँच जवान झट ट्रक से कूद पड़ते हैं। पहले पशु की पिछली टाँगों को और बाद में अगली टाँगों को कस कर बाँध देते हैं। यह सब कुछ मिनटों में ही कर लिया जाता है। तब ट्रक में लादने के उपक्रम शुरू होते हैं।

आदेश पालक ढोर : नया पकड़ा गया गेण्डा जंगलीपन और क्रोध दिखाता है। कुछ घण्टे तक वह कठघरे या बाड़े की दीवारों पर चोट करता रहता है। कोई-कोई गेण्डा ऐसा भी निकल आता है जो विरोध स्वरूप खाना नहीं ग्रहण करता। दो दिन तक यदि वह कुछ न खाये तो मर जाने से बचाने के लिए उसे मुक्त कर देना चाहिए।

पालक से प्रेम और दया का बर्ताव मिलने पर उसका स्वभाव बदल जाता है। विश्वास प्राप्त कर लेने पर वह अपनी जीभ से पालक को उसी तरह प्रेम प्रदर्शन के लिए चाहता है जैसे कि गाय या भैंस अपने मालिक को चाहती है। मद्रास के चिड़ियाघर के पालक से एक गेण्डा इतना हिल गया था कि पुकार पर वह पालतू ढोर के समान विनम्रता से आ खड़ा होता था। पालक उसकी पीठ पर सवार होकर दर्शकों में कुतूहल जाग्रत करता था। उस गेण्डे ने अपने को इतना विनम्र और एहसानफरोश बना लिया था कि अपने पालक के अलावा दूसरे लोगों को भी सवारी करा देता था।

चिड़ियाघरों में देखा गया है कि गेण्डे का बच्चा जितनी कम उम्र से पाला गया है उतना ही अच्छा वह पालतू बनता है। इस समय तो वह दुर्लभ प्राणी है परन्तु संरक्षण में रहता हुआ यदि यह अपनी संख्या को बढ़ा लेता है तो क्यों न इसे खेती-बाड़ी के कामों के लिए प्रशिक्षित किया जाय? आखिर मनुष्य जड़-बुद्धि भैंसों से भी तो काम ले रहा है!

सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोग सम्भवतः गेण्डे को पाल कर रखते थे। मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त अधिकांश सीलों पर गेण्डा एक खुरली के पास खड़ा है। ठीक वैसी ही खुरली जैसी छोटे सींग वाले बैल के आगे है। सीलों के ऊपर खुदी हुई लिखावट को क्योंकि पढ़ा नहीं जा सका इसलिए यह कहना कठिन है कि वे इस पशु को खेती-बाड़ी के कामों में या भारवाहन के लिए इस्तेमाल करते थे अथवा शौकिया पालते थे।

गेण्डे के एक अनाथ बच्चे के विषय में कालिन विल्लौक (१९६४) ने बताया है। वह मादा बच्ची थी। नील के पास उसकी मां मर गयी थी। घेर कर उसे एक बड़े घेरे में रखा गया। जब वह बड़ी हो गई तो उसे जंगल में छोड़ देने का विचार आया। परन्तु वह उस जगह को छोड़ कर जाना ही नहीं चाहती थी। इसका कारण उसके दिल में बसा भय तथा आत्मविश्वास की कमी थी। जब वह बहुत नन्हीं थी तो उसे अपने घेरे के चारों ओर जंगल में बबर शेरों की गरज अक्सर सुनाई देती रहती थी। अब बड़ी हो जाने पर भी शायद वह सोचती थी कि बाहर की दुनिया न जाने कैसी खतरनाक है!

काजीरंगा अभयवन : काजीरंगा का वाइल्ड लाइफ सैंक्चुरी (वन्य जीवन संश्रय) ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी किनारे के साथ-साथ लगभग पच्चीस मील तक असम के मध्य में

मिकिर पहाड़ों के उत्तर तक चली गई है। १९०८ तक यह शिकारियों तथा चोरी-छिपे शिकार खेलने वालों का स्वर्ग था। परिणाम यह हुआ कि तब लगभग एक दर्जन गेण्डे ही वहाँ बचे। वन-अधिकारियों के लिए यह चिन्ता की बात थी। तब उस जंगल में शिकार खेलना बन्द कर दिया गया। १९२६ में काजीरंगा गेम सैंक्चुरी बन गई। १९४० के अन्त में इसका नाम बदल कर अधिकृत रूप से वाइल्ड लाइफ सैंक्चुरी रख दिया गया। इसका कारण यह था कि गेम शब्द से उन पशु-पक्षियों का बोध होता है जो विजय-चिन्हों या मांस के लिए मारे जाते हैं, जब कि वाइल्ड लाइफ से सभी जीवित प्राणियों का अर्थ ग्रहण होता है और इसमें उनके संरक्षण का भाव भी निहित है।

१९३० तक काजीरंगा अभयवन के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। पर्यटकों तथा गेण्डों का अध्ययन करने वाले दर्शकों को आकृष्ट करने की भी कोई योजना नहीं थी। प्राणियों में रुचि रखने वालों की निरंतर बढ़ती हुई दिलचस्पी को देख कर तब मुख्य वन संरक्षक ने इसे दर्शकों के लिए खोलने का निश्चय किया।

चोर-आखेट फिर बढ़ गया था। अभयवन की दक्षिणी सीमा से मिकिर कबीले के लोग भी चोरी-छिपे शिकार करने अन्दर घुस जाते। शिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने का निश्चय किया गया। वन-अधिकारी जब दौरे पर गये तो उन्हें हर एक मील पर चोर-आखेटकों के अड्डे मिले। एक दौरे में तो उन्हें गेण्डे की चालीस लाशें मिलीं जिसके सींग निकाल लिए गये थे।

अभयवन में गेण्डों को देखना : १९३८ में काजीरंगा अभयवन दर्शकों के लिए खोल दिया गया। शुरू में गेण्डे मनुष्य को देखने के आदी नहीं थे। अपने निवासों में अनधिकृत प्रवेश पर वे हमला करते थे। हाथी भी तब हमले का मुकाबला करने के लिए प्रशिक्षित नहीं थे। पीठ दिखा कर वे भाग खड़े होते थे। धीरे-धीरे ये अवस्थाएं बदलती गई। नवागन्तुओं को रोज देख कर गेण्डे आदी होते गये और अब तो वे तभी हमला करते हैं जब मादा गेण्डे के साथ बच्चा भी हो। काज़ीरंगा के दो गेण्डे तो इतने पालतू बन गये थे कि आगन्तुकों की आहट पाते ही वे जंगल से निकल आते थे। इनमें से एक तो बुढ़ापे के कारण और दूसरा किसी दुर्घटना में मर गया।

जंगली पशुओं को अपने प्राकृतिक आवास में अध्ययन करने तथा उनके फोटो लेने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए वहाँ विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं। बीस फुट ऊंचे खम्भों पर एक मचान बनाया गया है। मचान क्या लकड़ियों से बनाया गया एक कमरा है, जिसके बरामदे में खड़े होकर घास के मैदानों में चरते हुए गेण्डों का अध्ययन किया जाता है। ये पशु क्योंकि रात में बाहर निकलते हैं इसलिए चांदनी रातों में इन्हें देखना अधिक अच्छा रहता है। संश्रय में कुछ हाथी भी दर्शकों के लिए रखे गये हैं। जब कुछ विशिष्ट पर्यटक गेण्डों के फोटो खींचने के उद्देश्य से यहां आते हैं तो हाथियों का एक काफिला जंगलों में से गेण्डों को घेर कर ऐसी जगह ला खड़ा करता है जहाँ से साफ और मन-चाहे फोटो लिये जा सकें।

काजीरंगा वन में घास बहुत घनी है और यह सोलह फीट तक जाती है। इसमें छिपे हुए गेण्डों को तलाश करना मुश्किल होता है। गेण्डे जब इसके अन्दर भागते हैं घास उनके बदन से टकराती हैं जिससे उसके ऊपरले सिरे हिल उठते हैं। हिलती हुई घास से पता चल जाता है कि गेण्डा किधर जा रहा है। हाथियों को उधर ही घुमा दिया जाता है। गेण्डा काफी तेज दौड़ सकता है परन्तु इस तरह पीछा करने पर जल्दी ही थक जाता है। इसमें दिशा का ज्ञान करने की बुद्धि प्रायः बिलकुल नहीं होती इसलिए सामान्यतया यह पुरानी घिसी-पिटी संकीर्ण पगडण्डियों पर ही आता हुआ दीख जाता है। ऊँची घास की पत्तियां क्योंकि तेज धार वाली होती हैं इसलिए इसके अन्दर वह लाचारी में ही घुसता है।

[क्रमशः]

मस्तिष्क की स्मरण-शक्ति

● डा० देवेन्द्र प्रसाद शर्मा

वैज्ञानिकों ने शरीर के सभी अंगों से मस्तिष्क के सम्बन्ध में जो रहस्यपूर्ण अद्भुत खोज की है वह अत्यन्त रोचक है। यह शरीर का वह भाग है जो जैवरासायनिक यंत्र से ओत-प्रोत है। मस्तिष्क ऊर्जा प्राप्त करता है, जिसके द्वारा वह अपने तन्तुओं को विघटित करके नये तन्तुओं को बनाता रहता है। यह तो मस्तिष्क का साधारण कार्य हुआ। इससे भी बढ़कर या इसके सामंजस्य से जो महत्वपूर्ण कार्य होता है, वह है, सोचने की शक्ति। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह वह भाग है जो जटिल नाट्यशाला के समान है। यह कहना अनुचित न होगा कि वृक्क तथा यकृत की भाँति इसका भी कार्य किसी भी रूप में कम नहीं है। वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने सम्मोहन प्रभावों पर जो कार्य किया उसमें मानस-सम्बन्धी प्रभावों पर अपेक्षाकृत अधिक कार्य किया गया हैं और मानस-विश्लेषण पर कम।

फ्रायड का मानस-सम्बन्धी प्रभावों पर जो कार्य हुआ है वह ठीक ही है किन्तु यदि ये दोनों कार्य एक साथ किये गये होते तो मस्तिष्क की क्रियाविधि के बारे में शीघ्र जानकारी हो सकती थी। वास्तव में यह कहना उचित होगा कि फ्रायड से भी पूर्व मस्तिष्क पर भौतिक-अन्वेषण कार्य के लिए कई कठिनाइयां थीं।

१७ वीं शताब्दी तक ऐसी धारणा थी कि मस्तिष्क का कार्य गैस के समान है जिसके फलस्वरूप गैस के रहस्य के बारे में भी कार्य किया गया। डेसकार्टिस नामक प्रख्यात वैज्ञानिक ने मस्तिष्क तथा पदार्थ को एक विचित्र उपापचय का रूप प्रदान किया। इस वैज्ञानिक की धारणा थी कि रक्त मस्तिष्क में सूक्ष्म कोमल वायु प्रदान करता है। इस प्रकार मस्तिष्क तथा पदार्थ का यह सिद्धान्त सदियों तक माना जाता रहा। अब भी इस सिद्धान्त को सभी मानते हैं। लेविस थूडिचम नामक वैज्ञानिक के एक अद्भुत अन्वेषण से यह माना जाने लगा कि मस्तिष्क में उपापचय स्वतंत्र रूप में होता होगा। लेविस थूडिचम की प्रारम्भिक शिक्षा जर्मनी में हुई किन्तु उसका अधिक समय इंग्लैंड में ही व्यतीत हुआ। इस वैज्ञानिक का प्रशिक्षण औषधि-विज्ञान में था किन्तु रसायन-विज्ञान में अधिक रुचि होने के कारण, उसने मस्तिष्क की रासायनिक रचना पर मुख्य रूप से कार्य किया। यह वैज्ञानिक मस्तिष्क-विज्ञान का संस्थापक माना जाता है जो जीवन पर्यन्त (१९०१) रोचक खोज करने में संलग्न रहा।

लेविस थूडिचम ने मस्तिष्क के समस्त अवयव ज्ञात किये जो उस समय के लिए महान कार्य था। इस वैज्ञानिक के पश्चात् मस्तिष्क-रसायनशास्त्र में वैज्ञानिकों की रुचि कम हो गई और अनुसन्धानकर्ताओं की कमी के कारण उपापचय पर होने वाला कार्य कम हो गया तथापि अन्य सूत्रों से मस्तिष्क के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त होता रहा। यह तो सभी जानते हैं कि यदि कोई क्रिया किसी तन्तु में होती है तो उसकी क्रियाशीलता का प्रभाव अन्य तन्तुओं में भी पहुँच जाता है। मस्तिष्क में शर्करा उपापचय का ज्ञान इसकी कोशिकाओं द्वारा नहीं हुआ बल्कि यीस्ट तथा कबूतर के यकृत से मिला। इन कार्यों से हम सोच सकते हैं कि मस्तिष्क उपापचय रूपी यंत्र की भाँति कार्य करता है।

यथार्थ में डेसकार्टिस के बाद की पीढ़ी यह प्रश्न कर सकती है कि यदि रसायनशास्त्री मस्तिष्क की यांत्रिक

क्रियाओं का पता लगा लें तो इसके कुल रासायनिक तत्वों तथा इसमें उत्पन्न विचारों में परस्पर सम्वन्ध स्थापित किया जा सकता है और इस प्रकार के परस्पर-सम्वन्ध स्थापित किये भी गये हैं। किन्तु यह प्राणिशास्त्र के अन्वेषण का फल है। उदाहरणार्थ विटामिन की कमी के कारण मस्तिष्क पर जैव-रासायनिक कमी के प्रभाव से कई वातों का पता चला।

मानसिक बाधाओं के कारण मस्तिष्क की पेलाग्रा बीमारी में भौतिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जो विटामिन की अत्यन्त कमी के कारण होता है। इस बीमारी के कारण रोगी में घवड़ाहट, चिड़चिड़ापन तथा क्रोध उत्पन्न हो जाता है! परन्तु निकोटिनिक अम्ल के उपयोग से ये लक्षण नष्ट हो जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि मस्तिष्क तथा विटामिन के कार्यों में क्या सम्वन्ध है? मस्तिष्क में शर्करा के उपापचय से ऊर्जा प्राप्त होती है। विटामिन बी-१, बी-१२, तथा वायटिन सह-विटामिन हैं जो उपापचय में कार्य करते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि इन विटामिन की कमी से मस्तिष्क की शक्ति में अव्यवस्थित एन्जाइम-क्रम उत्पन्न होता है जो अस्थायी पागलपन की स्थिति पैदा करती है।

एक अन्य आकस्मिक खोज स्विस रसायनशास्त्री ने १९४३ ई० में की जिसका सम्वन्ध प्रोटीन तथा मस्तिष्क से था। उसने यह पदार्थ इरगाट (Ergot) पौधों से प्राप्त किया। इस वैज्ञानिक ने अपने ऊपर ही एक अन्वेषण किया। उसने लाइसरजिक अम्ल की थोड़ी मात्रा सूँघी जिससे उसका मस्तिष्क विचारशून्य हो गया और वह स्वप्न की तरह घर की ओर चल दिया। यह पदार्थ इतना प्रभावशाली है कि एक दाने का दस लाखवां भाग भी मतिभ्रम पैदा कर सकता है।

ऐसा ज्ञात है कि मस्तिष्क पर प्रभाव चाहे रासायनिक हो या भावना से उत्पन्न, उसके अन्तिम लक्षण एक-जैसे ही होते हैं। क्या हम रासायनिक अध्ययन से यह पता लगा सकते हैं कि मस्तिष्क किस तरह मांसपेशियों पर अधिकार प्राप्त कर उसे संचालित करता है?

मस्तिष्क की रचना तार संजाल की तरह है। नाड़ी कोशिकाओं में भी लम्वे तथा पतले तार होते हैं। उनमें से कुछ कई फीट लम्वे होते हैं जो स्पाइनल कार्ड (मेरुदण्ड) से होकर मांसपेशियों तक फैले होते हैं। इन्ही जाल रूपी यंत्रों से समाचार भेजा जाता है जो १२० फीट प्रति सेकण्ड की गति से चलते हैं। इसी से कार्य संपादन की आज्ञा मांसपेशियों को मिलती है। डा० ओटो ने इसी सम्वन्ध में रहस्यपूर्ण प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि अंगों में दो प्रकार की नड़ियाँ होती हैं—एक जो उत्तेजित करने का कार्य करती हैं तथा दूसरी जो अवरोध उत्पन्न करती हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क नियंत्रण में भी दो प्रकार के अंग होते हैं जिसमें दो नाड़ियां होती हैं।

विज्ञान के विकास के साथ धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क पर कार्य किया जिनमें से एक अंग्रेज मनोवैज्ञानिक सरहेनरी डेल का कार्य बहुत ही सराहनीय है। उन्होंने वताया कि ऐसीटोकोलीन एक बहुत प्रभावशाली पदार्थ है जो इन कार्यों में सहायता पहुँचाता है।

● ●

तत्त्व जो आवश्यक भी हैं विषालु भी

• डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

पौधे अपना भोजन भूमि से ग्रहण करते हैं। मनुष्य एवं पशु इन पौधों से प्राप्त उपज का उपयोग अपने आहार के लिए करते हैं। पौधे मिट्टी से तत्व की विभिन्न मात्राएं भूमि में तत्व की प्राप्त मात्रा के अनुसार अवशोषित करते हैं। यदि किसी विशेष मिट्टी में किसी तत्व विशेष की प्राप्य मात्रा अत्यधिक होती है तो यह निश्चित है कि उस मिट्टी में उगाई गई फसल तत्व विशेष को अधिक मात्रा में अवशोषित करेगी। यह भी सम्भव है कि यह मात्रा पौधे के लिए विषालु सिद्ध हो एवं पौधे की मृत्यु हो जाय। अब यदि फसल किसी रूप में पशुओं को खिलाई जावे तो उसमें विद्यमान विषालु तत्व पशु के शरीर में एकत्रित होकर किसी रोग को उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार या तो पशु की उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है या अधिक गम्भीर स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाती है। आइये देखें, इन बहुरूपिये तत्वों को, जो आवश्यक होने के साथ-साथ विषालु भी हैं।

मालिब्डेनम पौधों के विकास के लिए आवश्यक सूक्ष्म-मात्रिक तत्व है जिसकी न्यूनता पौधों में अनेक रोगों को जन्म देती है एवं इसकी उचित प्राप्य मात्रा उपज पर संतोषजनक प्रभाव डालती है। जैसा कि अब तक के शोध कार्यों से विदित है मालिब्डेनम की अधिक प्राप्यता पौधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती। पौधों में इसकी अधिक मात्रा में उपस्थिति, जो कि भूमि की प्राप्य मात्रा से सम्बन्धित है, उन पशुओं में रोग का कारण बनती है जो कि उन फसल को किसी न किसी रूप में आहार बनाते हैं। पशु के शरीर में इस तत्व की अधिक मात्रा एकत्र होने से मालिब्डेनोसिस रोग होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्वसन क्रिया में इस तत्व की आवश्यकता पड़ती है परन्तु परेशानी तब उत्पन्न होती है जब इस तत्व का जमाव अधिक हो जाता है। श्वसन क्रिया में बाधा पड़ने से पशु धीरे-धीरे मृत्यु का आलिंगन करता है। पशुओं में इसके कुप्रभाव को दूर करने के लिए तांबा का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी पाया गया है। इसके विपरीत यह भी पाया गया है कि चारे में मालिब्डेनम की मात्रा कम होने पर तांबा यकृत में बहुत अधिक जमा होने लगता है। तांबा के विषालु प्रभाव के कारण यकृत अपना काम करना बन्द कर देता है। फल यह होता है कि पशु की मृत्यु हो जाती है। इसके लिए चारे में मालिब्डेनम को मिलाना लाभकर पाया गया है।

लोहा एवं मैंगनीज—ये दो सूक्ष्ममात्रिक तत्व पौधों में एंजाइम क्रियाओं में सहायक होते हैं। इन दोनों की न्यूनता पौधों में अधिक रोगों को जन्म देती है। यह देखा गया है कि मिट्टी में इनमें से एक तत्व की अधिकता होती है तो दूसरे तत्व की न्यूनता अवश्यम्भावी है। इनकी न्यूनता से प्रभावित होने के साथ-साथ पौधे इनकी विषालुता से भी ग्रसित होते हैं। विषालुता की स्थिति प्रायः अम्लीय मिट्टियों में होती है जिसे चूना डाल कर ठीक किया जा सकता है। अभी पूर्ण रूप से इनके विषालु प्रभाव का अध्ययन पशुओं के ऊपर तो नहीं हो पाया, परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इनकी अधिकता से पशु भी प्रभावित होते हैं।

फ्लोरीन, आरसेनिक एवं सेलीनियम अभी पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की श्रेणी में नहीं परिगणित होते, परन्तु इन तत्वों का पशु-स्वास्थ्य से विशेष सम्बन्ध है। फ्लोरीन नामक तत्व का दांत एवं हड्डियों के निर्माण से सीधा

सम्बन्ध है। इनकी पुष्टता के लिए प्रतिदिन भोजन या पेय जल के साथ पशु शरीर में ०·५ मिलीग्राम फ्लोरीन पहुँचना आवश्यक है। परन्तु १ मिलीग्राम से अधिक फ्लोरीन पशुओं की हड्डी एवं दांत दोनों को मजबूत बनाने के बजाय कमजोर बना देता है। इसकी अधिकता से दांतों एवं हड्डियों से पपड़ी निकलने लगती है एवं वे कमजोर हो जाती हैं।

आर्सेनिक का प्रयोग पौधों पर कीटाणुओं की रोकथाम के लिए किया जाता है। यह भी पौधों के विकास के लिए आवश्यक नहीं है। इसकी छिड़की हुई मात्रा से यदि पौधे १४अंश/दस लक्षांश से अधिक ग्रहण कर लेते हैं तो उनकी वृद्धि रुक जाती है, पौधे छोटे रह जाते हैं, नई पत्तियाँ सूखने लगती हैं एवं असमय ही गिर जाती हैं। इसकी अधिकता से द्विबीजपत्री पौधे उगते ही सूख जाते हैं, अनाज वाले पौधे पहले पीले पड़ते हैं फिर दाने पड़ने के पूर्व ही सूखने लगते हैं। इससे बचने के लिए लौह सल्फेट का प्रयोग उपयोगी पाया गया है। सुपरफास्फेट एवं जस्ता का प्रयोग भी इसकी विषालुता कम कर देते हैं। इसकी न्यूनता के लक्षण दिखाई पड़ने का प्रश्न तो नहीं उठता परन्तु इसकी विषालुता अत्यन्त भयंकर होती है। इसे दूर करने के उपर्युक्त उपाय जितनी जल्दी किये जाँय उतनी ही जल्दी लाभ पहुँचता है।

सेलीनियम सम्भवतः पशु जीवन से सम्बन्ध रखने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। सूखे प्रदेशों में यह अधिक खतरनाक परिस्थिति उत्पन्न करता है। घास एवं अन्य चारे वाली फसलें प्रायः अधिक सेलीनियम नहीं संग्रह करतीं परन्तु कुछ सेलीनियम-रागी घासें १५०० अंश प्रति लाख तक सेलीनियम अवशोषित करती हैं। ये घासें केवल पशुओं के लिए ही हानिकर नहीं होतीं, किन्तु उस मिट्टी में भी सेलीनियम की प्राप्य मात्रा को बढ़ा देती हैं फलतः अगली चारे वाली फसल भी अधिक सेलीनियम अवशोषित करती है एवं पशु को खिलाने योग्य नहीं रह जाती। जो पशु ऐसी घास अधिक खाते हैं उनमें सेलीनियम की विषालुता सम्बन्धी 'अल्कली' एवं 'रतौंधी' का रोग हो जाता है। अल्कली रोग में पशु के खुर जगह-जगह से फट जाते हैं। रतौंधी का रोग अधिक विषालुता के कारण होता है। इस स्थिति में पशु की मृत्यु शीघ्र हो जाती है। यह देखा गया है कि सेलीनियम युक्त चारा मुर्गी को देने पर उसकी अंडा देने की शक्ति क्षीण हो जाती है। भोजन में ५ अंश/दस लक्ष से अधिक सेलीनियम का होना मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर है। अलसी की खली का प्रयोग इसके विषालु प्रभाव को दूर करने में लाभकारी है। सोडियम आर्सेनाइट की कम मात्रा (क्योंकि यह स्वयं अधिक विषालु है) एवं सल्फेट इसके विषालु प्रभाव रोकने के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

अन्य आवश्यक तत्व जो विषालु हो सकते कहीं-कहीं पर अपना प्रभाव दिखाते हैं। ये तत्व हैः—बेरियम, निकेल, जस्ता एवं लेड। इनकी विषालुता इनके भण्डारों, फैक्टरियों के पास एवं उन जगहों पर जहां ये कीटाणुनाशक के रूप में डाले गये हों, देखी जाती है।

बेरियम अत्यन्त अधिकता की स्थिति में ही विषालु होता है। इसका कार्बोनेट पौधों एवं पशुओं दोनों के लिए घातक है। निकेल कम मात्रा में भी हानि पहुँचाता है। पौधों में १५० अंश/दस लक्ष निकेल उनके विकास को रोक देता है। कुछ अम्लीय मिट्टियों में जस्ते की अधिकता से पौधे प्रभावित होते पाये गये हैं। यहाँ विषालुता कम करने के लिए चूने का प्रयोग किया जाना चाहिए। लेड खानों के आस-पास पशुओं में इसके विषालु प्रभाव देखे गये हैं। पौधे अधिक लेड अवशोषित कर लेते हैं एवं इनको ग्रहण करने वाले पशु विषालुता के शिकार बनते हैं। पौधे कहीं-कहीं लेड आर्सेनेट के छिड़काव से प्रभावित होते पाये गये हैं। प्रायः इसका प्रभाव पौधों पर विषालु नहीं होता।

मिट्टी में पाये जाने वाले प्रायः सभी तत्व, यदि वे अत्यधिक मात्रा में हों, किसी न किसी रूप में पौधे पर एवं इस प्रकार पशु पर भी अपना विषालु प्रभाव डालते हैं। यह अधिकता मिट्टी में स्वाभाविक रूप से हो सकती है। या फिर खाद या छिड़काव के द्वारा डाले जाने के कारण हो सकती है। लेकिन प्रश्न अब यह उठता है कि यह विषालुता

किसी तत्व विशेष की अधिकता के कारण ही है या फिर इसका किसी अन्य तत्व के ऊपर अपरोक्ष रूप से प्रभाव डालने के कारण है। इसका विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाना चाहिए एवं हमारे अबोध किसानों को सरल रूप में इसका समाधान बताया जाना चाहिए, जिससे दिनोंदिन बढ़ रहे खादों के प्रयोग से कोई नयी समस्या आकर उन्हें निराश एवं हतोत्साह न कर दे।

● ●

पौधों के कारण पशुओं में जन्मजात विकार

प्रायः पशुओं के जन्मजात विकारों का सारा दोष प्रजनन की खराबी पर डाल दिया जाता था किन्तु अब इस दोष के भागी वे पौधे भी होंगे जो मादा पशु गर्भावस्था में खाते हैं। यथा कुटकी नामक चारा खाने से पैदा होने वाले मेमने के एक आँख हो सकती है या टाँगे विकृत हो सकती हैं। फली वाले खराब चारा के खाने से गायों की गर्भावस्था के ४० से लेकर ७० वें दिन तक प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पन्न बछड़े-बछिया तिरछी टाँगों वाले, विकृत पीठ, गर्दन वाले तथा फटे तालु वाले होते हैं।

आपके निर्भीक विचार सादर आमंत्रित हैं—

परीक्षा का स्वरूप क्या हो ?

चाहे हाईस्कूल-इन्टर की परीक्षायें हो अथवा विश्वविद्यालय स्तर की परीक्षायें; सबों में परीक्षार्थियों द्वारा समान रूप से अनुचित साधनों का प्रयोग होते हुये देखा जाता है। और स्थिति इतना भीषण रूप धारण कर चुकी है कि निरीक्षक यदि अनुचित साधनों का प्रयोग करते हुये छात्रों को पकड़ लेते हैं या अंगुल्यानिर्देश कर देते हैं तो वे तत्काल वहीं पर या परीक्षा भवन से बाहर अथवा अपने घर में विविध प्रकार से आहत किये जाते हैं। इस वर्ष तो हद हो गई। निरीक्षकों पर निर्मम प्रहार किया गया है। स्थिति की गम्भीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है है कि संसद भवन में इस सम्बन्ध में बहस हुई है। भारत के शीर्ष नेता इस मत के हैं कि या तो निरीक्षकों की सुरक्षा के उपाय निकाले जायँ या फिर परीक्षा की प्रणाली बदल दी जाय। आचार्य कृपलानी का सुझाव हमें सोचने के लिये प्रेरित करता है कि क्या सचमुच छात्रों को पुस्तकों के उपयोग करने की छूट दे दी जाय ? जब आये दिन परीक्षा भवनों से मनों किताबें तथा नोट्स बरामद किये जा रहे हों तो ऐसा कर देना कुछ हद तक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

आप उक्त सम्बन्ध में अपने विचार सम्पादक, विज्ञान तक प्रेषित करें जिससे हम इस प्रश्न-माला के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकें।

—सम्पादक

सार संकलन

हमारे वैज्ञानिक तीर्थ—२

आणविक बिजलीघर—तारापुर

• संकलित

बम्बई से ६५ मील उत्तर में भारत के आणविक युग के सबसे विस्मयकारी उपाख्यान को अभिनीत किया जा रहा है।

१६ जनवरी, १६७० को भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने भारत, अमेरिका तथा अन्य अनेक देशों के वैज्ञानिकों और इंजिनियरों के समक्ष तारापुर के आणविक बिजलीघर का उद्घाटन किया। यह उद्घाटन-समारोह पश्चिमी भारत के लाखों श्रमिकों, किसानों और गृहणियों के लाभ के लिए अणुशक्ति के विशाल साधनस्रोतों का विदोहन करने की दृष्टि से ७ वर्षों के प्रयत्नों की पूर्ति का प्रतीक है।

तारापुर में भारत का सबसे पहला आणविक बिजलीघर बनाया गया है। इसकी उत्पादन-क्षमता ४,००,००० किलोवाट है और यह एशिया में सबसे बड़ा आणविक बिजलीघर है। इसके चालू हो जाने से भारत की गिनती उन थोड़े से देशों में होने लगेगी, जहाँ आणविक बिजलीघर से काम लिया जाता है। इसमें अमरीकी अणु टेक्नालाजी के क्षेत्र में आविष्कृत नवीनतम विधियों का उपयोग किया गया है।

अणु-विज्ञान के क्षेत्र में, भारत की इस प्रगति का बहुत कुछ श्रेय डा० होमी जे० भाभा को है और उन्होंने भी इस समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। उनके जीवन में, जिसका अन्त कुछ वर्षों बाद बहुत ही दुखद ढंग से हो गया, यह एक अत्यन्त गर्व का दिन था। दुर्भाग्यवश वे अपने स्वप्न को साकार होते नहीं देख पाये।

'अग्नि' से 'अणुशक्ति' तक

जब गुफाओं में रहने वाले मनुष्यों ने सर्वप्रथम अग्नि को शक्ति-स्रोत के रूप में इस्तेमाल करना सीखा-मुख्यतः भोजन पकाने और गर्मी प्राप्त करने के लिये-तो मानव जाति के अभ्युदय की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ। प्रगति की दिशा में दूसरा कदम माईकेल फैरडे द्वारा १८३१ में एक प्रकार के 'डायनमो' का आविष्कार था। डायनमो द्वारा उत्पादित विद्युतशक्ति अन्य सभी शक्ति-स्रोतों से भिन्न है। विद्युतशक्ति किसी भी स्थान पर उत्पन्न की जा सकती है और उससे सैकड़ों मील दूर स्थित स्थान पर उसका उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार 'शक्ति' को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सम्भव हो गया। फैरडे की इस खोज के फलस्वरूप अगली शताब्दी में प्रवाहित जल तथा कोयले और तेल जैसे प्राकृतिक ईंधनों में निहित शक्ति का दोहन करने के लिए विशाल योजनाएं क्रियान्वित की गईं।

प्रकृति की शक्तियों का दोहन करने की दिशा में एक दूसरी उल्लेखनीय सफलता उस समय प्राप्त हुई जब

एनरिको फेर्मी ने १९४२ में शिकागो विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम श्रृंखलाबद्ध नियंत्रित अणु-विस्फोट करने में सफलता प्राप्त कर ली। वैज्ञानिकों को यह बात बहुत पहले के विदित थी कि पदार्थ और ऊर्जा को एक-दूसरे में बदला जा सकता है तथा एक सूक्ष्म और अदृश्य अणु से एक टन कोयले से भी अधिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। फेर्मी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि यह प्रचण्ड शक्ति मुक्त की जा सकती है।

एक अणु में कितनी ऊर्जा निहित है उसका पता इन आँकड़ों से चल सकता है। तारापुर आणविक बिजलीघर में एक दिन में १७० पौण्ड यूरेनियम आणविक ईंधन (एक दीर्घकालीन समझौते के अन्तर्गत यह आणविक ईंधन अमेरिका सुलभ कर रहा है) खपता है। इससे उत्पन्न होने वाली शक्ति के समकक्ष शक्ति का उत्पादन करने के लिए (इसका उपयोग विद्युतशक्ति उत्पन्न करने वाले दो टरबाइनों का संचालन करने वाली भाप तैयारे करने के लिए होता है) १,२०,००,००० पौण्ड कोयले की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता कि लगभग ५०० मील दूर स्थित कोयले की खानों से रोज तीन ट्रेन कोयला यहाँ पहुचाया जाता।

जब हम तारापुर की ओर—अरब सागर के तट पर स्थित एक जटिल तथा विशालकाय भूरे रंग की घनाकार आकृतियों का पुँज—दृष्टि उठा कर देखते हैं तो यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह संसार में विद्युतशक्ति का एक विशालतम स्रोत है। यहां पर सब कुछ शांत नजर आता है। ३६६ फुट ऊंची एक वेंटिलेशन चिमनी (अन्दर की हवा के निकलने का मार्ग)—यह कुतब मीनार से भी ऊंची है—आसमान को छूती प्रतीत होती है। लेकिन इससे कभी भी कोई धुँआ निकलता नहीं दिखाई पड़ता जबकि कोयले को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने वाले बिजलीघरों की चिमनियां हर समय, दिन और रात में गहरा धुँआ उगलती रहती हैं। अतः यह बात लोगों को बहुत आश्चर्यजनक लगती है।

तारापुर भारत के उज्ज्वल और सुदृढ़ भविष्य का एक प्रतीक है। हर वस्तु—भीतर और बाहर—विशाल और ठोस प्रतीत होती है। विशालकाय खिड़की रहित ऊँचे भवनों के समूह के सामने, दर्शक अपने को बौना सा अनुभव करता है। अन्दर, ४० मील लम्बी रंग-बिरंगी पाइप लाइनें—इनमें से किसी-किसी पाइपों की पेटी तो मनुष्य की ऊंचाई से भी अधिक मोटी है—जाती हैं, फिर सौ फुट नीचे उतर आती हैं, दर्शकों को चक्कर सा आने लगता है। और पृथ्वी से दोनों अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्रों के लगभग १०० फुट ऊंचे आकारों (जिसके अन्दर प्रतिक्रियावाहक यन्त्र स्थापित किया हुआ है) को देखना तो दर्शक को ऐसा लगता है मानो वह ऐसे धातु-दैत्य को देख रहा हो, जिसकी ऊपरी चमड़ी ५ इंच मोटे स्टेनलेस इस्पात की बनी है। इन अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्रों के अन्दर ही अणु में निहित ऊर्जा को मुक्त किया जाता है और उसका उपयोग जल को गर्म कर उसे वाष्प में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है। यही वाष्प २,००,००० किलोवाट शक्ति वाले उन दो टरबाइनों को चलाती है, जो भारत में सबसे बड़े टरबाइन हैं। बिल्कुल नीचे इस्पात के दो विशालकाय फाटक लगे हैं जो उस सूखे कुएं के आधार के चारों ओर 'एअर लौक' का काम करते है जिसमें अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्र स्थापित किए गए हैं। यह वह क्षेत्र है जहां तापमान सदैव ५०० डिग्री फारेनहीट रहता है।

१४५ फुट ऊंचे भवन में हर मंजिल पर हर जगह विशाल मशीन पंक्तिबद्ध फिट हैं और ये सब परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। तापमान को कम करने वाली विशालकाय मशीनें जल और वायु के तापमान को बढ़ने नहीं देतीं। २,००० अश्वशक्ति क्षमता वाले बड़े-बड़े पम्प त्वरित वेग से बायलर तक पानी पहुँचाते हैं। ३ मंजिला आकार के एक बड़े कक्ष में दो ढ़के हुए टर्बोजेनरेटर अलग-अलग स्थापित हैं। मीलों लम्बे पाइप और केवल संयंत्र से होकर गुजरते हैं, जिनके कार्य बिजली घर के केन्द्र बिन्दु, कण्ट्रोल रूम, में पंजीकृत होते हैं।

तारापुर बिजलीघर का निर्माण करने में ६,५०० से

[शेष पृष्ठ २३ पर]

विज्ञान वार्ता

१. पद्मा धान के उगाने पर रोक

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने यह निश्चय किया है कि आगामी खरीफ फसल में पद्मा नामक धान की नई किस्म के बोने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जावे। इसका कारण यह है कि गत वर्ष बिहार के काफी विस्तृत भूभाग में पद्मा की फसल में टंगरो नामक वाइरस रोग लग जाने से पीलापन आ गया था। यह रोग पत्तियों के फुदक्कों की संख्या में वृद्धि के कारण उत्पन्न हुआ। यह भी अनुमान है कि सम्भवतः जिन्क तथा पोटैशियम की न्यूनता भी इस रोग के लिए उत्तरदायी हो।

२. कैंसर सम्बन्धी तथ्य

ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष में प्रति १ लाख व्यक्तियों के पीछे ८५ व्यक्तियों को कैंसर होता है जबकि संयुक्तराज्य अमरीका में यह संख्या १२०० तक है।* टाटा स्मारक अस्पताल, बम्बई द्वारा एकत्र किये गये आँकड़ों से पता चलता है कि ७५% कैंसरग्रस्त रोगियों के मुँह में, गले में तथा गर्दन में कैंसर होता। जो लोग पान या तम्बाकू खाते है उन्हें पान-सुपारी न खाने वालों की अपेक्षा ८ गुना अधिक कैंसर होता है। अविवाहित स्त्रियों की अपेक्षा विवाहिताओं में कैंसर होने की दुगनी सम्भावना रहती है। ऐसा अनुमान है कि ६०% कैंसरग्रस्त महिलाओं को यूटेरीन का कैंसर होता है। सभ्य देशों में प्रति १०० व्यक्तियों में से २० की मृत्यु कैंसर से होती है जिनकी आयु ४५ वर्ष से ऊपर होती है। कम सभ्य देशों में ४० से ५० वर्ष के उम्र वाले व्यक्ति कैंसर के शिकार होते हैं। यदि कैंसर का ठीक से निदान हो सके तो ऐसी आशा है कि ५०% रोगियों को मरने से बचाया जा सकता है।

आवश्यकता है कि परिवार नियोजन की ही भाँति कैंसर निरोधी अभियान चालू किया जाय।

*उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में कैंसर ग्रस्त रोगियों की संख्या विश्वभर में सर्वाधिक आँकी गई है।

दवाओं के दाम और स्वास्थ्य

आखिरकार सरकार को सद्‌बुद्धि आ ही गई। कई वर्षों के लगातार कहने-सुनने तथा जाँच के बाद सरकार ने दवाओं के मूल्य में भारी कमी किये जाने की घोषणा कर दी है। इससे जनता का हित सधेगा। १९६३ ई० में दवाओं के जो मूल्य निर्धारित हुये थे वे किन्हीं किन्हीं दवाओं में बाहर तैयार की गई दवाओं के मूल्यों की तुलना में ८० से लेकर ३०० प्रशित तक अधिक थे।

अब आवश्यक दवाओं के मूल्यों में, जिनमें विशेष रूप से १७ दवाओं का उल्लेख है, १० से लेकर ७०% तक की कमी घोषित की गई है। किन्तु देखना यह है कि दवा-उद्योग पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है। अधिकांश फैक्टरियों में क्षमता से कम उत्पादन होने के कारण दवाओं का मूल्य अधिक पड़ता है अतः सरकार द्वारा दवाओं के मूल्यों में भारी कमी घोषित होने से आशंका है कि कहीं आवश्यक दवायें बाजार से विलुप्त न हो जायें। फिर नागरिकों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ?

नई किस्म का आटा

केन्द्रीय खाद्यमंत्रालय ने बम्बई के अनुकरण पर कलकत्ता तथा दिल्ली नगरों में "सम्बलित आटे" के प्रचार किये जाने का निर्णय किया है। अब आटे में प्रोटीन,

विटामिन, लोह तथा कैल्सियम मिला रहा करेगा। इनकी कीमत प्रति किलो ग्राम ४ पैसे होगी।

भावनगर तथा हैदराबाद की खाद्य प्रयोगशालाओं में नमक के साथ लोह, कैल्सियम तथा विटामिन (ए) मिलाये जाने के प्रयोग हो रहे हैं। राजस्थान के साँभर संस्थान में भी यही योजना लागू की जावेगी। इससे देश भर में प्रवर्द्धित लवण उपलब्ध हो जावेगा।

यूनीसेफ के सहयोग से शिशुओं के आहार के उत्पादन हेतु एक संयंत्र लगेगा जो वाल आमूल नामक खाद्य तैयार करेगा। दुग्धशालाओं से प्राप्त दुग्ध को सम्वलित करके मद्रास तथा बंगलोर के स्कूली छात्रों को उपलब्ध किया जा रहा है।

● ●

[शेषांश पृष्ठ २१ का]

अधिक नरनारियों ने रात-दिन काम किया है किन्तु अब कई सौ व्यक्ति ही उसका संचालन करते हैं। किसी एक समय बिजलीघर में केवल ३० व्यक्ति ही काम पर तैनात मिलेंगे उनमें से ५ व्यक्ति कण्ट्रोल रूम में काम करते हैं और अपने काम के आठ घण्टे का समय बिजलीघर के कार्यों और प्रतिक्रियावाहकों की सूचनाओं को पढ़ने में व्यतीत करते हैं। उसकी तीन दीवारों में—चौथी कांच की बनी है—यंत्रों, डायलों और मीटरों के पैनेल लगे हैं। कक्ष के प्रत्येक छोर पर लगा कन्सोल एक प्रतिक्रियावाहक को नियन्त्रित करता है, जबकि कमरे की लम्बाई भर फैला केन्द्रीय पैनल दोनों टरबाइनों और दोनों प्रतिक्रियावाहकों की सम्मिलित सेवाओं को नियन्त्रित करता है। प्रत्येक पैनल पर चमकते लाल रंग की 'स्क्रैम' बटन लगी है, जो आवश्यकता पड़ने पर तत्काल सभी १३८ नियंन्त्रण-छड़ों को खींच कर उन्हें प्रतिक्रियावाहकों के भीतर प्रविष्ट करके विखण्डन-क्रिया को बन्द कर सकती है।

तारापुर से बड़े पैमाने पर बिजली मिलते रहने का भरोसा हो जाने के फलस्वरूप महाराष्ट्र में बिजली होने के एक बड़े स्रोत—कोयना बाँध की मरम्मत का काम शुरू किया जा सकता है। कोयना जलाशय में पानी का स्तर घटाया जा रहा है ताकि उसकी देखभाल करके बाँध को सुदृढ़ किया जा सके।

तारापुर बिजलीघर अमेरिका के सहयोग से भारत में निर्मित ३० विद्युत्-परियोजनाओं में से है। इस बिजलीघर में पश्चिमी भारत की ट्रौम्बे और धुवारण जैसी अन्य विद्युत् परियोजनाओं के साथ निकट सम्पर्क से कार्य किया जाता है। इसके फलस्वरूप उस क्षेत्र के सभी बिजलीघरों का कार्यसंचालन अधिक सुचारु ढंग से होता है।

तारापुर बिजलीघर से पश्चिमी भारत को मिलने वाले लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु इस परियोजना का निर्माण करने वाले भारतीय और अमेरिकी इंजिनियरों को जिस बात से अधिक आह्लाद प्राप्त होता है, वह है आणविक बिजलीघरों से भारत के भविष्य के लिए सामने आने वाली उज्ज्वल सम्भावनाएं। प्रचुर मात्रा में आणविक बिजली उपलब्ध होने से समूचे क्षेत्र का स्वरूप ही बदल जायेगा। उदाहरण के तौर पर समुद्र का खारा पानी साफ करके उससे मरुस्थलों की सिंचाई की जा सकेगी, बड़ी मात्रा में रासायनिक खाद का निर्माण किया जायेगा तथा अनगिनत कारखाने कायम किये जा सकेंगे। भारत में प्रचुरता की स्थिति लाने के लिए तारापुर बिजलीघर का उद्घाटन एक बड़ी मंजिल का सूचक होगा।

● ●

सम्पादकीय

अपोलो-१३ : चन्द्रमा पर राहु का कोप

किसे ज्ञात था कि अपोलो-१३ चन्द्रमा तक न पहुँच कर दुर्घटना ग्रस्त हो जावेगा ! शायद संसार भर के मानव इसे स्वीकार भी न करते यदि उनसे कहा जाता कि अन्तरिक्ष यान इस प्रकार विफल हो सकता है। तब शायद ऐसा कहने वाला महामूर्ख माना जाता। किन्तु दुर्घटना हो ही गई। यात्रा के बीच में ही आक्सीजन की टंकी फट गई और यान चालकों के वश में न रह पाया। धरती से यान पर टकटकी लगाये असंख्य अमरीकी एवं अन्य देशवासी एकदम साँस साध बैठे जब उन्हें इस दुर्घटना की खबर दी गई। शायद ही पृथ्वी तल का कोई ऐसा मनुष्य रहा हो जिसने अन्तरिक्ष यात्रियों की सकुशल वापसी के लिये ईश्वर से प्रार्थनायें न की हों।

अन्तरिक्ष अभियान में यह अभूतपूर्व घटना थी। ह्यूस्टन में स्थल पर कार्य करने वाली वैज्ञानिक टोली शायद ऐसी घटनाओं के लिये पहले से कटिबद्ध थी। उधर से दुर्घटना का पता लगा नहीं कि गणनायन्त्रों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यात्रा के दौरान इन गणनायन्त्रों पर अन्तरिक्ष-यान की गति, दिशा, भार आदि की वास्तविक जानकारी अंकित होती रहती है। इनकी सहायता से कण्ट्रोल अधिकारियों ने यह अनुमान लगाने में सफलता प्राप्त की कि कौन सी विद्युत शक्ति, राकेट शक्ति और कितना ईंधन, आक्सीजन तथा जल वहाँ मौजूद है। उसी के अनुसार अन्तरिक्ष यान को चन्द्रमा की ओर न जाने देकर पृथ्वी पर लौटाने की योजना कार्यान्वित की गई। यह कितनी बड़ी सफलता थी कि अन्तरिक्ष यान पूर्व निदिर्षट स्थान पर उतारा जा सका ?

यह सच है कि कई बार चन्द्रमा पर मानव पदार्पण हो चुकने के बाद इस बार जिस आशातीत सफलता का आत्मविश्वास के साथ पूर्वानुमान किया गया था वह ध्वस्त हो गया है। किन्तु इसका वैज्ञानिक महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ चुका है। अब वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष यात्रा के संकटों का आभास हुआ है एवं वे भविष्य में और भी कठिन यात्रा की सम्भावनाओं के लिये प्रेरित हो कर कार्य करेंगे। हर बार सफल अवतरण होता ही रहे, इसकी कोई गारंटी नहीं रह गई।

सम्भव है कि अमरीकी अन्तरिक्ष सफलताओं में यह प्रयास कलंक सा दीखे और कुछ राष्ट्रों को ऐसा लगे कि अब अमरीका अगले प्रयासों को त्याग देगा। किन्तु जैसा कि अन्तरिक्ष यात्री लावेल के कथन से स्पष्ट है वे अब भी चन्द्रमा की यात्रा के लिए तैयार हैं। यह सच है कि इस बार चन्द्रमा पर राहु का प्रकोप हुआ है, चन्द्रमा के रहस्यों को जानने के मार्ग में बाधा आई है किन्तु वैज्ञानिक इससे डरने वाले नहीं। वे दुगुने उत्साह से कार्य करेंगे। धन का अपव्यय भौतिकवादियों को दहला सकता है किन्तु जिनके मन में लगन है वे उसकी परवाह नहीं करते। आज न सही कल; चन्द्रमा के रहस्यों का पूर्ण उद्घाटन होना ही है। यदि अमरीका तथा रूस द्वारा यह कार्य न हो सका तो शायद वही भारत या अन्य विकासशील राष्ट्रों द्वारा होकर रहेगा।

• •

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान' के सम्बन्ध में

(फार्म ४)

१. प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
२. प्रकाशन की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	प्रसाद मुद्रणालय द्वारा के० राय
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	५/७ बेली एवेन्यू, प्रयाग
४. प्रकाशक का नाम	डा० वाचस्पति
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
५. सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
क्या भारतीय हैं ?	हाँ
पता	२५, अशोक नगर, इलाहाबाद-१
६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं।	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

मैं डा० वाचस्पति घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर वाचस्पति
प्रकाशक

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | आषाढ़ २०२७ विक्र०, १८९२ शक जुलाई १९७० | संख्या ७

नियंत्रित तापनाभिकीय ऊर्जा

● श्याम लाल काकानी

नियंत्रित तापनाभिकीय क्रिया से ऊर्जा प्राप्त करने का सिद्धान्त अति सरल है। हाइड्रोजन के तीन समस्थानिक होते हैं—**हाइड्रोजन** ($_1H^1$), **ड्युटरान** ($_1H^2$ या D) और **ट्राइटियम** ($_1H^3$ या T)। जब दो ड्युटरान नाभिकों या ड्युटरान और ट्राइटियम नाभिकों या ट्राइटियम और हाइड्रोजन नाभिकों में संगलन क्रिया होती है, तो ऊर्जा प्राप्त होती है। इस ऊर्जा को **संगलन ऊर्जा** कहते हैं। इन क्रियाओं को निम्न समीकरणों से प्रदर्शित कर सकते हैं :—

$$_1H^2 + {_1H^2} \begin{cases} \rightarrow {_1H^3} + p + 4\cdot0 \text{ Mev} \\ \rightarrow {_2He^3} + n + 3\cdot2 \text{ Mev} \end{cases}$$

$$_1H^2 + {_1H^3} \rightarrow {_2He^4} + n + 17\cdot6 \text{ Mev}$$

$$_1H^2 + {_2He^3} \rightarrow {_2He^4} + p + 18\cdot3 \text{ Mev}$$

जबकि $p \rightarrow$ प्रोटान, $n \rightarrow$ न्यूट्रान

$^2He^3 \rightarrow$ ट्राइहीलियम

$^2He^4 \rightarrow$ हीलियम
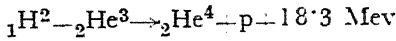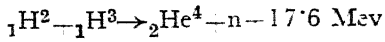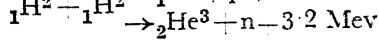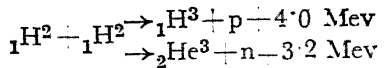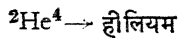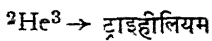
नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा की उपयोगिताओं का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अत्यधिक महत्वपूर्ण उपयोगिता के क्षेत्रों में ऊर्जा-समस्या का अन्तिम समाधान अर्थात् असीमित ऊर्जा के विकास में सहयोग का वर्णन प्रसंगोचित होगा।

यद्यपि संगलन क्रिया से नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने का सिद्धान्त अति सरल प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविकता में उतना ही कठिन है। अगर वैज्ञानिक संगलन क्रिया से नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने में सफल हो गए तो संगलन रिएक्टर की आधारभूत आवश्यकताएं निम्न होंगी :—

(अ) प्लाज्मा आयनों की ऊर्जा $nkT \cong 10$ kev

[$n \rightarrow$ आयनों की संख्या
$kT \rightarrow$ प्रत्येक आयन की ऊर्जा]

अर्थात् ताप $T \cong 10^8$k

(ब) प्लाज्मा घनत्व $(n) \cong 10^{15} \frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से॰मी॰}}$

(स) चुम्बकीय क्षेत्र का मान (B) $\cong 20$ किलो गास

(द) D–T क्रिया के लिए प्लाज्मा सृजन का समय $\cong \frac{1}{10}$ सेकण्ड

और D–D क्रिया के लिए प्लाज्मा सृजन का समय ≅ 10 सैकन्ड

उपर्युक्त वर्णित आवश्यकताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगलन क्रिया से नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए यह क्रिया अत्यधिक ऊँचे ताप (10^8K पर सम्पन्न होनी चाहिए। अब तक वैज्ञानिकों ने आघात नलियों (Shock Tubes) में 10^7K ताप प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली है। न्यूट्रान तापमापी इस ताप को नापने में प्रयुक्त किए जाते हैं।

अत्युच्च ताप पर ड्युटरान, ट्राइटियम या हीलियम नाभिक जिनमें संगलन क्रिया होती है, प्लाज्मा में परिवर्तित हो जाते हैं। अतः उच्च तापीय प्लाज्मा पर प्रयोग करने या नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्लाज्मा का सृजन करना आवश्यक हो जाता है, जिससे लगातार कई संगलन क्रियाएँ सम्भव हो सकें। अगर प्लाज्मा का घनत्व अधिक हो तो संगलन क्रियाओं के लिए सृजन का समय कम हो सकता है, लेकिन उस अवस्था में ऊर्जा अति तीव्रता से निकलेगी [जैसे हाइड्रोजन बम में]। अतः नियंत्रित ऊर्जा के लिए प्लाज्मा का घनत्व, $10^{15} \frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से० मी०}}$ के लगभग होना चाहिए। आज प्रमुख समस्या ऐसे आधान पात्र की आती है, जिसमें 10^8K ताप पर $10^{15} \frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से० मी०}}$ घनत्व के प्लाज्मा का सृजन निहित समय के लिए किया जा सके। यहाँ समस्या यह नहीं है कि कोई भी पदार्थ इतने ऊँचे ताप पर ठोस नहीं रह सकता है किन्तु समस्या यह है कि इतने ऊँचे ताप पर प्लाज्मा को ठंडी दीवारों के सम्पर्क में आने से कैसे रोका जाय? प्लाज्मा की ताप चालकता किसी भी पदार्थ से कई लाख गुनी अधिक होती है, अतः यह तत्काल ही ठंडा हो जायगा।

मानव निर्मित प्लाज्मा-सृजन के लिए गुरुत्वाकर्षण बल का उपयोग पूर्ण रूप से अनुपयोगी सिद्ध हुआ है। नाभिकों में परस्पर वैद्युत प्रतिकर्षण के कारण, वैद्युत क्षेत्रों का उपयोग भी संभव नहीं हो सकता है। अतः प्लाज्मा-सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्र ही विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

चुम्बकीय क्षेत्र में प्लाज्मा सृजन का सिद्धान्त

चुम्बकीय क्षेत्र, कक्ष के रेखीय एक भट्टी का कार्य करता है, जो आयनों की दीवार से दूर रहता है। चुम्बकीय क्षेत्र से लम्बवत् गति करने वाले आवेशित कण का पथ वृत्ताकार होता है, जिससे आयनीकृत कण स्वयं पूर्ण रूप से चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा दो दिशाओं में अन्तर्विष्ट हो जाता है। चूँकि वृत्ताकार परिपथ में गति करने वाले कण से वृत्ताकार धारा उत्पन्न होती है, अतः कण का चुम्बकीय क्षेत्र में इस प्रकार अन्तर्विष्ट होना बहुत मँहगा पड़ता है क्योंकि, वृत्ताकार धाराओं से एक अतिरिक्त चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है जो मूल चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा के विपरीत होता है इससे तप्त प्लाज्मा क्षेत्र पर चुम्बकीय क्षेत्र का परिमाणित बल बहुत कम हो जाता है। मूल चुम्बकीय क्षेत्र में इस कमी को प्रतिचुम्बकन (Dimagnetism) कहते हैं। प्लाज्मा सतह पर कणों की कक्षीय धाराओं से यह कमी होती है। सतही धारायें, मूल चुम्बकीय क्षेत्र से इस प्रकार परस्पर क्रियायें करती हैं, जिससे एक बल उत्पन्न होता है, जिसका मान प्रायः उस बल के बराबर होता है जो प्लाज्मा दाब के संतुलन के लिए आवश्यक होता है।

[प्लाज्मा दाब $= nkT$]

प्लाज्मा कणों के दाब को संतुलित करने के लिए चुम्बकीय क्षेत्र में एक विशिष्टता होती है। चुम्बकीय क्षेत्र के द्वारा विशिष्ट दाब का मान $\frac{B^2}{8\pi}$ (B→चुम्बकीय क्षेत्र का मान) के बराबर होता है। अतः प्लाज्मा दाब आन्तरिक चुम्बकीय क्षेत्र एवं वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र में संतुलन के लिए, प्लाज्मा का दाब और आन्तरिक चुम्बकीय विशिष्ट दाब का मान $\left(\frac{B^2_1}{8\pi}, B_1\right.$ आन्तरिक चुम्बकीय क्षेत्र का मान वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का विशिष्ट दाब $\left(\frac{B_2^2}{8\pi}, B_2\right.$ लगाए गए वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का मान) के बरा-

बर होना चहिए।

$$nkT + \frac{B_1^2}{8\pi} = \frac{B_2^2}{8\pi}$$

यही चुम्बकीय क्षेत्र में प्लाज्मा मृजन का आधारभूत सिद्धान्त है। उदाहरण के लिए 5000 गास चुम्बकीय क्षेत्र का मान 1 वायुमण्डलीय दाब के बराबर होता है, प्लाज्मा जिसका दाब 100 वायुमण्डलीय दाब के बराबर हो, सृजन के लिए कम से कम 50,000 गास चुम्बकीय क्षेत्र की आवश्यकता होगी।

चुम्बकीय बोतल सिद्धान्त

इस विधि में प्लाज्मा को एक निर्वात प्रकोष्ठ में रखा जाता है, जिससे प्लाज्मा का सम्पर्क वाह्य हवा से न हो सके। प्लाज्मा आयनों को दीवार से दूर रखने के लिए चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है, जिससे चुम्बकीय बल रेखाएँ प्रकोष्ठ सतह के रेखीय होती हैं। चुम्बकीय क्षेत्र में प्रत्येक प्लाज्मा कण या आयन का पथ कुंडलिनी जैसा होता है। कई विभिन्न प्रकार की चुम्बकीय बोतलों से प्लाज्मा मृजन के प्रयत्न किए गए हैं, लेकिन ऐसी चुम्बकीय बोतल का निर्माण संभव नहीं हुआ जो लीक न करती हो।

चुम्बकीय दर्पण सिद्धान्त

इस विधि में, प्लाज्मा आयनों को इस प्रकार फँसाया जाता है, जैसे सूर्य कण पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में फँसते हैं। विसर्जन प्रकोष्ठ जिसके चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए कुण्डलीनुमा तार लगाया जाता है, उसमें प्लाज्मा अन्तःक्षित कराया जाता है। प्लाज्मा आयनोंया कणों को दर्पणों के बीच चुम्बकीय क्षेत्र का मान बढ़ाकर फँसाया जाता है, तथा क्रमिक अवस्थाओं में रुद्धोष्म (Adiabatic) संकुचन विधि से ऊष्मा दी जाती है। वास्तव में इस विधि में मृजन के लिए अक्षीय एवं अरीय संकुचन साथ साथ कार्य करते हैं। इस विधि में भी प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन के कारण तापीय स्थायीकरण नियत समय के लिए संभव नहीं हो सका है।

उभयाग्र या आरक्षी घेरा ज्यामिति सिद्धान्त

इस विधि में प्लाज्मा सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्रों को विशेष रूप से निर्मित किया जाता है जैसे स्टेलैरेटर में चुम्बकीय क्षेत्र टोरस के आकार का होता है। वास्तव में स्टेलैरेटर विधि में प्लाज्मा सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है कि एक चुम्बकीय बल रेखा का अनियतरूपेण अनुकरण हो, जिससे केवल एक वृत्त का ही निर्माण होकर पूर्ण ट्रोयाण्डल (Toroidal) सतह उत्पन्न हो।

स्टेलैरेटर विधि में, एक ऐसी सिरोरहित वृत्तज नली, जो टोरस (torus) के आकार की होती हैं, उसमें तप्त गैस भर दी जाती है। इस नली के चारों ओर तार की कुण्डलियाँ लपेटी जाती हैं, जिससे वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार की नली प्रयुक्त किए जाने का मुख्य कारण यह है कि नली में प्रतिसाम्य के कारण सिरों पर प्लाज्मा से ऊर्जा हानि नहीं होती है।

तप्त प्लाज्मा का सृजन

तप्त प्लाज्मा मृजन की विभिन्न विधियों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते है :-

(१) निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ—इन विधियों में एक शीतल गैस को जिसका घनत्व 10^{13} से 10^{16}अणु घन से० मी० होता है, आयनीकृत करके निम्न तापीय प्लाज्मा उत्पन्न किया जाता है। विभिन्न विधियों द्वारा इस प्लाज्मा का ताप 10^{8}K तक पहुँचाने के लिए ऊष्मा दी जाती है। सारणी १ में निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधि और उन स्थानों का नाम जहाँ पर इनके द्वारा नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने के प्रयास जारी है, अंकित हैं।

(२) उच्च ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ—इस श्रेणी के अन्तर्गत मृजन की ऊर्जा विभिन्न विधियों में कणों का पुंज होता है जिसकी ऊर्जा इतनी होती है, जिससे संगलन क्रिया सम्पन्न हो सके। इन कणों के पुंज को चतुराई से निर्मित चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा फँसाया जाता है। इस सिद्धान्त पर आधारित विभिन्न विधियों का उल्लेख सारणी २ में किया गया है।

सारणी १

निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ

विधि	स्थान	सिद्धान्त	ऊष्मा देने की विधि
अक्षीय पिन्च	१ लाँस अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला । २ लाउरेन्स विकिरण	गैस में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । ज्यामिति रेखीय ।	तीव्र चुम्बकीय संकुचन विधि से
थीटा पिन्च	१ लाँस अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला । २ नवल अनुसन्धान प्रयोगशाला ।	गैस में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । ज्यामिति ट्रोयाड़ल (Toroidal)	
पायरोट्रान संकुचन दर्पण मशीन	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला	वाह्य कुण्डलियों में धाराओं से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । सिरों पर अति तीव्र बल लगाया जाता है । ज्यामिति रेखीय ।	रुद्धोष्म संकुचन से
स्टेलैरेटर	प्रिंसटन	वाह्य कुण्डलियों में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता हैं । ज्यामिति ट्रोयाडल ।	(१) ओमिक विधि (Ohmic) (२) आयन विधि

सारणी २

उच्च उर्जा इंजेक्शन विधियाँ

विधि	स्थान
१ आणविक आयन विधि ।	ओकरिज राष्ट्रीय प्रयोगशाला
२ ऊर्जस्वी उदासीन इंजेक्शन विधि ।	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला
३ उभयाग्र में इंजेक्शन विधि ।	लास अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला
४ अस्ट्रान	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला

प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन

विभिन्न विधियों में यह देखा गया है कि प्लाज्मा में अस्थिरता एवं कम्पन उत्पन्न हो जाने से प्लाज्मा मृजन निश्चित समय के लिए सम्भव नहीं हो सकता है अतः नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन समस्या का समाधान भी आवश्यक है।

प्लाज्मा अस्थिरता से तात्पर्य यह है कि प्लाज्मा के एक सिरे और दूसरे सिरे में सहकारी क्रिया से इस प्रकार के क्षेत्र और गतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे प्लाज्मा का कुछ भाग मृजन क्षेत्र से तीव्र गति से दूर हटने लग जाता है। दूसरे शब्दों में वह स्थिति, जिसमें लघुविरूपता, मूल विरूपता के आकार को बढ़ने में सहायता करके एक ऐसे बल का निर्माण करती है, जिसे वृहत विरूपता कहते हैं। यही वृहत विरूपता, प्लाज्मा अस्थिरता के लिए उत्तरदायी होती है। विभिन्न मृजन विधियों में विभिन्न प्रकार की वृहत विरूपताएँ उत्पन्न होती देखी गई हैं। इनको दूर करने का कोई सामान्य हल प्राप्त नहीं है। विभिन्न मृजन विभिन्न विधियों में विभिन्न तकनीकी ज्ञान की सहायता से विरूपता बलों की समस्याओं का निराकरण कर उचित समय के लिए प्लाज्मा मृजन का प्रयास जारी है।

निष्कर्ष : लगभग पिछले २०वर्षों से नियंत्रित संगलन ऊर्जा प्राप्त करने के उद्देश्य से, प्लाज्मा मृजन की विभिन्न विधियों का अध्ययन विश्व की कई प्रमुख प्रयोगशालाओं में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है। यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न प्रयासों से प्लाज्मा मृजन में संतुलन प्राप्त होने लगा है, यद्यपि मृजन समय अभी बहुत कम है लेकिन चुम्ब-कीय कूप सिद्धान्त, चुम्बकीय कर्तन लघु परिपथ सिद्धान्त और उष्मागतिकी से निर्देश इस क्षेत्र में अनुसन्धान को नया आयाम प्रदान कर रहे हैं। यद्यपि ऐसी कोई विधि नहीं है जिससे यह भविष्यवाणी की जा सके कि कब तक नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त की जा सकेगी लेकिन यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में हम समुद्र के पानी में निहित असमाप्य ऊर्जा को प्राप्त करने एवं अन्तर-तारकीय उड़ानों के स्वप्नों को साकार होते हुए अवश्य देखेंगे।

● ●

रहने को भूमि कहां शस्य कहां ?

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि सन् २००० तक पृथ्वी पर रहने के लिए मनुष्यों को स्थान नहीं मिल पावेगा। जिस गति से पिछले पचास वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है उसे देखते हुये यह सोचना युक्तियुक्त होगा कि २००० ई० तक पृथ्वी पर सांस लेना मुश्किल हो जावेगा। कृष्य भूमि के सीमित होने तथा प्रति एकड़ पैदावार में वृद्धि न कर सकने से भोजन की समस्या उग्र रूप धारण कर लेगी। यही नहीं, उन्नत राष्ट्रों द्वारा जिस गति से पृथ्वी के गर्भ से खनिजों का उत्खनन हो रहा है उसे देखते हुये यह भी सोचना ठीक ही होगा कि कालान्तर में खनिजों का भी भण्डार क्षीण हो जावेगा।

इस पृथ्वी पर कोई भी भण्डार अक्षय नहीं। वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही इस ओर दृष्टि रखनी होगी। आगे आने वाली पीढ़ियां अवश्य ही घाटे में रहेंगी। चाहने पर भी उन्हें मनमानी ढंग से खर्च के लिये वस्तुयें नहीं मिल पावेंगी।

यदि कोई उसका संरक्षक या त्राता बन सकता है तो वह समुद्र की विपुल जल राशि है जहां से सभी जीवों का विकास हुआ ; मनुष्य को उसी का मुखापेक्षी बनना होगा। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ?

लुप्तप्राय जन्तु—गेण्डा

● रामेश वेदी

बहु उपयोगी जीव:—लगभग दो हजार साल पहले भारत के एक चिकित्सक महर्षि चरक ने गेण्डे के विभिन्न अंगों में भेषजीय उपयोगिता प्रतिपादित की थी। मध्ययुग में युरोप में भी इसके सींग के विचित्र गुणों की धाक थी। लन्दन की दवासाजी में १७४१ तक सींग की माँग के प्रमाण हमें मिल जाते हैं। उस वर्ष छपी भेषज संहिता (फार्माकोपिया) में गिनाई गई आवश्यक औषध द्रव्यों की सूची में यह परिसंख्यात है।

लिंस्खोटन (१५९०) ने देखा था कि गेण्डे के दाँत, नाखून, सींग, माँस, खाल, खून, लीद और पेशाब भी भारत में बहुत से रोगों की चिकित्सा में काम आते हैं। उसने खुद भी उन्हें आजमाया था और अपने अनुभव में सचमुच लाभदायक पाया था। वे आगे लिखते हैं कि सभी गेण्डे एक समान अच्छे नहीं होते। अलग-अलग प्रकार के जंगलों में तरह-तरह की बूटियाँ खाने से उनके सींग तथा देह की बनावट में अन्तर आ जाता है इसलिए उनके अंग-प्रत्यंग के गुण भी बदल जाते हैं।

हुबक ने रिपोर्ट दी थी कि लीद के अलावा इसके प्रत्येक भाग की चीन में इतनी अधिक माँग है कि मलय पेनिन्सुला में यह नष्ट हो रहा है। फ्लावर ने लिखा था कि मलय निवासी के लिए गेण्डे को मारकर चीनियों को बेच देना अधिक मुनाफे का धन्धा था क्योंकि किसी भी युरोपियन से उन्हें जिन्दा गेण्डे का इतना दाम नहीं मिलता था।

सींग-सर्व गुण सम्पन्न—सींग के गुणों के बारे में इस प्रकार के विश्वास सारी दुनिया में कम या अधिक प्रचलित हैं। भारत, तिब्बत, ब्रह्मदेश, चीन, थाईलैंड और न जाने कितने ही देशों में व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि सींग में वाजीकरण गुण निहित हैं। खोई हुई शक्ति, यौवन और पुरुषत्व को प्राप्त करने के लिए इसका चमत्कारी प्रभाव माना जाता है। मलय में इस के सींग को चुला कहते हैं। मलय के आदिवासी इसे अत्यन्त मूल्यवान पुंसत्व शक्तिवर्धक पदार्थ मानते हैं।[1] इसलिए इन सभी देशों में सींग की खपत है। पुरानी दिल्ली के बाजारों में मैंने मजमा लगाकर दवाइयां बेचने वालों के पास गेंडे का सींग देखा है। वाजिकरण तिलों और गठिया के लिए इसे अन्य उपयोगी तेलों के निर्माण में इसे अन्य जान्तव पदार्थों के साथ मिला कर पका लेते हैं।

लिंस्खोटन (१५९०) ने ईस्ट इण्डीज की यात्राओं में इस सींग को विष के निवारण के लिए तथा अनेक रोगों में उपयोगी औषध लिखा था[2]। अरबों का विश्वास था कि इस सींग से बनाये प्याले में पेय पदार्थ लिए जायँ तो विष का असर नहीं होता। पुराने जमाने में लोग इस सींग के बड़े सुन्दर कामदार प्याले बना लिया करते थे। विश्वास

१—मलय मैजिक, वाटर विलियम स्कीट, १९०००, पृ० १५०।

२—वांयजेज़ टु दि ईस्ट इण्डीज, लिंस्खोटन १५९०।

किया जाता था कि इनमें विष की पहिचान हो जाती है। कहा जाता है कि विष मिलाये गये भोजन को इसमें रखा जाय तो उसका रंग बदल जाता है। वह फट जाता है। इसी तरह विषैला पेय इसमें डाला जाय तो वह उफन जाता है। अपने दुश्मनों की चालों से बचने के उद्देश्य से पूर्वी एशिया के राजे-महाराजे गेण्डे के सींग से बने बरतनों में भोजन और पेय लिया करते थे। अत्यन्त मूल्यवान् ये बर्तन साधारण व्यक्ति **की** पहुँच से बाहर थे। अब तो ये अत्यन्त दुर्लभ हैं। सर जार्ज वाट के विवरण से पता चलता है कि १८९२ ई० में भी गेण्डे के सींग से बने प्याले भारत में मिल जाते थे।

रोगों और बुरी शक्तियों से बचने के लिए चरक के समय कुमारों को जो गण्डे-तावीज धारण कराये जाते थे उनमें गेण्डे के सींग की नोक इस प्रयोजन के लिए ग्रहण की जाती थी[1]। खाल और हड्डी के छोटे-छोटे टुकड़े रोगों से बचने के उद्देश्य से अनेक देशों में धारण किये जाते हैं।

अनेक जगह यह धारणा थी कि पानी से भरे पतीले में गेण्डे का सींग रात भर पड़ा रहने दिया जाय तो वह पानी अद्भुत गुणों से युक्त हो जाता है। परिवार के सदस्य तथा पड़ोसी लोग उसमें से एक चम्मच प्रतिदिन प्रसाद के रूप में पीते थे।

पूर्वी एशिया में एक अद्भुत विश्वास है कि आसन्न-प्रसवा स्त्री के सिरहाने के नीचे गेण्डे का सींग रख दिया जाय तो यह प्रसव के कष्टों को कम कर देता है। जिन लोगों के पास यह सींग होता है वे गर्भिणी स्त्रियों को किराये पर देते हैं और प्रत्येक प्रसव के लिये लगभग ३० पौण्ड की राशि लेते हैं।

फ्लेअरर द्वारा तालीफ शरीफ के १८३३ में किये गये अनुवाद में बताया है कि स्त्री के कमरे में सींग की धूनी देने से भी प्रसव सुखकर हो जाता है।

१—मणयश्च धारणीयाः कुमारस्य, खड्गरुरुगवय वृषभाणां जीवितामेव, दक्षिणेभ्यो विषाणेभ्यो ग्राणि गृहीतानि स्युः। —चरक, शारीर स्थान—८, ६२।

युरोप में विश्वास था कि सींग से बने प्याले में पानी रख कर पीने से मृगी के दौरे दूर हो जाते हैं।

तालीफ शरीफ (१८३३) के अनुसार सींग को जला कर मस्सों पर धूनी देना बवासीर का बहुत बढ़िया इलाज है। सींग से बने प्याले में रखा बासी जल पीना भी इस रोग में लाभदायक माना जाता है।

गेण्डे का पेशाब निःसंक्रामक माना जाता है। बरतन में भरकर मुख्य द्वार पर भूतों, पिशाचों और रोगों को भगाने के लिए टाँगा जाता है। कुछ लोग तो पेशाब को पीते भी हैं। कलकत्ता में पहले पेशाब की बहुत माँग थी[1]। वहाँ यह दो रुपये प्रति बोतल के हिसाब से बिक जाता है।

खालः—गेण्डे की खालें चीन को निर्यात होती थीं। वहाँ उनसे एक क्लिपी (जेली) बनाई जाती थी जो दवा मे काम आती थी।

मांस—पवित्र भोजन और पथ्य

दूसरे मांसों के समान गेण्डे का मांस भी प्राचीन भारत में आहार का पदार्थ रहा है। सुश्रुत के समय तो यह पवित्र समझा जाने लगा था और श्राद्धों में पितरों को समर्पित किया जाता था। सुश्रुत के टीकाकार आचार्य उल्लण ने भी इसे पितरों के लिए हितकर लिखा है। यह कसैला है, रूक्ष है, स्रावों को सुखाता है, मूत्र कम करता है, कफ नाशक है और वायु को हरता है[2]। चरक ने इस मांस को अभिष्यन्दि, बल बढ़ाने वाला, शरीर में स्निग्धता बढ़ाने वाला, पुंसत्वशक्ति बढ़ाने वाला, मधुर, रंग को निखारने वाला, वायु को हरने वाला और थकान को उतारने वाला माना है[3]। यह मांस को बढ़ाने

१—ए डिक्शनरी आफ दि इकानोमिक प्राडक्ट्स आफ मलय पेनिन्सुला, आई० एच० बर्किल पृ० १८९४।

२—कफघ्नं खड्गपिशित कषायमनिलापहम्।
पित्र्यं पवित्रमायुष्यं बद्धमूत्रं विरूक्षणम्॥
—सुश्रुत, सूत्रस्थान ४६, १०३।

३—खड्गमांसमभिष्यन्दि बलकृन्मधुरं स्मृतम्। स्नेहनं बृंहणं वर्ण्यं श्रमघ्नमानिलापहम्। चरक, सूत्रस्थान २७, ८४-८५।

वाला आहार है इसलिए राजयक्ष्मा (तपेदिक) में मांस का जब क्षय हो जाता है तब मसालों के साथ पकाया हुआ गेंडे का मांस रोगी को खिलाया जाता था। रोगी इसे खाने में अरुचि दिखाता था तो उसे भैंस के मांस के नाम से दे देते थे[1]।

डाक्टर हेमिल्टन ने अपनी बरार पुस्तक में लिखा है कि उसके समय में भी हिन्दू चिकित्सक मांस को उबाल कर घी के साथ टायफस ज्वर की अंतिम अवस्थाओं में देते थे। तालीफ शरीफ (१८३३) में मांस को वायु विकारों को दूर करने वाला बनाया है।

नेपाल में भी गेंडे का मांस स्वादु और पवित्र माना जाता है। वहां विश्वास किया जाता है कि पितरों को इस पशु का मांस और खून अत्यधिक पसन्द है। उच्च वर्ग के हिन्दू और अधिकतर गुरखे इसके शरीर के अन्दर घुसकर पितरों को इसके खून का तर्पण देते हैं। श्राद्ध के दिनों में सींग से बनाये हुए प्याले में दूध की लस्सी को भरकर पितरों को समर्पित किया जाता है। जिन लोगों के पास सींग नहीं होता वे इसकी खाल से बनाये पात्रों के द्वारा श्राद्धकर्म कर लेते हैं।

गेण्डे का शिकार–राजाओं का प्रिय शौक

गेण्डे का शिकार खेलना वीरता का कार्य समझा जाता रहा है। राजाओं का यह प्रिय शौक था। गुप्तकालीन सोने के एक सिक्के पर कुमार गुप्त (४१४-४५५ ईस्वी पश्चात्) को गेण्डे का शिकार करते हुए अंकित किया गया है। मृगया के इस प्रभावशाली अंकन में महाराजा नंगे बदन एक चुस्त घोड़े की नंगी पीठ पर बैठे हैं। वेग से भगाकर उन्होंने घोड़े को गेण्डे के सामने ही ला कर खड़ा कर दिया है और उसे तलवार से ललकार रहे हैं।

बहादुरी का प्रदर्शन करने के लिए क्षत्रियों, राजाओं, और शासकों द्वारा गेण्डे के शिकार का यह सिलसिला सदा चलता रहा है। मुगल शासन में हमने इसके अनेक उदाहरण दिखाये हैं। अंग्रेजों के राज्यकाल में इस आखेट में खूब वृद्धि हुई। तत्कालीन रियासतों के नरेशों ने अपनी बहादुरी के कारनामें प्रकट करते हुए बताया है कि किस प्रकार उन्होंने सैकड़ों गेण्डों की निर्मम हत्यायें की। १८७६ ई० की ओरिएण्टल स्पोर्टिंग मेगजीन में अभिलिखित है कि बंगाल में एक आखेटक ने एक दिन में गेंडों पर सौ गोलियां चलायी थी। इसमें छह गेंडे तो मारे गये और २५ जख्मी हुए। १८७१ और १९०७ ई०के बीच एक महाराजा ने दो सौ आठ गेण्डे मारे थे।

ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ फरवरी १९६१ ई० में जब भारत की राजकीय यात्रा पर आई थीं तब उनके पति ड्यूक ने नेपाल की तराई में दक्षिणपश्चिम में स्थित मेगोली स्थान पर एक मादा शेर और एक मादा गेण्डे का शिकार किया था। आखेट की भारतीय साहसिक परम्परा से इस शिकार की कोई तुलना नहीं की जा सकती। यहाँ शिकारी दल ऊँचे मचानों पर सुरक्षित आश्रय में था और सैकड़ों आदमी व पशु हांके में लगे थे। ३७५ हाथियों ने छह फुटी जंगली घास के वन को घेर लिया था। हांके में पहले शेरनी सामने आयी जिसका एक ही गोली से काम तमाम हो गया। उसके बाद मादा गेंड़े को हाँका गया। दो गोलियों से वह मार गिरायी गयी।

यह एक सामान्य विश्वास था कि गेण्डे की मोटी खाल को गोली नहीं छेद सकती। गोली के द्वारा मारे जाने पर यह धरती पर ऐसे गिरता है, मानों घुटने मोड़ कर बैठा हो। मरने के बाद भी यह इसी आसन में बैठा रहता है।

राज्याभिषेक के समय महाराजा द्वारा गेण्डे का शिकार करना एक धार्मिक परम्परा है जो अब तक निभायी जा रही है। मारने के बाद उदरगुहा में स्थित आंतों और आमाशय को निकाल कर अलग कर दिया जाता है। उदरगुहा में बैठ कर तब राजा पूजा करते हैं। इसी तरह उदरगुहा में बैठ कर महाराजा श्राद्धकर्म सम्पन्न करते हैं।

[शेष पृष्ठ २३ पर]

१—गजखड्गितुरंगाणां वेशवारीकृतं भिषक्। दद्यान्महिषशब्देन मांसं मांसाभिवृद्धये। चरक' चिकित्सत स्थान ८, १५४।

अति सर्वत्र वर्जयेत

● डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

पौधों के समुचित विकास के लिये १६ तत्व आवश्यक पाये गये हैं जिन्हें आवश्यक मात्रा के आधार पर दो श्रेणियों में रखा जा सकता है

(१) मुख्य तत्व—ऐसे तत्व, जो पौधों के लिये अधिक मात्रा में आवश्यक होते हैं। इस श्रेणी में कार्बन, हाइड्रोजन आक्सीजन, सल्फर, कैल्शियम, मैगनीशियम, नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम रखे गये हैं। कुछ काल पूर्व क्लोरीन भी इसी श्रेणी का तत्व माना जाता था। किन्तु यह दूसरी श्रेणी के तत्वों के साथ रखा जाता है।

(२) सूक्ष्म मात्रिक तत्व— वे तत्व जो पौधों के विकास के लिये अत्यन्त अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं। ताँबा, जस्ता, मैंगनीज, मालिब्डनम, वोरान एवं लोहा इस श्रेणी के छह सदस्य हैं। वर्तमान समय में जब कि नित्य फसलों की नई-नई उन्नतिशील किस्मों का विकास किया जा रहा है, खेतों में डाले जाने वाली नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम की मात्रा में वृद्धि होना स्वाभाविक है। कारण यह है कि ये उन्नतिशील किस्में जहां एक ओर अधिक उपज देकर लाभ पहुँचाती हैं वहीं दूसरी ओर तत्वों का अधिक अवशोषण करके उस खेत की उर्वराशक्ति को कम करती जाती हैं जिनसे प्रति वर्ष खादों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये उन्नतिशील किस्में पुरानी किस्मों की अपेक्षा पोषक तत्वों की डेढ़ गुनी अधिक मात्रायें अवशोषण करती हैं। परिणामतः इन किस्मों के बोने पर शस्य वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम को अधिक मात्रा में खेतों में डालने की सिफारिश की है और हमारे अबोध किसान इन किस्मों से अधिकाधिक उपज लेने की आकांक्षा से नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियमयुक्त खादों का प्रयोग बढ़ाते जा रहे हैं। वस्तुतः जैसे-जैसे इन खादों की मात्रा बढ़ाई जाती है, फसल द्वारा अवशोषित सभी तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। परन्तु अभी तक हमारी धरती माँ के इन लालों का ध्यान केवल त्रिदेव-त्रितत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम पर ही केन्द्रित है।

त्रितत्वों का प्रभाव

१. नाइट्रोजन—इन त्रितत्वों के अधिकाधिक प्रयोग से जो मुसीबत उठ खड़ी होती है वह सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपलब्धि है। नाइट्रोजन युक्त खादों की अधिक मात्रा डालने से इन सूक्ष्ममात्रिक तत्वों पर क्या प्रभाव पड़ता है अभी इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाया। फिर भी यह देखा गया है कि नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग मैंगनीज की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

२. फास्फोरस—आजकल सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की प्राप्यता पर फास्फोरस का प्रभाव अध्ययन का विषय बन रहा है। देश में अब कई शोध प्रयोगशालाओं में इस विषय में शोध कार्य भी हो रहा है। हमारी प्रयोगशाला में (रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) भी इस क्षेत्र में कार्य हो रहा है। अभी तक जो परिणाम मिले हैं, उनको देखने से यह पता चलता है कि यदि फास्फोरस का प्रयोग बिना किसी रोक टोक के होता रहा तो ताँबा तथा जस्ता की उपलब्धि क्षीण होती जावेगी। इसका कारण यह है कि एक तो उन्नतिशील किस्में देशी किस्मों की अपेक्षा अन्य

तत्वों के साथ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का भी अधिक अवशोषण करती हैं जिससे मिट्टी का भंडार धीरे धीरे रिक्त होता जाता है। दूसरे, फास्फोरस के साथ ताँवा तथा जस्ता अविलेय रूप में अवक्षेपित हो सकते हैं, जिससे उन्नतिशील जातियों में अन्य आवश्यक तत्वों की अधिक मात्रा डालने पर भी ताँवा तथा जस्ता की न्यूनता के कारण उनकी उपज घट जावेगी। लोहा की प्राप्यता पर भी प्रतिकूल प्रभाव के फल पाये गये हैं। फास्फोरस की अधिक मात्रा होने से जो कठिनाई उत्पन्न होती है उसका दूसरा पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मैंगनीज़ एवं मालिब्डनम की प्राप्यता फास्फोरस की उपस्थिति में बढ़ जाती है। फास्फोरस का अधिक प्रयोग मैंगनीज़ की प्राप्यता को विषालुता स्तर तक पहुँचा सकता है फलस्वरूप अधिक फास्फोरस का प्रयोग उपज बढ़ाने के स्थान पर मैंगनीज की विषालुता पैदा कर के फसल नष्ट कर सकता है।

३ पोटैशियम—पोटैशियम अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर स्वयं विषालुता के स्पष्ट लक्षण प्रदर्शित करता है। ऐसी स्थिति में पौधे झुलसे हुये नजर आने लगते हैं। हमारी प्रयोगशाला में हुये प्रयोगों में प्राप्त फलों से यह विदित होता है कि अधिक मात्रा में पोटैशियम का प्रयोग मैंगनीज़ की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। ऐसे ही परिणाम अन्य विदेशी वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में भी प्राप्त हुये हैं। पोटाश की अधिक मात्रा मृदा को क्षारीय वना देती है। इस प्रकार यह ताँबा, जस्ता, मैंगनीज़ एवं लोहा की प्राप्यता को तो कम कर देता है किन्तु बोरान एवं मालिब्डनम की प्राप्यता को बढ़ा देती है। फलतः पोटैशियम की अधिकता एक ओर जहाँ स्वयं फसल को नुकसान पहुँचाती है वहीं कुछ अन्य तत्वों की प्राप्यता को न्यून करके तथा कुछ की विषालुता को बढ़ा करके फ़सल को बहुमुखी क्षति पहुँचाती है। कहा भी है, "अति सर्वत्र वर्जयेत"।

अम्लीय मिट्टियों की समस्या : जिन अम्लीय मिट्टियों में उन्हें सुधारने के लिये चूने का प्रयोग किया जाता है सूक्ष्म मात्रिक तत्वों से सम्बन्धित कुछ समस्यायें देखी जाती हैं। मिट्टी की अम्लीयता को कम करके सामान्य पी० एच० पर लाने तक कोई विशेष समस्या नहीं उत्पन्न होती किन्तु चूने का अधिक प्रयोग करने से जैसा कि प्रायः होता हैं अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मैंगनीज़ की प्राप्यता अत्यन्त कम हो जाती है। यह देखा गया है कि चूने की उपस्थिति में द्विसंयोजी मैंगनीज़ आक्सीकृत हो कर मैंगनीज़ डाई आक्साइड में परिणत हो जाता है जिसकी प्राप्यता अल्प है। यही नहीं, मैंगनीज़ डाइ आक्साइड एवं द्विसंयोजी मैंगनीज परस्पर क्रिया करके मैंगनीज़ को विल्कुल अप्राप्य वना सकते हैं। जस्ता तथा ताँबा के क्षारकीय कार्बोनेट चूने की उपस्थिति में ही अवक्षेपित होते हैं जो पौधों के लिये अप्राप्य हैं। चूने की अधिक मात्रा फास्फोरस की प्राप्यता पर भी प्रभाव डालती है। चूनायुक्त मिट्टियों में मालिब्डनम की प्राप्यता बढ़ कर विषालुता का रूप धारण कर सकती है। चूने की उपस्थिति में मैंगनीज़ की प्राप्यता पर फास्फोरस का अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता अतः जहाँ कहीं भी फास्फोरस जनित मैंगनीज़ की विषालुता देखी जाय चूने का प्रयोग लाभकर हो सकता है।

जीवांश का योगदान

कुछ किसानों का अन्धविश्वास है कि मिट्टी में जितना ही जीवांश (कार्वनिक पादर्थ) होगा, मिट्टी उतनी ही उपजाऊ होगी। परन्तु जीवांश की अत्यधिक मात्रा होने पर ताँवा एवं जस्ता जनित न्यूनता रोग देखने को मिल सकते हैं। जीवांश की उपस्थिति में मैंगनीज़, फास्फोरस एवं मालिब्डनम की प्राप्यता बढ़ती देखी गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी कारक की अति, विषालुता या किसी अन्य तत्व की न्यूनता का कारण बन जाती हैं।

हमारे देश के मृदा एवं शस्य वैज्ञानिकों के लिये यह चुनौती है कि वे इस क्षेत्र में कार्य आरम्भ करें एवं किसानों को प्रत्येक फ़सल एवं उसकी जाति विशेष के लिये खाद की ठीक ठीक मात्रा बतावें, जिससे कि वे बिना सोचे-समझे खादों के प्रयोग से होने वाले हानिकारक प्रभावों से बच सकें।

● ●

भारतीय रसशास्त्र एवं हेमवती विद्या (कीमिया) का सिंहावलोकन

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

इसके पूर्व के लेख में हमने देखा था कि किस प्रकार प्रथम संस्कार स्वेदन से प्रारंभ करके पारा सोलहवें संस्कार क्रामण तक आते आते, वेधन करने की अर्थात् हलकी धातुओं को सोने में बदलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। हमने शत सहस्त्र, कोटि तथा अयुत वेधी पारद एवं वेधन क्रिया के पाँच प्रकारों लेप, क्षेप, कुन्त, धूम एवं शब्द के बारे में भी जानकारी प्राप्त की थी। तांबे को सोने में बदलने की एवं लेप वेध की क्रिया पर भी विहंगावलोकन किया था।

प्रस्तुत लेख में चांदी, लोहा आदि धातुओं को पारे की सहायता से सोना बनाने की कुछ विधियों का सिंहावलोकन कर, हम आधुनिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या पारे से सोना बनाया जा सकता है ?

चाँदी से सोना बनाना:- काक चंडीश्वर तंत्र में दी गई विधि के अनुसार शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गंधक ५ तोला तथा नौसादर २॥ तोला लेकर खरल में तीन दिन तक घोटे और फिर इन सबके मिश्रण को कपरोटी की हुई आतशी शीशी में भर कर, बालुका यंत्र में दी हुई विधि से मन्द एवं तीक्ष्ण अग्नि में तपाये। इस विधि से रस सिन्दूर के समान जो पदार्थ प्राप्त हो उसे गंधक के तेल में पीस कर चाँदी के पतरों पर गजपुट विधि से लेप कर तीन पुट देने से चांदी सोने में बदल जावेगी। कहा भी है "रसं शुद्धं तथा शुद्धं गंधकम् चैव तत्समं--पुट त्रयात्भवेत् स्वर्णम् इति सिद्धै : सुनिश्चितम्"

अन्य विधि :- अट्ठानवे भाग चाँदी एवं एक भाग शुद्ध स्वर्ण को एक भाग शुद्ध संस्कृत पारे से मिलाकर वेध करे तो सब स्वर्ण बन जाते हैं। इसी विधि को शतांश बेध विधि भी कहते हैं।

चाँदी एवं तांबे को सम्मिलित रूप से सोना बनाने की शतांश विधि के अनुसार ४९ भाग चाँदी में ४९ भाग शुद्ध तांबा तथा एक भाग स्वर्ण एवं एक भाग शुद्ध संस्कृत पारा मिलाने पर समूचा मिश्रण स्वर्ण बन जाता है। "चन्द्रमेकोन पाशन्तथा शुद्धस्य भास्वतः । बन्हिरेको रसं चैकः शतांश विधिरीरितः"।

लोहे से सोना बनाना:- मैनसिल चार भाग, संस्कृत पारद और शुद्ध गंधक एक भाग मिलाकर आतशी शीशी में भरकर मुख पर मुद्रा कर दें। फिर खड़िया मिट्टी जिसमें अधिक हो ऐसा जल और लोह चूर्ण मिलाकर शीशी पर लेप करे एवं शीशी को भूधर यंत्र में तपाये। लोह स्वर्ण बन जायेगा।

सीसे से सोना बनाना:- अभ्रक, पारा, मैनसिल, गन्धक समान भाग लेकर, हीराकसीस, सीसा तथा स्वर्ण से मर्दन कर भूधर यंत्र में पकाने पर स्वर्ण बन जाता है।

खोट बन्धन विधि से पारे द्वारा हेमवती विद्या :- जिस विधि से पारा अपनी चंचलता त्याग कर गुटिकाकार होता है एवं खूब तपाने एवं धोंकनी से धमन करने पर भी नहीं उड़ता उसे खोट बन्धन विधि कहते हैं। इसकी कई विधियों में से एक इस प्रकार है "तालूर कुटिलार्कस्य रम्भापामार्ग भस्मना। हस्तीव बध्यते वक्र लोह खण्डिकया रसः॥" अर्थात् अभ्रक, बंग और तांबे के मिश्रित चूर्ण में रखा हुआ पारा केला तथा अपामार्ग के क्षार में

वालुका यंत्र में दी हुई विधि से अग्नि देने पर पारा बँध जाता है ठीक वैसे ही जैसे लोहे की टेढ़ी कड़ी वाली मेखला से हाथी। इस खोटबद्ध पारद से भिन्न धातुओं को सोना बनाने की कई विधियाँ रस ग्रंथों में हैं।

राँगे से चाँदी बनाना:- लज्जावंती के रस में एक भाग पारा, एक भाग पीला अभ्रक, एक भाग सैंधा नमक मिला कर पाँच पहर तक खरल में घोटे और एक सेर राँगे में आतशी शीशी में गरम करे तो राँगे से चाँदी बन जाती है।

पारद भस्म को कोटिवेधी बनाने की क्रिया:- निघंटु रत्नाकर में इसकी विधि इस प्रकार दी है-पारद भस्म एक पल, नागेश्वर पाँच पल तथा सुवर्ण एक पल, इन तीनों को मिलाकर मूषा में तब तक धौंकता जावे जब तक कि नाग और सोना न जल जावे। इस प्रकार सौ बार करे। इससे कोटिवेधी पारा तैयार हो जाता है। इस कोटि वेधक पारे से ऊपर दी हुई विधियों के अनुसार ताँबा, लोहा, चाँदी आदि की करोड़ गुनी मात्रा सोने में बदली जा सकती है।

प्राचीन रसाचार्य अपनी स्वर्ण निर्माण की विधियों के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे क्योंकि उपर्युक्त विधियों से प्राप्त सोने को बाजार में बेचने का भी स्पष्ट निर्देश किया गया है जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है:—

"विद्धं रसेन यंद्द्रव्यं, पक्षार्द्ध स्थापयेद्भुवि।
नगरे तत्र आनीय, विक्रीणीत विचक्षणा॥

अर्थात् शुद्ध संस्कृत पारे से वेधन द्वारा प्राप्त स्वर्णादिक द्रव्य को पृथ्वी में (गड्डे में) सात दिन रखे और फिर शहर में आकर उसे बेच दे।

आधुनिक दृष्टिकोण

लेखमाला के प्रारंभिक योगों में हमने स्वर्ण प्राप्ति की विभिन्न विधियों का सिंहावलोकन किया। यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वर्ण प्राप्त करने के प्रयत्न अपने मूल रूप में तो सफल नहीं हो सके किन्तु अनवरत अध्यवसाय करते करते विकास की इस सीढ़ी पर तो आधुनिक वैज्ञानिक पहुँच ही चुके हैं कि उन्होंने एक तत्व से दूसरा तत्व एवं एक धातु से दूसरी धातु को नाभिक प्रक्रियाओं (न्यूक्लियर रिएक्शन्स) द्वारा प्राप्त करना संभव कर दिखाया है। किन्तु नाभिक प्रक्रियाओं द्वारा पारे का स्वर्ण में परिवर्तन एवं अन्य तत्वों के पारस्परिक परिवर्तन अत्यधिक खर्चीले एवं कष्टसाध्य हैं एवं जन साधारण के लिये अनुपयोगी हैं। प्रकृति भी रेडियम, यूरेनियम आदि तत्वों में अपनी कीमियागिरी प्रदर्शित करती रहती है। रेडियम के परमाणु अनवरत रूप से अनन्त समय तक विघटित होते रहते हैं एवं कई मध्यस्थ धातुओं में रूपान्तरित होकर अन्ततोगत्वा सीसे में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी तरह की अन्य कई प्राकृतिक प्रक्रियाएँ भी होती रहती हैं। अतः एक तत्व को दूसरे तत्व में भौतिक साधनों एवं प्रक्रियाओं द्वारा बदल देना न तो प्रकृति के क्षेत्र में न ही मानवीय प्रयत्नों या कृत्रिमता के क्षेत्र में ही असंभव है। इसलिये यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आधुनिक रसायन शास्त्रियों द्वारा साधारण रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा तत्वों में परिवर्तन ले आना एवं हलकी धातुओं को सोने में परिवर्तित कर दिखाना संभव नहीं हो सका है। आधुनिक विकास के प्रकाश में तो यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि सामान्य रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा धातुओं का तात्विक रूपान्तर प्रायः असंभव ही है।

आइये अब हम आधुनिक रसायन शास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तुत प्रश्न पर समीक्षात्मक विचार करें। इस हेतु थोड़ी भूमिका आवश्यक है।

आधुनिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से प्रत्येक तत्व का अपना एक निश्चित परमाणु संगठन होता है जो कि उस तत्व को अपनी विशेषताएँ प्रदान करता है एवं किसी अन्य तत्व के परमाणु से वैभिन्य प्रदर्शन में सहायता देता हैं। किसी भी तत्व के सभी परमाणु एक जैसे होते हैं (आइसोटोप अपवाद हैं)। मोटे रूप में परमाणु का संगठन सौर मंडल के संगठन जैसा होता है। लार्ड रदरफोर्ड के परमाणु संगठन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परमाणु की

सूर्य के समतुल्य एक केन्द्र या नाभि होती है जिसमें प्रायः उसकी पूरी मात्रा एकत्र हो जाती है । इस नाभि का निर्माण होता है दो तरह के भारी कणों के द्वारा जिनके नाम हैं प्रोटान (धनात्मक परमाणु) एवं न्यूट्रान्न (विद्युत विभवहीन परमाणु) । इस केन्द्र के आसपास अलग अलग कक्षाओं में इलेक्ट्रान नाम के लगभग भारविहीन ऋण विद्युतात्मक कण अनवरत प्रदक्षिणा किया करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि पृथ्वी, बुध आदि उपग्रह सूर्य के चारों ओर । उदाहरणार्थ पारे के प्रत्येक परमाणु में केन्द्र में ८० प्रोटान एवं १२० न्यूट्रान होते हैं । इस तरह पारे के केन्द्र में २०० इकाई का भार होता है (हाइड्रोजन के परमाणु से लगभग २०० गुना भार) एवं ऐसे केन्द्र के चारों ओर ८० इलेक्ट्रान चक्कर लगाते रहते हैं । पहली कक्षा में २, दूसरी कक्षा में ८, तीसरी में १८, चौथी में ३२, पाँचवी में १८ एवं छठी में २ इस प्रकार कुल हुए ८० इलेक्ट्रान । चित्र रूप में पारे का परमाणु संगठन सरल तरीके से इस तरह बताया जा सकता है ।
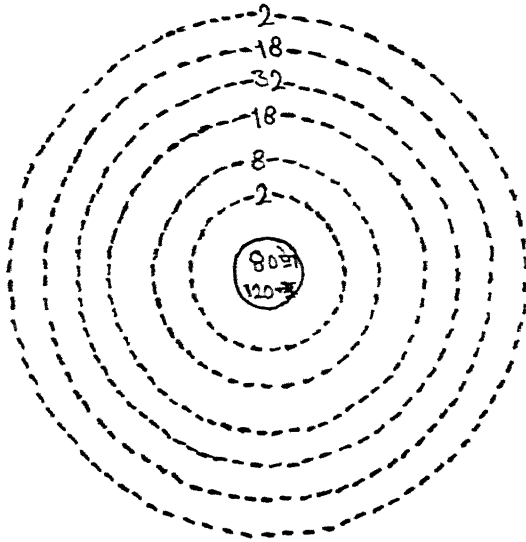
मरक्युरी (Hg) या पारे का परमाणु आलेख
Fig. 1

प्रोः—धनात्मक प्रपराणु

न्यू—विद्युतः विभवहीन प्रपराणु

इ—ऋणात्मक प्रपराणु

◎—केन्द्र

◌—कक्षाएँ (इलेक्ट्रानन प्रक्षिणा की)

वैसे आधुनिकतम विकास की दृष्टि से तो परमाणुओं के संगठन को तरंग तंत्र (वेव मेकैनिक्स) के प्रकाश में देखना चाहिये किन्तु यह विषय बड़ा दुरूह एवं गणितात्मक तथा भावात्मक है अतः हम सुबोधगम्यता की दृष्टि से बोहर-समरफील्ड पद्धति के आधार पर ही अध्ययन करेंगे । जिन धातुओं की हेमवती विद्या (कीमियागिरी) पर रस शास्त्रों में विशेष विवरण मिलता है उनमें से कुछ के परमाणु संगठन के परिचायक चित्र इस प्रकार हैं ।
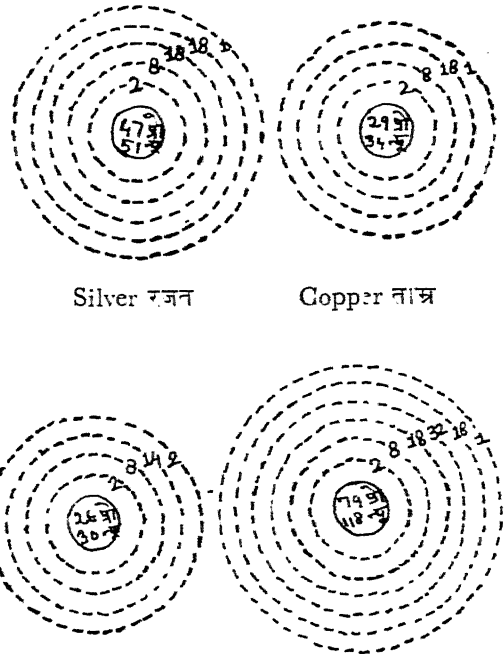
Silver रजत　　Copper ताम्र

Iron लोह　　Gold स्वर्ण

Fig. 2

पारे की सहायता से हलकी धातुओं का सोने में परिवर्तन क्या संभव है ?

चित्रों से स्पष्ट है कि उदाहरणार्थ, यदि लोहे को सोना बनाना हो तो लोहे के प्रत्येक परमाणु का संगठन बदल कर उसे सोने के परमाणु संगठन के समान करना होगा। इस लक्ष्य के लिये लोहे के प्रत्येक परमाणु की नाभि में जब तक २६ प्रोटान से बढ़ाकर ७९ प्रोटान एवं ३० न्यूट्रान से बढ़ाकर ११८ न्यूट्रान तक की संख्या न ले जाई जायेगी तब तक लोहा सच्चे अर्थों में सोना न बन सकेगा। प्रत्येक लोह परमाणु के चारों ओर ऋण विद्युतात्मक इलेक्ट्रान के कई दृढ़ परकोटे हैं। इनको वेधते हुए अत्यंत तीव्र गतिशील प्रोटान को भी लोहे की नाभि तक पहुँचा देना एवं वहाँ जमा देना अत्यधिक दुष्कर कार्य है, फिर ७९-२६=५३ प्रोटान एवं ११८-३०=८८ न्यूट्रान ले जाकर जमा देना तो बहुत दूर की बात रही। और फिर यह प्रक्रिया भौतिक एवं नाभिक (फिजिकल एण्ड न्यूक्लियर) ही कही जाएगी न कि रासायनिक (केमिकल)। इसी तरह पाठकगण चांदी, तांबा आदि के बारे में चिन्तन कर सकते हैं।

रासायनिक प्रक्रिया में जब दो परमाणु मिलकर एक यौगिक अणु बनाते हैं तो अन्तिम परकोटे वाले इलेक्ट्रान मात्र अभिक्रिया करते हैं और इन क्रियाओं के लिये बहुत कम शक्ति की आवश्यकता होती है जबकि नाभिक प्रक्रिया द्वारा प्रोटान आदि को किसी परमाणु के केन्द्र तक पहुँचा देने में अत्यधिक शक्ति की अवश्यकता होती है। इसके लिये साइक्लोट्रान जैसे विशाल, खर्चीले यंत्र लगते हैं। गतिशील प्रोटान आदि को मात्र केन्द्र तक पहुंचा देना ही नहीं वरन् वहाँ जमा देना भी लक्ष्य है। बहुधा अभिप्रेषित प्रोटान पहले से ही केन्द्रस्थ प्रोटान द्वारा विकर्षित कर अन्य दिशाओं में फेंक दिये जाते हैं। लाखों परमाणओं पर लाखों प्रोटान का वेध करने पर किसी एक परमाणु में प्रोटान जम जाता है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि कितना कठिन है यह कार्य।

'विज्ञान' के जून अंक में लिखित अठारह संस्कारों की विधियाँ एवं तदनन्तर स्वर्ण निर्माण की विधियां, सभी मूलतः रासायनिक हैं। इनसे पारे, चाँदी, ताँबे के बाहरी परकोटों में ही किंचित् परिवर्तन लाया जा सकता है। इससे अधिक नहीं। अतः सूक्ष्म दृष्टि से उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सभी पाठक यह अच्छी तरह विचार कर सकते हैं कि चाँदी, लोहे, ताँबे आदि के परमाणुओं में आमूल परिवर्तन कर उन्हें सोने में बदल देना कहाँ तक संभव हो सकता है ?

स्वयं पारे को सोने में परिवर्तन की संभाव्यता (नाभिक रसायन शास्त्रीय दृष्टिकोण)

मेन्डेलीफ की आवर्त सारणी में सोना और पारा पास-पास हैं। सोने के ठीक बाद पारद का स्थान आता है। सोने का परमाणु अंक ७९ है एवं परमाणु भार १९७ जब कि पारे का परमाणु अंक ८० है एवं परमाणु भार २००। अतः स्वयं पारे को सोने में बदलने की संभावनाओं पर वैज्ञानिक आशान्वित हो सकते हैं, लेकिन रासायनिक विधि से नहीं। एक संभावना इस प्रकार हो सकती है-यदि पारे के परमाणु को एक प्रोटान से इस तरह विद्ध किया जाय कि वह पारे की नाभि में क्षण मात्र ठहर कर एक हीलियम गैस के परमाणु के रूप में बाहर आ जाय तो पारे का स्वर्ण अपने आप बन जायगा।

तो पारे को सोने में बदलना संभव हो सकता है, लेकिन सामान्य रासायनिक विधि से नहीं। तांबा, लोहा, चांदी आदि को तो साधारण विधि से पारे की सहायता से सोने में बदलना संभव ही नहीं है।

आधुनिक वैज्ञानिकगण तरंगतांत्रिक संभावना (वेव मेकेनिकल प्रावेबिलिटी) एवं न्यून शक्ति मार्ग (लो इनर्जी पाथ), द्विमुख गुहा प्रभाव (टनेल इफेक्ट) आदि तक पहुँच चुके हैं जिनके द्वारा उन गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है जो साधारण रासायनिक सैद्धान्तिक उपलब्धियों से संभव न था। इस दृष्टि से, चूँकि पारे से सोना बनाने की विधियाँ, उनके सम्बन्ध में किंवदन्तियां, विश्वास

एवं वास्तविक प्रयत्न शताब्दियों से भारत में चले आ रहे हैं अतः जब तक अन्तिम रूप से शोध करके यह निर्णय न कर दिया जाय कि पारे को उक्त विधियों से सोने में बदलना शत प्रति शत असंभव है तब तक नकारात्मक निर्णय देना सच्ची वैज्ञानिकता नहीं होगी। कम शक्ति की आवश्यकता वाले नाभिक संयोजन (न्यूक्लियर फ्यूजन) आदि के दृष्टिकोण से भी आधुनिक वैज्ञानिक विचार कर सकते हैं। रेडियमधर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) के प्रकाश में भी इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। कृत्रिम रेडियोधर्मिता (आर्टिफिशियल रेडियोएक्टिविटी) एवं तज्जन्य शृंखलाबद्ध नाभिक प्रक्रियाओं (न्यूक्लियर चैन रिएक्शन्स) के दृष्टिकोण से भी विचार करना अनुचित न होगा। लेकिन ये विषय गंभीर हैं। इन पर विस्तृत विचार यहाँ अभिप्रेय न होगा।

समीक्षा एवं उपसंहार

प्रस्तुत लेखमाला के पहले भागो में हमने पारे की सहायता से हलकी धातुओं को सोना बनाने की विधियों का एवं पारे के संस्कारों आदि का पर्यवेक्षण किया। शास्त्र-श्रद्धालु पाठक अवश्य ही इनसे कौतुकान्वित हुए होगें। इस समय भी भारतवर्ष में कई व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के चुटकुलों एवं किंवदन्तियों के आधार पर लोह एवं देह शुद्धि के प्रयत्नों के पीछे काफी समय, पैसा एवं शक्ति लगा रहे हैं। उनके प्रयत्न तात्विक दृष्टि से सफल नहीं हो सकते इतना तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। भले ही उपर्युक्त विधियों से पीले रंग की कोई बनी, सोने जैसी मिश्रधातु या धातुओं के संश्लिष्ट यौगिक जो सोने के समान दीखते हो, प्राप्त हो सकते हों किन्तु १९७ परमाणु भार वाला एवं ७९ परमाणु अंक वाला, १९.३ अपेक्षिक घनत्व वाला तथा १०६४ सेन्टीग्रेड ताप पर हरे द्रव के रूप में पिघलने वाला शुद्ध तात्विक स्वर्ण (गोल्ड एलिमेंन्ट) प्राप्त करना इन विधियों से असंभवप्राय है। इस उक्ति के पीछे पूर्वाग्रह नहीं तथ्यात्मक चिन्तन है जो कि लेखमाला के अन्तिम भाग में पाठकों के सामने रखा जा चुका है। शुद्ध तत्व के अन्वेषणेच्छुक किसी भी मनीषी को न तो पूर्वाग्रही होना चाहिये, न ही दुराग्रही। विज्ञान तभी आगे बढ़ता है। फिर भी यह समग्र विषय शोध का बड़ा अच्छा विषय है। आधुनिक रसायनशास्त्री पारे के सभी संस्कारों को प्रयोगशाला में करके "प्रत्येक संस्कार के अन्त में पारे का क्या हो जाता है ?" इसे परिभाषित कर सकते हैं। स्वर्ण बनाने की विभिन्न विधियों की प्रक्रियाएँ करके वे देख सकते हैं और शोध कर सकते हैं कि सोने जैसी आखिर क्या वस्तु बन जाती है ? क्रिया की प्रत्येक सीढ़ी पर क्या क्या परिवर्तन होते हैं इनका विस्तृत परीक्षण किया जा सकता है। प्रस्तुत लेखमाला के लेखक ने इसी सम्बन्ध में एक व्यापक शोधकार्य तथा ज्ञानकोष लेखन की योजना तैयार की है। इस दिशा में किया गया कार्य निश्चय ही मौलिक तथा जन कल्याणकारी होगा, भारतीय पृष्ठभूमि के अनुरूप होगा एवं ठोस एवं उपादेय उपलब्धियाँ करायेगा। इस अवसर पर आधुनिक रसायनशास्त्रियों तथा प्राचीन पद्धति के विद्वान रसशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों का इस दिशा में ध्यान आकर्षित करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

● ●

बधाई

डा० हरगोबिन्द खुराना ने जीव का कृत्रिम संश्लेषण करके भविष्य में 'कृत्रिम जीव' के लिए द्वार खोल दिए हैं। उनकी इस अद्भुत खोज के लिए 'विज्ञान' परिवार उन्हें बधाई दे रहा है—सम्पादक

नई चर्चायें : नए दौर :

१. हिन्दी का जोर

प्रयाग वि० वि० में इस वर्ष स्नातक एवं स्नातकोत्तर सभी कक्षाओं की परीक्षाओं के वैज्ञानिक विषयों के पर्चे हिन्दी-अंग्रेजी में छपे। पर्चों के बँट जाने के बाद निरीक्षक अध्यापकों के बीच रोचक चर्चायें छिड़ती देखी गई। कभी किसी प्रश्न के अंग्रेजी अंश का ठीक से हिन्दी अनुवाद नहीं था तो किसी हिन्दी अंश का अंग्रेजी मूल गलत था। कुछ पर्चों में अंग्रेजी में छपे वाक्य का हिन्दी रूपान्तर रह गया था तो कुछ में हिन्दी छापे की भयंकर भूलें थीं। शायद विश्वविद्यालय के इतिहास में प्रथम बार अध्यापकों के बीच हिन्दी अनुवादों को लेकर बहसें हुईं। इनमें से कुछ अध्यापकों का हाथ अवश्य ही इन रूपान्तरों में रहा होगा। फलतः वे अपने साथियों से अपनी प्रशंसा के लिये लालायित थे किन्तु बदले मे मिल रही थी नुक्ताचीनी। इससे वे तिलमिला कर रह गये। कहा जाता है कि हिन्दी रूपान्तर की महत्ता दो कारणों से है—पर्चा बनाने वाले को अधिक पारिश्रमिक मिलता है तथा अंग्रेजी में कमजोर छात्रों के लिये हिन्दी रूपान्तर प्रश्न को सही सही समझने में सहायक होता है।

यह शुभ लक्षण है। इससे हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल होगा। बिना चर्चा का विषय बने उसे आदर नहीं मिल सकता। काश कि अध्यापक एवं छात्र हिन्दी की महत्ता को व्यावहारिक रूप में समझ पाते।

इतने पर भी छात्रों का एक नगण्य अंश (२%) ही हिन्दी में अपने उत्तर लिखता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़के हिन्दी को प्रश्रय देते नजर आये। गणित की अपेक्षा रसायन एवं भौतिकी में अधिक छात्रों ने हिन्दी में उत्तर लिखे। ये ऐसे छात्र हैं जिनके समक्ष अपने अन्तर की पुकार-आत्म प्रेरणा-अधिक बलवती है। वे इसके कुपरिणाम की परवाह नहीं करते जबकि छात्रों का अधिकांश कम नम्बर पाने के भय से चाहते हुये भी हिन्दी में उत्तर नहीं लिखता। उनके लिये परीक्षा अध्यवसाय है। वे उसमें सफल होना परम लक्ष्य बनाते हैं। अध्यापक भी उन्हीं को प्रश्रय देते हैं।

● **एक प्राध्यापक**

२. हिन्दी में प्रश्नपत्र क्यों नहीं छपे ?

इस वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा पूर्व-आयु-विज्ञान परीक्षा (पी० एम० टी०) का समापन बड़ा खेद-जनक रहा। परीक्षा में बैठने के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता इण्टरमीडिएट है। इण्टरमीडिएट परीक्षा के सभी प्रश्नपत्रों के हिन्दी अनुवाद भी साथ में छापे जाते हैं एवं कक्षा की पढाई भी हिन्दी में ही होती है। परन्तु विचित्र बात देखने को मिली जब पी० एम० टी० के कुछ विद्यार्थी मुझसे मिले एवं यह शिकायत की कि प्रश्नपत्र पूर्णतः अंग्रेजी में होने के कारण उनकी समझ में नहीं आये। यदि ये ही प्रश्नपत्र हिन्दी में भी छपे होते तो वे प्रश्नों का उत्तर अधिक अच्छी तरह से दे पाते।

अतः मैं पी० एम० टी० परीक्षा से संबंधित अधिकारियों का ध्यान उन निरीह परीक्षार्थियों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जो अंग्रेजी में होने के कारण प्रश्नपत्र न समझ सकने से उनके उत्तर ठीक से नहीं लिख पाये। आशा है इस वर्ष उनकी स्थित पर सहृदतापूर्वक विचार किया जायेगा एवं अगले वर्ष प्रश्नपत्रों के हिन्दी अनुवाद भी छापे जायेगें जिससे न्यूनतम योग्यता वाले परीक्षार्थी भी समान से रूप प्रश्न को समझ एवं लिख सकें।

● प्रेम चन्द्र मिश्र, शोध-छात्र

१. फिर से समुद्र मंथन

विश्व में पेट्रोलियम के कुल उत्पादन का छठां अंश सागर तल के कुओं से प्राप्त हो रहा है। आशा की जाती है कि भविष्य में भी विश्व में पेट्रोलियम की कुल पूर्ति का पांचवां अंश महासागरों और बड़ी झीलों के नीचे से प्राप्त होगा। अकेले खनिज तेल ही महासगरों की तलहटियों को खनिज उत्पादन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण तत्व बनाने के लिए पर्याप्त है। किन्तु ये जल क्षेत्र इस समय अन्य बहुमूल्य कच्ची सामग्रियां भी उत्पन्न कर रहे हैं, और आशा की जाती है कि सम्भवतः अगले दशाब्द के भीतर वे व्यापारिक दृष्टि से और भी दूसरे खनिजों के प्रतिस्पर्द्धी स्रोत बन जायेंगे। इन सम्भावनाओं के कारण उन प्रयासों की अनिवार्यता बढ़ जाती है, जो समुद्रों से ढके पृथ्वी के ७० प्रतिशत भाग के नीचे विद्यमान साधनों के स्वामित्व, नियमन और प्रयोग के सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए इस समय किये जा रहे हैं। अकेले अमेरिका से सटे महासागर-तलीय क्षेत्रों में ही १९६९ में अनुमानतः २३८ करोड़ ३० लाख डालर मूल्य के खनिज पदार्थों का उत्पादन हुआ, जो उसके पूर्ववर्ती वर्ष से ३५ करोड़ डालर अधिक था। किन्तु इस समय सागर तल के नीचे से जितनी खनिज सम्पदा प्राप्त की जा रही है, उसका अल्पांश ही अमेरिका द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। विश्व में सागर तल से प्राप्त कुल खनिज तेल और गैस का एक तिहाई अंश अमेरिका के निकटवर्ती सागर के नीचे से प्राप्त होता है, जबकि उसका शेष दो-तिहाई अंश २० से अधिक अन्य देशों के निकटवर्ती समुद्रों और वेनेज्वेला की माराकैबो नामक झील के नीचे से प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न महाद्वीपों के लगभग ६० अन्य देशों के निकटवर्ती महासागरीय क्षेत्रों में भी उनकी खोज की जा रही है।

कुछ देशों के सागरतटों के पास की जलगर्भीय खानों से लोहे और कोयले का उत्खनन हो रहा है। समुद्री खानों के द्वारों को भूमि पर गाड़ दिया जाता है, और प्रायः समुद्र की ओर ८ मील तक सुरंगें बैठा दी जाती हैं। कहीं-कहीं तटवर्ती समुद्र की तलहटी से जाल द्वारा बालू को बाहर खींच लिया जाता है, और उसमें से हीरे और लोहे को पृथक कर लिया जाता है।

भविष्य में महासागरों के गर्भ से सोना, फास्फेट, कोबाल्ट, मैंगनीज जैसे अनेक खनिज तथा महासागरीय तलहटी के नीचे की चट्टानी परतों में बन्द शुद्ध पेय जल भी प्राप्त होने की आशा है।

गहरे समुद्री क्षेत्रों में मैंगनीज के गुल्म शायद व्यापारिक स्तर पर उत्खनित होने वाले प्रथम खनिज पदार्थ होंगे। यद्यपि इन गुल्मों में लगभग २४ प्रतिशत मैंगनीज और लगभग १/४ प्रतिशत कोबाल्ट मिश्रित होता है, फिर भी मुख्यतः कोबाल्ट के कारण ही गहरे महासागर में उत्खनन आकर्षक सिद्ध होगा। इन गुल्मों में लोहा, कांसा और तांबा भी पाया जाता है।

२. गर्भ-निरोधी गोलियां

अब लोग जनसंख्या-विशेषज्ञों के इस कथन से चिन्तित हो उठे हैं कि 'यदि जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान गति जारी रही तो अगले ३० वर्ष में पृथ्वी की वर्तमान ३ अरब ५० करोड़ जनसंख्या दुगनी हो जाएगी। इसके बाद, अगले ३० वर्षों में जनसंख्या बढ़ कर १४ अरब पहुँच जाएगी। पुनः ३० वर्ष बाद २८ अरब; उसके ३० वर्ष बाद ५६ अरब। और, इसके बाद क्या ? १ खरब ! यह ऐसी स्थिति होगी जब लोग मुश्किल से गुजर-बसर कर पाएंगे।'

हम जानते है कि यह स्थिति नहीं आ सकती। यह स्थिति नहीं आएगी।

एकमात्र प्रश्न यह है : क्या हम—विश्व में रहने वाले सभी लोग अपनी बुद्धि और संकल्प का उपयोग कर जनसंख्या-वृद्धि के पागलपन को स्वयं ही रोक देंगे अथवा प्रकृति के ऊपर छोड़ देंगे कि वह स्वयं पहल करे तथा अपने दीर्घकाल से सुविदित प्रभावकारी परन्तु नृशंस तरीकों पोषण का अभाव, रोग और सामूहिक भुखमरी —द्वारा यह कार्य सम्पन्न करे।

विगत दशक में, छोटे-छोटे परिवार रखने की भावना से प्रेरित होकर तथा गर्भ-निरोधक गोलियों की सहायता से अमेरिकी जनों ने अपने यहाँ जनसंख्या-वृद्धि की गति में ५० प्रतिशत तक कमी कर ली है। अब वहाँ जनसंख्या-वृद्धि की दर २ प्रतिशत से घट कर केवल एक प्रतिशत तक ही रह गई है। अमेरिका में लगभल ८५ लाख महिलाएँ इन गर्भ-निरोधक गोलियों का उपयोग करती रही हैं। कई लाख अमेरिकी महिलाएं इससे कम प्रभावशाली गर्भ-निरोधक उपायों का भी सहारा ले रही हैं। फलतः अमेरिका की जनसंख्या-वृद्धि की गति निरन्तर घटती जा रही है—हर वर्ष १ प्रतिशत के लगभग ११० अंश के बराबर—यद्यपि १९६९ में पहली बार जन्म-दर में कुछ हल्की सी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है।

हाल में, अमेरिका में गर्भ-निरोधक गोलियों के बारे में जो वक्तव्य व्यापक तौर पर प्रचारित किये गये हैं उनके कारण गर्भ-निरोधक गोलियों का सेवन करने वाली अमेरिकी महिलाओं में से १८ प्रतिशत ने 'गोली' का सेवन करना छोड़ दिया है। इसके अलावा २३ प्रतिशत ने यह संकेत दिया है कि वे 'गोली' सेवन न करने के बारे में सोच रही हैं। किन्तु क्या यह एक बहुत बड़ी विपत्ति साबित नहीं होगी ? पर्याप्त संख्या में सुलभ प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'गोली' काफी सुरक्षित है और डाक्टरी परामर्श और देख-रेख में उसका उपयोग जारी रखा जा सकता है। कुछ डाक्टर 'गोली' के सेवन से उत्पन्न प्रभावों एवं शारीरिक विकारों की गम्भीरता तथा अन्य सम्भावित खतरों के बारे में सहमत नहीं हैं। अन्य सभी औषधियों की तरह 'गर्भ-निरोधक' गोलियों के भी कुछ बुरे प्रभाव हो सकते हैं लेकिन वह उन महिलाओं के लिए जो अपने परिवार का नियोजन करना चाहती हैं, तथा समाज के लिए बहुत ही लाभप्रद हैं।

अब तक गोली के सम्बन्ध में निम्न बातें स्पष्ट हो चुकी हैं :—

१. गर्भ-निरोधक गोलियां, यदि नियमित रूप से उनका सेवन किया जाए, शत-प्रतिशत सफल गर्भ-निरोध औषधि है तथा गर्भ-निरोध के अब तक विदित उपायों में सबसे अधिक प्रभावशाली है।

२. इसके कुछ ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जो कुछ महिलाओं के लिए काफी गम्भीर सिद्ध होते हैं इसलिए इनका सेवन उचित परामर्श और देश-रेख में किया जाए।

३. इसके कुछ सम्भावित दुष्परिणाम—जैसे कैंसर होने की सम्भावना—उन महिलाओं में अभी तक सिद्ध नहीं किए जा सके हैं, जो 'गोली' का सेवन करती हैं।

गर्भ-निरोध के सुधरे हुए जिन साधनों की आशा की जा रही है वे चाहे वर्ष में एक बार बांह में टीका लगाने की शक्ल में हों, महीने में एक बार गोली खाने के रूप में हों, प्रातः खाई जाने वाली गोली के रूप में हों अथवा अन्य किसी रूप में हों, उनसे अवांछित बच्चों की संख्या कम करके मानव जाति की बड़ी भलाई की जायेगी।

किन्तु इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। अभी हाल में कैलिफोर्निया और राजधानी वाशिंगटन के न्या-

यालयों ने गर्भपात के मर्यादित कानूनों को भी अवैध करार दिया है। देर-सबेर में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को यह फैसला करना होगा कि क्या समाज किसी महिला को ऐसा बच्चा पैदा करने के लिए बाध्य कर सकता है, जिसे वह नहीं चाहती। बहुत से राज्यों ने अपने यहाँ गर्भपात विषयक अपने कानूनों में ढील दे दी है या वे ऐसा करने पर विचार कर रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन में तो गर्भपात सम्बन्धी कानून शिथिल किये भी जा चुके हैं, और भारत में इस मामले पर विवाद चल रहा है।

संसार भर की दृष्टि से विचार करें तो यह बात असंदिग्ध रूप में सामने आती है कि कानून-सम्मत गर्भपात से—जैसा कि जापान और पूर्वी यूरोप के कई देशों में है—और अन्यत्र अवैध रूप में होने वाले गर्भपातों से अब सन्तानोत्पादन की संख्या में इतनी कमी हो रही है जितनी गर्भ-निरोध के सभी साधनों से मिल कर नहीं होती।

सूर्य की ऊर्जा और मनुष्य

पृथ्वी पर होने वाली, लगभग सभी प्रक्रियाएँ सूर्य की कृपा से होती हैं। इतना होने पर भी मनुष्य सूर्य के मुक्त-दान—विकीर्ण ऊर्जा— के एक बेहद छोटे अंश का ही उपयोग कर रहा है।

व्यवहारिक सौर-तकनीक (सौर ऊर्जा के व्यावहारिक उपयोग का विज्ञान) का जन्म सन् १८७८ में तब हुआ जब फ्रांसीसी वैज्ञानिक अगिस्तिन मौशो ने एक स. चारपत्र छापने के लिए अपने प्रतिष्ठान में सौर ऊर्जा का उपयोग किया था। उस दिन से आज तक संसार भर के वैज्ञानिक और आविष्कारक सूर्य को पृथ्वी के "औद्योगिक-घेरे" में बाँधने की कोशिशों में जुटे हुए हैं। परन्तु यह एक कठिन समस्या है। यही कारण है कि आज के युग में सौर-ऊर्जा की "नये" शक्ति स्रोतों की सूची में शामिल किया जाता है।

मनुष्य को सूर्य की ऊर्जा की बहुत आवश्यकता है। फ्रेडरिक जूलियो क्यूरी का विचार था कि सौर-ऊर्जा को इस्तेमाल करने की समस्या परमाणुविक-ऊर्जा पर नियंत्रण पाने की समस्या से कहीं ज्यादा जरूरी है। वे कहा करते थे कि सौर-ऊर्जा को नियंत्रित करने का अर्थ बड़ी-छोटी खोजों के लिए मार्ग प्रशस्त करना ही नहीं बल्कि समस्त राष्ट्रों की समृद्धि भी है।

आज मनुष्य बिजली के बिना रह नहीं सकता। बिजली हमारे दैनिक जीवन का अंग और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का आधार बन गयी है तथा परिवहन-व्यवस्था की मुख्य प्रेरक शक्ति भी है। विद्युतीकरण की प्रक्रिया में मानव-क्रिया-कलापों के सभी अंग समाविष्ट हैं और बिजली की माँग दिन पर दिन तेजी के साथ बढ़ती चली जा रही है। अनुमान लगाया गया है कि सन् २००० तक विश्व का विद्युत-शक्ति संतुलन आज की तुलना में २०० गुना अधिक हो जायेगा। परन्तु आज भी विद्युत का मुख्य आधार वही रासायनिक ईंधन है जो सहस्राब्दियों से पृथ्वी के गर्भ में एकत्र होता रहा है।

कई अनुसंधान कर्ताओं ने भविष्यवाणी की है कि आज से दो या तीन सौ वर्ष बाद पृथ्वी के गर्भ में स्थित खनिज ईंधन का भंडार समाप्त हो जायेगा और तब मनुष्य के सामने एक गम्भीर समस्या उठ खड़ी होगी। यह कुछ ऐसी सम्भावनाएँ हैं जिनके प्रति वर्तमान मानव-पीढ़ी उदासीन नहीं रह सकती। यह सच है कि इन भविष्यवाणियों की सत्यता संदिग्ध है परन्तु केवल समय के सन्दर्भ में। पृथ्वी के कुछ प्रदेशों में तो ईंधन की कमी अनुभव भी की जाने लगी है। एक दिन ऐसा भी आयेगा जब, अन्ततः, ईंधन की कमी और परिणामतः विद्युत-शक्ति की कमी नग्न यथार्थ बन जायेगी।

खनिज ईंधन की कमी से सिर्फ विद्युत-उत्पादन पर ही ऐसा कुप्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि इससे कई अन्य घटकों पर भी प्रभाव पड़ेगा। प्राकृतिक ईंधन—कोयला, तेल और गैस—रासायनिक उद्योग के कच्चे माल का महत्वपूर्ण स्रोत है। इस उद्योग से अनेक मूल्यवान पदार्थ बनते हैं इसलिए, भावी पीढ़ी के दृष्टिकोण से, इस अमूल्य वस्तु को ताप-बिजलीघरों की भूखी-भट्टियों का पेट भरने के लिए इस्तेमाल

करना इसका सर्वोत्तम उपयोग नहीं कहा जा सकता।

विज्ञान को इन समस्याओं का हल खोजना है और वह इस काम में जुटा हुआ है। पृथ्वी के भूताप-स्रोतों तथा सागरीय-तरंगों की शक्ति को विद्युत उत्पादन के काम में लाया जाने लगा है। परन्तु शक्ति के यह स्रोत अभी दुर्लभ हैं। परमाणुविक बिजलीघरों की संख्या बढ़ तो रही है पर वे शक्ति की अत्यधिक आवश्यकता की समस्या को कठिनाई से ही हल कर सकते हैं। एक तो इस प्रकार के बिजलीघर बहुत खर्चीले होते हैं, दूसरे उन्हें बनाते समय रेडियो-सक्रिय पदार्थों से मनुष्य का कारगर बचाव करने तथा रेडियो-सक्रिय-मल का समुचित बन्दोबस्त करने की आवश्यकता भी होती है।

वैज्ञानिकों का विचार है कि शक्ति-स्रोत के रूप में तापनाभिकीय-संश्लेषण में सर्वाधिक सम्भावनाएँ हैं। इसके लिए आवश्यक तापनाभिकीय ईंधन—भारी हाइड्रोजन-समुद्रों में भरा पड़ा है। सन् २००० के शक्ति उत्पादन स्तर पर भी यह ईंधन करोड़ों वर्षों के लिए पर्याप्त है। परन्तु इस ईंधन के प्रयोग की समस्या को हल करना आसान नहीं।

हाइड्रोजन बम बनाने में तो कोई खास देर नहीं लगी, पर अनेक देशों के अनेकानेक वैज्ञानिकों द्वारा वर्षों प्रयत्न करने के बाद भी तापनाभिकीय-शक्ति को चुम्बकीय घेरे में बाँध कर मनवोपयोगी बनाने में सफलता नहीं मिली। तापनाभिकीय-प्रक्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करने की समस्या आसानी से हल होने वाली समस्या नहीं है। इसके अलावा तापनाभिकीय-शक्ति-इंजीनियरी की भी एक सीमा है। पता लगाया गया है कि अगर तापनाभिकीय-पाइलों से निकलने वाली शक्ति पृथ्वी तक पहुँचने वाले सौर-विकिरण के दसवें भाग तक भी पहुंच जायेगी तो पृथ्वी का तापमान सात डिग्री सेंटीग्रेड तक जा पहुंचेगा जबकि ताप-सहिष्णुता की सीमा चार पर ही समाप्त हो जाती है।

जैसा कि स्पष्ट है, विद्युत-उद्योग की तकनीकी प्रगति विधि शक्ति-स्रोतों के व्यापक उपयोग से ही सम्भव है और इस मामले में सौर-ऊर्जा की उपेक्षा से हमारा काम नहीं चल पायेगा। इससे पृथ्वी के ताप-संतुलन पर प्रभाव नहीं पड़ता और वायुमंडल दूषित नहीं होता। इसके अलावा इसकी अन्तिम विशेषता यह है कि शक्ति का यह स्रोत वस्तुतः अक्षय है। सौर-विकिरण से (सिद्धान्ततः) लगभग ८०,०००,०००,०००,०००,००० किलोवाट घंटा बिजली प्रतिवर्ष उत्पन्न की जा सकती है। निकट भविष्य में मनुष्य जाति की विद्युत आवश्यकता उपर्युक्त खगोलीय संख्या से अधिक नहीं हो सकती है।

इसी बात को ध्यान में रखकर संसार भर के वैज्ञानिक सूर्य से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा के उपयोग की समस्या पर गम्भीरता से ध्यान दे रहे हैं।

काम की बातें

आप देखकर जान लें कि कितनी ऊर्जा (शक्ति) आप व्यय कर रहे हैं दैनिक कार्यकलापों में

काम	कैलौरी/घंटा	काम	कैलौरी/घंट
पढ़ना	२५	ट्रक चलाना	१००
फोन पर जवाब देना	५०	खाना पकाना	१००
हिसाब किताब करना	५०	ट्रैक्टर चलाना	१५०
श्रुतलेख लिखाना, लिखना	५०	फर्श बुहारना	१५०
कपड़े पहनना-उतारना	५०	कपड़े धोना	२००
कार चलाना	५०	बागवानी	२५०
खाना खाना	५०	बढईगिरी	२५०
स्वेटर बुनना	५०	बिस्तर बिछाना	३००

काम	कैलोरी/घंटा	काम	कैलोरी/घंटा
टाइप करना	५०	आरा चलाना	५००
बरतन धोना	७५	दांत साफ करना	१००
नहाना	१००	बाल सँवारना	१००
ताश खेलना, टेलविजन देखना	२५	शिकार करना	४००
गाना	५०	तैरना (आराम से)	४००
पियानो बजाना	७५	बैडमिंटन	४००
स्कूटर चलाना	१००	नाव खेना (आराम से)	४००
मोटर-साइकिल चलाना	१५०	टेनिस (सिंगल्स)	४५०
मछली पकड़ना	१५०	हाकी	५५०
चित्र बानाना (पेंटिंग)	१५०	बास्केट बाल	५५०
टहलना (आराम से)	२००	साइकिल चलाना (तेज)	६००
गाल्फ, घुड़सवारी	२५०	नाचना (तेज)	६००
शफ्ल बोर्ड, बोलिंग	२५०	फुटबाल	६००
साइकिल चलाना (धीमे)	३००	तैरना (तेज)	८००
टहलना (धीमे)	३००	कुश्ती	८००
नाचना (धीमे)	३५०	दौड़ना (तेज)	९००
साफ्टबाल, टेनिस (डबल्स)	३५०	वालीबाल-बेसबाल	३५०

स्मरण रहे कि स्वस्थ पुरुष के लिये प्रतिदिन ३५०० कैलारी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है जिसे वह भोजन से प्राप्त करता है।

● अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें

● हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है और उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

विज्ञान-वार्ता

छिडकाव द्वारा यूरिया का प्रयोग

ऐसा अनुमान कि भारतवर्ष में जितने क्षेत्रफल में गेहूँ उगाया जाता है उसका ७०% वर्षा पर निर्भर करता है अथवा बारानी या शुष्क कृषि होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यद्यपि सभी राज्यों में कृषि-उत्पादन की नवीन योजनायें कार्यान्वित हुई हैं किन्तु बारानी क्षेत्र के कृषकों ने न तो उर्वरकों का प्रयोग किया है और न अन्य उन्नत विधियों को अपनाया ही है। नमी की कमी अथवा सिंचाई के साधन उपलब्ध न होने से यह रुकावट आई है।

किन्तु इधर राजस्थान के कोटा जिले में एक प्रयोग किया गया जिसमें सान्द्र यूरिया का छिडकाव हवाई जहाज द्वारा हुआ जिससे गेहूँ की फसल में काफी वृद्धि हुई। यह प्रयोग भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, सरकार के कृषि विभाग एवं अमरीकी सहायता के सहयोग द्वारा सम्पन्न किया गया। इसमें मँडोला नामक ग्राम में २ हजार हेक्टेयर पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में यूरिया की दो सान्द्रतायें प्रयुक्त की गई—२०% तथा ४०% यूरिया विलयन। प्रतिएकड़ में ३२ लीटर विलयन का छिड़काव हवाई जहाज द्वारा किया गया। यूरिया उर्वरकों के साथ जीवनाशी मैलाथियन, डाइमेथोएट, मुमियेयान तथा डाइ-थेन का भी व्यवहार किया गया। जब ७५-८० दिन की फसल के ऊपर यह छिडकाव किया गया तो पत्तियों को कोई क्षति नहीं हुई। इससे प्रति हेक्टेयर ४५% तथा ३०% गेहूँ की अधिक उपज हुई। इस प्रकार ४०% यूरिया के छिडकाव से प्रति हेक्टेयर ६·८ क्विंटल गेहूँ की तुलना में १० क्विंटल गेहूं की उपज हुई।

टमाटरों का चटकना

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के अनुसंधानो से पता चला है कि बोरान तथा कैल्शियम का अलग अलग या मिला कर छिड़काव करने से टमाटरों का चटकना कम हो जाता है।

दवाओं का छिड़काव रोपाई के करीब एक महीने बाद १० दिन के अंतर से किया गया। गर्मियों की फसल पर तीन बार तथा सर्दियों की फसल पर चार बार छिड़-काव किया गया।

इस उपचार से सर्दियों के टमाटरों के चटकने से २६·४ प्रतिशत तथा गर्मियों के टमाटरों में ८·७ प्रतिशत कमी हुई।

संकर बाजरा की रोपाई सम्भव

उत्तर भारत के किसान संकर बाजरे को चोब कर या यंत्र से बोने की अपेक्षा रोपाई करके उगायें तो उन्हें अधिक पैदावार मिलेगी। नयी दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसंधानशाला ने परीक्षणों द्वारा इसका पता लगाया है।

परीक्षणों में रोपाई करके ली गयी फसल से प्रति हैक्टर २६·६ क्विंटल तथा यंत्र द्वारा बोयी फसल से २३.६ क्विंटल और चोब कर बोयी फसल से २२·३ क्विटल पैदावार मिली। इसी प्रकार चारे की पैदावार भी प्रति हैक्टर क्रमशः ५६·३ क्विंटल, ६०·१ क्विंटल और ५० क्विंटल मिली।

प्रयोग करके देखा गया है कि संकर बाजरे की रोपाई

में देरी होने पर, यदि अगस्त के मध्य तक भी फसल रोप दी जाये, तो प्रति हैक्टर बाजरे की पैदावार २० क्विंटल तक मिल जाती है।

धान की नई किस्में एवं धान क्रान्ति

इस वर्ष खरीफ की फसल में बोने के लिये कटक में हुई वर्कशाप की संस्तुति के आधार पर 'केन्दीय किस्म निर्धारण समिति' धान की नौ उन्नतिशील किस्मों को वितरण के लिये मान्यता देने जा रही है।

इन किस्मों से दो १०५ दिन में तैयार होने वाली आई० ई० टी० ३५५ एवं ४०० जातियाँ कृषि अनुसन्धान संस्थान, कोयम्बटूर द्वारा निकाली गई हैं।

केन्द्रीय धान अनुसन्धान संस्थान, कटक से भी चार नई किस्मों का विकास हुआ है। इसमें से एक ९० दिन में पकने वाली सी० आर० ४२-३८ किस्म है जो बीजू फसल के लिये उपयुक्त है। इसको सूखे एवं ऊँचे स्थानों में भी उगाया जा सकता है। दूसरी सी० आर० ४४-११ किस्म है। इसमें तने का छेदक नहीं लगता। अन्य दो किस्में सी० सी० १०-४५३७ एवं सी० आर० ७-६ चावल के लिये उत्तम हैं।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने ताइचुंग नेटिव १ एवं बांसमती के संयोग से साबरमती एवं जमुना दो नई किस्में निकाली हैं। साबरमती में बाँसमती की सुगंध है एवं जमुना का चावल उत्तम प्रकार का होगा।

धान अनुसन्धान संस्थान फिलिपाइन द्वारा टँगरो वाइरस मुक्त आई० आर० २० किस्म निकाली गई है। यह अन्य भारतीय किस्मों की तुलना से १४०० कि० ग्रा०/हैक्टेयर की अपेक्षा ५००० कि० ग्रा० हेक्टेयर उपज देगी।

इन नई किस्मों से धान बोने की दिशा में एक नया मोड़ आयेगा क्योंकि इनसे क्षेत्र विशेष की पसन्द का ध्यान रखते हुये किसान अधिकतम लाभ उठा सकते हैं।

● ●

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

चौर-आखेट

गेण्डे का शिकार करने की कानूनन मनाही है और इसके लिए कठोर दाण्डिक विधान है। इसके बावजूद भी बड़े पैमाने पर इसका अविवेकता से चौर-आखेट किया जा रहा है। आखेट्य-चौरों का गेण्डे के सींगों के बड़े-बड़े दाम देने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं है। १९५९ ई०में जोरहाट से प्राप्त एक समाचार में बताया गया था कि काजिरंगा संश्रय में जनवरी से जुलाई तक के सात महीनों में नाजायज शिकार में कम से कम ग्यारह गेण्डों की जानें गई थीं। सन्देह किया जाता है कि इस पशु के मांस व सींग का व्यापार देश के बाहर बड़े पैमाने पर चलता है। सींग मुख्यतया चीन भेजा जाता था। १९२९ ई० में चानियों की मांग पूरा करने के लिए एक हजार से अधिक गेन्डे सींग के लिए मारे गये थे। १९६२ ई० में नेफा पर आक्रमण के समय चीनियों ने बड़ी निर्दयता व लोलुपता से गेण्डों को मारा और जख्मी किया था। नेपाल में भी गेण्डे के शिकार पर रोक है और नाजायज शिकार करने वाले को पांच-छह साल की कड़ी कैद की सजा दी जाती है।

● ●

सम्पादकीय

बम या बमबम

संसद में रह रह कर यह वहस उठती रहती है कि भारत को परमाणु बम बनाना चाहिए अथवा नहीं। किन्तु कांग्रेस सरकार वचनबद्ध है कि भारतवर्ष परमाणु ऊर्जा का सम्प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही करेगा। फिर भी भारत की अधिकांश राजनीतिक पार्टियाँ इस मत की हैं कि जब भारत के पास समुचित साधन उपलब्ध हैं तो चीन तथा पाकिस्तान की ओर से होने वाले आक्रमणों से देश की रक्षा के निमित्त हमें परमाणु बम बनाने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। हमें इस में जो भी धन लगे उसे लगाना चहिए क्योंकि देश की अखंडता को स्थिर रखना ही होगा। अतः प्रश्न है कि भारत में परमाणु बम बनेगा भी या केवल "बमबम" ही होता रहेगा।

इधर परमाणु ऊर्जा संस्थान, ट्राम्बे, के संचालक डा० विक्रम साराभाई ने एक दसवर्षीय योजना प्रस्तुत की है जिसमें न केवल नाभिकीय शक्ति के उत्पादन का उल्लेख है वरन् देश में उपग्रहों के निर्माण एवं उनके प्रक्षेपण का भी संकेत है। उनके अनुसार १९८० तक भारतवर्ष उपग्रह छोड़ने में समर्थ हो सकेगा। किन्तु इस योजना के लिये प्रचुर धन चाहिए।

यह उल्लेखनीय बात है कि परमाणु बम बन जाने के बाद शक्तिशाली प्रक्षेपणास्त्रों की आवश्यकता होती है। चीन ने अंतरिक्ष में उपग्रह भेजकर यह सिद्ध कर दिया है कि वह परमाणु-राष्ट्रों की पंक्ति में है। उसके पास ५००० मील तक की मार करने वाले शक्तिशाली राकेट हैं जिससे भारत को वास्तविक खतरा उत्पन्न हो गया है। किन्तु इतने के बावजूद भी चीन अभी प्रति-प्रक्षेपणास्त्र नहीं निर्मित कर पाया।

भारत के पास प्लुटोनियम तथा यूरैनियम का प्रचुर भंडार है जिसके द्वारा वह परमाणु भट्ठी की सामग्री मुहैया कर सकता है; देश में प्रशिक्षित इंजीनियरों एवं कुशल वैज्ञानिकों का भी अभाव नहीं है कि कार्य में बाधा पड़े किन्तु यदि हिचकिचाहट है तो बस धन की और समय की। भारत कितने भी यत्न क्यों न करे, कम से कम १२ वर्ष लग जावेंगे सम्पूर्ण तैयारी में। यदि एक परमाणु बम बनाकर रुक जाना हो तो ७-८ करोड रुपये काफी हैं। परमाणु शस्त्रागार को सज्जित करने के लिए कम से कम ५० जेट बमवर्षक चाहिए, और चाहिए कम से कम १०० प्लुटोनियम बम। फिर इनके लिये लम्बी मार वाले प्रक्षेपणास्त्र चाहिए।

यह सच है कि एक बार परमाणु बम बनाकर उनका परीक्षण करना होगा और तब हमारे देश के राजनीतिज्ञों को दर्प का अनुभव होने पर अनावश्यक रूप से युद्ध में रत होने के लिये बहाना मिल सकता है। जो समझदार हैं वे ठीक ही सोचते हैं कि भारत की आर्थिक दशा ऐसी नहीं कि वह इतनी खर्चीली योजना की ओर मुहँ फेरे। पहले आर्थिक सम्पन्नता के लिये ही परमाणु ऊर्जा का सम्प्रयोग होना चाहिए। किन्तु यदि राष्ट्र को वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखना है तो अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना ही होगा। भले ही वह आज की आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण न लगे किन्तु कालान्तर में वह वरदान सिद्ध हो सकती है। अतः समझ-बूझ कर ही भारत को अगला कदम उठाना होगा। ● ●

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | श्रावण २०२७ विक्र०, १८९२ शक अगस्त १९७० | संख्या ८

वैज्ञानिक दृष्टि

● प्रोफेसर तोताराम शर्मा

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"

महाकवि तुलसीदास की इस चौपाई में थोड़ा-सा परिवर्तन कर उसे यदि हम यह रूप दे दें कि 'जाकी रही भावना जैसी, जग मूरति देखी तिन तैसी' तो यह एक गंभीर दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्य की ओर संकेत करेगी। इस परिवर्तित चौपाई के आधार पर समझ सकेंगे कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न कोटि के विचारकों ने जीवन और जगत दोनों को अपनी-अपनी योग्यता और भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में देखा है। वर्तमान भौतिक विज्ञान का प्रसिद्ध सिद्धान्त सापेक्षतावाद भी इस परिवर्तित चौपाई का अपने ढंग से समर्थन करता है। सापेक्षवाद के अनुसार इस भौतिक जगत् की गतिविधि का सर्वथा निरपेक्ष और वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकना संभव नहीं। हमारे ज्ञान का स्वरूप उन साधनों की गतिविधि पर निर्भर है जिनके द्वारा वह प्राप्त किया गया है। विज्ञान की सापेक्षतावादी विचारधारा के अनुसार जब प्रत्येक ज्ञान सापेक्ष है और किसी विषय का सर्वथा निरपेक्ष सत्य ज्ञान प्राप्त कर सकना असंभव है तो फिर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई भी ज्ञान अधिक सत्य या कम सत्य नहीं है। यह तो कहा जा सकता है कि ज्ञान का एक रूप व्यावहारिक दृष्टि से परिस्थिति विशेष में अधिक सुविधाजनक या उपयोगी है।

सापेक्षतावाद वैज्ञानिकों द्वारा की गई एक सर्वथा अचल आधार की खोज का परिणाम है और इस खोज में इतनी माथापच्ची करने का कारण ज्योतिर्विज्ञान की उस उलझन को सुलझाना था जिसके आधार पर पूर्वकालीन ज्योतिर्विद यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि यथार्थ में कौन अचल है, पृथ्वी या सूर्य। कोपर्निकस से पहिले के ज्योतिर्विद सर्वसाधारण की तरह पृथ्वी को सर्वथा स्थिर और सूर्य आदि ग्रहों और नक्षत्रों को चलायमान मानते थे परन्तु कोपर्निकस ने जब यह कहा कि वास्तव में सूर्य स्थिर है और पृथ्वी आदि ग्रह प्रदक्षिणा करते हैं तो उस समय के सभी विचारकों ने उसका घोर विरोध किया। उस समय के

ईसाई धर्माचार्यों की ओर से तो इसका इतना विरोध हुआ कि इसके कारण कोपर्निकस को अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं। इस प्रसंग में भी तुलसीदास जी की चौपाई याद आती है—

'नौकारूढ़ चलत जस देखा, अचल मोह वश आपहिं पेखा ।।'

यह चौपाई भी एक गंभीर दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्य की ओर संकेत करती है कि मिथ्याभिमान और मोहान्धकार के वशीभूत हो हम जीवन और जगत् के एक स्वल्प भाग का स्वल्प ज्ञान प्राप्त कर समझ बैठते हैं कि हमने जो जान लिया है वही सब कुछ है। सापेक्षतावाद हमें निरभिमानी बना हमारी दृष्टि का ऐसा व्यापक विस्तार करा देता है कि हम अपने प्रतिपक्षियों के विरुद्ध मतों को उन दृष्टिकोणों से उतना ही सत्य समझने में समर्थ होते हैं जितना सत्य हम अपने मत को अपने दृष्टिकोण से मानते हैं। सापेक्षतावाद के इस व्यापक स्वरूप को यदि हम अपने सभी प्रकार के (सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक) मतभेदों के समझने में लगाएँ तो निश्चय ही हम अपने विरोधियों के प्रति अधिक उदार एवं सहनशील हो सकेंगे, और विश्व में स्थायी शांतिमय जीवन की संभावना बढ़ सकेगी।

१—अनेक प्राचीन कवियों और विचारकों ने जगत् और जीवन को दो विरोधी शक्तियों के द्वंद्व या संघर्ष के रूप में देखा है। अमरीका के प्रसिद्ध कवि लौंगफैलो ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'जीवन सूक्त' (Psalm of Life) में इस जगत् को युद्ध क्षेत्र (Field of Battle) तथा जीवन का एक अस्थायी पड़ाव (Bivouac) बताया है। गीता को जो आध्यात्मिक दृष्टि से पढ़ते हैं वे इस जगत् और मानव-जीवन को ही 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र' समझते हैं, और कौरव तथा पांडवों को मनुष्यों की उन दो विरोधी प्रवृत्तियों के प्रतीक मानते हैं जिनके कारण व्यक्तियों, परिवारों और राष्ट्रों में अनेक प्रकार के संघर्ष होते रहते हैं। इन विचारकों की दृष्टि में सारा मानव-इतिहास कौरव-पांडवों या राम-रावण का युद्ध ही है। हाथरस के संत तुलसी साहब ने, जिन्हें कुछ लोग रामायण के रचयिता तुलसीदास जी का अवतार मानते हैं, स्वरचित 'घट रामायण' में दिखाया है कि प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ रामायण के प्रमुख पात्र हमारे घट में व्याप्त हैं और उसमें वर्णित प्रमुख घटनायें हमारे जीवन में होती रहती हैं।

वर्तमान प्राणि विज्ञान के प्रसिद्ध सिद्धान्त (विकासवाद) के अनुसार प्राणि-जगत् में जीवधारियों की अनेक जातियों और उपजातियों के प्रादुर्भाव का आधार वह प्रकृति-प्रेरित स्वाभाविक संघर्ष है जो आदिकाल से स्वात्म रक्षा के लिए प्राणियों में चल रहा है। प्रकृति की इस प्रेरणा का प्रयोजन अयोग्य को मिटाकर योग्यतम के लिए मार्ग प्रशस्त करना है। विकासवाद के इस नियम के आधार पर किन्हीं विचारकों ने मानव-जीवन के उच्चतम विकास के लिए युद्ध संघर्ष को आवश्यक साधन माना है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीत्शे के मत में जगत् और प्रकृति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर उस पर शासन करने में समर्थ होगा। निम्न कोटि के प्राणियों में जो संघर्ष चल रहा है उसका लक्ष्य चूँकि इसी अतिमानव के विकास की ओर है, इसलिए नीत्शे के मत में सबल प्राणियों द्वारा निर्बलों को शोषित किया जाना उचित ही नहीं आवश्यक और श्लाघ्य है। उसका तो यहाँ तक कहना है कि सबलों द्वारा शोषित किये जाने के प्रति निर्बलों को अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये कि इस शोषण के फलस्वरूप वे एक उच्चतर जीवन के अंग बनने में समर्थ हो सकें।

उपरोक्त विचारकों ने जगत् और जीवन दोनों को समान्य मानव की दृष्टि से देख कर ही अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने जगत् में विशेषकर पशु-जगत् में मानव भावनाओं को आरोपित कर जगत् और जीवन में संघर्ष ही देखा है। इसके विपरीत कुछ ऐसे विचारक भी हैं जिन्होंने जीवन को नदी के प्रवाह रूप या लम्बी यात्रा के एक पड़ाव के रूप में देखा है। इसी कोटि के विचारकों में वे भी हैं जो जीवन और जगत् को स्वप्नवत् भ्रम समझते हैं। अविवेकजनित मोह की नींद के कारण यह जगत् नाना प्रकार के दुःख-सुखों का द्वन्द्व रूप भासता है। ज्यों ही हमारा यह मोह दूर हो जाता है हमें जगत् और जीवन का

वास्तविक ज्ञान हो जाता है। जब हमारे अन्दर पूर्ण विवेक जाग्रत हो जाता है तब हम जगत् के द्वन्द्वातीत स्वरूप को देखने में समर्थ हो जाते हैं। अलंकारिक भाषा में यही शिव के तीसरे नेत्र का खुलना है जिसके खुलने से संसार का स्वरूप नितान्त बदल जाता है। वर्तमान विज्ञान की दृष्टि भी कुछ-कुछ माया-मोह-रहित शिव दृष्टि से मिलती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से इस विश्व का जगत् नाम सार्थक है क्योंकि गतिशीलता ही इस विश्व का मुख्य लक्षण है। प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता माक्स बौर्न ने अपनी पुस्तक 'बेचैन विश्व' (Restless Universe) में दिखाया है कि परमाणु के परम गुह्य भाग उसके नाभिक (Nucleus) से लेकर संख्यातीत ब्रह्मांडों पर्यन्त कुछ भी स्थिर नहीं, सब कुछ गतिशील ही है। साथ ही विज्ञान ने यह भी दिखाया है कि विश्व की ये गतियां प्रायः चक्राकार हैं; जगत का प्रवाह रूप हमें तभी तक भासता है जब हमारी समुचित दृष्टि चक्र के आधे भाग को ही देखती है। दृष्टि विस्तार से हम चक्र के दूसरे भाग को जब देखने में समर्थ होते हैं तो हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत पूर्ण हो जाता है। भारतीय विचारधारा इस वैज्ञानिक विचारधारा से मेल खाती है क्योंकि दिन-रात के चक्र की नाई सृष्टि की रचना और प्रलय का तथा जीवन और मृत्यु के चक्रों की कल्पना भारतीय मनीषियों ने आदिकाल से की है। सापेक्षतावाद के अनुसार तो असीम और अव्यक्त का ससीम और व्यक्त हो जाना ही रचना है, और रचना के साथ आई ससीमता फैले हुए विश्व का गोल चक्राकार हो जाना मात्र है।

विज्ञान के अनुसार अधिकांश चक्राकार गतियों को निरन्तर संचालन के लिए आवश्यक शक्ति का साधन प्रायः उस चक्र के बाहर ही होता है। हमारे घरों में प्रयुक्त वैद्युत प्रवाह (बिजली की करेंट) भी चक्राकार है। इस चक्राकार प्रवाह का संचालन एक दूसरे ताप-इंजन या जलप्रवाह द्वारा संचालित मोटर से होता है। नदियों के प्रवाह का निरंतर संचालन सौर शक्ति से होता है। वाह्य शक्ति की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि चक्र के एक भाग (प्रत्यक्ष प्रवाह) में तो द्रव्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति काम करती है जिसके फलस्वरूप वह विषमता से समता की ओर स्वयमेव और अनायास चला जाता है। परन्तु चक्र के दूसरे भी भाग में द्रव्य स्वयमेव समता से विषमता की ओर नहीं जा सकता और वाह्य शक्ति द्वारा विवश किया जाता है। सशक्त और अशक्त, जड़ और चेतन की परीक्षा इसी से होती है कि सशक्त ही समता से विषमता की ओर द्रव्य को ले जा सकता है। संस्कृत भाषा के इंद्र और ईश्वर शब्द इसी भाव को प्रगट करते हैं। सूर्य को इसीलिए इन्द्र कहा गया है कि वह जल और जीवन चक्रों में उल्टी दिशा में द्रव्य को प्रवाहित करने की सामर्थ्य रखता है। जीवित शरीरों में, विशेषकर पौधों में, हम घृणित मल-मूत्र को सुन्दर फल-फूल के रूप में परिणत होते देखते हैं। यह परिवर्तन द्रव्य के स्वभाव के विरुद्ध है। इस प्रकार इन्द्र या ईश्वर उस जीवनी या आत्मशक्ति के वाची हैं जो द्रव्य जगत की स्वाभाविक धारा को उलटने में समर्थ हैं। कबीर की उलटी धारा का संकेत भी आत्मा की इस प्रवृत्ति की ओर है।

जगत और जीवन दोनों द्रव्य और आत्मार्थ सम्मिलित प्रयास का फल है। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। द्रव्य का स्वभाव पूर्ण दुर्व्यवस्था की ओर जाने का होते हुए भी उसमें सुव्यवस्थित (सुन्दर) रूप में आने की क्षमता भी है और एक बार उस सुन्दर अवस्था में आने पर उसी में बने रहने का जाड्य का गुण भी उसमें है। इस प्रकार आत्मा का स्वभाव सौन्दर्य की रचना है। मानव-जीवन की विशेषता यह है कि जगत और जीवन के रहस्य को समझ कर वह तदनुसार अपने जीवन का संस्कार करता है। विचार के अनुसार आचार की मर्यादाओं को निश्चित करना ही जीवन के संस्कार का मुख्य ध्येय है। जीवन और जगत संबंधी जिन मौलिक विचारों के अनुसार हम अपने जीवन का संस्कार करने को जिन अनेक प्रकार की आचार संबंधी मर्यादाओं को स्वीकार करते हैं वे हमारे जीवन का दर्शन या हमारी संस्कृति हैं। यदि इन मौलिक विचार

रूपी संस्कृति को हम अपने जीवन की आत्मा कहें तो हमारी विभिन्न आचार संबंधी मर्यादाएं उसका शरीर हैं। भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जो संस्कृतियां अपनाई गई हैं उन्हें हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं। हमारे इस विभाजन का आधार उन संस्कृतियों का एक मौलिक भेद है जो उन संस्कृतियों के जीवन संबंधी दर्शनों का भेद है।

इन संस्कृतियों को हम अध्यात्मवादी (Spiritualistic) और भौतिकवादी (Materialistic) कह सकते हैं। अध्यात्मवादी संस्कृति का लक्ष आत्मोन्नति की ओर होता है और इसीलिए वह शरीर तथा भौतिक जगत को केवल साधन रूप में स्वीकार करती है। चूँकि आत्मा का मुख्य लक्षरण संयम या नियंत्रण है, इसलिए इस संस्कृति ने शरीर को भोग की ओर जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को संयमित करने पर विशेष बल दिया। कभी कभी इसका अतिक्रमण भी हुआ है, परन्तु ये उदाहरण अपवाद रूप ही हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य परम आत्मा की प्राप्ति रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो भी विधि-विधान निश्चित हैं उन सबमें इसी मौलिक भाव को विविध रूप में दिखाया गया है।

भौतिकवादी संस्कृति का लक्ष्य शरीर और भौतिक जगत तक ही सीमित रहता है। इसलिए अपने शारीरिक जीवन को अधिक से अधिक सुखी बनाना ही इस संस्कृति का मुख्य ध्येय होता है क्योंकि हमारे शरीर एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। इसलिए संस्कृति के अनुसार वही आचार की मर्यादाएं मान्य होंगी जिनसे वैयक्तिक सुखोपभोग में सबसे अधिक सहायता मिले। इस दृष्टि से उस संस्कृति को व्यक्ति-प्रधान और दूसरी को समष्टि प्रधान भी कह सकते हैं। भौतिकवादी संस्कृति युद्ध का समर्थन कभी न करेगी।

मानव इतिहास का यदि गम्भीरता से अध्ययन किया जायतो यही निष्कर्ष निकलेगा कि वह इन दो संस्कृतियों का संघर्ष है। यदि इन्हें हम दैवी (अध्यात्मवाद को) और आसुरी (भौतिकवादी को) कहें तो हमारा सारा इतिहास देवासुर संग्राम का रूप ले लेता है और हम अनायास ही इन महाभारतों की अनिवार्यता का रहस्य समझने में समर्थ हो सकते हैं। आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को समझने में भी हमें इस विचार से विशेष सहायता मिल सकती है क्योंकि संघर्ष या युद्ध तभी होगा जब कि दो व्यक्ति या राष्ट्रों में कम से कम एक की आसुरी वृत्ति होगी। दोनों की दैवी वृत्ति होने से वे एक दूसरे के दृष्टिकोण तथा हिताहित को समझने में समर्थ होंगे। दैवी वृत्ति का क्या स्वरूप है इसे एक अलंकार के द्वारा शतपथ ब्राह्मण में समझाया है। दैवी और आसुरी वृत्तियों के व्यक्तियों को क्रमशः अदिति और दिति की संतान कहा है, और उनकी पहचान यह बताई है कि दैवी वृत्ति वाले एक दूसरे के मुख में ग्रास देते और आसुरी वृत्ति वाले असुर अपने अपने मुख में ग्रास देते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जायगा कि दैवी की दृष्टि पारमार्थिक होती है और वे आचार संबंधी ऐसी मर्यादाओं को ही अपनाते हैं जिनसे सब का स्थायी हित हो। वे अपने प्रतिपक्षी और प्रतिद्वन्दियों के दृष्टिकोण को धैर्य के साथ समझ कर अपना मत निश्चित करते हैं। इसके विपरीत असुरों की दृष्टि स्वार्थपूर्ण और संकुचित होती है, वे अपने प्रतिपक्षियों के दृष्टिकोण को समझने की क्षमता नहीं रखते। वे प्रायः हठी, दुराग्रही और क्रूर होते हैं। इसीलिये युद्धों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि करने में संकोच नहीं कर सकते।

शतपथ ब्राह्मण के दिति और अदिति शब्द एक गंभीर दार्शनिक विचार को व्यक्त करते हैं। यदि दिति का नयक्तिक अर्थ सखंडता, विच्छिन्नता, एकदेशीयता, परमाणुरूपता आदि समान भावों के प्रकाशक अर्थ किये जायें तो जो संस्कृति दिति मूलक स्वार्थी भावना पर प्रतिष्ठित होगी वह दैत्य या आसुरी संस्कृति कहलाएगी। इसी प्रकार अदिति का अर्थ यदि अखंडता, विच्छिन्नता, सर्व व्यापकता आदि अर्थ किए जायें तो अदिति की पारमार्थिक भावना पर प्रतिष्ठित संस्कृति आदित्य दैवी

[शेष पृष्ठ १२ पर]

तापान्तर युग्म—एक विकिरण परिचायक

• विजयबहादुर सिंह

परिचय

विद्युत-चुम्बकीय सिद्धान्त के अनुसार **प्रकाश विद्युत और चुम्बकीय क्षेत्र से मिलकर बना हुआ है**। इन दोनों क्षेत्रों एवं प्रकाश के गमन की दिशायें परस्पर लम्बवत् होती हैं। ये तरंगें निर्वात में विकिरण द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलती हैं। उदाहरणार्थ, सूर्य से आने वाली **प्रकाश की किरणें** विकिरण द्वारा पृथ्वी तक पहुँचती हैं। **प्रकाश ऊर्जा का एक रूप है**। इस प्रकार विकिरण द्वारा प्राप्त होने वाली ऊर्जा को विकीर्ण ऊर्जा (radiant energy) कहते हैं। संसार के सभी प्राणियों का जीवन सूर्य से प्राप्त विकीर्णऊर्जा पर आधारित है। विकीर्ण ऊर्जा की माप करने वाले यंत्र को **विकिरण परिचायक** (radiation detector) कहते हैं। प्रकाश का विद्युत-चुम्बकीय वर्णक्रम रेडियो तरंग से लेकर कॉस्मिक किरणों तक फैला हुआ है। इस विस्तृत वर्णक्रम में भिन्न-भिन्न तरंग दैर्घ्यों की विशेषताओं के आधार पर विकिरण परिचायक का चुनाव इस प्रकार से किया जाता है कि किस तरंग दैर्घ्य की विकीर्ण-ऊर्जा को नापने के लिए कौन सा विकिरण परिचायक अधिक सुग्राही होगा।

विकिरण परिचायक के प्रकार

विकिरण-परिचायक दो प्रकार के होते हैं।—

१. तापीय परिचायक (Thermal detector)

२. प्रकाशीय परिचायक (Photon-detector)

ये परिचायक क्रमशः अवरक्त और दृश्य क्षेत्रों की विकीर्ण ऊर्जा को नापने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। यहाँ पर हम केवल प्रथम प्रकार में तापान्तर-युग्म (Thermo-couple) का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

सिद्धान्त एवं कार्यविधि

तापान्तर-युग्म ताप विद्युत प्रभाव के सिद्धान्त पर आधारित है। इस प्रभाव को सर्वप्रथम सीबेक ने १८२१ ई० में देखा था। कोई भी दो पृथक-पृथक धातु की छड़ों से बने हुए परिपथ में ताप वैद्युत सन्धि यदि अलग अलग ताप पर हो तो परिपथ में जुड़े हुये धारामापी में एक विक्षेप होता है। होता यह है, कि परिपथ में एक विद्युत वाहक बल उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण धारामापी में धारा प्रवाहित होने से विक्षेप होता है। **इस प्रकार बने परिपथ को तापान्तर युग्म कहते हैं।**

धारा का उत्पन्न होना आधुनिक-इलेक्ट्रान सिद्धान्तों के आधार पर समझाया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार धातुओं में इलेक्ट्रान गैस होती है, जिसके कारण इलेक्ट्रान दाब उत्पन्न हो जाता है। यह दाब हर धातु के लिए निश्चित होता है, और ताप पर निर्भर करता है। तापान्तर युग्म की दोनों धातुओं में इलेक्ट्रान दाब भिन्न होने के कारण इलेक्ट्रान ताप विद्युत सन्धि से होकर एक धातु से दूसरी धातु की ओर गति करते हैं। गति की दिशा उच्च इलेक्ट्रान दाब से न्यून इलेक्ट्रान दाब की ओर होती है। दोनों ताप वैद्युत सन्धि का ताप समान रखने से परिणामी धारा शून्य होती है, इसलिए एक ताप वैद्युत सन्धि को दूसरे की अपेक्षा अधिक ताप पर रखने से धारा उत्पन्न की जा सकती है क्यों कि इस दशा में किसी एक तापवैद्युत सन्धि के गरम हो जाने के कारण दूसरे तापवैद्युत सन्धि की अपेक्षा इलेक्ट्रान दाब अधिक हो जाता है। दोनों तापवैद्युत सन्धि से बहने वाली धारा एक दूसरे के समान नहीं होतीं। परिणामी धारा कभी भी

शून्य नहीं होगी।

तापान्तर युग्म में उत्पन्न विद्युतवाहक बल और ताप-वैद्युत सन्धि के तापों के बीच निम्नलिखित सम्बन्ध होता है :

$$E = \alpha t + \beta t^2$$

जहाँ α और β किसी धातु के लिए निश्चित नियतांक हैं।

T_h और T_c गर्म और ठन्डे तापवैद्युत सन्धि के ताप हैं। ताप-वैद्युत शक्ति—ताप में इकाई वृद्धि होने से उत्पन्न विद्युत वाहक बल को ताप वैद्युत-शक्ति (Thermoelectric power), Q_o, कहते हैं।

तापान्तर-युग्म की सुग्राह्यता

गर्म ताप वैद्युत सन्धि में W वाट की विकिरण शक्ति के कारण ताप की वृद्धि, $\triangle T$ होती है।

$$\triangle T = W.Z$$

जहाँ Z= ऊष्मा प्रतिरोध है

यदि Q तापवैद्युत शक्ति हो तो ताप में $\triangle T$ वृद्धि होने से उत्पन्न विद्युत वाहक बल

$$V = Q.\triangle T$$
$$= Q.Wz$$

तापान्तर युग्म की सुग्राह्यता

$$= \frac{V \text{ (माइक्रोवोल्ट)}}{W \text{ (माइक्रोवोल्ट)}} = Q.Z$$

यदि तापान्तर युग्म में गर्म ताप वैद्युत सन्धि को श्याम कर दिया जाय तो किसी भी तरंग दैर्ध्य की विकीर्ण ऊर्जा नापने के लिए काम में लाया जा सकता है। इस ताप वैद्युतसन्धि को निर्वात में बन्द कर देने से विकिरण द्वारा ऊष्मा की हानि कम होती है। विकीर्ण-ऊर्जा के सुग्राही क्षेत्रफल पर पड़ने से ताप में वृद्धि होती है और उसका विद्युतीय-ऊर्जा में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार तापान्तर युग्म एक परतान्त्रिक का काम करता है। यह एक अवरणात्मक परिचायक (non-selective detector) है। इसके द्वारा विकीर्ण ऊर्जा को विद्युतीय ऊर्जा में परिवर्तित करने की क्षमता का मान सर्वप्रथम रैले ने १८९२ ई० में प्राप्त किया था।

तपान्तर-युग्म में उत्पन्न राव

जोहान्सन और कार्टराइट ने तापान्तर-युग्म (धारामापी के साथ) की सुग्राह्यता का अधिकतम मान प्राप्त करने की दशा ज्ञात की। अधिकतम सुग्राह्यता परिचायक में पाये जाने वाले राव के कारण सीमित हो जाती है। भौतिक राशि, जैसे धारा विभव, ताप आदि में अनियमित उतार-चढाव के कारण राव (noise) उत्पन्न होता है। **राव में आवृति और शक्ति के वितरण को शक्ति वर्णक्रम कहते हैं।**

तापान्तर-युग्म में दो प्रकार के राव होते हैं :—

१—**ताप-राव** (Temperature noise)—विकिरण स्रोत की उत्सर्जकता परिवर्तनीय होने के कारण फोटान समान दर से नहीं निकलते हैं जिससे विकिरण शक्ति का मान स्थिर नहीं रहता है। परिणामतः शोषित-ऊर्जा दोलायमान ताप उत्पन्न करती है। **इस राव को ताप या फोटान-राव कहते हैं।**

२—**जानसन-राव**—किसी भी विद्युतीय प्रतिरोध में इलेक्ट्रान की अनियमित गति के करण एक राव विभव उत्पन्न हो जाता है जिसको जानसन-राव कहते हैं। जानसन-राव का मान ताप तथा प्रतिरोध और विकिरण शक्ति की आवृति पर निर्भर करता है।

शक्ति वर्णक्रम को निम्नांकित व्यंजक द्वारा प्रदर्शित किया गया है :—

$$We(f) = 4KTR \triangle f$$

जहाँ $We(f)$ = राव का शक्ति वर्णक्रम

K = बोल्ट्जमैन का नियतांक

R = तापान्तर युग्म में कुल प्रतिरोध

$\triangle f$ = विकिरण शक्ति की बैन्ड चौड़ाई

ऊष्मा और विद्युत में समानता रखते हुये फैलगेट ने तापान्तर युग्म का विद्युतीय तुल्य परिपथ ज्ञात किया। इनके अनुसार अवशोषित ऊष्मा का प्रभाव वही होता है

जो एक धारा उत्पादक स्रोत के कारण होता है। ऊष्मा द्वारा जिस प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है उसे **गति प्रतिरोध कहते हैं।** ऊष्मा को सुरक्षित रखने के लिये K को ऊष्मा ग्राहिता से तुलना की जा सकती है। कैंलगेट ने तापान्तर युग्म के ताप-राव का मान गति प्रतिरोध में पाये जाने वाले जानसन-राव के तुल्य बताया है :

अतः $WT(f) = 4\,KTR\,\Delta f$

$WT(f)$ = ताप-राव शक्ति वर्णक्रम

तापान्तर-युग्म द्वारा मापी जाने वाली न्यूनतम शक्ति उसमें पायी जाने वाली कुल राव शक्ति के बराबर अवश्य होनी चाहिए। राव तुल्य शक्ति विकिरण शक्ति की वह मात्रा है जो परिचायक के सुग्राही क्षेत्रफल पर आपातित करने से राव विभव के बराबर मूल मध्यमान वर्ग (rms) विभव का संकेत उत्पन्न करेगी। अर्थात सिग्नल और राव का अनुपात इकाई हो जायेगा।

विकिरण परिचायक की परिचायकता (detectivity) राव तुल्यांकी शक्ति (noise equivalent power) के व्युत्क्रम होती है।

$Pn = 1/D$ जहां Pn = राव तुल्य शक्ति

D = परिचायकता

जोन्स ने तापान्तरयुग्म में ताप व जानसन राव के कारण स्थापित परिचायकता की सीमा के लिए निम्नलिखित व्यंजक प्राप्त किया

$$Pn = \frac{(KT^2cA)^{1/2}}{\epsilon\zeta}\left[1 + \left(\frac{(K_1P_1)^{1/2} + (K_2P_2)^{1/2}}{4Q^2T}\right) \times \left(\frac{1+kA}{n(\sigma_1+n)}\right)^{1/2}\right]$$

जहाँ पर K = बोल्ट्जमैन का नियतांक

T = ताप

C = ऊष्माग्राहिता

A = क्षेत्रफल

ϵ = उत्सर्जकता

ζ = समय नियतांक

Q = ताप विद्युत शक्ति

K_1, K_2 = ऊष्मा चालकता

P_1, P_2 = विशिष्ट प्रतिरोध

$$\sigma_1 = \frac{R_1a_1}{e_1}, \quad \sigma_2 = \frac{R_2a_2}{e_2}$$

kA = विकिरण द्वारा निर्वात में ऊष्मा की हानि

n = ताप विद्युत सन्धि की संख्या

ताँबे और कान्सटेन्टन को मिलाकर बनाये गये तापान्तर युग्म की परिचायकता उपर्युक्त समीकरण में सभी नियतांकों का मान स्थापित करने से, ३·४५ × १०$^{-12}$ वाट है।

उपयोग :

यंत्र का अधिकतम उपयोग विकिरणमिति (Radiometry) में होता है। सूक्ष्म विकिरणमापी ऊष्मा नापने का अत्यन्त सुग्राही यंत्र तापान्तर युग्म का बना हुआ होता है। अवरक्त तरंग क्षेत्र तथा सूर्य से आने वाले विकिरण ऊष्मा की माप तापान्तर-युग्म द्वारा अधिक सुग्राहकता पूर्वक हो सकती है।

२०००° से अधिक और परम शून्य तक के ताप की माप तापान्तर युग्म द्वारा की जा सकती है। तापान्तर युग्म तापविद्युत सिद्धान्त पर विद्युतीय शक्ति का उत्पादन करने के लिये उपयोगी है। इस विधि द्वारा विद्युत शक्ति उत्पन्न करने में किसी प्राथमिक चालक (predriver) मशीन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। तापान्तर युग्म को श्रेणीबद्ध करके शक्ति का प्रशीतक बनाया जाता है।

तापान्तर-युग्म एक आवश्यक यंत्र है। एक सस्ते और अच्छे यंत्र के कारण यह विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में संतोषजनक एवं उपयोगी सिद्ध हुआ है।

● ●

भारत में भूविज्ञान के अध्ययन का क्रमिक विकास

• ओम प्रकाश जोशी

भारत में भूविज्ञान का अध्ययन सर्वप्रथम एक गौण विषय के रूप में प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रास में आरंभ हुआ। उस समय भूविज्ञान के लिए कोई पृथक् विभाग नहीं था और यह विषय जीव विज्ञान के साथ पढ़ाया जाता था। भारत का सबसे पहला भूविज्ञान का स्नातक प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता से सन् १८८६ में उत्तीर्ण हुआ था जबकि प्रेसीडेंसी कालेज मद्रास का पहला स्नातक सन् १८६१ में उत्तीर्ण हुआ।

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि भारत में भूविज्ञान का अध्ययन आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। इन ८० वर्षों में भी विज्ञान की इस शाखा के प्रति विद्यार्थियों की पर्याप्त रुचि प्रतीत नहीं होती। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय पूर्व तक भू-विज्ञान को लघु विज्ञान माना जाता था एवं विश्वविद्यालयों में में इसे भौतिक-शास्त्र, आदि विषयों के समकक्ष नहीं रखा जाता था। भारत में भूविज्ञान विषय के आरंभ होने के ५५ वर्ष पश्चात् सन् १६४५ में केवल १५ ही महाविद्यालय ऐसे थे जहाँ से कुल ५० स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थी प्रतिवर्ष उत्तीर्ण होते थे। भारतीत भू-विज्ञान सर्वेक्षण संस्थान के विकास को देखते हुए यह अनुभव किया जाने लगा कि भू-विज्ञान के विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होनी चहिए और साथ ही इस विषय के शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम में भी सुधार किया जाना चाहिये। राजनैतिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों और प्रादेशिक शिक्षा योजनाओं में सुधार होने से अब अधिक विश्वविद्यालयों में भूविज्ञान आरंभ किया गया है। जैसे जैसे अनुसन्धान एवं शोध का क्षेत्र बढ़ता गया अधिक से अधिक विद्यार्थी भूविज्ञान विषय लेने लगे। सन् १६६० से भारत में भूवैज्ञानिक शिक्षा फैल रही है। इस दशाब्दि तक भी विश्वद्यिालयों में भौमिकी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भूआकृति विज्ञान, शैल विज्ञान, प्रकाशकीय एवं रासायनिक भूविज्ञान, खनिज विज्ञान, ऐतिहासिक एवं क्षेत्रीय भू विज्ञान, संरचनात्मक भूविज्ञान एवं जीवाश्मकी स्नातक कक्षाओं में पढ़ाए जाते हैं। स्नातकोत्तर कक्षाओं में ये ही विषय और अधिक विस्तृत रूप में पढ़ाए जाते हैं। विवरणात्मक अध्ययन करने से विद्यार्थियों में अनुसंधान क्षमता बढ़ती है, किन्तु जो पुस्तकें छपकर विदेशों से आती हैं उनके प्राप्त होने में पर्याप्त समय लग जाता है अतः हम अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा ५-१० वर्ष पीछे रह जाते हैं।

अब नये दशक के प्रारंभ से ही स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिये नयी नयी शाखाएं विशेषतः अनुप्रयुक्त भूवैज्ञानिक अध्ययन के लिए खुल रही हैं। स्तरित शैल विज्ञान, तलछट विज्ञान, ऊष्मागतिक का शैलविज्ञान में अनुप्रयोग, भूरसायन पादपाश्म विज्ञान, सूक्ष्म जीवाश्मिकी, विवर्तनिकी, नाभिकीय भूविज्ञान, जलभूविज्ञान आदि नयी शाखाओं द्वारा भूविज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। भूविज्ञानिक शिक्षा का यह ऊँचा उठता हुआ स्तर परिश्रमी, योग्य और कुशाग्र बुद्धिवाले विद्यार्थियों के साधनापूर्ण योगदान की अपेक्षा रखता है।

यह पाठ्यक्रम अपने आप में अत्यन्त लम्बा है और प्रतिदिन व्यापक शोधकार्य के फलस्वरूप नूतन शाखाएँ एवं तकनीकें उपलब्ध हो रही हैं। इन परिस्थितियों में हमारे शिक्षाशास्त्री पाठ्यक्रम की ओर अधिक विस्तृत नहीं करना चाहेंगे यद्यपि नयी शाखाओं में अनुसंधान कार्य

सुगमतापूर्वक हो सकेगा।

किसी भी विभाग में वार्षिक भर्ती, पाठ्यक्रम, प्रशिक्षित विद्यार्थी और उनके द्वारा किया जाने वाला कार्य उस विभाग की उन्नति और विस्तार को प्रदर्शित करता है। यद्यपि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विद्यार्थियों के प्रवेश और रोजगार के सांख्यिकीय आंकडे समय समय पर प्रकाशित करता रहता है फिर भी वार्षिक पुनर्विचार गोष्ठियाँ हमारे देश में प्रायः नहीं होतीं अतः हम किसी विशेष विभाग के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

इसी प्रकरण में, भारत में भूवैज्ञानिक अध्ययन में सन् १९४५ में डॉ० वेस्ट द्वारा जो कि भारतीय भूविज्ञान अध्ययन संस्थान में भूविज्ञान अधीक्षक थे, भारतीय विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली भू-विज्ञानीय शिक्षा का अवलोकन किया और अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये एवं अनुशंसा की। उसी वर्ष भारतीय शासन द्वारा भूवैज्ञानिक अध्ययन समिति की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य भारत में भूविज्ञान के अध्ययन हेतु विश्वविद्यालयों का निरीक्षण करना और उन्हें आर्थिक सहायता दिए जाने एवं विकास हेतु अनुशंसा करना था। १९५२ में भारतीय खनिकर्म, भूविज्ञान धातुकर्म संस्थान द्वारा आयोजित परिसंवाद में डा० कृष्णन्, डा० वाडिया, डा० घोष, डा० शर्मा आदि भूवैज्ञानिकों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में पढाए जाने वाले पाठ्यक्रम की आलोचना की एवं उसमें आवश्यक सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत किए थे। इसी संस्थान द्वारा परिसंवाद के तत्काल पश्चात् क्रियान्वय समिति की स्थापना की गई और उसने भी अपने प्रतिवेदन में भूविज्ञान के पाठ्यक्रम में सुधार हेतु अपने सुझाव दिये। १९५७ में भारतीय खनिकर्म, भूविज्ञान एवं धातुकर्म संस्थान में अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० सिन्हा ने कई महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। १९६१ में वि०वि० अनुदान आयोग के आमंत्रण पर डा० जे० सी० राय ने भारतीय विश्वविद्यालयों में भू-वैज्ञानिक शिक्षा का मूल्यांकन करते हुए मूल्यवान सुझाव एवं अनुशंसाएँ प्रस्तुत कीं। इसके पश्चात् यद्यपि महत्वपूर्ण प्रतिवेदन नहीं पाये जाते हैं फिर भी १९६५ में श्री राजगोपालास्वामी द्वारा प्रस्तुत सुझाव विचारणीय हैं।

उपर्युक्त समितियों एवं विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मुख्य सुझाव एवं अनुशंसाएं साधारण रूप से निम्न प्रारूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं :—

(१) पाठ्यपुस्तकों को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाय एवं उनका विकास किया जाय। (२) विद्यार्थियों को आधारभूत महत्व की विज्ञान-शाखाएं, जैसे कि रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, आदि का पर्याप्त एवं ठोस ज्ञान होने पर ही, उन्हें भूविज्ञान की शिक्षा दी जाय। (३) स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए क्षेत्र-प्रशिक्षण का समय बढ़ाया जाय और उसके स्तर को अधिक उन्नत किया जाय। (४) स्नातक कक्षाओं में विद्यार्थियों को उच्चशिला विज्ञान, जीवाश्म-विज्ञान, खनिज विज्ञान, आर्थिक भूविज्ञान, संरचनात्मक एवं स्तरित शैल विज्ञान का अनिवार्य अध्ययन करवाया जाना चाहिए। (५) भारतीय भूविज्ञान सर्वेक्षण संस्थान व्यापक स्तर पर विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियों को क्षेत्र-प्रशिक्षण एवं अन्य अनुसंधानात्मक कार्यों में सहयोग प्रदान करे। (६) भारतीय भूसर्वेक्षण संस्थान के अन्तर्गत एक खनि अनुसंधानशाला स्थापित की जानी चाहिए जो उच्च और अनुप्रयुक्त अनुसंधान कार्यों हेतु विद्यार्थियों को प्रेरित करे। (७) प्राध्यापकों एवं प्रयोगशालाओं की संख्या में वृद्धि की जाय। नये यंत्रों का प्रयोग किया जाय एवं प्राध्यापकों को नवीन विषयों का पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाय। (८) अन्य विषयों के समान ही भूविज्ञान का परिचय छात्रों को उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में कराया जाना चाहिए।

इन सुझावों में से कुछ का आंशिक रूप से क्रियान्वयन किया जा चुका है किन्तु अभी भी भूवैज्ञानिक शिक्षा में पर्याप्त सुधार एवं विकास अपेक्षित हैं।

● ●

संक्षिप्त जीवन परिचय माला

मृदा विज्ञान के उन्नायक डा० काँवर

● डा० देवेन्द्र प्रसाद शर्मा

संक्षिप्त जीवन वृत्त

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मृदा रसायनज्ञ डा० जसवन्त सिंह काँवर (J. S. Kanwar) का जन्म १० दिसम्बर, सन् १९२२ को पंजाब में होशियारपुर जिले (अब रूपड़) के खेड़ा कालमोट ग्राम में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की ही प्राथमिक पाठशाला में प्रारम्भ हुई। प्राइमरी स्कूल में हीं इन्होंने योग्यता-छात्रवृति अर्जित की। १९३६ ई० में इन्होंने मिडिल स्कूल को परीक्षा उत्तीर्ण की और पुनः छात्रवृति की सूची में आये। १९४० ई० में जब हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की तो उसमें भी अपनी विशेष योग्यता से छात्रवृत्ति के भागी बने। सन् १९४२ ई० में इन्टर की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय के कृषि संकाय में प्रवेश किया और वहाँ भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। किन्हीं कारणों से कई वर्षों तक आपका अध्ययन स्थगित रहा। १९५० ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से ये पुनः एम० एस० सी० (कृषि रसायन) की परीक्षा में सम्मिलित हुये और कृषि संकाय में अग्रणी रहे। फिर अपनी प्रखर बुद्धि के कारण इन्हें आस्ट्रेलिया जाने का अवसर प्राप्त हुआ, जहाँ ये वेट एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीच्यूट, एडिलेड में रिसर्च फेलो के रूप में शोध कार्य में प्रयत्नशील रहे और शीघ्र ही १९५३ में पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आस्ट्रेलिया से लौटने से पश्चात् सन् १९५३-५६ तक वे राजकीय कृषि महाविद्यालय, लायलपुर, में सहायक प्रोफेसर के पद पर रहते हुये शिक्षण कार्य करते रहे। कुशाग्र बुद्धि, लगनशीलता तथा कठिन परिश्रम के कारण पंजाब राज्य सरकार ने इनकी नियुक्ति मृदा विज्ञान के प्रोफेसर तथा कृषि रसायनज्ञ पदों पर कर दी और ये १९५६-६२ तक इन्हीं पदों पर कार्य करते रहे। इसके पश्चात् १९६३ ई० में इनकी नियुक्ति पंजाब विश्वविद्यालय, लुधियाना, में रिसर्च निदेशक पद पर हुई। साथ ही साथ इसी विश्वविद्यालय के हिसार कैम्पस में डीन का भी अतिरिक्त कर्य सम्हालते रहे। इन बोझिल पदों पर कार्य करते हुये भी इनका झुकाव शोध-कार्यों की ओर कम न हुआ और ये १९६५ तक मृदा विज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य करते रहे। इनके असाधारण शोधकार्यों का प्रकाशन भारत तथा विदेशों की अनुसंधान पत्रिकाओं में बराबर होता रहा। अब ये मृदा विज्ञान क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक हैं। अब तक इनके १६० से अधिक शोध निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। इनका अधिकांश शोध कार्य सूक्ष्म मात्रिक तत्वों तथा क्षारीय एवं लवणीय मिट्टियों के सम्बन्ध में है।

इनके कार्यों से मृदा विज्ञान क्षेत्र में तरुण मृदा वैज्ञानिकों को न केवल दिशा प्राप्त हुई है वरन् इनका प्रोत्साहन भी मिलता रहा है । इनके शोधों से कृषि के क्षेत्र में मिट्टी तथा पौधों के पारस्परिक सम्बन्धों को समझने में सहायता मिली है । इन्होंने सर्वजन हिताय सूक्ष्ममात्रिक तत्वों से सम्बन्धित भारतीय योगदान को पुस्तकाकार किया है जिसका नाम "माइक्रोन्यूट्रियन्ट रिसर्च इन इण्डिया" (Micronutient Research in India) है।

अपने शोध कार्यों तथा मृदा विज्ञान से क्षेत्र में असाधारण योग्यता के कारण ही सन् १९६५ में डा० काँवर की नियुक्ति भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में सहायक निदेशक (अनुसंधान) पद पर हुई, जिस पर वे अब भी कार्य कर रहे हैं।

सदस्यता :—डा० काँवर अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण कई वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य भी रहे हैं। ये सन् १९६४-६८ तथा १९६८-७० तक 'इन्टरनेशनल सोसाइटी आफ स्वायल सांइस' के उपाध्यक्ष रहे। इन्होंने 'स्वायल सोसाइटी ऑफ इण्डिया' तथा 'इण्डियन सोसाइटी ऑफ एग्रोनामी' के वाइस प्रेसीडेन्ट तथा सलाहकार के रूप में भी कार्य सम्पन्न किया है। इन्होंने 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' के 'स्वायल सांइस कमेटी' तथा अमेरिका की 'सिग्मा संस्था' (Sima XI) के क्रमशः अध्यक्ष एवं सदस्य के रूप में कार्य किया है। ये 'यूनेस्को एडवाइजरी कमेटी नेचुरल रिसोर्सेज' के भी सदस्य रहे हैं।

सफलताओं एवं पुरस्कारों का ताँता

इन्हें अल्प समय में ही आशातीत सफलतायें मिली हैं। रचनात्मक एवं असाधारण शोधकार्यों के लिये इन्हें समय समय पर पदकों तथा पुरस्कारों से अलंकृत किया गया है। कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान में नई जागरूकता लाने के करण इन्हें कृषि विज्ञान का सर्वोच्च पुरस्कार **रफी अहमद किदवई स्मारक पुरस्कार** भी प्राप्त हुआ है। इस सम्मान ने इन्हें सफलता के शिखर पर आसीन करा दिया। ९ वीं अन्तर्राष्ट्रीय स्वायल सांइस काँग्रेस के लिए भारतीय प्रतिनिधि चुने गये। एक वर्ष पूर्व यूनेस्को एडवाजरी कमेटी में नेचुलर रिसोर्सेज के सहायक अध्यक्ष भी चुने गये। मृदा वैज्ञानिक होने के नाते इनके समक्ष कृषि योग्य नई भूमि एक विकट समस्या के रूप में उपस्थित हुई। इस समस्या के समाधान के लिये इन्हें उस समय 'अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम आन साल्ट एफेक्टेड स्वायल' तथा 'एरिड लैण्ड रिजोल्यूसन कांफ्रेंस' क्रमशः उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष चुना गया। १९७०-७१ के लिये आपको 'इन्डियन सोसाइटी आफ स्वायल सांइस' का अध्यक्ष चुना गया है। यह कम गौरवशाली पद नहीं है।

विदेश भ्रमण

डा० काँवर ने अपनी सभी विदेश यात्रायें विशेष आमंत्रणों पर की हैं। एक यात्रा के बाद संस्थाओं ने जिस महत्व से इन्हें बुलाया उससे दूसरी यात्रा का मार्ग स्वयं ही प्रशस्त हुआ। विदेश यात्राओं का प्रारम्भ कोलम्बो योजना के अन्तर्गत सन् १९५१ में आस्ट्रेलिया प्रवास से हुआ। वहाँ पर ये दो वर्ष तक रहे। वहाँ के कार्यों तथा उपलब्धियों का परिणाम यह हुआ कि सन् १९५७ में ही टी० सी० एम० (यू० यस० ए० आई० डी०) में आप अमेरिका तथा इंगलैण्ड गये। इस भ्रमण की ऐसी धाक जमी कि राकफेलर फाउन्डेशन ने इन्हें पुनः सन् १९६२ में अमेरिका बुलाया। वहाँ से ये इंग्लैण्ड, कनाडा, हालैण्ड तथा जापान गये। विशेष उल्लेखनीय यह है कि न केवल एक विचारधारा के देशों ने इनकी क्षमता का अनुभव किया वरन १९६४ ई० में रूस ने भी इन्हे एफ० ए० ओ० के तत्वावधान में आमंत्रित किया। राकफेलर फाउंडेशन ने पुनः इन्हें जापान, फिलिप्पाइन तथा अन्य दक्षिण-पूर्वी देशों में भ्रमण करने आमंत्रण दिया। अभी दो वर्ष ही बीते थे कि भारत सरकार ने 'वाटर फार पीस' सम्मेलन का प्रतिनिधित्व करने के लिये इन्हें चुना। १९६७ ई० में ये अमेरिका गये। इस बार ये 'साइट्रस सिम्पोजियम' के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में गये। इसी क्रम में इन्होंने अमेरिका, स्वीडन, इंग्लैण्ड,

मेक्सिको तथा आयरलैन्ड का भ्रमण किया। सन् १९६८ में ९ वीं अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम जो आस्ट्रेलिया में होनी थी उसमें भी इनको भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेता बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

सन् १९६९ में 'साल्ट एफेक्टेड स्वायल' सिम्पोजियम तथा 'वर्ल्ड स्वायल मैप सम्मेलन' का भारतीय प्रतिनिधित्व किया। फ्रांस ने भी आप को एड्वाइजरी कमेटी आन नेचुरल रिसोर्सेज में अपने यहाँ बुलाया। इस प्रकार डा० काँवर ने उत्तर, पश्चिम, एवं पूरब दिशाओं में अपनी विद्वता की जैसी धाक जमाई उससे न केवल व्यक्तिगत यश प्राप्त हुआ वरन् भारतीय मृदा वैज्ञानिकों का मस्तक ऊँचा हुआ है।

वे अभी तरुण हैं—५० वर्ष से भी कम आयु के। उनके मुखमंडल पर मुस्कान लहराती रहती है। उनका लम्बा गोरा, छरहरा शरीर अत्यन्त आकर्षक है। वे न केवल पंजाब के अग्रगण्य मृदा वैज्ञानिक हैं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र के गौरव चिन्ह हैं। वे अच्छे वक्ता, अध्यापक, शोधकर्ता एवं सर्वप्रिय प्रशासक हैं।

[● लेखक जीवनी सम्बन्धी आँकडों के लिए ICAR का कृतज्ञ है]

[पृष्ठ ४ का शेषांश]

या आदि संस्कृति कहायेगी।

आज की भारतीय राजनीति और सभी देशों की अपेक्षा अधिक दैवी या आदि संस्कृति के अनुरूप है क्योंकि वह पंचशील के ऐसे सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है जो दैवी संस्कृति के अनुकूल है। इस दैवी या आदि संस्कृति का एक मौलक विचार यह भी है कि रूढ़िवाद का मूल स्वरूप है साधन को ही सिद्धि मान लेना। आज हम जिस भौतिक उन्नति के पीछे पागल से हो रहे हैं और जिसके कारण अनेक गंभीर विचारक मानव समाज के भविष्य के लिए चिन्तित हैं उसे हम केवल साधन रूप नहीं समझ रहे हैं इसलिए अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य मान रक्खा है। यदि हम अपने से कम सुखी और सम्पन्न व्यक्ति या राष्ट्र को सहायता देना अपना मुख्य धर्म समझ लें तो निश्चय ही मानव समाज का सबसे बड़ा हित होगा।

भारतीय विचारकों ने सम्पत्ति के भी दो भेद दैवी तथा आसुरी संपत्ति किये हैं। दया, प्रेम, सहानुभूति आदि ही दैवी संपदा है और रुपया, पैसा, धन, वैभव आसुरी संपदा है। आसुरी संपदा के लिए ही लोग एक दूसरे का वध करते और अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं। भारतीयों का प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिए कि लोगों में दैवी भावनाओं को जागृत करने का सक्रिय प्रयास करें और परमाणु बमों के युग में मानव समाज को विनाश से बचाने में भरसक योग दें।

● ●

सुप्रसिद्ध जीवरसायनज्ञ का निधन

१ अगस्त १९७० को पश्चिमी जर्मनी स्थित अपने गाँव में जीव रसायनज्ञ डा० ओटो वार्बुर्ग का देहान्त हो गया। वे ८७ वर्ष के थे। उन्हें १९३१ ई० में ओषधि एवं शरीर-क्रिया विज्ञान सम्बन्धी अभूतपूर्व खोजों के लिये नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

डा० वार्बुर्ग के निधन से वैज्ञानिक जगत की भारी क्षति हुई है। 'विज्ञान' परिवार उनके इस निधन पर शोक प्रकट करता हुआ उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

• रामेश वेदी

दूसरे देशों में मार्ग—इतिहास में भारतीय गेण्डे को पकड़ कर बाहर भेजे जाने के अधिक रिकार्ड नहीं मिलते। युरोप में सबसे पहला भारतीय गेण्डा सोलहवीं शताब्दी के शुरू में भेजा गया था। गोआ से यह जहाज में चढ़ाया गया था। सोलहवीं शताब्दी के एक लेखक टौप्सेल ने अपनी एक पुस्तक में इसका चित्र दिया है। लेकिन अजीब बात यह है कि चित्रकार ने अपनी कल्पना से इसके कन्धे में से उगता हुआ दूसरा सींग भी दिखा दिया है।

पुराने जमाने में मिश्र, यूनान और रोम में जो गेण्डे ले जाये गये थे वे बहुत संभव है कि अफ्रीकी सफेद गेण्डे थे जो नीलोटिक सूडान से लाये गये थे। क्लिओपेट्रा को हराने के बाद आगस्टस ने अपनी विजय के समारोह में दो सींग वाले अफ्रीकी गेण्डे को प्रदर्शित किया। हिप्पोपोटामस के साथ ३९ ईस्वी पूर्व यूरोप में ले जाया गया यह शायद पहला अफ्रीकी गेण्डा था।

ग्रीक के ऐतिहासिक क्टेसिस ने ईसा से लगभग चार सौ बरस पहले गेण्डे का वर्णन किया था। पाश्चात्य देशों में यह शायद सबसे पहला ऐतिहासिक उल्लेख है जिसमें गेण्डे को भारत का पशु बताया है। युरोप में सबसे पहला गेण्डा रोम में देखा गया था। सीजर्स के जमाने में जनता का मनोरंजन करने के लिए जिन्दा गेण्डा रोम लाया गया था। प्लीनी ने इस पशु का जिक्र किया है। वह उसे एक सींग वाला एक प्राणी लिखता है जिससे ज्ञात होता है कि यह एशिया की जाति होगी। उसके कुछ साल बाद पेरिप्लस के लेखक ने भी गेण्डे का वर्णन किया है।

१५८१ में स्पेन के राजा को एक जिन्दा गेण्डा समुद्र के रास्ते भेजा गया था। इंग्लैण्ड में सबसे पहला जीवित गेण्डा १६८५ में पहुँचा था।

पशुवाटिकाओं का गौरव: दुनियाँ की सभी पशु-वाटिकाओं में इस लुप्तप्राय जन्तु को स्थान दिया जा रहा है और यह उन वाटिकाओं का गौरव समझा जाता है। पशु-वाटिकाओं में गेण्डे सामान्यतया मस्त, आलसी, लापरवाह तथा भद्दे दीखने वाले जानवर होते हैं और ये दर्शकों में जरा भी दिलचस्पी नहीं दिखाते। अपने क्रिया-कलापों से ये दर्शकों का मनोरंजन भी नहीं करते किन्तु इन्हें देखते ही पुराने युग के भीमकाय जन्तुओं की याद आ जाती है इसलिये ये बड़ी जिज्ञासा की दृष्टि से देखे जाते हैं। दूसरे देशों में जब ये पहुँचते हैं तो इनका उत्साह से स्वागत किया जाता है।

अत्यन्त मूल्यवान: दुनियां में अनेक भागों में भारतीय गेण्डे की मांग है। दूसरे महायुद्ध के बाद असम सरकार हर साल एक-दो गेण्डे पकड़ कर संसार की विभिन्न पशु-वाटिकाओं को भेजती है। १९४७ और १९५२ में मोहन मोहिनी नाम के दो बच्चे काजीरंगा से व्हिप्सनेड (ब्रिटेन) भेजे गये थे। असम सरकार को प्रत्येक जीवित गेण्डे के पीछे एक निश्चत राशि अधिकार-शुल्क (रायल्टी) के रूप में मिल जाती है। यदि गेंडा भारत से बाहर ले जाया जाना है तो अधिकार-शुल्क की

राशि पचास हजार रुपये हैं। यदि भारत में किसी दूसरे राज्य की सरकार को गेण्डा दिया जाना है तो यह राशि आधी रह जाती है अर्थात् कुल पचीस हजार रुपये। गेण्डे पकड़ने आदि के खर्च इससे अलग होते हैं जो प्रति गेण्डा लगभग दस हजार रुपये आ जाते हैं।

उगाण्डा के सफेद गेण्डे के जोड़े की कीमत अमेरिका तथा यूरोप में लगभग दस हजार पौण्ड है।

दुर्लभता के कारण गेण्डे के सींग का मूल्य बहुत ऊंचा रहा है। कभी कभी तो दाम इतने चढ़ जाते थे कि तराज़ू के एक पलड़े में सोना और दूसरे पलड़े में सींग रख कर सौदा हो जाता था। केवल राजा ही इतनी भारी रकम दे सकते थे।

१९५० के आस-पास इसका मूल्य पाँच हजार प्रति सींग आँका जाता था। चोरी-छिपे शिकार रोकने में सरकार को ज्यों-ज्यों सफलता मिली इसका दाम चढ़ता गया।

१९६५ में प्राणिशास्त्र के कुछ विद्वानों ने मुझे इसका दाम जहाँ दस हजार रुपये बताया वहां कुछ लोगों के अनुमान में यह दुर्लभ पदार्थ बीस-पचीस हजार रुपये तक होगा। पूर्वीय एशिया में गेण्डे का सींग धड़ाधड़ बिक जाता है, खास कर चीन में इसकी मांग बहुत है। श्री जी ने दिखाया है कि १९३५ के लगभग इसके भार से आधा सोना व्यापारी को मिल जाता था। परन्तु अब इसकी कीमत और चढ़ गई है। गौहाटी में हाल ही में एक सौदे का उल्लेख जी ने किया है। एक सौदे के लिए बम्बई के कुछ व्यापारी एक जहाज भाड़े पर लेकर आये थे। उन्होंने सारी ढेरी को २५२५ रुपये (१८९ पौण्ड) प्रति पौण्ड के हिसाब से खरीद लिया था। इतना ऊंचा दाम भारतीय गेण्डे के सींग का ही मिलता है। पूर्वी अफ्रीका के गेण्डे के सींग का दाम केवल २ पौण्ड १० शिलिंग प्रति पौण्ड है।

विश्वास किया जाता है कि रोमन साम्राज्य में पूर्व तथा अफ्रीका दोनों से गेण्डे के सींग जाते थे। सीजर्स के जमाने में लाल सागर तक गेण्डे के सींग तथा खालों का व्यापार होता था। युरोप और चीन में इन सींगों का निर्यात बहुत लाभदयाक व्यापार था। ईसा के समय रोमन साम्राज्य में जो भी सींग पहुँचे उनमें से अधिकतर अफ्रीका के थे। परन्तु, ईसा के बाद सम्भवतः भारतीय गेण्डे के सींग जाने लगे और उसके बाद फिर अफ्रीकी गेण्डे (Rhinoceros Sumatrensis) के। लेकिन, पिछला सींग चीन के बाजार में खप जाता था। मलेशिया से चीन को सींग का व्यापार बाद में शुरू हुआ। पु-यान-त्सा-त्सु पुस्तक में, जो लगभग ८६० ई० पश्चात् लिखी गयी, इस सींग को हितम के नाम से लिखा है जिसका अर्थ काला होता है। यह मलय भाषा का शब्द है। व्यापार में तब सफेद और काला क्रमशः हाथी दांत और गेण्डे के सींग को कहते थे।

चीनियों को बहुत देर तक सींग के मूल स्रोत का सही ज्ञान नहीं हो पाया। लगभग १२०० ई० पश्चात् भी चाउ जु-कुआ सोचता था कि अरब लोग उस देश में रहते हैं जहाँ से चीन के लिए सींग लाते हैं। उसने उपलब्धि के बहुत से स्रोत लिखे हैं, जिनमें से हान्किन, अनाम, मलय पेनिन्सुला, जावा, भारत, और जंजीबार तट हैं। सबसे बढ़िया सींग अफ्रीकी प्रतीत होते थे और बर्बेरा तट से प्राप्त किये जाते थे। वे काले की अपेक्षा सफेद अधिक थे। १५३७ में मलक्का, जो एक चौथाई सदी से पुर्तगालियों अधिकार में था, वहां के गेण्डे के सींग का महत्वपूर्ण निर्यात के व्यापार था।

सहायक साहित्य

दि इनार्मस जू, कालिन विल्लौक, १९६४।

दि वाइल्ड लाइफ आफ़ इण्डिया, इ० पी० जी०, १९६४।

वर्ल्ड हेल्थ, एप्रिल १९६५, पृ० २७।

ए डिक्शनरी आफ़ दि इकौनोमिक प्रोडक्ट्स आफ़ इण्डिया, जार्ज वाट, १८९२, जिल्द ६, भाग-१ पृष्ठ ४८९-४९०।

मोहनजोदड़ो ऐण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन, जोहन मार्शल, १९३१।

वाइल्ड लाइफ़ आफ़ आवर वर्ल्ड, जोहन आर० क्रासलैण्ड और जे० एम० पारिश़।

● ●

गुरुत्वाकर्षण एवं सापेक्षता सिद्धान्त

• शंकर शरण त्रिपाठी

न्यूटन ने गिरते हुये सेव को देखकर यह विचार प्रस्तुत किया कि पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति के कारण अपने चारों ओर के पिण्डों को तथा चन्द्रमा और सूर्य को भी अपनी ओर खींचती है और यह निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मांड का प्रत्येक पिंड अपने चारों ओर के पिण्डों को आकर्षित करता है। इस प्रणाली को उन्होंने गुरुत्वाकर्षण नाम दिया।

इस साधारण नियम से केवल इस बात की ही व्याख्या नहीं हुई कि सेव पृथ्वी पर ही क्यों गिरा वरन् इस बात की भी पुष्टि हुई कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर एवं पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा क्यों करते हैं ? अब प्रश्न यह है कि न्यूटन के बाद इस गुरुत्वाकर्षण नियम में क्या विस्तार हुये तथा भौतिक विज्ञान ने इस तथ्य का भी पता लगाया कि समस्त प्राकृतिक शक्तियों का नियमन मूलतः चार शक्तियों करती हैं : इन चारों शक्तियों में सबसे बलिष्ट है विद्युत-चुम्बकीय शक्ति तथा सबसे क्षीण है गुरुत्वाकर्ष शक्ति।

जब हम सूर्य जैसे विशाल पिन्ड के बारे में सोचते हैं तो निःसन्देह यह समस्या उत्पन्न होती है कि सूर्य किस प्रकार संतुलन में है ? ऐसी कौन शक्ति है जो इसको संतुलन में रखे हुये है ? यदि इस तरह किसी शक्ति का अस्तित्व न हो तो तमाम पिन्डों के प्रत्येक कण परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करने लगेगा और इन पिण्डों में असाधारण संकुचन उत्पन्न होने लगेंगे। यदि यह संकुचन निर्बाध रूप से चलता रहा तो सूर्य कुछ ही समय में संकुचित होकर एक कण मात्र रह जावेगा। लेकिन सूर्य का उसी रूप में रहना इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि सूर्य के अंदर कोई न कोई और बल कार्य करता है जो इसका प्रतिकार करता है। न्यूक्लियर भौतिकी के अनुसार ऐसा समझा जाता है कि सूर्य के अंदर हाइड्रोजन को हीलियम में परिवर्तित करने की क्रिया बराबर चलती रहती है जिसके फलस्वरूप असीम शक्ति का सृजन होता है और अनेक आन्तरिक दाब उत्पन्न होते हैं जिससे सूर्य का संतुलन बना रहता है और इस तरह ज्योतविज्ञान के क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है।

बीसवीं शताब्दी के साथ वैज्ञानिकों ने न्यूटन के सिद्धान्त में त्रुटियां निकालनी प्रारम्भ कर दीं। इन त्रुटियों को दूर करने के लिये आइन्स्टीन ने सापेक्षता के विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के पूर्व ऐसी धारणा थी कि दिक (Space) और काल (Time) परम स्वतंत्र (Absolute) हैं पर सापेक्षता के अनुसार दिक और और काल एक दूसरे से सम्बद्ध हो गये। अब काल की माप दिक की माप है और दिक की काल की माप है। यह बात वैज्ञानिकों को आश्चर्यजनक लगी लेकिन बाद में वैज्ञानिक इस दिशा में सोचने लगे और विश्व को एक दिक-काल अखण्डता (Space Time Cotiuum) के रूप में ग्रहण कर लिया।

इस विशेष सापेक्षता के आश्चर्यजनक निष्कर्षों में एक यह भी है कि किन्हीं भी भौतिक संकेतों का सम्प्रेषण प्रकाश की गति की अपेक्षा अधिक गति से नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत न्यूटन का मत था कि दो पदार्थों के बीच का आकर्षण त्वरित और निस्सीम गति से होता है। कल्पना कीजिये कि सूर्य को किसी प्रकार नष्ट किया जा रहा है, इस कारण जो गुरुत्वा-

कर्षण का प्रभाव पैदा होगा उसे हम पृथ्वी के प्राणी सूर्य के विनाश को देखने के पहले ही अनुभव कर लेंगे। स्पष्टतः इस बात का मेल सापेक्षता के विशेष सिद्धान्त से नहीं बैठता तो प्रश्न यह उठता है कि सच क्या है ?

इस जटिल समस्या का बहुत कुछ हल आइन्स्टीन द्वारा सन् १९१५ के लगभग प्रस्तुत हुआ। उन्होंने नये गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसकी दो विशेषतायें थीं। पहली विशेषता तो यह थी कि यह सांगोपांग सापेक्षता के सिद्धान्त का समर्थन करता था तथा दूसरी बात यह थी कि यह न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का अपेक्षाकृत न्यूनता की अवस्था में पूर्ण रूपेण साथ देता था। वास्तव में यही आइन्स्टीन के व्यापक सापेक्षता का सिद्धान्त General Theory of Relativity) है।

आइन्स्टीन ने गुरुत्वाकर्षण की इस प्रमुख विशेषता का उपयोग किया कि यह प्रवाही है तथा उसके प्रभाव को काटा या रोका नहीं जा सकता। प्रश्न था कि क्या संसार में कोई ऐसी भी वस्तु है जो गुरुत्वाकर्षण ही जैसी विशेषता रखती है ? इसका उत्तर था 'हाँ'—दिक काल (Space Time) में यह विशेषता सन्निहित है। कोई भी द्रव्यमान जो दिक-काल के किसी विशेष क्षेत्र में है, उस क्षेत्र के दिक-काल के नियमों को स्वतः पालन करेगा। इस प्रकार आइन्स्टीन ने तर्क किया कि क्यों न गुरुत्वाकर्षण को दिक एवं काल से सम्बन्धित कर दिया जाय ! इस प्रकार आइन्स्टीन ने गुरुत्वाकर्षण को दिक्-काल की ज्यामिति से सम्बन्धित कर दिया। स्पष्टतः यह ज्यामिति और ज्यामितियों से भिन्न है। जो ज्यामिति हम स्कूलों में पढ़ते हैं वह यूक्लिड की है।

आइन्स्टीन के व्यापक सापेक्षवाद के अनुसार यदि किसी दिये हुये क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण है तो इस क्षेत्र की ज्यामिति यूक्लिड की ज्यामिति नहीं है। आइन्स्टीन ने गणितीय समीकरणों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि गुरुत्वाकर्षण अथवा द्रव्य के होने पर किस प्रकार ज्यामिति में सुधार किया जा सकता है। बहुत से व्यावहारिक कामों में गुरुत्वाकर्षण इतना क्षीण रहता है कि ज्यामिति लगभग यूक्लिड की ही रहती है। ऐसी दशा में आइन्स्टीन का समीकरण न्यूटन के उत्क्रमवर्ग के नियम के रूप में आ जाता है। इसी प्रकार मर्करी (ग्रह) की गति से विषय में न्यूटन ने इस बात की व्याख्या नहीं की कि वह अपना मार्ग क्यों और कितना बदल देता है परन्तु आइन्स्टीन के सूत्र से इस बात की व्याख्या हो गई।

आइन्स्टीन के बाद समय-समय पर अनेक गुरुत्वाकर्षण के नियमों का प्रतिपादन हुआ। अभी १९६४ ई० में प्रो० फायड हॉयल और भारतीय वैज्ञानिक डा० जयन्त नारलीकर ने एक नये गुरुत्वाकर्षण के नियम का प्रतिपादन किया है।

न्यूटन ने केवल गुरुत्वाकर्षण के नियमों का ही प्रतिपादन नहीं किया वरन् उन्हें गति के नियमों को प्रकाश में लाने का भी श्रेय प्राप्त है। किन्तु न्यूटन के सामने एक समस्या यह थी कि इन मियमों का अर्थ तभी निकल सकता है जब 'गति' अर्थ प्रगट हो जाय। जब भी हम गति की बात करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में सदैव एक दूसरी वस्तु की गति की कल्पना रहती है जिसके सापेक्ष पहली गति हो रही है। न्यूटन इस बात को स्पष्ट नहीं कर सके कि गति किस आधार के सापेक्ष मापी जा सके। इस कठिनाई को दूर करने के लिये न्यूटन ने एक अस्पष्ट धारणा का प्रतिपदान किया जिसे उन्होंने असीमशून्य (Absolute Space) की संज्ञा दी।

अब प्रश्न यह उठता है कि असीम शून्य क्या है ? न्यूटन के नियम असीम शून्य में ही क्यों सत्य हैं ? पिछली शताब्दी तक ये प्रश्न अनुत्तरित थे। यह असीम शून्य वस्तुतः दूरस्थ ग्रहों और तारामंडलों की तथाकथित स्थिरता पर आधारित था, क्योंकि उनके अपरिमित गति का विस्तार और क्षेत्र अत्यंत सीमित था। हम अपनी सीमित अनुभव शक्ति के आधार पर इस पृथ्वी की गति को तो नाप सकते थे, परन्तु उन दूरस्थ पिण्डों की गति को नहीं।

१९ वीं शताब्दी के अंत में माक (Mach) ने एक तर्क द्वारा न्यूटन के सिद्धान्त का विश्लेषण किया। उन्होंने बताया कि जड़त्व की माप न्यूटन के गति के नियमों पर आधारित है। न्यूटन के नियम सत्य हैं यदि इसके लिये आधार ब्रह्मांड के दूरस्थ पिंडों को लिया जाय। अतः जड़त्व सीधे इन दूरस्थ पिंडों से सम्बंधित हैं। जड़त्व किसी पदार्थ का गुण नहीं है बल्कि ब्रह्मांड के अन्य पिंडों की उपस्थिति के कारण ही पिंड में यह गुण आता है।

आइन्स्टीन माक की धारणा से पूर्णरूपेण प्रभावित थे। उनको यह आशा थी कि उनके समीकरणों में माक का भी सिद्धान्त आ जायेगा किन्तु ऐसा नहीं हो पाया। भौतिक शास्त्रियों के अनुसार आइन्स्टीन के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी यही थी।

गुरुत्वाकर्षण की नवीन विचार धारा में, जो प्रो० हॉयल और डा० नारलीकर द्वारा प्रतिपादित है, माक के सिद्धान्त का पूर्णरूपेण निरूपण हुआ है। उन्होंने इस बात को ग्रहण किया है कि किसी कण का द्रव्यमान, ब्रह्मांड के शेष कणों की उपस्थिति के कारण है। इस बात का स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि ब्रह्मांड पूर्णरूपेण रिक्त (Empty) हो जाये और केवल एक कण बचा रहे तो इस कण का द्रव्यमान शून्य हो जावेगा। इस प्रकार इन विद्वानों के अनुसार पदार्थ का द्रव्यमान द्रव्य का मौलिक गुणधर्म नहीं है, जैसा कि न्यूटन और आइन्स्टीन मानते थे, बल्कि वह उस पदार्थ और ब्रह्मांड के प्रत्येक द्रव्य कण की अन्योन्य क्रिया का परिणाम है।

आइन्स्टीन और न्यूटन दोनों के सिद्धान्तों के अनुसार आधा ब्रह्मांड हटा देने का प्रभाव इतना ही होगा कि रात में आसमान में तारों की संख्या आधी रह जायेगी। परन्तु हॉयल और नारलीकर के सिद्धान्त के अनुसार यदि ब्रह्मांड हटा लिया जाय तो हमारे सौर मंडल में गुरुत्वाकर्षण दुगुना बढ़ जायेगा, पृथ्वी सूर्य के अधिक नजदीक खिसक जायेगी, सूर्य के केन्द्र में दाब बढ़ जायेगा तथा वह सौगुना ज्यादा तेजी से चमकने लगेगा। तपन बढ़ जायेगी और धरती पर हर वस्तु का भार बढ जायेगा। अगर ब्रह्मांड में से सौरमंडल के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुयें हटा दी जायें तो सूर्य अपने चारों ओर के समस्त देश-काल (Space time) को समेट लेगा।

इसके अतिरिक्त, इनके अनुसार ब्रह्मांड में प्रत्येक वस्तु की समस्त कणों के साथ अन्योन्य क्रिया होती है। गुरुत्व उसी का परिणाम है। उनके अनुसार आइन्स्टीन ने जो गणितीय सूत्र प्रयुक्त किया था, उसमें एक स्थिरांक का प्रयोग था। यदि उन चिह्नों का चिह्न ऋण से धन कर दिया जाय तो उसका निष्कर्ष यह निकलेगा कि वृक्ष से सेव टूटे तो वह नीचे न आकर ऊपर अकाश की ओर जायेगा। अतः इनके सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरुत्वाकर्षण में आकर्षण ही क्यों है, विकर्षण सम्भव क्यों नहीं है। साथ ही आइन्स्टीन के अनुसार रिक्त ब्रह्मांड (empty universe) में भी गुरुत्वाकर्षण सम्भव है, पर नारलीकर के अनुसार रिक्त ब्रह्मांड में गुरुत्वाकर्षण लुप्त हो जावेगा। इस दृष्टि से यदि यह कल्पना की जाये कि ब्रह्मांड में दूर स्थित आधे तारे अचानक नष्ट हो जायें तो पृथ्वी पर हम लोगों में से प्रत्येक का भार दुगुना हो जायेगा। प्रोफेसर हॉयल और नारलीकर की इस खोज ने विज्ञान जगत में खलबली पैदा कर दी है। विश्व की निगाहें इस अभूतपूर्व की सत्यता की ओर लगी हुई हैं।

● ●

अभूतपूर्व खोज

स्वीडेन में उपसाला विश्वविद्यालय के कार्यिकी वनस्पति संस्थान के कार्यकर्ताओं ने यह खोज की है कि विभिन्न जातियों के पौदों के संक्रमण द्वारा नवीन जातियों को प्रयोगशाला में उत्पन्न किया जा सकता है। अब खाद्य फसल को रेशे वाली फसल के साथ, तम्बाकू को आलू के साथ संकरित करके 'अति पादप' तैयार किया जा सकेगा। यह 'अतिमानव' की उत्पत्ति जैसी खोज है। इसके अगुवा हैं प्रोफेसर एरिक्सन।

खाद्य पदार्थों में मिलावट

खाद्य पदार्थों में मिलावट अपने में एक व्यापार है। यह एक विज्ञान है और कला भी। विज्ञान इसलिए कि मिलावट के काम लायी जाने वाली वस्तुओं की उचित परीक्षा कर ली जाती है जिससे मिलावट करने पर कोई प्रतिक्रिया न हो। और कला इसलिए कि मिलावट इस खूबी से की जाती है कि साधारण दृष्टि से पकड़ में न आवे। ऐसी बात नहीं कि मिलावट की प्रथा हमारे दादाओं और पर दादाओं के समय नहीं थी। प्राचीन काल से ही मिलावट की प्रथा चल रही है। खाद्य पदार्थों से लेकर स्वर्ण निर्मित वस्तुओं तक में १२ शताब्दी तक मिलावट करना व्यापारियों का धर्म बन चुका था। मिलावट व्यापार में उन्नति का एक आधार माना जाने लगा। साधारण जन की दृष्टि में महाजन 'महाजन' नहीं रहे। इस असामाजिक प्रथा को रोकने के लिए विभिन्न देशों में नियम-कानून बनाये गये।

मिलावट क्या है ? साधारणतः **हम 'मिलावट' खाद्य पदार्थों में निम्नस्तरीय एवं सस्ती वस्तुओं के मिलाये जाने को कहते हैं।** लेकिन ऐसी बात नहीं है। खाद्य पदार्थों में कोई सामान्य अवयव का निकाल देना, खाद्य वस्तुओं के गुण-दोषों के बारे में गलत सूचना देना (गलत लेवल लगाना), निर्धारित तौल से कम की बेचना ये सभी मिलावट कहे जा सकते हैं। दूध से वसा निकाल देना, निर्धारित तौल से कम की पावरोटी बनाना मिलावट के उदाहरण हैं।

यह कहना भी पूर्णतः उचित न होगा कि मिलावट वही है जब ऐसा पदार्थ खाद्य पदार्थ में मिला दिया जाय जो मानव स्वास्थ के लिए हानिकारक हो। दूध में पानी की मिलावट स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है लेकिन दूध में मात्रा के अनुपात में पोषण तत्वों में अवश्य कमी आ जाती है। कम वजन की पावरोटी एवं जलाने वाले तेलों में मिलावट में भी यही बात लागू होती है। मिलावट से स्वास्थ्य या अर्थ और अधिकांशतः दोनों की हानि होती है।

क्या मिलाया जाता है ? जो वस्तुएँ मिलावट के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं वे उस पदार्थ की तुलना में जिसमें उन्हें मिलाया है काफी सस्ती होती हैं। साधारणतः ये सस्ते एवं निम्नस्तरीय पदार्थ शुद्ध खाद्य पदार्थ के ही रूप, रंग और स्वाद से मिलते-जुलते गुण वाले होते हैं। यही कारण है कि ये आसानी से पकड़ में नहीं आते। सामान्यतः जिन वस्तुओं का अभाव रहता है उनमें मिलावट की संभावना भी अधिक रहती है।

केसर में गेहूँ का आटा, गोंद, टल्कम पाउडर और कृत्रिम रंग मिलाकर धोखा दिया जाता है। कभी-कभी मक्के एवं कुसुम के पुंकेसर कृत्रिम रूप से रँगकर मिलाये जाते हैं। हींग की जगह रेज़िन या गोंद दे दिया जाता है। शुद्ध गोल मिर्च में पपीता का बीज मिलाया जाता है, काले जीरे के स्थान पर एक प्रकार के खतपरवार के पुँकेसर को लकड़ी के कोयले के चूरे से रंगकर प्रयोग में लाया

जाता है।

मक्खन और घी में वनस्पति एवं पशुओं के वसा की मिलावट की जाती है। यह क्रिया कुशल वैज्ञानिक पद्धति से सम्पन्न होती है और इस प्रकार की मिलावट को केवल आधुनिक प्रयोगशालाओं में ही जाँच कर पकड़ा जा सकता है। दूध में पानी की मिलावट तो आम बात है और सरकार की लापरवाही के कारण यह बुराई सभी स्थानों पर व्यापक रूप से व्याप्त है। खाद्य तेलों में खनिज तेलों और और अन्य अखाद्य तेलों की मिलावट की जाती है। गृहणियां दुकान पर 'यहां अखाद्य तेल बिकता है' का सूचना-पट्ट देख कर भी वहीं से सरसों का तेल खरीदने को बाध्य हैं। इस प्रकार का मिश्रण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है और मानव शरीर की वृद्धि को रोकता है। बम्बई में पक्षाघात की कुछ घटनाओं का कारण खाने वाले तेलों में कुछ हानिकारक तेलों की मिलावट को बताया गया है।

चाय में भुने हुए चने के छिलके को आयरन सल्फेट के साथ मिलाकर एवं काफी में भुने हुए इमली के बीज के चूर्ण को मिला कर बेचा जाता है। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए मिठाइयों, शर्बतों में कृत्रिम रंग मिलाया जाता है। कभी-कभी खाद्य पदार्थ के दुर्गुणों को छिपाने के लिए रंगों का प्रयोग किया जाता है।

मिलावटी खाद्य पदार्थों से होने वाली हानि चिन्तनीय हैं। इसका राष्ट्रीय स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दुर्भाग्यवश अपने देश मिलावट से होने वाली हानि को गम्भीरता-पूर्वक नहीं लिया जा रहा है। विपाक्त भोजन का परिणाम तो तुरन्त सामने आ जाता है। मिलावटी एवं निम्नस्तरीय पदार्थों के सेवन का कोई गम्भीर परिणाम एकाएक सामने नहीं आता लेकिन स्वास्थ्य पर धीरे-धीरे पड़ने वाला कुप्रभाव अन्ततः विनाशकारी सिद्ध होता है। विशेषकर बच्चे एवं नवयुवकों की शारीरिक वृद्धि में रुकावट, कार्य क्षमता और रोग प्रतिरोध की क्षमता में कमी का कारण अपर्याप्त पोषण है। अपर्याप्त पोषण का एक और कारण मिलावटी खाद्य पदार्थों का प्रयोग भी है क्योंकि मिलावट के कारण उस वस्तु विशेष से अपेक्षित पोषण तत्वनहीं मिल पाते।

कृषि एवं खाद्य संघटन (एफ० ए० ओ०) एवं विश्व स्वास्थ्य संघटन (डब्लू० एच० ओ०) ने तो हानिकारक रंगों के प्रयोग पर गहरी चिन्ता प्रकट की है। इस बात की आशंका है कि हानिकारक रंगों में मिश्रित खाद्य पदार्थों का एक लम्बे अरसे तक प्रयोग कैंसर आदि रोगों का जन्मदायक होता है।

रोकथाम—इस अभिशाप को रोकने के लिए नियम बनाये हैं। भारतीय खाद्य एवं दवा नियम (फूड एण्ड ड्रग एक्ट) १८६० है। मिलावट को रोकने लिए सन् १६५४ में व्यापक कानून भी बनाये गये। नगरपालिकाएं यदि इन नियमों को कड़ाई से पालन करें तो इस सामाजिक बुराई का अन्त हो सकता है। लेकिन अपने देश में नियमों का पालन अपने में एक समस्या है। अपराधी रुपये की थैली दिखा कर छूट जाते हैं। प्रभावकारी अपराधी तो ईमानदार खाद्य निरीक्षकों का अपने क्षेत्र से स्थानान्तरण तक करवा देते हैं। यदि पदार्थों में मिलावट को नहीं रोका गया तो भविष्य में गम्भीर परिणाम मिलेंगे, जैसे हिरोशिमा पर अणुबम के प्रभाव के कारण विकलांगों का जन्म।

२. नया 'डी डी टी' एक निरापद कीटनाशक

मानव को ज्ञात सबसे महत्वपूर्ण कीटनाशक होने के साथ ही साथ, 'डी डी टी' वातावरण को दूषित करने वाले सबसे हानिकारक तत्वों में से भी एक है। फिर भी उसकी इस विरोधाभासी स्थिति का समाधान प्राप्त होना सम्भव है। सम्प्रति डी डी टी की एक ऐसी नयी किस्म के सम्बन्ध में परीक्षण किया जा रहा है, जो आत्म नाशक, अथवा अधिक सही अर्थ में, अपने प्रभाव को स्वतः ही उत्तरोत्तर क्षीण करने वाली है। आशा की जाती है कि यह किस्म एक निरापद कीटनाशक सिद्ध होगी। यदि इसके सम्बन्ध में इस समय चालू परीक्षणों से यह पता चल गया कि यह मनुष्य और पशुओं के लिये निरापद है, तो एक वर्ष में यह व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध हो जायेगी। अन्ततोगत्वा, अमेरिका में डी डी टी पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया जा सकता

है। इस पर इसी प्रकार का आंशिक प्रतिबन्ध कनाडा, सोवियत संघ, ब्रिटेन, जापान, पश्चिमी जर्मनी, नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन, नीदरलैण्ड और हंगरी में भी लागू है।

डी डी टी की जिस किस्म के सम्बन्ध में सम्प्रति परीक्षण हो रहा है, उसमें विकासोन्मुख देशों की दृष्टि से और भी अधिक सम्भावना और आशा निहित है। वहाँ जीवन और खाद्योत्पादन के लिए डी डी टी का प्रयोग इतना आवश्यक है कि इस पर अभी तक प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। इसके विपरीत, वहाँ मलेरिया और टाइफस जैसे रोगों की रोकथाम करने और चावल जैसी मुख्य फसलों की रक्षा के लिए डी डी टी का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

नये डी. डी. टी. में पुराने डी. डी. टी. का चूर्ण सम्मिलित है, जिसमें करोड़ों नन्हें कैपस्यूल मिश्रित हैं। ये डी. डी. टी. कैपस्यूल फसल पर छिड़के जाने के ४ या ५ दिन बाद रासायनिक विधि द्वारा मिट्टी में डी. डी. टी. को इस प्रकार खण्डित कर देते हैं ताकि वह किसी प्रकार हानिकारक न सिद्ध हो सके। ऐसा करने से 'डी. डी. ई' नामक नशीला मिश्रण नहीं बनने पाता।

वस्तुत: जब डी डी टी क्षरित होकर डी डी ई का रूप धारण कर लेता है, तो उसके कारण वातावरण एवं पशु जीवन के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। डी डी ई की विशेषता यह है कि यह भूमि पर और पानी में शीघ्रता से विखण्डित नहीं होता, पशुओं के शरीर के भीतर प्रविष्ट होकर संग्रहीत होता जाता है, और अनेक प्रकार की मछलियों और कीटों को, जिसमें से कितने ही वातावरण के लिए लाभकारी होते हैं, विनष्ट कर देता है।

सूक्ष्म कैपस्यूल जो कुछ दवा की गोलियों वाले कैपस्यूलों की तरह देर में सक्रिय होते हैं, डी डी टी को अपेक्षाकृत निरापद मिश्रण में परिवर्तित कर देते हैं।

डी डी टी की नयी किस्म का क्षेत्रीय स्तर पर एक वर्ष तक परीक्षण किया जा रहा है और इस प्रकार इस बात का निर्धारण करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रयोगशाला के अन्तर्गत बनी एक टंकी में मछलियों पर इसका नशीला प्रभाव सही तौर पर कितना पड़ता है।

अनुमान है कि इसका उत्पादन होने पर डी डी टी की लागत दुगनी हो जायेगी लेकिन इसके लाभ इतने होंगे कि उनसे क्षति की पूर्ति हो जायेगी।

डी डी टी और उससे सम्बद्ध घोलों का प्रयोग अल्प-विकसित देशों में फसलों की सुरक्षा के लिए प्रयुक्त कीटनाशक ओषधियों की कुल मात्रा के लगभग आधे के बराबर होता है। संयुक्तराष्ट्र-संघीय कृषि एवं खाद्य संघटन ने अनुमान लगाया है कि डी डी टी के बिना विकासोन्मुख देशों में उत्पन्न कुल कपास के लगभग ५० प्रतिशत को कीड़े चट कर जायेंगे। ब्राजील में अमरूद की फसल को डी डी टी के छिड़काव द्वारा ही बचाना सम्भव होता है।

विकासोन्मुख देशों में मुख्यतः स्वास्थ्य के क्षेत्र में डी डी टी अपरिहार्य बना हुआ है।

● ●

आइये २४वीं स्वतन्त्रता वर्ष-गाँठ पर प्रतिज्ञा करें कि सारा पठन-पाठन का कार्य हिन्दी में करेंगे।

विज्ञान-वार्ता

१ भुडली कीड़ों से फसलों की रक्षा

उत्तरप्रदेश कृषि रक्षा संघटन ने राज्य के किसानों को भुड़ली अथवा कमला कीट से फसलों की रक्षा के प्रभावकारी कदम उठाने का परामर्श दिया है। ये कीड़े सामूहिक रूप से हरियाली को खाकर हानि पहुँचाते हैं जिससे सम्पूर्ण फसल चौपट हो जाती है। वर्षा आरम्भ होने के साथ इस कीट की गिडारें रोयेंदार, भूरी, लगभग डेढ़ इंच लम्बी होती हैं। गिडारें बहुत शीघ्र ही बढ़कर पूरे क्षेत्र में फैल जाती हैं जिसके कारण इन्हें नष्ट करना काफी मुश्किल होता है। इसलिए ये गिडारें छोटी हों तभी से इनको नष्ट करने के उपाय अपनाये जाने चाहिये।

इनसे छुटकारा पाने के लिए निम्नांकित कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग करने की सलाह किसानों को दी गयी है। बी० एच० सी०, पैराथियान, इण्डीन्यूवान, इण्डोसल्फान तथा कार्बोराइल आदि।

प्रदेशीय कृषि रक्षा सेवा संघटन भी निर्धारित शुल्क जमा करने पर यह छिड़काव कार्य करता है। यह शुल्क दवा की कीमत और उसका दसवाँ भाग है। हर जिले में स्थित कृषि रक्षा सेवा केन्द्र या उपकेन्द्र तथा विकास खण्डों में नियुक्त कृषि रक्षा कार्यकर्त्ताओं से पूर्ण सहायता प्राप्त की जा सकती है।

२. चावल की स्वादिष्ट किस्में

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के निरीक्षण में धान की दो नई किस्में विकसित की गई हैं जो अपने स्वाद के लिये उल्लेखनीय हैं। ये किस्में हैं 'साबरमती' तथा 'यमुना'। साबरमती को बी.सी. ५ या बी.सी. ५.५ कहते हैं। यह ताइ-चुंग नेटिव १ तथा बासमती ३७० तथा बासमती ३७०.४ के संकरण से तैयार की गई है। इसकी प्रति हेक्टर उपज ४-५ टन प्राप्त हुई है। इसका दाना मध्यम आकार का और सुगन्धि से युक्त होता है। इसमें प्रोटीन की मात्रा भी काफी होती है।

यमुना को बी.सी. ६ या बी.सी. ६.४८ कहा जाता है। यह भी उपर्युक्त संकरण से विकसित की गई है। इसके पकाने के गुण तथा पोषण मान अत्यधिक उच्च हैं।

साबरमती की खेती दिल्ली, हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश में की जाने लगी है।

इनके अतिरिक्त उडीसा तथा आंध्र प्रदेश में 'पंकज' एवं 'जगन्नाथ' किस्में विकसित की गई हैं।

३. अक्षत क्रान्ति

भारतीय खाद्य और कृषि मंत्रालय ने विश्वास प्रकट किया है कि निकट भविष्य में 'हरित क्रान्ति' के बाद 'अक्षत क्रान्ति' प्रारम्भ होने जा रही है। सम्पूर्ण देश में योजनाबद्ध शोध कार्य के फलस्वरूप हरित क्रान्ति अब केवल गेहूँ तक सीमित न रह कर धान को भी प्रभावित करने जा रही है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने धान उगाने वाले प्रमुख क्षेत्रों में कृषि विश्वविद्यालयों एवं राज्यीय कृषि विभागों के सहयोग से धान पर देशव्यापी शोध कार्यक्रम का सूत्रपात १९६७ ई० में किया। कुल मिलाकर २२ केन्द्रों में शोध चल रहा है और ऐसा अनुमान है कि विश्व भर में अपनी

कोटि का यह अद्वितीय कार्यक्रम है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इसके लिये १·६ करोड रुपये नियत किये गये हैं।

४. प्रत्येक राज्य में फार्म विश्वविद्यालय

१९७३-७४ (चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की समाप्ति) तक भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय होगा। अभी तक ११ राज्यों में १२ कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी है। महराष्ट्र में दो विश्वविद्यालय हैं जब कि पंजाब, हरियाना, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मैसूर, आसाम, पश्चिमी बंगाल तथा उडीसा में एक एक विश्वविद्यालय हैं। शीघ्र ही बिहार, गुजरात, केरल एवं तमिलनाड में एक एक कृषि विश्वविद्यालय स्थापित होने जा रहे हैं। हिमाचल प्रदेश में भी कई कालेजों को मिलाकर एक विश्वविद्यालय बनेगा।

इन विश्वविद्यालयों की स्थापना में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का विशेष सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। प्रत्येक विश्वविद्यालय को २ करोड रुपये का अनुदान प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में २८ करोड रुपये की राशि कृषि शिक्षा के लिये निर्धारित की गई है।

यही नहीं, कृषि की ओर तरुण, प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आकृष्ट करने के लिये पाँच 'जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार' दिये जावेंगे जो पाँच-पाँच हजार रुपये के होंगे और इसी वर्ष से कृषि में सर्वोतम शोध के लिये प्रदान किये जाने प्रारम्भ होंगे। २५ छात्रों को ९ वर्षों तक प्रति मास १०० से लेकर ४०० रुपये तक की छात्रवृत्तियाँ भी दी जावेंगी।

५. अद्‌भुत लिंग परिवर्तन

मछली की एक जाति में मादाओं में लिंग-परिवर्तन का विलक्षण उदाहरण पाया गया है। डा० लेव फिशेल्सन (अमरीका) की प्रयोगशाला में एक जाति की २० मादा तथा २ नर मछलियां थीं। जब उन्होंने नरों को हटा दिया तो २० मादाओं में से एक मछली नर में परिवर्तित हो गई। इसी प्रकार जब इस नर को विलग कर दिया गया तो १८ मादा मछलियों में से एक पुनः नर हो गई। अन्त तक यह क्रिया चलती रही। लिंग परिवर्तन का यह अनन्य उदाहरण है!

६. वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के रजत जयन्ती पुरस्कार

जो भारतीय वैज्ञानिक मौलिक एवं महत्वपूर्ण शोध कार्य कर रहे हैं किन्तु आर्थिक सहाय्य के अभाव में अपना कार्य आगे नहीं बढा पा रहे हैं उन्हें प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वै० औ० अ० परिषद ने प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष १–१½ लाख रुपये की सहायता ३-५ वर्षों की अवधि के लिए प्रदान करने की योजना बनाई है।

जो वैज्ञानिक इस अवसर का लाभ उठना चाहें वे वै० औ० अ० परिषद के सचिव से पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

● ●

**बेकारी को हटाने में विज्ञान सर्वाधिक सहायक हो सकता है
परन्तु आपको लगन से कार्य करना होगा।
विज्ञान तो कार्य की पूजा है।**

पुस्तक समालोचना

जीवइ सिद्धान्त : लेखक पुरुषोत्तम सर्राफ। प्रकाशक महावीर प्रसाद सर्राफ, २०/१ देवेन्द्र रोड, कलकत्ता ७। पृष्ठ संख्या ६६। मूल्य १ रु०। चतुर्थ संस्करण जनवरी १९७० ● ●

यह पुस्तक लेखक के गहन चिन्तन से प्रसूत है। नित्यप्रति मुद्रा इकाई की अस्थिरता से सामान्य जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है उससे बचने का सरल उपाय ढूंढ निकालना कठिन कार्य है किन्तु प्रस्तुत कृति में जीवइ नामक ऐसी इकाई का प्रस्ताव किया गया है जो न तो अवमूल्यित हो सकती है और न क्षीण हो सकती है। यह मनोवैज्ञानिक इकाई है, यह भोजन दिलाते रहने वाली इकाई है। यह वस्तुपरक इकाई है। यह इकाई वैज्ञानिक समाधान के रूप आज जर्जर अर्थशास्त्र नीति के लिये मलहम सदृश है। यदि सरकार इस प्रस्ताव को शतांश भी कार्य रूप में परिणत कर सके तो कोटि कोटि पीड़ित जनों का उद्धार हो सकेगा। ● ●

इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है। इसकी छपाई भी अच्छी है। यह संग्रहणीय कृति है।

आयकर पद्धति की समीक्षा : लेखक : पुरुषोत्तम सर्राफ। प्रकाशक उपर्युक्त। मूल्य ३ रु०। पृ ११२।

वर्तमान आयकर पद्धति के जितने भी दोष हो सकते हैं उन्हें अनुभवी लेखक ने निर्भीकतापूर्वक लेखनीबद्ध किया है। यह समीक्षा 'विश्वमित्र' नामक दैनिक (कलकत्ता) में छप चुकी है किन्तु इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर लेखक ने इसे पुस्तकाकार कर दिया है। इस पुस्तक के अन्त में अनेक उपयोगी आँकड़े संग्रहीत हैं। आशा है यह शासकवर्ग एवं हितचिन्तकों के लिये समान रूप से पथ प्रदर्शिका बनेगी।

पुस्तक की छपाई उत्तम है। हाँ इतनी छोटी पुस्तक का तीन रुपये मूल्य अधिक है।

तन्मात्रा तथा विश्व का मनोमय मूल : लेखक रमाशंकर भट्टाचार्य। प्रकाशक—लेखक स्वयं। मूल्य एक रुपया। पृष्ठ संख्या ६४। प्रथम संस्करण १९७०। ● ●

यह ग्रंथ 'अध्यात्म तत्व विज्ञान ग्रंथ माला' का द्वितीय पुष्प है। इस ग्रंथमाला का उद्देश्य वाह्यजगत तथा मनोजगत का विश्लेषण ऋषियों की पद्धति से करते हुये शिक्षित पाठकों को उससे परिचित कराना है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हमें सर्वतोमुखी उन्नति करनी है तो वाह्यज्ञान के उत्कर्ष के साथ साथ अध्यात्म ज्ञान के अध्ययन पर बल देना होगा। प्रश्न है कि इस ज्ञान को कौन सुलभ बनावे ? सौभाग्यवश काशी के सुप्रसिद्ध विज्ञान व्याकरणाचार्य डा० रमाशंकर भट्टाचार्य ने इसे सुलभ बनाने का बीड़ा उठाया है। निस्संदेह उनकी पैठ गहरी है। उन्होंने सांख्य की 'पञ्चतन्मात्रा' कल्पना को सुबोध एवं ग्राह्य शैली में प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। पंचभूतों (तथा कथित तत्वों) के मूल रूप की कल्पना सुखद है, विशेषतया भारतीय दार्शनिकों एवं मनीषियों के लिये। यह कोरी कल्पना नहीं है। यह विश्लेषण के प्रकार पर निर्भर करता है। लेखक ने (पृ० १०-१२) तन्मात्र साक्षात्कार की पद्धति का भी विस्तार से वर्णन किया है। उसने अनेक स्रोतों से अपने कथन की पुष्टि का प्रयास किया है जो वैज्ञानिक विधि का अनुमोदक है।

यह पुस्तिका पठनीय, संग्रहणी एवं मनन योग्य है। ● ●

सम्पादकीय

विज्ञान की लोकगम्यता

११ जुलाई 'इण्डियन नेशनल एकेडमी ग्राफ सांइसेज' (दिल्ली) की ओर से एक परिचर्चा का आयोजन हुआ था जिसका विषय था 'विज्ञान को लोकप्रिय कैसे बनाया जावे'। इस परिचर्या के अवसर पर डा० शेषाद्रि, एवं डा० आत्माराम भी उपस्थित थे। एक दर्जन से अधिक वक्ताओं ने अपने अपने विचार प्रकट किए। इस परिचर्चा के निष्कर्षों की घोषणा तो नहीं की गई किन्तु ऐसा लगा कि विज्ञान को जनता तक पहुँचाने के लिए कुशल प्रशिक्षण की आवश्यकता है। जन मानस के विश्लेषण की भी नितान्त आवश्यकता है क्योंकि आखिर विज्ञान जनता के लाभ के लिये होगा। कुछेक वक्ताओं का विचार था कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता ही कहाँ उठती है? जिसे आवश्यकता होगी वह पढ़ेगा। किन्तु नहीं, उदासीनता या भावुकता से काम चलने वाला नहीं। व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है।

इसमे दो रायें नहीं हो सकतीं कि लोकगम्यता के लिये क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशिय विज्ञान सम्बन्धी साहित्य सर्वाधिक सहायक होगा। किन्तु यह साहित्य कौन लिखे, कैसे छपे और फिर कैसे बँटे—ये विकट समस्या का रूप धारण कर लेते हैं। माना कि अन्तिम दो के लिये पूंजी से काम निपटाया जा सकता है किन्तु क्या प्रथम के लिये भी पूंजी उपयोगी नहीं होगी? एक वक्ता ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों से घोषित किया कि आजकल मौलिक लेखन से अधिक लाभकर अनुवाद करना है फलतः लोग उसी की ओर उन्मुख होते हैं।

सच बात तो यह है कि बड़े बड़े वैज्ञानिकों को इस ओर कार्य करना होगा। उन्हें अपनी शोधों को जनहिताय सरल शब्दों में प्रकाशित करना होगा। देश तथा विदेश में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति को जनता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये सूचना रूप में लगातार प्रसारित करना होगा। देश भर की वैज्ञानिक संस्थाओं को इन वैज्ञानिकों से सम्पर्क स्थापित करके जनता के कल्याण हेतु सभी प्रकार के यत्न करने होंगें। कोरी नारेबाजी से न तो वैज्ञानिक साहित्य पल्लवित होगा और न जनता लाभान्वित हो सकेगी।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

प्रति अंक ४० पैसे
वार्षिक ४ रुपये

डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ } भाद्रपद २०२७ विक्र०, १८९२ शक सितम्बर १९७० { संख्या ६

एक अहम् प्रश्न

विज्ञान की लोकगम्यता

— डा० शिवगोपाल मिश्र

लोक अत्यन्त व्यापक शब्द है। वैसे प्रायः गाँवों में रहने वाली अपढ़ जनता को लोक की संज्ञा प्रदान की जाती है। किन्तु यह इससे अत्यंत परे है और सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को समाहित करने में समर्थ है। 'लोक' और 'वेद' अत्यन्त प्राचीन शब्द हैं अतः इसके अर्थ गाम्भीर्य में न जाकर हम 'लोक' का अर्थ सामान्य जन, जनता, कम पढ़े लिखे लोग के रूप में कर सकते हैं। जो कथन या विचार या भाव ऐसे प्राणी-समूह की समझ में आ जांय, वे 'लोक-गम्य' कहे जावेंगे और लोक में ऐसे विचारों की व्याप्ति या पहुंच 'लोकगम्यता' कही जावेगी।

'विज्ञान' का शाब्दिक अर्थ विशेष ज्ञान है। सुसंकलित, सुसमृद्ध विचारों के समूह को 'विज्ञान' कहते हैं। आजकल 'विज्ञान' का प्रयोग ज्ञान की विशेष विधा के लिए हो रहा है जो भौतिक सुख शांति के लिए नाना प्रकार के साधन जुटा सकती है। विशेषतया साहित्य से इसे भिन्न कोटि में रखने का यही कारण है कि साहित्य जीवन की गहराइयों को, मनुष्यता को, धर्म को आश्रय देता है किन्तु 'विज्ञान' भौतिक उपलब्धियों के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। विज्ञान का जन्म 'क्यों' और 'कैसे' जैसे तर्कों से हुआ है। जब कि साहित्य मानस की उपज है।

स्पष्ट है कि जब हम विज्ञान की लोकगम्यता की बात कहते हैं तो हमारा संकेत उन समस्त साधनों की ओर रहता है जिनके माध्यम से विज्ञान का प्रसार हो सकता है। विज्ञान की उपयोगिता सर्वविदित है। उसके बल पर जल, थल और वायु पर विजय प्राप्त की जा चुकी है। अतः जब हम विज्ञान को लोकगम्य बनाना चाहते हैं तो वह सौद्देश्य होता है-हम चाहते कि संसार का प्रत्येक प्राणी इस ज्ञान-राशि से सुपरिचित हो ले, यह जान ले कि यह ब्रह्माण्ड

नयनों से देखा है, नियमों का अनुसरण करके ऊर्जा का सम्प्रयोग किया जा सकता है, चन्द्र लोक की यात्रा की जा सकती है, मानव द्वारा मानव का संहार हो सकता है ।

विज्ञान को लोकगम्य इसलिये भी बनाना है कि जनता में हीन भावना व्याप्त है वह धार्मिक अन्धविश्वासों से चालित होती है । जब विशुद्ध ज्ञान की बात आती है तो वह हिचकती है, अपने अज्ञान को समक्ष रखती है, फिर अपने को विज्ञान की प्रगति से असम्बद्ध रखना चाहती है । वह विज्ञान के करामतों की प्रशंसक है और ध्वंसलीला की निन्दक भी । ठीक है । किन्तु एक दूसरे से सुनकर नहीं, समझकर ही उसे ऐसा करना चाहिए । इसके लिए उसे शिक्षित करना होगा । यह शिक्षा स्कूली सर्टिफिकेट वाली न होकर चलती भाषा में महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विषयों की जानकारी प्रस्तुत करने के रूप में होगी ।

निश्चय है कि ऐसी शिक्षा में पत्र-पत्रिकायें अत्यन्त सहायक होंगी । चित्रपट, रेडियो तथा टेलीविजन भी कम उपयोगी साधन नहीं हैं । प्रदर्शनियां तथा व्याख्यान भी लाभदायक होंगे । परन्तु प्रश्न है कि इन्हें किस प्रकार से सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित किया जाय । यह सच है कि हम योजना बनाने में दक्ष हैं किन्तु उसके व्यावहारिक पक्ष में, उसे कार्य रूप में परिणत कर पाने में, हम कमजोर हैं । हमारा समस्त तकनीकी ज्ञान बाहरी देशों से काढा हुआ है जनता तक पहुंचने में हमें स्वयं हिचकिचाहट है, भय है । हम ईमानदार भी नहीं हैं । कोरी राष्ट्रीयता से काम नहीं चलता । हमें कुछ करके दिखाना होगा ।

वस्तुतः विज्ञान की लोकगम्यता का प्रश्न इन्हीं सारी बातों से जुड़ा हुआ है । विज्ञान की उपयोगिता देखते हुए, रुढ़िवादी परम्पराओं को नवीन स्वरूप देने के लिए, सुख से रहने के लिए तथा बीसवीं शती के मानव की भाँति आचरण करने के लिए यह आवश्यक ही होगा कि विज्ञान को लोकगम्य बनाया जाय । उसे सबके लिए सुलभ बनाया जाय ।

यहाँ पर हम अपने विचारों को वैज्ञानिक लेखन तक ही सीमित रखेंगे ।

भारत में अनेक भाषाएं हैं जिन्हें राष्ट्रभाषा हिन्दी के बाद समान स्थान प्राप्त है । स्पष्ट है कि विभिन्न भाषाओं के विज्ञान-विशारदों, विज्ञान प्रेमियों को अपनी लेखनी की परीक्षा देनी है । यदि वे चाहते हैं कि उनके भाषाभाषी विज्ञान के तथ्यों से परिचित हों तो वे ऐसी भाषा एवं शैली अपनायें जो सबों को ग्राह्य हो सके । एक बार इस पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद जो कुछ शेष बचता है वह वैज्ञानिक विषयों का चुनाव है । इसमें दो मत नहीं हो सकते कि समस्त विषयक सामग्री देश या यों कहें कि संसार भर के मनुष्यों के लिए समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए । यह तो पाठकों का कार्य होगा कि वे क्या पढ़ें क्या सीखें और क्या न पढ़ें-सीखें । मार-मार कर सबों को सभी विषय नहीं पढ़ाये जा सकते । उसे स्वरुचि के अनुसार चुनने के लिए विपुल सामग्री चाहिए ।

खेद है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन सम्बन्धी जो भी कार्य हुआ है वह अभी प्रारम्भिक अवस्था में है । दो वर्ष पूर्व भारतीय विज्ञान पत्रिकाओं के १४ सम्पादकों ने दिल्ली में मिल कर एक समिति बनाई, जिसका उद्देश्य विज्ञान को लोकप्रिय बनाना है । दुर्भाग्य है कि हिन्दी जैसी समर्थ भाषा में छपने वाली पत्रिकाओं की संख्या अधिक नहीं है । इतना ही नहीं, इनको पढ़ने वाले लोगों की संख्या अत्यल्प है । 'विज्ञान-प्रगति' जैसी लोकप्रिय मासिक पत्रिका के पाठकों की संख्या १२ हजार से अधिक नहीं है । उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित 'कृषि और पशुपालन' नामक पत्रिका के ग्राहकों की भी संख्या १४ हजार ही है । किन्तु इसके विपरीत मलयालम में निकलने वाली एक पत्रिका है (केरल कर्षकण) जिसके पाठकों की संख्या ३५ हजार से भी अधिक है ऐसा क्यों ? इसलिये कि राष्ट्रभाषा होने पर भी हिन्दी में वैज्ञानिक विचार-धारा को प्रस्तुत करने वाली पत्रिकाएं अभी भी मनोनुकूल सामग्री प्रस्तुत नहीं कर पातीं ।

आखिर वे कौन-कौन सी विशिष्ट शाखायें हैं जिन पर वैज्ञानिक सामग्री प्रकाशित होती है ? यदि नाम लिये जांय तो वे होंगी आयुर्वेद, कृषि, उद्योग आदि । रसायन, भौतिकी

[शेष पृष्ठ ४ पर]

परीक्षा का क्या स्वरूप हो

[प्रिय पाठकों से प्राप्त एतत्सम्बन्धी पत्र दिये जा रहे हैं—सम्पादक]

प्रिय महोदय,

परीक्षा का क्या स्वरूप हो ? इस विषय में मेरे विचार निम्नांकित हैं :

"पूरे कोर्स के लिये जो वर्ष भर या उससे अधिक चलने वाले अध्ययन-क्रम पर निर्भर है, केवल एक ही परीक्षा के फल पर ही परीक्षार्थियों के भविष्य का निर्णय होना उचित नहीं है। इस अंतिम परीक्षा के लिये पूर्णांक ४०% से अधिक नहीं होने चाहिये। बाकी ६०% वर्ष भर या कोर्स की अवधि में किये गये कार्य तथा उस अवधि में ली गई परीक्षा परिणामों व जांच फलों के लिये निर्धारित रहें। ये परीक्षण अध्यापक द्वारा बिना सूचित किये कक्षा में कभी भी लिये जा सकते हैं। वार्षिक परीक्षा के अतिरिक्त परीक्षाएँ प्रति मास या प्रति दो महीने में निश्चित तिथि को पूर्व सूचित कार्यक्रम के अनुसार रखी जा सकती हैं।

परीक्षा-भवन में पुस्तकों के उपयोग की अनुमति तब दी जा सकती है जब प्रश्नपत्र इस बात को दृष्टिगत रखते हुए बनाये जायें। ऐसा करने पर इसका लाभ वे ही परीक्षार्थी उठा सकेंगे जिन्होंने उन पुस्तकों का भली भाँति अध्ययन किया हो।

परीक्षण के तौर पर कुछ सीमित स्थानों में, जहाँ विद्यार्थी अनुशासन के पाबंद हों, परीक्षाएँ बिना परीक्षा निरीक्षकों के ली जावें। जब सब कुछ परीक्षार्थियों के भरोसे ही छोड़ दिया जाता है तो इस बात की संभावना बहुत अधिक है कि वे ईमानदार रहेंगे और अनुचित साधनों का प्रयोग नहीं करेंगे। इस प्रकार के कुछ सफल परीक्षणों के पश्चात् ऐसा धीरे धीरे सर्वत्र सभी परीक्षाओं में किया जावे।"

पुरुषोत्तम स्वामी, उदयपुर

प्रिय महोदय,

वह परीक्षा परीक्षा कहाँ है जिनमें पुस्तकों का उपयोग करने के लिये छात्र स्वतन्त्र हों, सम्भावना यही है कि इसमें अनुशासनहीनता इस हद तक पहुँच जाये कि छात्र परीक्षा भवन तक जाने के लिये उद्यत ही न हों। वे घर बैठे उत्तर पुस्तकें एवं प्रश्नपत्र चाहेंगे। तब फिर क्या होगा ?

स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षा पद्धति दोषपूर्ण है। आवश्यकता है कि छात्रों को प्राचीन पाठशाला-पद्धति पर ज्ञान अर्जित करने के लिये प्रेरित किया जाय। पढ़ाई मात्र-पढ़ाई न रहे वरन् वह उद्योगों के लिये तैयारी के रूप में पीठिका का कार्य करे।

शायद भारत का भविष्य ऐसी ही शिक्षा पर निर्भर करता है। खाकर उगलना स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। रट कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो भी लिया जाय तो उससे क्या लाभ। अन्ततः छात्रों की व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक क्षमता को समृद्ध बनाने के प्रयास होने चाहिए।

रमेश, प्रयाग

मान्यवर महोदय,

यह सच है कि आज जो कुछ परीक्षा के नाम पर हो रहा है वह भारतीय शिक्षा-प्रणाली के लिए लज्जाजनक है। एक गुरू के समीप सहस्रों छात्र विद्याभ्यास करते थे। क्या मजाल कि गुरू की दक्षिणा पूरी किये बिना वे व्यावहा-

रिक जीवन में प्रवेश कर सकते ?

आज की स्थिति गम्भीर है। गुरू और शिष्य दोनों ही अपने अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का पालन नहीं करते। गुरू झूठा प्रमाण पत्र दे सकता है और शिष्य गुरू की हत्या कर सकता है।

अच्छा तो यह होता कि एक बार समस्त छात्र-समुदाय स्थिर एवं शान्त चित्त होकर अपने अभिभावकों एवं अध्यापक के समक्ष देश की वास्तविक आर्थिक एवं औद्योगिक स्थिति को समझने का प्रयास करता और फिर अपनी अपनी क्षमता एवं आकांक्षा के अनुसार उसी के अनुरूप पठन कार्य करता। सभी डाक्टर नहीं बन सकते और न सभी इंजीनियर। लाटरी जैसे भाग्य-परीक्षण से देश का अहित होगा। अनुशासन हीनता फैलेगी और जो कुछ हो रहा है उसकी पुनरावृत्ति होगी। राजनीतिज्ञों की चले तो छात्रों को वे न केवल गुमराह कर दें वरन् वे देश को वैज्ञानिक क्षेत्र में पीछे धकेल दें। तरुणों के अदम्य उत्साह एवं छात्रों की अभूत शक्ति को ठीक से बाँधना होगा। इसके लिये अनुभवी शिक्षकों को तत्परता दिखानी चाहिए। पुस्तकों के प्रयोग से परीक्षा उत्तीर्ण करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि उससे अर्जित ज्ञान का किसी समुचित दिशा में प्रयुक्त करने की जिज्ञासा का होना।

काश कि छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना आती।

विपिन, पटना

● ●

[पृष्ठ २ का शेषांश]

इंजीनियरी आदि को प्रश्रय देने वाली पत्रिकाओं का अभाव है। इसका कारण यह है कि प्रकाशकों को न तो जन रुचि का ठीक-ठीक ज्ञान है, न ही वे इस दिशा में पहल करना चाहते हैं। वे स्कूली पाठ्य पुस्तकों से धन कमाना चाहते हैं।

हमारे वैज्ञानिक भी कम दोषी नहीं हैं। वे न तो ख्याति के लिए कुछ करते हैं और न अपने विषयों को ही लोकप्रिय बनाते हैं। विज्ञान की लोकगम्यता में वैज्ञानिकों का विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है जब यह ठीक से समझ लिया जावे कि अधिकारिक वैज्ञानिक सूचनाओं के अभाव में सामग्री किस प्रकार प्रकाशित हो सकती है ? वैज्ञानिकों को, जो देश विदेशों में हो रहा है, उसकी झलक जनता को भी दिलाते रहना होगा। इसके लिए उन्हें अपनी भाषाओं में लेख लिखने होंगे। सामग्री को रोचक बनाने के लिए साहित्यिक शैलियों का सहारा लेना होगा।

जो लोग यह कहते हैं कि यदि जनता को 'विज्ञान' में कुछ दीखेगा तो वह स्वयं उसे सीखेगी, इस विचारधारा में ज्यादा सार नहीं है। कुंआ और प्यासा का सा मामला है। जनता को जब यह ज्ञान हो जावेगा कि अमुक ज्ञानराशि अमुक स्रोत से उपलब्ध हो सकती है तो वह शिक्षित श्रेणी में आ जावेगी।

ध्यान रहे कि जनता यह भी भीख नहीं मांग रही है कि आप उन्हें वैज्ञानिक ज्ञान से दीक्षित करें। यह तो उन सभी लोगों का कर्त्तव्य है जो स्वयं विज्ञान के हामी हैं। आखिर 'विज्ञान वाद' का प्रचार होना है तो इस मांगलिक कार्य में योगदान देना होगा। यह भारत की सी बात नहीं है, यह अनेक राष्ट्रों पर लागू होने वाली बात है। क्या अमेरीका या रूस विज्ञान की लोकगम्यता के हामी नहीं हैं ? कोई भी ज्ञान मनुष्य मां के पेट से सीख कर नहीं आता। उसे संस्कारों द्वारा अर्जित करना पड़ता है। यदि देश में या समाज में उसके लिए उपयुक्त वातावरण बना दिया जावे तो इसमें सन्देह नहीं कि वह कार्य सरलता से सम्पन्न हो जावेगा। विज्ञान की लोकगम्यता का यही रहस्य है।

(क्रमशः)

● अपने दैनिक जीवन में हिन्दी को अधिकाधिक स्थान दीजिये

किसान भाइयों से

खेत में विचरने वाले ये अदृश्य जीव

□ डा० रमेश चन्द्र तिवारी

शायद आपको जानकारी नहीं होगी कि आपके खेत की एक चम्मच भर मिट्टी में करोड़ों **जीव** विद्यमान रहते हैं। इनमें अधिकांश को तो आप बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्र के देख नहीं सकेंगे। इन सूक्ष्मजीवों की अनुपस्थिति में बहुत संभव है कि आपके खेत अनुर्वर अथवा बंजर हो जाँय और बालू कि तरह अक्रिय। तो क्या कभी आपके मन में यह जिज्ञासा उठी कि उनके बारे में कुछ जानें? आइये आज हम इनमें आपका इन्ट्रोडक्सन कराते हैं जिससे जब कभी आप खेत पर जाँय तो इनका सुख दुख सुनें।

मिट्टी में चूहे जैसे चौपायों से लेकर केंचुए, दीमक, चींटी, निमेटोड, फफूंद, काई तथा जीवाणु (बैक्टीरिया) आदि जीव असंख्य मात्रा में विचरते रहते हैं। इनमें से कुछ तो हानिकारक होते हैं जो फसलों को काट कर खाते हैं परन्तु अधिकांश आपकी फ़सल को खिलाते रहने में व्यस्त रहते हैं। प्रस्तुत लेख में हम मुख्य रूप से काई, फँफूद तथा जीवाणुओं का विस्तृत परिचय दे रहे हैं।

कृषकों के मित्र फफूंद

इनके कुछ परिवारों से तो आपका परिचय होगा ही। ये पावरोटी में लगी भुकुड़ी, चमड़े की बेल्ट व जूते पर जमे सफेद पदार्थ, बासी भोजन व अचार तथा मुरब्बे आदि पर के विभिन्न रेसेदार काले श्वेत अवयव ही तो हैं जो मिट्टी में अधिकाधिक मात्रा में तथा विभिन्न रूप-रंगों में पाये जाते हैं। जहाँ तक इनकी संख्या का प्रश्न है फफूंद बैक्टीरिया तथा **एक्टिनोमाईसिटीस** की कुल संख्या का १ प्रतिशत होते हैं परन्तु यदि एक एकड़ में उपस्थित समस्त फफूंद के शरीर तथा एक्टिनोमाइसिटीस एवं जीवाणुओं का भार लिया जाय तो अकेले फफूंद का भार शेष दो वर्गों के जीवों के लगभग बराबर होता है। ये मुख्यतया भूमि सतह पर फैली होती हैं। इन्हें ऐसे भी तथा कुछ को सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखा जा सकता है कुछ फफूंद तो मिट्टी के ऊपर ही कई इंचों तक फैले नजर आते हैं। ये हरे रंग को छोड़ कर अन्य किसी भी रंग के होते हैं। हरा रंग न होने के कारण ये जीव अपना भोजन संश्लेषित नहीं कर पाते अतः इन्हें खेत में पड़े पशु एवं पौध अवशेषों पर आश्रय लेना पड़ता है। इन्हें परजीवी कहा जाता है। पौध अवशेष के सेल्युलोस तथा लिगनिन पदार्थ इनके मुख्य भोज्य पदार्थ हैं।

फफूंद मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक अवयवों का विघटन करके उन्हें कार्बन डाई आक्साइड तथा जल में परिवर्तित कर देते है और इससे प्राप्त ऊर्जा से अपनी कोशिकाओं का निर्माण करते हैं। इसके फलस्वरूप कार्बनिक अवशेषों में संघटित खनिज तत्व भुक्त हो जाते हैं जिन्हे पौधे अपने भोज्य पदार्थ के रूप में प्रयोग करते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि कुछ फफूंद पेड़ों की जड़ों के साथ माइकोराइजा का निर्माण करते हैं जिसके फलस्वरूप पौधों की पोषण क्षमता में काफी वृद्धि हो जाती है और पेड़ों की वृद्धि भी अपेक्षाकृत अधिक होती है फफुंद, जो माइकोराइजा बनाते हैं उनसे भोज्य पदार्थों का अवशोषण अधिक होने का कारण अधिक अवशोषण-सतह का होना है। ऐसा अनुभव है कि माइकोराइजा वाली जड़े बिना माइकोराइजा वाली जड़ों की की अपेक्षा सैकड़ों गुनी अधिक अवशोषण शक्ति रखतीं हैं।

फफूंदी का लाभदायक प्रभाव तभी तक रहता है जब

तक खेत में वातीय दशा उपस्थित रहती है। यदि खेत में पानी भर जायेगा तो फफूंद की कार्य-क्षमता नष्ट हो जायेगी तथा वे विघटन सम्बन्धी कोई कार्य नहीं कर पावेंगे। यही कारण है कि कार्बनिक पदार्थ अधिक होते हुये भी जो क्षेत्र जलमग्न रहते हैं वहां पीट मिट्टी का विकास हो जाता है और उस पर खेती तभी संभव है जब उसका जल-निकास ठीक हो सके।

भूमि में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों में सूक्ष्मतम होती बैक्टीरिया (जीवाणु), परन्तु इनकी संख्या अन्य मृदाजीवों की अपेक्षा अत्यधिक होती है। यदि लगभग २५००० जीवाणुओं को जोड़ा जाय तो लगभग १ इंच लम्बाई आयेगी। यद्यपि ये अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं परन्तु खेत की उपरिस्तर मिट्टी में इनकी मात्रा कुल मिट्टी भार की ०.०३ प्रतिशत अर्थात् लगभग १००० पौ० होती है। बलुई तथा अकृष्य मिट्टियों में इनकी संख्या बहुत कम होती है।

कुछ **जीवाणु** अपनी कोशिका-निर्माण तथा जीवन निर्वाह पशु एवं पौध अवशेषों का विघटन करके, उससे प्राप्त कार्बन तथा ऊर्जा से करते हैं। वे पेड़-पौधों तथा पशुओं के अवशेषों में उपस्थित वसा, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेटों का विघटन करते हैं। ऐसे जीवाणुओं को परपोषी जीवाणु कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ जीवाणु रंगधारी होते हैं जो प्रकाश-उर्जा का अवशोषण कर पेड़-पौधों की भाँति वायुमंडलीय कार्बनडाईआक्साइड के कार्बन से अपनी कोशिका बनाते हैं कुछ जीवाणु ऐसे भी होते हैं जो मिट्टी में उपस्थित सल्फर को सल्फेट में, हाईड्रोजन को जल में, कार्बन मोनो आक्साइड को कार्बन डाइआक्साइड में तथा अमोनिया को पहले नाइट्रस अम्ल, फिर नाइट्रिक अम्ल में आक्सीकृत करके ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं और वायुमंडल से कार्बन लेकर अपना शरीर निर्माण करते हैं। इन्हे स्वपोषी कहते है।

अधिकांश **जीवाणुओं** को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है जिसमें कुछ की पूर्ति ये पशु एवं पौधों के प्रोटीन अवशेषों से कर लेते है तथा इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले कुछ ऐसे जीवाणु भी हैं जो दलहनी फसलों की जड़ों में गाँठ के रूप में सहयोग करके वायुमंडलीय नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। इन्हें **राइजोबियम** कहते हैं। इस प्रकार स्थिरीकृत नाइट्रोजन दलहनी फसल तथा जीवाणु दोनों ही के लिए अत्यन्त लाभकरी होती है। ऐसा अनुमान है कि ये जीवाणु प्रतिवर्ष एक एकड़ खेत में ५० से १५० पौ० तक नाइट्रोजन स्थिर करते हैं। यही कारण है कि फसल चक्र में दलहनी फसलों को रखना आवश्यक समझा जाता है क्योंकि इससे खेत को नाइट्रोजन-लाभ होता है। इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य **एजोटोबैक्टर** जीवाणु भी करते हैं जिन्हें किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं होती। ये एक एकड़ में प्रतिवर्ष ५० पौ० तक नाइट्रोजन स्थिर करने की क्षमता रखते है।

जहाँ तक **एक्टिनोमाइसिटीस** का प्रश्न है ये संख्या में तो जीवाणुओं की अपेक्षा १/१० से १/५ ही होते हैं परन्तु इनकी कोशिका लम्बी, धागेदार, शाखायुक्त रेशों की तरह होती है जो जीवाणु कोशिका से आकर में बड़ी होती है। यही कारण है कि यद्यपि ये संख्या में जीवाणुओं से कम ही पाये जाते हैं परन्तु एक एकड़-फुट मिट्टी से प्राप्त एक्टिनोमाइसिटीस का भार उतने ही क्षेत्रफल से प्राप्त कुल जीवाणुओं के भार के बाराबर होता है इस वर्ग के मृदा सूक्ष्मजीवों की अधिकतम संख्या, कम नमी तथा विघटित कार्बनिक पदार्थ की अन्तिम अवस्था वाली मिट्टियों में होती है। खेत में जोती गई घासों की सड़ने की दुर्गंध, पुराने अन्न व पुआल आदि के सड़ने की एक विशेष गंध एक्टिनोमाइसिटीस द्वारा विघटन क्रिया का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त ये कार्बनिक पदार्थ का विघटन तथा उनका ह्यूमीकरण भी करती है। इससे कुछ रोग निरोधी पदाथ भी विसर्जित होते हैं जो तमाम मानवीय रोगों की चिकित्सा में प्रयोग किये जाते हैं।

काई जो कि पौधों का साधारण स्वरूप है और जो नीली, हरी, लाल तथा भूरी आदि रंगों की होती हैं रंगदार होने के कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया से भोजन तैयार कर लेती हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म से लेकर एक कोशिकीय

तथा धागे के आकार तक कई प्रकार की होती हैं। ये अधिकतर धनकर खेतों में, तालाबों में तथा समुद्र में उगती हैं। कभी-कभी नम खेतों के उपरिस्तर में भी उगती दिखाई पड़ती हैं। उनका जीवन चक्र घंटों से लेकर कुछ ही दिनों में पूरा हो जाता है। अतः यदि खेत अथवा तलाबों में पानी भरकर उसमें संतुलित उर्वरक थोड़ी मात्रा में डाल दिया जाय तथा प्रकाश का उचित प्रबन्ध हो तो ऐसी गणना की गई है कि इनकी खेती से वर्ष में एक एकड़ क्षेत्रफल से ४० टन शुष्क पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि काई के शुष्क पदार्थ में ५० प्रतिशत तक प्रोटीन रहता है। अतः उचित क्रियाओं के पश्चात् इसे खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है तथा खाद के रूप में भी।

कुछ काई की जातियाँ तो खेत में वायुमंडलीय नाइट्रोजन भी स्थिर करती हैं। इसके अतिरिक्त ये मृदा-निर्माण तथा कार्बनिक मिट्टियों के विकास में भी योगदान देती हैं।

मृदा सूक्ष्म-जीवों के अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य मृदा की भौतिक दशा का सुधार करना तथा पौधों के भोज्य तत्वों की उपलब्धि में वृद्धि करके उनके शारीरिक विकास को नियमित करना है। जीवाणु, एक्टिनोमाइसिटीस तथा फफूंद मृदा में उपस्थित पशु एवं पौधों के भी अवशेषों का अपघटन करके एक तो कार्बन डाइआक्साइड निकालते हैं, दूसरे तमाम खनिजों को अवशेषों से मुक्त करके उन्हें उपलब्ध कराते हैं। इसके फलस्वरूप पौधों को प्रकाश संश्लेषण के लिए पर्याप्त कार्बन डाइक्साइड मिलती रहती है और साथ ही खनिज तत्व भी। इसके अतिरिक्त, काई तथा जीवाणु वायु मंडलीय नाइट्रोजन गैस को मृदा में स्थिर करके भी पौधों को लाभ पहुँचाते हैं। अमोनिया को नाइट्रेट में आक्सीकृत करने फास्फोरस का खनिजीकरण, अनुपलब्ध लोहा, मैंगनीज, तथा गंधक को उपलब्ध रूप में परिवर्तित करना, मृदा-सूक्ष्म जीवों की लाभदायक क्रियायें हैं।

अतः आपके खेत व क्यारी में उपस्थित सूक्ष्मजीव जब इतने लाभदायक हैं तो उनकी देखभाल अत्यन्त आवश्यक है, तभी आपको अधिकतम पैदावार मिल पायेगी। खेत में अधिकाधिक पौध एवं पशु अवशेष डालिए खेत को जलमग्न होने से बचाइये अर्थात् जल निकास ठीक रखिये, खेत की अम्लीयता तथा क्षारकता भी इन जीवों के अनुकूल रखने का प्रबन्ध करिये। जितनी आवश्यकता खेत में अन्य क्रियाओं की होती है उतनी व्यवस्था मृदा जीवों की भी करनी चाहिए। इसीलिए राज्य स्तर पर अब मृदा सूक्ष्मजीव संबन्धी शोधों के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई है और की जा रही है। खेत में असंतुलित उर्वरक डालने तथा सूखा पड़ने आदि से भी मृदा जनसंख्या का ह्रास होता रहता है अतः इन्हें रोकना चाहिए।

● ●

- **विज्ञान की उन्नति देश की राष्ट्रभाषा पर निर्भर करेगी**
- **विज्ञान की लोकप्रियता में हिन्दी ने चार चाँद लगाए हैं**
- **'विज्ञान' को पढ कर हिन्दी के उन्नयन में योग दें**
- **विज्ञान आपकी पत्रिका है। इसके लिये अपना योग दें**

प्रकाश से भी तीव्र कण "टैकीयानस"

□ श्यामलाल काकानी

$\overrightarrow{\sim\sim\sim}$ V<C	$\overrightarrow{\sim\sim\sim\sim}$ V=C	$\overrightarrow{\sim\sim\sim\sim\sim}$ V>C
साधारण पिण्ड या कण	फोटोन और न्यूट्रीनो	टैकीयानस

सैद्धांतिक भौतिकी के कई वैज्ञानिकों का यह स्पष्ट मत है कि प्रकाश से तीव्र कण संभव है। इनकी उपस्थिति से विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त और कारणता सिद्धान्त का किसी भी तरह से अतिक्रमण नहीं होता है। अगर प्रयोगों द्वारा इनका अभिज्ञान संभव हो सका तो इनका उपयोग अन्तर तारकीय ग्रहों, नक्षत्रों से संचार व्यवस्था स्थापित करने में किया जा सकेगा।

वर्तमान दशाब्दी में दूरी को कम करने अर्थात् चन्द्रमा सौर मण्डल के अन्य ग्रहों इत्यादि पर पहुँचने या सम्पर्क स्थापित करने के लिए वैज्ञानिकों ने महान प्रयास किए। इन प्रयासों की सफलता के फलस्वरूप ही हम मानव को चन्द्रमा पर उतारने में सफल हो सके हैं। अब तक इन प्रयत्नों में हमारे यान की गति ४०,००० किलोमीटर प्रति घंटा या ११ किलो मीटर प्रति सैकन्ड तक पहुँच सकी है। अगर हम ग्रहों, नक्षत्रों आकाश गंगा इत्यादि की सैर के स्वप्नों को साकार बनाना चाहते हैं तो हमें अपने यान कि गति प्रकाश के वेग से कई गुनी अधिक बढ़ानी पड़ेगी। अगर हम प्रकाश के वेग से गति करें तो हमारे सबसे नजदीक सेन्टौरी तारा पर पहुँचने में ४½ वर्ष और आकाश गंगा पर पहुचने में ८०,००० वर्ष लगेंगे। अतः इस समय हम जिस गति को प्राप्त कर सके हैं, उसको देखते हुए आकाश गंगा पर पहुँचना केवल स्वप्नवत लगता है। लेकिन वर्तमान दशाब्दी में हुये वैज्ञानिक चमत्कारों को देखते हुये यह असंभव प्रतीत नहीं होता है। टैकीयानस का अभिज्ञान, संभवतया इस दिशा में पहला कदम होगा।

जब किसी पिण्ड की गतिज ऊर्जा में वृद्धि होती है तो उसके वेग में भी वृद्धि होती है। लेकिन विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार, पिण्ड की ऊर्जा में कितनी ही वृद्धि क्यों न की जाय, उसका वेग कभी प्रकाश के वेग को प्राप्त नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में प्रकाश का वेग एक सार्वभौमिक स्थिरांक है। सन् १८८७ में माइकेल्सन तथा मोले ने क्लीवलैंड में अपने ऐतिहासिक प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया कि प्रकाश के वेग पर उसके स्रोत की गति का कोइ प्रभाव नहीं पड़ता है, अर्थात् प्रकाश का का वेग एक सार्वभौमिक स्थिरांक है, जिसका मान ३×१०^{१०} सें० मी० प्रति सैकन्ड है।

वर्तमान दशाब्दी के अन्तिम वर्षों में सैद्धान्तिक भौतिकी के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने अपना यह स्पष्ट मत व्यक्त किया है कि प्रकाश से तीव्रकणों की उपस्थिति संभव है। इनकी उपस्थिति से विशिष्ट सापेक्षता और कारणता सिद्धान्तों (Causality Principle :—A Cause must always precede its effect) का कोई अतिक्रमण नहीं होता है। इनके अनुसार प्रकाश का वेग पिण्डों या कणों को तीन श्रेणियो में विभाजित करता है :—

१ वे कण या पिण्ड, जिनका वेग कभी प्रकाश के वेग को प्राप्त नहीं कर सकता। आधुनिक भौतिकी के प्रयोगों में प्रयुक्त उप परमाणु कण इसी श्रेणी में आते हैं, जिनका वेग कण त्वरकों से भी करीब $१०^{९}$ सें० मी० प्रति सैकन्ड ही बढाया जा सका है, जो करीब प्रकाश के वेग का $\frac{१}{३०}$ वा भाग है।

२ वे कण जो सदैव प्रकाश के वेग से ही गति करते

हैं और जिनका वेग प्रकाश के वेग से कम या अधिक नहीं बढाया जा सकता है जैसे फोटोन और न्यूट्रीनो।

३ वे कण जो सदैव प्रकाश से तीव्र वेग से गति करते हैं और जो कभी भी प्रकाश के वेग से गति नहीं कर सकते हैं, अर्थात जिनका वेग कभी भी प्रकाश के वेग को प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसे कणों का नाम **टंकीयानस** रखा गया है। टंकीयानस एक ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ **तेज गति से चलने वाले कण है**।

अब प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि क्या टंकीयानस की उपस्थिति अर्थात प्रायोगिक अभिज्ञान संभव है? क्या इनकी उपस्थिति से आइन्सटीन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त का अतिक्रमण होता है? इन कणों का अभिज्ञान किस प्रकार किया जाय? इन कणों के अभिज्ञान के पश्चात क्या इनके संभाव्य उपयोग हो सकते हैं यहाँ इन्ही प्रश्नों के संभाव्य प्रत्युत्तरों के विवेचन करने का प्रयास है।

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त और लौरेन्ज रूपान्तर

चिरसम्मत यांत्रिकी के अनुसार यदि एक प्रेक्षक के सापेक्ष किसी कण या पिन्ड के निर्देशांक (x, t) हों और दूसरा प्रेक्षक जो पहले प्रेक्षक के सापेक्ष वेग U से गति कर रहा है उसके प्रति उसी कण के निर्देशांक $(x' \; t')$ हों तो दोनों प्रेक्षकों के निर्देशांकों में निम्नांकित सम्बन्ध होंगे :—

$$x' = x + Ut$$
$$t' = t$$

और कण का प्रेक्षित वेग V निम्न समीकरण से प्रदर्शित कर सकते हैं।

$V' = V + U$, जबकि V पहले प्रेक्षक का वेग है। ये नियम इस कारण पर आधारित हैं कि गतिमान पिण्डों के प्रक्षेप पथ, वेग, काल, द्रव्यमान तथा दिक सभी निरपेक्ष हैं। विद्युत चुम्बकीय तरंगे निर्वात में प्रकाश के वेग से गति करती हैं। अगर कोई प्रेक्षक इन तंरगों के सापेक्ष वेग U से गति कर रहा हो तो प्रेक्षित वेग के उपर्युक्त नियम के अनुसार, उसका प्रेक्षित वेग $V = C + U$ होना चाहिए।

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार किसी भी प्रेक्षक या कण का वेग प्रकाश से तीव्र नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दों में वेग काल द्रव्यमान और दिक ये सभी सापेक्ष हैं। इनकी परिभाषा तभी सार्थक हो सकती है; जब इनका विवेचन किसी निर्देश तंत्र या निर्देशांक प्रणाली के संदर्भ में किया जाय। उदाहरणस्वरूप हम एक समान सरल रेखीय गति करते हुये अन्तरिक्ष यान से गिराई गयी वस्तु के पथ का अनुसरण करें। पृथ्वी पर खड़े होकर देखने पर वस्तु का प्रक्षेप-पथ परवलयाकार प्रतीत होगा। जबकि यान में बैठे हुये यात्री को वही वस्तु सरल रेखीय गति करती हुई प्रतीत होगी। प्रत्येक निर्देशतंत्र का निजी काल होता है अतः दो घटनाओं की समक्षणिकता की बात उन निर्देशांक प्रणालियों के संदर्भ के बिना करना जिनमें ये घटित होती हैं, सर्वथा निरर्थक है। 'काल' का तात्पर्य तब तक अपूर्ण है जब तक हम इसे किसी के सापेक्ष अंकित न करें। प्रकाश के वेग के प्रमाणित स्थिरत्व तथा सापेक्षता की धारणा के अनुरूप प्रणालियों के रूपांतरण हेतु लौरेन्ज ने कुछ नियम बनाए, जिनको हम लौरेन्ज 'रूपान्तर' नियम कहते हैं। इन नियमों को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :—

$$x' = \frac{x - Ut}{\sqrt{\left(1 - \frac{U^2}{C^2}\right)}} \qquad (१)$$

$$t' = \frac{t - \frac{Ux}{C^2}}{\sqrt{\left(1 - \frac{U^2}{C^2}\right)}} \qquad (२)$$

और प्रेक्षित वेग का नियम

$$V' = \frac{V + U}{1 + \frac{VU}{C^2}} \qquad (३)$$

समीकरण (३) में V का मान कभी भी C (प्रकाश के वेग) से अधिक नहीं हो सकता है। अगर V और U प्रकाश के वेग से गति करें, तो V का मान C ही होगा।

चिरसम्मत यांत्रिकी के अनुसार गतिज वस्तु का द्रव्यमान या जड़त्व स्थिर होता है, अर्थात् वस्तु के जड़त्व पर उसकी गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार जड़त्व भी वस्तु का स्थिर गुण नहीं है। वह वस्तु के वेग पर निर्भर करता है। इसको निम्न समीकरण से व्यक्त करते हैं :—

$$M = \frac{Mo}{\sqrt{1 - V^2/c^2}} \qquad (४)$$

जबकि M→ गतिमान अवस्था में पदार्थ का जडत्व।

Mo→ स्थिर अवस्था में पदार्थ का जडत्व।

V→ पदार्थ का वेग।

समीकरण (४) से यह स्पष्ट होता है कि जैसे जैसे पदार्थ के वेग में वृद्धि होती है, उसका द्रव्यमान भी बढ़ता है, लेकिन ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती है जब वस्तु का वेग प्रकाश के वेग से अधिक हो सके।

टैकीयानस और विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त

वैज्ञानिकों का स्पष्ट मत है कि टैकीयानस की उपस्थिति संभव है। इनके अनुसार ऐसे कण प्रकाश से तीव्र वेग से उत्पन्न होते हैं और इनका वग कभी भी प्रकाश या प्रकाश वेग से कम नहीं किया जा सकता है। इनके अनुसार टैकीयानस की उपस्थिति के कारण विशिष्ट सिद्धान्त (प्रकाश के रोध को पार नहीं किया जा सकता है) का किसी भी प्रकार से अतिक्रमण नहीं होता है।

चूंकि टैकीयानस प्रकाश से तीव्र गति से ही उत्पन्न होते हैं अतः V<C समीकरण ४ के अनुसार इनका स्थिर जड़त्व ऋणात्मक होगा। दूसरे शब्दों में इनमें त्वरण होने पर ये ऊर्जा उत्सर्जित करेंगे। जब इनके वेग में कमी होगी तो इनकी ऊर्जा में भी वृद्धि होगी। किन्तु यह हमारे अनुभव से पूर्णतया विपरीत है क्योंकि साधारण कणों के वेग में वृद्धि होने पर उनकी ऊर्जा में अवश्य वृद्धि होती है। टैकीयानस की ऊर्जा तभी शून्य होगी जब इनका वेग अनन्त होगा और इनका वेग तभी प्रकाश के वेग को प्राप्त कर सकता है, जब इनकी ऊर्जा में असीमित वृद्धि हो जाय। ये दोनों कल्पनाये असंभव प्रतीत होती हैं। अतः प्रकाश का वेग वास्तव में एक आश्चर्यजनक रोधक का कार्य करता है जिसे कभी पार नहीं किया जा सकता है।

चूंकि टैकीयानस अति तीव्र वेग से उत्सर्जित होते हैं अतः अपने उत्सर्जन के स्थान से एक से० मी० के बहुत छोटे से भाग की दूरी में ही अपनी निहित ऊर्जा उत्सर्जित करके स्रोत में प्रविष्ट हो जायेंगे।

प्रयोगकर्ताओं के समक्ष मूल समस्या यह है कि टैकीयानस का अभिज्ञान किस प्रकार किया जाय? एलवगर और क्रिमलर ने इस अभिज्ञान के लिये दो विधियाँ सुझाई हैं

१ अगर टैकीयानस का प्रत्यक्ष प्रेक्षण आवश्यक न हो तो किसी भी लुप्त द्रव्यमान वर्णक्रमी का उपयोग किया जा सकता है। इसमें टैकीयानस ऐसे कणों के रूप में प्रकट होंगे जिनका (लुप्त द्रव्यमान)^2<O होगा।

[२] वैज्ञानिकों का अनुमान है कि संभवतया टैकीयानस निर्वात में सेरेनकॉव विकरण उत्सर्जित करेगें। इसका उपयोग टैकीयानस के अभिज्ञान में किया जा सकता है। इसकी वैधता निम्न परिकल्पनाओं पर निर्भर करती है :—

(अ) ऐसा कोई भी भौतिक नियम अब तक ज्ञात नहीं है जिससे टैकीयानस निर्वात में सेरेनकॉव विकिरण उत्सर्जित न करें।

(आ) पदार्थ द्वारा टैकीयानस के प्रग्रहण की प्रायिकता बहुत कम है।

(इ) साधारण कणों (आवेशित) की तरह विद्युत क्षेत्र में टैकीयानस की ऊर्जा में भी वृद्धि होगी।

इनमें अन्तिम परिकल्पना बहुत महत्वपूर्ण है। इनके आधार पर प्रयोग भी किये गये लेकिन सफलता प्राप्त नहीं हुई।

यह सर्व विदित है कि आवेशित कण प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं संभवतया ये कण टैकीयानस भी हो सकते हैं। अमरीका में कुछ वैज्ञानिकों ने सीसा पर

[शेष पृष्ठ पर]

ये बंजारे पक्षी

— अशोक कुमार शर्मा

पक्षियों का पर्यटन 'पक्षी-विज्ञान' का एक रहस्यपूर्ण अध्याय है। प्रत्येक वर्ष लाखों पक्षी एक लम्बी यात्रा प्रारम्भ करते हैं और विभिन्न दूरियों को तय करते हुए, महाद्वीपों एवं सागरों को लांघते हुए एक निर्धारित लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं। ये यात्राएँ विशेषकर बसंत एवं शीत ऋतु में होती हैं।

पक्षियों के पर्यटन की परम्परा पुरानी है और इसका उल्लेख पुराने ग्रंथों में मिलता है। ऋग्वेद में पक्षियों की पंक्तिवद्ध, अबाध गति से उड़ने के विशेषता की चर्चा है।

इनके पर्यटन एवं प्रवास पर विचार करते समय कई प्रश्न सामने आ जाते हैं? पक्षी क्यों इस प्रकार की अनोखी यात्रा एवं प्रवास के लिए बाध्य होते हैं! किस प्रकार ये अपना मार्ग निर्धारण करते हैं? आदि।

प्रतिकूल मौसम एवं भोजन के अभाव के कारण ये दूरस्थ अनुकूल जलवायु वाले स्थानों पर जाकर प्रवास करते हैं और पुनः अपने मूल निवास स्थानों पर अनुकूल जलवायु होने पर एक निर्धारित समय से लौट आते हैं। विभिन्न परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि ये पक्षी सामन्यतः शीत ऋतु (अगस्त-सितम्बर) में अपना घर छोड़कर दक्षिणी गोलार्द्ध में आ जाते हैं और बसंत ऋतु (मार्च-अप्रैल) में प्रजनन हेतु अपने निवास स्थान पर वापस आ जाते हैं।

ये प्रवासी पक्षी हजारों लाखों की संख्या में विशाल भूखन्डों पहाड़ों एवं समुद्रों को बिना किसी दिशा सूचक यंत्र, मानचित्र, पथप्रदर्शक के पार करते हैं। पक्षी विद्या विशेषज्ञ इस अनोखे पर्यटन के संबन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए अनवरत उद्योग कर रहे हैं। पर्यटनशील पक्षियों को पकड़कर, चिन्हांकित कर छोड़ दिया जाता है। पक्षियों को चिन्हांकित करने के लिए पैरों में किसी हलकी धातु (अलम्यूनियम) का छल्ला पहनाने की विधि इस समय लोकप्रिय है। इस विधि की शुरुआत डेनमार्क के प्रोफेसर सी० सी० मोर्टेन्सन ने की थी। अपने देश में पक्षियों को चिन्हांकित करने का सुनिश्चित कार्यक्रम सन् १९५९ में विश्वखाद्य संघटन एवं बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी के संयुक्त तत्वावधान में प्रारम्भ हुआ। विख्यात विद्वान डा० सलीम अली इस कार्यक्रम के निर्देशक थे। छल्लों पर अध्ययन का कार्यक्रम चलाने वाली संस्था का पता अंकित होता है। जब चिन्हांकित पक्षी पकड़े जाते हैं तो पकड़े जाने के समय एवं स्थान की सूचना छल्ले पर अंकित पते पर भेज दी जाती है। इस सूचना को मानचित्र पर अंकित कर लेते हैं और वर्षों के अध्ययन के बाद इन पक्षियों के उड़ान का मार्ग पता लग जाता है।

उड़ान से पूर्व पक्षी आवश्यक तैयारी करते हैं। ये अधिक भोजन कर शरीर में चर्बी एकत्र कर लेते हैं जिससे उड़ान के समय भोजन के आवश्यकता की पूर्ति होती है। कुछ पक्षी पंक्तियों एवं झुंडों में उड़ने का अभ्यास करते हैं।

ये पक्षी १० मील से २५००० मील तक की दूरी तय करते हैं। कुछ पक्षी दिन में, कुछ रात में और बहुत से दोनों समय यात्रा करते हैं। रात में अक्सर छोटे आकार के पक्षी-मक्खीचोर, कांचन, सारिका आदि उड़ते हैं। रात्रि में उड़ने के कारण ये शत्रुओं की निगाह से भी बच जाते हैं। मुर्गाबी, सारस, बाज आदि दिन में यात्रा करते हैं। कुछ पक्षी भोजन के लिए मार्ग नहीं रुकते और केवल आकाश मार्ग में मिलने वाले कीड़ों का भक्षण कर निर्वाह कर लेते हैं। ये पर्यटनशील पक्षी बहुधा अधिक ऊँचाई से नहीं उड़ते क्योंकि वहाँ हवा की पतली रेखा होने के कारण

साँस लेना कठिन हो जाता है। कभी कभी तो ये इतने नीचे से उड़ते हैं कि समुद्र की उतंग लहरें इन्हें लपेट लेती हैं। उड़ान के समय बहुत से पक्षी प्राकृतिक कोप—वर्षा, ओला, तूफान के करण मर जाते हैं। कुछ पक्षी जैसे सफेद तीतर, लाल चिड़िया आदि स्थान परिवर्तन नहीं करते जबकि कुछ पक्षी कभी कभी अकारण ही स्थान परिवर्तन कर देते हैं। सन् १९५६ में शिकारी मुर्गे अपने मूल स्थान मध्य एशिया को छोड़कर पोलेंड और इंगलैंड तक चले गए थे। परीक्षणों से पता लगा है कि पक्षी अपने निवास स्थान पर सही सही लौट आते हैं। यहाँ तक कि वे अपने पूर्व निर्मित घोसले में ही आकर रहते हैं। डा० सलीम अली ने एक वेगटेल पक्षी को चिन्हांकित किया था जो ४ वर्षों तक प्रत्येक जाड़े में उनके बगीचे में आता रहा।

भारत में विभिन्न प्रकार का मौसम पाया जाता है। अतः विभिन्न प्रकार के पर्यटक पक्षी आते हैं और प्रवास करते हैं। राजहंस शरद ऋतु में उत्तर भारत के जलाशयों में दिखाई पड़ते हैं। ये धीरे धीरे हिमालय की ओर बढ़ते हैं और गर्मी आने से पूर्व मानसरोवर तक पहुँच जाते हैं। चक्रवाक अगस्त के अन्त में नेपाल से भारत में आता है और मार्च में उत्तर की ओर उड़ जाता है।

ऐसा समझा जाता है कि पक्षी एक निर्धारित दिशा में अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति या अन्तः प्रेरणा के कारण उड़ते हैं। नवजात पक्षी भी दूरस्थ लक्ष्यों तक, जहां वे कभी नहीं गए हैं, पर्यटन काल में बिना किसी पथ प्रदर्शक के उड़ जाते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है पक्षी अपने मार्ग में कुछ चिन्ह निर्धारित कर देते हैं और उनकी सहायता से दिशा निर्धारण करते हैं। लेकिन ऐसा होना असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि एक तो ऊँचाई से चिन्ह स्पष्ट नहीं दिखाई देंगे और दूसरे समुद्र पर उड़ते समय चिन्ह निर्धारित करना कठिन है।

पक्षियों द्वारा उड़ान के समय दिशा निर्धारण की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विवेचन कई प्रोयगों के आधार पर किया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पक्षी सूर्य का प्रयोग कुतुबनुमा के रूप में करते हैं। लेकिन मेघाच्छन्न आकाश, कोहरे या धुन्ध के कारण इन्हें दिशाभ्रम हो जाता है। आकाश के साफ होने पर ये निर्धारित मार्ग पर पुनः यात्रा प्रारम्भ कर देते हैं। सन् १९६७ में १८०० पक्षी-धावक किंग जार्ज (पंचम) चैलेंज कप प्रतियोगिता में उड़े लेकिन इनमें से करीब १५०० समुद्री धुन्ध के कारण दूसरी जगहों पर उतर गए या देर से लक्ष्य पर पहुँचे।

पक्षी किस प्रकार दिशा निर्धारित करते हैं और उड़ान के समय अपने मार्ग पर बने रहते हैं यह अभी तक प्रतिपादित कई सिद्धान्तों के बावजूद रहस्यमय बना हुआ है। सन् १८४० के पूर्व की मान्यताएँ प्रायोगिक कसौटी पर खरी नहीं उतरी। चुम्बकीय सिद्धान्त के अनुसार पक्षी पृथ्वी चुम्बकीय क्षेत्र के प्रति संवेदनशील होते हैं और अपना मार्ग निर्धारित करने में वे इस गुण की सहायता लेते हैं। लेकिन पक्षियों की शरीर संरचना से पता लगता है कि इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए अक्षम हैं।

डा० जी० वी० टी० मैथ्यूस, डा० गुस्ताव क्रेमर एवं फ्रेंके सावेर (Sauer) द्वारा किए गए विशद अध्ययनों की सहायता से ही इस समय हम पक्षियों द्वारा मार्ग निर्धारण के लिए अपनाए गए तरीकों का अनुमान लगाने की स्थिति में हैं।

फ्रेंक सावेर (जर्मनी) ने रात्रि में उड़ने वाले कुछ वार्बलर पक्षी को प्लेनेटोरियम में रखा और कृत्रिम रुप से शीत ऋतु के आकाशीय दृश्य को उत्पन्न कर दिया। इन पक्षियों ने दक्षिण-पूर्व दिशा में उड़ने का प्रयत्न किया जो प्रकृति में इनके पर्यटन की वास्तविक दिशा थी। कृत्रिम रूप से तारों की स्थिति बदलने पर पक्षियों ने भी अपने उड़ान का मार्ग उस ओर कर दिया जिस ओर तारों द्वारा दक्षिण-पूर्व दिशा दिखाई जा रही थी।

डा० मैथ्यूस एवं डा० क्रेमर ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए मार्ग निर्धारण में सूर्य का अत्यधिक महत्व बताया। डा. क्रेमर के प्रयोगों से पता चलता है कि सूर्य या स्वच्छ आकाश की एक झलक मात्र पक्षी द्वारा सही मार्ग निर्धारण में सहायक होती है। उन्होने एक षटकोणीय

[शेष पृष्ठ २३ पर]

किसान के अदृश्य शत्रु

□ डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

यह मिट्टी असंख्य परजीवी जीवाणुओं से युक्त है। जिन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी के नहीं देखा जा सकता। परन्तु ये अदृश्य जीवाणु फसल में अनेक बीमारियाँ फैलाकर करोड़ों रुपयों का नुकसान करते हैं। प्रायः सभी प्रमुख फसलें समय समय पर इनकी शिकार होती हैं। पौधों में जड़ सम्बन्धित बीमारियाँ मुख्यतया इन्हीं अदृश्य जीवाणुओं के कारण होती हैं। मिट्टी में पाये जाने वाले कुछ जीवाणु किसी विशेष पौधे की जड़ों पर ही अपना जीवन-यापन कर सकते हैं। इन पौधों की अनुपस्थिति में ऐसे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। साथ ही कुछ ऐसे भी जीवाणु पाये जाते हैं जो बिना सजीव जड़ों के भी रह सकते हैं परन्तु इनका गुणन नहीं होता एवं ये सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। ये बिना पोषकों के भी वर्षों तक जीवित रह सकते हैं परन्तु पहले प्रकार के जीवाणु अपने पोषक पौधे के बिना जीवित नहीं रह सकते।

कवक पौधों की जड़ों के बिना जीवित रह सकते हैं और मृदा में ही वृद्धि करते रहते हैं। इनमें से कई सड़ते हुये कार्बनिक पदार्थ पर उगते एवं वृद्धि करते हैं। शैशवावस्था में पौधों की मृत्यु प्रायः कवकों के ही कारण होती है। पौधों का सूखना भी इन्ही के आक्रमण के कारण होता है।

मृदा में पाये जाने वाले ये अदृश्य जीवाणु असंख्य बीमारियों के कारण बन कर अपरिमित नुकसान पहुँचाते हैं। इतने बड़े नुकसान से छुटकारा पाने के लिये अनेक उपचार प्रयोग में लाये जाते हैं इनमें से सबसे अच्छा एवं कम खर्चीला साधन है पौधों की ऐसी जातियों का विकास करना जो इन रोगों से मुक्त हों। इस प्रकार की फसलों की किस्में अभी कम ही विकसित हुई हैं। अतः दूसरा रास्ता बचता है समय पर उचित कृषि कार्य कर के इन जीवाणुओं से छुटकारा पाना। ठीक सम्पन्न से कृषि कार्य बहुत हद तक जीवाणुओं द्वारा फैलाये जाने वाले रोगों को रोकते हैं।

प्राणिमात्र के सम्बन्ध में ऐसी कहावत है कि संतुलित आहार से स्वास्थ्य बनता है एवं स्वस्थ शरीर जल्दी रोग ग्रस्त नहीं होता। इसी प्रकार वनस्पति जगत में भी जिन पौधों को संतुलित भोजन उचित मात्रा में मिलता रहता है वे मृदा में उत्पन्न जीवाणुओं से कम ग्रसित होते हैं। मृदा की उत्पादन क्षमता पौधों को इतनी शक्ति प्रदान कर सकती है कि मृदाजनित जीवाणु जो कि परजीवी होते हैं पौधे पर कोई भी आक्रमण न कर सकें एवं स्वयं ही नष्ट होते जायँ परन्तु यह अक्षरशः सत्य नहीं है क्यों कि कभी कभी कोई कोई रोग उर्वरक प्रयोग करने से ज्यादा उग्र रूप धारण कर लेता है एवं फसल रोग से पूर्णतया प्रभावित हो जाती है। अतः पौधों की जड़ों पर आक्रमण करने वाले मृदा में उत्पन्न जीवाणुओं का अलग अलग ज्ञान एवं उनको रोकने के अलग अलग उपाय के सम्बन्ध में शोधकार्य आवश्यक है।

शोध परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि नाइट्रोजन का प्रयोग जहाँ कुछ पौधों की जड़ों को गलने से रोकता है वहीं कुछ अन्य पौधों में इस प्रकोप को बढ़ाता है। चुकन्दर एवं मटर में एफैनोमाइसेस (Aphanomyces) का प्रकोप नाइट्रोजन के प्रयोग से कम हो जाता है परन्तु अनाजों एवं ईख में पिथियम (Pythium) तथा अन्य पौधों में फ्यूसेरियम (Fusarium) एवं वर्टीसीलियम

Verticillium) के प्रकोप नाइट्रोजन के प्रयोग से और उग्र रूप धारण कर लेते हैं। सम्भवतः नाइट्रोजन के प्रयोग से जड़ों के कोष पतले हो जाते हैं जिससे जड़ों का गलन प्रकोप बढ़ जाता है कुछ लोगों का मत है कि नाइट्रोजन एवं फास्फोरस का अनुपात जो कि मृदा में अपना एक अलग महत्व रखता है, नाइट्रोजन के उर्वरक रूप में **प्रयोग से बदल जाता है एवं यही कारण है कि पौधे रोगों से अधिक** प्रभावित होते हैं।

फास्फोरस अधिकतर अनाजों के अंकुरित पौधों एवं जड़ की बीमारियों को रोकता है। इसके प्रयोग से जड़ें तेजी के साथ बढ़ती हैं एवं जड़ों की दीवालें मजबूत होती हैं अतः जीवाणु जड़ों पर कम आक्रमण कर पाते हैं। फ्यूसेरियम द्वारा उत्पन्न फसलों का पीला रोग एवं जड़ों के काले हो जाने का रोग भी फास्फोरस के प्रयोग से कम प्रभावकारी होते पाये गये हैं।

पोटाश की न्यूनता होने पर फसल में लगे जीवाणु अधिक प्रभावकारी हो जाते हैं। सम्भवतः शर्करा का नये कोषों के निर्माण में काम आने के स्थान पर जड़ों में इकट्ठा होना ही रोग के अधिक बढ़ जाने का कारण है, यह क्रिया पोटाश की न्यूनता की स्थिति में ही होती है। वर्टीसीलियम जनित कपास का रोग, पता गोभी का क्लब रूट रोग, जड़ों के फूलने का रोग आदि पोटाश की अधिकता में बढ़ते हैं परन्तु न्यूनता की स्थिति में उतने प्रभावकारी नहीं होते। टमाटर, गोभी जाति के पौधों का पीला होना, अनाजों के पाउडरी मिल ड्यू एवं कपास का फ्यूसेरियम जनित रोग पोटाश के प्रयोग से कम होते पाये गये हैं।

सूक्ष्ममात्रिक तत्व भी विभिन्न परिस्थितियों में अनेक जीवाणु-सम्बन्धी रोगों का कारण बनते हैं। चुकन्दर में जड़ के सूखने का कारण बोरान की कमी पाई गई है। बोरान डालने पर जड़ों में जीवाणुओं से अपना बचाव करने की शक्ति आ जाती है एवं पौधों की वृद्धि उचित रूप से होती रहती है। इसी प्रकार के अनेक रोग सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की कमी एवं अधिकता की स्थिति में जीवाणुओं एवं कवकों के कारण पौधों में लगते हैं एवं फसलोत्पादन में अपरिमित नुकसान पहुँचाते हैं। परन्तु अभी इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं के बराबर आकर्षित हो पाया है जब कि इस क्षेत्र में कभी कार्य शुरू हो जाना चाहिये था। यदि यही स्थिति बनी रही तो सूक्ष्ममात्रिक तत्वों पर आधारित जीवाणु फसलोत्पादन को अलाभकर बना देंगे।

जीवाणुओं एवं कवकों से होने वाले नुकसान को रोकने में आवश्यक कृषि कार्यों का महत्व कम नहीं है। पौधों में डैम्पिंग आफ (Damping off) रोग फैलाने वाले सूक्ष्म जीव प्रायः सभी मिट्टियों में पाये जाते हैं परन्तु इनका प्रकोप तभी भयानक होता है जब मिट्टी में वायु का आवागमन ठीक नहीं होता। इसलिये यह आवश्यक है कि इससे बचने के लिये खेत को ठीक से जुताई करके वायु के आवागमन को ठीक बनाये रखा जाय। कवकों द्वारा फैलने वाला 'डैम्पिंग आफ रोग' अधिक पानी भरे रहने, ठीक से प्रकाश न होने, मृदा में अम्लता की अधिकता होने एवं अन्य ऐसी स्थितियाँ होने की स्थिति में जिनमें पौधे ठीक से न बढ़ सकें अधिक गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं।

फसल चक्र के द्वारा भी इन सूक्ष्म जीवों द्वारा जनित रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। वे जीवाणु जो बिना परपोषक जड़ों के जीवित नहीं रह सकते फसल चक्र के द्वारा आसानी से नष्ट किये जा सकते हैं एवं उनके द्वारा होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। परन्तु इसके लिये फसलों एवं जीवाणुओं के बारे में विस्तृत ज्ञान आवश्यक है। कवकों को नष्ट करने में फसल चक्र बहुत ही उत्तम विधि है क्यों कि ये बिना अपने परपोषियों के अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकते। वे जीवाणु जो पौधों के रहने पर उन पर आक्रमण तो करते हैं परन्तु बिना परपोषक पौधों के भी जीवित रह सकते हैं फसल चक्र द्वारा नष्ट नहीं किये जा सकते। इनके लिये अन्य प्रभावकारी उपाय करने होंगे। फसल चक्र से कपास की जड़ों में गाँठ पड़ने का रोग, नेमैटोड (Nematodo) जनित जड़ गलने का रोग, तने का कालापन रोग एवं फ्यूसेरियम विल्ट आदि रोग आसानी से रोके जा सकते हैं।

जो जीवाणु ऊपर की विधियों से नहीं रोके

जा सकते वे रासायनिक पदार्थों के प्रयोग से रोके जा सकते हैं। इनको या तो सीधे मिट्टी में डालकर या बोये जाने वाले बीज में मिलाकर बोने से जीवाणुओं, कवकों एवं नेमैटोडों से छुटकारा पाया जा सकता है। अलग अलग जीवाणुओं के लिये अलग अलग रासायनिक पदार्थ प्रभावकारी पाये गये हैं। प्रायः रासायनिक पदार्थों का प्रयोग काफी व्ययकारी होता है एवं उससे आर्थिक लाभ होने के स्थान पर नुकसान होता है। यह भी देखा गया है कि ये जीवाणुनाशक हानिकर सूक्ष्म जीवों के साथ साथ फसल को लाभ पहुचाने वाले जीवों के लिये घातक हो जाते हैं। ऐसी दशा में इनके प्रयोग में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है।

आजकल जीवों के जैविक विनाश के सम्बन्ध में काफी कार्य हो रहा है। इसमें ऐसी परिस्थिति पैदा की जाती है जिसमें उन जीवों को बढ़ने की अधिकतम सुविधायें मिलती है जो हानिकर सूक्ष्म जीवों, कवकों आदि को नष्ट करने में सहायक होते हैं। ये जैविक विनाश के लिये प्रयुक्त जीव दो प्रकार से हानिकर सूक्ष्म जीवों को नष्ट करते हैं। (१) हानिकर जीवाणुओं पर सीधे आक्रमण करके उनको मार देते हैं एवं (२) उस खाद्य पदार्थ का स्वयं प्रयोग कर लेते हैं जिसको उपयोग में लाकर हानिकर जीव रहते एवं वृद्धि करते हैं।

मृदा में रहने एवं वहीं वृद्धि करने वाले इन जीवणुओं, कवकों एवं नेमैटोडों द्वारा किये गये नुकसान को देखते हुये आवश्यक है कि वैज्ञानिक इस ओर ध्यान दें एवं ऐसे प्रभावकरी उपायों की खोज करें जो हानिकर सूक्ष्मजीवों को तो नष्ट कर दें परन्तु लाभकर जीवाणुओं पर कोई प्रभाव न डालें। जहाँ तक हो सके वे अनुकुल प्रभाव डालें। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहे कि खोजे गये उपाय अधिक व्ययकारी न हों जिससे हमारे किसान इनको आसानी से उपयोग में ला सकें एवं फसलों के उत्पादन से अधिकतम लाभ उठा सकें।

● ●

[पृष्ठ १० का शेषांश]

अति तीव्र प्रकाश चमका कर विपरीत आवेशित युग्म टैकीयानस का उत्सर्जन करने का प्रयास किया है। इस प्रयोग में इन वैज्ञानिकों को सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

एक अभिनव सिद्धान्त के अनुसार, पदार्थ में टैकीयानस का अस्तित्व तभी सम्भव है, जब पदार्थ पर अति तीव्र दाब प्रयुक्त किया जाय। इस प्रकार की परिस्थितियां केवल क्वासर पर प्रतीत होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार संभवतया टैकीयानस का अस्तित्व क्वासर या पुलसर के केन्द्र में हो। क्वासर की परिस्थितियाँ प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से तैयार करना असंभव है।

टैकीयानस के अभिज्ञान के लिए हो रही प्रायोगिक प्रगति को देखकर हम यह आशा कर सकते हैं कि वैज्ञानिक अपने प्रयासों में बहुत जल्दी ही सफलता प्राप्त कर सकेंगे। अगर, हम यह मान लें कि टैकीयानस का अभिज्ञान हो जायगा, तो यह कहना आसान होगा कि इनका उपयोग हम अंतरिक्ष संचार के लिए उसी प्रकार कर सकेंगे, जिस प्रकार विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उपयोग पृथ्वी पर संचार के लिए किया जाता है। इनके उपयोग से निसंदेह हम सौर मंडल या ब्रह्माड में अन्य सभ्यता केन्द्रों से सम्पर्क स्थापित कर सकेंगे। फिर भी टैकीयानस के अभिज्ञान से हम इस प्रकार के किसी भी यान का जो, इनके वेग से गति करे निर्मित नहीं कर सकेंगे। क्योंकि प्रकाश के रोध को पार नहीं किया जा सकता है।

हम आशा कर सकते है कि अगली दशाब्दी में वैज्ञानिक ब्रह्मांड में अन्य सभ्यताओं से अवश्य ही सम्पर्क स्थापित कर सकेंगे। इसमें टैकीयानस का अभिज्ञान निसंदेह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

● ●

हमारे देश में सेब की कहानी

□ संकलित

स्वादिष्टतम फल सेब इतिहास के उदयकाल के पहले से ही पैदा किया जाता है। प्रागैतिहासिक कालीन झील की क्षेत्रीय बस्तियों में इस फल के जले हुये अवशेष पाये गये हैं। पाषाणकालीन मनुष्यों के बनाये हुये सेव के चित्र भी मिले हैं। इसके अलावा बाइबिल में भी सेब का वर्णन मिलता है।

वनस्पतिशास्त्र में सेव के पेड़ की गणना गुलाब के परिवार में की जाती है। वह किसी भी फल के पेड़ की तुलना में पृथ्वी के सबसे अधिक भाग में पैदा होता है। वह पृथ्वी के दोनों गोलार्धों के शीतोष्ण कटिबन्ध वाले उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों में सर्वत्र होता है।

अब से २,००० वर्ष पूर्व रोमन लोग सेब को २५ किस्मों से परिचित थे। समस्त यूरोप में न केवल खट्टे और जंगली सेब वरन् अनेक किस्म के उगाये सेब भी सदियों से खाये जाते रहे हैं। वे लोग सेब को खाने के अलावा उसका रस निकाल कर और शराब बना कर भी पीते थे।

यूरोपीय लोग संसार में, जहाँ-जहाँ भी गये वे अपने साथ सेब का पेड़ भी ले गये। और, इसी तरह सेब अमेरिका में और भारत में भी पहुँचा।

सेब का पेड़ उसका बीज बो कर भी उगाया जा सकता है लेकिन ऐसे पेड़ पर फल छोटा लगता है और उसकी किस्म में भी अन्तर पड़ जाता है। यही कारण है कि सेबों की चुनी हुई किस्मों के प्रसारण के लिये उनकी कलमें बाँधी और खूंटियाँ लगाई जाती हैं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बीज से उगने वाले पेड़ के फल का रंग, आकार, और स्वाद अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता है। इससे सेब की एक नई किस्म का जन्म होता है। ऐसी एक किस्म गत शताब्दी के अन्त में अमेरिका में उगाई गई थी और उसका नाम 'डेलिशस' रखा गया था। यह नाम उसके स्वाद का सही द्योतक है। दूसरे शब्दों में वह सचमुच बहुत ही 'डेलिशस' (स्वादिष्ट) होता है। आज अमेरिका में—और भारत में भी—'डेलिशस' किस्म का सेब लोकप्रिय किस्मों में सर्वोपरि हैं।

भारत में 'डेलिशस' किस्म के सेब को सर्वप्रथम लगभग ५० वर्ष पूर्व एक अमेरिकी सेम्युअल इवाइन्स स्टोक्स ने उगाया था। श्री स्टोक्स फिलाडेल्फिया (पेन्सिल्वेनिया) निवासी एक क्वेकर थे, जिन्होंने मानवता की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर रखा था। वह २२ वर्ष की आयु में १९०४ में भारत आये थे। वह शिमला से ५२ मील उत्तर में स्थित कोटगढ़ में बस गये और १९४६ में अपनी मृत्यु होने तक उस क्षेत्र के लोगों की विभिन्न प्रकार की सेवाएँ करते रहे।

श्री स्टोक्स जन्म से या अपने अनुभव के कारण फल-उत्पादक नहीं थे। उनके मकान के अहाते में पिपिन किस्म के सेब के दो वृक्ष खड़े थे जिनकी फसल से उन्हें १०० रुपये की आमदनी हुई। ये पेड़ उस अहाते में उनके बसने से पहले किसी ने लगा रखे थे। उन्होंने अनुभव किया कि यह आमदनी का अच्छा साधन है। पास-पड़ोस के स्थानों में सेब के और भी पेड़ थे किन्तु उन्होंने अपने देश अमेरिका में जिस किस्म के और जितने बड़े पैमाने पर सेब के के बगीचे देखे थे, उस तरह का बगीचा यहाँ एक भी नहीं था।

उन्होंने अपने मन में सोचा कि यहाँ भी बड़े पैमाने पर सेब क्यों नहीं लगाये जा सकते। सेब बोने के लिये दूर तक फैली पहाड़ी चोटियों और उनके ढलानों की जमीन बहुत अनुकूल थी। कोटगढ़ क्षेत्र ५,००० फुट ऊँचाई पर होने के कारण सेबों के लिए बहुत उपयुक्त था। किन्तु उन्हें इसका कारण जल्दी समझ आ गया। उस क्षेत्र में पिपिन और अन्य जिन किस्मों के सेब होते थे वे जल्दी पक जाते थे और उन्हें देर तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था। अच्छी सड़कें न होने से फसल को बाजार में पहुँचाना सुगम नहीं था। कोटगढ़ से उत्तर के इलाकों के बारे में तो यह बात और भी सही थी। इसके अलावा सेबों की किस्म भी बहुत अच्छी नहीं थी—वे खट्टे होते थे और उनका रंग भी आकर्षक नहीं था।

इन कठिनाइयों को हल करने का संकल्प करके श्री स्टोक्स ने अपने राज्य पेन्सिल्वेनिया की पौधशाला के प्रबन्धक को पत्र लिख कर 'डेलिशस' तथा कुछ अन्य चुनी हुई किस्मों के सेब की पौध भेजने को कहा। उस समय 'डेलिशस' की मांग अमेरिका में बढ़ने लगी थी, क्योंकि उसका रंग अच्छा था और गूदा मोटा व रसीला था। वह सितम्बर-अक्टूबर में तैयार होता था, इसलिये ग्राहक न मिलने पर उसे देर तक— पाँच महीनों तक— रखा जा सकता था।

पौधशाला से सेब की पौध प्राप्त करके श्री स्टोक्स ने अपना पहला बगीचा व्यावसायिक स्तर पर लगाया और उसके साथ उन्होंने भारत के आर्थिक इतिहास में एक ऐसा महत्वपूर्ण अध्याय लिखा कि ५० वर्षों से भी कम समय में हिमालय प्रदेश को भारत का सेब-उत्पादक राज्य माना जाने लगा है और कोटगढ़ के सेबों का संसार भर में नाम हो गया है।

यूरोप में सेबों की ७॥ हजार से अधिक किस्में पैदा की जाती हैं और संसार की कुल ३५ अरब पौण्ड वार्षिक पैदावार का ५० से ६० प्रतिशत भाग वहीं होता है, फिर भी हिमाचल प्रदेश में पैदा होने वाली 'डेलिशस' किस्म के सेब वहाँ आसानी से बिक जाते हैं। हिमाचल से 'डेलिशस' किस्म की सैकड़ों पेटियाँ यूरोप को भेजी जाती हैं। इस समय हिमाचल प्रदेश में जितने भी सेब पैदा होते हैं उनमें ९० प्रतिशत से भी अधिक 'डेलिशस' जाति के हैं। उनकी पौध काश्मीर, उत्तर प्रदेश और नेपाल व भूटान को भेजी जाती हैं।

हिमाचल प्रदेश में अधिकाधिक कृषि योग्य भूमि में सेबों व अन्य फलों के बगीचे लगाने की योजना पर अमल किया जा रहा है। चौथी पंच-वर्षीय योजना की समाप्ति तक १,४५,००० एकड़ से अधिक भूमि में फलों के बगीचे हो जायेंगे, जबकि १९५० में केवल १९५० एकड़ में ही बगीचे थे।

यदि बगीचे की अच्छी तरह देखभाल की जाये तो प्रति एकड़ १०,००० रुपये से १५,००० रुपये तक औसत आमदनी होना आश्चर्यजनक नहीं माना जाता। कुछ बगीचे के मालिक, विशेष रूप से कोटगढ़ के इलाके में, प्रति एकड़ २५,००० रुपये तक आमदनी होने की बात कहते हैं। कोटगढ़ में अब गरीबी दिखाई नहीं देती। वहाँ १०० से अधिक बगीचों में टेलीफोन लगे हुये हैं। वे बिजली से चलने वाले पम्पों और कीटमार दवा छिड़कने के यन्त्रों का उपयोग करते हैं। उनके घरों में रेफ्रिजरेटर भी हैं हालाँकि ६०० फुट ऊंचाई पर उन्हें आवश्यकता की वस्तु नहीं कहा जा सकता।

● ●

अन्तरिक्ष की ओर—भारत के कदम

इतिहास के पन्ने उलटने से यह विदित होता है कि हिन्दुस्तान में हैदर अली एवं उसके वीर पुत्र टीपू सुल्तान ने स्वनिर्मित राकेटों का प्रयोग ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध किया था। ये राकेट ३ किलोग्राम भार के लोहे के बने थे। कहा जाता है कि ब्रिटिश कर्नल सर विलियम कॉंग्रेव ने टीपू सुल्तान से राकेट बनाने के फारमूले की जानकारी प्राप्त की एवं फ्रांस के विरुद्ध युद्ध में इसका प्रयोग किया। धीरे-धीरे इनका प्रयोग लोग भूल से गये परन्तु दूसरे विश्वयुद्ध में जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित राकेट के प्रयोग ने सुरक्षा की दृष्टि से इनके महत्व को पुनः ताजा कर दिया।

राकेट, चाहे वे पुराने समय के साधारण ढंग के हों, चाहे आज के वैज्ञानिक युग के उच्चकोटि के, न्यूटन के तीसरे सिद्धान्त "प्रत्येक कार्य के लिये उसके प्रतिकूल बराबर की प्रतिक्रिया होती है" के आधार पर बनाये गये हैं।

वर्तमान अन्तरिक्ष युग का जन्म तेरह वर्ष पूर्व १४ अक्टूबर १९५७ को हुआ। इसी दिन प्रथम मानव निर्मित उपग्रह रूस द्वारा छोड़ा गया। इसका भार ९० किलोग्राम था। इसमें रासायनिक बैटरियाँ तथा दो ट्रॉसमिटर लगे हुये थे जो अन्तरिक्ष के ताप, कास्मिक किरणों तथा सूक्ष्मतम ग्रहों के बारे में सूचनाएं भेजा करते थे। परन्तु तब हम भारतीयों के लिये मात्र मानव रहित उपग्रह का अपने देश द्वारा छोड़ा जाना एक स्वप्न सा प्रतीत होता था। उस समय भी डा० होमी जहाँगीर भाभा जैसे कई अन्य वैज्ञानिक उपग्रह सम्बन्धित विशेषताओं से परिचित थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देश के वैज्ञानिक एवं सरकार दोनों ही अन्तरिक्ष-यात्रा के प्रति उदासीन थे।

भारत में १९६३ में त्रिवेन्द्रम के पास थुम्बा राकेट स्टेशन की स्थापना हुई। अन्तरिक्ष से प्राप्त सूचनाओं का विश्व शान्ति के हित में प्रयोग करना इसका ध्येय निश्चित किया गया। थुम्बा का अपना एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है क्योंकि इसकी स्थिति चुम्बकीय विषुवत रेखा पर है। थुम्बा स्टेशन तो मात्र राकेट छोड़ने के लिये बनाया गया था। यदि १९६५ में अन्तरिक्ष विज्ञान एवं तकनीकी केन्द्र (Space Science and Technology Centre) जो थुम्बा के पास ही वेलीहिल पर स्थित है कि स्थापना न हुई होती तो यह स्टेशन मष्तिक विहीन शरीर की तरह होता। अन्तरिक्ष विज्ञान एवं तकनीकी केन्द्र में भू-नियंत्रण के संबंध में शोध कार्य होता है। इसकी विभिन्न प्रयोग शालाओं में हजारों वैज्ञानिक एवं इन्जीनियर अनवरत काम करते रहते हैं।

डा० विक्रम साराभाई द्वारा तैयार किये गये परमाणु शक्ति सम्बन्धी दस वर्षीय कार्यक्रम को देखने से विदित होता है कि भारत चार वर्ष के अन्दर एक ऐसा उपग्रह छोड़ने में सक्षम हो जायगा जो ६०० किलोमीटर ऊपर जाकर

चक्कर लगायेगा एवं ऐच्छिक रूप से वापस लौटाया जा सकेगा। विवरण में यह भी बताया गया है कि दस वर्ष के अन्दर राकेट को ४५००० किलोमीटर तक ऊपर भेजकर उसे सकुशल वापस लौटाने की क्षमता भारत के पास हो जायेगी। दस वर्ष पर छोड़ा जाने वाला राकेट संचार-उपग्रह से युक्त होगा। यह अन्तरिक्ष के बारे में सूचानयें भेजेगा। इस बीच समय समय पर अन्तरिक्ष उड़ानें भी चलती रहेंगी।

राकेट छोड़ने के पूर्व जलवायु, पृथ्वी की गति एवं गुरुत्वाकर्षण की गणना कर लेना आवश्यक होता है। इन सभी गणनाओं के लिये कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाना है क्योंकि गणना किये गये समय में नगण्य समय की त्रुटि भी राकेट एवं छोड़े गये उपग्रह को रास्ते से काफी दूर विचलित कर सकती है। अभी हाल ही में थुम्बा केन्द्र में शोध में लगे वैज्ञानिकों ने एक अत्यन्त उच्च कोटि का गणना यंत्र तैयार किया है।

भारत में आजकल ठोस रूप में ईंधन का प्रयोग करने वाले राकेट बनाने की दिशा में कार्य हो रहा है। परन्तु वैज्ञानिकों का मत है कि द्रव के रूप में प्रयुक्त ईंधन अधिक शक्ति प्रदान करेगा एवं न्यूनतम त्रुटिदायक होगा। ऐसी स्थिति में हमारे अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों एवं अभियन्ताओं का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे ईंधनों के प्रयोग की दिशा में शोध करें एवं यह निर्णय लें कि कौन सा ईंधन अधिक शक्तिशाली एवं न्यूनतम त्रुटि वाला होगा। इसी प्रकार तमाम परीक्षण करके यह भी निश्चित कर लेना चाहिये कि अन्तरिक्ष यान छोड़ने के लिये कई छोटे-छोटे राकेटों का प्रयोग उचित होगा कि केवल एक बड़े शक्तिशाली राकेट से काम चल जावेगा। इस पर अन्तरिक्ष विज्ञान एवं तकनीकी केन्द्र में शोध कार्य हो रहा है। इसके अन्तर्गत ७५-६०० मिलीमीटर व्यास की राकेट मोटरों का निर्माण होगा एवं उनका परीक्षण किया जावेगा।

उपग्रह अभियान अत्यन्त संवेदन शील संचार व्यवस्था के बिना अपूर्ण माना जाता है। इस प्रकार की संचार व्यवस्था के लिये सूक्ष्मतम तरंगग्राही कम्प्यूटर का होना आवश्यक है। इस क्षेत्र में भारत अभी-भ्रूण अवस्था में है। यही कारण है कि थुम्बा राकेट केन्द्र से छोड़े गये सभी राकेट ऐच्छिक कक्षा से भटक गये हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि १६७० के अन्त तक ऐसी संचार व्यवस्था बना ली जावेगी कि जिससे छोड़े जाने वाले राकेटों या उपग्रहों एवं पृथ्वी के नियंत्रण केन्द्र के बीच सम्बन्ध बना रहे और चालकों को गणना के अनुसार आवश्यक निर्देश दिये जा सकें। जैसा कि कहा जा चुका है कि ठोस रूप में ईंधन का प्रयोग द्रव रूप में प्रयुक्त ईंधन से, जो कि पम्प एवं वैद्युत उपकरणों के प्रयोग से नियंत्रित किये जा सकते हैं, अधिक समस्यायें उत्पन्न करते हैं। ऐसी स्थिति में ठोस ईंधन की एक बड़ी मात्रा बनाना एवं उससे शक्ति उत्पादन को नियंत्रित करना रसायन इन्जीनियरी विभाग की जिम्मेदारी है। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये देश में हो रहे कार्य के अनुसार ऐसा लगता है कि इस अभियान में अधिक समय लगेगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उपग्रह छोड़ने के लिये निम्न आवश्यकतायें सामने आती हैं :—(१) शक्तिशाली ईंधन-यह चाहे ठोस रूप में हो अथवा द्रव रूप में या दोनों के संयुक्त रूप से बना हो (२) राकेट एवं उपग्रह की रचनात्मक सामग्री-इसके लिये हल्की एवं मजबूत सामग्री होना चाहिये। अधिक भार प्रदान करने वाली सामग्री अच्छी नहीं मानी जायगी : (३) उत्तम नियंत्रण एवं निर्देश व्यवस्था-इसके बिना राकेटों के कक्षा से भटक जाने का भय बना रहेगा। (४) अत्यन्त संवेदन शील संचार व्यवस्था इसके बिना राकेट छोड़ने का ध्येय निरर्थक होगा। यदि राकेट एवं पृथ्वी के नियंत्रण केन्द्र के बीच सम्बन्ध न बना रहा तो अन्तरिक्ष के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं हो पायेगा एवं उपग्रह को इच्छित कक्षा में भेजा एवं लौटाया जाना सम्भव नहीं होगा। इन सभी क्षेत्रों में विस्तृत कार्यक्रम बना कर कार्य किया जा रहा है एवं निकट भविष्य में ही भारत सफलता पूर्वक अन्तरिक्ष अभियान में भाग लेने में सक्षम हो जायगा।

अन्त में सबसे महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करने की बात है। वह है अभियान में अनुमानतः होने वाले व्यय।

डा० विक्रम साराभाई के अनुसार १९७४ ई० तक जब कि भारत केवल स्काउट (Scout) उपग्रह की स्थिति तक ही होगा । ३१ करोड़ रुपये खर्च होंगे। स्काउट स्थिति में साधारण किस्म के राकेटों का प्रक्षेपण सम्भव हो सकेगा । परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि डा० साराभाई के अन्य सहयोगियों का मत है कि उपग्रह अभियान में आवश्यक सामग्री की बढ़ती हुई कीमत के बावजूद १९७४ तक होने वाला व्यय अधिक से अधिक ३५ करोड़ रुपये होगा। इसमें ८ करोड़ रुपये का विदेशी आयात भी सम्मिलित है। लेकिन आलोचकों के अनुसार १९७४ ई० तक व्यय होने वाली राशि १०० करोड़ रुपये से किसी भी स्थिति में कम नहीं होगी।

गर्भ-निरोध की गोलियों के समर्थन में

वाशिंगटन में कांग्रेस की हाल की सुनवाइयों में गर्भ-निरोधक गोलियों के इस्तेमाल के बारे में आम तौर पर चिन्ता प्रकट की गई। फरवरी में हुई जनमत-संग्रह के अनुसार जो महिलाएँ इन गोलियों का इस्तेमाल कर रही थीं उनमें से १८ प्रतिशत ने उनका इस्तेमाल एकाएक छोड़ दिया है और २३ प्रतिशत अन्य महिलाएँ उनका इस्तेमाल छोड़ने पर गम्भीरता से विचार कर रही हैं।

यह बात निश्चित हैं कि जहाँ तक गोलियों से होने वाली तथा-कथित क्षति का सम्बन्ध है, कांग्रेस की इन सुनवाइयों के प्रारम्भ के बाद कोई भी आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। और जानकार चिकित्सकों का कहना है कि इन सुनवाइयों से ऐसी किसी नई बात की जानकारी नहीं हुई जिसका उल्लेख पहले की प्रकाशित सामग्री या वैज्ञानिक बैठकों में न हुआ हो।

१५ जनवरी, १९७० को धात्री-विज्ञान तथा स्त्री-रोगों के डाक्टरों के अमेरिकी कालेज ने अपने १२,००० सदस्यों की ओर से एक वक्तव्य में यह कहा था कि वह खाई जाने वाली "गर्भ-निरोधक गोलियों को मान्यता प्राप्त चिकित्सा पद्धतियों में से एक मानता है।"

प्लैन्ड पेरेन्टहुड संघ की राष्ट्रीय चिकित्सा समिति द्वारा संतति-निरोध की गोलियों की सिफारिश करना आज भी जारी है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि अमेरिका में प्रतिवर्ष दो लाख से १० लाख के बीच गैर-कानूनी ढंग के गर्भ गिराये जाते हैं। गैर-कानूनी ढंग से गर्भ गिराये जाने का काम अक्सर ऐसे लोगों द्वारा भी किया जाता है जिन्होंने उसका विधिवत प्रशिक्षण या ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। ऐसे लोगों द्वारा गर्भ गिराने के १ लाख मामलों में से १०० में गर्भवती की मृत्यु भी हो जाती है।

हाल के एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्रतिवर्ष ७,५०,००० अवांछित बच्चे पैदा होते हैं। इसलिये यह कोई विस्मय की बात नहीं है कि उनमें से एक बड़ी संख्या को माता-पिता का प्यार न मिले, वे उपेक्षित और अनचाहे समझे जायँ। इससे भी ज्यादा खराब बात यह है कि इनमें से कुछ गाली-गलौज और मार खाने के आदी हो जाते हैं क्योंकि उनके अभिभावक या तथाकथित संरक्षक उन्हें मारा-पीटा करते हैं। ऐसी संतानों व उनसे सम्बद्ध दुखद घटनाएँ आये दिन प्रकाशित होती रहती हैं।

गर्भ-निरोधक गोली कितनी अक्षतिकारी है ?

यह निर्विरोध प्रमाणित हो चुका है कि गर्भ-निरोधक गोली खाने वाली रोगी महिलाओं को उसे न खाने वाली वैसी महिलाओं की तुलना में रुधिर-थक्का की बीमारी होने की ज्यादा सम्भावना रहती है। गर्भ-निरोधी गोली न खाने वाली इन महिलाओं से नौ गुना ज्यादा संख्या में गर्भ निरोधक गोली खाने वाली महिलाओं को अर्थात् १ लाख में केवल ४५ महिलाओं को इस मामले में अस्पताल जाना पड़ता है। फेफड़ों और मस्तिक में रुधिर के खतरनाक थक्के बन जाने के कारण गर्भ-निरोधी गोली खाने वाली महिलाओं में से प्रतिवर्ष एक लाख में ३ महिलाओं की मृत्यु होती है। मृत्यु की यह दर उस गोली को न खाने वाली महिलाओं में होने वाली वैसी मौतों से दस गुना अधिक है। ये दरें ब्रिटेन में अनुसन्धान द्वारा निश्चित की गई थीं और अमेरिकी अध्ययनों ने भी उनका समर्थन किया है।

जिस अंग्रेज वैज्ञानिक ने ये आंकड़े तैयार किये हैं उसने २० से ३४ वर्ष तक की तथा ३५ से ४४ वर्ष तक की महिलाओं से सम्बन्धित विश्लेषण भी तैयार किये हैं। इस

विश्लेषण में रक्त के थक्के बन जाने की बीमारी से होने वाली मृत्यु दर की, गर्भावस्था सम्बन्धी सभी बीमारियों से तथा दुर्घटना से होने वाली मौतों से तुलना की गई है। उसमें बताया गया है कि नवयुतियों में १ लाख स्वस्थ विवाहिता स्त्रियों में गर्भ के परिणामस्वरूप होने वाली मौतों की संख्या २२·८ है जबकि गर्भ-निरोधी गोलियाँ खाने वाली वैसी नवयुतियों की रुधिर के थक्के की बीमारी से होने वाली मौतों की दर प्रत्येक एक लाख में १·५ है।

वयस्क महिलाओं में प्रत्येक एक लाख में ५७·६ की मृत्यु गर्भ के फलस्वरूप होती है जबकि गर्भ-निरोधी गोलियाँ खाने वाली इस आयु समूह की महिलाओं में रुधिर थक्का की बीमारी से होने वाली मृत्यु-दर प्रत्येक एक लाख में ३·९ है।

चिकित्सा सम्बन्धी आंकड़े बताते हैं कि गर्भ-निरोधी गोली खाने वाली कम आयु की महिलाओं में रुधिर थक्के की बीमारी से होने वाली मृत्यु के खतरे से गर्भ के फलस्वरूप होने वाली मृत्यु का खतरा १५ गुना तथा दुर्घटना से होने वाली मृत्यु का खतरा ३ गुना ज्यादा है।

यह आवश्यक नहीं है कि वे सभी महिलाएं जो इन गर्भ निरोधी गोलियों का इस्तेमाल बन्द करेंगी, गर्भवती हो जायेंगी, किन्तु यदि समस्त स्त्रियाँ गर्भाधान बचाने के लिये दूसरी अत्यन्त प्रभावशाली विधियों—इण्टोटेरिन डिवाइस (आई यू डी) और डायफ्रॉम—को प्रयोग में लाने लगें तो 'आई यू डी' का प्रयोग करने वाली स्त्रियों में गर्भवती होने स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत दो से चार गुना तक अधिक वाली और डायफ्रॉम का प्रयोग करने वाली स्त्रियों में गर्भवती होने वाली स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत १० से ३० गुना तक अधिक होगी। इसके अलावा 'आई यू डी' का प्रयोग करने में मृत्यु हो जाने की भी आशंका रहती है।

कभी-कभी रोगियों में मुख द्वारा खायी जाने वाली औषधियों की विपरीत प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। उनमें से अधिक व्यापक उच्च रक्तचाप, सिर की पीड़ा, हृदय का बैठना तथा दुर्बलता आदि सम्मिलित हैं। आमतौर पर ये प्रभाव परिवर्तनीय हैं और यदि गर्भ-निरोधक गोलियों का प्रयोग तुरन्त बन्द कर दिया जाये तो ये प्रभाव लुप्त हो जाते हैं। चिकित्सक लोग इन विपरीत प्रभावों के सम्बन्ध में भलिभाँति जानकारी रखते हैं और औषधियों पर लगे हुये लेबुलों पर भी इनका उल्लेख रहता है।

इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण मौजूद नहीं है कि चयापचय सम्बन्धी परिवर्तन हानिकारक हैं अथवा हानि पहुँचा सकेंगे। इसके अतिरिक्त गर्भ निरोध गोली (पिल) के सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाये जाते हैं। प्रथम, इससे स्तन अथवा गर्भाशय में केन्सर उत्पन्न हो सकता है। वैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि उनके द्वारा किये गये अन्वेषणों के परिणाम से यह सिद्ध नहीं होता है कि गर्भ-निरोध गोली का प्रयोग करने वालों के शरीर में केन्सर उत्पन्न हो जाता है।

दूसरा अनुमान यह है कि यदि गर्भ-निरोधक गोली का लम्बे समय तक प्रयोग किया जाये तो कुछ स्त्रियों को वन्ध्यता का ऐसा रोग हो जाता है जिसका उपचार नहीं हो सकता। आहार एवं औषध प्रशासन का कथन है कि प्रमाणों से पता चलता है कि अधिकांश दशाओं में गर्भ-निरोधक गोली का प्रयोग बन्द कर देने के पश्चात् ४ सप्ताह से ८ सप्ताह के भीतर डिम्बोत्सर्ग हो आता है।

क्या गर्भ-निरोधक गोली का प्रयोग करना आवश्यक है।

हाँ, इसका प्रयोग करना बहुत आवश्यक है।

यह गोली इतनी अधिक ग्राह्य क्यों है?

प्रथम, इसका प्रयोग करने से गर्भाधान नहीं होता है—इसका प्रयोग करने से स्त्री एक प्रकार से क्वांरी के समान बनी रहती है। इसके परिणाम-स्वरूप १ वर्ष तक इसका प्रयोग करने वाली १०० स्त्रियों में से एक स्त्री अवांच्छित गर्भधारण करती है। यह कोई छोटी बात नहीं है। हम सब जानते हैं कि गर्भाधान के भय का विवाह की स्थिरता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

दूसरे, इस गोली को प्रयोग में लाना सरल है। इसका प्रयोग करने वाले को बहुत अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है।

● ●

विज्ञान-वार्ता

१. धुयें की तेजी नापने का यंत्र

ऐसी कोई अच्छी विधि अभी तक सामने नहीं आयी है जिसके द्वारा घरेलू ईंधन सामग्री से निकलने वाली धुंयें की मात्रा और उसकी सघनता का पुर्वानुमान किया जा सके। यही कारण है कि किसी ईंधन सामग्री को धुंआ-विहीन घोषित करने में तकनीकी कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

केन्द्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान, धनबाद ने इस कार्य के लिये एक विशेष किस्म का यन्त्र प्रस्तुत किया है। इस यन्त्र में यह व्यवस्था है कि संबन्धित ईंधन की कुछ ग्राम मात्रा को पूर्णतः जला दिया जाता है और उसका सारा धुंआ ऊपर एक क्षैतिजिक पाइप में समा जाता है। पाइप के एक छोर पर प्रकाश की व्यवस्था रहती है और दूसरे छोर पर प्रकाशी-विद्युत सेल लगे रहते हैं। धुंआ जितना ही गाढ़ा होता है, उतना ही सघनता में प्रकाश की किरणें सेलों पर पड़ती हैं और इसके आधार पर हम सरलता पूर्वक मीटर को पढ़कर यह जान सकते हैं कि अमुक ईंधन का धुंआ कितना तेज होगा।

२. भूख और अपौष्टिकता का दमन

विश्व के भोजन-उद्योग में आश्चर्यजनक बातें हो रही हैं। भोजन-सम्बन्धी वैज्ञानिक और तकनीकी व्यक्ति पुराने और नये साधनों से अनेक नयी और महत्वपूर्ण भोजन-सामग्रियों का विकास कर रहें हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सभी जगह के लोग—विकसित एवं अविकसित दोनों तरह के देशों में–अब अधिक प्रोटीनयुक्त चीजें खाया करेंगे।

प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिकों के समक्ष तथा भोजन-सामग्री बनाने वाले कारखानों में उसके कर्मचारियों के समक्ष एक ही प्रधान लक्ष्य है : जहाँ कहीं भी भूख और अपौष्टिक भोजन की व्यवस्था है वहाँ उसमें कमी की जाय। वाशिंगटन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय भोजन सम्मेलन के अन्तर्गत होने वाली विचार-गोष्ठियों तथा अधिकारी विद्वानों की बैठकों में बोलने वाले विशेषज्ञों ने भोजन सम्बन्धी अनुसंधान के परिणामों की सूचनाएँ दीं तथा अनेक आशाजनक तथ्यों का रहस्योद्घाटन भी किया।

भविष्य में भोजन की सामग्रियाँ भार में हल्की और आकार में छोटी होंगी। उन्हें लाना, ले जाना तथा उनका संग्रह करना अपेक्षाकृत आसान होगा तथा इन कामों में अपेक्षाकृत कम समय भी लगेगा।

भोजन सामग्री बनाने वाले कारखाने अब ऐसी नई एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का इस्तेमाल करेंगे जिनसे बहुत से खाने की चीजें बिना प्रशीतन के संग्रह की जा सकेंगी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जा सकेंगी।

भविष्य में कृषिगत वस्तुएँ अपने मूल रूप में उत्तरोत्तर कम इस्तेमाल की जायेंगी। इस समय भी वे तैयार भोजन सामग्री के कारखानों के लिए कच्चेमाल के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं।

गेहूँ, मक्का और चावल जैसे अन्नों से नये प्रकार की भोजन सामग्रियाँ बनायी जायेंगी।

ऐसे विशेष प्रकार के नये आहार होंगे जिनमें वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज और कैलोरियाँ नियंत्रित मात्रा में होंगी।

प्रोटीन अनेक नये साधनों से प्राप्त किये जावेंगे और विश्व में पोषक तत्वों के साधनों में वृद्धि होगी।

अमेरिका के कुछ भोजन सामग्री निर्माता विदेशों की जनता के लिए अपेक्षाकृत अधिक पौष्टिक एवं सस्ते भोज्य एवं पेय पदार्थों के विकास में सक्रिय हैं। उदाहरणार्थ, एक भोजन सामग्री निर्माता बच्चों के लिये 'दुरयी' नामक एक प्रोटीनयुक्त पौष्टिक भोजन बना रहा है। आठ औंस 'दुरयी' के लिए मूल्य के रूप में २ सेन्ट् से भी कम देना पड़ता है। यह भोजन सामग्री दक्षिण अमेरिका में अपौष्टिक भोजन के शिकार बच्चों की जीवनरक्षा कर भी रही है।

३. वायु-दूषण का अध्ययन

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू० एच० ओ०) विश्व के विभिन्न भागों में वायु-दूषण का अध्ययन करने के लिये विश्वव्यापी केन्द्रों की स्थापना कर रहा है। इस विश्वव्यापी व्यवस्था के अन्तर्गत दिसम्बर में कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। वायु-दूषण के सम्बन्ध में अध्ययन करने वाली यह व्यवस्था विश्वव्यापी स्तर पर प्रथम् बार होगी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत लन्दन और वाशिंगटन में दो अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों, मास्को, टोकियो और नागपुर में तीन प्रादेशिक केन्द्रों और विश्वमें २० प्रयोगशालाओं की व्यवस्था की जायेगी। इसका मुख्य उद्देश्य सल्फर डाइआक्साइड और धूल के कणों केकारण होने वाले वायु-दूषण के विषय में स्वास्थ्य संगठन को जानकारी उपलब्ध करना होगा।

४. आयोडीन की न्यूनता से कैंसर

अमरीका के एक शोधकर्त्ता का कथन है कि छाती में होने वाला कैंसर, कम से कम पशुओं में, आयोडीन की कमी से होता है। उसने प्रयोगशाला में आयोडीन-न्यून भोजन पर कुछ चूहे पाले। कुछ दिनों बाद उनकी छातियाँ असामान्य रूप से बढ़ गई, सामान्य भोजन पर पलने वाले वाले चूहों में ऐसी घटना नहीं देखी गई। आयोडीन की कमी होने पर यदि पशुओं को ज्ञात कैंसर फैलाने वाले कारक से अनुप्रभावित किया जाय तो उनकी छाती में अर्बुद उत्पन्न होने में कम समय लगता है।

यदि पशुओं से सम्बन्धित यह जानकारी सही है तो मनुष्यों में क्यों नहीं हो सकती।

स्वयंचालित बोट

स्कैम्प (स्टेशन कीपिंग एण्ड मोबाइल प्लेटफार्म) नामक विचित्र बोट संसार भर के समुद्रों की यात्रा बिना किसी नाविक के करके पुनः वापस जा सकती है। इसमें दो वक्र पाल रहते हैं जो हल्के प्लास्टिक के बने होते हैं। इन दोनों पालों को ९ फुट व्यास वाला मस्तूल थामे रहता है। इसमें इलेक्ट्रानिक अवयव रहते हैं। यह नाव रेडियो नियन्त्रण से चलती है। इसका उपयोग समुद्री धाराओं का पता लगाने तथा नाविकी सम्बन्धी शोधों के लिये किया जाता है।

● ●

[पृष्ठ १२ का शेषांश]

पिंजड़े में कुछ प्रवासी पक्षी रख दिए और शीशे की सहायता से सूर्य को क्रमशः विभिन्न कोणों पर स्थित किया। पक्षियों ने सूर्य की स्थिति के अनुसार अपना मार्ग हर बार बदल दिया। आकाश में उड़ते समय पक्षी अपने सामने पड़ने वाले सूर्य की स्थिति की तुलना अपने गृह स्थल पर उसी समय पर सूर्य की स्थिति से करता है। यदि आकाश पर सूर्य की स्थिति उड़ान प्रारम्भ करने के स्थान पर की सूर्य स्थिति से नीचे है तो पक्षी अपने घर से उत्तर दिशा में होगा और यदि ऊँचे है तो पक्षी दक्षिण दिशा में होगा।

इस पर्यटन का पक्षियों की जीवन रक्षा में बड़ा महत्व है। वैज्ञानिक अभी भी पक्षियों द्वारा दिशा-निर्धारण की क्रिया का समुचित उत्तर खोज रहे हैं। लेकिन पक्षियों को यह रहस्यमय गुण जन्मजात मिला है और वे बराबर पर्यटन और प्रवास कर रहे हैं।

● ●

सम्पादकीय

पाठकों से निवेदन, लेखकों से अनुरोध

पिछले वर्ष 'विज्ञान' के समक्ष जो आर्थिक संकट उपस्थित हुआ था उसकी सूचना पाठकों को यथासमय दी गई थी। अब हमारे प्रिय पाठकों ने यह देखा और अनुभव किया होगा कि 'विज्ञान' नियमित रूप से निकल रहा है और उसके पाठ्कीय सामग्री में भी विविधता आई है। अब हम आर्थिक संकट को झेलने में सफल हुये हैं। हमने अपने ग्राहकों को भी कसौटी में कस लिया है। हमें अपने लेखकों का सौहार्द्य प्राप्त करने में विजय मिली है।

अब हमारा विनम्र निवेदन है कि विगत ३ वर्षों से हम जिन पाठकों के पास 'विज्ञान' पत्रिका बिना चंदा माँगे भेजते रहे हैं वे उदारतापूर्वक अपना चंदा विज्ञान परिषद् के पते पर भेजकर हमें अनुगृहीत करें। हम विश्वास दिलाते है कि कि हम उनकी और भी नियमित एवं श्रेष्ठतर सेवा करते रहेंगे।

कोई भी लेखन आजकल आर्थिक समस्या के साथ संलग्न है। विज्ञान का लेखन भी इससे अछूता नहीं। अतः यदि 'विज्ञान' में अधिक लेखकों का योग नहीं मिल पाता तो उसका प्रमुख कारण यही है कि विज्ञान अपने लेखकों को समुचित रूप से पुरस्कृत नहीं कर पाता। किन्तु हमें प्रसन्नता है कि 'विज्ञान' ऐसे नव तरुण लेखकों को प्रोत्साहित करता रहा है जो प्रारम्भ में हताश दीखते हैं। विज्ञान सदैव ही नवलेखन को महत्व प्रदान करता रहा है। चाहे वह लेख हो या कहानी, यदि उसमें किसी वैज्ञानिक तथ्य का समावेश है तो उसे छापने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं दिखाई जाती। हम अपने नवलेखकों को योग्य लेखक बनाने में सदैव तत्पर रहने के व्रत की पुनः घोषणा करते हैं। और विश्वास दिलाते हैं कि हमारे लेखक भविष्य के भारत के अग्रगण्य लेखक बन सकेंगे। इत्यलम्।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | कार्तिक २०२७ विक्र०, १८९२ शक अक्टूबर १९७० | संख्या १०

रेगिस्तान में पानी

□ डा० शिव प्रकाश

राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा चलाये गये 'भुखमरी से बचाओ' के अभियान में 'प्यास बुझाओ अभियान' भी सम्मिलित है। संसार में खाद्य समस्या अधिकतर उन देशों में विकट है जहाँ पानी का अभाव है और यदि पानी है भी तो उन साधनों की कमी है जिनके द्वारा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो सके। पानी के अभाव का प्रभाव भूमि, पौधों तथा जीवों सभी पर पड़ता है। हमारे देश में भी राजस्थान प्रान्त के कुछ भागों में जल का सर्वथा अभाव है और प्रयत्न जारी है कि किसी प्रकार इस समस्या का हल हो सके। सहारा संसार का सबसे बड़ा रेगिस्तान है। यहाँ जीवन कितना कठिन है इसकी कल्पना भी कर पाना संभव नहीं है। निकटवर्ती तेरह देशों की करोड़ों जनता अब भी पानी की कठिनाई का सामना कर रही है। कहा जाता है कि इस रेगिस्तान में बालू के नीचे पानी का बहुत बड़ा भंडार है जो वहाँ की सारी कठिनाई को दूर कर सकने के लिये पर्याप्त है। प्राचीन काल से पृथ्वी के नीचे यह पानी बह रहा है। पाताल तोड़ कुओं का पाया जाना इसके प्रमाण हैं।

एक समय था जब कि सहारा उष्ण कटिबन्ध में भारी वर्षा के क्षेत्र में था और यहाँ कई नदियाँ भी बहती थीं। इस काल में यह देश हरा-भरा था। नियोलीथिक तथा पेलियोलीथिक समय के बने हुये कुछ औजारों का पाया जाना यह प्रकट करता है कि किसी समय यहाँ पर काफी अच्छी आबादी रही होगी। किन्तु आज ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर यही भाग है जहाँ संसार में सबसे कम संख्या में लोग रह रहें हैं। कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जहाँ वर्ष भर में २५ मिलीमीटर से अधिक वर्षा नहीं होती है। अधिकतम वर्षा १२५ मिलीमीटर है। गर्मी इतनी पड़ती है कि दिन का तापमान १२०°F तक पहुँच जाता है। इन परिस्थितियों में जो लोग रहते हैं वे वास्तव में प्रकृति से लड़ाई लड़ कर ही अपने जीवन निर्वाह का प्रबन्ध कर पाते हैं।

सहारा के जलभृत (aquifer) में पाये जाने वाले

पानी का स्रोत उस समय से सम्बन्धित है जब सहारा में पर्याप्त वर्षा हुआ करती थी। अब भी रेगिस्तान की परिधि पर के भागों में जो वर्षा होती है उसके द्वारा इन जलभृतों में से खर्च हो जाने वाले पानी की पूर्ति होती रहती है। रेत के नीचे पाये जाने वाले पानी की खोज उस समय हुई जब मिट्टी के तेल को ढूंढ़ने के लिये सर्वेक्षण किया जा रहा था। यह पानी सात प्रमुख बेसिनों में पाया जाता है और इसकी क्षमता १५०,०००,००० लाख घनमीटर है। उद्गमो से प्रति वर्ष ४०,००० लाख घनमीटर जल की पूर्ति होती रहती है।

अछिद्र तलहटी के ऊपर पाया जाने वाला पानी ऊपर की पर्तों के दाब के कारण ऊपर उठता है और इसी से पाताल तोड़ कुंये का निर्माण होता है। पृथ्वी के तल तक पानी पहुँच पायेगा या नहीं यह निश्चित नहीं रहता और इसलिये इसे पम्प की सहायता से ही ऊपर लाया जा सकता है अथवा पृथ्वी के नीचे नहरों में होकर गुरुत्व बहाव के द्वारा लाया जा सकता है। यह पानी सदैव गतिशील रहता है। पाताल तोड़ कुंओं में विशेषतया यह पानी काफी दूर से चल कर ही पहुँचता है। वह गति गुरुत्व के कारण होती है। सहारा में वाष्पन की क्रिया भी पानी की ऊर्ध्वाधर गति में सहायक होती है।

जीव वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा भी पृथ्वी के नीचे के पानी का पता चलता है। रेगिस्तान में पाई जाने वाली टिड्डियों की जानकारी रखने वाले विशेषज्ञों के अनुसार यह कीड़े आर्द्र वातावरण में ही अंडे देते हैं और वहीं उनकी परवरिश करते हैं। सहारा में यह देखा गया है कि यह टिड्डियाँ सूखे स्थानों पर भी अंडे दिया करती हैं। स्पष्ट है कि टिड्डियों को यह आभास रहता है कि उस स्थान पर पानी का अदृश्य स्रोत है। अतः किसी सूखे स्थानों पर टिड्डियों द्वारा अंडा दिया जाना इस बात का द्योतक है कि उस स्थान पर पृथ्वी के नीचे बहने वाले पानी का कुण्ड है।

पृथ्वी के नीचे पानी का यह भण्डार पर्तों में विद्यमान रहता है। ये पर्तें आपस में मिलती नहीं हैं इसलिये इस पानी की आयु का पता लगाना संभव है। इसके लिये रेडियो-ऐक्टिव विधि को प्रयुक्त किया गया है। पानी में उपस्थित ट्राइटियम, कार्बन १४, अथवा यूरेनियम या थोरियम के समस्थानिकों की मात्रा के आधार पर ही आयु का पता लगाया जाता है। अब तक के परिणाम अपूर्ण हैं क्योंकि प्राप्त आँकड़े अपर्याप्त हैं। आयु निर्धारित करने में १३०० से ५७०० वर्ष तक अनिश्चिति होने की संभावना रहती है क्योंकि न्युबियन धूल में कार्बन की मात्रा कम होती है। कार्बन के स्रोत हैं घुले हुये कार्बोनेट, वायु में उपस्थित कार्बन डाइ-ऑक्साइड तथा मिट्टी में मिले कार्बनिक पदार्थ ? अब तक जो पानी सबसे लम्बी आयु का पाया गया है वह है मिश्र के पश्चिमी रेगिस्तान में पाये जाने वाले पानी की आयु जो कि २५००० वर्ष है।

सहारा में भूमिगत पानी के स्रोत को विकसित करने के पूर्व इस बात को जानना होगा कि पानी की खपत कितनी है। एक अनुमान के अनुसार एक वर्ष में २०,००० लाख घनमीटर पानी की खपत है जिसका केवल थोड़ा सा ही अंश मानव की आवश्यकता के लिये है। यदि यहाँ की जन-संख्या प्रति वर्ष २% की दर से भी बढ़ती रहे तो माँग की पूर्ति की जा सकती है। सबसे बड़ी समस्या है सिंचाई की। वर्तमान जानकारी के अनुसार सिंचाई के लिये प्रति सेकन्ड एक हेक्टर के लिये एक लिटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ के प्रचलन के अनुसार खजूरी की छतरी के नीचे फलों के पेड़ लगाये जाते हैं और इनके नीचे तरकारी पैदा की जाती है। इस तीन सतही पद्धति के लिये सिंचाई करना अधिक सरल हो जायगा। इसके अतिरिक्त पानी के खारेपन को दूर करने की भी योजना को कार्यान्वित करना होगा। किसी कुंये में जिसमें प्रति सेकण्ड २० लिटर पानी निकल रहा हो एक वर्ष में ६०० मीट्रिक टन नमक तैयार हो सकता है। साथ ही साथ इस समस्या को भी ध्यान में रखना पड़ेगा कि पानी की खपत तथा उसकी पूर्ति में संतुलन बना रहे। इन सभी समस्याओं का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाधान हो जाने से रेगिस्तान में भूमिगत पानी का मनुष्य, पशु तथा पेड़ पौधों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की व्यवस्था में प्रयोग हो सकेगा और आज जो चमकते हुये बालू के कणों से भरे लम्बे मरुस्थल हैं हरे-भरे लहलहाते खेतों से भर जायेंगे। ● ●

फल-उत्पादकों को 'बी-९' वरदान स्वरूप

□ महेश मिश्र

पौधों की वृद्धि को नियंत्रित कर अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिकों ने कई रासायनिक पदार्थों को खोज निकाला है। हारमोन और विटामिन की उपयुक्त मात्रा का पौधों पर छिड़काव करके अथवा इंजेक्शन के माध्यम से अन्दर प्रविष्ट कराकर पौधों में आशाजनक वृद्धि की जा सकती है।

पौधों के वृद्धि-नियंत्रक यौगिकों में 'बी-९' का समावेश फल-उत्पादकों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। अमरीकी रबर कम्पनी के द्वारा अन्वेषित 'बी-९' के उपयोग से बागवानी में आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एल० डी० टर्की ने अपने प्रयोगों में बी-९ का उपयोग फलों के वृक्षों पर किया, परिणामस्वरूप उन्होने देखा कि फलों की उपज में अत्यधिक वृद्धि हुई। बी-९ के प्रयोग से फलोत्पादन में वृद्धि के अलावा पाले से होने वाली हानि में भी कमी आ गई थी, वृक्षों की एकान्तर वर्षों में फल धारण करने की प्रवृत्ति खत्म हो गई और वे हर वर्ष फल देने लगे। इससे फलोत्पादकों की एक बड़ी समस्या का हल निकल आया है। फलोत्पादन में एक वर्ष के अन्तर से फल-धारण करने की प्रवृत्ति से किसानों को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। जिस वर्ष फल आते हैं तो बाजार में इनकी अधिकता होने से मूल्य बहुत ही कम मिल पाता है। दूसरे वर्ष फल न आने पर वह हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है। बी-९ के प्रयोग से पौधों की लम्बाई में यद्यपि कमी आ जाती है परन्तु उसकी वाह्य-वृद्धि खूब होती है। पेड़ में अधिक शाखाएं और पत्तियाँ पैदा होती हैं। पौधे घने और मजबूत होते हैं। डालियाँ मजबूत और मोटी निकलती हैं।

बी-९ के चमत्कारी प्रभाव को सेब के वृक्षों पर सर्वाधिक प्रभावकारी पाया गया है। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि इसके छिड़काव से सेब उत्पादन में अत्यन्त वृद्धि होती है। वृक्ष फलों से लद जाते हैं तथा स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि डालियाँ फल के भार से टूटने लगती हैं। इससे न केवल फलों की संख्या में वृद्धि होती है वरन् फलों का रंग भी शीघ्र ही लाल हो जाता है। जिससे बाजार में समय से पहले आ जाने से अपेक्षाकृत अधिक दाम मिल जाते हैं।

बी-९ से उपचारित वृक्षों से उत्पादित फल, अनुपचारित फलों की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और कड़े होते हैं। यद्यपि उपचारित वृक्ष के फल शीघ्र ही लाल हो जाते हैं किन्तु वे अधिक दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। इस प्रकार, उनको बाहर भेजने में सुविधा होती है। शीघ्र ही फलों के खराब होने से निर्यात की समस्या को, बी-९ के प्रयोग द्वारा काफी हद तक कम किया जा सकता है। फलों को काफी अवधि तक न खराब होने का कारण, उनमें बी-९ के प्रयोग से श्वासोच्छ्वास में कमी होना बताया गया है।

बी-९ का प्रभाव वृक्षों पर तत्काल तो होता ही है तथापि इसका असर दूसरे वर्ष तक भी देखा गया है। उपचारित वृक्षों में दूसरे वर्ष भी अधिक फलोत्पादन तथा फलों का जल्दी ही लाल हो जाना परिलक्षित हुआ है। फलों की संरक्षित रहने की अवधि भी उसी प्रकार बढ़ी हुई पायी गयी है, जिस प्रकार प्रथम वर्ष के फलों की थी। बी-९ के इस शेष रहे असर से उसके उपयोग में काफी मितव्ययिता की आशा की जा सकती है।

[शेष पृष्ठ ७ पर]

वेदों के वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी उल्लेखों का समीक्षात्मक अध्ययन

□ आनन्दीलाल शर्मा एवं डा० विजयेन्द्र शास्त्री

मनुष्य के ज्ञान-गौरव के विकास की परम्परा में उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति ही अग्रगण्य रही है। उसका ध्यान सर्वप्रथम उसके चारों ओर व्याप्त वनस्पति जगत, विचरण करने वाले प्राणी तथा नभ में प्रदीप्त सूर्य, चन्द्र, तथा तारा-गण ने आकृष्ट किया होगा। इसी क्रम में यदि किसी मनुपुत्र ने क्षुधा तथा तृषा से पीड़ित होकर किसी वनस्पति का भक्षण कर लिया होगा और उससे उसकी क्षुधा-पिपासा को शान्ति मिली होगी, यही वनस्पति की उपादेयता का श्रीगणेश होगा। ऐसे ही यदि व्रण या घाव अथवा रोग-ग्रस्त किसी व्यक्ति ने जड़ी-बूटी का अनायास सेवन कर लिया होगा और उसने स्वास्थ्य लाभ किया होगा, तो उससे भेषज-विज्ञान उद्भूत हुआ होगा।

इस ज्ञान-विज्ञान के उद्भव और विकास का सुस्पष्ट प्रमाण अप्राप्य है किन्तु भारत में इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं गौरवमयी रही है। हमारे आर्ष-ग्रन्थ वेदों में, जिन्हें कि संसार के प्रचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है, तथा जिनमें जीवन के हर पहलू की वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवेचना है, वनस्पतियों की प्रकृति, गुण-दोष तथा उनकी उपयोगिता का भी स्पष्ट दिग्दर्शन होता है।

यद्यपि वेदों में विभिन्न वनस्पतियों के अध्ययन सम्बंधी कई ऋचाएं प्राप्य हैं, तथापि पाश्चात्य एवं भारतीय वैज्ञानिकों के वनस्पति-शास्त्र के ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वेदों में वनस्पति शास्त्र के ज्ञान के सम्बन्ध में समुचित ध्यान नहीं दिया गया है तथा समीक्षात्मक विवरण भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। अतः प्रस्तुत लेख में वेदों में वनस्पति-विज्ञान की प्राचीन परम्परा के दिग्दर्शन का विनम्र प्रयास किया गया है तथा प्राचीन ज्ञान से अर्वाचीन विज्ञान के सामंजस्य का प्रयत्न किया गया है।

वेदों में अश्वत्थ, खदिर, कुष्ठ, सोम, पलाश, न्यग्रोध, पिप्पली, बिल्व, उदुम्बर, अपामार्ग आदि १५० से भी अधिक वनस्पतियों का, उनके गुणधर्मों तथा उपयोगों सहित उल्लेख हुआ है। यदि इसकी सूची प्रस्तुत की जाय तो वह बहुत लम्बी होगी, इसलिये प्रस्तुत लेख में कुछ प्रमुख वनस्पतियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है एवं वेदों में वर्णित इन वनस्पतियों के गुणधर्मों की तुलना आधुनिक शोधों के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों से की गयी है। विस्तृत विवेचन अन्यत्र प्रकाशनीय लेखमाला में प्राप्य होगा। भारतीय संस्कृत में अश्वत्थ अर्थात् पीपल बड़ा पवित्र एवं महत्वपूर्ण वृक्ष माना जाता है। अथर्ववेद में इसका उल्लेख पुरुष वृक्ष के रूप में किया गया है, यथा—

पुमान् पुंसः परिजातो अश्वत्थो खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि येच माम्॥

अथर्व० ३।२।६।१

अर्थात् अत्यन्त वीर्य वाले पुरुष वृक्ष पीपल और गायत्री सारोत्पन्न अत्यन्त बली खदिर के संयोग से निर्मित अश्वत्थ मणि धारण करने पर वह मेरे शत्रुओं का नाश करे।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि वेदों की ऋचाओं में किसी न किसी देवता के प्रति स्तुति की गई है ताकि वह इच्छित उद्देश्य की पूर्ति करने में सहायक हो, जैसे कि उपर्युक्त ऋचा में शत्रु-नाश के लिये प्रार्थना की गई है। परन्तु जैसी कि भारतीय वाङ्मय की विशेषता रही है,

कथा एवं दृष्टान्तों के द्वारा शिक्षा प्रदान करना सुहृद्भेद है वैसे ही स्तुति के माध्यम से इन ऋचाओं में वनस्पतियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कि वनस्पतियों की परिस्थिति गुण तथा उपयोगिता सम्बन्धी संकेत भी हैं।

द्वेष का योग-दर्शन-परक अर्थ है–दुःख उत्पादन करने वाला (दुःखानुशयी द्वेष :–योगदर्शन ८।२) – क्योंकि रोग दुःख ही देते हैं, अतः यदि रोगों का मानवीकरण किया जाय, तो उन्हें द्वेषी कहा जा सकता है। द्वेषकारक रोगों का नाश ही पीपल के औषधगत गुणों की ओर संकेत करता है। रोगों रूपी द्वेषियों के नाश के हेतु पीपल के उपयोग के सम्बन्ध में आयुर्वेद एवं आधुनिक साहित्य में निम्न जानकारी प्राप्य है :—

अश्वत्थ के गुणधर्म–श्वयथु विलयक, रूक्षक, छर्दिघ्न और उबकाई को दूर करने वाला विशेषतः फोड़े बैठाने वाला है। छाल में कषाय सत्व (Tannin), रबड़ (काउचुक) और मोम होता है, छाल को उबालकर उस काढ़े से दंतवेष्टशोथ और मुखपाक में कवलग्रह कराते हैं।

वैद्यराज दलजीत सिंह–यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान, पृष्ठ ३२२

The bark is astringent and is used in gonorrhoea ... Fruits are laxative and seeds are cooling. The leaves and young shoots are used as purgative...Infusion of bark is given internally in scabies......The bark contains some tannin and is used for preparing leather and for dyeing. K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants, Vol. III-P. 2318

उपर्युक्त सूक्त में अश्वत्थ के साथ साथ अन्य वनस्पति खदिर का भी उल्लेख है, जिसे खैर या कत्था (Acacia-Catechu) कहते हैं। इसका और भी अन्य स्थानों पर उल्लेख है, जैसे

अभिव्ययस्व खदिरस्य सारम्। ऋग्० ६।५३।१९

यह शीत संग्राही, रक्तप्रसादक, व्रणलेखक और उदर कृमि नाशक है। दाँतों से खून आने और गल शुण्डिका में यह विशेष लाभकारी है, इसका अतिसार में उपयोग होता है। व्रणों में मलहम बनाकर इसका उपयोग किया जाता है।

वैद्यराज दलजीत सिंह–यूनानी द्रव्यगुण-विज्ञान, पृष्ठ १६०

The bark contains tannin, which is used for tanning and dyeing.

K, R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants Vol. II P. 926

वेदों में वनस्पतियों के पारिस्थितिकीय उल्लेखों का एक उदाहरण नीचे उद्धृत है :—

असितं ते प्रलयनमस्थानमसितं तव।
असिकन्यो स्योषधे निरसो नाशया पृषन्॥
अथर्व० १।५।२३।३

अर्थात्–हे नील औषधे! तेरा उत्पन्न होने का स्थान भी काला है और जिनके सम्पर्क में तू आती है, उन्हें भी काला कर देती है। तू असित वर्ण वाली है, और तेरा स्वभाव भी ऐसा ही है, इसलिये तू लेपने आदि से कुष्ट और धब्बे आदि रोगों को दूर कर दे।

The plant is Indigofera tinctoria. It is a small herb to shrub. It yields a dye Indigo which is used in dyeing. Indican is the principal glucoside.

Hill A. F.,—Economic Botany—P. 129

वेदों में पलाश (Butea monosperma) का भी यत्र-तत्र वर्णन मिलता है, जोकि पर्ण के नाम से संदर्भित है। इसे गायत्री के गिरे हुए पंख से अथवा सोम के गिरे हुये पत्ते से उत्पन्न हुआ माना गया है यथा

विसोमेन वा एके पशु बंधने यजन्ते।
ससोमेनैके दिवि वै सोम आसीतं गायत्री वयो भूत्वा।
हरत्तस्य यत्पर्णमिच्छिद्यत तत्पर्णस्य पर्णत्वम्॥
शतपथ—१।१७।२।८

यजुर्वेद (३५।४) में भी इसका उल्लेख है, इसको ब्रह्म वा सोम माना गया है—

सोमो वै पलाशम्

शतपथ ६।६।३।७

गुणधर्म—छाल और पत्र संग्राही, वीर्य पुष्टिकर, उदर-कृमिनाशक, बाजीकर और मूत्रार्तवजनक है,——बीज; वातानुलोमक, उदरकृमिनाशक, चतुर्थक ज्वर नाशक, लेखन, व्रणकारक, सर्प वृश्चिक विषघ्न है। गोंद; शुक्रस्तम्भन वीर्यपुष्टिकर, उपशोषक और आमाशय संग्राहक है।

वैद्यराज दलजीत सिंह—यूनानी द्रव्यगुण—विज्ञान, पृ. ३१४

Butea monosperma has ornamental flowers yields dyes. The bark and gum contains tannic and gallic acid. Seeds contain Mocdooga oil or kind-tree oil......Seeds are anthelmintic and antidote for snake bite......Gum is given in diarrhoea and dysentry.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants P. 786, 87

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के १७, १८ व १९ सूक्त अपामार्ग (Achyranthes aspera सम्बन्धी है जैसे—

अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे। आदि उक्त सूक्तों में अपामार्ग की पारिस्थितिकी, कार्यिकी, आकारिकी सम्बन्धी विस्तृत व्याख्या की गई है। इसी प्रकार—

औदुम्बरेण मणिना पुष्टि कामाय वेधसा—

अथर्व० १९।३१।१

वस्तुतः ३१ वां सूक्त औदुम्बर मणि के विषय में है। औदुम्बर (Ficus glomerata) का चिकित्सा की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इस वृक्ष की छाल, आक्षीर (latex) तथा फल उक्त दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

इसी के सजातीय वृक्ष वट या बरगद (Ficus bengalensis) जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में न्यग्रोध (न्यक्+रोह) के नाम से हुआ है, यथा—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन्॥

अथर्व० ४।८।३७।४

All the species of Ficus belong to the family Urticaceae. They have almost identical characters. The inflorescence is hypanthodium and fruit Syconus......They contain latex-a milky juice. Many Spp. start their life as epiplyter......Latex is used in rheumatism and lumbago. Infusion of bark is used in dysentery diarrhoea and diabetes. The leaves are applied as poultice to abscess.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants Vol. III-P. 2314

उपमा के लिये भी वेदों में वनस्पतियों का उल्लेख हुआ है यथा—

उर्वारुकमिव बन्धनात्—

ऋग्० ७।५९।१२

उपर्युक्त सूक्त में बन्धन की उपमा उर्वारुक (cucumber) से की गई है। उर्वारुक की संजनी (tendril) इस बनस्पति के आरोहण में सहायक है और आश्रय तथा आश्रित में ही उपर्युक्त इंगित है।

पिप्पली (Piper longum) का उल्लेख वेदों में निम्नानुसार है:—

पिप्पली क्षिप्त भेषज्यूतानि भेषजी। – –

अथर्व० ६।१११।१०९

अर्थात् पिप्पली क्षिप्त वात रोग की औषधि है, यह रोग को पूरी तरह बाँधने में समर्थ है।

आयुर्वेद में पिप्पली को गर्म, खुष्क, दीपक, वातानुलोभक, वाजीकर, उष्णताजनक तथा श्वयथुविलयक माना गया है। पीपलामूल पिप्पली की बेल की जड़ है, जो ग्रंथिल, कड़ी और भारी होती है। पीपलामूल का गुण विशेषतः दीपन और पाचन का है।

Piper longum is a twiner. It contains an alkaloid known as Piperine, which has got medicinal value.

Hill A. F., Economic Botany-P. 452

अथर्ववेद में बिल्व (Aegle marmelos) का उल्लेख निम्नानुसार है:—

महान वे भद्रो बिल्वो महान भद्र उदुम्बर।

अथर्व० २०।१३६।१५

शतपथ ब्राह्मण में खदिर के साथ इसका उल्लेख है। (१३।४।४।९)

आयुर्वेद में इसका फल सर्द और खुष्क माना गया है। यह संग्राही, रक्त स्तंभरण, दीपन और प्रवासिका में गुण-दायक है। जड़ की छाल ज्वरघ्न है। इसी प्रकार आधुनिक शोधों के अनुसार—

The principal constituent of the pulp is Marmelosin. It also contains sugar, pectin, tannin, essential oil etc. The boiled or roasted unripe fruit is used in diarrhoea and dysentery. The seeds and fruits yield a dye.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants-Vol. I- P. 501

अन्त में एक और वनस्पति का उल्लेख किया जा रहा है, जोकि वेदों में बहुचर्चित है, परन्तु जो अत्यंत विवादास्पद भी है। उस वनस्पति का नाम है – "सोम"।

सोम को औषधियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है यथा—

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषांकतः।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः॥
अथर्व० ६।१५।३

ऋग्वेद के नवम मंडल तथा "चरक सोम वल्क" ४।१५ में सोम के विषय में विस्तार से वर्णन है। वैसे सोमलता या सोमवल्ली के संबंध में बड़ा विवाद है। वैदिक कालीन और ब्राह्मण कालीन ग्रंथों में इसका इतना विस्तार से वर्णन है कि इसे कल्पित नहीं माना जा सकता। डा० एटकिन्सन के अनुसार यह पौधा एफ़ेड्रा पेचीक्लाडा (Ephedra Pachyclada) है और जिसका नाम हरिरुद घाटी में हुम या यहमा है। डा० वोर्नमूलर इस पौधे को एफ़ेड्रा डिस्टाच्या (Ephedra distachya) निरूपित करते हैं।

सोम के भेषजीय गुणों की पुष्टि आधुनिक शोधों द्वारा हुई है —

Ephidrine is the derivative of Ephedra spp., which has proved most valuable in asthma and cough disorders.

सोम के इन गुणों के ज्ञात होने के कारण ही प्राचीन मनीषी नियमित रूप से सोमपान करते थे, जिससे कि वे स्वस्थ और प्रसन्न रहकर जीवन यापन कर सकें।

इसके अतिरिक्त और भी कई अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन काल में भी भारतीय वनस्पति विज्ञान की परम्परा पर्याप्त विकसित एवं उन्नत रही है।

● ●

[पृष्ठ ३ का शेषांश]

बी-९ का फलोत्पादन में कारगर उपयोग उसके प्रयोग करने की विधि पर निर्भर करता है। इसका उपयोग करने के पहले उपयुक्त मात्रा, घोल की सान्द्रता, एवं छिड़काव का समय आदि बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है। अनुचित सान्द्रता एवं छिड़काव का गलत समय लाभ के बजाय हानि भी पहुँचा सकता है। 'बी-९' का छिड़काव फल आने के थोड़ा पहले करने पर भारी मात्रा में फलों का उत्पादन होता है परन्तु फूल आने के बाद छिड़काव करने से कच्चे फलों का गिरना शुरू हो जाता है।

बी-९ के संभाव्य उपयोग और उसके बाजार में शीघ्र ही उपलब्ध होने पर फलोत्पादन में क्रान्ति लाई जा सकती है।

● ●

पोजीट्रॉन किरणें

□ डा० अरुण कुमार सक्सेना

पोजीट्रॉन किरणों के बारे में वर्णन करने के पहले सर्वप्रथम पोजीट्रॉन पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा। किसी का भी अचानक यह प्रश्न कर बैठना कि पोजीट्रॉन है क्या ? स्वाभाविक है। वास्तव में पोजीट्रॉन इलेक्ट्रॉन का ही प्रतिकण है। यह इलेक्ट्रॉन के एक सम होता है जब कि इलेक्ट्रॉन का आवेग ऋणात्मक होता है। पोजीट्रॉन की खोज का श्रेय एण्डर्सन को है। पोजीट्रॉन जब पदार्थ के अन्तर्परमाणुक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वहाँ वे अधिक समय तक स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकते क्योंकि इस क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन विद्यमान रहते हैं। पोजीट्रॉन तथा इलेक्ट्रॉन पास-पास होने पर एक दूसरे को नष्ट करने की प्रवृति रखते हैं। यह जान कर आश्चर्य होगा कि ये छोटे-छोटे कण भविष्य में ऊर्जा प्राप्त करने के असीम भण्डार हैं।

प्रायः ये किरणें प्रकृति में दो प्रकार के उत्पादकों से प्राप्त होती हैं :—

(१) रेडियोऐक्टिव समस्थानिकों द्वारा

(२) गामा किरणों के द्वारा

बहुत से रेडियोऐक्टिव समस्थानिक पोजीट्रॉन का उत्सर्जन करते हैं जिनकी ऊर्जा शून्य तथा २mev के बीच होती है। ऊर्जा का यह मान रेडियोऐक्टिव क्षय द्वारा निर्धारित होता है।

पोजीट्रॉन का दूसरा स्रोत गामा किरणें हैं। जिन गामा किरणों की ऊर्जा १.०२mev से अधिक होती है वे परमाणुओं से क्रिया करके इलेक्ट्रॉन-पोजीट्रॉन युग्म उत्पन्न करती हैं। कॉस्मिक किरण बौछारों में इस क्रिया का विशेष महत्व होता है।

वास्तव में ऊपर की इन दोनों विधियों से निकलने वाले पोजीट्रॉन किरणों की ऊर्जा तथा उनकी तीव्रता या तो क्षीण होती है या उसको नियंत्रित करना कठिन होता है। भौतिकी में इनके द्वारा कुछ विशेष अध्ययन सरलता से हो जाते हैं उदाहरणार्थ—प्रोटान प्रकीर्णन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

रेखीय इलेक्ट्रॉन त्वरक ऐसे यंत्र है जिनके द्वारा इलेक्ट्रानों को अधिक ऊर्जा में त्वरित किया जा सकता है। पोजीट्रॉनों को इस दशा में लाने के लिये रेखीय इलेक्ट्रॉन त्वरक के अन्दर एक विशेष कला में पोजीट्रॉनों को भेजा जाता है। प्रयोगशालाओं में इन किरणों को उत्पन्न करने की एक और विधि सोची गई। ऐसे पोजीट्रॉनों का उच्च ऊर्जा के इलेक्ट्रॉनों में 'लक्ष्य' की बमबारी करके उत्पन्न किया जा सकता है। उच्च ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉनों से बमबारी करने पर प्रोटॉन प्राप्त होगा जिससे इलेक्ट्रॉन तथा पोजीट्रॉन का युग्म मिलेगा। इसी आधार पर सर्वप्रथम प्वारे, वेमस्टाइन तथा पईन ने स्टैनफोर्ड मार्का वृतीय त्वरक द्वारा पोजीट्रॉन किरणों को उत्पन्न किया। इस प्रयोग में उत्पन्न पोजीट्रॉन किरणों की तीव्रता प्रति त्वरक सैकड़ों पोजीट्रॉन के तुल्य थी तथा इसकी ऊर्जा २००mev थी।

इस विधि से वैज्ञानिकों ने स्टैनफोर्ड, कोर्नेल केम्ब्रिज, हेमबर्ग, ओस्वाय तथा नोवोसिविर्स्क की प्रयोगशालाओं के त्वरकों के द्वारा कार्य को और आगे बढ़ाया। आजकल १२.०mev ऊर्जा तथा तीव्र पोजीट्रॉन किरणें उत्पन्न की जा रही हैं।

[शेष पृष्ठ १४ पर]

हमारे ग्रह तथा उनकी अंतरिक्ष यात्रा

□ कु० कुलभूषण बक्शी

यह जान कर आश्चर्य होता है कि हम जिस पृथ्वी पर रहे हैं वह इस सम्पूर्ण व्योम (Space) में एक कण की भाँति लटक रही है। प्रायः इस पृथ्वी पर के लोग, अन्य तमाम ग्रहों तथा उपग्रहों के बारे में सोचते रहे हैं और वहाँ तक पहुँचने के प्रयास करते रहे हैं। अभी हाल ही में मनुष्य चन्द्रमा (जो पृथ्वी के सबसे करीब है) के तल पर पाँव रखने में सफल हुआ है तथा चन्द्रमा सम्बंधी अनेक तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई है। चन्द्रमा का क्षेत्र-फल अफ्रीका के बराबर है अतः उस पूरे क्षेत्र की खोज करने में कई वर्षों का समय लगेगा। अभी तो एक बार में दो दो की जोड़ी में अंतरिक्ष यात्री हर तीसरे या चौथे महीने भेजे जाते रहेंगे। योजना यह भी है कि वहाँ कुछ लोगों को बसाया जाय और वहाँ से सूचना इकट्ठी करके भेजी जाय। यदि ऐसा हो गया तो अन्वेषण का कार्य बहुत सरल हो जायगा। ऐसा विचार है कि कुछ यात्राओं के बाद आदमी वहाँ रहने का अभ्यस्त हो जायेगा।

चंद्रयात्रा से केवल वैज्ञानिक ही नहीं वरन भूगर्भशास्त्री तथा खगोलवेत्ता भी इससे लाभ उठायेंगे जो अब तक पृथ्वी के गहन वायुमंडल से सुन्दर नक्षत्रों को ठीक से देखने या पहचानने का असफल प्रयत्न वर्षों से करते आ रहे हैं। चन्द्रमा को आधार बना कर अन्य ग्रहों पर यान भेजना अत्यन्त सुगम हो जायेगा क्योंकि धरती के गुरुत्वाकर्षण से बाहर जाने के लिये यान की गति जहाँ २४,००० मील प्रति घंटा होनी चाहिये वहां चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण से बाहर जाने के लिये, केवल ५,३०० मील प्रति घंटा की गति से काम चल सकेगा।

नासा (NASA) के अध्यक्ष के अनुसार सन १९८० तक चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच नियमित रूप से आवागमन शुरू हो जायेगा। यात्रा भी पहले की अपेक्षा सस्ती हो जायेगी। आज तो तीन यात्रियों के आने जाने पर २, ८०,००, ००,००० रुपयों का खर्च बैठता है। लेकिन इस स्थिति के आने तक सौरमंडल के अन्य सदस्यों तक मनुष्य पहुँच चुका होगा। इन ग्रहों में 'मंगल' सर्वप्रथम होगा। ४,२०० मील व्यास वाला यह ग्रह आकार में पृथ्वी का आधा है। यह ग्रह भी पृथ्वी की भाँति अपनी कीली पर घूमता है और यहाँ एक दिन पृथ्वी के एक दिन से केवल ४१ मिनट लम्बा है। अमरीकी अन्वेषक मैरिन २४ द्वारा भेजे गये २१ चित्रों द्वारा यह पता चलता है कि यहाँ का धरातल चन्द्रमा की ही भाँति है इस पर भी चन्द्रमा की भाँति ज्वालामुखी क्रेटर हैं जो तीन मील से लेकर ७० मील व्यास तक के हैं।

सौर्यमंडल के अन्य सदस्यों की अपेक्षा मंगल ग्रह पर जीवन की सम्भावना अधिक है यद्यपि बैरोमीटर द्वारा इसके आसपास वायुमंडल का आभासमात्र ही मिला है। मंगल पर पानी मिलने की भी सम्भावना है क्योंकि इसके ध्रुवों पर गहरी सफेदी दिखाई देती है जो बसंत ऋतु में हल्की तथा सर्दियों में गहरी हो जाती है। वैज्ञानिकों का मत है कि इसके ध्रुवों पर बर्फ जमी रहती है जो गर्मी में पिघल जाती है इसी कारण इसके तल पर हरि-याली या वनस्पति देखी गई है जो पिघली बर्फ के पानी के कारण स्वयं उत्पन्न हो जाती है।

मंगल ग्रह पर यान भेजना हर दो वर्ष पर सम्भव है जब वह परिक्रमा करते-करते पृथ्वी के नजदीक आ जाता है। ऐसा एक अवसर जून १९६९ में आया था, अगला

जुलाई १९७१ में आयेगा। सूर्य से मंगल की दूरी १४,२०,००,००० मील है। पृथ्वी सूर्य से ९,३०,००,००० लाख मील दूर है। मंगल सूर्य की प्रदक्षिणा पृथ्वी के दो वर्षों में कर सकता है। पृथ्वी से मंगल की न्यूनतम दूरी ३,४०,००,००,००० मील है और जब यह पृथ्वी से दूर सूर्य की दूसरी तरफ होता है तो यही दूरी २०,००,००,००० मील हो जाती है।

मंगल की भाँति प्लूटो भी एक ग्रह है, यह अपनी कक्षा में पृथ्वी से ३,९८,०२,००,००० मील की न्यूनतम दूरी पर है। इस ग्रह की यात्रा में ४१ वर्ष का समय लगता लेकिन बीच के और ग्रहों का सहारा लेकर यही लगभग आठ वर्ष में पूरी की जा सकती है। प्लूटो के बाद अन्य यात्रायें वृहस्पति, यूरेनस और नेपच्युन की हो सकती हैं जो अन्य ग्रहों की सहायता लेने पर नौ वर्षों में पूर्ण होगी।

नासा अधिकारियों की योजना के अनुसार इन बाहरी ग्रहों की यात्रा प्रारम्भ होने तक मंगल ग्रह पर कई अभियान जा चुके होंगे। जुलाई तथा अगस्त १९६९ में मैरिनर ६ तथा मैरिनर ७ मंगल ग्रह पर भेजे गये थे। सन् १९७१ में दो और मैरिनर यान भेजे जायेंगे। सन् १९७३ में मानव रहित अंतरिक्ष यानों द्वारा मंगल पर यंत्र उतारने की योजना है। मंगल ग्रह के कक्ष में १० दिन तक परिक्रमा करने के बाद ४०-४० पाउण्ड भार के यंत्रों के कैपस्यूल उतरेंगे। मंगल तक मानव-सहित यान भेजने की समस्या, चंद्रमा से कहीं जटिल है। चंद्रमा तक आने-जाने में मनुष्य को १० दिन तक जीवित रहने के लिये अपने साथ खाना, पानी तथा आक्सीजन यान में रखना पड़ता है। परन्तु मंगल ग्रह तक पहुँचने के लिये आठ महीने लगेंगे। अतएव भोजन सामग्री चंद्रमा से पचास गुनी अधिक रखनी होगी। चंद्र यात्रा के समय अपोलो यान में पीने का पानी हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के संश्लेषण द्वारा तैयार किया गया था परन्तु मंगल की यात्रा में एक बार इस्तेमाल किये हुये पानी को पुनः प्रयोग में लाने की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिये यात्रियों के मूत्र को शोधित करके पीने योग्य बनाना तथा उनके निःश्वास द्वारा निकली कार्बनडाइआक्साइड में से आक्सीजन को पुनः प्राप्त करने के परीक्षण किये जा रहे हैं। मंगल पर जाने वाले यान चंद्रमा पर जाने वाले यानों की अपेक्षा पाँच गुने भारी होंगे क्योंकि लम्बा रास्ता पार करने के लिये यान के साथ तीन की बजाय पाँच या छः सैटर्न राकेट लगेंगे।

इस विशाल सौर्य मंडल का एक अन्य सदस्य शुक्र है। शुक्र जब सूर्य की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के अत्यधिक निकट आता है तो दोनों के बीच की दूरी २, ४०, ००, ००० मील होती है। १२ फरवरी सन् १९६१ को रूस ने वीनस-१ मानव रहित यान शुक्र की तरफ भेजा था जो यंत्रों की गड़बड़ी के कारण मार्ग में ही नष्ट हो गया था। बाद में अमरीका ने भी शुक्र की तरफ यान भेजा था और फिर रूस ने दूसरा वीनस भेजा जो शुक्र पर उतर गया था। शुक्र सूर्य की परिक्रमा २२५ दिनों में करता है अर्थात् यह पृथ्वी के निकटतम हर १९वें महीने आता है। शुक्र की कक्षा के बाहर निकलने के लिये यान की गति २४, ००० मील प्रति घंटा होनी चहिए जो पृथ्वी की कक्षा से निकलने के लिये आवश्यक गति से ८०० मील कम है।

सूर्य और शुक्र के बीच एक और छोटा ग्रह बुद्ध है। वहाँ इतनी गर्मी पड़ती है कि यात्रा की बात सोची भी नहीं जा सकती परन्तु मानव रहित यान वहाँ भी भेजने की योजना है।

मंगल के ऊपर भी अनेक ग्रह हैं जिसे खोजने का प्रयत्न वैज्ञानिक कर रहे हैं। वृहस्पति का व्यास ८८, ७०० मील है जो पृथ्वी के व्यास का १० गुना है इसे सूर्य की परिक्रमा करने में १२ वर्ष लगते हैं। सूर्य से इस ग्रह की औसत दूरी ४८,४०,००,००० मील है। इस ग्रह का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से ढाई गुना है अतः वहाँ से अंतरिक्ष यान की वापसी उड़ान बहुत मुश्किल होगी।

वृहस्पति के बाद शनि है जो सूर्य से ८८,५०, ००, ००० मील दूर है। आकार में यह बृहस्पति जितना ही

है। शनि के बाद यूरिनस है। ऐसा अनुमान है कि यूरेनस के वायुमंडल में काफी हाइड्रोजन तथा मीथेन गैसे हैं। यूरेनस के बाद नेपच्युन हैं तथा उसके बाद प्लूटो है। प्लूटो सूर्य से ३,६८,००,००,००० मील है इस ग्रह का सूर्य की परिक्रमा करने का मार्ग अनिश्चित है।

सौर्य मंडल में और भी नक्षत्र हैं जिनकी दूरी सूर्य से इतनी अधिक है कि उसे करोड़ों या लाखों मील में व्यक्त करना असुविधा पूर्ण है। अतः इन दूरस्थ नक्षत्रों की दूरी प्रकाश वर्षों में की जाती है। एक प्रकाश वर्ष ५८,६५,७९,६०,००,००० मील के बराबर होता है। प्लूटो के बाद जो नक्षत्र हमारे सबसे निकट है वह है "एल्फा सेटोरी ए" जो सूर्य से ४·३ प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। यही नहीं, इसके अलावा भी कुछ नक्षत्र ऐसे हैं जिनका प्रकाश हमारे तक पहुँचने में कई करोड़ वर्ष लगते हैं। कुछ ऐसे भी नक्षत्र हैं जो अब तक ज्ञात नहीं किये जा सके हैं।

अतः यह ज्ञात कर लेने के बाद कि अंतरिक्ष में हम अकेले नहीं हैं ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनमें से किसी ग्रह पर कोई ऐसे प्राणी हों जो वैज्ञानिक ज्ञान में हमसे आगे हों। हो सकता है कि ऐसे ग्रह के निवासी भी पृथ्वी तथा अपने पास के अन्य ग्रहों पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हों। हो सकता है कि उड़न तश्तरियों का सम्बंध किसी ग्रह से ही हो। यदि सौरमंडल के बाहर के नक्षत्रों तक पहुँचने की बात सोची जाय तो अंतरिक्षयानों की अबतक की प्राप्त अधिकतम गति नहीं के बराबर है। प्रकाश की गति जो १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड है, की आधी गति भी हम प्राप्त कर लें तो शायद इन नक्षत्रों की यात्रा संभव और सुगम हो जाय।

वैज्ञानिक अंतरिक्ष योजना के साथ-साथ जन कल्याण की भी बात सोच रहे हैं। इस विचार की शुरुआत आलू के एक खेत से की गई जिसकी इन्फ्रारेड फिल्म पर ऊपर की कुछ तस्वीरें देख कर ज्ञात हुआ कि खेत के जो भाग चित्र में गहरे उतरे थे उनमें कीड़े लग गये थे। ऊपर से सागर तल के भी इन्फ्रारेड फ़िल्म पर लिये गये चित्रों से यह पता चल सकेगा कि प्लवंग (मछलियों का भोजन) कहाँ पर अधिक है और कहाँ पर कम और इस तरह कहाँ पर मछलियाँ अधिक मिल सकेंगी यह पता लगाया जा सकता है।

तूफानी मौसम की पूर्व सूचना देकर उपग्रह मनुष्यों की जान बचाने में अभी से हाथ बटाने लगे हैं। मानसून कहाँ से उठकर कहाँ जा रहा है यह इन्हीं उपग्रहों से जान लिया जाता है। संचार के लिये दो उपग्रह—एक अंध महासागर पर और दूसरा प्रशान्त महा सागर पर-कुछ दिनों से उड़ रहे हैं जिनके द्वारा अमरीका और ब्रिटेन व यूरोप के बीच टेलीविजन का सम्बंध बहुत सुगम हो गया है। टेलीफोन के लिये भी यह उपग्रह काम में लाये जाते हैं। अब तो इस तरह के उपग्रह बनाने व उड़ाने की भी योजना है जो एक जगह का कार्यक्रम प्रसारित न करके स्वयं ही प्रोग्राम दिया करेंगे। आगे चल कर अंतरिक्ष स्टेशन भी बनाये जायेंगे जिनमें १०० तक की संख्या में वैज्ञानिक रहा करेंगे जो अंतरिक्ष का अध्ययन करेंगे तथा तत्सम्बंधी सूचनायें भेजा करेंगे।

ग्रह तालिका

ग्रह	व्यास (मीलों में)	कीली पर घूमने का समय	सूर्य की परिक्रमा में लगने वाला समय	सूर्य से दूरी (मीलों में)
बुद्ध	३१००	८८ दिन	८८ दिन	३ करोड़ ६० लाख
शुक्र	७७००	अनिश्चित	२२५ दिन	६ करोड़ ७० लाख
पृथ्वी	७९२७	२३ घंटा ५६ मि०	३६५¼ दिन	९ करोड़ ३० लाख
मंगल	४२००	२४ घंटा ५७ मि०	६८७ दिन	१४ करोड़ २० लाख
बृहस्पति	८८७००	९ घंटा ५१ मि०	१२ वर्ष	४८ करोड़ ४० लाख
शनि	७५१००	१० घंटा १४ मि०	२९½ वर्ष	८९ करोड़ ५० लाख
यूरेनस	३०१००	१० घंटा ४२ मि०	८४ वर्ष	१७८ करोड़ २० लाख
नैपच्युन	३३००	१५ घंटा ४८ मि०	१६५ वर्ष	३७९ करोड़ ३० लाख
प्लुटो	७९००	अज्ञात	२४८ वर्ष	३६८ करोड़

● ●

किसान की समस्यायें एवं उनसे मुक्ति—१

□ डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

फसलोत्पादन में किसान का साक्षात्कार सर्वप्रथम भूमि से होता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि अमुक मृदा-किस्म में कौन सी फसल सर्वाधिक लाभकर रूप में उगाई जा सकती है एवं किस प्रकार की भूमि में खेती करना न्यूनतम लाभ प्रदान करेगा या हानि कर होगा। उसका यह प्रयत्न स्वाभाविक एवं वांछनीय है कि इन मिट्टियों में खेती करने के लिये कौन कौन से साधन प्रयोग में लाये जाँय जिससे कि ऐसी समस्यायुक्त मिट्टियों में भी फसलोत्पादन लाभकारी सिद्ध हो सके।

भारतीय किसान के समक्ष मृदा सम्बन्धी प्रमुख समस्या है उनके क्षारीय एवं अम्लीय रूप में परिवर्तित हो जाने की। इन समस्या रूप क्षारीय मिट्टियों के निर्माण की प्रथम अवस्था सोडियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम के घुलनशील लवणों का एकत्रित होना है। ये लवण इनके क्लोराइड एवं सल्फेट होते हैं। यही नहीं, ऐसी मिट्टियों में पोटेशियम के कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट तथा बोरान की भी अधिकता पाई जाती है। इसके बाद की अवस्था में सोडियम सर्वाधिक रूप में उपस्थित होता है। ऐसी मिट्टियाँ प्रायः ऐसे क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है जहाँ जल निकास अत्यन्त खराब होता है। दूसरा कारण भूमिगत जल की सतह का अत्यन्त निकट होना पाया गया है।

घुलनशील लवणों एवं सोडियम का मृदा की सतह में एकत्रीकरण पौधों की वृद्धि में कई रूपों में बाधक होता है। वे मिट्टियाँ जिनमें केवल घुलनशील लवण ही अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं प्रायः सामान्य मिट्टियों से भी अधिक जल निकास की क्षमता प्रदर्शित करती हैं जिससे कि जल शीघ्र ही पौधे की जड़ क्षेत्र के बाहर चला जाता है एवं पौधे जल की न्यूनता से प्रभावित होते हैं। ऐसी मिट्टियों में लवणों की अधिकता के कारण उपलब्ध जल को भी पौधे अवशोषित नहीं कर पाते एवं इस प्रकार इनकी वृद्धि प्रभावित होती है। सोडियम की अधिकता के कारण मृदा का जल-निकास एकदम बन्द हो जाता है एवं पानी सतह के नीचे नहीं जा पाता। इस प्रकार की मिट्टियाँ क्षारीय मिट्टियाँ होती हैं जिनकी भौतिक दशा उस लवणीय मिट्टी की अपेक्षा, जिसमें घुलनशील लवण मिले रहते हैं, अधिक शोचनीय होती है। इन मिट्टियों का पी-एच. (PH) ८·५ से अधिक होता है।

इन मिट्टियों में केवल जल निकास की ही समस्या नहीं होती। इनकी अन्य भौतिक दशायें भी असाधारण रूप से बिगड़ जाती हैं। मिट्टी के कणों की सजावट खराब हो जाने के कारण इसका रूप बिगड़ जाता है जिसका सीधा प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पड़ता है। इस प्रकार इन मिट्टियों का निर्माण किसान की आर्थिक दशा को अपरोक्ष रूप में प्रभावित करता है। सोडियम के तथा अन्य घुलनशील लवणों की प्रमुख समस्या के साथ-साथ इन मिट्टियों में बोरान की विषालुता का संकट भी किसान के सामने आता है। बोरान की विषालुता से प्रभावित फसल एकदम नष्ट हो जाती है एवं किसान असहाय सा फसल को सूखते हुये देखता रहता है।

अन्य आवश्यक तत्वों की प्राप्यता क्षारीय मिट्टियों में अत्यन्त कम हो जाती है जिससे यदि पौधे लवणीय मिट्टियों में उगते भी हैं तो आवश्यक तत्वों की न्यूनता से प्रभावित होकर पूर्ण वृद्धि नहीं कर पाते एवं किसी न किसी तत्व की विषालुता या न्यूनता के कारण असमय ही काल

कवलित हो जाते हैं।

दूसरे प्रकार की समस्या रूप मिट्टियाँ अम्लीय मिट्टियाँ हैं। ये अधिकतर तराई एवं अधिक कार्बनिक पदार्थ युक्त स्थानों में पाई जाती हैं। इन मिट्टियों में फास्फोरस की न्यूनता, अल्यूमीनियम एवं मैंगनीज की विषालुता का अध्ययन विस्तृत रूप से हो रहा है। परन्तु अभी तक इन समस्याओं के बारे में कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। इन मिट्टियों में प्रायः जल-निकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है। यही कारण है कि सतह के तत्व प्रायः जल के साथ नीचे जाकर एकत्रित होते हैं एवं सतह की अपेक्षा नीचे की मिट्टी अधिक समृद्ध होती है। इन मिट्टियों का पी-एच (PH) ६.५ से कम होता है। ऐसी स्थिति में इन मिट्टियों में फसलोत्पादन असम्भव होता है एवं यदि सम्भव भी हुआ तो अलाभकर होता है।

अब प्रश्न उठता है कि इस आधारभूत समस्या से कैसे मुक्ति मिले। कौन से साधन अपनाये जाँय कि ये मिट्टियाँ कृष्य भूमि में परिवर्तित की जा सकें। इसके साथ ही साथ इन साधनों की प्रयोग में लाते समय आर्थिक पहलू पर विचार कर लेना भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इस दिशा में हमारे देश के वैज्ञानिकों का ध्यान काफी समय पहले से आकर्षित हो चुका है। इन मिट्टियों में सफलतापूर्वक उगने वाली फसलों की किस्में विकसित की जा रही हैं। इनको सुधारने के सरलतम साधनों के सम्बन्ध में खोज हो रही है। परन्तु अभी तक पूर्ण सफलता किसी भी क्षेत्र में सम्भव नहीं हो सकी है। कुछ पहलुओं को जिन पर विचार किया जा सकता है इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है।

लवणीय मिट्टियों में मुख्य कठिनाई उनमें घुलनशील लवणों का अधिक होना है। इन मिट्टियों में पानी भर कर घुलनशील लवणों को खेत के बाहर निकाला जा सकता है। यह क्रिया कई बार दुहरानी पड़ेगी। इसके लिये कम खर्चे में प्राप्य सिंचाई के पानी का मिलना आवश्यक है। पानी को प्रयोग करने के पहले उसका रासायनिक विश्लेषण कर लेना चाहिये अन्यथा यह भी सम्भव है कि प्रयुक्त पानी स्वयं ही हानिकर लवणों से युक्त हो एवं मिट्टी सुधरने के स्थान पर और अधिक खराब हो जाय। इस विधि को सफलता पूर्वक तभी प्रयोग किया जा सकता है जब जलनिकास की व्यवस्था अत्यन्त उच्च कोटि की हो। इस विधि की सफलता मृदा के नीचे जलस्तर की गहराई पर भी निर्भर करती है। यदि जलस्तर अत्यन्त पास होगा तो लवण जो घुल कर नीचे जाँयगे ग्रीष्म ऋतु में पुनः ऊपर आ जाँयगे एवं समस्या का समाधान स्थायी नहीं होगा। ऐसे स्थानों पर घुलनशील लवणयुक्त पानी को निकासनालियों द्वारा बाहर निकाल देना अधिक उपयुक्त होगा। यदि मिट्टी में लवणीयता कम मात्रा में ही हो तो इस क्रिया के चलते हुये वे फसलें उगाई जा सकती हैं जो अधिक पानी में वृद्धि कर सकती हों। ऐसी फसलों में धान, बरमूडा घास एवं सेसाबैनिया प्रमुख हैं। इस क्रिया के मध्य में ही प्रायः जलनिकास समस्या सामने आती है। इसके लिये यदि पानी में कैल्सियम की थोड़ी भी मात्रा बनाये रखी जाय तो यह क्रिया ठीक से चलती रहती है एवं लवणीय मृदा का स्थायी सुधार सम्भव हो सकता है।

क्षारीय समुदाय की मिट्टियों में केवल घुलनशील लवणों का निकास ही मृदा सुधार की इति नहीं होती। इन मिट्टियों में सोडियम का विनिमेय रूप में उपस्थित होना सर्वाधिक कठिनाई प्रस्तुत करता है। इस कठिनाई से मुक्ति पाना भी अधिक दुष्कर है। सोडियम की उपस्थिति ही अधिक पी-एच का कारण होती है। इस समस्या से मुक्ति पाने के लिये जल, जिसका कि मृदा सुधार में प्रयोग करना हो कैल्सियम युक्त होना चाहिये। पानी का कैल्सियम सोडियम के स्थान पर विनिमेय क्रिया द्वारा ग्रहीत होगा एवं सोडियम स्वतंत्र होकर जल के साथ बाहर निकल जायगा। इस प्रकार एक सामान्य मिट्टी का जन्म होता है। यह फसलोत्पादन के क्षेत्र में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

कुछ क्षारीय मिट्टियों में कैल्सियम अघुलनशील रूप में विद्यमान रहता है। यदि साधारण पानी के साथ साथ ऐसी व्यवस्था हो जाय कि कैल्सियम के इस अघुलनशील स्रोत को

घुलनशील बनाया जा सके तो समस्या का समाधान सस्ता एवं आसान हो जायगा। इसके लिये मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग वांछनीय है। ऑक्सीकरण के फलस्वरूप ये कार्बनिक पदार्थ अम्लों को जन्म देते हैं जो दुर्बल अम्ल होते हुये भी मृदा में उपस्थित जिप्सम को घुलनशील बनाने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार कैल्सियम उपर्युक्त क्रिया द्वारा सोडियम का स्थान ग्रहण कर लेता है।

रासायनिक विधियाँ जो सुधार के लिये प्रयुक्त की जा सकती हैं तीन प्रकार की हैं : प्रथम प्रकार की वे विधियाँ हैं जिनमें घुलनशील कैल्सियम स्रोत प्रयोग किये जाते हैं। इनमें कैल्सियम क्लोराइड एवं कुछ हद तक जिप्सम का नाम लिया जा सकता है। इनका प्रयोग अम्लीय मिट्टियों के सुधार के लिये भी किया जा सकता है। अम्लीय मिट्टियों में विनिमेय स्थानों पर हाइड्रोजन के स्थान पर कैल्सियम का स्थापित होना मृदा सुधार का अन्तिम रूप होगा। सक्रिय एल्युमीनियम कैल्सियम युक्त मिट्टियों में कम सक्रिय हो जाता है एवं इस प्रकार इसके विषालु प्रभाव से भी छुटकारा मिल जाता है। दूसरे प्रकार का कैल्सियम स्रोत कम घुलनशील है। इसके अन्तर्गत लाइमस्टोन को रखा जाता है। क्षारीय मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ के साथ इसका प्रयोग अधिक उपयोगी सिद्ध होगा, परन्तु अम्लीय मिट्टियों की अम्लता स्वयं ही इसको घुलनशील बना देगी। तीसरे प्रकार की वे विधियाँ हैं जो अम्लता उत्पन्न करती हैं। यह विधि केवल क्षारीय मिट्टियों के लिये काम में लाई जा सकती है। इसके अन्तर्गत सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फर, एवं लोहा तथा एल्युमीनियम के सल्फेट प्रमुख हैं। यह विधि उन क्षारीय मिट्टियों में अधिक लाभकारी होती है जिनमें कैल्सियम की प्रचुर मात्रा अघुलनशील रूप में उपस्थित होती है। इन तीन रासायनिक विधियों से लाइमस्टोन का प्रयोग सबसे कम खर्चीला है। परन्तु इसका प्रयोग वहीं किया जा सकता है जहाँ अम्लता उत्पन्न होती हो। अन्यथा यह पूर्णतया अक्रिय रहता है।

अम्लीय मिट्टियों के सुधार के लिये जैसा कि बताया जा चुका है चूने का प्रयोग ही सुलभ साधन है। इन मिट्टियों में लाइमस्टोन को अत्यन्त सुगमतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। इन सभी सुधार साधनों की मात्रा मृदा की भौतिक तथा रासायनिक स्थिति पर निर्भर करती है। इसके लिये किसान को किसी समीपस्थ कृषि वैज्ञानिक की सहायता लेनी चाहिये। वैज्ञानिकों को भी देश के हित में इतना सहृदय होना चाहिये कि प्रत्येक किसान की समस्या को गम्भीरतापूर्वक सुनें, विचार करें एवं उचित राय दें जिससे कि इन समस्या जमीनों से छुटकारा मिले तथा किसान के साथ साथ राष्ट्र की खाद्य समस्या में भी सुधार हो सके। यह पुनीत कार्य सहयोग से ही पूर्ण हो सकेगा।

● ●

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

इसके कई उपयोग हैं। सर्वप्रथम इससे प्राप्त पोजीट्रॉन-प्रोटॉन तथा इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन प्रकीर्णन प्रयोगों की ३०० mev पर तुलना करने पर नाभिकीय संरचना सिद्धान्त का परीक्षण हो जाता है, इलेक्ट्रॉन किरणों तथा पोजीट्रॉन किरणों की आपस में टक्कर का अध्ययन किया जा सकता है। इन किरणों के और भी अन्य बहुत से उपयोग हैं और कुछ का अध्ययन अभी भी चल रहा है। पोजीट्रॉन किरणों का पदार्थ द्वारा अवशोषण का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी सहायता से पदार्थ के विनाश हो जाने का जो सैद्धान्तिक तर्क है उसकी पुष्टि की सम्भावना अत्यधिक पाई जाती है।

● ●

उपग्रह अभियान से लाभ

उपग्रह प्रक्षेपण से देश के सुदूर स्थानों से भी सीधे संचार व्यवस्था कायम की जा सकती है। सम्पूर्ण देश के लोग किसी सूचना अथवा दर्शनीय बात को इस व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय टेलीविजन योजना के माध्यम से एक साथ देख एवं सुन सकते हैं। इसका प्रयोग डाक एवं तार विभाग में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है, विशेषतः उन द्वीपों में जहाँ सीधे संचार व्यवस्था का प्रवन्ध नहीं है जैसे अन्डमान-निकोबार द्वीप। देश के बड़े-बड़े व्यापारिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के शहर यथा दिल्ली, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता आदि के बीच सीधी टेलीफोन व्यवस्था कायम की जा सकती है जिस पर कि न्यूनतम ५ पैसे टैक्स लगाने पर भी अनुमानतः ५० करोड़ रुपये प्रति वर्ष का लाभ हमारी सरकार को हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त हमारा सुरक्षा विभाग भी इनका प्रयोग नेफा एवं लद्दाख जैसे दलदले स्थानों से सम्पर्क बनाये रखने में कर सकता है। उपग्रहों का प्रयोग जल सेना द्वारा बीच समुद्र में फँसे जहाज एवं किनारे पर खड़े जहाजों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करने में किया जा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न उड्डयन केन्द्रों के बीच सीधी संचार व्यवस्था बनाये रखने के लिये भी इनका प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न स्थानों से निकलने वाले समाचार पत्र प्रकाशन संस्थान भी इनसे लाभान्वित हो सकते हैं।

यही नहीं, पूरा संसार इस व्यवस्था से एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। पिछले वर्ष अमेरिका के साथ हुये समझौते के अनुसार नेशनल एयरोनाटिक्स एवं स्पेस ऐड-मिनिस्ट्रेशन १९७२ ई० में एक शैक्षणिक ध्येय युक्त उपग्रह छोड़ेगा जिसके प्रयोग से भारत एक साथ अपने ५०० गाँवों के निवासियो को शैक्षणिक व्यवस्था के माध्यम से शिक्षित बनाने में सफल हो सकता है। सफलता हमारे एवं सरकार के बीच के सहयोग पर निर्भर करेगी। १९७८ ई० में भारत स्वयं इसी प्रकार के उपग्रह को छोड़ेगा एवं यह अमेरिका के उपग्रह का स्थान ग्रहण कर लेगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस दिन भारत अन्तरिक्ष योजना में सफल हो जायगा वह दिन भारतवासियों के तकनीकी उन्नति का सुनहरा दिन होगा। देश हर दिशा में उन्नतिशील हो सकेगा एवं सारा देश एक सूत्र में बँध जावेगा।

महिला वैज्ञानिक सम्मानित

ह्यूस्टन (टेक्सास) स्थित एम० डी० एन्डर्सन अस्पताल और ट्यूमर संस्थान की जीव-विज्ञान विशारदा डा० मार्जरी डब्ल्यू० शा को "अमेरिकन एसोसियेशन ओव् यूनिवर्सिटी वीमेन' (ए० ए० यू० डब्ल्यू०) का १९७० का सफलता-पुरस्कार प्रदान किया गया है।

प्रशस्ति-पत्र में संस्थान ने कहा है कि डा० शा एक विशिष्ट विदुषी और चिकित्सिका हैं जिनका मानवीय-अनु-

वंशिकी सम्बन्धी अनुसंधान रोगों के लिए निश्चित निदान और चिकित्सा-व्यवस्था प्रस्तुत करता है।

डा० शा इस समय कीटनाशक दवाइयों और मिलावटी भोज्य सामग्री जैसी औषधियों एवं रसायनों से क्रोमोसोम (गुणसूत्रों) को पहुँचने वाली क्षतियों का अध्ययन कर रही हैं। उनके मौजूदा अनुसंधान का उद्देश्य मनुष्य की आनुवंशिक विरासत को सुरक्षित रखना है, जो उनके अनुसार तेजी से होने वाले वातावरणीय परिवर्तनो—विकिरण, औद्योगिक रसायनों, दवाइयों, भोजन में मौजूद रासायनिक तत्वों और विषाणुओं—का शिकार हो सकती है।

डा० शा ने १९४६ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से आनुवंशिकी में 'मास्टर' की उपाधि प्राप्त की थी। किन्तु उन्होंने मिशिगन विश्वविद्यालय में १९५३ तक अपना डाक्टरी प्रशिक्षण प्रारम्भ नहीं किया—वह वर्ष था जब उनकी सुपुत्री 'किंडरगार्टेन, में दाखिल हुई थी।

डा० शा को १९५७ से सेन्ट जोसेफ हास्पिटल (एन-आर्बोर, मिशिगन) से 'आनर्स' के साथ डाक्टरी की डिग्री प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने मिशिगन विश्वविद्यालय के मानवीय आनुवंशिकी विभाग में कार्य प्रारम्भ किया। पांच वर्ष के भीतर वह 'इन्स्ट्रक्टर' के पद से 'सह-प्रोफेसर' के पद पर पहुँच गयीं।

आनुवंशिकी में उनकी दिलचस्पी सदैव पूर्णतः वैज्ञानिक ही नहीं रही है। १९६० से १९६७ तक वह विश्वविद्यालय की आनुवंशिकी सलाहकार रहीं। इस पद पर वह विवाहित युगलों को आनुवंशिक बीमारियों से सम्बद्ध उनके पारिवारिक इतिहास और उनकी संतानों पर उनके संभावित प्रभाव के बारे में बताया करती थीं और अक्सर उन्हें उनकी चिंताओं से मुक्ति दिलाया करती थीं।

डा० शा के पति भी चिकित्सक हैं तथा उनका विषय भी आनुवंशिकी है। जब उन्होंने एम० डी० ऐन्डर्सन अस्पताल और ट्यूमर संस्थान में मेडिकल जेनेटिक्स के प्रमुख का पद संभाला तो पूरा परिवार ह्यूस्टन आ गया।

डा० मार्जरी शा इस समय राष्ट्रीय उड्डयन और अंतरिक्ष प्रशासन के ह्यूस्टन स्थित कार्यालय में अनुसन्धान कार्य कर रही हैं। उनके अनुसंधान का विषय अन्तरिक्ष-यात्रा के दौरान अन्तरिक्ष-यात्रियों को पहुँचने वाली क्रोमोसोम सम्बन्धी क्षतियाँ हैं।

३,००० डालर का जो 'सफलता पुरस्कार' उन्हें प्राप्त हुआ है उसे वह 'कानून का अध्ययन' करने में खर्च करने की सोच रही हैं क्योंकि उनको विश्वास है कि दूषण को रोकने के लिए 'विधायन' अनिवार्य है। उनका विचार है कि दूषण भावी पीढ़ियों के लिए एक भयानक खतरा पैदा कर रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था का माध्यम अरवी उपग्रह केन्द्र

इस वर्ष के अन्त तक पूना से ८० किलोमीटर उत्तर की ओर एक छोटा सा गाँव भारत का अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था केन्द्र बन जायगा। यह उपग्रह अभियान के फलस्वरूप हो सका है।

उपग्रह चालित संचार व्यवस्था केन्द्र की स्थापना के लिये अरवी को ही सर्वप्रथम चुना गया था। यह केन्द्र व्यापारिक संचार व्यवस्था केन्द्र होगा। यह केन्द्र १९६९ में ७२ राष्ट्रों से संचार व्यवस्था बनाये रखने के लिये भारतीय समुद्र के ऊपर छोड़े गये तृतीय इन्टेस्लाट (Inteslat) उपग्रह से सम्बन्ध स्थापित करेगा। इस प्रकार छोड़े गये तीन उपग्रह सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधने में सक्षम होंगे।

अरवी उपग्रह संचार केन्द्र जो कि एस्काम योजना (ascom Project) के नाम से जाना जाता है अणु शक्ति विभाग (Deparment of atomic energy) द्वारा संचार मंत्रालय के लिये बनाया गया है। यह ८ करोड़ लागत से बनाया गया केन्द्र अरवी एवं बम्बई को सूक्ष्म तरंगों के माध्यम से जोड़ता है। बीच में गिरावली, चिकली एवं मैथेरान नामक उपकेन्द्र भी स्थापित किये गये हैं।

अरवी केन्द्र मुख्य अरवी गाँव से २ किलोमीटर की

दूरी पर है। यह केन्द्र चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। केन्द्र में २९.५ मीटर व्यास की गोली ऐन्टेना (antenna) लगी हुई है जो सूक्ष्म तरंगों के माध्यम से सूचनायें भेजने एवं ग्रहण करने का काम करती है। इसका निर्माण अत्यन्त जटिल है। यह केन्द्र ६०० टेलीफोन एवं टेलीविजन उपकरणों को एक साथ संचालन करने की क्षमता रखता है एवं १२ अंतर्राष्ट्रीय केन्द्रों के समाचार एक ही समय में ग्रहण कर सकता है।

इस योजना को सफलीभूत बनाने के लिये अपने देश के निम्न संस्थान योगदान करेंगे :—

१. ऐस्काम योजना
२. अहमदाबाद का भू उपग्रह केन्द्र
३. ट्राम्बे का प्रोटोटाइप अभियंत्रण केन्द्र
४. भाभा शोध केन्द्र
५. ट्राम्बे नगर-योजना केन्द्र
६. भारतीय टेलीफोन संस्थान
७. अन्य सम्बन्धित संस्थान

इस योजना के संचालन के लिये आवश्यक उपकरणों को मँगाने हेतु कनाडा सरकार ने भारतवर्ष को ४० लाख कनाडियन डालर का ऋण देने का निश्चय किया है। यह राशि भारतीय रुपयों में ढाई करोड़ रुपये के बराबर होगी। सभी इलेक्ट्रानिक उपकरण मेसर्स आर० सी० ए० लिमिटेड, मान्ट्रिएल, कनाडा द्वारा भेजे गये हैं। अहमदाबाद भू उपग्रह केन्द्र के डाइरेक्टर एस्काम योजना के मुख्य अधिकारी रहेंगे।

उड़ीसा के प्रस्तर-शिल्पी

उड़ीसा अपने मन्दिरों और उन्हें अलंकृत करने वाली मूर्तियों के लिए विख्यात है अतएव, यह स्वाभाविक है कि उड़िया लोगों के हाथकरघे के सिल्क और बच्चों के सुन्दर खिलौनों में उस कला-प्रेम के दर्शन हों जिसका विकास दीर्घकाल में हुआ है।

इनकी अद्भुत कारीगरी का पता चाँदी, लकड़ी और सेलखड़ी पर की जाने वाली अत्यन्त सुन्दर और सूक्ष्म नक्काशी तथा कैनवस पर बनाये जाने वाले आकर्षक धार्मिक चित्रों से भी चलता है।

उड़ीसा के दस्तकारों में पुरी के उन कारीगरों का विशिष्ट स्थान है जो पत्थर को तराश कर सुन्दर कृतियां तैयार करते हैं। उनकी इन कृतियों की प्रशंसा जनता के साथ-साथ कवियों ने भी की है।

पुरी में जगन्नाथ के सुप्रसिद्ध मन्दिर से कुछ ही दूरी पर पाथुरियासाही नामक एक स्थान है जहाँ पत्थर की मूर्तियाँ बनाने वाले कोई १५० कारीगर रहते हैं। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार, उड़ीसा के राजा नरसिंह देव प्रथम ने सन् १२११ में इन कारीगरों के पूर्वजों को इस स्थान पर बसने में मदद दी थी।

हाल में अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड ने प्रस्तर-शिल्पियों के लिए पथुरिया-साही में एक प्रशिक्षण-केन्द्र आरम्भ किया है। वहाँ इस समय९ प्रशिक्षणार्थी हैं। भुवनेश्वर महापात्र उनके शिक्षक हैं। वह १९३० के दशक में कई वर्षों तक शान्ति-निकेतन के विश्वभारती कला भवन में कार्य कर चुके हैं।

उड़ीसा राज्य सरकार के हस्तशिल्प अभिकल्पना एवं प्रशिक्षण केन्द्र ने भी भुवनेश्वर में २ वर्ष के प्रशिक्षणक्रम की व्यवस्था की है।

पुरी के प्रस्तर-शिल्पियों की कृतियों ने प्रशंसा प्राप्त करने के अलावा अमेरिका से डालर भी कमाये हैं। १९६४ में न्यूयार्क में जो विश्वमेला हुआ था उसमें भारतीय मण्डप में रखी पुरी की प्रस्तर-शिल्प कृतियों ने बहुत अधिक आकृष्ट किया था।

कैंसर नियंत्रण की ओर एक नया कदम

इस नई जानकारी से की कैंसर को उलटा, रोका और उसके स्थान पर नयी सामान्य कोशिकाओं का विकास किया जा सकता है, पहली बार एक वास्तविक आशा बंधती है कि मनुष्य में इस बीमारी के सभी रूप अंततः नियंत्रित किए जा सकेंगे।

कैंसर विशेषज्ञ यह नहीं कह सकते कि ऐसा कब हो

सकेगा। किन्तु, उनका यह विश्वास है कि कुछ तरह के कैंसरों पर आगामी वर्षों में अवश्य ही नियंत्रण किया जा सकेगा और लगभग ३० वर्षों में सभी तरह के कैंसरों को ठीक करने की व्यवस्था हो जायेगी।

एक लम्बे अरसे से इस बात पर विश्वास किया जाता है कि ट्यूमर के विकास को एक बार शुरू हो जाने पर उलटा नहीं जा सकता। नया ज्ञान इस सिद्धान्त को संशोधन करने पर जोर दे रहा है।

नये सिद्धान्त के अनुसार कैंसर के विकास को, वह चाहे विषाणुओं, रासायनिक पदार्थों, विकिरण, बुढ़ापे या किसी कारण से क्यों न हुआ हो कोशिकाओं के कुछ दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों की सक्रियता को दबा कर और उनमें सामान्य एवं स्वस्थ ऊतकों का पुनः विकास करके हमेशा के लिए रोका जा सकता है।

विषाणु और कैंसर सम्बन्धी बीस वर्ष के अनुसन्धान कार्य के बाद डा० ह्यूवर भी कैंसर के बारे में मूलतः डा० ब्राउन के सिद्धान्त को ही मानते हैं अर्थात् कैंसर का रोग कुछ दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों के कारण होता है। उन्होंने पहले माने जाने वाले इस सिद्धान्त को गलत बताया कि आनुवंशिक तत्वों के पूरकों के समूहों के एक स्थान पर एकत्र होने से कोशिकाएँ ट्यूमर की शकल ले लेती हैं और उससे कैंसर होता है।

डा० ह्यूवर का कहना है कि कैंसर के बीज विषाणुओं के रूप में और कुछ मामलों में दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों के रूप में प्रत्येक इन्सान में गर्भावस्था से ही होते हैं। फ़िर भी, ज्यादातर लोगों में आनुवंशिक तत्वों की मशीनरी उसे दबाये या बुझाये रहती है।

● ●

निवेदन

नवम्बर के प्रथम सप्ताह को 'विज्ञान दिवस' के रूप में मनाकर विज्ञान को लोकगम्य एवं लोक प्रिय बनाने के लिए समस्त भारतीय विज्ञान पत्रिकायें व्रत लें। समय आ गया है कि इस स्तर पर उतर कर विज्ञान जैसे विषय की दुर्बोधता के हौवे को दूर किया जाय। इसके लिये अधिकारी विद्वान आगे बढ़ कर हाथ बटावें —— लेख लिखें, व्याख्यान दें और स्पर्धाओं का आयोजन करके पुरस्कार प्रदान किये जाने की योजना बनावें।

विज्ञान-वार्ता

१० मिनट में एक किलो चावल

भारत में भ्रमण करते समय अमरीकियों से अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि अमेरिका में वस्तुओं के मूल्य क्या हैं। अमेरिकी लोग इन प्रश्नों का उत्तर डालरों और सेन्टों में दे सकते हैं और इन मूल्यों को रुपयों में भी बताया जा सकता है। किन्तु इससे बात सामान्यतः स्पष्ट नहीं होती क्योंकि अमेरिकी मजदूर अधिक कमाता है और वह जो चीजें खरीदता है उसका उसे अधिक मूल्य देना पड़ता है।

किन्तु हाल में अमेरिकी श्रमविभाग से सम्बद्ध श्रम सांख्यिकी कार्यालय की ओर से प्रकाशित कुछ आँकड़े सामने आये हैं। अमेरिकी लोग जो चीजें खरीदते हैं उनके मूल्यों को इन आँकड़ों द्वारा समय में बदल दिया गया है। इन आंकड़ों को देख कर यह मालूम किया जा सकता है कि सामान्य अमेरिकी मजदूर को ये चीजें खरीदने लायक धन कमाने में कितना समय लगता है। उदाहरण के लिये एक अमेरिकी को एक किलो चीनी खरीदने के लिये ५ मिनट काम करना होगा और एक जोड़ी अच्छा जूता खरीदने के लिये ६ घंटे ५३ मिनट। यहाँ कुछ अन्य उदाहरण दिये जा रहे हैं :

१ किलो मक्खन	३५ मिनट
१ दर्जन अण्डे	१२ मिनट
१ लिटर दूध	५ मिनट
एक किलो चावल	१० मिनट
१ × ६ गज का छपा हुआ मोटा सूती कपड़ा	५४ मिनट
साधारण पैंन्ट (पुरुष)	१ घंटा ४३ मिनट
पुरुष का ऊनी (वर्स्टेड) सूट	२४ घंटे १२ मिनट
ट्रांजिस्टर रेडियो, टेवेल मॉडल	५ घंटे ५६ मिनट
२ दरवाजों वाला रेफ्रिजेरेटर फ्रीजर	१३ घंटे २४ मिनट
सिनेमा का सामान्य टिकट	३२ मिनट
२० सिगरेटों का पैंकेट	७ मिनट
१ किलो गेहूँ का आटा	४ मिनट
१ किलो आलू	२ मिनट
बाल कटाई (पुरुष)	४६ मिनट
१ किलो काफी	३३ मिनट
१ किलो चाय	५२ मिनट
८ सिलिण्डर की सामान्य आकार की मोटर गाड़ी	२६ सप्ताह २ दिन

अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को मार्ग में ही नष्ट करने वाली प्रणाली का सफल परीक्षण

अमेरिका ने अपनी भूमि की ओर अग्रसर हो रहे अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र विरोधी प्रणाली (ए वी एफ) का पहली बार सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

यह सफल परीक्षण २८ अगस्त को किया गया जब कि ए वी एफ प्रणाली में प्रयुक्त एक स्पार्ट, प्रक्षेपणास्त्र क्वाजलीन परीक्षण स्थल से प्रशान्तमहासागर में उस दिशा में दागा गया था (यह जिधर से अमेरिकी अन्त-र्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र मिनटमैन-९ आ रहा था)। यह मिनिटमैन, प्रक्षेपणास्त्र ६७२० किलोमीटर दूर कैलीफोर्निया स्थित अड्डे से दागा गया था।

अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को मार्ग में ही रोक देने वाले प्रक्षेपणास्त्र का नाम 'स्पार्टन' है। यह १६·५ मीटर

लम्बा है तथा इसकी मार कई सौ किलोमीटर है। दूसरा प्रक्षपेणास्त्र 'स्प्रिंट' है यह आठ मीटर लम्बा है। तथा इसकी मार४७ किलोमीटर तक है। यह उन अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को नष्ट करने में समर्थ है जो स्पार्टन की पकड़ से बच निकलेंगे।

विभिन्न अंगों के जोड़ने का सफल प्रयास

जर्मन सोसायटी फार सर्जरी इनम्युरिख (फेडरेशन रिपब्लिक आफ जर्मनी) की ८७वीं कांग्रेस के अवसर पर पश्चिमी बर्लिन के एक चिकित्सक दल ने कटे हुए अंगों की सफलतापूर्वक सिलाई करके काम लायक बनाकर चिकित्सा जगत में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है। बर्लिन के पाँच प्रमुख शल्य चिकित्सकों के दल ने सफल शल्य चिकित्सा द्वारा अंगों की सिलाई करने का विस्तृत वर्णन दिया है।

विद्युत-विश्लेषी झिल्लियाँ

विद्युत विश्लेषण की विधि अपनाकर उत्पादन की गति को तीव्र करने की प्रणाली ने अनुसन्धाकर्ताओं को गत दो दशाब्दियों में बहुत आकृष्ट किया है। केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर ने यही विधि नमक उत्पादन में भी अनेक प्रकार से अपनायी है। विद्युत विश्लेषण प्रक्रिया के लिये सदैव विशेष किस्म की झिल्लियों की आवश्यकता हुआ करती है। संस्थान ने नमक उत्पादन के लिये विशिष्ट झिल्लियाँ तैयार की हैं जिनके द्वारा विद्युद्विश्लेषण प्रक्रिया के दौरान घोलों में आयनों का परस्पर विनिमय बहुत ही सुगमता से अपेक्षित गति से हो सकता है। इनका उपयोग ऋणाओं एवं धनाओं पर उत्पादों को एकत्रित करने के लिये होता है। इनके कारण जहाँ उत्पादन की गति तीव्र होती है, वहीं उत्पाद की शुद्धता भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है। समुद्र के भीतर चलते हुये जहाजों में खारे पानी से पीने योग्य पानी प्राप्त करने में भी इन झिल्लियों का उपयोग किया जा सकता है।

मानवरहित यान द्वारा चन्द्रमा को सफल उड़ान

रूस द्वारा छोडा गया मानव रहित अन्तरिक्षयान लूना-१६ चन्द्रमा की यात्रा पूरी करके पृथ्वी पर वापस आगया। लूना-१६ अपने साथ चन्द्र धूलि भी लाया है। यद्यपि अमेरिका की अपोलो-११ की उड़ान में आर्म्सट्रांग आदि अपने-साथ साथ चन्द्र धूलि लाये थे पर मानव रहित यान का चन्द्रमा पर उतरना, वहां से धूलि इकट्ठी करना और पृथ्वी पर सकुशल वापस आ जाना बहुत बड़ी सफलता है। अन्तरिक्ष उड़ानों के इतिहास में इस कृति द्वारा एक नया अध्याय जुड़ गया है और विज्ञान तथा तकनीकी उन्नति में में आशातीत सफलता मिली है। यह यान १३ सितम्बर को छोड़ा गया था और २४ सितम्बर को मास्को से दक्षिण-पश्चिम में २२५० किलोमीटर दूर कजाखिस्तान में घोषित समय से केवल ६ मिनिट के अन्तर से धूलधारित कैप्सूल पृथ्वी पर उतरा। जिस तकनीकी वारीकी, सुरक्षा, अल्पव्यय तथा खोजों की अत्यधिक सम्भावना के साथ यह उड़ान पूरी हुई है, इसे सोवियत वैज्ञानिक महान विजय समझते हैं और अन्य सभी पिछली उड़ानों से इसे सर्वोपरि मानते हैं। इस सफलता से उत्प्रेरित होकर सोवियत वैज्ञानिक मंगल तथा अन्य ग्रहों की धूलि एकत्रित करने से लिए मानव रहित यानों की उड़ानों की ओर प्रयास करने की सोचने लगे हैं।

अमेरिका की दो अपोलो-यात्राएँ रद्द

अमेरिका की अन्तरिक्ष एजेन्सी ने अपोलो अन्तरिक्ष यात्रियों की शेष छः यात्राओं को रद्द करने की घोषणा की है। उसने यह भी घोषणा की है कि १९७२ के मध्य तक कार्यक्रम का समापन भी कर दिया जायेगा।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) के प्रशासक डा० टामस ओ० पेन ने कहा कि अपोलो १५ और १९ की यात्राओं को रद्द करने का निर्णय 'अत्यन्त' ही अनिच्छापूर्वक लिया गया है। यह निर्णय बजट में हुई कटौती का सामना करने तथा नये

कार्यक्रमों के लिए निधि सुरक्षित रखने के लिए किया गया। नये कार्यक्रमों में आकाशीय प्रयोगशाला, १९७२ के अन्त में छोड़ जाने वाले अन्तरिक्ष स्टेशन, अन्तरिक्ष शटल और १९७० के दशक के अन्त में स्थापित किए जाने वाले बड़े अन्तरिक्ष स्टेशन आदि शामिल हैं।

अपोलो की उड़ानों का नये सिरे से नियोजन किया गया है और उनके नाम भी नये सिरे से रखे गए हैं। नव-नियोजित अपोलो-१४ से अपोलो १७ तक की उड़ानें लगभग ६ महीने के अन्तर से की जायेंगी। उनका व्योरा निम्न प्रकार है:

अपोलो-१४ : इसके कार्यक्रम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह ३१ जनवरी, १९७१ को छोड़ा जाएगा। उसमें अन्तरिक्षयात्री एल० शेपर्ड, स्टुअर्ट रूसा और एडगर मिचेल जायेंगे। कार्यक्रम के अनुसार चन्द्रमा की 'फ्रा मोरा' नामक पठारी भूमि पर अवतरण किया जायेगा।

अपोलो-१५ : अन्तरिक्षयात्री डेविड स्काट, अलफर्ड वार्डन और जेम्स अर्विन होंगे। जुलाई १९७१ में प्रक्षेपण, होगा। गंतव्य का निर्णय होना शेष है।

अपोलो-१६ : इसके लिए अन्तरिक्ष यात्रियों या उतरने के स्थान का चुनाव अभी नहीं किया गया है। प्रक्षेपण जनवरी १९७२ में होगा।

अपोलो-१५ के अन्तरिक्ष यात्री अपने साथ एक चलने वाली गाड़ी ले जायेंगे और उसके द्वारा वे अपने चन्द्रयान से ४० किलोमीटर दूर तक घूम-फिर कर चन्द्रमा सम्बन्धी तथ्यों का पता लगाएँगे।

चन्द्रतल पर चलायी जाने वाली अन्तरिक्ष यात्रियों की इस गाड़ी पर आजकल काम हो रहा है। यह बिजली से चलने वाली चार पहियों की एक जीप है। इस पर बैठ कर अन्तरिक्षयात्री चन्द्रमा के तल पर घूमेंगे और जो असाधारण वस्तु देखेंगे उसे एकत्र करेंगे तथा चन्द्रमा से सम्बद्ध दिलचस्प बातों की खोज करेंगे।

अपोलो-१५ की यात्रा से ही अपोलो यान के कमाण्ड कक्ष में एक स्वचालित यन्त्रपुंज फिट कर दिया जायेगा जिस समय अपोलो दो अन्तरिक्षयात्रियों को चन्द्रयान द्वारा चन्द्रतल पर भेज चुकेगा और अपोलो का मुख्य यान चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा होगा उस समय यन्त्रपुंज चन्द्रमा का अध्ययन करेगा।

इन सभी यात्राओं में अणुशक्ति से चलने वाला एक यन्त्रपुंज भी साथ भेजा जायेगा जिसे अन्तरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर स्थापित करेंगे। ऐसे पहले यन्त्र-पुंज का नाम 'अलसेप' रखा गया था। वह अपोलो-१२ के अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा १९६९ में चन्द्रमा पर स्थापित किया गया था।

सूर्य से पानी गर्म करने वाला हीटर

नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने सौर ऊर्जा का सहारा लेते हुये पानी को गर्म करने के लिये एक नये किस्म का हीटर विकसित किया है। इस वाटर-हीटर को मकानों की ऊपरी छतों पर लगा दिया जाये तो यह गर्म पानी की सप्लाई करने वाली टंकियों का काम कर सकता है। इस हीटर में सौर ऊष्मा एकत्रित करने की एक सरलतम प्रणाली है और पूरा यन्त्र लकड़ी के कुचालक बक्से में बन्द रहता है। सोलर वाटर-हीटर का परीक्षण उपभोक्ताओं द्वारा किया जा चुका है और इसे पूर्णतः संतोषजनक पाया गया है। व्यापारिक स्तर पर उत्पादन के लिये इसके निर्माण की प्रविधि को पेटेण्ट किया जा चुका है। उत्पादन के लिये आवश्यक अधिकांश सामग्री देश में ही उपलब्ध है। एक यूनिट के हीटर में एक हजार रुपये तथा दो यूनिटों के हीटर में डेढ़ हजार रुपये लागत अनुमानित की गयी है। भारत में जाड़े के दिनों स्नान आदि के लिये गर्म पानी की बहुत आवश्यकता पड़ती है। एक यूनिट का सोलर वाटर-हीटर औसत भारतीय परिवार के लिये आवश्यक गर्म पानी की मात्रा सप्लाई कर सकता है। प्रविधि के विस्तृत विवरण राष्ट्रीय अनुसन्धान विकास निगम, मण्डी हाउस, नई दिल्ली से प्राप्त किये जा सकते हैं।

पेट्रोलियम निर्माण में मूल्यवान मिट्टियां

देहरादून स्थित भारतीय पेट्रोलियम संस्थान ने पेट्रोलि-

यम उद्योग के लिये आवश्यक मिट्टियों के विकास की दिशा में अपने अनुसन्धान प्रयासों को बढ़ाया है। पेट्रोलियम उद्योग में पेट्रोल तथा उसके सहजात उत्पादों के निर्माण हेतु विशिष्ट किस्म की मिट्टियों का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की कुछ प्राकृतिक तथा कृत्रिम मिट्टियों को को लेकर उनकी उपयोग संभावनाओं को संस्थान ने परखा है। अन्वेषण में विशेष ध्यान इस बात का रखा गया है कि मिट्टियों के उन्हीं मिश्रणों का निर्माण किया जाय जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हों। साथ ही इसके लिए पेट्रोलियम निर्माण पर पड़ने वाले भारी व्यय को भी कम करने का पूरा प्रयास है। आशा की जाती है कि इन मिट्टियों को देश में ही उपलब्ध करने, इनके द्वारा आवश्यक सामग्री तैयार करने से पर्याप्त विदेशी मुद्रा बचायी जा सकेगी और पेट्रोलियम उत्पादन की लागत में भी कमी हो सकेगी।

सर्वोतम चुम्बकीय पदार्थ

रेथियम स्थित एक प्रतिरक्षा प्रयोगशाला में एक ऐसा धातु-क्रम तैयार किया गया है जो अपने चुम्बकत्व में अब तक ज्ञात अन्य चुम्बकीय पदार्थों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। सूक्ष्मतरंग ट्यूबों में प्रयुक्त होने वाले मंहगे प्लैटिनम कोबाल्ट चुम्बकों की अपेक्षा यह चुम्बक कम मूल्य का होते हुये भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध होगा।

इस नये चुम्बक में कोबाल्ट के साथ दुर्लभ-मृत्तिकाओं से एक तत्व समेरियम को मिश्रित किया गया है। यह मिश्रण सामान्य चुम्बकों की अपेक्षा चार गुना और प्लेटिनम-कोबाल्ट की अपेक्षा दो गुना अधिक चुम्बकीय शक्ति लिये हुये है। उच्च तापमान पर भी इस चुम्बक की तीव्रता पर सरलता से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके साथ ही इस चुम्बक की एक और विशेषता यह है कि सामान्य चुम्बकों की अपेक्षा यह बहुत ही हल्का होता है। कुछ प्रचलित चुम्वक सामग्रियों की अपेक्षा कोबाल्ट-समेरियम मिश्रण भार में चार गुना कम है। इसका कारण यह है कि मिश्रण के दो अवयवों में से एक धातु न होकर मृत्तिका है। इस अन्वेषण की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि प्लेटिनम जैसे दुर्लभ तत्व की अपेक्षा समेरियम अधिक सुगमता से उपलब्ध है।

● ●

लेखकों से अनुरोध

कृपया लेख प्रेषित करते समय आवश्यक चित्र भेजना न भूलें। उनके ब्लाक बनवाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।

—सम्पादक

सम्पादकीय

१. बेकार वैज्ञानिकों के लिये कार्य का सुझाव

डा० एम० एस० स्वामीनाथन, डाइरेक्टर, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली ने डा० जाकिर हुसेन स्मृति व्याख्यान माला के अन्तर्गत अपने एक विशद व्याख्यान में कुछ मूलभूत बातों की ओर जनता एवं सरकार दोनों ही का ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने १९५८ तथा १९६८ ई० के विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकलने वाले विज्ञान की विविध शाखाओं के डिग्रीधारी छात्रों की संख्या देते हुये यह स्पष्ट कर दिया है कि १९७३ के अन्त तक भारतवर्ष में कृषि स्नातकों में से लगभग ९ हजार और कृषि इंजीनियरों में से लगभग ७०० बेकार होंगे। आश्चर्य है कि आज भी ७०% से अधिक लोगों की जीविका एवं व्यवसाय का साधन कृषि है अतः वे छात्र जो कृषि विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के बाद नौकरी की उम्मीद लगाते हैं उन्हें निराश होकर खेती की ओर मुड़ना ही होगा। शायद राष्ट्रपति के इस कथन का रहस्य यही है "प्रत्येक घर को फैक्टरी और प्रत्येक एकड़ को चरागाह में परिणत करो"। तब हर कृषि छात्र अपने गाँव को लौटेगा, उसे शहर की ओर आँख उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

डा० स्वामीनाथन के व्याख्यान का सारांश यह है कि भविष्य में शिक्षित बेकारी का बोलबाला होगा। इससे बचने के लिये उन्होंने जो सुझाव रखा है वह व्यवहार में लाया जा सके तो शायद व्याप्त असन्तोष कम हो। डा० स्वामीनाथन का कहना है कि साल में कम से कम दो महीने तक प्रत्येक छात्र चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न प्रोजेक्टों में कार्य करे। कार्य करने के लिये प्रत्येक छात्र को १५० रु० मासिक खर्च मिले। इससे विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले २० लाख छात्रों पर प्रतिवर्ष ८० करोड़ रुपये की धनराशि व्यय होगी जो चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की लागत का केवल १०% है। इतने से अल्प व्यय से अति व्याप्त असन्तोष को कम किया जा सकता है। राष्ट्रीय उत्थान के लिये यह मंगलकारी योजना अवश्य ही मनन करने तथा व्यावहारिक रूप प्रदान करने के योग्य है। काश कि हमारी सरकार इस ओर ध्यान देकर छात्र-आन्दोलन के मूलभूत कारण को समझने का यत्न करती।

२. लूना-१६ की चन्द्र यात्रा

सोवियत वैज्ञानिकों ने लूना-१६ को चन्द्रमा तक पहुँचा कर और बिना किसी मानव-सहयोग के चन्द्रतल से चट्टानों एवं मिट्टी को एकत्र करके, सफलतापूर्वक लौटा कर अपनी अभूतपूर्व उपलब्धि का परिचय दिया है। निस्सन्देह अमरीकी वैज्ञानिकों ने चन्द्रतल में मानव भेजकर उसके नमूने एकत्र करने में ११ मास पूर्व ही सफलता प्राप्त कर ली थी किन्तु इस रूसी सफलता की विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य के बिना ही मिट्टी की खुदाई, डिब्बा में उसका बन्द होना आदि मशीनों के द्वारा सम्पन्न किये गये। रूसी वैज्ञानिकों का यह विश्वास रहा है कि चन्द्रमा तक मनुष्य को भेजना खतरे से खाली नहीं, इसीलिये उन्होंने यह मानवरहित यान भेजकर जो कार्य सम्पन्न किया है वह विशेष चर्चा का विषय बन गया है। अब रूस और अमरीका की अन्तरिक्ष विज्ञान सम्बन्धी उपलब्धियाँ समकक्ष हैं। देखें भविष्य में किस दिशा को हवा बहती है।

३. डी. डी. टी. की निर्दोषिता

हाल ही में हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड लिमिटेड ने एक पुस्तिका प्रकाशित करके बहु बदनाम डी. डी. टी. को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें सारांश रूप में यह कहा गया है कि भारत में डी. डी. टी. का प्रयोग जिस मात्रा में किया जा रहा है वह किसी भी हालत में घातक सिद्ध नहीं हो सकती। भारत में तो इसके अधिक उत्पादन की ओर ध्यान देना चाहिए।

ऐसा लगता है कि डी. डी. टी. के दूसरे कारखाने की स्वीकृति मिलने के पूर्व हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड लिमिटेड ने यह एक प्रकार से आत्मश्लाघा कर डाली है। इसका कहना है कि डी. डी. टी. के प्रयोग से कुछ जाति की पक्षियों तथा पशुओं के विलोप होने का मूल कारण उसका त्रुटिपूर्ण छिडकाव रहा है। चूहों मे होने वाले कैंसर का वास्तविक कारण डी. डी. टी. की अत्यधिक मात्रा है जो कभी भी मनुष्यों को नहीं मिल सकेगी। अतः यह असम्भव ही समझना चाहिए कि कभी मनुष्यों को डी. डी. टी. के कारण कैंसर होगा। मात्र डी. डी. टी. की उपस्थिति का पता लगा लेने से यह नहीं समझना चाहिए कि वह घातक है। घातक होने के लिये उसकी न्यूनतम मात्रा की सीमा का उल्लंघन होना चाहिए। किन्तु क्या ऐसा सम्भव है ?

किन्तु हमें इतने से ही संतुष्ट होकर बैठ नहीं जाना है। यदि डी. डी. टी. का कुप्रभाव आज नहीं परिलक्षित होता तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि कालान्तर में वह घातक नहीं बन जावेगा। यह सर्वविदित तथ्य है कि डी. डी. टी. का संग्रह मनुष्यों की वसा में होता रहता है जिसके फलस्वरूप नाना प्रकार के रोग हो सकते हैं। फिर एक बार प्रविष्ट होने पर इसका विनष्टीकरण दुःसाध्य है। यही नहीं, भूमि उर्वरता तथा समुद्री पशुओं पर डी. डी. टी. का घातक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि वर्ष प्रतिवर्ष अमरीका जैसे उन्नत देशों में डी. डी. टी. के प्रयोग करते रहने पर भी फसल की ठीक से सुरक्षा नहीं हो पाती। हम सबों ने अपने देश में डी. डी. टी. के छिड़कने से मलेरिया-उन्मूलन होते देखा है किन्तु मच्छरों की संख्या में तो वृद्धि ही हुई है ? ऐसा क्यों ? इसीलिए न, कि डी. डी. टी. के द्वारा अन्य ऐसे प्राणी भी समाप्त हो जाते हैं जो रोग फैलाने वाले कीटों पर प्रकृति में नियन्त्रण बनाये रखते हैं। अतः सरकार को डी. डी. टी. के निर्माण करने में सतर्कता बरतनी ही होगी।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | अगहन २०२७ विक्र०, १८९२ शक नवम्बर १९७० | संख्या ११

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

'विज्ञान-सप्ताह' के अवसर पर चिन्तन के लिए सामग्री

● 'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' ने ११ जुलाई १९७० की बैठक में यह तय किया कि देश भर में नवम्बर के प्रथम सप्ताह को 'विज्ञान सप्ताह' के रूप में मनाया जावे। यह सप्ताह विविध प्रकार के आयोजनों से पूर्ण रहे। व्याख्यान हों, प्रदर्शिनियाँ लगाई जावें, स्पर्धायें आयोजित हों। इससे विज्ञान की लोकगम्यता में सहायता पहुंचेगी— सम्पादक

हिन्दी में नवलेखन, हिन्दी नई कविता, अकविता आदि पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। शायद वह हिन्दी साहित्य की अपनी बात है। किन्तु हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का अभी तक ठीक ठीक मूल्यांकन नहीं हुआ है। शायद हिन्दी के साहित्यकार इसे विजातीय विषय मानते हैं या फिर नितान्त, असाहित्यिक, भौतिक एवं अविचारणीय।

विज्ञान विश्वजनीन है किन्तु जहां तक उसके समझने-समझाने का प्रश्न है वह भाषा के माध्यम से ही हल होगा। किसी भी देश का साहित्य यदि उसी देश की भाषा में होता है तो वह उच्चकोटि का होता है। विदेशी भाषा का आश्रय लेने से सोचने-विचारने की शक्ति जाती रहती है और रचा गया साहित्य आम जनता के काम का नहीं होता। उस तक उसकी पहुँच ही नहीं हो पाती। इसीलिये विज्ञान जैसे विश्वजनीन विषय के लिये भारत देश में हिन्दी के अपनाये जाने की दलीलें की जाती हैं। यह भी सच है कि इस दिशा में सफलता प्राप्त हुई किन्तु वह सन्तोष-जनक नहीं कही जा सकती।

हिन्दी है राष्ट्रभाषा अवश्य, किन्तु उसका राग

बेसुरा है। जितने भी नेता-गण हैं वे अपना अपना राग अलापते हैं। दुर्भाग्य है कि विज्ञान की बारी आते आते या तो वीणा के तार ही टूट जाते हैं या राग ही बिगड़ जाता है। आज भी विज्ञान की शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस विषय में एक मत नहीं है। इसे दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहें ? सफलता की कुंजी विज्ञान है और उसे हम आम जनता से दूर ही दूर रखे जा रहे हैं। यह कब तक चलेगा ? स्पष्ट है कि यह आपा-धापी अधिक दिनों तक चलने वाली नहीं।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की प्रक्रिया पुरानी है। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में अंग्रेज मिशनरियों ने हिन्दी में पशु पक्षी सम्बन्धी कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। फिर राष्ट्रीयता के उपासक हमारे देशवासियों ने लेखन की बाग अपने हाथ में ली। ऐसे ही सन्धि-काल में, १९१३ ई० में "विज्ञान परिषद्" की स्थापना की गई और न केवल वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं वरन् एक पत्रिका "विज्ञान" का मासिक प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया। अनेकानेक तरुण वैज्ञानिकों ने हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की सेवा का व्रत लिया; जिसका शुभ फल यह निकला है कि आज ५० वर्षों के पश्चात् एक ऐसी लेखक-पीढ़ी विश्राम लेने जा रही है जिसे हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के सूत्रपात, उसके संवर्धन, संशोधन, परिमार्जन सभी का श्रेय दिया जा सकता है। आज हिन्दी में जितना भी साहित्य है उसके सृजन का पूरा नहीं तो कम से कम ८०% श्रेय इसी पीढ़ी को है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश का नक्शा बदला। हिन्दी हिन्दी नहीं रही। वह राष्ट्र भाषा बन गई। परन्तु हिन्दी प्रेमियों पर जैसे नशा छा गया। वे अपने कर्तव्यों की इति मान बैठे। मात्र सोचने से हिन्दी वैज्ञानिक पठन-पाठन के लिये ग्राह्य नहीं हो सकती थी। उसे तो और दायित्व-पूर्ण एवं संयमित मनन, सृजन, लेखन की आवश्यकता थी। यदि लोगों को सन्तोष हुआ तो इसलिये कि धीरे धीरे २० वर्षों में इण्टर तक की कक्षाओं के लिये वैज्ञानिक विषयों की भाषा हिन्दी हो ली। उसमें पारिभाषिक शब्दा-वली का निर्माण किया जा चुका है और अनेक उत्तम पाठ्य ग्रंथों का अनुवाद प्राप्त है। अब प्रत्येक हिन्दी भाषी राज्य में अपनी अपनी हिन्दी ग्रंथ अकादमी है जो विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के लिखाने या अनूदित कराने का सारा कार्य-संचालन करेगी। हमारे शिक्षा मंत्री भी भारत में हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान किये जाने के कायल हैं।

परन्तु प्रगति क्यों नहीं हो रही है ? आये दिन अंग्रेजी और हिन्दी का विवाद क्यों खड़ा किया जाता है और भारत को उत्तर और दक्षिण में या हिन्दी-अहिन्दी में विभाजित करके क्यों बातें की जाती हैं ? यह हमारा ही दोष है। हम दोषी हैं।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है किन्तु उसे वह समादृत पद नहीं प्राप्त है। उसे सीखने को कौन कहे, उसे लादे जाने की बात उकसाई जाती है। ऐसी दशा में विज्ञान सम्बन्धी जो भी हिन्दी लेखन हो सकता है वह हिन्दी भाषी राज्य करेंगे। यह सच है कि इससे पूर्ण राष्ट्र का सहयोग नहीं प्राप्त होगा और जब हिन्दी में रचित ग्रंथों के प्रचार-प्रसार की बात होगी तो उन्हें सीमित दायरे में सिमट जाना पड़ेगा। अच्छा तो यह हुआ होता कि इन २३ वर्षों में पूरे देश के विद्वान हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करके एक साथ बैठ कर विज्ञान जैसे कठिन विषयों का साथ साथ प्रतिपादन करते, ग्रंथ रचते और अध्यापन करते। राष्ट्र इस सुअवसर से वंचित ही रह गया।

यह सच है कि वैज्ञानिक लेखन में पाठ्य पुस्तकों के लेखकों ने श्रम किया है किन्तु लेखन की एकमात्र विधा यही तो नहीं है। लोकप्रिय लेख, प्रामाणिक ग्रंथों का प्रणयन, उत्तम ग्रंथों का साधिकारिक अनुवाद—ये अन्य साधन हैं जिनका आश्रय लेना चाहिए था। पाठ्य-पुस्तकें तो चर्वित चर्वण हैं। वे लेखक और पाठक दोनों उत्पन्न करती हैं। किन्तु उच्चकोटि के लेखक नहीं। पत्रिकायें उत्तम साधन हैं गम्भीर से गम्भीर विषयों को सरल एवं रोचक शैली में प्रस्तुत करने के। देश में ऐसी वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अभाव है। गिनी चुनी पत्रिकायें हैं—विज्ञान, विज्ञान प्रगति, विज्ञान लोक, खेती, किसान भारती, लोक विज्ञान आदि। किन्तु

इनमें वैज्ञानिक विषयों की झांकी मात्र है। विषय का प्रतिपादन कहां हो पाता है। ऐसे प्रकाशकों एवं लेखकों का अभाव है जो स्तरीय विज्ञान पत्रिकायें प्रकाशित करें और उत्तम कोटि के लेख लिखें। मौलिक ग्रंथों की ओर से तो लोग उदासीन ही प्रतीत होते हैं। हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश ने अवश्य ही इस दिशा में कुछ प्रयास किया है किन्तु उसे प्रयास ही कहा जावेगा क्योंकि छपाई में अशुद्धियों के साथ ही पुस्तकों के सम्पादन में अन्यमनस्कता एवं विषय-सामाग्री के लेखन में उतावली या थोथापन के दर्शन होते हैं। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, विज्ञान परिषद्, नागरी प्रचारिणी सभा के छुटपुट प्रयासों की सराहना ही की जा सकती है। ये संस्थायें आर्थिक संकट के कारण पूरे मनोयोग से कार्य नहीं कर पा रहीं अन्यथा इनसे अच्छा कार्य हो सकता था। नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी पुस्तकों के लिखाने एवं प्रकाशित कराने की अच्छी योजना बनाई है।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का सर्वोपरि उत्तरदायित्व हिन्दी ग्रंथ अकादमियों पर है। उन्हें न केवल उत्तम अंग्रेजी के वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद कराने का भार सौंपा गया है वरन् मौलिक लेखन के लिये योग्यतम व्यक्तियों का चुनाव करके उनसे पुस्तकें लिखाने का भी अधिकार दिया गया है। यदि मनोयोग से पूरी योजना कार्यान्वित की जाय तो कई हजार पुस्तकें अनूदित हो सकती हैं और मूल रूप से लिखी जा सकती हैं किन्तु प्रश्न है कि क्या इतने उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिये हिन्दी भाषी राज्यों में लेखक प्राप्य हैं। उत्तर होगा नहीं।

स्थिति बड़ी गंभीर है। जो उच्चकोटि के वैज्ञानिक हैं वे हिन्दी के नहीं वरन् अंग्रेजी के माध्यम से अपना सारा कार्य करते रहे हैं। यदि हिन्दी में लिखने के लिये उनकी सेवायें प्राप्त भी हों सकें तो सन्देह है कि उच्चकोटि की पुस्तकें लिखी जा सकेंगी। दूसरी ओर लेखकों का वह समुदाय है जो लिखने और अनुवाद करने में समान रूप से निपुण है — किन्तु ऐसे लेखक कम ही हैं और वे सुपरिचित व्यक्ति हैं। उनकी कार्यक्षमता सीमित है। वे न तो सभी पुस्तकें लिख सकते हैं, न सारा अनुवाद ही कर सकते हैं।

हिन्दी लेखन के क्षेत्र में लेखकों का यह अभाव खलने वाला है। शोच्य यह है कि आज तक हिन्दी लेखन में निष्णात बनाने के लिये न तो कोई पुनश्चर्या केन्द्र खोला गया न कोई वर्कशाप ही आयोजित की गई। कुछ लोग तो विना आवश्यक तैयारी के ही हिन्दी लेखक बन गये हैं। ऐसे नीम हकीमों से खतरा है वे प्रगति में बाधक हो सकते हैं।

इधर 'भारत की सम्पदा' नाम से वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् ने अंग्रेजी के "वेल्थ आफ इंडिया" का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनाई है। उसके लिये हिन्दी भाषी राज्यों के सैकड़ों विद्वानों का सहयोग प्राप्त करके अनुवाद कराया गया है। सम्भवतः यह पहला व्यापक प्रयास है जिसमें हिन्दी जानने वालों को अवसर प्रदान किया गया है। हिन्दी लेखन की दिशा में ऐसे ही प्रोत्साहनों की आवश्यकता है। सुप्त बीजों में से ही अंकुर निकलने हैं और उन्हे प्रकाश में आकर पल्लवित होना है।

● ●

मॉस बाउअर प्रभाव

□ श्याम लाल काकानी

मॉस बाउअर सन् १९५८ में जब मॉक्स प्लॉक संस्था, हैड्लबर्ग में अनुसन्धान कार्य कर रहे थे, तो उन्होंने ठोसों में परिवन्ध नाभिकों द्वारा रिकॉयल रहित गामा किरणों के उत्सर्जन एवं अवशोषण क्रिया का पता लगाया। उन्हीं के नाम के पश्चात् इसका नाम मॉस बाउअर प्रभाव रखा गया। यह खोज इतनी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई कि १९६१ में उनको सर्वाधिक सम्मान का पारितोषिक 'नोवल पुरस्कार' प्रदान कर सम्मानित किया गया।

मॉस बाउअर प्रभाव का साधारण अर्थ यह है कि क्रिस्टल में परिबद्ध नाभिक, कुछ विशेष परिस्थितियों में, बहुत कम समय के लिये रिकॉयल रहित निम्न ऊर्जा की गामा किरणें उत्सर्जित करते हैं। रिकॉयल घूर्ण, सम्पूर्ण क्रिस्टल द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। चूंकि क्रिस्टल का द्रव्यमान या संहृति, उत्सर्जित नाभिक की तुलना में अधिक होता है, अतः ऊर्जा स्थानान्तरण पूर्ण उपेक्षणीय होता है। ऐसी गामा किरणें परमाणुओं की तापीयगति के कारण विस्तृत नहीं हो पाती हैं, अतः उनका अनुनादी अवशोषण हो जाता है।

नाभिकीय अनुनादी अवशोषण

किसी भी नाभिक की दो अवस्थायें हो सकती हैं :- (१) मूल अवस्था (२) उत्तेजित अवस्था। जब इन दोनों अवस्थाओं में संक्रमण होता है तो गामा किरणों का उत्सर्जन या अवशोषण होता है। संक्रमण की उर्जा का मान लगभग 10^4 eV होता है। उत्सर्जित और अवशोषित गामा किरणों की चौड़ाई लगभग 10^{-8}eV होती है। इन दोनों का अनुपात अनुनादि की तीक्ष्णता को प्रकट करता है। अतः गामा किरणों के लिए,

$$\text{अनुनाद की तीक्षणता} = \frac{\text{संक्रमण की ऊर्जा}}{\text{गामा किरणों की चौड़ाई}}$$

$$= \frac{10^4}{10^{-8}} = 10^{+12} \text{ होगी।}$$

एक परमाणु के लिए अनुनाद की तीक्षणता का मान 10^{-8} के लगभग होता है। अब तक ज्ञात प्रणालियों में नाभिकों में गामा किरणों का अनुनाद ही प्रकृति में सबसे अधिक समस्वरित तीक्ष्ण प्रणाली है।

नाभिकीय अनुनादी अवशोषण क्रिया में, मुख्य रुप से उत्तेजित अवस्था में नाभिक द्वारा ऊर्जा क्षय और गामा किरण का उत्सर्जन शामिल है। इसका उपयोग समान अवस्था वाले नाभिक को उसी अनुनादी अवस्था में उत्तेजित करने के लिए किया जाता है। यह विधि बहुत ही चयनात्मक है, क्योंकि तीक्ष्ण परिभाषित नाभिक की अवस्था के लिए, उत्सर्जक और अवशोषणकारी की ऊर्जा में किंचित् मात्र अन्तर ही अनुनादी अवशोषण क्रिया को रोकने में सक्षम होता है।

एक नाभिक जो ऊर्जा अवस्था Eo से जीवन समय T में गामा किरण का उत्सर्जन करता है। ऐसे नाभिक के लिए ऊर्जा और घूर्ण संरक्षण के नियम लागू होंगे। इन नियमों के अन्तर्गत, जब नाभिक गामा किरण का उत्सर्जन करेगा तो उसमें रिकॉयल होगा। परिणाम को हम निम्न सूत्र से प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$R = \frac{E_0^2}{2MoC^2} \qquad (१)$$

जबकि सूत्र में

E_0→नाभिक की ऊर्जा

M_0→उत्सर्जित या अवशोषणकारी नाभिक की स्थिर संहति

C→प्रकाश का वेग

R→रिकॉयल

इस क्रिया में हमने यह माना है कि E_0 का मान R से बहुत अधिक होगा ($E_0>>R$)।

समीकरण १ से यह भी स्पष्ट है कि उत्सर्जित गामा किरण की ऊर्जा E_0 के स्थान पर E_0-R होगी। इसी प्रकार वह नाभिक जो गामा किरण का अवशोषण करेगा, उसकी ऊर्जा E_0+R होनी चाहिए, क्योंकि अवशोषण क्रिया में नाभिक को उत्तेजित करने के लिए आवश्यक ऊर्जा एवं रिकॉयल ऊर्जा भी गामा किरणें ही प्रदान करती हैं अतः अनुनाद क्रिया के लिए उत्सर्जन और अवशोषण क्रियायें अत्यधिक परस्पर व्यापी होना आवश्यक है या दूसरे शब्दों में $2R\leqslant$ रेखा चौड़ाई।

अब तक हमने केवल स्वतंत्र नाभिक को लेकर ही विचार किया है। अतः उन नाभिकों, जो क्रिस्टल में बद्ध हैं की स्थिति पर विचार करने के लिये जालकों में विभिन्न परमाणुओं के बीच युग्मन पर विचार करना अति आवश्यक हो जाता है। जालक युग्मन प्रभाव को गतिज प्रभावी संहति से प्रदर्शित करते हैं। अतः ऐसे नाभिकों के लिए, जो किसी ठोस या क्रिस्टल में बद्ध हैं, रिकॉयल मान निम्न सूत्र से प्रकट किया जा सकता है :—

$$R=\frac{E_0}{2M_{eff}C^2} \qquad (२)$$

यहाँ पर उत्सर्जित नाभिक, क्रिस्टल जालक में बद्ध होने से, अपना रिकॉयल पूर्ण आवश्यक रूप से सम्पूर्ण क्रिस्टल के संहति केन्द्र को स्थानान्तरित कर देता है। चूंकि संहति का मान बहुत अधिक होता है, इसलिए रिकॉयल में लुप्त ऊर्जा प्रायः नगण्य हो जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है, कि उपलब्ध ऊर्जा का क्षय या विक्षेप रिकॉयल के अतिरिक्त अन्य कई विधियों जैसे जालक की कम्पन अवस्था में परिवर्तन से, जालक में फोनोन के निर्माण से जिनकी आवृत्ति wi से प्रदर्शित कर सकते हैं; सम्भव हो सकती है। ऐसी स्थिति में उत्सर्जित गामा किरण के लिए उपलब्ध ऊर्जा (E) का मान निम्न समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$E=E_0-\Sigma nh\omega i$$

जब कि

E→ उत्सर्जित गामा किरण की ऊर्जा

h→ प्लाँक का स्थिरांक

ωi→ फोनोन की आवृति

अगर फोनोन ऊर्जा, गामा किरण की ऊर्जा की तुलना में, जिसको हाइजन वर्क अनिश्चितता सिद्धान्त से ज्ञात कर सकते हैं, अधिक हो तो उत्सर्जित गामा किरण का अनुनादी अवशोषण नहीं होगा। ऐसी अवस्था में जालक कम्पनों का क्वान्टाइजेसन होगा, जिससे इनके ऊर्जा का स्थानान्तरण स्वेच्छ तरीके से संभव नहीं होगा। ऐसे संक्रमणों से, जो क्रिस्टल जालकों में फोनोन को उत्तेजित नहीं कर सकते हैं, बद्ध नाभिक रिकॉयल रहित गामा किरण का उत्सर्जन करते हैं। यह क्रिया भी जालक समष्टि पर निर्भर करती है। यह क्रिया अति महत्वपूर्ण होती है एवं बहुत कम समय के लिए होती है।

उपयोग

मॉसबाउअर प्रभाव की सन् १९५८ में खोज के पश्चात् भौतिक शास्त्रियों ने इस नई खोज का उपयोग भौतिक विज्ञान के कई विविध क्षेत्रो में किया है।

इसका अति नाटकीय उपयोग पृथ्वी सतह पर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में गतिमान फोटोन की रेड शिफ्ट या लाल विचलन को नापने में हुआ है। यह लाल विचलन करीब एक मीटर का 10^{-16} वां भाग होती है। इस खोज की दूसरी प्रमुख उपयोगिता परमाणुओं की ऊष्मीय गति के कारण द्वितीय क्रम डॉप्लर प्रभाव को देखने में भी हुई है। भौतिक शास्त्रियों ने इसकी सहायता से कई ऐसे

[शेष पृष्ठ २२ पर]

धरती की कहानी

□ महेश मिश्र

धरती, जो हमारी माँ है, सदियों से हम इस धरती को देखते आ रहे हैं। इसे प्यार किया, इसके लिए संघर्ष किया, यहाँ तक कि इसके लिए प्राण तक उत्सर्ग कर दिए। वही धरती, जिसने हमारे पूर्वजों को पाला, हमें पालती है और हमारी संतानों को पोषण देगी। क्या है? कैसे पैदा हुई? किस तरह यह पौधों को जन्म देती है? क्या कभी हमने इन सब बातों पर विचार किया है?

शायद आप नहीं जानते-फूलों से सजी, फलों से लदी और हरित परिधान धारण किये जिस धरती पर आप मुग्ध हैं उसे इस अवस्था में आने में, हजार दो हजार नहीं वरन् करोड़ों वर्ष लगे हैं। समय के इस सीमाहीन अंतराल में कितने थपेड़े खाए हैं, हमारी धरती ने। धूप, वर्षा शीत, लू, अंधड़ और भूचालों को अपने ऊपर झेला, उनके प्रहारों से अपने अंग-अंग को चूर हो जाने दिया और तब आज इतनी तपस्या के बाद धरती को यह रूप मिला, वह शस्य श्यामला कहलाई।

प्रायः यह समझा जाता है कि 'भूमि' या 'धरती' चट्टानों का चूर्ण मात्र है परन्तु यह भ्रम है। भूमि एक नैसर्गिक पदार्थ है जिसमें जैविक गति विधियाँ निरंतर चलती रहती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भूमि एक वृहत् कारखाना है जिसमें असंख्य जीव निरंतर कार्यरत हैं जो पौधों के विकास के लिए समुचित वातावरण तैयार करने और उनके भोजन पानी की व्यवस्था में जुटे रहते हैं, तो अनुचित न होगा। यही कारण है कि आज वैज्ञानिकों ने भूमि को जीवित पदार्थों की श्रेणी में रखा है। अतः भूमि का अध्ययन भी अन्य जीवों और पौधों की तरह किया जाना आवश्यक है।

धरती का जन्म

हमारी पृथ्वी आदिकाल में पिघला हुआ लावा मात्र थी। लावा ठंडा हुआ, चट्टानें बनी। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी की सतह पर्वतों की चोटियों से लेकर दस मील पृथ्वी के गर्भ तक फैली हुई है। अनेक भूगर्भ-शास्त्रियों के मतानुसार, पृथ्वी का अन्तरतम तल अभी भी गर्म ठोस धातु के रूप में है जो क्रमशः कम गहरी सतहों से घिरा है।

पृथ्वी की उपरी सतह में स्थित चट्टानों से ही हमारी 'धरती' का विकास हुआ है। पृथ्वी तल पर स्थित चट्टानें अपनी उत्पति और संरचना के आधार पर तीन प्रमुख भागों में विभाजित की गई हैं—

१—आग्नेय चट्टानें

२—परतदार चट्टानें

३—परिवर्तित चट्टानें

आग्नेय चट्टानें पृथ्वी तल पर स्थित लावे के ठंडे होकर जमने से बनी हैं जबकि परतदार एवं परिवर्तित चट्टानें आग्नेय चट्टानों से ही उत्पन्न चट्टानें हैं। आग्नेय चट्टानों का चूर्ण समुद्रतल में अथवा झीलों के तल में परतों के रूप में एकत्र होता रहता है और कालांतर में भारी दबाव के कारण परतदार चट्टानों में परिवर्तित हो जाता है। परतदार चट्टानें समुद्र तट पर बहुतायत से पाई जाती हैं।

परिवर्तित चट्टानें, आग्नेय अथवा परतदार चट्टानों के परिवर्तन से बनती हैं। भारी दबाव और अधिक ताप के कारण इन चट्टानों के स्वरूप संरचना तथा गुणों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे संगमरमर, चूने की चट्टानें इत्यादि।

चट्टानें ही धरती की माँ हैं। चट्टानें समय के थपेड़ों से चूर-चूर हुई और धरती को जन्म दिया। ये चट्टानें जो कठोर हैं, किस तरह इस रूप में आई, यह भी अत्यंत रोचक विषय है। कहते हैं—समय किसी को नहीं छोड़ता जो बना है वह मिटेगा और जो मिटा है वह बनेगा। यह आदि सत्य सभी पर खरा उतरता है—क्या जीव-जन्तु, क्या पौधे और क्या ही ये चट्टानें सभी बनते और मिटते रहते हैं। सृष्टि का यही नियम है।

सृष्टि की भौतिक, रासायनिक और जैविक शक्तियाँ निरंतर इन चट्टानों पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं और कालावधि में उन्हें जर्जर कर चकनाचूर कर देती हैं। शताब्दियों तक ये शक्तियां निरंतर अपने प्रहार इन चट्टानों पर करती रहती हैं तब कहीं इन कठोर चट्टानों को तोड़ने में सफल हो पाती हैं।

भौतिक शक्तियाँ

बहता जल, हिम, ताप, अंधड़, तूफान, भूचाल, भूस्खलन् ज्वालामुखी आदि अनेक वे शक्तियां हैं जो चट्टानों को तोड़कर उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित कर देती हैं। ये शक्तियाँ मुख्यतः चट्टानों के आकार में ही परिवर्तन करती हैं उनके गुणों में कोई परिवर्तन नहीं लातीं।

बहता जल, किनारे स्थित चट्टानों को धीरे-धीरे काटता रहता है। जल में बहते रोड़े आपस में टकराकर अथवा रगड़ खाकर पिस जाते हैं। चट्टानों की दरारों में भरा जल ठंड पाकर जम जाता है फलस्वरूप उसके आयतन में वृद्धि होती है जिससे दरारें चौड़ी हो जाती हैं और चट्टानें टूट जाती हैं।

मरुस्थलों में दिन में प्रचंड गर्मी के कारण चट्टानें फैलती हैं किन्तु रात में अत्यधिक ठंड होने से तत्काल सिकुड़ती हैं। फैलने और सिकुड़ने की प्रक्रिया बार-बार होने से चट्टानें जर्जर हो जाती हैं। कभी-कभी तप्त चट्टानों पर एकाएक वर्षा हो जाने से भी वे चटककर टूट जाती हैं।

अधंड अपने वेग से चट्टानों को लुढ़का देते हैं और ये लुढ़कती चट्टानें अपने ही भार से अथवा जबर्दस्त टकराव के कारण टूट कर चकनाचूर हो जाती हैं। वेग से बहती हवाएं अपने साथ बारीक रेत भी उड़ा ले जाती हैं जो आपस में टकराकर और भी पिस जाती है, अथवा इनकी बौछार से चट्टानें प्रभावित होती हैं।

तूफान में, पानी की शक्तिशाली बौछारें, समुद्रतट् पर स्थित चट्टानों को निरंतर पीटती रहती हैं, फलस्वरुप वे धीरे धीरे टूटती रहती हैं।

रासायनिक शक्तियाँ

ये शक्तियाँ अदृश्य रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। प्रत्यक्ष में इनका कोई आभास नहीं होता, किन्तु ये शक्तियां अनवरत् अपना कार्य करती रहती हैं। इनके द्वारा चट्टानों में आमूल परिवर्तन होकर उनका रंग-रूप तक परिवर्तित हो जाता है। रासायनिक शक्तियों में मुख्यतः पांच शक्तियों का समावेश होता है—(१) आक्सीकरण (२) जल योजना (३) कार्बनीकरण (४) विलयन और (५) निक्षेपण।

वायुमंडल की आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बनडाईआक्साइड गैस एवं आर्द्रता, खनिज पदार्थों पर अपने विशेष प्रभाव डालती है, फलस्वरुप चट्टानें घुलकर, नरम होकर अथवा चटककर चूर्ण हो जाती है। चट्टानों के खनिज पदार्थ वायुमंडल की आक्सीजन से क्रिया कर ऐसे घटकों को जन्म देते हैं, जो आसानी से टूट-फूट जाते हैं। इसी प्रकार वायुमंडल से प्राप्त अथवा अन्य कार्बनिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न कार्बन डाई आक्साइड गैस पानी में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। कार्बोनिक अम्ल की विलायक क्षमता पानी की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसी प्रकार अन्यान्य रासायनिक क्रियाएं रात-दिन चलती रहती हैं जो चट्टानों के चूर्ण होने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

जैविक शक्तियाँ

वस्तुतः जैविक शक्तियाँ स्वयं में कोई शक्तियाँ नहीं हैं वरन् वे तो माध्यम हैं जिनके द्वारा भौतिक और रासायनिक शक्तियों का संचालन होता है। जीव-जगत के तमाम सदस्य जैसे असंख्य जीवाणु, क्षुद्र कीड़े, पौधे और अन्य

उच्च श्रेणी के जीव भी चट्टानों के तोड़-फोड़ के कार्य में अनवरत् संलग्न रहते हैं।

प्रायः हम देखते हैं चट्टानों की सतह पर जमी काई अपने साथ ही चट्टानों की पपड़ी को भी अलग करती जाती है। पौधों की जड़ें विशेष अम्ल उत्पन्न करती हैं जो चट्टानों के खनिज पदार्थों को घोलकर उन्हें कमजोर बनाता है। इसी प्रकार उच्च श्रेणी के पौधों की जड़ें जो चट्टानों की दरारों में फैलती हैं भौतिक दबाव डालकर चट्टानों को तोड़ देती हैं। पौधों की जड़ों का भौतिक रूप से चट्टानों को तोड़ने की अपेक्षा उनका रासायनिक कार्य ही अधिक महत्वपूर्ण है। समस्त पौधों की जड़ों से अम्ल निकलता है जो चट्टानों की कठोरता को समाप्त कर उसे वातावरण के प्रभाव के लिए और अधिक उपयुक्त बना देता है।

पौध-जगत की तरह ही जीव-जगत भी अपना कार्य करता है। पृथ्वी में रहने वाले असंख्य जीवाणु, फफूंद, कीड़े मकोड़े अपनी क्रिया-कलाप से अनजाने ही चट्टानों को तोड़ने में सहायक होते हैं। तत्वों की खोज में जीवाणु चट्टानों के खनिज-पदार्थों पर आक्रमण कर उन्हें उनसे पृथक कर देते हैं, परिणाम स्वरूप चट्टानें कमजोर हो जाती हैं। सभी जीवाणु जो सड़न-क्रिया में सहायक होते हैं कार्बन डाई आक्साइड गैस उत्पन्न करते हैं, जो पानी के साथ संयोग कर कार्बोनिक अम्ल उत्पन्न करती है। इस अम्ल में चट्टानों के खनिज पदार्थ आसानी से घुल जाते हैं।

उच्च जगत के प्राणी जैसे मनुष्य, बैल, घोड़ा, हाथी इत्यादि अपनी चहल-पहल एवं कार्य-कलाप से चट्टानों को क्षति पहुँचाते हैं। आवश्यकतानुसार मनुष्य चट्टानों की कांट-छाँट भी करते रहते हैं। इस प्रकार चट्टानों का ह्रास होता रहता है।

धरती का विकास

चट्टानों के चूर्ण मात्र से पौधों का उगना संभव नहीं है। वर्षों तक चट्टानों के चूर्ण में रासायनिक एवं जैविक क्रियाएं चलती रहती हैं और तब पौधों के उगने के लिए आवश्यक तत्व और वातावरण तैयार हो पाता है। भूमि का विकास सतहों में होता है। पृथ्वी की उपरी सतह से लेकर अंदर चट्टानों तक भूमि विभिन्न सतहों में विकसित होती है।

अंग-विन्यास या ढांचे के संदर्भ में हम अक्सर 'प्रोफाईल' शब्द का उपयोग करते हैं। भूमि को खोदकर उसकी कटी हुई दीवार को हम ध्यान से देखें तो हमें विभिन्न सतहें दिखाई देती हैं जो रंग-रूप और संरचना में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। यही भूमि का विन्यास है। इन सतहों का निर्माण, उनकी गहराई एवं स्पष्टता कालावधि के साथ परिपक्व होती है। अतः जिस भूमि में सतहें जितनी स्पष्ट होंगी भूमि उतनी ही परिपक्व (Mature) कहलाएगी।

ढांचे (Profile) में प्रयुक्त प्रत्येक सतह को अंग्रेजी में हॉरिजन (Horizon) कहते हैं। जिस तरह डाक्टर शरीर की रचना का अध्ययन करने के लिए उसकी चीर-फाड़ करता है, उसी प्रकार भूमि की रचना, उसके संगठन एवं इतिहास को जानने के लिए, मृदा वैज्ञानिक, भूमि की खुदाई कर, उसकी सतहों का अध्ययन करता है।

संसार के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली भूमि में उनकी सतहों के निर्माण में एकरूपता हो सकती है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब उन स्थलों की जलवायु, पैतृक खनिज पदार्थ, वनस्पति, पृथ्वीतल, काल आदि में भी एकरूपता हो।

पृथ्वीतल और भूमि में अंतर उसके जन्म और विकास की इस कहानी का हमारे जन-जीवन में क्या उपयोग हो सकता है? भूमि-विज्ञान का उद्भव ही मनुष्य की भूख से हुआ है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या को यथेष्ट भोजन उपलब्ध कराने की समस्या, वैज्ञानिकों के सामने है। अकाल और भुखमरी की विभीषिका सारे संसार को अपने चंगुल में चपेटे है। १९वीं शती के प्रारंभ तक लोगों का ध्यान इस ओर नहीं था। किन्तु समय की आवाज ने वैज्ञानिकों को बाध्य किया और तब इसी शती के उत्तरार्ध में रूस में सर्वप्रथम भूमि-विज्ञान पर कार्य आरंभ हुआ। तब से अब तक अन्यान्य खोजें इसके अंतर्गत हुईं और भूमि-विज्ञान को स्वतंत्र मान्यता प्राप्त हुई।

● ●

हिन्दी में रसायन विज्ञान के शिक्षण पर साहित्य तथा सामग्री

□ डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

विज्ञान के सभी विषय उच्चतम स्तर तक विद्यार्थी की मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाये जांय, इस सम्बन्ध में सिद्धांततः समस्त प्रबुद्ध तथा चिंतनशील वर्ग एक-मत है। किसी भी विषय के आधारभूत सिद्धान्तों एवं संकल्पनाओं को समझने तथा आत्मसात कर लेने हेतु, छात्रों के लिये सर्वोत्कृष्ट माध्यम उनकी मातृ भाषा ही हो सकती है। पठित विषय की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति, नूतन संकल्पनाओं का सृजन तथा लेखन, अनुसंधान कार्य के विवेचन में सरलता, चिन्तन की गहराई, आत्मगौरव की भावना का विकास, मातृभूमि तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा आदि के दृष्टिकोण से शैशव से ही जिस मातृभाषा का प्रयोग विद्यार्थी के द्वारा किया जा रहा है, वही सर्वाधिक उपादेय हो सकती है। कोई भी विदेशी भाषा, शब्द भंडार एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रयोगों की व्यापकता की दृष्टि से भले ही समृद्ध हो, यदि उसे शिक्षण का माध्यम बनाया जाय तो छात्रों की बौद्धिक तथा अन्य आन्तरिक मानसिक शक्तियों का बड़ा भाग तथा समय उस भाषा को सीखने में ही व्यय हो जाता है। इतना होने पर भी उनमें पर्याप्त आत्म-विश्वास, विषय बोध की गहनता तथा अभिव्यक्ति की स्पष्टता नहीं आ पाती। जितना परिश्रम और समय विदेशी भाषा को सीखने में व्यय होता है उसके आधे से भी कम का, मातृभाषा के हेतु प्रयोग करने पर, अवशिष्ट समस्त समय एवं शक्ति, विषय विशेष में दक्षता तथा विशेषज्ञता प्राप्त करने तथा अनुसंधान आदि का, अपना मौलिक योगदान देने में उपयोजित हो सकती है। किन्तु हमारे देश के इतिहास तथा विभिन्न प्रान्तों की भिन्न भिन्न भाषाओं, सांस्कृतिक परम्पराओं आदि की पृष्ठभूमि के आधार पर जब समस्त राष्ट्र के हेतु व्यवहार्या एक भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से सामंजस्य, तीव्रगतिशील तथा विकासशील अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान के समानान्तर हमारी राष्ट्रीय गति तथा विकास, विभिन्न विदेशी राष्ट्रों से ज्ञान के आदान-प्रदान की सुगमता, अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में श्रेष्ठता प्राप्ति आदि के दृष्टिकोणों से जब विचार किया जाता है तो, "मातृभाषाओं अथवा राष्ट्रभाषा के माध्यम से विज्ञान के शिक्षण" के सम्बन्ध में कई समस्याएं उठती हैं। इस लेख में इन सबके संबंध में विश्लेषण तथा समाधान आदि प्रस्तुत न करते हुये 'हिन्दी माध्यम द्वारा रसायन-विज्ञान के शिक्षण पर साहित्य एवं सामग्री' के संबंध में सूचनात्मक एवं समीक्षात्मक सिंहावलोकन, संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दी के ही समान, उत्तरी भारत की सभी भाषाएं तथा बोलियां, यथा गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, मैथिली, निमाणी, मालवी, ब्रज आदि संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं तथा हिन्दी के बहुत निकट हैं। इन सभी में लेखन के हेतु, देवनागरी लिपि का प्रयोग, न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ सरलता तथा सफलता पूर्वक किया जा सकता है। अतः विशुद्ध हिन्दी भाषी प्रान्तों जैसे कि मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में किये गये, रसायनशास्त्र के शास्त्रीय भण्डार की वृद्धि से अन्य कई निकटवर्ती अहिन्दी भाषी प्रान्त अवश्य लाभान्वित होंगे। लिपि एक होने से, तथा भाषा साम्य के कारण अन्य प्रान्तीय जनों को हिन्दी में लिखे ग्रंथों तथा अन्य साहित्य को पढ़ने एवं समझने में सरलता होगी। भावनात्मक एकीकरण तथा रसायन विज्ञान के ज्ञान के अंतप्रान्तीय आदान-प्रदान के हेतु दीर्घकालीन प्रभाव

की दृष्टि से ये प्रयास निस्संदेह लाभकारी होंगे। सहिष्णुतापूर्वक, सभी भाषाओं का सहयोग लेते हुये, उनका सम्मान एवं समृद्धि करते हुये हिन्दी को राष्ट्रभाषा (सम्पर्क भाषा, राजभाषा तथा समस्त राष्ट्र का सच्चा एकीकरण करने वाली सूत्र भाषा) के रूप में विकसित करने सम्बंधी लक्ष्य की वास्तविक पूर्ति में रसायन विज्ञान सम्बंधी साहित्य का अपना महत्वपूर्ण योगदान होगा यह निर्विवाद है। दक्षिण भारतीय भाषाएं, जैसे कि तेलगू, कन्नड़ आदि भी संस्कृत से उत्पन्न हैं या वहुत प्रभावित हैं। रसायन विज्ञान के शास्त्रीय तथा तकनीकी शब्द संस्कृत उपसर्गों, प्रत्ययों, धातुओं आदि का ही आधार लेकर निर्मित किये गये हैं। अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग पर आधारित, हिन्दी भाषा में लिखे गये ग्रन्थ कालान्तर से दक्षिण भारत में भी प्रचलित एवं लोकप्रिय होते चलेंगे, क्योंकि दक्षिण भारत के विद्वानों एवं विद्यार्थियों को भी इन्हें समझना कठिन नहीं होगा। यह स्थिति समूचे राष्ट्र के लिये कितनी श्रेयस्करी होगी इसे सफलतापूर्वक कल्पित किया जा सकता है।

उपर्युक्त भूमिका के आधार पर इस लेख में विवेचनीय विषय वस्तु को व्यवस्थित तथा सुविधापूर्ण अध्ययन की दृष्टि से हम निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(क) रसायन पर साहित्य

(i) रसायन विज्ञान पर साहित्य के सृजन, अनुवाद आदि के लिये आवश्यक शब्दावली (समस्याएं तथा समाधान)

(ii पाठ्यग्रन्थ : माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक, स्नातक स्नातकोत्तर स्तर के।

(iii) अनुसंधान साहित्य : रसायन की भिन्न शाखाओं सम्बंधी अनुसंधान पत्रिकाएं, अनुसंधान स्तर की पुस्तिकाएं (मोनोग्राफ), मानक ग्रंथ, विश्वकोष, आदि का सृजन एवं अनुवाद।

(iv) लोकप्रिय तथा अन्य साहित्य (बाल साहित्य, रोचक विषय वस्तु युक्त पत्रिकाएं, वैज्ञानिकों के प्रेरक जीवन चरित्र, प्राचीन भारत में किया गया रसायन का विकास, आदि)।

(ख) सामग्री

(i) चलचित्र

(ii) भित्ति चार्ट (आवर्त सारणी, औद्योगिक उत्पादन की विधियां आदि।

(iii) अन्य दृश्य-श्रव्य सामग्री, यथा भाषा, संकेतों आदि से युक्त प्रतिरूप आदि।

इन शीर्षकों पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(क) रसायन पर साहित्य

(i) साहित्य सृजन तथा अनुवाद का आधार: सर्वमान्य, मानकशब्दावली :—

(अ) **सामान्य विवेचन**:— स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात्, रसायन पर हिन्दी में कई ग्रन्थ लिखे गये। हिन्दी विश्वभारती, विज्ञान आदि जैसी पत्रिकाएं प्रकाशित की गयीं किन्तु भिन्न भिन्न हिन्दी भाषी प्रान्तों के विभिन्न लेखक, अपने अपने विवेकानुसार अथवा विविध शब्दकोषों का आधार लेकर एक ही शब्द के हेतु भिन्न भिन्न हिन्दी पर्यायों का उपयोग करते थे, जैसे आक्सीजन के लिये ओषजन, प्राणवायु आदि। इससे भ्रमात्मिका स्थिति उत्पन्न हो गई थी तथा हिन्दी माध्यम की उपादेयता शिक्षक एवं विद्यार्थी जगत् में आलोचना का विषय बन गयी थी। लगभग २० वर्षों के अनुभवों एवं प्रयासों के आधार पर समस्या के निराकरण के हेतु तथा सभी लेखक एक जैसे शब्दों का प्रयोग कर सकें, इस दृष्टि से, केन्द्रीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग ने मानक शब्दावलियां प्रकाशित कर दी हैं। रसायन विज्ञान के शिक्षकों, लेखकों, अनुवादकों के लिये उक्त आयोग के निम्न प्रकाशन उपयोगी होंगे।

(i) **विज्ञान शब्दावली** I:— इसमें रसायन, वनस्पति विज्ञान, भूगोल, गणित, भौतिकी तथा प्राणिविज्ञान सम्बंधी स्नातक स्तर के ग्रन्थों के हेतु उपयोगी प्रायः सभी अंग्रेजी

शब्दों के पर्याय प्राप्य हैं (ii) विज्ञान शब्दावली II: इसमें गणित एवं भौतिकी के स्नातकोत्तर स्तर के शब्द संगृहीत किये गये हैं। यह भी, भौतिक रसायन एवं रसायन की अन्य शाखाओं के स्नातकोत्तर स्तर के ग्रन्थ लेखन में सहायक हो सकती है। (iii) विज्ञान शब्दावली III: स्नातकोत्तर, रसायन शब्दावली, इसमें रसायन के स्नातकोत्तर स्तर के लेखन में उपयोगी शब्द प्राप्य हैं। इस प्रकार, रसायन के साहित्य सृजन के हेतु संकल्पनात्मक तथा शब्दों की एकरूपता तथा प्राप्यता सम्बन्धी गुरुतर कठिन कार्य, पर्याप्त अंशों तक संपन्न हो चुका है। लेखकों के लिये ग्रन्थ लेखन तथा अनुवाद एवं अनुसंधान लेख लेखन अब समस्या नहीं रह गयी है। इन शब्दावलियों में अप्राप्य शब्दों के लिये अन्य शब्दकोष आदि देखे जा सकते हैं उदाहरणार्थ, अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोषः भार्गव, अमरकोष, हलायुध कोष, वाचस्पात्यापिधान, संस्कृत-हिन्दी कोषः, आपटे, पारिभाषिक शब्द संग्रह (हिन्दी निर्देशालय, १९६२ संस्करण), आदि। समस्या उपस्थित होने पर, अकादमियों के संचालकों अथवा स्थायी आयोग के अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

(आ) शब्दावली के निर्माण के हेतु निदेशक नियमः— समस्त शिक्षकों के हेतु नव साहित्य सृजन, अनुवाद, सामान्य लेखन, कक्षा–शिक्षण आदि में सुविधा हो, स्पष्ट विचार हों तथा उपयोगिता हो, इस दृष्टि से, उन निदेशक नियमों का सारांश यहां प्रस्तुत कर देना उचित होगा जो कि केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय के द्वारा पर्यायवाची शब्दों की रचना तथा शब्दावली के सृजन आदि के हेतु, प्रयुक्त किये गये हैं[1–2]।

(I) निम्नलिखित अवस्थाओं में अंतर्राष्ट्रीय पदों, संज्ञाओं आदि का केवल मात्र लिप्यंतरण (Transliteration) कर दिया जाय। (i) तत्वों तथा यौगिकों के नाम, उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड, इत्यादि (ii) चार, माप, तथा भौतिक परिणामों से सम्बंधित समस्त मात्रक एवं इकाइयां आदि, जैसे, केलोरी, ऐम्पियर, इत्यादि (iii) नामों पर आधारित पद, उदाहरणार्थ, वोल्टमापी, फारेनहाइट तापक्रम (iv) द्विपदीय नाम, यथा डाइ-पेन्टीन (इनका बहुधा उपयोग, प्राणिकी एवं वनस्पति-शास्त्र में किया गया है)। (v) नियतांक जैसे कि π, N इत्यादि (vi) वे विदेशी शब्द जो कि सामान्य राष्ट्रीय उपयोग में लाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, रेडियो, इलेक्ट्रान आदि (vii) अंक प्रतीक, संकेत एवं सूत्र, यथा, sin, cos, log, आदि। प्रतीकों के हेतु देवनागरी लिपि का भी प्रयोग किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, Centimeter के लिये सें० मी० का। ज्यामितिक ग्रन्थों में क ख ग, त्रिभुज क्ष त्र ज्ञ आदि अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु त्रिकोण मिति में रोमन तथा ग्रीक अक्षरों का प्रयोग हो हो, उदाहरणार्थ, sin A, cos B आदि।

(II) अत्यधिक गूढ़ता, रूढ़वादिता, तथा शुद्धिवादिता से बचा जाय एवं संकल्पनात्मक शब्दों का अनुवाद कर लिया जाय। अनुवाद या नव-शब्द-सृजन क्रिया में भी प्रान्तों में प्रचलित शब्दों का स्मरण रखते हुये, संस्कृत भाषा का आधार लेकर, निम्नलिखित नियम निदेशक रहें।

(i) संस्कृत उपसर्गों तथा धातुओं एवं संज्ञाओं का उपयोग:—उदाहरणार्थ Proposal, resolution, एवं motion शब्दों के लिये क्रमशः प्रस्ताव, संस्ताव एवं उपस्ताव शब्द लिये गये हैं। Convergent के लिए अभिसारी तथा Divergent के लिए अपसारी शब्द दिये गये हैं। संकाल्पनिक यथार्थता की रक्षा करते हुए स्थिरता प्रदान करने की दृष्टि से एक जैसे अर्थों से युक्त प्रतीत होने वाले शब्दों के लिये हिन्दी पर्याय स्थिर कर दिये गये हैं, जैसे सौरभ या सुवास (aroma), सुरस (flavour) सुगन्ध (fragrance)

१–पारिभाषिक शब्द संग्रह : केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारतसरकार, १९६२ संस्करण, पृष्ठ xxii-xxviii; एवं

२–विज्ञान शब्दावली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, १९६४ संस्करण, पृष्ठ xv-xvi

(ii) अनुलग्नता विधि का उपयोग किया जाय :— जैसे कि (numerical) के लिये पर्याय है संख्यात्मक (यहां आत्मक-अनुलग्न है ।)

(iii) संयोजन एवं समास विधि का उपयोग :—धर्मी, धारी, मान, मूलक, निष्ठा, मापी, लेखी आदि शब्दों द्वारा अन्य तत्सम तथा तद्भव शब्दों का समास कर नूतन शब्द निर्माण यथा वर्ण-लेखी, रेडियम-धर्मी, तापमान, चालकता-मूलक, तापमापी आदि ।

(iv) संकल्पना की रक्षा हो—केवल शाब्दिक अनुवाद न हो :— बैरोमीटर शब्द का शाब्दिक अनुवाद, भारमापी होगा, किन्तु वास्तविकता का स्मरण रखते हुए वायुदाब-मापी शब्द रखा गया है । इसी प्रकार, सेकंडरी सेल के लिये द्वितीयक (सेकंडरी) सेल न रखते हुये संचायक सेल शब्द रखा गया है । संचायक सेल शब्द, मूल अंग्रेजी शब्द (त्रुटिपूर्ण!) से भी अधिक अर्थवाही है। कई स्थलों पर इसी प्रकार, मूल त्रुटिपूर्ण शब्दों के स्थान पर उत्तम शब्द सुझाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ज्वरमापी (क्लिनिकल थर्मामीटर) ।

(v) सामान्यतः सर्वत्र प्रचलित हो चुके शब्द, उचित अनुवाद के बिना यथावत ले लिये जांय : उदाहरणार्थ अणु (मालीक्यूल), परमाणु (एटम), तार (टेलिग्राफ) आदि ।

(vi) प्राचीन भारतीय साहित्य में बाहुल्य से प्रयुक्त शब्द यथावत ले लिये जांय, जैसे वाहिनी (बटालियन), कलन (कैलक्युलस) ।

(vii) अन्य विदेशी भाषाओं के सामान्य प्रचलित शब्द यथावत ले लिये जांय, उदाहरणार्थ, टॉर्च, मशीन, एंजिन प्रिज़्म, लावा आदि ।

(viii) संकल्पना की यथार्थता की रक्षा के लिये तथा शब्दार्थ को स्थिरता प्रदान करने के लिये, प्रचलित शब्दों के स्थान पर नये शब्द स्थापित किये जांय । उदाहरणार्थ, Heat के लिये ताप शब्द बहुधा प्रयुक्त होता था किन्तु अब ऊष्मा शब्द ले लिया गया है, जबकि 'ताप' शब्द का प्रयोग Temperature के लिये किया जाने लगा है । इसी प्रकार energy (ऊर्जा), Power (शक्ति), Strength (सामर्थ्य, सबलता), शब्दों के सम्बन्ध में है ।

(ix) संकर शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं :— अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के शब्दों में संस्कृत उपसर्ग, प्रत्यय आदि युक्त कर नवीन शब्दों का निर्माण जैसे कि क्रिस्टलीकरण, क्रिस्टलन, आयनीकरण, वलय-स्टैंड, वोल्टता आदि ।

(x) **शब्दों के लिंग** :—सामान्यतः अंतर्राष्ट्रीय एवं विदेशी शब्दों का पुलिंग में प्रयोग ही जैसे 'वोल्ट था' । किन्तु प्रबल के कारण होने पर स्त्रीलिंग प्रयुक्त किया जा सकता है, जैसे कि 'वोल्टता थी' ।

(xi अनुस्वार का प्रयोगः—आनुनासिक व्यंजन के स्थान पर अनुस्वार के उपयोग का वरण किया जा सकता है, किन्तु सर्वदा नहीं, उदाहरणार्थ, पंचम, समांग (न म समाङ्ग नहीं) जबकि कुछ शब्दों में प्रचलित आनुनासिक का प्रयोग ही उत्तम होगा उदाहरणार्थ, लेन्स एवं पेटेन्ट (न कि लेंस या पेटेन्ट या पेटेण्ट)

(xii) आदि वृद्धि :—संस्कृत के नवरचित सामासिक शब्दों में आदि वृद्धि के नियम की उपेक्षा की जा सकती है किन्तु सर्वदा नहीं, उदाहरणार्थ, व्यवहारिक, लाक्षणिक शब्द आदि वृद्धि से युक्त रूप में प्रयुक्त हों ।

(xiii) संधि तथा समासः—दुरूह संधियों से बचा जाय । शब्दों के मध्य हाइफन लिख कर दो शब्दों की संधि या समास प्रदर्शित किये जांय ।

(xiv) हलन्त, विसर्ग आदि का उपयोग :—हलन्त एवं विसर्गों के प्रयोग में संशुद्धता का स्मरण रखा जाय । उदाहरणार्थ, रूपवत, सामान्यतः, विकल्पतः, आदि ।

(इ) टिप्पणियां :—शब्दावली के सम्बन्ध में, सामान्य परिचर्चा में सुगमता तथा साहित्य सृजन में इसके उपयोग के अवसर पर सुविधा हो इस दृष्टिकोण से इस स्थल पर कुछ विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत करना समुचित होगा ।

(i) दूरगामी परिणामों को लक्ष्य में रखते हुये शब्दों के निर्माण अथवा चयन एवं लेखन तथा उच्चारण में पर्याप्त सावधानी तथा एकरूपता की रक्षा आदि की आवश्यकता है । उदाहरणार्थ, मिथेनाल, मिथेनल, मिथेनॉल, इनमें मिथेनाल शब्द अशुद्ध है, अन्य दो शब्द

क्रमशः ऐल्डिहाइड तथा एल्कोहॉल का प्रतिनिधित्व करते हैं यहां यह प्रेक्षणीय है कि विज्ञान शब्दावली (१९६४ संस्करण पृ० ३) में Methanol के लिये शब्द मेथेनाल दिया गया है, जबकि, विज्ञान शब्दावली III में, Methanol के लिये मेथेनेल शब्द दिया गया है इन दो शब्दों 'में' मे तथा 'मैं' एवं 'नै' सम्बन्धी उच्चारण भेद पर्यवेक्षणीय है। उच्चारण, प्रचलित उच्चारणों के समान नहीं है। इन उच्चारणों के सम्बन्ध में प्रयुक्त नियमों का संकेत भी शब्दावली में होना आवश्यक था, जोकि वर्तमान प्रकाशनों में उपलब्ध नहीं है। कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करना भी उपयुक्त होगा। एसिट-अमाइड वाले प्रचलित उच्चारण का शब्द ऐसेट-ऐमाइड (पृ० ३, शब्दावली भाग I) यहां यदि ऐसेट शब्द ऐमाइड से पृथक् लिखा गया है तो ऐसेट में ट् हलन्त होना था। ऐसीट उच्चारण भी संभावित या अधिक उत्तम होता, क्योंकि ऐसीटिक अम्ल के लिये 'ऐसीटिक' अम्ल शब्द प्रयुक्त किया गया है। सम्भवतः उक्त लेखन पद्धति में अंग्रेजी वर्ण विन्यास (स्पेलिंग) के प्रतिबिम्बन का लक्ष्य रखा गया हो। किन्तु लेखन पद्धति में स्थैर्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसी पृष्ठ पर Acetal के लिये ऐसेटल (तुलना कीजिये ऐसेट ऐमाइड से) न रखते हुये ऐसीटैल रखा गया है। यहां 'से' एवं 'सै' सम्बन्धी अंतर ध्यानाकर्षणीय है। इसी प्रकार आक्जेलेट उच्चारण वाले प्रचलित शब्द के हेतु शब्दावली भाग I में आक्सेलेट तथा Oxalic acid के लिये आक्सेलिक अम्ल लिखा गया है जबकि स्नातकोत्तर शब्दावली भाग ३ में oxalate के लिये आक्सेलेट तथा Oxalic acid के लिये आक्सैलिक अम्ल शब्द लिखे गये हैं। यहां 'वज़े', 'वसें', वसैं के अंतर पर्यवेक्षणीय हैं। मात्राओं के प्रयोगों के हेतु स्पष्ट और स्थिर विनिमयों का निर्माण तथा संकेत आवश्यक है। हिन्दी और संस्कृत भाषाओं का देवनागरी लिपि में लेखन करने पर लेखन तथा उच्चारण की एकता रहती है, अतः शब्दो के लेखन में सजगता आवश्यक है, ताकि उच्चारण की अशुद्ध परम्परा न पड़ जाये। संक्रमण के इन २०-२५ वर्षों में किये गये कार्यों के दूरगामी परिणाम होंगे, यह सर्वदा स्मरण रखना आवश्यक होगा।

(२) एक ही शब्द Complex (ion या अणु) के लिये जहां विज्ञान शब्दावली भाग I (पृ० १०६) में स्पष्टतः संकर शब्द का प्रयोग है, वहीं स्नातकोत्तर शब्दावली (पृ० २३) में संकुलन शब्द का प्रयोग है। ऐसे प्रयोगों के सम्बन्ध में समानता तथा स्थिरता आवश्यक है। अनुसंधान लेखों की सारांश पुस्तिका के सम्पादन के अवसर पर, वर्तमान लेखक को यह अनुभव हुआ है कि एक ही शब्द Complex के लिये विभिन्न लेखकों ने जटिल, संकर, समिश्र, संकुल आदि का प्रयोग किया है। यह सम्भवतः शब्दावली के सावधानीपूर्वक अवलोकन न कर पाने अथवा अन्य कारणों से हुआ है। हम सब यह स्पष्टतः तय कर लें कि संमिश्र शब्द का प्रयोग Complex number या Complex Impedance—जबकि जटिल शब्द का प्रयोग, Complex data या Complex Problem के संदर्भ में करेंगे, इसी प्रकार संकर एवं संकुल शब्दों के अर्थ स्थैर्य के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है।

(iii) शब्दावली में कई ऐसे शब्द हैं जिनके हेतु एक साथ कई पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं; उदाहरणार्थ, Constant के लिये नियत, स्थिर, अचर, अचल, एक समान, सतत, अविरत शब्दों का प्रयोग किया गया है। संगोष्ठी के हेतु प्राप्त लेखों तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से लेखक ने यह पाया है कि एक ही शब्द Stability Constant के लिये लेखकों ने स्थायित्व स्थिरांक, अचर, नियतांक आदि का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में भी एक समानता आवश्यक है। उदाहरणार्थ, सार्वत्रिक स्थिर अंकों जैसे N, π आदि के लिये नियतांक शब्द का प्रयोग हो, जबकि K आदि वैयक्तिक प्रयोगों द्वारा प्राप्त स्थिर अंकों के लिये स्थिरांक शब्द का प्रयोग हो। अचर शब्द का प्रयोग किसी चलनशील वस्तु के किसी स्थान पर स्थिरता के हेतु प्रयोग हो। अतः इस प्रकार के एक ही शब्द के विभिन्न संकल्पनात्मक पर्यायों के लिये व्यावहारिक स्थिरता सम्बन्धी समस्या भी विद्वद्वृन्द के लिये विचारणीय है।

(iV) शब्दावली में Excretion तथा Emission

दोनों ही शब्दों के लिये हिन्दी पर्याय, उत्सर्जन प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि दोनों शब्दों के संकाल्पनिक अर्थ भिन्न हैं अतः भिन्न पर्यायों की यथासंभव व्यवस्था आवश्यक है। वैसे संदर्भानुसार एक ही शब्द का भिन्न अर्थों में प्रयोग करने की परिपाटी है, किन्तु शब्द भण्डार की वृद्धि तथा अभिव्यक्ति की उत्तम परिशुद्धता की दृष्टि से, ऐसे समस्त उदाहरणों में भिन्न भिन्न शब्द स्थिर करना उत्तम होगा।

(v) शब्दावली में मुद्रण की भी कई अशुद्धियां प्रतीत होती हैं। इनके प्रति भी सावधानी आवश्यक है। उदाहरणार्थ Butanol के लिये ब्यूटोनाल है जबकि Butaldehyde के लिये ब्यूटेल्डिहाइड। ऐसी छोटी मोटी अशुद्धियां अगले संस्करणों में दूर की जा सकती हैं तथा लेखकगण स्वविवेक का उपयोग कर इनका शुद्ध रूप प्रयुक्त कर सकते हैं।

(vi) अनुसंधान स्तरीय ग्रन्थों के लेखन में, विदेशी लेखकों के नामों के शुद्ध उच्चारणात्मक लेखन तथा अनुसंधान पत्रिकाओं के नामों के लेखन में एकरूपता हो इस दृष्टि से भी शब्दावली के अंत में संक्षिप्त परिशिष्ट युक्त की जा सकती है या अलग से एक संक्षिप्त सूची प्रकाशित की जा सकती है। उदाहरणार्थ, Regnault का रेन्यू, रेना, रेगनाल्ट, रेनाल, क्या उच्चारण हो ? इस सम्बन्ध में विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञ मिल कर मतैक्य प्राप्त करें। इसी प्रकार J.Amer.Chem.Soc को जे० अमेरि० केम० सोसा० या जे० अमेर० केम्० साक०, क्या लिखा जाय इस सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देशावली हो।

(vi) जहां क्लिष्टता, अत्यधिक संस्कृत निष्ठता, शुद्धि-वादिता एवं सुधार विरोधिता से बचना आवश्यक है, वहीं अत्यधिक सरलीकरण, सामान्य वर्ग की अनावश्यक पुष्टि, समालोचना के प्रति असहिष्णुता अथवा लोकप्रियता के मोह से ऊपर रखना आवश्यक होगा। अतः कुछ संस्कृत निष्ठ नाम जिनकी पृष्ठभूमि में मातृकान्यास, तंत्र तथा पाणिनीय जैसे व्याकरणों के गहन सिद्धान्त हैं उनको यथावत् लेना उत्तम होगा। उदाहरणार्थ "अहम्" जैसे शब्द, जिनके प्रयोग की पृष्ठभूमि में तंत्र, योग, दर्शन तथा माहेश्वर सूत्रों आदि की महान परम्परा रही है, यथावत लेना चाहिये। इसी प्रकार और भी कई विचारणीय बिन्दु हैं, जिन पर परिचर्चा की जा सकती है।

रसायन पर शास्त्रीय साहित्य सृजन में हिन्दी की साहित्य शैली की रक्षा की आवश्यकता

विदेशी भाषाओं के ग्रन्थ का आधार लेकर, मौलिक अथवा अनुवाद गत– साहित्य के सृजन के अवसर पर यह अपेक्षित है कि हम हिन्दी की प्रांजलता, साहित्य तथा शैली को बनाये रखें। बहुधा कई मौलिक ग्रन्थों, अथवा अनुवाद ग्रन्थों में अंग्रेजी भाषा की शैली और प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं तथा विषय वस्तु का बोध तो दूर, वाक्यों का अर्थ समझना भी दुष्कर हो जाता है। शब्दशः अनुवाद न करते हुये वाक्य या कण्डिका (पेराग्राफ) का मन्तव्य पूर्णतः समझ कर, भावानुवाद प्रणाली, जिसमें, हिन्दी का प्रवाह बना रहे, अधिक उपयुक्त होगी। रसायन के किसी विषय या उपविषय को दीर्घकाल तक पढ़ाने वाले, हिन्दी के जानकार विद्वान् से ही उस विषय के संबंधित मौलिक ग्रन्थ लिखाये जायं या अनुवाद कार्य कराया जाय तो उत्तम होगा।

पाठ्य ग्रन्थ :

माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर : जहां तक माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर के हेतु रसायन विज्ञान के शिक्षण सम्बन्धी साहित्य का प्रश्न है, हिन्दी माध्यम के कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा विद्यार्थी, व्यापक रुप में हिन्दी माध्यम का ही वरण करते हैं। इस स्तर के उत्तम ग्रन्थों के निर्माण में जहां सैद्धान्तिक विवरणात्मक परिशुद्धता एवं आधुनिकतम विकास के साथ अनुरूपता का स्मरण रखना आवश्यक है, वहीं लिखे गये शब्दों की उच्चारण की शुद्धता तथा संकलपनात्मक स्थिरता पर भी उतना ही बल दिया जाना चाहिये। प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर अंतिम कक्षाओं तक एक जैसा शाब्दिक उच्चारण और शब्दिक अर्थ हो। संकर एवं संकुल शब्दों

जैसी उपर्युक्त स्थितियां उत्पन्न न हों।

स्नातक स्तर :—स्नातक-स्तर पर भी रसायन की विभिन्न शाखाओं में पर्याप्त पाठ्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ पाठ्य ग्रन्थ उत्तम कोटि के हैं, तथा प्रदर्शनी में भी रखे गये हैं। इन ग्रन्थों के सृजन में भी सैद्धान्तिक शुद्धता के साथ, शैली, भाषा प्रवाह, बोधगम्यता, उच्चारण तथा लेखन की परिशुद्धता तथा एक समानता का लक्ष्य आवश्यक है।

स्नातकोत्तर स्तर:—समस्या मूलतः स्नातकोत्तर स्तर के ग्रन्थों के निर्माण तथा प्रकाशन की है। यह हर्ष का विषय है कि मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आदि की रचना अकादमियों ने इस ओर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जहां रसायन की विभिन्न शाखाओं के विदेशी भाषाओं के (विशेषतः अंग्रेजी) के उत्तम, प्रचलित तथा मानक ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य हो रहा है, वहीं विश्वविद्यालयों के निष्णात विद्वानों के द्वारा, मौलिक पुस्तिकाएं (मोनोग्राफ) तथा ग्रन्थों की रचनाएं भी करवायी जा रही हैं। मध्यप्रदेश में डा० प्रभुदयालजी अग्निहोत्री के कुशल संचालन में यह कार्य संतोषजनक गति से प्रगतिशील है। अन्तिम दो तीन वर्षों में कई छात्रोपयोगी पुस्तिकाएं, पाठ्यग्रन्थ तथा मानक ग्रन्थ एवं अनुसन्धान स्तरीय पुस्तकें प्राप्य हो सकेंगी। पाश्चात्य मानक ग्रन्थों के अनुवाद तथा भारतीय विद्वानों द्वारा लिखी गयीं स्नातकोत्तर स्तरीय मौलिक पुस्तिकाओं, मानक पाठ्य ग्रन्थों आदि से रसायन विज्ञान का हिन्दी माध्यम में साहित्य, समृद्ध हो जाने पर, अनुसन्धान स्तरीय कार्य, पत्रिका प्रकाशन आदि भी तीव्र गति से होने लगेगा।

ग्रन्थ लेखन में विषय वस्तु के बोध में सुगमता हो, भाषा यथासम्भव सरल हो तथा अभिव्यक्ति में स्पष्टता हो, ये लक्ष्य सर्वदा सामने रखा जाना आवश्यक है किन्तु स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्य ग्रन्थों में भाषा की प्रांजलता स्वाभाविक रूप से होगी ही। शास्त्रीय प्रकृति के उच्च-स्तरीय ग्रन्थों में, विशिष्ट संकल्पनाओं के वाहक शब्द, पाठक, विद्वानों तथा विद्यार्थियों को प्रारम्भ में भले ही कठिन, प्रतीत हों तथा भाषा भी भले ही संस्कृत निष्ठा क्लिष्टा प्रतीत हो, किन्तु शाब्दिक अभिव्यन्जन के सूक्ष्म स्तर तक ले जाने, विषय के गांभीर्य की अनुरूपता, अनुसंधान कार्यों में सहयोग, मौलिक चिन्तन में गहराई आदि की दृष्टि से यह स्थित वरणीय होना चाहिये। क्योंकि अभी का कार्य परम्पराओं का निर्माता होगा तथा शताब्दियों तक प्रभावशाली होगा, अतः इस संक्रमण काल में हम सब सहिष्णु रहें तथा परिश्रम के हेतु तत्पर रहें। जन सामान्य के लिये लिखे जाने वाले लोकप्रिय साहित्य की भाषा से इन ग्रन्थों की भाषा की तुलना नहीं की जानी चाहिये। बी० एस-सी० स्तर तक हिन्दी माध्यम से पढ़कर आने वाले छात्र के हेतु वैसे भी स्नातकोत्तर स्तरीय हिन्दी ग्रन्थ भाषा की दृष्टि से कठिन प्रतीत नहीं होंगे।

पाठ्यग्रन्थों में विदेशी विद्वानों के ग्रन्थों के संकल्पना-त्मक तथा अन्य चित्र किंचित् संशोधन के साथ सधन्यवाद लेकर अधिकतम संख्या में देने से, विषय बोध तथा ग्रन्थ लोकप्रियता की दृष्टि से हितकर कार्य होगा। इसी प्रकार अधिकतम मौलिक संकल्पनात्मक चित्र दिया जाना भी श्रेयस्कर होगा।

पाठ्यग्रन्थों तथा मानक ग्रन्थों एवं अनुसंधान स्तरीय पुस्तिकाओं का कलेवर अनावश्यक रूप से न बढ़ जाये इस दृष्टि से उन अनुसंधान लेखों तथा समीक्षाओं एवं सन्दर्भ-ग्रन्थों की लम्बी सूची न देते हुये, यदि उस ग्रन्थ का ही संदर्भ दे दिया जाय जिसके आधार से, वे समस्त सन्दर्भ लिये गये हैं तो यह कार्य निष्ठापूर्ण, समय, शक्ति और अर्थ व्यय से रक्षा का कार्य होगा। अत्यन्त आवश्यक या वास्तविक रूप में देखे गये अनुसन्धान संदर्भ ही दिये जांय। सामान्यतः स्वयं लेखक एवं पाठक इन मौलिक संदर्भों को कदाचित देखते हैं। शोधकर्ता ही इनका उपयोग करते हैं। ग्रन्थों के अंत में द्विविध शब्दावली (हिन्दी, अंग्रेजी, अंग्रेजी-हिन्दी) देना प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक किये गये प्रकाशनों में उपयुक्त होगा। हिन्दी में रसायन विज्ञान पर किये गये प्रारम्भिक प्रकाशनों में न लाभ, न हानि का दृष्टिकोण अपनाना उचित होगा।

इससे प्रकाशनों की लोकप्रियता तो बढ़ेगी ही, किन्तु हिन्दी के प्रयोग के लक्ष्य की सिद्धि में सफलता मिलेगी।

अनुसंधान साहित्य (पत्र पत्रिकाएं, मानक सारणियां, मानक कोष आदि)

(विश्वगत विकास से सामञ्जस्य एवं विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त)

हिन्दी में रसायन पर अनुसंधान-साहित्य नगण्य सा ही है। विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद द्वारा अनुसंधान पत्रिका का प्रकाशन होता है। इसी प्रकार, 'विज्ञान-प्रगति' आदि मासिक तथा त्रैमासिक पत्र भी, देहली आदि स्थानों से प्रकाशित होते हैं। अनुसंधान साहित्य के विकास के हेतु समीक्षात्मक त्रैमासिक पत्रिकाएं रसायन की विभिन्न शाखाओं में अनुसंधान पत्रिकाएं यथा, भौतिक रसायन अनुसन्धान पत्रिका, जीव रसायन अनुसंधान पत्रिका आदि प्रकाशित की जा सकती हैं। कार्य को त्वरा, सौष्ठव, शक्ति एवं कार्यभार के विकेन्द्रीकरण, सबको समान अवसर आदि को दृष्टिपथ में रखते हुये, विभिन्न विश्वविद्यालयों के रसायन विभागों को इन पत्रिकाओं के प्रकाशन के हेतु कार्यभार सौंपा जा सकता है। उचित अनुदान तथा योग्य विद्वान सहकारियों तथा कार्यालय-सहयोगियों के हेतु आंशिक समयात्मक सेवाओं के स्पष्ट प्रतिबन्धों का निर्माण कर, आकर्षक वेतन तय किये जा सकते हैं तथा सुविधाएं दी जा सकती हैं। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि, स्नातकोत्तर स्तर पर विदेशी भाषाओं (विशेषतः अंग्रेजी तथा फ्रेंच, एवं रूसी आदि) का अध्ययन अनिवार्य करना होगा। यह यहां के विद्वानों के विदेश प्रेषण, वहां से आधुनिकतम विकास का ज्ञान प्राप्त करने तथा विदेश में प्रकाशित उत्तम साहित्य को हिन्दी जगत में लाने की दृष्टि से आवश्यक होगा। भाषागत दृष्टि से भी विश्वविद्यालयों में केन्द्रीकरण किया जा सकता है। कुछ विश्वविद्यालय फ्रेंच में, अन्य रूसी आदि में विशेषता लिए रहें। ऐसे विश्वविद्यालयों को संबन्धित श्रेष्ठ विदेशी निबन्धों, अनुसंधान लेखों तथा ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य सौंपा जा सकता है।

छात्रों का चयन आदि

सामान्यतः विद्यार्थियों की निस्यंदन क्रिया उच्चतर माध्यमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाती है। सफल हुये छात्रों का बड़ा प्रतिशत, व्यवसाय अथवा तकनीकी आदि क्षेत्रों में चले जाते हैं अथवा नौकरी करते हैं। स्नातकोत्तर स्तर पर अनुसंधान की पात्रता तथा रूचि रखने वाले प्रतिभावान छात्र ही स्नातकोत्तर तथा शोध स्तर तक आ पावें यह व्यवस्था श्रेयस्करी होगी। ऐसे छात्रों में हिन्दी में लेखन तथा भाषा विशेष हिन्दी में अनुवाद आदि की योग्यता उत्पन्न की जाने तथा उनकी प्रतिभा को चमकने का अवसर देने तथा प्रोत्साहन सम्बंधी व्यापक योजनाएं बनाना भी आवश्यक है। अनुसंधान साहित्य निर्माण की धारा अजस्र रूप से बहती रहे, इस हेतु यह एक महत्वपूर्ण सुझाव माना जा सकता है। हिन्दी में रसायन सम्बन्धी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय स्तर से सामंजस्य, ज्ञान के आदान-प्रदान की सुगमता, प्रतियोगिता में श्रेष्ठता की दृष्टि से इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

कुछ सुझाव

भारत की विभिन्न हिन्दी अनुसंधान पत्रिकाओं की "रसायन सारांशिका" (केमिकल एब्स्ट्रैक्ट्स) भी प्रकाशित की जा सकती है। रसायन पर किये गये विश्वगत अनुसंधान कार्य पर वार्षिक विवेचनाएं, त्रैमासिक समीक्षाएं भी प्रकाशित की जा सकती हैं।

अनुसंधान कार्य में मानक-सारणियों, पारिभाषिक कोशों, विश्वकोषों आदि की आवश्यकता होती है। ऐसे मानक ग्रन्थों, सारणियों आदि के प्रकाशन की भी आवश्यकता है। इस सम्बंध में गम्भीर विचार के बाद, स्पष्ट योजना बनाकर नैष्ठिक एवं त्वरित क्रियान्वय उपादेय होगा।

लोकप्रिय एवं अन्य साहित्य

रसायन विज्ञान के प्रति रुचि तथा हिन्दी माध्यम की अभिव्यक्ति की सरलता के प्रति बाल मन तथा

सामान्यजन आश्वस्त एवं आकर्षित हों इस दृष्टि से दैनंदिन के उपयोग में आने वाली रासायनिक वस्तुओं, अभिक्रियाओं, घटनाओं आदि के सम्बन्ध में रोचक तथा सरल भाषा में दिये गये वर्णनों वाली मासिक पत्रिकाएं, पुस्तिकायें 'क्या ? क्यों ? कैसे ?' आदि प्रकाशित किये जा सकते हैं। इस तरह का प्रतिनिधि साहित्य विज्ञान लोक (आगरा), विज्ञान (इलाहाबाद) तथा विज्ञान प्रगति (दिल्ली) तथा अन्य छात्रोपयोगी ग्रन्थों में पाया जा सकता है। छन्दों तथा सूत्र प्रणाली का उपयोग कर भी प्रारम्भिक छात्रों के उपयोग के हेतु हिन्दी में पुस्तिकाएं लिखी जा सकती हैं। यह कार्य असंभाव्य नहीं है। महान गणितज्ञ भास्कराचार्य की लीलावती रसरत्न समुच्चय, पारद संहिता आदि ग्रन्थ इस तथ्य के प्रमाण हैं कि छन्द, सूत्र प्रणाली का उपयोग सफलतापूर्वक बालोपयोगी तथा सुबोध्य विज्ञान साहित्य के सृजन में किया जा सकता है।

विद्यार्थियों में प्रारम्भ से ही, अनुसंधान जिज्ञासा, कठोर श्रम, साधन तथा तप की प्रवृति उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से, हिन्दी में वैज्ञानिकों की प्रेरक जीवनियां प्रकाशित की जा सकती हैं।

स्वराष्ट्र निष्ठा एवं आत्म गौरव की भावना के विकास के दृष्टिकोण से वैदिक वाङ्मय में रसायनशास्त्र, कणाद एवं कपिल के वैशेषिक एवं सांख्य दर्शनों के तथा जैन दर्शन के परमाणुवाद सम्बन्धी चिंतन पर रोचक एवं शास्त्रीय पुस्तिकायें, प्रकाशित की जा सकती हैं। भारतीय रस साहित्य पर नागार्जुन, वागभट्ट, गोविंद भगवत्पाद, तीसट आदि के कार्यों का विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। प्राचीन भारत में रसायन के विकाश पर बहुत कार्य किया जा सकता है। इस क्षेत्र में डा० सत्यप्रकाश के कई श्रेष्ठ ग्रन्थ पर्यवेक्षणीय हैं। यद्यपि प्रारम्भ में युगानुरूप छात्रोपयोगी साहित्य के सृजन को महत्व देना होगा किन्तु जीवनी, इतिहास आदि से सम्बन्धित साहित्य का भी कई कारणों से अपना विशिष्ट महत्व है अतः इस ओर भी ध्यान दिया जाना उचित होगा।

लोकप्रिय मासिक पत्रिकाओं तथा साप्ताहिकों को रसायन स्तंभ प्रकाशन के हेतु आर्थिक सहयोग या अन्य प्रकार से प्रोत्साहन एवं प्रेरणा दिया जा सकता है। स्वयं अकादमी रसायन पर लोकप्रिय मासिक पत्र प्रकाशित करवा सकती है।

रसायन के शिक्षण के हेतु सामग्री

फिल्में : फिल्म प्रदर्शनों के माध्यम से रसायन के गूढ़ सिद्धान्तों को मनोरंजक रुप में, सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। इस क्षेत्र में USAID तथा NCERT के समन्वित प्रयासों से चलाई जा रही, ग्रीष्म शिक्षण संस्थाओं में किये गये सफल फिल्म प्रदर्शन हमारे लिये प्रेरक हो सकते हैं। इन फिल्मों का हिन्दी भाषान्तरण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। गुजराती में ऐसा प्रयोग किया जा चुका है। अतः हिन्दी माध्यम को लोकप्रिय बनाने के हेतु, उच्चतर माध्यमिक तथा स्नातक स्तर की संक्षिप्त फिल्में भी निर्मित एवं वितरित करना एक प्रभावशाली कार्य होगा।

चार्ट : देवनागरी अक्षरों एवं हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत भित्ति चित्र भी मानक शब्दावलियों के आधार पर निर्मित कराये जायें। हिन्दी माध्यम को लोकप्रिय एवं इसकी सक्षमता तथा अकादमी और इसके द्वारा किये गये कार्यों की ओर सभी का ध्यान आकर्षित करने तथा जन मानस के निर्माण के हेतु प्रतिनिधि प्रयोग के रुप में "आवर्त सारणियां" विभिन्न आकारों में प्रकाशित की जा सकती हैं। प्रारम्भ में वृहदाकार विस्तृत सारणियां कक्षाओं में अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से स्नातकोत्तर तथा स्नातक संस्थाओं को निःशुल्क या नाम मात्र के मूल्य पर वितरित की जा सकती हैं। वैसे, सारणियां भित्ति चार्टों के रूप में अभी भी प्राप्य हैं किन्तु उनमें परिवर्द्धन तथा संशोधन अपेक्षित है। समस्त शिक्षक तथा छात्र वर्ग में पुस्तक आकार की तथा पोस्ट कार्ड के आकार की सारणियां निःशुल्क वितरित की जा सकती हैं। इस कार्य पर, अधिक व्यय न आ पायेगा और हिन्दी माध्यम तथा अकादमियों के कार्यों की सफलता की दृष्टि से लाभ अधिक

होगा। इसी प्रकार स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के उपयोग के हेतु विविध संकल्पनाओं सम्बंधी चार्ट यथा औद्योगिक स्तर पर रासायनिक यौगिकों के निर्माण आदि के प्रक्रमों के शिक्षण में सहायता के हेतु भित्ति चार्ट निर्मित कराये जा सकते हैं।

क्रिस्टलों के प्रतिरूप, अणुओं के संघटन के परिचायक प्रतिरूपों के चित्र अथवा काष्ठ एवं मृत्तिका के प्रतिरूप बनवाये जा सकते हैं, जिनमें जहां भी सम्भव हो हिन्दी के संकेतों और देवनागरी लिपि के अक्षरों का प्रयोग हो।

कुछ सामान्य सुझाव :

उपर्युक्त विवेचन में परिचर्चा की सुगमता के हेतु विचार बिन्दु प्रस्तुत करने के प्रयास के साथ ही संक्षिप्त सूचनात्मिका समीक्षा भी दी गयी है। इस अवसर पर हिन्दी में रसायन विज्ञान के शिक्षण सम्बन्धित साहित्य एवं सामग्री के विकास के सम्बंध में निम्नलिखित सुझावों, की ओर ध्यानाकर्षण करना भी उपयुक्त है जिनका समय तथा सुविधा पाकर क्रियान्वय करना श्रेयस्कर होगा।

(i) हिन्दी भाषी प्रान्तों में सभी विश्वविद्यालयों के रसायन विभाग योजनापूर्वक, कार्य विभाजन तथा नियोजन का स्मरण रखते हुये हिन्दी में अनुसंधान पत्रिकायें प्रकाशित करें।

(ii) छात्रों की लेखन शक्ति के विकास, उनकी प्रतिभा को चमकने का अवसर देने तथा प्रतिभाशाली छात्रों के चयन में सुविधा के लक्ष्य से स्नातकोत्तर स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित की जायें।

(iii) मध्यप्रदेश या समस्त हिन्दी प्रान्तों के रसायनज्ञों की संस्था निर्मित की जाय जिसका लक्ष्य हिन्दी में रसायन के साहित्य का विकास हो। इसे अकादमियाँ सब सम्भव सहायतायें दें। इसके गठन के हेतु आधार रूप में 'इंडियन केमिकल सोसायटी' का संगठन लिया जा सकता है। इस संस्था की शाखायें तथा उपशाखायें विभिन्न स्थलों पर हों।

(iv) प्रति वर्ष साप्ताहिक ग्रीष्म-गोष्ठियाँ आदि आयोजित की जावें जिसमें वर्ष भर के विकास तथा कार्यकलापों से विद्वानो को परिचित कराया जाये। इन गोष्ठियों में साहित्य तथा सामग्री प्रदर्शनियां, अनुसंधान लेख वाचन, निबंध वाचन, परिचर्चाओं, कक्षा-गत व्याख्यानों आदि के आयोजन किये जायं।

(v) श्रेष्ठ लेखकों तथा विद्वानों को समुचित रूप में सम्मानित करने के हेतु, पुरस्कार आदि की व्यवस्था की जावे

(vi) हिन्दी भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर तक हिन्दी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य कर दिया जाय।

(vii) रसायनज्ञों की विभिन्न पदों पर (विशेष कर शिक्षण सम्बंधी पदों पर) नियुक्तियों के हेतु वरण करने के अवसर पर विषय के ज्ञान के साथ ही हिन्दी के ज्ञान को प्राथमिकता दी जाये।

(viii) उच्चतर माध्यमिक स्तर तक संस्कृत अनिवार्य कर दी जाये, क्योंकि हिन्दी के अध्ययन में इसका महत्व स्वयं सिद्ध है।

(ix) अकादमी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालय एवं राज्य शासन तथा विभिन्न विद्यालयों के रसायन विज्ञान विभाग, मिलकर सम्मिलित रूप से प्रत्येक रसायन विभाग में हिन्दी मुद्रांकन यन्त्रों (टाइप राइटर) की व्यवस्था करें। इससे कार्यालयीय स्तर पर भी हिन्दी का उपयोग होगा। जहां भी संभव हो, रसायन सम्बन्धी पत्रव्यवहार हिन्दी माध्यम से ही हो। रासायनिक पदार्थों के विक्रेताओं, ग्रन्थ विक्रेताओं आदि से क्रय आदेश आदि के समय हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार किया जाय तथा उनसे भी हिन्दी में ही पत्रोत्तर की अपेक्षा की जाय।

(xi) रसायन उद्योगों तथा सम्बन्धित विज्ञापन समितियों को नाम पट्टों, प्रचार पत्रों, पत्र व्यवहार आदि में हिन्दी के प्रयोग के लिये प्रेरित किया जाये तथा इस हेतु निःशुल्क सहायता की व्यवस्था की जाये।

[शेष पृष्ठ २२ पर]

परमाणु शक्ति एवं भारत

परमाणु शक्ति की ओर अग्रसर होने के सम्बन्ध में जितना विचार-विमर्श भारत में हो रहा है उतना विश्व के शायद ही किसी अन्य देश में हुआ हो। विश्व के परमाणु शक्ति में सशक्त पाँच देशों में इस क्षेत्र में विस्तार के सम्बन्ध में कभी भी इतना विचार नहीं किया गया। विश्वशान्ति का नारा लगाने वाले अनेक देश परमाणु शक्ति में अपने को सशक्त बनाने में अनवरत लगे हुये हैं।

भारतीय जनमत परमाणु शक्ति विस्तार के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विचार प्रस्तुत करता है। एक समुदाय ऐसा है जो परमाणु शक्ति विस्तार एवं उसके विस्फोट को साथ साथ चाहता है। ये ऐसे लोग हैं जो हमारे परमाणु शक्ति विरोधी शर्त पर किये गये दस्तखत को तोड़ने के पक्ष में है। इनके मतानुसार ट्राम्बे अणुशक्ति संस्थान में प्राप्य प्लूटोनियम का प्रयोग परमाणु शक्ति विस्तार में बिना किसी शोधन के किया जा सकता है। यह भी सोचा जा रहा है कि यह कार्य पाँच वर्ष के अन्दर पूरा किया जा सकता है। दूसरा समुदाय परमाणु शक्ति के विस्तार के पक्ष में तो है परन्तु इसके तुरन्त विस्फोट का विरोधी है। इस समुदाय का मत है कि ट्राम्बे में प्राप्य प्लूटोनियम २३९ आइसोटोप का प्रयोग परमाणु शक्ति विस्तार में नहीं हो सकता, इसके लिये प्लूटोनियम २४० आवश्यक है। रानाप्रताप सागर एवं कलपक्कम संस्थान परमाणु शक्ति विस्तार में प्रयोग करने योग्य प्लूटोनियम का उत्पादन कर सकते हैं परन्तु इसकी लागत अलाभकर होगी। अतः यदि भारत परमाणु शक्ति का विस्तार चाहता है तो उसे एक नये संस्थान का निर्माण करना होगा जो मात्र परमाणु बम में प्रयोग करने योग्य प्लूटोनियम का उत्पादन करेगा। ऐसे संस्थान की स्थापना में कम से कम तीन वर्ष लगेंगे। यह संस्थान भारी पानी का प्रयोग करेगा, जो कि राना प्रताप सागर एवं कलपक्कम योजनाओं के अलावा होगी। ऐसी स्थिति में हमें भारी पानी की अपनी क्षमता को भी बढ़ाना पड़ेगा। यह कार्य भी तीन-चार वर्ष में पूरा हो पायेगा। तीसरा समुदाय परमाणु शक्ति विस्तार का पूर्णतया विरोध करता है। इस विचार धारा को मानने वाले परमाणु शक्ति विस्तार से विश्व-शान्ति को खतरा होने का दम भरते हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों का विश्वास कि प्लूटोनियम बम उतना शक्तिशाली नहीं होगा जितना कि अन्य देशों के मेगाटन बम हैं। वर्तमान परिस्थिति में मेगाटन बम के निर्माण के लिये युरेनियम २३५ की आवश्यकता पड़ेगी जो कि प्रकृति में प्राप्य कुल युरेनियम का १/१४० वाँ भाग ही होता है। भारत में युरेनियम के स्रोत बहुत अधिक नहीं हैं। इस प्रकार युरेनियम की प्राप्त मात्रा के आधार पर केवल ३००० मेगाटन शक्ति का विस्फोट किया जा सकता है। इतनी शक्ति अर्जित करने के लिये लगभग ६०,०००० से

७५,०००० लाख रुपये व्यय करना पड़ेगा। इतना धन थोड़ी सी शक्ति के लिये व्यय करना उचित नहीं होगा। थोरियम के स्रोत भारतवर्ष में सर्वाधिक हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुये स्वर्गीय डा० भाभा ने भारत के लिये अधिक समय लेने वाली परमाणु शक्ति योजना का प्रस्ताव किया था। योजना के प्रथम चरण में प्लूटोनियम २४० के उत्पादन की बात कही गयी थी। दूसरे चरण में प्लूटोनियम का प्रयोग रिऐक्टर के ईंधन के रुप में होना था। इस चरण में थोरियम से युरेनियम २३३ उत्पन्न करने की योजना थी। योजना के तीसरे एवं अन्तिम चरण में बहुमुखी परमाणु शक्ति विस्तार की रुपरेखा तैयार की जा सकती थी।

थोरियम से युरेनियम २३३ का प्राप्त करना शक्तिशाली रिऐक्टर पर निर्भर करता है। प्रयोगात्मक स्थिति में ऐसे रिऐक्टर को कलपक्कम संस्थान में लगाया जा रहा है। यह संस्थान फ्रांस के सहयोग से शुरु किया जा रहा है। यदि रिऐक्टर के अन्दर थोरियम की उपस्थिति होगी तो अन्तिम प्राप्त उपज युरेनियम होगी।

डा० साराभाई द्वारा प्रस्तुत योजना बहुत ही सुलझी हुई एवं विस्तृत है। इस योजना के अनुसार अपने देश में परमाणु शक्ति विस्तार विनाशकारी न हो कर देश की बहुमुखी उन्नति का एक महत्वपूर्ण अंग होगा। यह योजना अपने अन्तिम चरण में परमाणु बम विस्फोट के अत्यन्त निकट होगी। इससे वे लोग भी संतुष्ट रहेंगे जो तुरन्त विस्फोट की विचारधारा रखते हैं।

विश्व के कई राष्ट्र जिनमें चीन भी एक है परमाणु शक्ति में सशक्त बनने की घोषणा कर चुके हैं। इस प्रकार इन देशों की स्थल सेना पूर्ण रूप से परमाणु शक्ति का लाभ प्राप्त करती है। कुछ लोगों के मतानुसार डा० साराभाई द्वारा प्रस्तुत की गई योजना विश्व में गलतफहमी पैदा करेगी। ये लोग जर्मनी एवं जापान द्वारा प्रस्तुत परमाणु शक्ति सम्बन्धी योजना को भूल जाते हैं जो कि अधिक विनाशकारी प्रभाव छोड़ती है। देश के कर्णधारों को यह जानना होगा कि आज सैनिक शक्ति परमाणु शक्ति के बिना प्रभावकारी नहीं होगी। सेना को आवश्यक परमाणु शस्त्रों से सज्जित करना होगा। वर्तमान वायुसेना जो लोह बमों का प्रयोग करती हो विज्ञान का दुरुपयोग कर रही है। आज अत्यंत संवेदनशील यंत्रों की आवश्यकता है जिससे कि स्थल, जल एवं वायु सेनायें एकसूत्र होकर कार्य कर सकें।

व्यापार व्यवस्था के लिये भी परमाणु शक्ति चालित जहाज एवं पनडुब्बियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। शिकारी पनडुब्बियों में भी यह व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। आत्मरक्षा के लिये भी परमाणु शक्ति का विभिन्न उपयोग किया जा सकता है। उपरोक्त बातों को को देखते हुये देश के वैज्ञानिकों, विशेषकर अणुशक्ति संस्थान के लिये यह खुली चुनौती है कि वे आगे बढ़े एवं इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दें जिससे कि अपना देश भी सर्वतोन्मुखी विकास कर सके एवं विश्व के सशक्त राष्ट्रों में इसकी गणना हो। सरकार को वैज्ञानिकों की सहृदयता पूर्वक सहायता करनी होगी नहीं तो हम पीछे ही रह जाँयगे।

● ●

पाठकों से निवेदन

"विज्ञान" के प्रचार एवं प्रसार के सम्बन्ध में आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

विज्ञान-वार्ता

यू० पी० ३०१

गेहूँ की उन्नतिशील बौनी जातियों के विकास अभियान की यू० पी० ३०१ एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके पौधों की अधिकतम् ऊँचाई ६०-७० से० मी० होती है। ऊँचाई में कम होने के कारण इसके गिरने का भय नहीं रहता। गन्ने की कतारों के बीच में लगाने के लिए यह सर्वोत्तम किस्म निर्धारित की गई है। यह किस्म गेहूँ की कल्यान सोना किस्म से करीब १० दिन पहले तैयार हो जाती है।

यू० पी० ३०१ किट्ट रोगों से प्रभावित नहीं होती। इसके लिये १३५ कि० ग्रा० नाइट्रोजन ५०-६० कि० ग्रा० फास्फोरस एवं ४० कि० ग्रा० पोटाश प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत में डालना पड़ता है। खाद की उचित मात्रा, समय पर सिंचाई एवं अन्य आवश्यक कृषिकार्यों के समय मिलजाने पर इसकी उपज ५०-६५ क्विटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है। इसकी चपातियाँ भी बहुत अच्छी होती हैं। प्रोटीन की मात्रा कल्यान सोना से २० प्रतिशत अधिक होने के कारण इसकी चपातियाँ अधिक पौष्टिक भी होती हैं।

संकर आम

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली के उद्यान विभाग में आम की जाति सुधारने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। यहाँ से विकसित आम की नई किस्म "संख्या ६५" के फलो का वजन औसतन ३०७ ग्राम पाया गया है। यही नहीं इसके फल में लगभग ७५ प्रतिशत गूदा होता है केवल आकार में वृद्धि ही नहीं इसका स्वाद भी अन्य आम के फलों से अच्छा होता है। इस किस्म की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह हर साल फल देने वाली किस्म है। संकर आम फलोत्पादकों को अनेक रूप से लाभ पहुचायेंगे ऐसा विश्वास है।

अणु-द्रवण अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रगति

संसार के विभिन्न भागों के वैज्ञानिक विगत २० वर्षों से नियंत्रित अथवा श्रृंखलाबद्ध अणु-द्रवण की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

उनके अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य एक ऐसा द्रवण प्रति-क्रियावाहक यन्त्र का निर्माण करना है जो सुलभ सस्ते ईंधन का उपयोग कर प्रचुर परिमाण में विद्युतशक्ति का उत्पादन करने में समर्थ हो। इसमें ईंधन के स्थान पर समुद्री जल में पाए जाने वाले भारी उद्जन (ड्युटीरियम) का उपयोग किया जाएगा।

यद्यपि इस क्षेत्र में हो रहे अनुसन्धान की रफ्तार इस कारण बहुत धीमी है क्योंकि द्रवण प्रक्रिया के लिए विद्युत प्रभावित कणों द्वारा उत्पन्न अत्यन्त तप्त गैस को एक स्थान पर संचित करने की जरूरत है। ये कण एक-दूसरे के प्रति विकषर्ण का भाव रखते हैं।

इस प्रकार की प्रचण्ड ताप वाली गैस, जिसे 'प्लाज्मा' कहते हैं, किसी भी मामूली कण्टेनर (खोल) को क्षण भर में भाप बना सकती है। अतएव, अनुसन्धानकर्ता ऐसे चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण करने के बारे में परीक्षण कर रहे हैं जो इस प्लाज्मा को 'वेकुअम चैम्बर' के मध्य भाग में सीमित करने अथवा पकड़ रखने में सक्षम हो। लेकिन, कठिनाई यह है कि विद्युतशक्ति इस प्लाज्मा से होकर प्रवाहित हो

सकती है तथा चुम्बकीय क्षेत्र पर उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया के कारण चुम्बकीय क्षेत्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है तथा 'प्लाज्मा' गैस लीक कर जाती है।

इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं तथा सैनडियागो, कैलिफोर्निया स्थित 'गल्फ जनरल एटोमिक' के एक वैज्ञानिक डा० टिहायर ओकावा ने इस दिशा में काफी प्रगति होने की सूचना दी है। डा० टिहायर ने बताया है कि वह एक ऐसी विधि का परीक्षण कर रहे हैं जिसके अन्तर्गत वह प्लाज्मा को ०.०७ सेकेण्ड तक बिल्कुल स्थिर रखने में सफल हुए हैं। अब तक किए गए प्रयोगों में 'प्लाज्मा' को जितने समय के लिए स्थिर किया जा सका है, उससे यह समय १० गुना अधिक है। डा० ओकावा की यह विधि अभी बिल्कुल प्रयोगात्मक अवस्था में है तथा उसका उद्देश्य 'अणु द्रवण' करना नहीं हैं।

● ●

[पृष्ठ ५ का शेषांश]

वैज्ञानिक तथ्यों की पुष्टि की है, जो अब तक संभव नहीं थी।

सन् १९६२ के लगभग कई रसायनशास्त्रियों को इस नई खोज की संभाव्य क्षमताओं का अहसास हुआ। तब से रसायनिक बन्धनता, क्रिस्टल संरचना, इलेक्ट्रान घनत्व इत्यादि गुणों के अध्ययन में इसका विस्तृत उपयोग हुआ है। अब तक ऐसे ३० तत्वों की खोज की जा चुकी है, जो मॉसबाउअर प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। इनमें अति प्रमुख तत्व Ir^{191}, Fe^{57}, Sn^{119} उल्लेखनीय है। मॉसबाउअर स्पेक्ट्रोमीटर का निर्माण हो चुका है, जिसकी सहायता से यह सब संभव हो सका है। निसंदेह मॉसबाउअर प्रभाव की खोज विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

● ●

[पृष्ठ १८ का शेषांश]

(xii) रसायन साहित्य के सृजनकर्ता लेखकों, अनुवादकों आदि को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष सुविधायें दी जावें। अध्ययनार्थ ग्रन्थों के क्रय, लेखन सामग्री के क्रय, चित्र निर्माण आदि के हेतु समुचित आर्थिक सहायता दी जाय। श्रेष्ठ पुस्तकालयों के ग्रन्थों के अध्ययन तथा उपयोग हेतु यात्रा सम्बन्धी या ग्रन्थों को लेखक तक पहुंचाने में सुविधा सम्बंधी व्यवस्थाएं की जायें। ऐसे लेखक-शिक्षकों पर से, दैनंदिन का शिक्षण सम्बन्धी कार्यभार कुछ कम कर दिया जाय तथा उनके प्रोत्साहन के हेतु सभी सम्भव कार्य किये जायें।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निष्ठापूर्वक वे सब प्रयत्न योजनाबद्ध रुप में किये जायें जिनसे हिन्दी में रसायन विज्ञान पर साहित्य एवं सामग्री का सब स्तरों के हेतु तथा रसायन के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टतम रूप में तथा तीव्रगति से विकास हो।

● ●

सम्पादकीय

ये कृषि मेले :

सितम्बर मास में दिल्ली के पूसा महाविद्यालय तथा पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय में कृषि मेलों का आयोजन हुआ था। यह प्रतिवर्ष का नियम है। इस अवसर पर देश भर के या कई प्रदेशों के किसान, विशेषरुप से उन्नतिशील किसान, एकत्र होते हैं और अपनी अपनी समस्याओं को कृषि विशेषज्ञों के सम्मुख रखते हैं, कृषि सम्बन्धी एक वर्ष में हुई उन्नति को आँखों से देखते और अनुभव करते हैं। तथा नवीन ज्ञान एवं अनुभव लेकर वापस जाते हैं। ये कृषि मेले कृषकों के कुम्भपर्व या हज-यात्रायें बन चुके हैं।

कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना के पूर्व देश के विभिन्न भागों में कृषि प्रदर्शिनियाँ लगती थीं जिनमें कृषि विशारदों एवं कृषकों की यह सामान्य धारणा थी कि जुताई तथा कृषि कार्यों के लिये नये नये औजारों के ईजाद हो जाने से कृषि कार्य सुगम हो जावेगा किन्तु ज्यो ज्यों अनुसन्धान होते रहे, यह देखा गया कि कृषि उत्पादन बढ़ाने में कृषि यन्त्रों का उतना हाथ नहीं है जितना कि फसलों की नई किस्मों के विकास, खादों के चुनाव तथा उचित सिंचाई के साधनों का है। एक प्रकार से सारा कृषि-दर्शन ही पलटा खा गया है।

आज का किसान उन्नतिशील और अग्रणी है। वह गेहूँ धान, आलू, अरहर-सभी की नई किस्मो के सम्बन्ध में जानकारी चाहता है। वह कुछ सर्वथा नवीन फसलों के विषय में जानना चाहता है। चुकन्दर, सोयाबीन, अंगूर आदि ऐसी ही फसलें हैं जिनके प्रति उसकी अगाध रुचि है। वह इन्हें उगाकर धन कमाना चाहता है। अब वह ख़ुशहाल है।

आज का किसान गेहूँ और धान की नई किस्में बोकर इतनी अधिक उपज प्राप्त करने में समर्थ हुआ है कि वह कृषि में युगान्तर काहामी बन चुका है। उसे "हरित क्रान्ति" में विश्वास हो उठा है। उसे खेती लाभकर पेशा जान पड़ी है। वह पेट भर खाने लगा है और अधिक उपजाकर अपने देशवासियों के लिये बचाने भी लगा है। उसने ६-७ वर्षों में सुजलां सुफलां शस्यश्यामलाँ भारत भूमि को चरितार्थ कर दिया है। उसने पहली बार चैन की साँस ली है। उसे विश्वास हो चला है कि संसार से भुखमरी का अन्त किया जा सकता है। वह कृतसंकल्प है कि अधिक से अधिक उपज पैदा करके दिखावेगा। तभी तो वह कृषि मेलों की ओर आकृष्ट होता है और वहाँ जाकर अधिकारियों से अपनी समस्याओं का हल चाहता है।

यह शुभ लक्षण है। एक ओर जहाँ इन मेलों से उन विद्यालयों को आत्म प्रचार का अवसर मिलता है, वहीं उन्हें अपने किये हुये कार्यों को घर घर तक पहुँचाने का आत्मिक सुख भी मिलता है। उनके कार्य की अग्नि परीक्षा भी होती है और भविष्य के लिए नवीन द्वार खुलते हैं। उन्हें कुछ नया कर दिखाने के लिये प्रेरणा मिलती है ऐसा ही है इन कृषि मेलों का प्रभाव।

सन्तोष होता है इन मेलों की उपलब्धियों पर। किन्तु अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। अभी भी कृषक उर्वरकों की उचित प्रयोग-विधियों से परिचित नहीं हैं। वे अब भी दुरभिसन्धि में फँसे हैं कि उनका प्रयोग करें या पैसे की बचत करें।

कृषकों को कृषि-साहित्य के सम्बन्ध में रुचि है किन्तु वांछित साहित्य अभी तैयार नहीं हो पाया। भाषा की

समस्या विशेषज्ञों के समक्ष बाधक है। कौन लोकप्रिय भाषा में उच्चस्तरीय ज्ञान को ढाले।

भारतीय समुन्नति की दिशा में कृषि मेलों का अतीव महत्व सिद्ध हो चुका है। देश की ७०% से भी अधिक जनता के लिये लोक संस्कृति के प्रतीक मेले प्रेरणा के स्रोत हैं। वे वहाँ जाकर तरह तरह की वस्तुयें खरीद और बेच सकें, इसका भी साथ साथ प्रबन्ध हो सके तो इनकी उपयोगिता और भी बढ़ जावे। एकाध पत्रिकायें उनकी भूख को शमित नहीं कर पावेंगी।

किन्तु एक ओर जहाँ कृषि विज्ञान अपनी सार्थकता सिद्ध करता है वहाँ विशुद्ध विज्ञान आज भी प्रचार की प्रवृत्ति से सर्वथा दूर जा पड़ा है। आज तक 'विज्ञान' मेले क्यों नहीं लगे? विडम्बना ही कहें कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के यत्न नहीं हो रहे हैं। इतना साहित्य आखिर किसके लिये रचा जा रहा है! क्या सांइस काँग्रेस ही ही विज्ञान मेला है? या फिर संग्रहालय एवं विश्वविद्यालय इन मेलों के प्रतिरूप हैं? सामान्य जन को विज्ञान से बड़ी दुराशा हुई है। वह अपने को लोकप्रिय या लोकगम्य न बनाकर दुर्गम बनाये रखना चाहता है आखिर क्यों? यह कब तक चलेगा?

लेखकों से निवेदन

'विज्ञान" की सेवा रचनायें भेज कर करें। रचनायें हिन्दी में हों एवं पृष्ठ के एक ओर हासिया छोड़कर टंकित हों।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्रप्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—प्रो० वाचस्पति, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—के० राय, प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद।

भारत के महान वैज्ञानिक–डा० रमन का निधन

21 नवम्बर को प्रातः 7 बजकर 25 मिनट पर बंगलौर में डा० चन्द्र शेखर वेंकट रमन का एकाएक देहावसान हो गया। वे 82 वर्ष के थे और इधर कुछ दिनों से अस्वस्थ थे। डा० रमन की मृत्य से अपार क्षति हुई है। वे सम्पूर्ण देश के ही नहीं, विश्व के महानतम वैज्ञानिकों में से थे। उनकी मृत्यु से संसार भर के लोगों को धक्का पहुँचा है।

डा० रमन का जन्म 7 नवम्बर 1888 को तिरुचिरपल्ली में हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय से 16 वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने स्नातक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था जिसके लिये उन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। डा० रमन को आरम्भ से ही भौतिकी में रुचि थी। 1907 में वे कलकत्ता में उप लेखाकार नियुक्त हुये थे किन्तु इस से उनकी वैज्ञानिक गति विधि में कोई अवरोध नहीं हुआ। वे 'इन्डियन एसोसिएशन फार द कल्टीवेशन' ऑफ साइन्स' की प्रयोगशाला में अवकाश के क्षणों में अपने प्रयोग करते रहे। सर आशुतोष के अनुरोध पर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के पलित प्रोफेसर का पद भार स्वीकार किया। यहीं से 1921 में सर्व प्रथम ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों के सम्मेलन में वह इंगलैंड गये। 1928 में उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण खोज की घोषणा की जिसे महान वैज्ञानिक प्रिंगशाइम ने 'रमन प्रभाव' का नाम दिया। इस खोज के आधार पर डा० रमन को 1930 में भौतिकी के लिये नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया। फिर तो उन्हें 'सर', फेलो ऑफ रॉयल सोसाइटी जैसी अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। रमन प्रभाव की ख्याति इस बात से आँकी जा सकती है कि 1928-1938 में लगभग 2000 शोध पत्र इस विषय पर प्रकाशित हुये। सारे संसार में इस पर शोध कार्य किये गये। अधुना लेसर की खोज से इसकी महत्ता पुनः बढ़ रही है।

डा० रमन ने 1921 में सांइस कांग्रेस तथा 1922 में इन्डियन जरनल ऑफ फिजिक्स की स्थापना में अग्रणी रहे। उन्होंने बंगलौर में रमन रिसर्च इन्स्टीच्यूट की तथा इन्डियन एकेडमी ऑफ साइन्सेस की भी स्थापना की। 1954 में 'भारत रत्न' तथा 1957 में 'लेनिन पुरस्कार' से वे विभूषित हुये। वे नेशनल प्रोफेसर भी नियुक्त किये गये थे। फूलों के रंग तथा ध्वनि विज्ञान पर भी उन्होंने समय समय पर खोजें की। हाल में 'दृष्टि' से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण खोजों की उन्होंने घोषणा की थी। मृत्यु से 15 दिन पूर्व उन्होंने कहा था कि **"विज्ञान ही मेरा धर्म है और जीवन पर्यन्त मैं उसका अनुसरण करूँगा"**। देश के युवा वैज्ञानिकों को डा० रमन की खोजों से तथा उनके सरल जीवन और आदर्शों से अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलता रहा है। उनके आदर्शों का पालन करना और निस्वार्थ विज्ञान की सेवा करना ही उस महान व्यक्ति के लिये उपयुक्त श्रद्धाञ्जलि होगी!

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।3।5।

भाग 107 | पौष 2027 विक्र०, 1892 शक
दिसम्बर 1970 | संख्या 12

यूरेनियम-विघटन

☐ विष्णु दत्त शर्मा

यूरेनियम परमाणु प्रकृति का सबसे भारी अणु है तथा परमाणु ऊर्जा का मूल स्रोत है। यूरेनियम के पूर्ण अणु के न्यष्टि में 92 प्राणु और 146 क्लीवाणु होते हैं। चूंकि सभी अणु असंयोग अवस्था में विद्युतीय उदासीन हैं, अतः न्यष्टि में बाहर की ओर 92 विद्युदणु हैं।

लीथियम के आइसोटोप

चित्र 1

परमाणु से ऊर्जा किस प्रकार प्राप्त होती है? इसको समझने से पूर्व आइसोटोप के विषय में जानना परम आवश्यक है। डाल्टन के सिद्धांत के अनुसार किसी तत्व के सभी अणुओं का परमाणु भार समान होता है। परन्तु दो वैज्ञानिकों, जे० जे० थाम्पसन तथा एफ० डब्ल्यू आस्टन ने यह सिद्ध कर दिया कि डाल्टन का यह सिद्धांत ठीक नहीं है। इन्होंने अन्वेषण द्वारा बतलाया कि बहुत से तत्व ऐसे हैं जिनमें परमाणु भार भिन्न होते हैं।

ऊपर के चित्र में लीथियम के दो भिन्न परमाणु दिखाये गये हैं। सभी लीथियम परमाणु अपने न्यष्टि में तीन धनात्मक प्रभार रखते हैं। प्रत्येक लीथियम अणु के सबसे बाहरी अक्षि में एक विद्युदणु होता है। फिर भी लीथियम अणु के दो भेद हैं। एक प्रकार के अणु में परमाणु भार 6 तथा न्यष्टि में 3 प्राणु और 3 क्लीवाणु होते हैं। दूसरे प्रकार के अणु में परमाणु भार 7 तथा न्यष्टि में 3 प्राणु और 4 क्लीवाणु होते हैं। रासायनिक दृष्टि से ये दोनों अणु एक समान हैं। अतः एक तत्व के परमाणु जिनका

प्रभार न्यष्टि में समान है परन्तु परमाणु भार में भिन्न हैं, उस तत्व के आइसोटोप कहलाते हैं। तत्व के सभी आइसोटोपों की न्यष्टियों में प्राणु की संख्या समान होती है अतः ये क्लीवाणु ही हैं जो कि संख्या में भिन्न हैं और भिन्न परमाणु भार उत्पन्न करते हैं।

यूरेनियम के दो प्रधान आइसोटोप हैं जिनको वैज्ञानिकों ने यू–235 व यू–238 रूपाँकन किया है। यू–238 की न्यष्टि में 146 क्लीवाणु हैं जबकि यू–235 की न्यष्टि में केवल 143 क्लीवाणु हैं। प्राकृतिक यूरेनियम में 99.3 प्रतिशत यू–238 का अंश है तथा यू–235 केवल 0.7 प्रतिशत अथवा यों कहिये कि यू–238 के 140 पौंड के मिश्रण के साथ एक पौंड यू–235 की प्राप्ति होती है।

यह यू–235 ही वह परमाणु है जिससे विखण्डन विधि द्वारा ऊर्जा मुक्त होती है। सन् 1939 ई० में आटोहान तथा फिज स्ट्रासमेन दो जर्मन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि जब मंद गति से चलने वाले क्लीवाणु यू–235 परमाणु के साथ प्रस्फोट होते हैं तो परमाणु अंशों में छिटक जाते हैं। इस विधि को आणविक विखण्डन कहते हैं। गणना द्वारा ज्ञात हुआ कि एक पौंड यू–235 से 1,14,00,000 किलोवाट प्रति घंटे ऊर्जा मुक्त होती है। वास्तव में यू–235 की परमाणु संख्या (92) वही है जो कि साधारण यूरेनियम की, जो कि यू–235 द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। जब इस आइसोटोप के परमाणु के न्यष्टि से एक क्लीवाणु टकराता है तो यू–236 की उत्पत्ति होती है।

यू–235 + 1 क्लीवाणु=यू–236
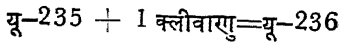
यू–236 स्थायी परमाणु न होने के कारण तुरंत छिन्न-भिन्न हो जाता है। फलस्वरुप बहुत से क्लीवाणु और दो समान भार वाले पदार्थ, जो दो अणु की न्यष्टि हो जाते हैं, की रचना होती है तथा इनकी परमाणु-संख्या का योग 92 होता है। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त क्लीवाणु दूसरे यू–235 परमाणु पर धावा बोलता है। यह संयोग अधिक क्लीवाणुओं के उद्विरण से युक्त नये विखण्ड़न की रचना करता है। इस प्रकार यू–235 के अन्दर शृंखला प्रति प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और फलस्वरूप एक सेकन्ड के अंश में ही ऊर्जा की विशाल मात्रा मुक्त होती है। इसके लिये निम्न दो ढंग अपनाये जा सकते हैं।

1—यू–235 की संख्या बढ़ाने से।

2—क्लीवाणुओं की ग्रेफाइट या भारी पानी (व्युहाणु-भार 20) में गुजारने की गति को धीमी करने से।

वह पदार्थ जो क्लीवाणुओं की गति को धीमी करने के प्रयोग में लाया जाता है, शामक कहलाता है।

प्लूटोनियम का प्रस्फोट जब क्लीवाणुओं द्वारा होता है तो इसकी शृंखला विखण्डन क्रिया आरम्भ हो जाती है और यही कारण है कि इसका महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। जैसा कि अभी बतलाया गया है कि प्लूटोनियम का उत्पादन यू–235 से उत्सारित क्लीवाणुओं द्वारा यू–238 की न्यष्टि से टकराने से होता है और इस प्रकार इसका विखण्डन हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक यूरेनियम धातु में मिश्रित एक ही अनुपात में यू–238 कच्चे पदार्थ के रूप में और यू–235 ऊर्जा श्रोत के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

प्लूटोनियम, ग्रेफाइट तथा यूरेनियम धातु के बने चट्टे में तैयार किया जाता है। शामक क्लीवाणुओं की गति को धीमा करता है ताकि यू-235 की अधिक विखन्डन प्रतिक्रिया को स्थिर रख सके तथा यू-238 का न्यष्टि साधारण गति से विचरित क्लीवाणुओं को पकड़ सके। एक क्रियाशील चट्टा प्रचुर मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न करता है। इस प्रकार का चट्टा भविष्य में व्यापारिक उष्णता और शक्ति के लिये परमाणु ऊर्जा का मुख्य स्रोत होगा। यूरेनियम के साथ-साथ थोरियम (परमाणु-संख्या 90) तथा प्रोटेक्टीनियम (परमाणु-संख्या 91) भी परमाणु ऊर्जा के स्रोत के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं।

इस विधि को करने के कई ढंग हैं। मंथन विधि-यह विधि क्रीम पृथक करने के ही समान है। यदि यूरेनियम, गैसीय अवस्था में अथवा द्रव अवस्था में, विशाल गति के साथ घुमाया जाता है तो हल्के परमाणु (अनुपाद्य 235-आइसोटोप से सम्बंधित) ऊपर आ जाते हैं जैसे क्रीम दूध को नीचे तली पर छोड़ कर ऊपर आ जाती है। इस

विधि से आइसोटोप पृथक अवश्य हो जाते हैं किन्तु इसके लिये अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है यहां तक कि कार्यान्वित करना भी दुर्लभ हो जाता है।

दूसरी विधि विद्युतचुम्बकीय पृथक्करण है। इस ढंग में यदि यूरेनियम का आयनीकरण हो जाता है तो परमाणु एक शक्तिशाली चुम्बक द्वारा आकर्षित हो जाते हैं। यदि इन आयनों की धारा एक चुम्बकीय क्षेत्र से गुजारी जाये तो हल्के आयनों का पथ भारी आयनों के पथ से भिन्न होता है। चुम्बकीय आकर्षण के कारण व्यकुंचन में जो अन्तर होता है उसका मुख्यतः उत्तरदायित्व भार में जो अन्तर हुआ, उस पर है। इस प्रकार दो भिन्न रश्मियां दो भिन्न-भिन्न पात्रों में एकत्र की जा सकती हैं।

तीसरी विधि गैसीय प्रसारण की है। सर्व प्रथम यूरेनियम को दूसरे तत्व के साथ मिलाकर गैसीय यौगिक बनाया जाता है। उदाहरणार्थ—यूरेनियम तथा फ्लोरीन के संयोग करने पर यूरेनियम हेक्सा-फ्लोराइड प्राप्त होता है। फ्लोरीन तथा यू–235 के संयोग से बने व्यूहाणु यू–238 व क्लोरीन के व्यूहाणु से हल्के होते हैं। गैसीय प्रकृति का मूल नियम है कि हल्के व्यूहाणु भारी व्यूहाणु की अपेक्षा अधिक तेज चलते हैं। यदि यूरेनियम हेक्सा-फलोराइड रन्ध्री दीवार अथवा किसी दूसरे छोटे छिद्र वाले अवरोधक के बीच गुजारा जाये तो हल्के व्यूहाणु भारी व्यूहाणु की अपेक्षा शीघ्र पार हो जाते हैं। अवरोधक एक प्रकार की जाली होती है, जिसमें असंख्य छोटे छिद्र वाली प्लेट होती है और प्रत्येक छिद्र लगभग $\frac{1}{10^8}$ इंच चौड़ा होता है। यदि कुछ नलियां ली जायें और उन पर बराबर फासले पर अवरोधक रखे जायें। तत्पश्चात उन नलियों में गैस गुजारी जाये तो जो व्यूहाणु पाइप के मुख पर सर्वप्रथम आयेंगे वे यूरेनियम के सबसे हल्के परमाणु होंगे। इस विधि में बहुत ही परिश्रम करना पड़ता है, यहां तक कि 99 प्रतिशत शुद्ध यूरेनियम–235 को प्राप्त करने के लिये भी गैस को लगभग 4,000 अवरोधकों से गुजारना पड़ता है। अवरोधक पहियों का स्वयं का कुल क्षेत्रफल कई एकड़ हो जाता है। नलियां भी कई हजार मील लम्बी होती जाती हैं।

कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डा० जे० आर० ओपिनहेमर के निर्देशन में लास अल्मास (न्यू मैक्सिको) में स्थित विशेष प्रयोगशाला में बम के रूपांकन का कार्य सौंपा गया। डा० ओपिनहेमर के साथ संयुक्त राज्य के बहुत से गुणी विज्ञानवेत्ता कार्य कर रहे थे। नील वोहर चैडविक, फर्मी तथा हंस वेथे आदि बहुत से प्रसिद्ध विदेशी वैज्ञानिक भी इस अनुसंधान शाला में एकत्रित हुये थे। ओपिनहेमर के सहयोगी वैज्ञानिकों द्वारा सरल की गई तकनीकी समस्याओं के विस्तार व जटिलता का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

सबसे बड़ी समस्या बम के अधिस्फोटन के लिये युक्ति की है। सैद्धान्तिक रूप से परमाणुबम अनुपाट्य पदार्थ का केवल महासंकट मात्र है। सदैव वायुमंडल में कुछ ऐसे पथ-भ्रष्ट क्लीवाणु रहते हैं जो जैसे ही अनुपाट्य पदार्थ महा संकट बना वैसे ही, एक या अधिक पथ-भ्रष्ट क्लीवाणु शृंखला-प्रतिक्रिया आरम्भ कर देते हैं। तत्पश्चात् असाधारण तीव्र गति से यह प्रतिक्रिया होती है और फलस्वरूप तुरन्त विस्फोट हो जाता है। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि बम निर्माण के तुरन्त बाद यदि विस्फोट न किया जाये तो बम को बनाना असम्भव है। **यदि काष्टा सीमा से बाहर अनुपाट्य पदार्थ को चिनने से ही केवल प्रस्फोट (बम) बनाया जाय** तो यह किसी भी कार्य के उपयोग में नहीं आ सकता।

प्रत्येक हथियार के लिये उचित समय पर घोड़ा दावने की युक्ति होनी चाहिये। परमाणु हथियार में युक्ति ऐसी होनी चाहिये जो अधः काष्टा भार को अचानक ही महा संकट पदार्थ में परिवर्तित कर दे। विस्फोट के उसी क्षण तक पदार्थ को अचानक महासंकट बनाने के लिये दो-तीन सम्भव तरीके हैं। एक तरीका है कि सम्पूर्ण अनुपाट्य पदार्थ को भिन्न पिण्डों में रखा जाय। दोनों पदार्थ अधः काष्टा होंगे किन्तु संयोग अवस्था में महासंकट का रूप धारण कर लेते हैं। यदि किसी बन्दूक द्वारा लघु पिण्ड को गोली के रूप में दीर्घ पिन्ड पर फायर किया

जाये तो संयुक्त भार महा संकट हो जाता है।

दूसरी विधि है, जिसको उपलक्षण के नाम से पुकारते हैं। अनुपाट्य पदार्थ की कुछ मात्रा जो कि पतले गोलाकार कवच के रूप में अघः काष्टा है, ठोस गोलार्ध के रूप में दबा कर काष्टा अथवा महासंकट बनाया जा सकता है। कवच के बाहर रखे हुये रासायनिक विस्फोटक को फायर करने से यह घटना हो सकती है। रासायनिक विस्फोटक अन्दर की ओर दबाव पदार्थ को महासंकट स्थिति की ओर ले जाता है। यदि पदार्थ का घनत्व बढ़ा दिया जाये तो अघःकाष्टा भार भी महा संकट बन सकता है।

एक अन्य तकनीकी समस्या के विषय में भी निश्चित होना चाहिये कि क्लीवाणु की न्यूनतम संख्या बाहर बच कर भागने से नष्ट हो जाती है। स्वतंत्र क्लीवाणु पदार्थ से बच कर भाग निकलने के पश्चात भी परावर्ती पदार्थ से टकराकर पुनः उसी पदार्थ में आ जाते हैं। ऐसा आवरण क्लीवाणु-परावर्तक अथवा अन्तक्षेप कहलाता है। अन्तक्षेप विस्फोट की शक्ति को दूसरे ढंग से बढ़ाता है। जैसे ही विस्फोट आरंभ होता है तो विस्फोटक पदार्थ इधर उधर उड़ते हैं तथा इधर उधर के विसर्जन के परिणामस्वरुप विस्फोटन समाप्त हो जाता है। अन्तक्षेप विसर्जन का अवरोध करता है तथा विखन्डन प्रतिक्रिया के प्रजनन व उससे मुक्त ऊर्जा के लिये कुछ समय देता है। इस प्रकार विस्फोट की हिंसात्मक कार्यवाही बढ़ जाती है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बम में विद्यमान सभी अनुपाट्य पदार्थों का विखण्डन नहीं होता। किन्तु प्रत्येक दशा में ज्योंही अविखण्डनीय पदार्थ काष्टा सीमा से नीचे गिर जाता है त्योंही शृंखला-प्रतिक्रिया रुक जाती है। किसी-किसी विस्फोट में तो पदार्थ का अचानक फैलाव होने के कारण प्रतिक्रिया रुक जाती है। हिरोशिमा में प्रयोग किये गये बम में अनुपाट्य पदार्थ की मात्रा का अनुमान लगभग 50 किलोग्राम था, जबकि नागासाकी पर डाले गये बम में भार कम था। वास्तव में बम के अन्दर पदार्थ की जिस मात्रा का विखण्डन होता है उसका भार केवल १ किलोग्राम होता है। बम में अन्तक्षेप आदि सहित कुल भार लगभग 5 टन होता है। एक किलोग्राम यूरेनियम अथवा प्लूटोनियम का पूर्ण विखण्डन इतनी ऊर्जा मुक्त करता है जितनी टी० एन० टी० (ट्राई-नाइट्रो-टालुइन) का 20,000 टन। एक टन टी० एन० टी० में इतनी विस्फोटक क्षमता होती है कि वह एक बड़ी इमारत को गिरा सकती है तथा 100 से अधिक व्यक्तियों की जान ले सकती है।

● ●

● **राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से ही विज्ञान का प्रचार एवं प्रसार सम्भव है**

● **विज्ञान की लोकप्रियता में हिन्दी ने चार चाँद लगाये हैं**

शब्दों के चिन्त्य अनुवाद

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

अनुभवी विद्वानों का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि मौलिक लेखन सरल होता है किन्तु किसी के विचारों का अनुवाद करना अपेक्षतया कठिन कार्य है। इधर कुछ वर्षों से वैज्ञानिक पुस्तकों के लिये अंग्रेजी से हिन्दी अनुवादों की धूम मची हुई है। शिक्षा मंत्रालय की ओर से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की कई किस्तें छप कर बाजारों में उपलब्ध हैं जिनके आधार पर अंग्रेजी–हिन्दी अनुवाद किये जा रहे हैं। कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति, जो हिन्दी और अंग्रेजी जानता हो तथा विज्ञान में निष्णात हो, धड़ल्ले से अनुवाद कर सकता है। यह सच है कि इसी परम्परा का आजकल निर्वाह हो रहा है। इंटर तक की पाठ्य पुस्तकों में इतनी हिन्दी रहती है कि विज्ञान सम्बन्धी कोई भी विचार धारा सहज भाव से हिन्दी के माध्यम से व्यक्त की जा सकती है। किन्तु जिन्होने हिन्दी सीखी ही नहीं, वे क्या करें?

अच्छे अनुवाद के लिये हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार होने के साथ विज्ञान-विषय का अधिकारिक ज्ञान अपेक्षित है। जिन्होंने स्नातक कक्षाओं तक या स्नातकोत्तर कक्षाओं तक विज्ञान की किसी भी शाखा का अध्ययन किया है वे अभ्यास द्वारा अपने अपने विषय में अनुवाद का कार्य करने के लिये उपयुक्त हैं किन्तु उन्हें अपने हिन्दी ज्ञान की परीक्षा करनी होगी। यदि उन्होंने हिन्दी के शब्दों का ठीक से अध्ययन एवं मनन नहीं किया तो सम्भावना यही है कि वे अनुवाद कार्य के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सकेंगे। मात्र शब्दावलियों से समानार्थी शब्दों का चयन अनुवाद को न तो सार्थक बना सकता है, न उसमें प्राण ला सकता है। यदि अनुवाद में मूल की आत्मा के दर्शन न हों, तो ऐसा अनुवाद निरर्थक है और उसे पढ़ने वाले भँवर में फँस कर रह जावेंगे, वे या तो अर्थ का अनर्थ समझेंगे या कुछ भी नहीं समझ पावेंगे। ऐसी स्थिति से बचने के लिये हिन्दी के शब्दों का अर्थ गाम्भीर्य समझना आवश्यक है। खेद है कि न तो हिन्दी के अध्यापक न ही विज्ञानवेत्ता इस ओर जागरूक हैं। शायद ही ऐसी आलोचनायें या ऐसे उल्लेख होते हों जिनमें शब्दों के त्रुटिपूर्ण प्रयोगों का चुनाव करके सही अर्थों या सही प्रयोगों को बताया गया हो। यह अत्यन्त शोच्य स्थिति है। बिना ऐसी समालोचना के वैज्ञानिक कार्यों में हिन्दी को दृढ़ आधारभूमि नहीं मिल पावेगी। जो जैसे चाहे प्रयोग करे – यदि यही प्रवृति चलती रही तो अंधेर मच जावेगा। यदि राष्ट्र भाषा हिन्दी को विज्ञान की भाषा बननी है तो इस पक्ष की ओर शतत ध्यान देना होगा और ऐसी पुस्तकें लिखनी होगी जिनमें शुद्ध तथा अशुद्ध प्रयोगों का उल्लेख हो।

मैं लगातार 14 वर्षों से 'विज्ञान और 'अनुसन्धान पत्रिका' के सम्पादन कार्यों से सम्बद्ध रहा हूँ। इधर "वेल्थ आफ इंडिया" तथा कई अन्य पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों को देखने का अवसर मिला है। मुझे स्वयं यह अनुभव हुआ है कि आज भी ऐसे अनेक अंग्रेजी शब्द हैं जिनके लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं है जिसके कारण या तो हमें गोलमोल करके वाक्य बनाना पड़ता है या वाक्य को बढ़ाना पड़ता है या शाब्दिक अनुवाद न करके भावार्थ रखना पड़ता है। यह ठीक है कि किसी

गद्यांश का भावार्थ उतना ही भावपूर्ण होगा जितना कि शब्दार्थ किन्तु क्या यह सच नहीं है कि हमें थोड़े शब्दों में अनुवाद करने का अभ्यास करना चाहिए।

विज्ञान के विद्वानों को दोष नहीं दिया जा सकता। अधिकांश अंग्रेजी–हिन्दी कोषों में दिये गये अर्थ या तो भोड़े होते हैं, या उनमें वांछित अर्थ रहते ही नहीं। इधर दो एक कोश प्रकाश में आये हैं जिनमें पारिभाषिक शब्दावली के शब्दों को स्थान दिया गया है अतः उचित कोश का चुनाव करके अनुवाद कार्य में कुछ उन्नति दिखाई जा सकती है किन्तु दुर्भाग्यवश नौसिखियों के लिये उचित मार्ग दर्शन नहीं है न वे इस दिशा में अधिक कुछ जानना ही चाहते हैं। फिर जो परिणाम निकलता है, वह भयंकर भूल के रूप में होता है।

यदि कोई विद्वान ऐसी भूलों को लेखमाला के रूप में प्रकाशित करने को तैयार हो तो 'विज्ञान' में उसे सहर्ष स्थान प्रदान किया जावेगा। मैं स्वयं इस विषय में विस्तार से लिखने के सम्बन्ध में सोचता रहा हूँ किन्तु इस समय वैसा छिद्रान्वेषण नहीं कर पाऊँगा क्योंकि मैं दूसरे कार्य में संलग्न हूँ। बानगी के लिये कुछ उदाहरण देकर लेख समाप्त करूँगा। आशा है इसे प्रत्यालोचना की दृष्टि से न पढ़कर हमारे पाठक इससे लाभ उठाने तथा और आगे कार्य करने की दृष्टि से पढ़ेंगे।

(1) Trace : इस शब्द के हिन्दी समानार्थी अनुरेख, रंच आदि हैं। समस्या यह है कि अनुरेख और रंच का व्यवहार कहाँ और कैसे किया जाय। यदि विद्वान अनुवादक अंग्रेजी प्रयोग से परिचित है किन्तु हिन्दी शब्दों के अर्थ नहीं जानता तो जो अनुवाद होगा वह ऐसा होगा — मान लो कि किसी यौगिक के अवयवों की मात्रा का उल्लेख है यदि उसमें कोई तत्व Trace में है तो, फिर हिन्दी में उसका "अनुरेख" होगा। आप ही बतायें यह अनुरेख यहाँ अनर्थ होगा और हिन्दी की श्रीवृद्धि में कालिख पुतेगी?

(2) Cwt : यह हण्ड्रेडवेट का अंग्रेजी संक्षिप्त रूप है। यह भार की इकाई है। यदि अनुवादक इसे 'कुंतल' लिख दे तो? शायद अनुवादक को पता होगा कि कुंतल का अंग्रेजी क्विन्टल है और वह Q से लिखा जाता है। स्पष्ट है कि उसे न तो अंग्रेजी, न ही हिन्दी शब्दों का ठीक से पता है।

(3) Ore : इसका समानार्थ है अयस्क। किसी महोदय ने किसी कोश में इसका अर्थ 'पिंड' देखा तो उसे भा गया क्योंकि उसके अर्थ वह समझता है। उसे यह नहीं समझ में आता कि 'अयस्क' क्या है। अतः वह इसे नहीं प्रयोग में लाता।

(4) Meal: भोजन या खली। अनुवाद है खानो का भोजन 10 पौंड की दर से डाला जावे। स्पष्ट है कि 'भोजन' का प्रयोग गलत हुआ है। यहाँ खली से अभिप्रेत है।

(5) Cultural Practices: अनुवाद हुआ है कर्षण सम्बन्धी अभ्यास। निस्सन्देह कृषि शब्दावली के सम्पर्क में न रहने के कारण ऐसा प्रयोग हुआ है। इसका अनुवाद होना चाहिए था कृषि सम्बन्धी पद्धतियाँ या प्रथायें।

(6) Yield : उपलब्धि, लब्धि, प्राप्ति — ये इसके समानार्थी हैं किन्तु अनुवादक 'उत्पाद' लिखता है तो स्पष्ट है कि उसे Product तथा Yield में अन्तर नहीं जान पड़ता।

(7) Raise : उठाना, उगाना। "फसल उठाई जाती है" — यह कैसा अनुवाद होगा?

ऐसे न जाने कितने प्रयोग हैं जिनको देख कर एक क्षण हँसी आती है किन्तु दूसरे ही क्षण चिन्तातुर हो जाना पड़ता है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी का कल्याण नहीं हो सकता। अभी तो हमारी जड़ें ही कमजोर हैं, कहाँ से पत्र पुष्प लगें भाषा वल्लरी में। इसके लिये माली बनकर कठिन साधना करनी होगी।

● ●

निद्रा–जीवन का एक तिहाई भाग

□ श्याम मनोहर व्यास

जीवन में निद्रा का भी विशेष महत्व है। थकान मिटाने और शक्ति संचय के लिये पर्याप्त नींद लेना आवश्यक है। एक ऐतिहासिक प्रसंग है :—

सिकन्दर का सेनापति सेल्यूकस युद्ध की थकान के बाद रात्रि को प्रगाढ़ निद्रा में मग्न था। सिकन्दर ने उसे आवश्यक कार्यवश बुलाया, पर गहरी निद्रा में सोने के कारण वह उठा नहीं। प्रातः काल वह सम्राट से मिलने गया। अन्य दरबारी सोच रहे थे कि सिकन्दर उसे प्राण दण्ड देगा पर सिकन्दर ने उससे कहा :– "सेल्यूकस ! मेरा सारा साम्राज्य तुम ले लो और अपनी नींद मुझे दे दो।"

सम्राट नैपोलियन युद्ध क्षेत्र में भी भोजन के उपरान्त आधा घण्टा सोता था।

पत्रकार व लेखक पं० बनारसी दास चतुर्वेदी का नियम है भोजन के पश्चात् दो घण्टे तक सोना। इस कार्य में वे कभी भी अनियमित न रहे।

नींद मनुष्य की चिर संगिनी है, जीवन दायिनी है। प्रत्येक प्राणी के लिये निद्रा आवश्यक है। नींद नहीं आने की शिकायत करने वाले व्यक्ति के चेहरे के भावों को ध्यान से देखने पर आपको पता चलेगा कि उसके मुख-मण्डल पर कितनी सुस्ती एवं दीनता छा जाती है।

सचमुच नींद सबको प्यारी लगती है। नींद स्फूर्ति का संचार करती है। हम अपने जीवन का एक तिहाई भाग निद्रा देवी को समर्पित करते हैं। विज्ञानवेत्ता संसार के अन्य रहस्यों की तरह नींद के रहस्य का भी धीरे धीरे पता लगा रहें हैं।

नींद है क्या ?

हमारे शरीर की सामान्यतः दो अवस्थायें होती हैं:— (1) निद्रावस्था और (2) जागृतावस्था

स्वप्नावस्था निद्रावस्था का ही एक पूरक भाग है। इन दोनों अवस्थाओं का नियन्त्रण हमारे मस्तिष्क के दो छोटे छोटे अवयव करते हैं। शारीरिक विज्ञान में इन्हे 'रेक्टिक्युलर फार्मेशन' और 'हाइपोलैम्मस' कहते हैं। हमारा मस्तिष्क स्नायुओं के द्वारा शरीर के सभी अंगों से जुड़ा है। ये अंग स्नायुओं के सहारे मस्तिष्क को सदा कोई न कोई सूचना भेजते रहते हैं। मस्तिष्क एक यन्त्रालय है जिसमें लगभग डेढ़ अरब कोष हैं और वे विद्युन्मय हैं। जागृतावस्था में 'रेक्टिक्युलर फार्मेशन' और 'हाइपो-लैम्मस' इन सूचनाओं को नया रूप प्रदान करते हैं और उनके बारे में निर्णय लेने के लिये मस्तिष्क को सक्रिय करते हैं।

कई घण्टे कार्य करने के पश्चात् ये अवयव थकान अनुभव करते हैं और कार्य करना बन्द कर देते हैं। इनके अभाव में मस्तिष्क सूचनायें ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाता। और वह निष्क्रिय हो जाता; यही नींद की अवस्था है।

हल्की नींद में ऐसी व्यवस्था हो सकती है कि हमारा नियन्त्रण-कार्यालय कुछ विशेष प्रकार के संवेदनों और सूचनाओं को ही पुनः प्रसारित करे और बाकी को नहीं। यदि आप दिल्ली या बम्बई के किसी उपनगर में रहते हैं और प्रतिदिन लोकल ट्रेन में बैठकर दफ्तर जाते हैं; तो आपने देखा होगा कि बहुत से लोग ट्रेन में चढ़ते ही

सो जाते हैं और अपना स्टेशन आते ही जाग कर उतर जाते हैं। अक्सर ऐसे व्यक्ति कहा करते हैं कि निद्रा पर उनका पूरा नियन्त्रण हैं। कई व्यक्ति जितने बजे उठने का संकल्प करते हैं ठीक उतने बजे उनकी नींद खुल जाती है !

जब शरीर यह अनुभव करने लगता है कि, काफी आराम मिल चुका तो स्नायुओं द्वारा यह सन्देश मस्तिष्क में पहुँच जाता है और नियन्त्रण—कार्यालय के दरवाजे खुल जाते हैं। यही नींद का टूटना या जागरण है।

स्वाभाविक निद्रा और मूर्च्छा में बड़ा अन्तर है। मूर्च्छा की अवस्था में कोई संवेदन चाहे वह कितना ही तीव्र क्यों न हो मस्तिष्क तक नहीं पहुँचता। नींद में मस्तिष्क का शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बन्ध नहीं टूटता है। नींद में थकान उत्पन्न करने वाला टाक्सिन विष समाप्त हो जाता है।

निद्रा और स्वप्नावस्था

निद्रा की एक और अवस्था है वह है स्वप्नावस्था। स्वप्न में हम चेतन से एक ऐसे अचेतन जगत् में पहुँच जाते हैं जहाँ व्यक्तिगत अनुभूतियों से प्रभावित एक से एक अनोखी घटनायें घटती हैं। इन घटनाओं में कभी कभी सत्य का आभास भी होता है। मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार मनुष्य के स्वप्न उसकी अतृप्त कामनाओं की मानसिक रूप से पूर्ति करते हैं। निद्रावस्था में मन नीति पूरक भी हो उठता है और अत्यन्त निष्पक्ष भाव से उस व्यक्ति विशेष के कार्यों का विश्लेषण करता है। यदि कोई अनुचित कार्य किसी से हो जाता हैं तो मन स्वप्न जगत् में कोई एक ऐसा दृश्य उपस्थित करता है जिसमें उस व्यक्ति को कष्ट का अनुभव होता है। इस प्रकार मन शरीर को उसके अनुचित कार्य पर खण्डित कर अपनी नीति परायणता की अभिव्यक्ति कर सन्तुष्टि भी पा लिया करता है।

मनुष्य की भिन्न भिन्न वृतियाँ मिश्रित होकर स्वप्न के वैचित्र्यमय उपकरणों के रूप में सुषुप्ति की अवस्था में उसे दिखायी पड़ती हैं, इसलिये मनुष्य उन प्रतीकों का ठीक ठीक विश्लेषण भी नहीं कर पाता।

निद्रा और स्वप्न का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। निद्रा ही स्वप्नों के लिये आवश्यक वातावरण तैयार करती है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति आठ घण्टे की स्वस्थ नींद में 2 घण्टे स्वप्न देखता है। अक्सर स्वप्न रात्रि के अन्तिम पहर में देखे जाते हैं। जब निद्रा का अन्तिम चरण होता है।

नींद के शत्रु

चिन्ता और मानसिक तनाव निद्रा के प्रबल शत्रु हैं। चिन्ता केवल मानसिक क्रिया ही नहीं है वरन् उसका शारीरिक पहलू भी है। चिन्ता स्नायुओं में तनाव उत्पन्न करती है। चिन्ता से ही अनिद्रा का रोग उत्पन्न होता है। बहुत से व्यक्ति नींद की गोलियाँ खा कर चिन्ता व तनाव से मुक्त होकर सुख की नींद सोना चाहते हैं पर यह ठीक नहीं है। गोलियों के नशे से मनुष्य सो जायगा पर गोलियों का हल्का विष शरीर को मानसिक व शारीरिक रूप से अवश्य निर्बल करेगा। इसके लिये यह उपाय ठीक है कि आप स्नायुओं को शिथिल छोड़ दें, मस्तिष्क को विचार मुक्त करदें, चिन्ता व तनाव स्वतः कम हो जायेंगे और आप सुख की नींद सो सकेंगे।

नीद में दिल की धड़कन प्रायः प्रति मिनट 54 होती है। गहरी नींद में आदमी साँस गहरी लेता है। उस समय उसका रक्त चाप भी कम हो जाता है। नींद से उठने पर दिल की धड़कन और रक्त वाहिनियों पर रक्त का दबाव बढ़ने लगता है। साथ ही, शरीर की उष्णता भी बढ़ने लगती है !

जब उठने का समय आता है तो पहले शरीर के अवयव धीरे धीरे सक्रिय होने लगते हैं। यह प्रक्रिया सोने की प्रक्रिया से उल्टे क्रम में होती है। मस्तिष्क सबसे बाद में चैतन्य होता है। इन्द्रियां भी धीरे धीरे जागती

[शेष पृष्ठ 22 पर]

अंगुली-छाप द्वारा अपराध का ज्ञान

□ विष्णु दत्त शर्मा

तर्क-वितर्क करने के पश्चात, गुप्तचर विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी से ज्ञात हुआ कि घरों में चोरी अथवा डकैती दो प्रकार से की जाती है। (1) दीवार तोड़कर (नक़ब लगाना, सेंध लगाना) (2) दर्वाजा अथवा खिड़की तोड़कर। भारतीय अपराधी इतना तकनीकी दृष्टि से चतुर नहीं होता जितना कि पश्चिमी देशों का। जिस समय एक चोर घर में खिड़की मार्ग से अंदर जाता है, चाहे शीशा तोड़कर अथवा ताला तोड़कर, तो उसे यह ध्यान नहीं रहता कि कहाँ-कहाँ पर हाथ लगा है? क्योंकि उसका ध्यान केवल घर में रखे सामान पर होगा अथवा कोई देख न ले। अतः यह स्वाभाविक है कि वह जिन-जिन वस्तुओं को घर में स्पर्श करेगा उन सभी को ले जाने में असमर्थ होगा। उदाहरणार्थ दरवाजे की लकड़ी, दीवार का प्लास्टर, खिड़की का काँच, मेज तथा अन्य ऐसी वस्तुएँ होगी जिनको वह स्पर्श करेगा। ऐसे सभी पदार्थों पर अंगुलियों का निशान पड़ जाना स्वाभाविक है। यह दूसरी बात है कि वहाँ अंगुली का निशान है अथवा हथेली का।

परम पिता परमात्मा एक ऐसा कलाकार है जिसने सृष्टि की रचना की और असंख्य मनुष्यों के शरीर भिन्न-भिन्न बनाये हैं। प्रत्येक मनुष्य का शरीर दूसरे मनुष्य के शरीर अंग से बिल्कुल ही बनावट में भिन्न होता है, यहाँ तक कि उसके शरीर की त्वचा भी भिन्न-भिन्न बनावट की है। हाथ का अंगूठा, हथेली अथवा पैर के तलुवे की बनावट का परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न डिजाइन हैं। अतः इन डिजाइनों द्वारा व्यक्ति विशेष को पहिचाना जा सकता है। खाल (त्वचा) की ऊपरी सतह को ऐपीडर्मिस कहते हैं जिसमें कोषों की पाँच सतहें होती हैं। इन सतहों में एक सतह तन्तु की भी होती है। ध्यानपूर्वक त्वचा का अध्ययन करने पर ऐसा देखा गया है कि उसमें छिद्र होते हैं जिनसे पसीना बाहर आता रहता है। यह पसीना शरीर में व्याप्त त्वगवसा, लवण तथा पानी के कारण होता है। त्वगवसा से चर्बीयुक्त पदार्थ उत्पन्न होता है। यहाँ पर यह बतलाना पर्याप्त होगा कि इस प्रकार की चर्बी आदि उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियाँ बच्चे के जन्म से पूर्व ही बन जाती हैं और मृत्यु समय तक ही रहती हैं। कटने, जलने अथवा किसी बीमारी के कारण हाथ का डिज़ाइन अस्थायी रूप से अवश्य बदल जाता है किन्तु हाथ का उभार तथा रेखायें एक समान एवं स्थायी रहती हैं। जब मनुष्य किसी वस्तु को छूता है तो उस चिकनाई के कारण उस वस्तु पर हाथ का चिन्ह अधिक स्पष्ट दिखाई देगा। ऐसा भी देखा गया है कि चोर अपने शरीर में तेल मर्दन करता है कि पकड़ने वालों के हाथ से वह सरलतापूर्वक छुड़ा कर भाग जाये। किन्तु यह तेल हाथों में स्याही पैदा कर देता है तथा हाथ के निशान और भी भली प्रकार दिखाई दे जाते हैं।

इन अंगुलियों के निशानों को नाना प्रकार से व्यक्त करके देखा जा सकता है और स्थायी लेखा रखने के लिये फोटो लेना अत्यंत अनिवार्य है। ये निशान ब्रुश, पाउडर, पारदर्शक सेल्यूलोज टेप, रबर उठाने वाली पट्टी, फोटोग्राफी कागज, कैमरे, स्याही, गद्दी, रोलर तथा अंगुली-छाप आवर्धक से अच्छी प्रकार देखे जा सकते हैं।

पाउडर द्वारा अंगुली के निशानों को व्यक्त करने के लिये पाउडर के रंग का चयन करना बहुत आवश्यक है। पाउडर

का चयन बहुत से कारणों पर आधारित है। पाउडर के प्रयोग का तात्पर्य फोटोग्राफ में अधिक वैषम्य बढ़ाना है। प्रयत्न यह किया जाना चाहिये कि भूरे रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे काले रंग का फोटो तैयार हो। किन्हीं-किन्हीं विशेषज्ञों को श्वेत पृष्ठभूमि पर काले रंग के निशान का अध्ययन करना सरल होता है। ऐसी अवस्था में सफेद रंग के पाउडर से धूलिकरण करने के उपरांत फोटो लिया जावे तत्पश्चात उसकी स्लाइड तैयार की जानी चाहिये। साधारणतया श्वेत पृष्ठभूमि पर काला पाउडर तथा काली पृष्ठभूमि पर सफेद पाउडर का ही प्रयोग किया जाता है। किन्तु यदि बहुरंगी वस्तु पर अंगुली का निशान है तो उसमें रंग चयन में असुविधा होती है। उदाहरणार्थ यदि अंगुली का निशान सफेद तथा नीले रंग की पृष्ठभूमि पर पड़ता है तो वैषम्य बढ़ाने के लिये लाल रंग के पाउडर का प्रयोग करना उचित एवं न्याय संगत होगा।

पाउडर के चयन में दूसरे आधार को भी ध्यान में रखना चाहिये कि पाउडर अंगुली-अंकित स्थान पर चिपक जाता है। अतः पाउडर ऐसा होना चाहिये जिससे अधिक मात्रा या कम मात्रा में नहीं चिपके अन्यथा फोटो उचित रूप में नहीं आवेगा। इस विषय में एल० सी० निकॉल्स का कार्य महत्वपूर्ण था। निकॉल्स अपने कार्य में निम्न निष्कर्ष पर पहुँचा :—

1. अंगुली-छाप पाउडर का प्रयोग अधिक मात्रा पर निर्भर नहीं करता।
2. रवेदार पाउडर से महीन (बरीक) पिसा पाउडर उत्तम है।
3. अंगुली-छाप पाउडर में चूर्ण समान गुण होना आवश्यक है।

4. साधारणतया यह पाया गया है कि काले रंग के पाउडर से भूरे रंग का पाउडर अधिक चिपकता है। काँच, चाकू तथा चांदी जैसे पदार्थ पर भूरे रंग का पाउडर ही प्रयोग करना उचित होगा। प्रत्येक रंग के पाउडर की अपनी विशेषता होती है जो स्थान-स्थान पर, वस्तु-वस्तु पर निर्भर करती है। अंगुली-छाप लेने का तात्पर्य यह है कि हाथ का उभार व रेखाओं की किनारी जीवन-पर्यन्त एक व्यक्ति की अद्वितीय तथा स्थायी रहती है। जिनका फोटो लेना अनिवार्य है वे अंगुली-छाप मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं :—

1. गुप्त निशान :—आँखो से दिखाई न देने वाले।
2. सांचे में ढले निशान :—रक्त से रंजित अंगुलियों द्वारा छोड़े गये निशान।
3. उठे हुए निशान :—हाथ की अंगुलियों द्वारा उठाई गई अथवा चिपकी हुई धूल से बने नमूने।
4. स्याहीयुक्त निशान :—लेखा हेतु स्याही द्वारा लिया गया कार्ड पर निशान।

फोटोग्राफी द्वारा घटनास्थल पर मिले अंगुली-छाप का संतोषजनक अध्ययन बहुत कुछ पाउडर के चयन पर निर्भर करता है कि निशान को भली-भांति किस प्रकार व्यक्त किया जाए। जबकि अन्य कार्यों के लिये उचित फिल्म तथा प्रकाश की आवश्यकता है। नीचे कुछ पाउडर सूत्र लिखे गये हैं जिनको भिन्न-भिन्न दशाओं में प्रयोग करके गुणों का अध्ययन करना चाहिये कि इन पर तापक्रम, आर्द्रता तथा वायुमंडल का क्या प्रभाव पड़ता है :—

अंगुली-छाप पाउडर-सूत्र

1. लैम्प ब्लैक	70 भाग
ग्रेफाइट	20 भाग
अकेशिया चूर्ण	10 भाग
2. चारकोल	74 भाग
अल्यूमीनियम (बारीक)	24 भाग
ड्रेगन् रक्त	2 भाग
3. लेड ऑक्साइड (ब्राउन)	60 भाग
चारकोल (हड्डी)	30 भाग
फुलर मिट्टी	1 भाग
अल्यूमीनियम	1 भाग
4. अल्यूमीनियम	75 भाग
चारकोल	20 भाग
ड्रेगन रक्त	5 भाग

5. लिकोपोडियम 90 भाग
साउडन रेड III 10 भाग

6. लेड ऑक्साइड (नारंगी) 90 भाग
अकेशिया 8 भाग
अल्युमीनियम 2 भाग

7. मर्करी और चॉक 85 भाग
अल्यूमीनियम 15 भाग

8. फैरिक ऑक्साइड 85 भाग
पोटेशियम एसिड टारटरेट 10 भाग
अल्यूमीनियम स्टीयरेट 3 भाग
टैल्क 2 भाग

9. सफेद—जिंक ऑक्साइड

10. भूरा—जिंक ऑक्साइड 98% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर 2% भार

11. लाल—आयरन ऑक्साइड 99·75% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर 0·25 भार

12. सुनहरी—लैड क्रोमेट (लैमन पीला) 65% भार
गहरा गोल्ड लाइनिंग पाउडर 35% भार

13. काला—मैंग्नीज डाई ऑक्साइड 85% भार
ग्रेफाइट (चूर्ण) 14.75% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर 0·25% भार

14. प्रतिदीप्त—ऐन्थासीन, बारीक पिसा चूर्ण। भिन्न-भिन्न रंगों के लिए तकनीकी एवं रासायनिक रूप से शुद्ध दोनों का प्रयोग।

उपरोक्त सभी पाउडरों को स्वच्छ तथा शुष्क बोतल में भरकर रखना चाहिये।

अंगुली-छाप प्रायः सभी वस्तुओं पर रह जाती है। यह दूसरी बात है कि वे किन्हीं पदार्थों पर कम और किन्हीं पर अधिक दिखाई देती है। घटनास्थल पर उपस्थित सभी वस्तुओं, जैसे काँच, चीनी तथा धातु के बर्तन, दीवार, फ़र्श, लकड़ी का सामान तथा अन्य ऐसा सामान जो कि घर, दफ्तर तथा दुकान में उपयोगी हों, का परीक्षण करना चाहिये। गुप्त चित्र की तलाश करने के लिये फ्लैश प्रकाश का प्रयोग करना चाहिये। जिस वस्तु

स्याही पैड पर अंगुली-छाप लेने का सही ढंग
चित्र 1(अ)
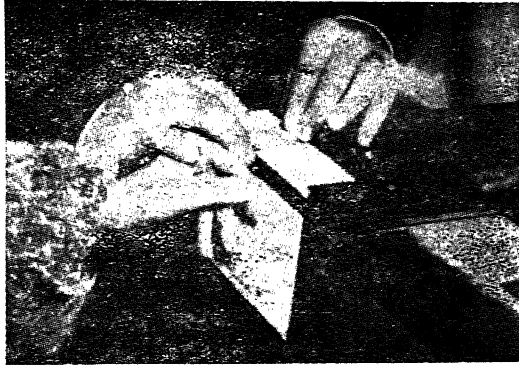
अंगुली-छाप—कागज पर करने का ढंग
चित्र 1(ब)

का निरीक्षण करना हो उस पर प्रकाश की किरणें तिरछी डालनी चाहिये ताकि अंगुली-छाप दृष्टि गोचर हो जावे और पाउडर से धूलिकरण किया जा सके। तत्पश्चात इसका फोटोग्राफ लिया जा सकता है। गुप्त चित्र को व्यक्त करने के लिये रासायनिक पदार्थ भी प्रयोग किये जाते हैं जो कि पदार्थ पर डालने से क्रिया करते हैं और परिणामस्वरूप अंगुली-छाप दिखाई दे जाता है। जैसा कि

पहले बताया जा चुका है कि अंगुली-छाप किसी वस्तु पर हाथ रखने से आ जाता है और इसका कारण हाथ में उत्पन्न पसीना अथवा लगाया गया तेल है। पसीने में 98% पानी और शेष पोटेशियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड, सल्फेट, फॉसफेट, कार्बोनेट, लैक्टिक एसिड, वसा-अम्ल, ग्लूकोज तथा यूरिया होते हैं जो रासायनिक पदार्थ डालने से क्रिया करते हैं। इन रासायनिक पदार्थों में आयोडीन, सिल्वर नाइट्रेट, ऑसमियम टेट्रा ऑक्साइड प्रधान हैं। जहाँ पर सतह बहुरंगी हो वहाँ पर साधारण पाउडर से अंगुली-छाप का फोटो तैयार नहीं हो सकता। अतः ऐसी परिस्थिति में ऐन्थ्रासीन पाउडर से उस छाप को धूलिकरण किया जाता है और अंधेरे में पराबैंगनी प्रकाश से पाउडर के प्रतिदीप्त गुणों के कारण फोटो लिया जा सकता है।
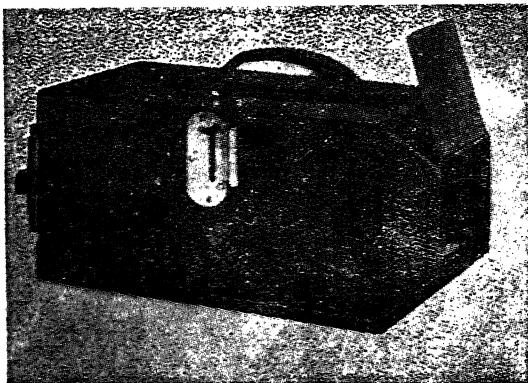
अंगुली-छाप कैमरा
चित्र 2

रंगीन सतह पर अंगुली-छाप का फोटो लेने के लिए फिल्टर का प्रयोग किया जा सकता है। जिसपर अंगुली के निशान दोनों ओर दिखाई दें, ऐसे शीशे पर फोटो लेना कठिन है। किन्तु सोडरमन तथा ओ-कोनैल की विधि के अनुसार फोटो लेना सरल हो गया है। उन्होंने बतलाया कि ऐसे समय में काँच को एक ओर से काला रंग दो और श्वेत पाउडर डालकर फोटो लो। अन्यथा एक तरफ से सफेद रंगकर काला पाउडर डालने से फ़ोटो लिया जा सकता है। चेहरा देखने वाले शीशे पर अंगुली-छाप का फोटो लेना कठिन होता है। कारण कि निशान का प्रतिबिम्ब भी दिखाई देता है। अतः ऐसी स्थिति में शीशे के पीछे लगे सिल्वर परत को खुरच कर उतारने के पश्चात् सोडरमन तथा ओ-कोनैल विधि द्वारा फोटो लेना सरल हो जाता है।

ऐसे स्थान जहाँ पर चिकनाई अधिक हो, (जैसे रसोई की खिड़कियाँ तथा दीवारें आदि) मर्करी एवं चाक पाउडर छिड़ककर अंगुली छाप का चित्र लिया जा सकता है किन्तु चिकनाई की अधिकता में आयोडीन का धुआं अधिक प्रभावशाली पाया गया है। मकान के दरवाजे, लकड़ी की अलमारियाँ तथा अन्य लकड़ी के सामान पर सिल्वर नाइट्रेट का घोल पिचकारी से छिड़ककर घटनास्थल पर ही फोटो लिये जा सकते हैं। किन्तु यदि कोई वस्तु भार में हल्की है और सुगमता से उठाई जा सकती है, (जैसे चाकू के हत्थे, लाठी का टुकड़ा आदि) तो प्रयोगशाला में ही लाकर परीक्षण करना चाहिये। सिल्वर नाइट्रेट से कपड़ों पर लगे अंगुलियों के निशानों को भी व्यक्त किया जा सकता है। तौलिया जैसा खुरदरा कपड़ा प्राप्त होने पर अंगुलियों के निशान स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देंगे। इस प्रकार घटनास्थल से प्राप्त कपड़ा पहले सिल्वर नाइट्रेट के घोल में डुबो दिया जाता है और बाद में सूर्य के प्रकाश में कुछ समय रखने पर अंगुली-छाप का फोटो ले लिया जाता है। यदि कपड़े पर ऐसा कोई चिन्ह नहीं है तो कपड़े को पानी में भली-भाँति धोने के बाद अमोनियम हाइड्रोसल्फाइड के हल्के घोल में डाल देते हैं। इस विधि को दो बार करने के पश्चात् सूर्य प्रकाश में सुखा देते हैं। चमड़े तथा नाखून आदि पर कॉपर पाउडर द्वारा अंगुली-छाप व्यक्त कर लेते हैं। फलों आदि पर लेड कार्बोनेट का पाउडर डालने से अंगुली-छाप का ज्ञान हो जाता है। मोम, पैराफीन, मक्खन, चर्बी तथा साबुन आदि पर अंगुली-छाप का फोटो तिरछी प्रकाश की किरणें-डालने से व्यक्त किया जा सकता है। घटनास्थल पर काँच के गिलास तथा बोतल आदि मिलने पर प्रयोगशाला में

लाकर उनमें रंगीन पानी डाल देना चाहिये ताकि अंगुली-छाप भली-भाँति दिखाई दे। तत्पश्चात् अल्यूमीनियम अथवा श्वेत पाउडर छिड़ककर चिन्ह व्यक्त किया जा सकता है जिसका फोटो लेना सरल है।
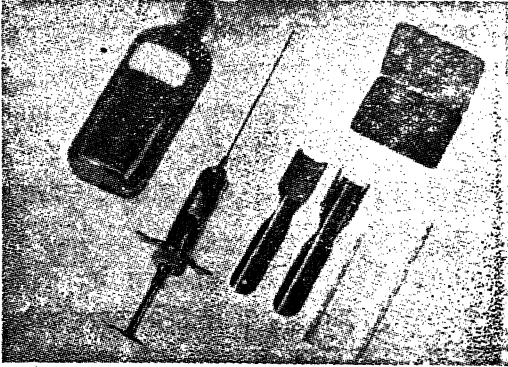
शव के अंगुली-छाप लेने में उपयोगी-यंत्र
चित्र 3

कभी-कभी यह आवश्यक होता है कि पहिचान मात्र के लिये मृत शरीर के अंगुली-छाप लिये जाँये। यदि शव (लाश) ऐसा हो जिसके हाथ ठीक अवस्था में पाये जावें और अंगुली-छाप लेना कठिन नहीं है। किन्तु सदैव ऐसी दशा या स्थिति नहीं होती। सर्वप्रथम स्याही के प्रयोग से अंगुली-छाप लेने का प्रयास किया जावे। यदि इस प्रयोग में असफलता मिलती है तो रेडियोग्राफी विधि का सहारा लेना उत्तम होगा। इस विधि के लिये पिघले हुए सफेद पेट्रोलियम जैली में लाल लैड ऑक्साइड मिलाया जाता है। जब यह मिश्रण ठोस अवस्था में आ जाय तो इसको त्वचा पर तेजी से रगड़ें। फालतू मिश्रण को ध्यानपूर्वक हटाकर अंगुली को एक खोल (केसेट) में रखकर रेडियोग्राफ तैयार कर लेना चाहिये।

मृत शरीर की अंगुलियों को एल्कोहल, गर्मपानी, ऐंटिसेप्टिक साबुन के घोल अथवा डटॉल आदि द्रव से साफ़ कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् हवा में पूर्णतया सुखा लेना चाहिये। अंगुली के जोड़ों को घुमाते हुए
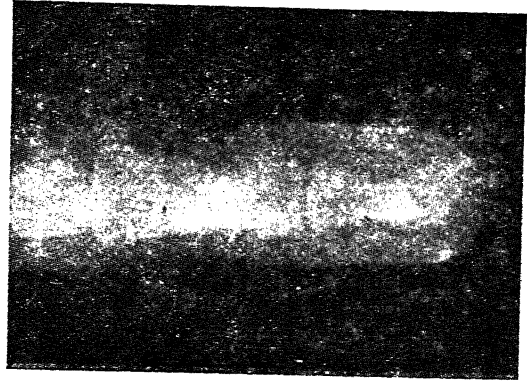
अंगुली का रेडियोग्राफ
चित्र 4

मुलायम कर लें और एक स्याही लगी वक्र चम्मच में दबाने के पश्चात एक दूसरी ऐसी ही वक्र चम्मच में दबायें जिसमें कि कागज लगा हो। यदि अंगुलियाँ इतनी सख्त हो गई हों अथवा सिकुड़ गई हों तो कलाई से हाथ काट लेना उचित होगा। इस प्रकार हाथ काटने से अंगुलियाँ और अधिक सिकुड़ जायेंगी। ऐसी अवस्था में अंगुली के ऊपरी भाग अथवा अंगुली के प्रथम जोड़ के नीचे पिघले पैराफीन, हवा, गर्म पानी, वैसलीन तथा ग्लीसरीन आदि का इंजैक्शन देना चाहिये ताकि अंगुली की त्वचा ऊपर उभर जावे। जब अंगुली पर्याप्त उभर जावे तो किसी भी उपरोक्त विधि से अंगुली-छाप लेना चाहिये।

यदि मृत शरीर ऐसी दशा में हो कि अगुली-छाप लेना कठिन है तो त्वचा को अंगुली से हटाकर फॉर्मल्डीहाइड में डुबो कर स्याही पैड पर दबाकर कागज पर छाप लेना चाहिये। त्वचा हटाने के लिये तो कभी कभी शरीर के उस भाग को उबालना भी अनिवार्य हो जाता है। अंत में जब सब साधनों द्वारा विफलता मिलती है तो अंगुली की सतह में लैड कार्बोनेट, बेरियम सल्फेट तथा बिस्मथ बाई कार्बोनेट आदि का मुलम्मा चढ़ाकर रेडियोग्राफ
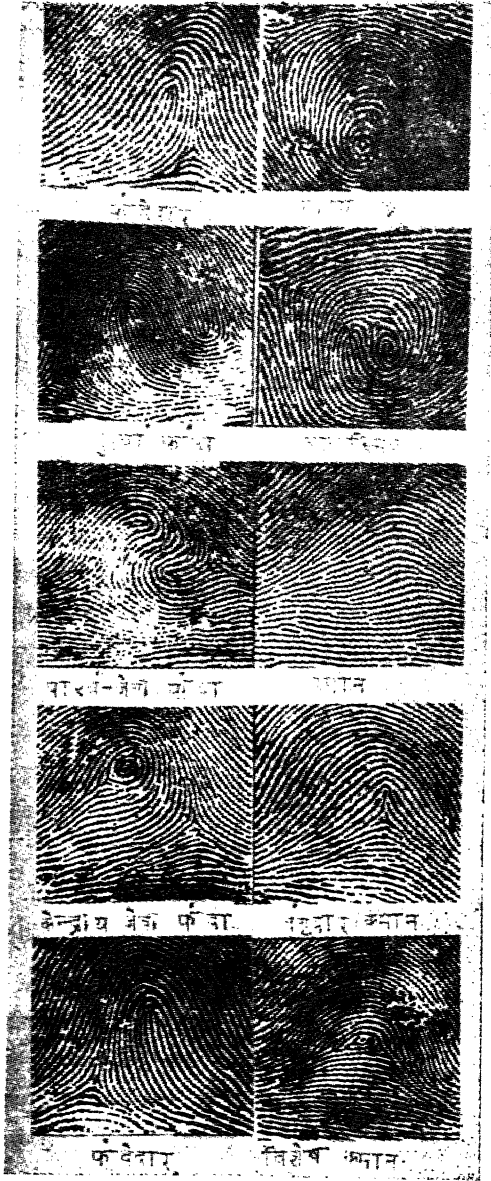
अंगुली-छाप के कुछ मूल डिज़ाइन
चित्र 5

द्वारा फोटो लेना ही श्रेयस्कर होगा। अंगुली-छाप की भांति पैरों के निशानों का भी अध्ययन किया जाता है। अंगुली-छाप का फोटो लेने में फिल्टर का भी बहुत महत्व है।

आजकल अंगुली-छाप लेने की एक अद्भुत विधि ज्ञात की गई है। यांत्रिक बनावट, शक्ल तथा साइज में बहुत कुछ महिलाओं के उपयोग में आने वाली "लिपस्टिक" से मिलती-जुलती अंगुली-छाप छड़ी का प्रयोग किया जाने लगा है। इस छड़ी द्वारा अंगुली पर निशान डालकर कागज पर विधिवत् छाप ले ली जाती है।

ऐसे बहुत से व्यक्ति होते हैं जो अपना भेष बदलकर अपराध करते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में अवसर पड़ने पर लघुकोणीय लैंस लगाकर चलचित्र लेना चाहिये जिससे उसके चलने, हाथ हिलने, सिर हिलने आदि से पहचाना जा सके।

• • •

गणितीय प्रेरण

□ ओम प्रकाश दूबे

यदि कोई पूछता है कि सिद्ध करो (क − ख), $\left(क^{य} - ख^{य}\right)$ का एक गुणनखण्ड है। इसके उत्तर में प्रायः लोग कहते हैं, यदि य=1 के लिये उपरोक्त कथन सत्य है और य=2 के लिये भी उपरोक्त कथन सत्य है, तथा य=3 के लिये (क − ख), $(क^3 - ख^3)$ का एक गुणनखण्ड है, इसी प्रकार किसी भी पूर्णांक संख्या के लिये उपरोक्त कथन सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार का उत्तर सही नहीं है। इसका कारण निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा। उदाहरण 1 :— यदि य का मान 1 से 1,000 तक लिया जाय तो 1+2+3+4+..........+य $=\frac{य\,(य+1)}{2}+(य-1)(य-2)\ldots(य-1000$ सही है।

किन्तु यदि य=1,001 ले लिया जाय तो दिया हुआ परिणाम सही नहीं होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार के परिणाम केवल पूर्व निर्धारित य के मान के लिये सही है न कि य के सभी मानों के लिये। उदाहरण 2 :— यदि $य^2 - य + 41$ दिया हुआ है तो सिद्ध करो कि $य^2 - य + 41$, य के सभी मानो के लिये एक अभाज्य* संख्या है।

इस कथन की सत्यता की जांच करने के लिए हम य का भिन्न-भिन्न मान लेते हैं। यदि य=1 लिया जाय तो $य^2 - य + 41 = 1^2 - 1 + 41$ एक अभाज्य संख्या है।

य=2 के लिये $य^2 - य + 41 = 2^2 - 2 + 41 = 43$ भी एक अभाज्य संख्या है।

इसी प्रकार पर देखा जा सकता है कि य=1, 2, 3, ...40 के लिये $य^2 - य + 41$ एक अभाज्य संख्या है। किन्तु यदि यह कहा जाय कि उपरोक्त कथन य के सभी मानों के लिये सत्य है तो गलत होगा, क्योंकि य=41 के लिये $य^2 - य + 41 = 41^2$ अभाज्य संख्या नहीं है।

बहुत से परिणामों की जांच करने के लिये यह विधि कठिन भी है।

उदाहरणार्थ "समस्त धनात्मक पूर्णांक य के लिये $\frac{य^5}{5} + \frac{य^3}{3} + \frac{7य}{15}$ एक पूर्णांक है" यह कथन सत्य है। किन्तु य का बड़ा मान लेने पर, जैसे य=3509895, उपरोक्त कथन की सत्यता सरलता से नहीं सिद्ध की जा सकती है।

इस प्रकार के परिणामों को सिद्ध करने के लिये सबसे अधिक सदुपयोगी एवं सरल विधि का नाम गणितीय प्रेरण है। अब सबसे पहले गणितीय प्रेरण का प्रथम सिद्धान्त दे रहा हूँ।

कल्पना किया प्रत्येक प्राकृतिक संख्या य के लिये $च_{य}$ एक परिणाम है, तो

(1) $च_1$ सत्य है।

(2) यदि प्राकृतिक संख्या र के लिये $च_{र}$ सत्य है तो $च_{र+1}$ भी सत्य है। अन्ततोगत्वा कहा जा सकता है कि परिणाम $च_{य}$ सभी प्राकृतिक य के लिये सत्य होगा।

अब उपरोक्त प्रमेय का स्पष्टीकरण करूँगा।

मान लिया निम्नलिखित परिणाम सिद्ध करना है।

*अभाज्य—वह संख्या है जो केवल अपने तथा एक से विभाजित होती है।

सिद्ध करो कि प्रत्येक य के लिये $1+2+3+\ldots\ldots+य$

$$=\frac{य(य+1)}{2}$$

माना, प्रत्येक य के लिये $च_{य}$, $1+2+3+\ldots+य$ $=\frac{य(य+1)}{2}$ को प्रदर्शित करता है। अतः $च_1$ के लिये

$$1=\frac{1(1+1)}{2}=1$$

और $च_2$ के लिये

$$1+2=\frac{2(2+1)}{2}=3,$$ —इत्यादि इत्यादि।

प्रमेयानुसार, यदि $च_1$ सत्य है, यानी $1=\frac{1(1+1)}{2}$

तथा $1+2+3+\text{———}+र=\frac{र(र+1)}{2}$

तो माना जा सकता है कि

$$1+2+3+\text{————}(र+1)=(र+1)\frac{(र+2)}{2}$$

अतएव प्रत्येक य के लिये हम कह सकते हैं कि

$$1+2+3+\text{————}+य=य\frac{(य+1)}{2}$$

गणित जानने वालों के लिये गणितीय प्रेरण एक बहुत शक्तिशाली हथियार है, जिसकी सहायता से प्राकृतिक संख्या से सम्बन्धित अनेक परिणामों को तथा अनेकों दूसरे प्रकार के परिणामों को सिद्ध किया जा सकता है।

उदहारणार्थ, यदि क एक वास्तविक संख्या है, तो हम $क^1=क$

तथा $क^{र+1}=(क^{र})क$, जहाँ र एक धनात्मक पूर्णांक है, को लिख सकते हैं।

इसके अनुसार $क^{य}$, प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक य के लिये, सिद्ध किया जा सकता है। मान लिया कुछ धनात्मक पूर्णांक के लिये $क^{य}$ को नहीं सिद्ध किया जा सकता। तो धनात्मक पूर्णांकों का समुच्चय म, जिसके लिये $क^{य}$ की परिभाषा नहीं की गयी, अरिक्त होगा। माना ट, म में एक सबसे छोटा पूर्णांक है, तो ट=1, क्योंकि क की परिभाषा की जा चुकी है। अतः (ट—1) एक धनात्मक पूर्णांक होगा। क्योंकि (ट—1), ट से छोटा है और $क^{ट-1}$ सत्य है।

अतः प्रेरित परिकल्पना द्वारा,

$$क^{(ट-1)+1}=(क^{ट-1})क$$

$$\text{और } क^{ट}=(क^{ट-1})क$$

अतएव $क^{ट}$ की परिभाषा की जा सकती है। इससे विरोधाभास मिलता है, क्योंकि ट, म में नहीं है।

परिणामतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक य के लिये $क^{य}$ सत्य है।

इसी प्रकार से गणितीय प्रेरण के और भी अनेक उपयोग हैं।

उदाहरणार्थ-सिद्ध करना कि $\frac{य^5}{5}+\frac{य^3}{3}+\frac{7य}{15}$, प्रत्येक य के लिये, पूर्णांक है।

य=1, के लिये,

$$\frac{य^5}{5}+\frac{य^3}{3}+\frac{7य}{15}=\frac{1}{5}+\frac{1}{3}+\frac{7}{15}=1$$

अतः य=1 के लिये परिणाम सत्य है।

मानलिया य=र के लिये भी सत्य है।

तो हम आशा करते हैं कि

$\frac{र^5}{5}+\frac{र^3}{3}+\frac{7र}{15}$ एक पूर्णांक होगा।

इसके सरल करने पर,

$$\frac{(र+1)^5}{5}+\frac{(र+1)^3}{3}+\frac{7(र+1)}{15}$$

$$=\left(\frac{र^5}{5}+\frac{र^3}{3}+\frac{7र}{15}\right)$$

$$+(र^4+2र^3+3र^2+2र+1)$$

किन्तु $र^5+2र^3+3र^2+2+1$ एक पूर्णांक है तथा

$$\frac{र^5}{5}+\frac{र^3}{3}+\frac{7र}{5}$$ भी एक पूर्णांक है।

क्योंकि हमने मान लिया है।

इसलिये

$$\frac{(र+1)^5}{5}+\frac{(र+1)^3}{3}+\frac{7(र+1)}{15}$$ एक पूर्णांक होगा।

अतः $य=र+1$ के लिये परिणाम सत्य है। और गणितीय प्रेरण की सहायता से उपपत्ति पूरा हो गया।

किन्तु गणितीय प्रेरण का प्रयोग करते सयम विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि गलत प्रयोग से बहुत भद्दा परिणाम मिल सकता हैं।

उदाहरणार्थ—यदि य एक धनात्मक पूर्णांक है और म एक समुच्चय है जिसमें केवल वास्तविक संख्यायें ही हैं, तो म की सभी संख्याएँ बाराबर होनी चाहिये। यह एक गलत प्रमेय है।

$य=1$ के लिये प्रमेय स्पष्टतः सत्य है।

मानलिया $य=र$ के लिये भी प्रमेय सत्य है तो $य=र+1$ के लिये प्रमेय की सत्यता देखनी चाहिये।

मानलिया च एक समुच्चय है जिसमें केवल $(र+1)$ वास्तविक संख्यायें, जैसे—$क_1$, $क_2$, $क_र$, ———, $क_2$, हैं।

प्रेरित परिकल्पना द्वारा

$क_1=क_2=क_3=————=क_र$ होना चाहिये।

किन्तु यदि च से $क_1$ निकाल दें तो केवल र वास्तविक संख्यायें, जैसे $क_2$, $क_3$, . . , $क_र+1$, मिलती हैं और प्रेरित परिकल्पना द्वारा

$क_2=क_3=— ———=क_र+1$ होगा।

अतः प्रमेय सिद्ध हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि गणितीय प्रेरण के गलत प्रयोग से गलत परिणाम प्राप्त हो जाते हैं।

गणितीय प्रेरण का दूसरा सिद्धान्त बिना उपपत्ति के लिख दे रहा हूँ। मानलिया प्रत्येक पूर्णांक य के लिये $च_य$ एक प्रमेय है। जब च सत्य है और माना कि प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक र के लिये तथा प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक म के लिये, जो र से छोटा है, $च_म$ सत्य है तो $च_र$ भी सत्य है। अतएव प्रमेय $च_य$ सत्य है।

● ●

हमारी बदलती आस्थायें–I

□ सम्पादक

जो विद्वान अंग्रेजी से हिन्दी के अनुवाद-कार्य में संलग्न हैं उन्हें यह भली-भांति ज्ञात है कि पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में हमारी मान्यतायें और आस्थायें किस प्रकार बदलती रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले से लेकर अब तक की दीर्घ अवधि में विचारकों एवं मनीषियों ने विभिन्न वैज्ञानिक शब्दों के लिये भिन्न भिन्न हिन्दी समानार्थी शब्द प्रदान किये हैं। इस प्रसंग में कुछ शब्दों का उल्लेख आवश्यक है। उदाहरणार्थ Temperature शब्द। इसके लिये 'तापक्रम' शब्द प्रचलित था। बाद में 'ताप' शब्द स्वीकार हुआ और अब यही सर्वमान्य है। इसी प्रकार Crystal शब्द है। पहले इसके लिये 'रवा' फिर मणिभ, स्फटिक, केलास तथा अन्त में क्रिस्टल शब्द स्वीकार हुये। आजकल क्रिस्टल शब्द प्रचलित है।

जो लोग प्रारम्भ में विज्ञान की हिन्दी शब्दावली से सम्बद्ध थे और फिर जिन्होंने उसके विकास की गतिविधियों से अपने को दूर कर लिया वे जब अनुवाद करते हैं या मूल रूप से कुछ लिखते हैं तो अपने समय के शब्दों को व्यवहार में लाते हैं और नई पीढ़ी के उपहास तथा छिद्रान्वेषण के पात्र बन जाते हैं। इसमें दोष किसका है ? ज्ञान निरन्तर परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील है। उससे अपना सम्पर्क बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि नूतनतम पत्र-पत्रिकाओं, कोशों आदि का अध्ययन किया जाय। वस्तुतः यही वैज्ञानिक दृष्टि है किन्तु कुछ लोग इससे कतराते हैं और प्राचीन परम्परा का निर्वाह करना और कराना चाहते हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित लगभग एक दर्जन शब्दावलियाँ आज वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद के लिये मूलभूत सामग्री बन चुकी हैं। यदि कोई यह चाहे कि उनकी अवहेलना करते हुये वह एकतानता ला सकेगा तो कठिन है। जो लोग आज भी डा० रघुबीर के कोश या अन्य अंग्रेजी-हिन्दी के कोशों के बल पर अनुवाद करके अपना योग देना चाहते हैं तो उनका श्रम निरर्थक सिद्ध होगा। किन्तु यह भी आवश्यक नहीं प्रतीत होता कि अनूदक सदैव भारत सरकार द्वारा प्रदत्त शब्दावलियों का अक्षरशः पालन करे।

यहाँ हम कुछ ऐसे शब्दों का उल्लेख कर रहे हैं जो पारिभाषिक शब्दावलियों में जिस रूप में हैं वे उस रूप में अनूदकों तथा लेखकों को मान्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ— ऐसे तीन शब्द हैं—ऐल्कोहल, फ्लोरीन, अमोनिया। इनके लिये शब्दावली में क्रमशः ऐल्कोहाल, फ्लुओरीन तथा एमोनिआ रूप मिलते हैं। जब हम इन शब्दों का बारम्बार प्रयोग करते हैं तो उच्चारण तथा लेखन-सौन्दर्य की दृष्टि से शब्दावली में दिये गये रूपों का अतिक्रमण करके उन्हें सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

तो क्या ये रूप गलत नहीं हो गये ? उत्तर होगा— नहीं। सदैव बँधी लीक पर नहीं चला जा सकता। उपर्युक्त तीनों शब्दों के सम्बन्ध में इसी दृष्टि से विचार करना चाहिये। वे अधिक सहज लगते हैं।

पाठकों को ऐसे अनेक शब्द मिले होंगे जिनके सम्बन्ध में उनकी अपनी विचारधारायें हो सकती हैं। यह उपयुक्त समय है अब उन पर भलीभाँति विचार-विमर्श किया जा सकता है। अतः पाठकगण अपने विचार सम्पादक तक प्रेषित कर सकते हैं जिन्हें पत्रिका में उचित स्थान दिया जावेगा।

(क्रमशः)

बाढ़ की खेती

पानी फसल का जीवन भी है और जानलेवा भी। अक्सर पूरबी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में इतना पानी भर जाता है कि जिन क्षेत्रों से खाने के लिये अन्न मिलता है वहां बरसात भर पानी ही पानी लहराता रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बाढ़ के कारण नीची भूमि में बने मकानात या तो ढह जाते हैं या रहने के अयोग्य हो जाते हैं। उन क्षेत्रों को ऊँचा करने की योजना पिछले दशक में चलायी भी गयी थी लेकिन जैसा कि तमाम योजनाओं का हश्र होता है, उस योजना के बावजूद, बाढ़ की खबरों से गांव की विपन्नता वैसे ही अखबारों में उजागर होती रही जैसे पहले होती थी। रहने के लिये अगर अस्थायी तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की कोई दूसरी व्यवस्था हो भी गई, तो भी उनके रहने-सहने और गुजर बसर करने के लिये अनाज नहीं मिल पाता। उनके खेतों में बरसात भर बेकाबू पानी रहने के कारण, उस का प्रभाव आगामी फसलों पर भी पड़ता है। बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में गरीबी एक बार घर कर गई तो फिर निकलकर जाने का नाम नहीं लेती।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अनाज की पैदावार में बाधा न पड़े इसके लिये खोजबीन बहुत दिनों से जारी है। धान का पौधा बरसात को झेलने के लिये विख्यात है। यह प्रकृति से ही अर्धजलीय पौधा है। यदि इसके लिये उपयुक्त किस्में चुनी जाएं तो गहरे पानी में या बाढ़ वाले इलाके में धान जीवित रहता है। धान की इन किस्मों की एक विशेषता यह होती है कि ये पानी के बढ़ने के साथ बराबर बढ़ते रहते हैं और दूसरे यह कि पानी की धारा की तेजी को भी झेलने की शक्ति रखते हैं। एक किस्म चकिया 59 की सिफारिश बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए की गई थी जिसकी बुवाई नम खेतों में मई मास में ही कर देनी चाहिये। वर्षा होते ही ये बीज उग आते हैं और बाढ़ आने तक काफ़ी बढ़ जाते हैं। इसके बोते समय बीज की मात्रा कुछ अधिक रखनी चाहिए—दो कारणों से—एक तो यह कि कुछ बीज गर्मी में बेकार हो जाते हैं, कुछ हवा में उड़ जाते हैं और कुछ पौधे भी धारा के साथ बहाव में बह जाते हैं। बीज बोते समय यदि इन बातों का ध्यान कर लिया गया है तो बीज को गहरे में बोया जायेगा। इससे पौधे मजबूत रहेंगे।

पटसन या जूट–रेशेवाली फसलों में–बाढ़ वाले इलाके के लिए बड़ी सफल फसल मानी गयी है। इसमें मेहनत कम लगती है और पैसा भी अच्छा देती है। अगर खरीफ़ के मौसम में धान के चारों ओर जूट की बुवाई कर दी गयी होती है तो बाढ़ की तेज धारा का प्रभाव धान के पौधों पर अपेक्षाकृत कम हो जाता है। रबी के खेत कटने के बाद जूट की बुवाई फौरन ही कर देने से इस की अच्छी फसल होती है। जे० आर० सी० 321, 212, और 5854 इस की अच्छी और उन्नत किस्में हैं।

गन्ने की खेती को भी बाढ़ का पानी नुकसान पहुँचा सकता है। लेकिन कुछ किस्में ऐसी हैं जैसे बी० ओ० 3, 17, 32 और सी० ओ० 3561। अगर ये किस्में कुछ दिनों तक पानी में पूरी तरह से डूबी भी रहती हैं तो उससे विशेष हानि नहीं होती। गन्ना बहुत देर तक बाढ़ की मार को नहीं झेल सकता। उसके लिए पानी घट जाने पर ही उसकी बुवाई करना उचित रहता है।

बाढ़ का पानी जहां निश्चित समय तक रहता हो, वहां के लिये सिंघाड़ा और ढेंचा बहुत अच्छी फसल समझी गई हैं। सिंघाड़ा का बाजार अच्छा है। हरा सिंघाड़ा और सुखाने के बाद उस का आटा भी बाजार में अच्छे दामों पर बिकता है। जिन में साल के पांच महीने पानी रहता हो वहां सिंघाड़े के बेल रोप देना बहुत लाभदायक होता है। इन जगहों में अक्सर जलकुंभी या सिवार बहुत पैदा हो जाती हैं। जलकुंभी से कंपोस्ट खाद तैयार करने में सहायता मिलती है। उसे निकाल कर फेंकने में जितना परिश्रम लगता है वह सारा खेत के काम आ जाता हैं। ढ़ैंचा बहुत क्षमता वाला पौधा होता है। इस में तेज धारा में ठहरने की भी शक्ति है। ढैंचा का प्रयोग हरी खाद के लिए विशेष रूप से किया जाता है।

बाढ़ के दिनों में फसल लेने के लिये कुछ पहले से ही तैयारी करनी पड़ती है। होता यह है कि किसान बाढ़ को दैवी विपत्ति मानकर उसे अपने आर्थिक जीवन का अंश बना लेता है और पानी के द्वारा लाई गई उपजाऊ मिट्टी को ही अपने भाग्य का देय मान कर चुप रह जाता है। इसीलिए बहुधा पानी हट जाने के बाद कछार वाले क्षेत्र में वह अनाज छींट कर भी अपने लिए कुछ न कुछ उगा लेता है। कठिनाई तब होती है जब इन खेतों में नवम्बर-दिसम्बर तक पानी भरा रहता है और फसलों की रबी की बुवाई भी पिछड़ जाती है। राजकीय कृषि बाढ़ अनुसंधान केन्द्र घघराघाट द्वारा किये गये प्रयोगों से यह पता चला है कि कुछ फसलें ऐसी है जिन्हें यदि बाढ़ वाले इलाकों में रबी में बोया जाये तो वे दुगनी से तिगुनी उपज तक दे सकती हैं। के० 70 एक ऐसी ही फसल मानी गयी है जो यदि 15 जनवरी तक भी पानी हट जाने के बाद बोई जाये तो गेहूँ या दूसरी फसलों से अच्छी उपज दे सकती है। यदि दलहनी फसल लेना चाहें तो मसूर की फसल सब से अच्छी हो सकती है। दिसम्बर के अंत तक मसूर की बुवाई यदि कर दी जाये तो चने या मटर से दुगनी उपज देती है और बाजार में अच्छा पैसा मिल सकता हैं। मसूर की उन्नत किस्म टाइप 6 अच्छी रहती है।

देर से बोई जाने वाली फसलों में गेहूँ की भी कई किस्में बराबर निकाली जा रही हैं। एक तो बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लाभ के लिए दूसरे खरीफ की फसल से देर में खाली होने वाले खेतों के लिए। एन० पी० 430 गेहूँ की एक ऐसी किस्म है जो बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए अच्छी साबित हुई है।

● ●

विज्ञान-वार्ता

चन्द्रतल पर स्वचालित गाड़ी द्वारा अन्वेषण

17 नवम्बर को सोवियत वैज्ञानिकों ने मानव रहित चन्द्रयान लूना-17 द्वारा आठ पहियों की एक छोटी सी सफेद स्वचालित गाड़ी लूनोखोड-1 चन्द्रतल पर उतार कर चन्द्रमा की खोज में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। यह गाड़ी जिसकी पहियों में सायकिल जैसी तीलियाँ लगी हैं, यान के उतरने के स्थान से 20 मीटर दूर चली और वहाँ से अत्यत स्पष्ट चित्र पृथ्वी को भेजने लगी। टेलीविजन द्वारा गाड़ी की स्थिति तथा उसके आस पास की तली के सम्बन्ध में प्राप्त सूचना के आधार पर इस गाड़ी का पृथ्वी पर से नियंत्रण तथा संचालन किया गया। वैज्ञानिक उपकरणों, रेडियो संचार यंत्रों तथा टेलीविजन तंत्रों के आतिरिक्त फ्रांसीसी वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किया गया लेसर प्रवर्तक भी इस गाड़ी में लगा है। इन यंत्रों की सहायता से जो सूचना पृथ्वी पर भेजी जावेगी वह अत्यन्त वैज्ञानिक महत्व की होगी। सोवियत वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार के अन्वेषण में लागत कम पड़ेगी और मानव जीवन का खतरा भी नहीं रहेगा। 24 नवम्बर से 'चन्द्र रात्रि' आरम्भ होने पर 'लूनोखोड' ने $14\frac{1}{2}$ दिन के लिये अपना कार्य रोक दिया क्योंकि उस समय ताप —150° से० हो गया। सूर्य की ऊर्जा मिलने पर वह पुनः गति मान हो जायगा।

समुद्र से कैन्सर रोधी औषधियां

कैलिफार्निया स्थित विश्वजीव अनुसन्धान संस्थान के निर्देशक डा० ब्रूस हाल्सटेड ने कहा है कि समुद्र में सहस्त्रों जीव ऐसे विद्यमान हैं कि जिनके शरीर से कैन्सर का इलाज करने के लिये उपयुक्त औषधियां प्राप्त की जा सकती हैं। डा० ब्रूस के अनुसार आगामी भविष्य में भिन्न रोगों के लिये सैकड़ों प्रकार की औषधियां प्राप्त करने के लिये समुद्र एक उत्तम साधन स्रोत सिद्ध होने लगेगा। समुद्र में बहुत से ऐसे विष रसायन भी विद्यमान हैं जो सोडियम सायनाइड से दस हजार गुना अधिक विषैले हैं।

बिजली से दर्द पर विजय

बीसवीं शती के आरम्भ में हुये शोधों के आधार पर ऐसा लगा कि कोई न कोई अहानिकर वेदनाहर मिल ही जावेगा। फ्रांस के एक शोधकर्ता डा० एस० लेड्यूक ने एक जानवर के सिर में इलेक्ट्रोड लगाकर विद्युत धारा प्रवाहित की। इससे पशु के शरीर पर कोई भी शल्य-चिकित्सा करनी सम्भव हो गयी एवं पशु निश्चेष्ट पड़ा रहा। विद्युत-तरंग हटाने पर जानवर की बेहोशी दूर हो गयी और वह बिल्कुल स्वस्थ दिखाई देने लगा। इस सफल परीक्षण के पश्चात् अनुसंधानकर्ता ने इसका प्रयोग अपने शरीर पर किया एवं इसे पूरी तरह निरापद तथा सफल पाया। इस विद्युत क्रिया का नाम "इलेक्ट्रोनारकोसिस" रखा गया। कुछ समय पश्चात् इस विधि के अनेक दोष जैसे—रोगी का एकाएक आपरेशन की मेज पर गति करने लगना, श्वास-प्रश्वास एवं हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव आदि प्रकाश में आये।

उपर्युक्त दोषों से मुक्त विधि के सम्बन्ध में निरन्तर प्रयास होते रहे एवं अब शोधकर्त्ताओं ने एक विशेष प्रकार की विद्युत धारा का पता लगाया जिसने बहुत सी जटिलतायें दूर कर दीं। इस क्रिया में सिर पर इलेक्ट्रोड रखकर ऊँची आवृत्ति की विद्युत तरंग प्रेषित की जाती है जो कि

वाह्य तंतुओं को बिल्कुल परेशान नहीं करती। मस्तिष्क के अन्दर ये धारायें एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करके कम आवृत्ति की तरंग उत्पन्न करती हैं जो विद्युत की सहायता से रोगी को चेतनाशून्य कर देती है। बिजली से बेहोश करने की यह विधि बड़े पैमाने पर सर्जरी में तभी इस्तेमाल की जा सकेगी जब दर्द को रोकने वाली बिजली की प्रक्रिया का स्पष्ट पता चल जायेगा।

● ●
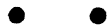
[पृष्ठ 8 का शेषांश]

हैं। पहले स्पर्श शक्ति आवी है, फिर श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति आदि जागृत होती हैं।

विभिन्न प्रकार के निद्रा प्रेमी

शिकागो विश्वविद्यालय के निद्रा विशेषज्ञ डा० नैथानील क्लीटमैंन ने मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटा है :–

(1) प्रभातप्रिय और (2) सन्ध्या प्रिय

प्रभातप्रिय व्यक्ति शीघ्र उठते हैं और स्फूर्ति से कार्य करते हैं। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों का शरीर शीघ्र गर्म होकर दिन के मध्य भाग में उष्णता की सीमा पर पहुँच जाता है वे शीघ्र उठते हैं और जो व्यक्ति देर से उठते हैं उनका शरीर देर से उष्णता को प्राप्त होता है।

ब्रह्म मुहूर्त्त में नींद खुलने से शरीर को शुद्ध आक्सीजन प्राप्त होती है और शरीर चुस्त रहता है। यदि आपका तापमान दिन के 12 बजे से 3 बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप प्रभातप्रिय हैं और यदि आपके शरीर का तापमान शाम के 5 बजे से 8 बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप सन्ध्या प्रिय हैं।

सुबह उठना सामाजिक व पारिवारिक दृष्टि से उत्तम है। सोने के पूर्व हाथ-पैर धोकर सोना चाहिये। स्वच्छ वस्त्रों पर ही सोना चाहिये। सोते समय चिन्ता मुक्त होना चाहिये। रात्रि को हल्का भोजन लेना चाहिये। इससे निद्रा गहरी आयेगी और चित्त हल्का रहेगा। जीवन का एक तिहाई भाग निद्रा में व्यतीत होता है इसलिये इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। गहरी व स्वस्थ नींद मनुष्य को स्वस्थ और दीर्घायु बनाती है।

● ●

सम्पादकीय

अनुवाद ही अनुवाद

भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये अंग्रेजी में प्राप्य अधिकाँश गौरव ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है। विशेषतः विज्ञान सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों एवं सन्दर्भ ग्रंथों के अनुवाद कराये जाने की वृहद् योजना कार्यान्वित की जा रही है।

ऐसे ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की योजना में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें समान रूप से अपना अपना योग दे रही हैं। विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों की लम्बी लम्बी सूचियों में कुछ नई और कुछ पुरानी पुस्तकों के नाम सम्मिलित हैं जिन्हें अनूदित करने के लिये नये और पुराने दोनों ही तरह के अनुवादकों को कार्य सौंपा जा चुका है या जाने वाला है। कुछ अनुवाद कार्य प्रकाशित भी हुआ है। किन्तु जो कुछ प्रकाशित हुआ है उसकी न तो समालोचना हो पाई है, और न इधर लोगों का ध्यान ही गया है। सच बात तो यह है कि अनुवादकों को अपना 'मेहनताना' मिल जाने से वे प्रसन्न हैं और हमारे नेता इसलिये प्रसन्न है कि हिन्दी में कुछ साहित्य उपलब्ध हो गया है और वह राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी बन सकती है।

किन्तु मूल प्रश्न कुछ दूसरा ही है। क्या हिन्दी में केवल अनुवाद ही होता रहेगा? या मौलिक लेखन पर भी ध्यान दिया जावेगा? कुछ लोग कहेंगे कि इस समय दोनों पर बल दिया जा रहा है। किन्तु जो प्रगति हुई है वह सन्तोष जनक नहीं कही जा सकती। आज अनुवाद का बाजार गरम है। कारण कि अनुवाद से जो पारिश्रमिक मिलता है वह आकर्षक है और मौलिक लेखन से प्राप्त होने वाली राशि से कम नहीं होता। फिर सभी अनुवादक मौलिक पुस्तकें नहीं लिख सकते और लिख भी लें तो उनके लिये प्रकाशक नहीं मिल पावेंगे। अतः आज अनुवाद कार्य सबसे सुरक्षित एवं सम्मानजनक कार्य बन गया है।

किन्तु क्या अनुवादकों ने अपनी अर्हताओं एवं उत्तर-दायित्वों की ओर थोड़ा भी ध्यान दिया है? क्या यह सच नहीं है कि अधिकाँश अनुवादकों के पास वे योग्यतायें नहीं हैं जो सफल अनुवादक के लिये अनिवार्य होती हैं? न अनुवाद कार्य के लिये सभी प्रकार के कोश ही उपलब्ध हैं।

अनुवाद का कार्य कोई आसान कार्य नहीं होता। सफल अनुवाद कार्य 'परकाया प्रवेश' जैसा है। अच्छा अनुवाद न तो शाब्दिक होता है और न भावानुवाद। अनुवादक को न केवल अपनी भाषा में पारंगत होना चाहिए वरन् उसे विदेशी भाषा के शब्द-गाम्भीर्य से परिचित होना चाहिए। केवल पारिभाषिक शब्दावलियों या कोशों की सहायता से सफल अनुवाद कर पाना कठिन है। अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद के लिये ऐसे कोशों की भी अवश्यकता है जिसमें विदेशी भाषाओं के कठिन और विशिष्टार्थ बोधक शब्दों का संग्रह तथा अर्थ निर्देश हो। आनुषंगिक सामग्रियों में निघंटुओं की अत्यावश्यकता पड़ती है। हिन्दी में कोश तो हैं परन्तु निघंटु नहीं है जिनसे क्लिष्ट शब्दों के अर्थ प्राप्त हो सकें। प्रामाणिक अनुवाद के लिये हिन्दी में कोश-कार्य के अधिकाधिक विकास की आवश्यकता है।

अनुवाद करते समय अनुवादक को भाषा की प्रकृति, काल और सम्बद्ध विषय पर ध्यान रखना आवश्यक होगा। फिर अनुवाद कार्य 'संस्थागत' होना चाहिए व्यक्तिगत नहीं। अनुवादक को अपनी 'अहं' को भूलकर 'बहुजन हिताय'

कार्य करना होगा। उसे अनुवाद-योजना का संचालन करते समय उसमें संगठन एवं संचालन की ऐसी क्षमता होनी चाहिए। प्रकाशकों की अभिरुचि एवं राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुये नूतनतम पुस्तकों का अनुवाद कराना होगा। जो साहित्य पुराना पड़ गया है उसमें श्रम का अपव्यय वृथा है। वैसे भी अनुवाद कार्य द्वितीय श्रेणी का कार्य माना जाता है अतः यदि योग्यता, उद्देश्य एवं साधनों का ठीक से समायोजन नहीं हो पाता तो सम्भावना यही है कि सारा कार्य अकार्य सिद्ध हो जावे। संतुलित योजना के द्वारा अनुवाद कार्य को अग्रसर करना होगा।

लेखकों से निवेदन

'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।